गन्धर्वतन्त्रम्

‘ज्ञानवती’ - हिन्दीभाष्येण विभूषितम्

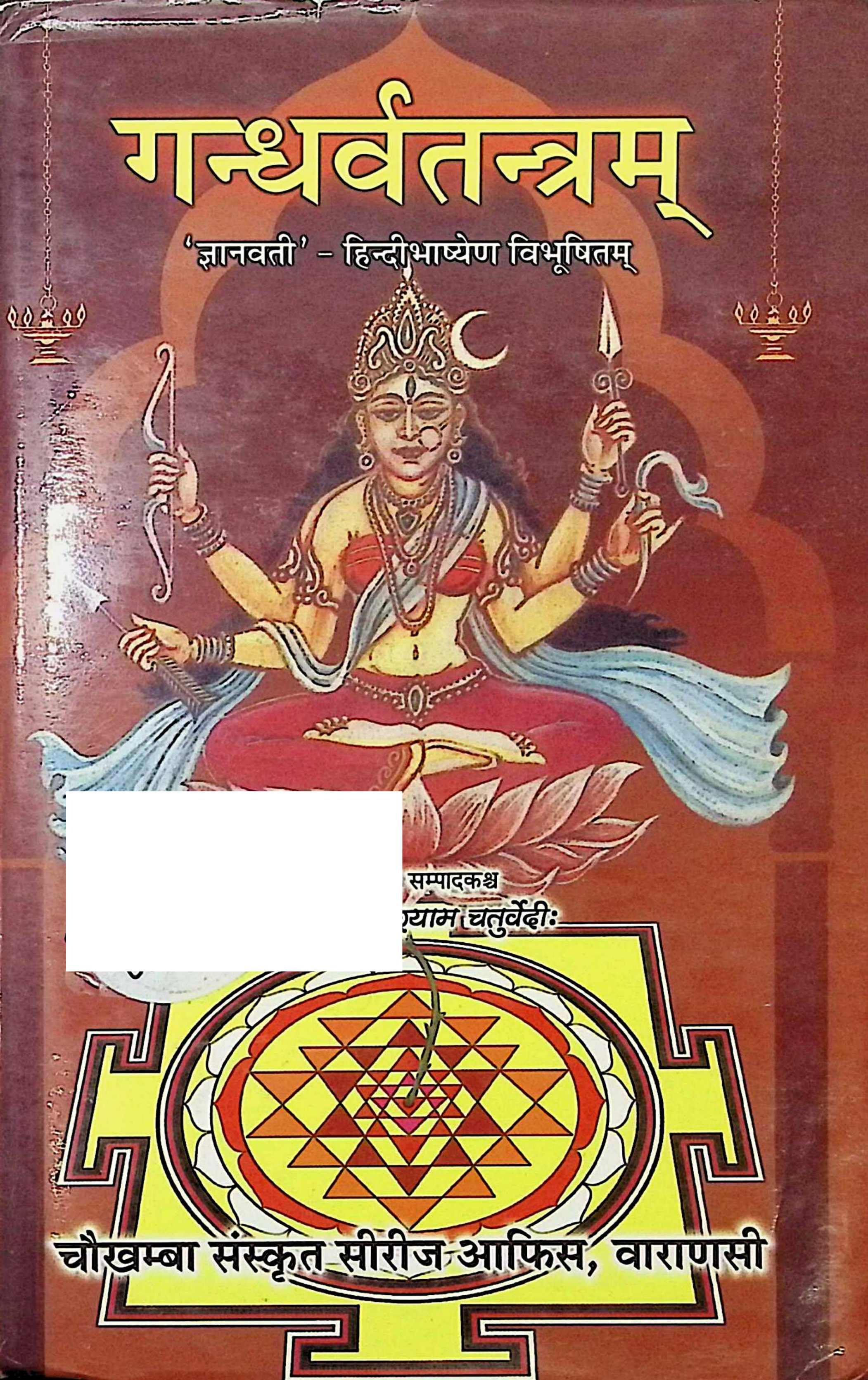

[redacted] सम्पादकश्च
चतुर्वेदी:

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

लेखक के विषय में—

जीवन-परिचय

नाम	डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी
पिता	पं. मुरलीधर चतुर्वेदी
दीक्षा गुरु	योगीकल्प श्री ६ शिवचैतन्यवर्णी माहेश्वर, मध्यप्रदेश
जन्म	माघ शुक्ल पूर्णिमा वि.सं. १९९६ (ई. १९४०)
शिक्षा	व्याकरणाचार्य (वा.सं.वि.वि. वाराणसी) एम.ए., पी–एच.डी. (का.हि.वि.वि.)
पदक	कुलाधिपति पदक (वा.सं.वि.वि.) काशिराज पदक (का.हि.वि.वि.) मधुसूदनानन्दसरस्वती स्वर्णपदक (का.हि.वि.वि.) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्वर्णपदक (का.हि.वि.वि.)
अध्यापन	संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
सम्प्रति	अध्यक्ष संस्कृत एवम् वेदविभाग देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्री कुञ्ज, शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
दार्शनिक कृतियाँ	वेदान्तकौमुदी
तान्त्रिक कृतियाँ	शिवदृष्टि (उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत), शिवाम्बुकल्प (उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत), श्रीतन्त्रालोकः (पाँच भाग), नेत्रतन्त्र, महाकाल संहिता (६ भाग), गन्धर्वतन्त्र, गायत्रीमहातन्त्र, कामाख्यातन्त्र।

तंत्र

लेखक के विषय में—

जी

नाम

पिता

दीक्षा गुरु

जन्म

शिक्षा

पदक

अध्यापन

सम्प्रति

दार्शनिक कृतियाँ

तान्त्रिक कृतियाँ

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
११८
***

अथ शिवप्रोक्तम्

गन्धर्वतन्त्रम्

'ज्ञानवती'-हिन्दीभाष्येण विभूषितम्

भाष्यकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीः
व्याकरणाचार्यः एम.ए.(संस्कृत), पीएच.डी., (लब्धस्वर्णपदकः)
शास्त्रचूडामणिविद्वान्
इमेरिट्स प्रोफेसर एवं अध्यक्षः,
संस्कृत विभागे
देवसंस्कृतिविश्वविद्यालये, गायत्रीकुञ्जशान्तिकुञ्जम्, हरिद्वारम्
(पूर्वाचार्यः) कलासंकायस्ये संस्कृतविभागे,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयस्य, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०६६, सन् २००९

ISBN : 978-81-7080-308-9

© **चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस**
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Forwarded Free of Cost with
the compliments of Rashtriya
Sanskrit Sansthan, New Delhi

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
118
***

GANDHARVATANTRAM

(With Jñānawatī-Hindi Commentary)

Commented & Edited by
Prof. RADHESHYAM CHATURVEDI
Vyākaraṇācārya, M.A., Ph.D.,(Goldmedalist)
Śāstracūḍāmaṇi Scholar
Emeritus Prof & Head, Department of Sanskrit
Devsanskriti University, Gayatrikunj Shantikunj, Haridwar
Ex. Professor, Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University, Varanasi

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-308-9

[redacted]

©CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone- Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Also can be had from :

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ।
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिखसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥
—सौन्दर्यलहरी

चतुःषष्ठया तन्त्रैः सकलमतिसन्धायभुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥
—सौन्दर्यलहरी

स्नेह सिञ्चन

आदिशक्ति वेदमाता गायत्री सद्ज्ञान परमज्ञान की जननी है । योग, तन्त्र एवं वेदान्त का ज्ञान भी उन्हीं की कोख में पलता और उन्हीं से प्रकट होता है । ॐकार एवं त्रिव्याहृतियों सहित महामन्त्र के चौबीस अक्षरों में तीनों लोकों का ज्ञान समाया है । ये अक्षर जब अनुलोमक्रम में प्रकट एवं परिभाषित होते हैं तो इनसे योग के तत्त्व एवं विधियाँ प्रकाशित होती हैं । यही अक्षर जब विलोम क्रम में अपनी अभिव्यक्ति करते हैं तो इनसे तन्त्र के सभी गोपनीय तत्त्व एवं क्रियाओं का प्रकाश होता है । योग एवं तन्त्र की सभी विधियाँ जब अनुभवों के परम आकाश में मिलती हैं तो वेदान्त का परम तत्त्व प्रकाशित होता है । इन पंक्तियों में जो कहा गया है, वह सत्य शास्त्रों का नहीं साधकों का है । जिसे मैंने श्रीगुरुचरणों के सान्निध्य में सुना है ।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीरामशर्मा आचार्य के श्रीमुख से उनकी अनुभूति कथाओं को सुनने के क्रम में मैंने यह भी सुना है कि उनकी एक हिमालय यात्रा के क्रम में उनके सद्गुरुदेव स्वामी सर्वेश्वरानन्द ने उन्हें हिमालय की दिव्य ऋषि सत्ताओं से मिलाया था । इसी क्रम में वह ब्रह्मर्षि विश्वामित्र से मिले । जिन्होंने उन्हें तन्त्र का प्रायोगिक एवं अनुभवात्मक ज्ञान दिया और वह शाक्ततन्त्र की दशमहाविद्याओं के मर्मज्ञ बने । इसी काल में शक्ति के अन्य रूप भी उनमें प्रकट एवं प्रकाशित हुए । बाद में जब उन्होंने ब्रह्मवर्चस-शोध-संस्थान की स्थापना की, तो उन्होंने जगन्माता के इन सभी रूपों की मूर्त्तियों को भूमितल पर प्रतिष्ठित किया। यह प्रतिष्ठा दरअसल उनके स्वयं के अनुभव की प्रतिष्ठा है।

प्रो० राधेश्याम चतुर्वेदी ने जब मुझे अपने द्वारा की गयी गन्धर्वतन्त्र की व्याख्या अवलोकनार्थ दी तो मुझे परम पूज्य गुरुदेव के उन शब्दों का स्मरण हो आया, जिसमें उन्होंने कहा था—मैंने तन्त्र का ज्ञान ब्रह्मर्षि विश्वामित्र से पाया है। इस गन्धर्वतन्त्र की कथा भी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र एवं अत्रि-अनसूया के पुत्र ईश्वरावतार दत्तात्रेय के बीच कही सुनी गयी है । विश्वामित्र एवं दत्तात्रेय दोनों ही तन्त्र सिद्धान्त, साधना एवं सिद्धि के परमोच्च शिखर हैं । अनेक तन्त्र-ग्रन्थों में इन तन्त्र-महाविभूतियों का उल्लेख आया है । परम गुरु दत्तात्रेय के नाम से तो तन्त्र का एक विभाग ही है । बयालिस पटलों में वर्णित यह ग्रन्थ 'गन्धर्वतन्त्र'

तन्त्र साधना के अनेकों गूढ़ तत्त्वों को प्रकाशित करता है । भगवती राजराजेश्वरी माता त्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप, साधना एवं सिद्धि का वर्णन यहाँ पर सरल सम्मोहक एवं अनुभवग्राह्य है । दशमहाविद्याओं के क्रम में ही भगवती त्रिपुरसुन्दरी का वर्णन मिलता है और वहाँ उनके तीन रूप प्राप्त होते हैं—१. आठ वर्षीया बाला त्रिपुरसुन्दरी, २. षोडश वर्षीया षोडशी त्रिपुरसुन्दरी, ३. युवा रूपा भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी । दरअसल में ये तीनों रूप भगवती की साधना के तीन सोपान हैं । इसे तन्त्र ग्रन्थों में श्रीविद्या भी कहा गया है । जो श्रीविद्या के साधक उपासक हैं, वही गायत्री की तुरीय सन्ध्या के अधिकारी हैं । प्रकारान्तर से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना भी गायत्रीसाधना में अन्तर्निहित है ।

हालांकि इसके गोपनीय रहस्य को कम ही लोग जानते हैं । इस ग्रन्थ के लेखक व्याख्याकार प्रो० राधेश्याम चतुर्वेदी न केवल संस्कृत, भाषा, व्याकरण एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं, बल्कि उन्होंने तन्त्र शास्त्र का गहन अनुशीलन किया है । तन्त्र के अनेकों ग्रन्थ उनके द्वारा अनूदित हुए हैं । उन्होंने तन्त्र ग्रन्थों की सुगम एवं सर्वप्रिय व्याख्याएँ की हैं । उन्होंने दीर्घकाल तक वाराणी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए भगवान् विश्वनाथ का कृपाप्रसाद पाया है । वेदमाता गायत्री की नियमित निरन्तर साधना ने उन्हें विलक्षण प्रतिभा का वर दिया है । जिसके बलबूते वह यह लोकहितकारी कार्य में सक्षम हुए हैं ।

इन दिनों वह हम सबके साथ रहकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं । यहीं रहकर उन्होंने गन्धर्वतन्त्र की व्याख्या लिखी है । गङ्गा की गोद एवं हिमालय की छाया में माता गायत्री की कृपा से वह आगे भी इसी तरह लिखते रहें । भगवती वेदमाता उनके लिए सदा वरदायिनी बनी रहे । युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव एवं परम वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा का आशीष उन्हें सदा मिले । साथ ही वह अपने गुरुदेव शिवचैतन्य जी के सर्वदा कृपापात्र बने रहें । यही मङ्गलभावना है, मङ्गलकामना है ।

पौष कृष्ण अष्टमी
सम्वत् २०६५

विद्वद्ज्जनों का सर्वदा सुहृत् स्नेही
प्रणव पण्ड्या
कुलाधिपति,
देवसंस्कृति विश्वविद्यालय
गायत्रीकुञ्ज, शान्तिकुञ्ज,
हरिद्वार

पुरोवाक्

विश्व के समस्त प्राणी विशेष रूप से मनुष्य यह चाहते हैं कि हमे दुःख न हो, सुख मिले । वह भी नित्य और निरतिशय हो । आगम, निगम, संसार के विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये अनादिकाल से प्रयासरत हैं। भारतीय मनीषा ने इसके लिये ज्ञान कर्म और उपासना नामक विधियों का प्रचलन किया । सृष्टि की कारणभूता सर्वोच्च सत्ता का स्वरूप ज्ञानमय तथा आनन्दमय है । सत् तो वह है ही । उसकी यह ज्ञानानन्दमयता नित्य और निरतिशय है । जीव मूलतः परमात्मस्वरूप होता हुआ भी मायावश उस परमात्मा का अंश हो जाता है । इस कारण उसके ज्ञान और आनन्द भी आंशिक अर्थात् सीमित हो जाते हैं । अज्ञान से अंशतः आवृत होने के कारण वह आनन्द से भी अंशतः रहित हो जाता है । जीवात्मा के अज्ञान की निवृत्ति तथा स्वरूपानन्द की प्राप्ति के लिये तन्त्र अन्यतम साधन है, अप्रतिम उपाय है । इसके विशालक्षेत्र में प्रवेश के लिये मानवमात्र अधिकृत है । आचार्य अभिनवगुप्त के द्वारा उद्धृत ईश्वर के वचनानुसार चाण्डाल भी तन्त्रविद्या का अधिकारी है—

न मे प्रियश्चतुर्वेदो मद्भक्तः स्वपचोऽपि वा ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥

स्वरूप-लाभ अथवा आत्मप्रत्यभिज्ञा की सफल यात्रा में तन्त्र अकेला समर्थ नहीं है । यह बीच की वस्तु है । इसके पहले मन्त्र और बाद में यन्त्र है । मन्त्र तन्त्र और यन्त्र ये तीनों मिलकर उस आनन्दमयी सत्ता के साथ तादात्म्य या अभेद स्थापित करने में सहायक होते हैं । अक्षरों का विशिष्ट क्रम में संयोजन मन्त्र कहलाता है । जड आकाश का गुण होने के कारण अक्षर जड होते हैं । उनका समूह मन्त्र भी परिणामस्वरूप जड होता है । उसमें निहित चैतन्य का जब तक आलम्बन न किया जाय तब तक वे फल देने में समर्थ नहीं होते । इसलिये मन्त्र के अर्थ अर्थात् मन्त्र के पीछे निगूढ शुभ्र सत्ता के ध्यान को आवश्यक बतलाया गया है—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदान्न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥

तन्त्र एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा तत्तद् उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये मन्त्रों के विनियोग का मार्ग प्रशस्त किया जाता है । किस वस्तु का किस रूप में किस स्थान और समय में कैसे तथा किस उद्देश्य के लिये प्रयोग किया जाय इसका निर्धारण

तन्त्र करता है । इसीलिये सम्पूर्ण विश्व के समस्त आध्यात्मिक आधिदैविक और आध्यात्मिक विषय तन्त्र की परिधि में आते हैं । मन्त्र के सहित तन्त्र के प्रयोगों का आधार यन्त्र है । यन्त्र तान्त्रिक प्रक्रिया को सरल एवं सटीक बनाता है । यन्त्र रेखाओं अङ्कों या अक्षरों का मात्र संघटन नहीं है । उसकी रचना में वैज्ञानिकता निहित रहती है । उल्टी सीधी रेखा, मनमाना अक्षर अङ्क संयोजन लक्ष्य की पूर्त्ति नहीं करते प्रत्युत विपरीत फल देते हैं । इसीलिये मन्त्र तन्त्र और यन्त्र के प्रयोग में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है । पृथक्-पृथक् देवता की अर्चना के लिये पृथक्-पृथक् मन्त्र तन्त्र एवं यन्त्र होते हैं ।

गन्धर्व तन्त्र भगवती त्रिपुरसुन्दरी की साधना का ग्रन्थ है । इस परादेवी की आराधना का महत्त्व बतलाते हुये कहा गया है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

भगवान् शिव ने इस तन्त्र का उपदेश भगवान् कृष्ण को दिया । कृष्ण ने इसे हंसरूपधारी ब्रह्मा को बतलाया । पुनः शिव ने इसकी शिक्षा नन्दिकेश्वर तथा पुष्पदन्त नामक गन्धर्वराज को दी । पुष्पदन्त ने अन्य गन्धर्वों को इसका पाठ पढ़ाया । तन्त्र के उपदेश्यों में चूँकि गन्धर्व प्रमुख थे इसलिये इसका नाम गन्धर्व तन्त्र पड़ा । दूसरा कारण यह है कि इसका ज्ञान सर्वप्रथम गन्धर्वों ने प्राप्त किया । इसलिये इसे गन्धर्वतन्त्र कहा गया ।

सारमुद्धृत्य भगवान्यामलादपि सर्वतः ।
तन्त्रं द्वादशसाहस्त्र्यं भोगमोक्षैकसाधनम् ।
पार्वत्यै कथयामास भोगमोक्षैकसाधनम् ॥

श्लोकों से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कभी बारह हजार श्लोकों वाला था । अब इसमें ४४४५ श्लोक हैं ।

गन्धर्वतन्त्र का विषय भगवती त्रिपुरसुन्दरी की वाममार्गी पूजा है । इसमें भगवती त्रिपुरा के विग्रहस्वरूप श्रीयन्त्र का रचनाविधान साङ्गोपाङ्ग वर्णित है । यन्त्र की निर्माण-विधि, प्रत्येक अवान्तर चक्र की अधिष्ठात्री आवरण देवता का ध्यानपूर्वक सविधि-सभेद पूजनप्रकार, कुमारी पूजा, दीक्षा, पुरश्चरण, कौलाचार आदि का विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में प्रस्तुत है । मुख्य विषय के साथ आनुषाङ्गिक अनुष्ठानों की चर्चा इस ग्रन्थ की पूर्णता में सहायक सिद्ध होती है । उदाहरण के लिये न्यास की चर्चा में अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृकान्यास, षोढान्यास, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, पीठ, वाग्देवता, मूलाङ्ग आदि सत्रह न्यासों की चर्चा यहाँ की गयी है । बाह्य याग के

साथ-साथ आन्तर याग का भी वर्णन है । तत्तत् सन्दर्भों में चौबीस मुद्रायें भी प्रकीर्ण रूप में निहित है । दीक्षाचर्चा के क्रम में सद्गुरु, सच्छिष्य के लक्षण उनके कर्त्तव्य आदि को भी दर्शाया गया है । इसी प्रकार आसन गन्ध पुष्प आदि उपचारों का सूक्ष्म एवं सर्वाङ्गीण विवरण ग्रन्थ में सुवर्णसौरभ की भूमिका प्रस्तुत करता है । आसन के प्रकार, उत्तम मध्यम अधम आसन, गन्ध के भेद, समर्प्य असमर्प्य पुष्प आदि का सूक्ष्म वर्णन साधक की साधना को सुकर एवं उत्कृष्ट बनाने में सहायक सिद्ध होता है ।

गन्धर्वतन्त्र का आरम्भ अन्य तन्त्र ग्रन्थों की अपेक्षा विचित्र ढङ्ग से किया गया है । उसके अनुसार भगवान् शिव ने जब श्रीकृष्ण आदि को कौलमार्ग का उपदेश दिया और इस क्रम में यह तन्त्र त्रिलोक में प्रचालित हो गया तब ब्रह्मा जी भगवान् शिव के पास जाकर प्रार्थना करते हुए बोले—'आपने अपने वामदेव नामक मुख से जिस तन्त्र का उपदेश किया है धरती पर मनुष्य उसके अनुसार आचरण कर ब्रह्मज्ञानी हो जायेंगे । संसार से विरक्त होकर वे ब्रह्मचिन्तन करने लगेंगे फिर संसार चलेगा कैसे? अतः हे प्रभो! आप कोई उपाय कीजिये जिससे संसार-यात्रा चलती रहे । ऐसा सुनकर भगवान् शिव ने नन्दिकेश्वर को बुलाया और मन्दर पर्वत की गुफा के द्वारा पर उन्हें रक्षक नियुक्त कर स्वयं अन्दर चले गये । वहाँ उन्होंने मनुष्यों तथा दैत्यों को बुलाकर अनेक अपशास्त्रों का उपदेश दिया । गौतम ने यह उपदेश सुना और मोह में पड़कर शिव की ही निन्दा करने लगे । बाद में शिवाज्ञानुसार वैष्णव तन्त्र की चर्चा की और विष्णु की कृपा से सिद्धि को प्राप्त किये । इसके पश्चात् शिव की स्वशक्ति से मूढ ब्राह्मणों ने पाशुपत आदि अवर शास्त्रों का लोगों में प्रचार किया । कणाद ने वैशेषिक, गौतम ने न्याय, कपिल ने सांख्य, बृहस्पति ने चार्वाक और बुद्धरूपधारी विष्णु ने बौद्ध शास्त्र का प्रसार किया । जैमिनि ने निरीश्वर मीमांसाशास्त्र का प्रवर्त्तन किया और मन्त्रों को दूषित कर दिया । परिणाम यह हुआ कि देव-देवी उस अशुद्ध मन्त्र के प्रभाव से निर्बल एवं विकलाङ्ग हो गये ।

इसके बाद देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु उनके साथ मन्दराचल जा पहुँचे तथा नन्दिकेश्वर के मना करने पर भी वे शिव के पास पहुँच गये । इससे शिवजी क्रुद्ध हो गये और गरुड़ को अपना शरीर अत्यन्त विशाल करने का आदेश दिया । गरुड़ के वैसा करने पर भगवान् शिव गरुड़ के शिर पर बैठ गये । इससे भगवान् विष्णु खिन्न होकर बोले—'आप अकाल प्रलय क्यों करना चाहते हैं? शिव ने कहा—मैंने ब्रह्मा सूर्य सरस्वती अग्नि आदि देवताओं के मन्त्रों को भ्रष्ट कर दिया है । आप बिना मेरी अनुमति के अन्दर कैसे आ गये? इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने प्रार्थना की कि आप अब इस कार्य से विरत हो जाइये । शिव ने पार्वती से कहा—हे प्रिये! तब से मैं इस कार्य से विरत हो गया । किन्तु जो लोग मेरे द्वारा उपदिष्ट मोहोत्पादक शास्त्रों को पढ़ेंगे वे परम पुरुषार्थ से च्युत होकर दुःख के भागी होंगे ।' इस कथानक से

यह भी सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ बौद्धावतार के बाद लिखा गया ।

यह ग्रन्थ केवल कर्मकाण्ड नहीं है, इसमें यत्र तत्र दार्शनिक विषय भी प्रकीर्ण हैं । उन्तालिसवाँ तथा चालिसवाँ पटल दार्शनिक चर्चा से व्याप्त है । किञ्चिद् वैशिष्ट्य के साथ सांख्यदर्शन की चर्चा करते हुये कहा गया है कि मूलतत्त्व पुरुष और प्रकृति हैं । आगे चलकर इस ग्रन्थ में प्रकृति पुरुष का स्वरूप, सृष्टि की पञ्चभूतात्मकता, शरीर का पञ्चभूतमय होना, जीव का कर्त्तृत्व, अज्ञान की भूमिका, अध्यास, आत्मस्वरूप, आत्ममोक्ष आदि की संक्षेप में चर्चा की गयी है । इतना अवश्य है कि इस सब का मूल शिव को माना गया है । बयालिसवाँ पटल पूर्णतया दार्शनिक है । इसमें प्रश्नोत्तर शैली में चरम तत्त्व अर्थात् ब्रह्म के साथ ऐक्य प्राप्त करने का मार्ग प्रदर्शित किया गया है । इस पटल के अधिकाधिक पद्य कठ आदि उपनिषदों से किञ्चित् परिवर्त्तन के साथ संगृहीत है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्य एवं प्रकाशन कार्य में जिनका प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष योगदान रहा है उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा नैतिक दायित्व है । मै सर्वप्रथम पराम्बा गायत्री जो कि त्रिपुरसुन्दरी का प्रच्छन्नरूप है, के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ जिनकी अहैतुकी कृपा से यह कार्य सम्पन्न हुआ । अपने पूज्य गुरुदेव श्री६ शिवचैतन्यवर्णी का नि:स्वार्थ वात्सल्य मेरे ऊपर सदा रहता है मैं उनका आधमर्ण्य हृदय से स्वीकार करता हूँ । इस ग्रन्थ की प्ररोचना के रूप में सस्नेह आशीर्वाद देने वाले परमश्रद्धेय डॉ प्रणवपण्ड्या (कुलाधिपति, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुञ्ज शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार) जिनकी विनम्र आत्मीयता मेरा प्रेरणास्रोत रही है, का मैं अभिवादन करता हूँ । इस ग्रन्थ पर भाष्य लिखने के लिये प्रोत्साहित करने वाले मेरे परम मित्र डॉ० सुधाकर मालवीय जी का मै ऋणी हूँ जो स्वयं कई तन्त्रग्रन्थों के सम्पादक तथा महामना संस्कृत शोध संस्थान के निदेशक हैं। इनके ज्येष्ठ पुत्र रामरञ्जनमालवीय और चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला के अधिष्ठाता श्री सचिनगुप्त को मैं हृदय से साधुवाद देता हूँ । उनके सहयोग मे ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका ।

यह ग्रन्थ सर्वदा निर्दुष्ट है ऐसा कहने का साहस मैं नहीं कर सकता । किसी विद्वान् को यदि कहीं स्खलन प्रतीत हो तो कृपया सूचित करें ।

अन्त में 'माँ गायत्री' के चरणों में इस कृति को समर्पित करते हुए प्रार्थना करता हूँ कि इसके अध्येतृगण एवं तदनुसार यथा सम्भव आचरण करने वालों का कल्याण हो ।

कार्त्तिक पूर्णिमा
(गुरुनानक जयन्ती)
वि०सं० २०६५, हरिद्वार

विद्वद्विधेय
(राधेश्याम चतुर्वेदी)

भूमिका

१. तन्त्र : विहङ्गमदृष्टि

सम्पूर्ण विश्व में तन्त्र ही एक ऐसा विषय है जहाँ सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों समान महत्त्व के हैं । शिव के मुख से निर्गत इस वाङ्मय का स्वरूप जितना विशाल है प्रक्रिया के क्षेत्र में उतनी ही विविधतायें भी हैं । यह तथ्य सर्वविदित है कि निगम अथवा वेद यदि नारायण के निःश्वास हैं—'यस्य निःश्वसितं वेदाः', तो तन्त्र या आगम शिव के वचन हैं । नारायण से वेदों को सर्वलोकपितामह ब्रह्मा ने प्राप्त किया । ब्रह्मा से सनक आदि ऋषियों तथा ब्राह्मणों ने प्राप्त कर इसका प्रचार प्रसार किया । तन्त्र की भी एक स्वस्थ परम्परा है । भगवान् शिव से नन्दिकेश्वर, नन्दिकेश्वर से गन्धर्वों ने प्राप्त कर ब्रह्मा को इसका उपदेश दिया । प्रजापति ने ऋषिकुल को इसका ज्ञानोपदेश किया । इस प्रकार यह तन्त्र-विद्या भूमण्डल पर अवतीर्ण हुई ।

तान्त्रिक वाङ्मय की विशालता का आंशिक परिचय मालिनीविजय तन्त्र के

सिद्धयोगेश्वरीतन्त्रं नवकोटिप्रविस्तरम् ।
तत्सारंत्रिकशास्त्रं..................... ॥

श्लोक से मिलता है । सिद्धयोगेश्वरी तन्त्र में नौ करोड़ श्लोक थे । यह ग्रन्थ शैवतन्त्र से सम्बद्ध था । आगे चलकर तन्त्र शास्त्र के अनेक सम्प्रदायों का प्रचलन हुआ जिनमें शैव शाक्त और गाणपत्य प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त सौर नकुलीश पाशुपत जैन बौद्ध आदि अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है । इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं । वाराही तन्त्र के अनुसार तन्त्र के नौ लाख श्लोकों में से केवल एक लाख श्लोक भारत में हैं । आज तक की प्राप्त सूचनाओं के अनुसार ढाई हजार से अधिक तन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध हैं ।

वेदों की भाँति तन्त्र भी अनादि हैं क्योंकि वे भी शिवमुखों से आर्विभूत हैं । इसके अतिरिक्त अनादि वेदों में आने वाले अगस्त्य लोपामुद्रा आदि के नाम भी तान्त्रिकों की सूची में हैं । लोपामुद्रा त्रिपुरसुन्दरी की तथा इनके पिता भगमालिनी के उपासक थे । अघोरतन्त्र के आविष्कारक भगवान् शिव आदिनाथ कहे जाते हैं। अत: अनेक प्रमाणों से तन्त्रशास्त्र की अनादिता सिद्ध होती है । आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार तन्त्र ई०पू० ५०० वर्षों से इस भारत में ही नहीं वरन् चीन तिब्बत थाई देश मङ्गोलिया काम्बोज आदि देशों में प्रचलित रहा । तिब्बत

में तन्त्र को ऋगयुद् कहा जाता है । इनमें कुछ भारतीय तन्त्रग्रन्थों के अनुवाद हैं और कुछ वहाँ की मूल रचनायें हैं । इस प्रकार ई०पू० ५०० वर्षों से लेकर तेरहवीं शती तक तन्त्र का प्रचार प्रसार जोरों पर था । मध्य में इसकी उपेक्षा होती रही किन्तु गत शताब्दी से इसके पुनर्जागरण काल का प्रारम्भ हो गया । सरजान उडरफ, आर्थर एवलन, तूनगन्द्रियान आदि वैदेशिक विद्वानों के साथ महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री, प्रबोधचन्द्र बागची, भास्करराय, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, मधुसूदन कौल, पं० नीलकण्ठ गुर्टू, बलाजिन्नाथ, पं० रामेश्वर झा, पं०व्रजवल्लभ द्विवेदी आदि ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया ।

पहले यह कहा जा चुका है कि भारत में अनेक तन्त्र सम्प्रदाय प्रचलित थे । उनमें शैव और शाक्त दो सम्प्रदाय सर्वोत्कृष्ट हैं । शैव सम्प्रदाय में द्वैत द्वैताद्वैत और अद्वैत भेद से तीन धाराओं का विकास हुआ । इनमें दश शिवागम द्वैतवादी, अष्टादश रुद्रागम द्वैताद्वैतवादी तथा चौंसठ भैरवागम अद्वैतवादी हैं । यह अवश्य ध्यातव्य है कि भगवान् शिव ने अनेक भिन्न-भिन्न रूप धारण कर भिन्न-भिन्न आगमों का उपदेश दिया । निम्नलिखित तालिका उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है—

दश शिवागम

शिवनाम	आगमनाम
१. प्रणव	कामिक
२. सुधा	योगज
३. दीप्त	चिन्त्य
४. कारण	कारण
५. सदाशिव	अजितागम
६. ईश	सुदीप्त
७. सूक्ष्म	सूक्ष्म
८. काल	सहस्र
९. धनेश	सुप्रभेद (मुकुट)
१०. अंशु	अंशुमान

अष्टादश रुद्रागम

रौद्रआगमनाम—१. विजय, २. निःश्वास, ३. पारमेश्वर, ४. प्रोद्गीत, ५. मुखबिम्ब, ६. सिद्धमत, ७. सन्तान, ८. नारसिंह, ९. चन्द्रांशु (चन्द्रहास), १०. वीरभद्र, ११. स्वायम्भुव, १२. विरज, १३. कौरव्य, १४. माकुट (मुकुट), १५. किरण, १६. ललित, १७. आग्नेय, १८. वातुल ।

चौंसठ भैरवागमों का विभाजन अष्टकों में हुआ । एक-एक अष्टक में आठ-आठ आगमों के नाम हैं । इस प्रकार इनकी संख्या चौंसठ हो जाती है । अष्टकों के नाम निम्नलिखित हैं—१. भैरवाष्टक, २. यामलाष्टक, ३. मताष्टक, ४. मङ्गलाष्टक, ५. चक्राष्टक, ६. बहुरूपाष्टक, ७. वागीशाष्टक और ८. शिखांष्टक ।

इन चौंसठ तन्त्रों का उपदेश दुर्वासा ने श्रीकृष्ण को दिया था । ये चौंसठ तन्त्र किसी न किसी रूप में कुल मार्ग के प्रतिपादक हैं । ये तन्त्र अवैदिक हैं अतः इनका अनुसरण करने का अधिकार केवल शूद्र वर्ण को है ।

वैदिक मार्ग के लिये शुभागम पञ्चक का प्रवर्तन हुआ । ये हैं—सनक सनन्दन सनत्कुमार वशिष्ठ और शुक द्वारा प्रवर्त्तित मार्ग । इनकी अपनी-अपनी संहितायें हैं ।

तन्त्र सिद्धान्त के अनुसार सर्वोच्च तत्त्व प्रकाश-विमर्शमय है । प्रकाश उसका अपना स्वरूप है और विमर्श उसका स्वभाव । यही शिव-शक्ति के रूप में प्रसिद्ध है । शिव प्रकाश है, ज्ञान है । शक्ति विमर्श है, क्रिया है । जब ज्ञान की प्रधानता होती है और क्रिया गौड हो जाती है तब शैव तन्त्र का आविर्भाव होता है । जब क्रिया की प्रधानता होती है और ज्ञान गौड़ हो जाता है तब शाक्ततन्त्र का स्फुरण होता है । ज्ञान का प्राधान्य और क्रिया की गौड़ता परमशिव की विश्वोत्तीर्ण अवस्था है । ज्ञान की गौंडता और क्रिया की प्रधानता उसी शिव की विश्वमय अवस्था है । दोनों अवस्थायें साथ-साथ चलती हैं ।

पूरुषसूक्त का 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' मन्त्र उसकी विश्वमय अवस्था का वाचक है और '........त्रिपादस्यामृतं दिवि' विश्वोत्तीर्ण अवस्था का । परमशिव की ये दोनों अवस्थायें अनादि हैं, नित्य हैं । शैव और शाक्ततन्त्र इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त करने के साधन हैं ।

विश्वसृष्टि के मूल में परा अथवा सर्वोच्च सत्ता का अस्तित्व सर्वत्र स्वीकृत है। 'जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः' (न्या०सि०मु०) कहकर अति स्थूलवादी नैयायिकों ने काल को विश्व का जनक माना है । यह वचन खण्डकाल को दृष्टि में रखकर कहा गया है । इसके ऊपर महाकाल की सत्ता है। वही सर्वोच्च सत्ता है । उसके अनेक नाम और अनेक रूप हैं । ऐसा होने पर भी वह अलिङ्ग और अरूप है । साथ ही वह जड़ नहीं चेतन है । चेतन होने के साथ वह स्व-तन्त्र अर्थात् अपने अधीन है । वह सबकी नियामक है किन्तु उसका नियामक कोई नहीं हैं ।

अपने स्वातन्त्र्य के कारण जब वह स्वयं को स्त्री रूप में प्रकट करना

चाहती है तब उसे 'महाकाली' कहते हैं। इस महाकाली के दो रूप हैं—(१) कृष्णा और (२) सुन्दरी।

कालिका द्विविधा प्रोक्ता कृष्णरक्तप्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा ज्ञेया रक्ता तु सुन्दरी मता॥ (म०नि०तं०)

इसी आधार पर शाक्त उपासना के दो कुलों अथवा सम्प्रदायों का प्रचलन हुआ। एक का नाम है कालीकुल और दूसरे का श्रीकुल। कालीकुल में दश महाविद्याओं की साधना की चर्चा है। ये महाविद्यायें हैं—१. काली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. भैरवी, ६. छिन्नमस्ता, ७. धूमावती, ८. बगला, ९. मातङ्गी और १०. कमला। इनमें से षोडशी का नाम श्रीविद्या है। इसके बगला, कुमारी, कामेश्वरी, त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, महात्रिपुरसुन्दरी, ललिता, राजराजेश्वरी आदि अनेक नाम हैं। गन्धर्वतन्त्र त्रिपुरसुन्दरी से सम्बद्ध है अतः इस देवी के सम्बन्ध में किञ्चिद् वक्तव्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

विश्व के आदि पुरुष परमशिव एक ही साथ विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय दोनों हैं—यह पहले कहा जा चुका है। स्वस्वातन्त्र्यवश लीलाकैवल्यन्यायेन जब ये अपने को विश्वमयरूप में स्फारित करना चाहते हैं तब उनका एक रूप 'महाकाल' का होता है। उस समय उनकी शक्ति उन्हीं की इच्छा से उनसे पृथक् 'महाकाली' का रूप धारण करती हैं। विश्व की रचना या कलना इसी रूप का कार्य है। इसी प्रकार उनके 'अक्षोभ्य' रूप धारण करने पर उनकी वही शक्ति 'तारा' नाम से काम करती है। शिव जब अपने स्वातन्त्र्य से 'पञ्चवक्त्र' रूप धारण करते हैं तो स्वभावतः उनके दश हाथ होते हैं। प्रत्येक हाथ में मुद्रा और शस्त्र होते हैं। उनके एक-एक मुख से एक-एक सम्प्रदाय का आविर्भाव होता है। इनके नाम पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और ऊर्ध्व आम्नाय होते हैं। ऊर्ध्व आम्नाय ही कौलमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। यह सर्वोत्कृष्ट सम्प्रदाय है।

वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद् वामं तु दक्षिणम्।
दक्षिणात् परतः कौलं कौलात् परतरं नहि॥
(वि०भै०टी०)

तथा—

वेदाच्छैवं ततो वामं ततो दक्षं ततस्त्रिकम्।
त्रिकात् परतरं कौलं कौलात् परतरं नहि॥
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद् दक्षिणमुत्तमम्॥
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरं नहि॥ (कु०तं०)

इत्यादि वचन कौलमार्ग की सर्वोत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हैं ।

कौलमार्ग में भी दो सम्प्रदाय हैं—पूर्वकौल और उत्तरकौल । पूर्वकौल के मत में शिव और शक्ति में अङ्गाङ्गीभाव रूप सम्बन्ध है । शक्ति अङ्ग अर्थात् गौड है और शिव अङ्गी अर्थात् प्रधान । उत्तरकौल इस भाव को नहीं मानते । वे शक्ति को ही प्रधान एवं एकमात्र चरम सत्य स्वीकार करते हैं । इसके लिये वे तर्क देते हैं कि शिव का तत्त्व के रूप में परिणाम होता है किन्तु शक्ति का नहीं । अतः शक्ति अपरिणामी सर्वोच्च सत्ता है । पूर्वकौल पञ्चमकार (मांस मद्य मत्स्य मुद्रा मैथुन) का अनुकल्प सेवन करते हैं किन्तु उत्तरकौल मांस आदि का मूलरूप में प्रयोग करते हैं । कौल साधना की उपास्य देवी षोडशी है ।

षोडशी या श्रीविद्या के तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म और पर । पहला रूप करचरण आदि अङ्गों वाला है । यह साधक के चाक्षुष एवं त्वाच प्रत्यक्ष का विषय होता है । दूसरा सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक होता है । इसमें मन्त्र के अर्थ में देवता का स्वरूप निहित रहता है । इसका प्रत्यक्ष उच्च कोटि के साधकों को श्रवणेन्द्रिय द्वारा ध्वनि के रूप में तथा वागिन्दिय द्वारा मन्त्रोच्चार के रूप में होता है । इसमें श्रीविद्या के साथ अभेदात्मक स्थिति को प्राप्त गुरु के साथ शिष्य अभेद भावना करता है । इस क्रम से शिष्य एवं श्रीविद्या के बीच अभेद-भावनात्मक सम्बन्ध बन जाता है ।

श्रीविद्या + गुरु + शिष्य

यह स्थिति उच्चतम साधकों के वश की होती है ।

श्रीविद्या के उपासकों की संख्या बारह है—

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ।
अगस्तिरग्निःसूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी ह्युपासकाः ॥

प्राचीन काल में इन बारहों के द्वारा बारह सम्प्रदाय प्रवर्त्तित थे । वर्त्तमान में केवल लोपामुद्रा एवं मन्मथ सम्प्रदाय ही प्रचलित हैं । इन दोनों के मत हादिमत तथा कादिमत के नाम से जाने जाते हैं । सम्प्रति कादिमत का प्रचार अधिक है। इनके हादि और कादि नाम पड़ने का कारण यह है कि त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के दो रूप हैं—१. कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलहीं । २. ह्सक्हलह्रीं कएईलह्रीं सकलहीं । पहला मन्त्र 'क' से शुरू होने के कारण कादि विद्या कहलाता है । दूसरा 'ह' से शुद्ध होने के कारण हादि विद्या के नाम से जाना जाता है । हादि विद्या कामेश्वरपरक है और कादि विद्या कामेश्वरी परक । हादि विद्या को शिवादि विद्या कहा जाता है । लोपामुद्रा की उपास्या विद्या यही रही ।

क्रोधभट्टारक या दुर्वासा को श्रीविद्या का प्रथम आचार्य एवं उपासक माना जाता है । इस मान्यता के पोषक जयद्रथयामल तथा नेपाल दरबार ग्रन्थालय में सुरक्षित महिम्नस्तोत्र की टीका है । इसके अतिरिक्त ललितास्तवरत्न आदि अनेक ग्रन्थों में इसकी चर्चा मिलती है ।

महर्षि अगस्त्य का नाम श्रीविद्या के उपासकों में आदर के साथ लिया जाता है । यह विदर्भनरेश की पुत्री लोपामुद्रा के पति थे तथा लोपामुद्रा ने अगस्त्य को त्रिपुरामन्त्र का उपदेश दिया था । लोपामुद्रा ने श्रीविद्या का उपदेश अपने पिता से प्राप्त किया था जो भगमालिनी के आराधक थे ।

श्रीदत्तात्रेय का नाम श्रीविद्या के उपासकों में आदर के साथ लिया जाता है । दुर्वासा एवं चन्द्रमा के अतिरिक्त ये तीसरे पुत्र थे जिन्होंने महासती अनसूया के पुत्र के रूप में जन्म लिया था । इन्होंने 'दत्तसंहिता' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । यह ग्रन्थ त्रिपुरसुन्दरी की उपासना से सम्बद्ध था ।

आचार्य शङ्कर यद्यपि चतुष्पीठ संस्थापक तथा अद्वैत वेदान्त के धुरीण प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं तथापि वे त्रिपुरसुन्दरी के परम उपासक थे । जनश्रुति के अनुसार इनके पिता देवी की आराधना किया करते थे । एक बार वे किसी कार्य से बाहर गये और उपासना का दायित्व पत्नी को सौंप दिया । एक दिन रजस्वला होने के कारण जब वह भी देवी की पूजा के लिये अनधिकृत हो गयी तो उसने पञ्चवर्षीय बालक शङ्कर को पूजा के लिये मन्दिर भेजा । पूजा के बाद बालक ने देवी से नैवेद्य के रूप में दूध पीने का आग्रह किया । प्रतिमा के दूध न पीने पर शङ्कर रोने लगे । पुत्र की भावविह्वला से करुणार्द्र होकर 'माँ' ने प्रकट होकर सारा दूध पी लिया । एक क्षण के लिये शङ्कर प्रसन्न हुए किन्तु फिर रोने लगे । 'माँ' ने पूछा—अब क्या हुआ? क्यो रो रहा है? बालक शङ्कर ने कहा—'पिताजी के लिये प्रसाद छोड़ा करती थी और आज सब दूध पी गयी। मेरे लिये प्रसाद भी नहीं छोड़ा ।' बालक की निष्कलुष ममता देख 'माँ' ने अपना स्तन बालक के आगे बढ़ा दिया और कहा 'ले तू मेरा दूध पी ले' और इस प्रकार देवी की शङ्कर के ऊपर कृपा हुई और शङ्कर देवी के प्रति निष्ठावान् हुए । उनके द्वारा रचित 'सौन्दर्यलहरी' नामक ग्रन्थ से इस तथ्य की पुष्टि होती है । इनके गुरु श्रीगोविन्दपाद और परमगुरु श्रीगौड़पाद शाक्तोपासक थे इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

शङ्कराचार्य के बाद त्रिपुरसुन्दरी के विषय में ग्रन्थ-रचनाकारों की श्रृङ्खला में अनेक नामों का सन्निवेश मिलता है । विद्यानन्दनाथ, चिदानन्द, दीपकनाथ, अमृतानन्दनाथ, पुण्यानन्दनाथ, शिवानन्द, गङ्गाधरमिश्र, श्रीवत्स, विरूपाक्ष, नटनानन्दनाथ, सिद्धनाथपाद, श्रीनाथपाद, लक्ष्मीधर, महेश्वरानन्द, जयरथ इत्यादि

के नाम आदरपूर्वक गृहीत होते हैं ।

इसी कड़ी में श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) का नाम अत्यन्त आदरणीय और अविस्मरणीय है । त्रिपुरसुन्दरी के उपासक भास्करराय षोढान्यास के सिद्ध पुरुष थे । भगवती ललिता की उनके ऊपर असीमकृपा थी । इसका प्रमाण उनके जीवन में घटित घटनायें हैं । भास्करराय षोढान्यास में सिद्ध होने के कारण न्यास के नियमानुसार किसी को प्रणाम नहीं करते थे । १. एक संन्यासी को यह अच्छा नहीं लगता । एक दिन संन्यासी से इनकी भेंट हुई और संन्यासी ने अपना क्षोभ इनके सामने प्रकट कर दिया । भास्करराय ने कहा कि 'यदि हम आपको प्रणाम करेंगे तो आपका देहान्त हो जायेगा ।' संन्यासी को विश्वास नहीं हुआ । भास्करराय के निवेदन पर उन संन्यासी ने अपना दण्ड-कमण्डलु भूमि पर रखा और भास्करराय ने ज्यों ही प्रणाम किया दण्ड और कमण्डलु के खण्ड-खण्ड हो गये । २. इसी प्रकार नारायण भट्ट के साथ हुए शास्त्रार्थ में भगवती त्रिपुरा भास्करराय के कन्धे पर आरूढ होकर नारायणभट्ट के प्रश्नों का उत्तर देती रही और भास्करराय विजयी होते रहे । एक संन्यासी की कृपा से नारायण भट्ट को भी भास्करराय के कन्धे पर आरूढ भगवती त्रिपुरसुन्दरी का दर्शन हुआ ।

पहले कहा जा चुका है कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अनेक नाम हैं । संक्षेप में उनमें से कतिपय नामों का स्वारस्य यहाँ उल्लिखित है—

त्रिपुरा (त्रिपुरसुन्दरी)—

(क) भूर्भुवः स्वः तीनों ब्रह्मपुरों की उद्गमस्थली होने के कारण इनका नाम त्रिपुरा है ।

(ख) इडा पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ त्रिपुर हैं । आद्या शक्ति इन तीनों में निवास करती है । अतः इसे त्रिपुरा कहा जाता है ।

(ग) ब्रह्मा विष्णु और रुद्र की जननी होने से यह त्रिपुरा है ।

(घ) ऋग्यजुःसाममयी होने से इसका नाम त्रिपुरा है ।

(ङ) इच्छा ज्ञान क्रिया नामक तीन शक्तियों का समवेत रूप होने से यह त्रिपुरा कही जाती है ।

(च) धर्म अर्थ काम को इसी जन्म में उपलब्ध कराने वाली होने से यह त्रिपुरा है । अतिशय सुन्दर होने से यह सुन्दरी है ।

कुमारी (बाला)—इन्द्र आदि देवताओं का गर्व नष्ट करने के लिये इसने कुमारी रूप धारण किया अतः इसे कुमारी या बाला कहा जाता है ।

ललिता—भण्डासुर ने शिव जी से अभय वर प्राप्त कर तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया । इससे इन्द्राणी भयाक्रान्त हो गयी और गौरी की शरण में गयी । जब भण्डासुर इन्द्राणी को लेने की इच्छा से गौरी के पास गया तब देवताओं ने हिमालय में त्रिपुरा देवी के उद्देश्य से यज्ञ का प्रारम्भ किया । त्रिपुराम्बा ने प्रसन्न होकर युद्ध किया और महाकामेश्वर अस्त्र से सपरिवार भण्डासुर का वध कर डाला । महाकामेश्वर नामक ललित अस्त्र का प्रयोग करने से इनका नाम 'ललिता' पड़ा । इसी प्रकार भारती गौरी राजराजेश्वरी आदि नामों के पीछे भी कोई न कोई हेतु निहित है ।

* * *

२. विषयवस्तु

प्रथम पटल—गन्धर्वतन्त्र का प्रारम्भ मङ्गलाचरण के पश्चात् गाधिसुवन विश्वामित्र एवं अत्रिमुनि के पुत्र दत्तात्रेय के प्रश्नोत्तर से प्रारम्भ होता है । यज्ञ आदि के अनुष्ठान के बाद भी संसार से मुक्ति प्राप्त करने की सम्भावना न होने के कारण खिन्नमना विश्वामित्र से दत्तात्रेय ने कहा कि मैं आपको नन्दिकेश्वर से प्राप्त उस गन्धर्वतन्त्र का वर्णन सुनाऊँगा जिसे पार्वती ने शिव से सुना था । शिव ने कहा—मैंने जिस तन्त्र को पहले बतलाया वह तामस, राजस और सात्त्विक तीन प्रकार का है । तामस से नरक राजस से स्वर्ग और सात्त्विक तन्त्र से मोक्ष प्राप्त होता है । एक चतुर्थ तन्त्र भी होता है जो निष्फल होता है ।

इस तन्त्र की परम्परा—शिव ने कहा—सबसे पहले कृष्ण ने मुझसे प्राप्त किया । कृष्ण ने ब्रह्मा को बतलाया । मैंने इसे नन्दी को उपदिष्ट किया । फिर मैंने इसे पुष्पदन्त नामक गन्धर्व को दिया । इस प्रकार यह तन्त्र गन्धर्वों में फैल गया । ब्रह्मा से मुनियों ने प्राप्त किया । बृहस्पति से इन्द्र और शुक्राचार्य से दैत्यराज विरोचन को मिला । पुलस्त्य से उनके वंशजों ने प्राप्त किया । इस प्रकार यह तन्त्र पृथिवीतल पर आ गया ।

स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब नमुचि आदि दैत्यों से देवगण त्रस्त हो गये तब वे पितामह के पास रक्षार्थ गये । ब्रह्मा शिव के पास गये और स्तुति किये । भगवान् शिव निर्जन वन में प्रविष्ट होकर राक्षसों को मतिभ्रान्त करने के लिये ऐसे शास्त्रों की रचना की जिनको सुनने मात्र से राक्षस पतित हो गये । न्याय वैशेषिक सांख्य चार्वाक बौद्ध मीमांसा आदि शास्त्रों का मैंने ही तत्तद् रूपों से प्रवर्त्तन किया । परिणामस्वरूप यज्ञ याग आदि बन्द हो गये और देवता लोग निर्बल निस्तेज हो गये। उनके विष्णु लोक जाकर प्रार्थना करने पर विष्णु शिव के पास गये । उनके द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् शिव अपशास्त्र की रचना से विरत हो गये और शिवरचित उन तन्त्रों के पाठक एवं अनुयायी विष्णु की माया से मूढ़ होकर लक्ष्यच्युत हो गये ।

द्वितीय पटल—द्वितीय पटल में शक्ति अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की चर्चा की गयी है । चूँकि यह ब्रह्मा विष्णु और रुद्र नामक तीन देवताओं की नियामिका है अतः इसे त्रिपुरा कहा जाता है । आराधक के समक्ष धर्म अर्थ काम नामक तीन पुरुषार्थों को उपस्थापित करने के कारण भी इसे त्रिपुरा कहा जाता है । अत्यन्त

सुन्दरी होने से इसका नाम त्रिपुरसुन्दरी है । त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र के उद्धारक्रम में पहले वाग्भव कूट को बतलाया गया है—कएईलह्रीं । इसके जप से मनुष्य वागीश होकर सब कुछ प्राप्त कर लेता है । दूसरा कूट कामराज का है । इसका स्वरूप है—हसकहलह्रीं । तीसरा कूट शक्ति का है—सकलह्रीं । इस प्रकार तीनों कूटों के पन्द्रह अक्षरों को एक साथ रखने पर यह पञ्चदशी विद्या कही जाती है । इसी में पहले 'ह्रीं' जोड़ने पर यह षोडशी विद्या कहलाती है । वाग्भव कूट में से 'ए' 'ई' को हटाकर 'ह स' जोड़ने पर शेष दो कूटों के साथ यह लोपामुद्रा विद्या हो जाती है । वाग्भव कूट के स्थान पर कएकलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलकर शाम्भवी विद्या होती है । इसी प्रकार क ए के बदले स ह कहकर कलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलाकर शाक्ती विद्या बनती है । पञ्चदशाक्षरी विद्या में श्रीं ह्रीं जोड़ने पर यह सप्तदशाक्षरी विद्या होती है । सबसे उत्तम राजराजेश्वरी विद्या है । यह सोलह कूटों वाली है । इसका स्वरूप इस प्रकार है—१. श्रीं, २. ह्रीं, ३. क्लीं, ४. ऐं, ५. सौः, ६. ओं, ७. ह्रीं, ८. श्रीं, ९. कएईलह्रीं, १०. हसकहलह्रीं, ११. सकलह्रीं, १२. सौः, १३. ऐं, १४. क्लीं, १५. ह्रीं १६. श्रीं । इस प्रकार यह सोलह कूटों वाली विद्या है ।

तृतीय पटल—इसमें पञ्चमी विद्या का वर्णन है । पृथिवी आदि पाँच तत्त्व पञ्चदेवात्मक हैं । ये तत्त्व पाँच देवों की शक्तियाँ हैं । उन्हें इस प्रकार जानना चाहिये ।

तत्त्व	शक्ति
पृथिवी	ब्रह्माणी
जल	वैष्णवी
तेज	रौद्री
वायु	ईश्वरी
आकाश	माहेश्वरी

पृथिवी से लेकर प्रकृति तत्त्व तक पाँच कूट हैं । इन कूटों की पाँच देवतायें—कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमाला, त्रिपुरसुन्दरी और परा हैं । पाँचवी शक्ति परा परब्रह्म स्वरूपिणी है । इस पराशक्ति की उपासना के लिये साधक को समयाचार का पालक ज्ञानविशुद्धात्मा गुरुभक्त जितेन्द्रिय एवं गन्धर्वरूपवान् होना चाहिये । जो इस पञ्च कूटात्मिका महाविद्या को जानता है वह खेचर होता हुआ भोग के साथ मोक्ष प्राप्त करता है । पञ्चमी विद्या का स्वरूप इस प्रकार है—कएईलह्रीं हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं हकलसह्रीं । यह विद्या भोगमोक्षप्रदा है ।

इसी प्रकार महासौभाग्यसुन्दरी विद्या है । यह तीन कूटों वाली है । पहला सौभाग्य कूट दूसरा उक्त तीनों कूट और तीसरा कामबीज होता है । इसी विद्या के मध्य कूट का मध्यम कूट स्वप्नावती विद्या होती है । इस पञ्चमी विद्या के जप के साथ देवी की कौलमार्गी पूजा करने का बहुत अधिक फल होता है । स्वप्नावती विद्या का जप करने से सद्यः आकर्षण होता है । इसी प्रकार एकादशी विद्या के जप से भी महाफल का लाभ होता है । इस विद्या का स्वरूप है— कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं ।

चतुर्थ पटल—इस पटल में त्रैलोक्यमोहन कवच का वर्णन है । यह राजराजेश्वरी देवी का कवच है । इससे चारो पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं । यहाँ अट्ठाईस वर्णों वाली विद्या की चर्चा है—ऐं क्लीं सौः हस्रैं हसकलरीं हस्रौः षोडशी राजराजेश्वरी विद्या श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः । इसके पश्चात् तत्तत् अङ्ग आदि में रक्षण की चर्चा है । यह त्रैलोक्यमोहन कवच कहीं भी दुर्लभ है । यह अत्यन्त गोपनीय है । इसे परशिष्य कृपण भक्तिहीन चुम्बक, परहिंसारत दम्भ कुशील को और यहाँ तक कि भक्तिरहित स्वपुत्र को भी नहीं बतलाना चाहिये । जो गुरु ऐसे व्यक्ति को बतलाता है उसकी आयु तथा कीर्त्ति नष्ट हो जाती है और शिव की आज्ञा से योगिनियाँ उसे मार डालती हैं ।

इस कवच की धारणा करने के बाद श्रीचक्र में देवी की पूजा करनी चाहिये । यह पूजा शक्ति के साथ की जाती है अकेले नहीं । शिवरूप में अपना ध्यान कर देवी का ध्यान करना चाहिये तथा शक्ति एवं शिव में अद्वैत भाव के साथ साधना करनी चाहिये । ऐसा करने वाला अष्टसिद्धियों का स्वामी बनकर त्रैलोक्य में विचरण करता है । इस पटल के अन्त में यन्त्र-रचना की विधि का वर्णन कर कवच को गोपनीय रखने का निर्देश दिया गया है ।

पञ्चम पटल—इस पटल में श्रीचक्र का वर्णन है । सच्चिदानन्दरूपिणी शक्ति जब अपनी इच्छा से अपने को विश्वरूप में व्यक्त करना चाहती है तब वह सर्वप्रथम बिन्दु के रूप में आविर्भूत होती हैं । चक्ररचना के क्रम में किसी धातु के चौकोर पत्र पर सबसे पहले बिन्दु बनाया जाता है । इसके पश्चात् चक्र के शेष भाग की रचना की जाती है । इस चक्र का स्वरूप निम्नलिखित श्लोक से जानना चाहिये—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

(सबसे पहले बिन्दु उसके बाहर शाक्त त्रिकोण फिर अष्टकोण फिर दो दशार

तत्पश्चात् चतुर्दशकोण उसके बाहर अष्टदल कमल फिर षोडशदल कमल उसके बाद तीन वृत्त और फिर तीन भुपूर बनाये जाते हैं ।)

त्रिपुर सुन्दरी के इस चक्र के बनने के बाद इसकी पूजा का वर्णन किया गया है । यह कहा गया कि तीन वृत्तों की पूजा नहीं करनी चाहिये । यह यन्त्र महात्रिपुरसुन्दरी का शरीर है । शरीर तीन प्रकार का होता है—भौतिक अर्थात् स्थूल, मनोमय अर्थात् सूक्ष्म और पर अर्थात् ज्ञानमय । यह यन्त्र भगवती का मनोमय शरीर है । इस यन्त्र में शिव की गोद में बैठी हुई त्रिपुरा का ध्यान आवाहन पूजन आदि करना चाहिये । इसके बाद अन्य अङ्ग देव-देवियों की पूजा तत्तत् स्थानों में करने के बाद आवरण-पूजा करने का विधान है । इसके पश्चात् काम्यप्रयोग का वर्णन है जो सोलह दिनों का अनुष्ठान होता है । चक्र में ब्रह्मा विष्णु शिव की रेखाओं में स्थित देवताओं का वर्णन करने के बाद सर्वाशापरिपूरक आदि चक्रों तथा तत्रस्थ देव-देवियों का वर्णन कर चक्र में स्थित कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर एवं ओड्यान पीठों की चर्चा के साथ यह कहा गया है कि सृष्टिक्रम स्थितिक्रम एवं संहारक्रम से इनकी पूजा महागुह्य है । साधक के द्वारा सहस्रार में की जाने वाली पूजा सर्वोत्तम होती है । द्वितीय कोटि की पूजा शिव एवं कृष्ण के द्वारा सर्वदा की जाती है ।

षष्ठ पटल—इस पटल में सर्वप्रथम 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के नियम के अनुसार अशुद्ध शरीर को कर्मयोग द्वारा देव शरीर बनाने की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले गुरु का ध्यान करने की बात कही गयी है कि वे सहस्रदल कमल के ऊपर विराजमान हैं । श्वेत वस्त्र से विभूषित वे वरद एवं अभय मुद्रा से युक्त हैं । ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें, हसक्षमलवरयूं, हसखफ्रें, हसक्षमवरलईं ह्सौः स्ह्रौः आनन्दनाथपादुकां पूजयामि मन्त्र से गुरु की तथा आनन्दनाथ के बदले अम्बा कहकर गुरुपत्नी की पूजा करनी चाहिये । विधिपूर्वक गुरुपूजा के बाद गन्धर्वतन्त्र के प्रस्तुत पटल में वर्णित १९-२५ तक के सात श्लोकों के द्वारा गुरु की स्तुति करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् इस पटल में योग का वर्णन है । कुण्डली जागरण ही योग का प्रारम्भ है । इसी के बाद मन्त्रसिद्धि होती है और फिर योगाभ्यास से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है । मूलाधार में स्थित जीव का सहस्रारस्थ परमात्मा से ऐक्य ही योग है । इसके लिये यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि नामक आठ योगाङ्गों का अभ्यास करना पड़ता है । आगे चलकर इन अष्टाङ्गों का विस्तार से वर्णन करते हुये समाधि की अत्यन्त विस्तार के साथ चर्चा की गयी है । जिस प्रकार घटाकाश और महाकाश का भेद भ्रान्त है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का भेद भी भ्रम है । दोनों के ऐक्य की संवित् की

उत्पत्ति का नाम समाधि है । इसी विज्ञान से मुक्ति सम्भव है । इसके अनन्तर शरीरस्थ नाड़ी एवं षट्चक्र की चर्चा की गयी है । शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाडियाँ हैं उनमें दश मुख्य हैं । दश में भी इडा पिङ्गला सुषुम्ना प्रधान हैं । तीनों में सुषुम्ना सर्वप्रधान है । यह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक मेरुदण्ड के मध्य से होकर जाती है । मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग है । यह ब्रह्मा के द्वारा अधिष्ठित है। उसके ऊपर स्वाधिष्ठान और उसके ऊपर मणिपूरचक्र है । यहाँ बीच में बाणलिङ्ग है । उसके ऊपर अनाहत चक्र है । इसके अधिष्ठातृ पुरुष रुद्र हैं । उसके ऊपर विशुद्ध चक्र है । उसके ऊपर आज्ञा चक्र में आत्मा रहता है । आज्ञा के ऊपर गुरुचक्र है । उसके ऊपर कैलास ओर उसके ऊपर बोधिनी है । अन्त में सहस्रदल कमल है ।

अन्त में एक दूसरे प्रकार की समाधि का वर्णन कर पटल की समाप्ति की गयी है ।

सप्तम पटल—सप्तम पटल में नित्यकर्म की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले स्नान एवं सन्ध्या का वर्णन है । स्नान तीन प्रकार का होता है—मानसस्नान, बाह्यस्नान और आन्तरस्नान । जो साधक सदा शुद्ध मन वाला है अत एव देवी की पादुका का स्पर्श कर निरन्तर निर्विकल्प भाव में रहता है उसकी यह स्थिति मानसस्नान कही जाती है । बाह्यस्नान में शरीर को मन्त्र से अभिषिक्त करते हैं । आन्तरस्नान वह होता है जिसमें साधक प्राणायाम के साथ शक्ति को परशिव के साथ सङ्गमित कराकर उसके द्वारा उत्पन्न अमृत में निरन्तर स्नान करता रहता है । हृदय-कमल नामक पुष्कर तीर्थ में किया जाने वाला स्नान भी आन्तर स्नान होता है । इसी प्रकार सन्ध्या भी तीन प्रकार की होती है। ध्यानयुक्त होकर सदा अपने को इष्टदेव से अभिन्न समझना मानसी सन्ध्या कहलाती है । एक सन्ध्या कौलिकी होती है जिसमें बाह्यकाल की अपेक्षा नहीं होती । जिस काल में शिव और शक्ति का संयोग होता है वह कौलमार्गी जनों की सन्ध्या कही जाती है । बाह्यसन्ध्या सर्वजन प्रसिद्ध है ।

शूद्र आदि के मोक्षोपाय के विषय में कहा गया है कि त्रिपुरागायत्री की उपासना से पतित, नारी, शूद्र, व्रात्य आदि भी ब्राह्मण हो जाते हैं । त्रिपुरा गायत्री का मन्त्र है—त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् । तदनन्तर तीन प्रकार के तर्पण की चर्चा की गयी है । आन्तर, मानस एवं बाह्य तर्पण के स्वरूप-निर्वचन के पश्चात् सूर्यार्घ्य मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । मन्त्र है—ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं नमो नमः ।

अष्टम पटल—अष्टम पटल की विषयवस्तु यागभूमि भूतशुद्धि आदि है । जो भूमि केश कीट आदि से रहित, स्निग्ध हो, ऊभड़ खाभड़ न हो, अति नीच

अति उच्च न हो वह याग के योग्य होती है। साथ ही उसे धूल कीचड़ से युक्त, प्राणियों से सङ्कुल, वृक्ष आदि से व्याप्त ऊसर एवं खेती वाली नहीं होना चाहिये। उसके पास जलाशय तथा पुष्प उद्यान होना चाहिये। ऐसी यागभूमि के बाहर देवताओं का पूजन एवं प्रणाम कर साधक अन्दर प्रवेश करे। 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृत्सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा' इस मन्त्र से भूतशुद्धि करने के बाद 'ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट्' से मण्डप के अन्दर अक्षत फेंक कर 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से वेदी पर पूजा करनी चाहिये। उसके बाद साधक बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर मण्डप में प्रवेश करे और विघ्नों का उत्सारण करे। वर्मबीज 'हुम्' से यज्ञभूमि को देखकर अस्त्र मन्त्र 'अस्त्राय फट्' से प्रोक्षण करना चाहिये। अवलोकन और स्पर्शन से उस भूमि के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। पृथिवीगत दोष को दूर करने के लिये वहाँ 'क्लीम्' लिखना चाहिये। याग के लिये उपयोगी द्रव्यों को तब तक ढँककर रखना चाहिये जब तक देवी का आवाहन और स्थापन न हो जाय।

आसन के विषय में कहा गया है कि यह न अति उच्च और न अति नीच होना चाहिये। आसन और अर्घ्यपात्र टूटा-फूटा नहीं होना चाहिये। विभिन्न प्रकार की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के आसन प्रयोग में लाने का विधान है। दो हाथ से अधिक लम्बा डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा और तीन अङ्गुल से अधिक ऊँचा आसन वर्जित है। 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आसन की पूजा कर उस पर पद्म या स्वस्तिक या गोमुख आदि किसी भी विहित आसन से बैठना चाहिये। सुष्टु अलंकृत होकर मुख में ताम्बूल लेकर साधक तत्तद् दिशाओं में गुरु गणेश दुर्गा आदि की पूजा करे। गोरोचन आदि के मिश्रण से श्रीचक्र की रचना कर उसके सामने पाद्य अर्घ्य आदि रखे। कलश रखकर अग्नि की कलाओं के साथ उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् सूर्य कलश को रखकर उसकी भी उसकी कलाओं के साथ पूजा कर आनन्दभैरव की भैरवी के साथ पूजा करनी चाहिये।

इसके पश्चात् शरीर-शुद्धि की चर्चा की गयी है। इस क्रम में कहा गया है कि यं रं वं वर्णों से शरीर के शोष दाह और प्लावन की भावना करनी चाहिये। फिर तीन प्राणायाम कर योनिमुद्रा दिखानी चाहिये। तत्पश्चात् मन में सूर्य चन्द्र और अग्निमय तीन पुरों का ध्यान करे। उन्हें एक में मिला ध्यान कर उस बिन्दुस्वरूप तेज में एक क्षण डूबकर रक्तसमुद्र का ध्यान करना चाहिये। उस समुद्र में रक्त सिंहासन पर कोटिबालसूर्य के समान अरुणवर्णा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करने का विधान है। वह देवी चतुर्भुजा है। नीचे के दोनों हाथों में धनुष-बाण और ऊपर के दोनों हाथों में सृणि (= अङ्कुश) और पाश धारण की हुई है। त्रिनेत्रा उस देवी का अपने से अभिन्न रूप में चिन्तन करना चाहिये। ध्यान

का मन्त्र है—ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इसके बाद 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष' मन्त्र से हृदय का स्पर्श करते हुए रक्षा करनी चाहिये तथा ताली बजाकर दिग्बन्ध करना चाहिये ।

नवम पटल—इस पटल में करशुद्धि विद्या एवं न्यास का वर्णन है । न्यास के पहले करशुद्धिकरी मन्त्र का जप कर हाथों को मलना चाहिये । अं आं सौः यह मन्त्र है । इस मन्त्र को पढ़ते हुए दाँयें हाथ में रक्त फूल लेकर मले फिर उसे बायें हाथ में रखकर मलने के बाद कामबीज से पोंछ कर वाग्भवबीज से सूँघने के बाद शेष बीज (= आं) से उस पुष्प को ईशान दिशा में फेंक देना चाहिये । इस अनुष्ठान से हाथ एवं अङ्गुलियों की शुद्धि होती है । इसके बाद ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

ऋषि छन्द देवता के नाम के न्यास के बिना किया गया जप निष्फल होता है। इस करशुद्धिकरी विद्या के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द पंक्ति और देवता त्रिपुरसुन्दरी है । इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् अन्तर्मातृका न्यास के क्रम में कण्ठ हृदय नाभि लिङ्गमध्य मूलाधार भ्रूमध्य में न्यास किया जाता है । बहिर्मातृका न्यास का रूप अकार से लेकर क्षकार तक का है । उसका प्रारम्भ 'क्लीं अं नमः' इत्यादि से होता है । यह न्यास ललाट से लेकर दोनों पादतल तक किया जाता है । देवताओं ऋषियों और राक्षसों के सारे मन्त्र मातृकामन्त्र में सदा स्थित रहते हैं । यह त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र सर्वदेवमय सर्वमन्त्रमय है । यह चतुर्विध पुरुषार्थ को देने वाला है । मातृका से सम्पुटित मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल को जो पीता है वह वाग्मी पण्डित हो जाता है । इस अभिमन्त्रण में पहले स्वरों को बाद में व्यञ्जनों का उच्चारण होता है । कुम्भक पूरक रेचक प्राणायाम के साथ जल पीने से साधक समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है ।

दशम पटल—इस पटल में षोढान्यास का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशि एवं पीठ इन छह से किये जाने वाले न्यास को षोढा न्यास कहते हैं ।

गणेशन्यास—इसमें पचास गणेशों का उनकी शक्तियों के साथ न्यास किया जाता है । पचास वर्णों से एक-एक गणेश के शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने के विधि है । उदाहरण के लिये अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः से ललाट में, आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः से मुख में, इसी प्रकार अन्य अङ्गों में भी न्यास करना चाहिये ।

ग्रहन्यास—इसमें स्वरों के साथ 'सूर्याय नमः' कहकर हृदय में, प वर्ग से सोम का भ्रूमध्य में, कवर्ग से मङ्गल का दोनों नेत्रों में, चवर्ग से बुध का हृदय

में, टवर्ग से बृहस्पति का कण्ठ में, तवर्ग से शुक्र का ग्रीवा में, पवर्ग से शनि का नाभि में, शवर्ग से गुदा में राहु का और ळ क्ष से केतु का दोनों पैरों में न्यास किया जाता है । सभी वर्णों के साथ चन्द्रबिन्दु लगा रहता है ।

नक्षत्रन्यास—पचास वर्णों को अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों के साथ जोड़कर नक्षत्रों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करते हुए 'नमः' कहना पड़ता है । साथ ही शरीर के सत्ताईस अङ्गों का स्पर्श करना पड़ता है । इस क्रम में कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार अक्षरों का उच्चारण किया जाता है । उदाहरण के लिये—अं आं अश्विन्यै नमः इति ललाटे । इं भरण्यै नमः इति दक्षनेत्रे । ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः इति वामनेत्रे । ऋं ॠं ऌं ॡं इति दक्षकर्णे इत्यादि । इस क्रम से अन्त में क्षं हं अं अः रेवत्यै नमः इति वामपादे । यह नक्षत्रन्यास का क्रम है ।

योगिनीन्यास—योगिनियों की संख्या सात है । उनके नाम डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी शाकिनी और याकिनी है । इनके वर्ण स्वरूप अस्त्र और भोज्य पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं । इनके मन्त्र तथा मन्त्रों को पढ़कर न्यस्त होने वाले स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं । उदाहरण के लिये डाकिनी का वर्ण शुक्ल, एक मुख, तीन नेत्र, अस्त्र तलवार, पेय मद्य, भोज्य पदार्थ पायस, न्यस्य स्थान कण्ठ है । डाकिनी का मन्त्र इस प्रकार है । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः डाकिनि त्वग्धातुगते चतुष्षष्टिलक्षकोटि-योगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे । इसी प्रकार अन्य योगिनियों के भी विषय में जानना चाहिये । प्रत्येक योगिनी के मन्त्र में कुछ अक्षर और शब्द प्रकरणानुसार बदल दिये जाते हैं । जैसे राकिनी के मन्त्र में कण्ठस्थ तथा तालुस्थ स्वर ठं वर्ण रा रीं लमलवरयूं............मांसधातुगते षोडशलक्ष...........इत्यादि ।

पीठन्यास—पीठन्यास में पचास पीठों का शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने का वर्ण है । ये पीठ हैं—१. कामरूप, २. वाराणसी, ३. नेपाल, ४. पौण्ड्रवर्धन, ५. पुरस्थिर, ६. चरस्थिर, ७. पूर्णशैल, ८. अर्बुद, ९. काश्मीर, १०. कान्यकुब्ज, ११. आम्रातकेश्वर, १२. एकाम्र, १३. त्रिस्रोत, १४. कामकोट्ट, १५. कैलास, १६. भूतनगर, १७. केदार, १८. श्रीपीठ, १९. ओङ्कारेश्वर, २०. जालन्धर, २१. मालव, २२. कुलान्तक, २३. देवमातृक, २४. गोकर्ण, २५. मारुतेश्वर, २६. अट्टहास, २७. विरजा, २८. राजगृह, २९. कोल्लगिरि, ३०. एलापुर, ३१. कालेश्वर, ३२. प्रणव, ३३. जयन्तिका, ३४. उज्जयिनी, ३५. क्षीरिका, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उड्डीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्ठीश, ४०. मायापुर, ४१. जलेश्वर, ४२. मलय, ४३. श्रीशैल, ४४. मेरु,

४५. महेन्द्रगिरि, ४६. वामन, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मी, ४९. उड्डीयान और ५०. छायापुर।

इसके पश्चात् षोढान्यास के माहात्म्य का वर्णन है । षोढान्यास को न कर जो साधक त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है और नरक को जाता है । इस न्यास को करने वाला साक्षात् शिव हो जाता है । इस न्यास को करने वाले को चाहिये कि वह किसी भी व्यक्ति को प्रणाम न करे क्योंकि वह साधक जिस किसी व्यक्ति को प्रणाम करेगा वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा । साधक को चाहिये कि वह काम क्रोध लोभ अहङ्कार का त्याग करे । जो कुछ अन्न जल ग्रहण करे वह स्त्री के साथ । इस न्यास को दिन में तीन बार करना चाहिये । ऐसा साधक जहाँ रहता है वह क्षेत्र दिव्य हो जाता है । वह जहाँ-जहाँ जाता है त्रैलोक्य निवासी उसे अग्नि पर आरूढ देखते हैं । उसके पूर्ववर्त्ती सात जन्मों के पाप छह मास तक के अभ्यास से जल जाते हैं ।

एकादश पटल—इस पटल में आठ प्रकार के न्यासों के साथ प्राणायाम आदि की चर्चा है । न्यास शरीर के तत्तत् अङ्गों में सम्पन्न होते हैं । सर्वप्रथम आसन न्यास का वर्णन है जिसमें अमृतार्णवासन, पीताम्बुजासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्यासन, साध्यसिद्धासन, पर्यङ्कशक्तिपीठ एवं सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासन को बतलाया गया है । इन आसन न्यासों के मन्त्रों के उद्धार की भी चर्चा है । उसके पश्चात् वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं के न्यास का उद्धार-क्रम बतलाया गया है । इस क्रम में किन-किन अङ्गों में न्यास करना है इसका भी उल्लेख है ।

इसके बाद करन्यास एवं षडङ्गन्यास का वर्णन है । इस क्रम में मूलविद्या की दो आवृत्ति कर समस्त अङ्गुलितलों में स्वाहा वषट् वौषट् हुम् और फट् से न्यास करने के बाद हृदय शिर शिखा दोनों भुजा नेत्रत्रय और अस्त्र में नमः स्वाहा वषट् कवच और वौषट एवं फट् से न्यास करने का विधान बतलाया गया है । अन्त में यह भी कहा गया कि अङ्गन्यास से रहित पूजा होम आदि निष्फल होते हैं ।

चतुष्पीठ न्यास के सन्दर्भ में कामगिरि जालन्धर पूर्णगिरि और ओड्यान पीठों के न्यास को बतलाया गया है । उनके मन्त्रों का उद्धार बतलाने के साथ-साथ तत्तद् देवियों के नाम भी बतलाये गये हैं । कामगिरि की देवी कामेश्वरी, जालन्धर की वज्रेश्वरी, पूर्णगिरि की भगमालिनी और ओड्यान पीठ की देवी महात्रिपुरसुन्दरी है । इनके स्थान मूलाधार, हृदय, भ्रूमध्य अर्थात् आज्ञाचक्र एवं ब्रह्मरन्ध्र है ।

इसी क्रम में तत्त्वादिन्यास की चर्चा की गयी है जिसमें मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक पुनः ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक न्यास करना पड़ता है । इस न्यास के मन्त्र का उद्धार-क्रम बतलाये हुए न्यास स्थानों का भी वर्णन किया गया है । इस प्रकार न्यास करने से साधक का शरीर मन्त्रमय हो जाता है और इस प्रकार की पूजा के योग्य बन जाता है । यह सम्मोहन न्यास त्रैलोक्यमोहन की क्षमता रखता है ।

उक्त न्यास के बाद अन्तर्याग और बहिर्याग की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले किया गया प्राणायाम आवश्यक होता है । प्राणायाम के विना सब कुछ किया गया निरर्थक होता है । प्राणायाम शब्द का अर्थ है—प्राण अर्थात् जीवन-श्वास का आयाम अर्थात् विस्तार या प्रतिबन्ध । एक निश्चित क्रम में श्वास को अन्दर खींचने, रोकने और छोड़ने की क्रिया प्राणायाम कहलाता है । प्राणायाम से कुण्डलिनी का उद्‌बोधन होता है । करोड़ों सूर्य के समान तेजोमयी, सिंघाड़े की तरह त्रिकोण मूलाधार में स्थित एवं कालाग्नि की शिखा के समान दीप्तिमती कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । हुङ्कार के उच्चारण से इसका उद्‌बोधन होता है । जीव मूलाधार में और शिव सहस्रार में रहते हैं । कुण्डलिनी शक्ति के साथ जीव भी छः चक्रों का भेदन कर अन्त में सहस्रारस्थ शिव के साथ एक हो जाता है । यही मुक्ति है ।

कुण्डलिनी तीन प्रकार की है उसके बीज भी तीन हैं । प्रथम कुण्डलिनी मूलाधार से लेकर हृदय तक रहती है । इसका वाग्भव (= ऐं) बीज, जो कि पिघले हुए सोने के समान है, के रूप में ध्यान करना चाहिये । इसका नाम वह्निकुण्डलिनी है । हृदय से लेकर कण्ठ तक रहने वाली सूर्यकुण्डलिनी है । यह करोड़ों सूर्य के समान है । इसका बीज कामराज (= क्लीं) है । यह कामराजबीज भी करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान है । तीसरी कुण्डलिनी भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक है । भ्रूमध्य में शक्तिबीज (= ह्सौः/ह्सौं) हैं । यह बीज करोड़ों चन्द्रमा के समान है इसलिये यह भी कोटि चन्द्र के समान है तथा इससे अमृत झरता रहता है । एक तुरीय कुण्डलिनी भी है जो उक्त तीनों बीजों का मिश्रण है और इसका रूप बिन्दुत्रय होता है । यह देशकाल की सीमा से रहित केवल ज्ञानात्मक होती है । इससे गिरने वाले अमृतबिन्दु से परदेवता का तर्पण अन्तर्याग कहलाता है जो जीवन्मुक्ति देने वाला होता है । यह समस्त पापों का प्रायश्चित्त है । चार सौ प्राणायामों के द्वारा इन चारों कुण्डलियों का ध्यान ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण महापापों का नाशक है ।

द्वादश पटल—जो लोग मानस याग नहीं कर सकते या नहीं करना चाहते उनके लिये मानस पूजा का विधान है । इससे भी वही फल प्राप्त होता है जो

मानस याग से। इस विधि में त्रिपुरसुन्दरी की षोडशोपचार से भावमयी पूजा की जाती है। वे सोलह उपचार है—१. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. आचमन, ५. मधुपर्क, ६. आचमन, ७. पर्यङ्क, पादुका, उद्वर्तन, तैलस्नान, जलस्नान ८.गात्रमार्जन एवं वस्त्रपरिधान, केशविन्यास, सूत्रावली, सिन्दूर, तिलक, रदनच्छद में अलक्तक, अञ्जन, गात्रानुलेपन, आभूषण, ९. गन्ध, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. ताम्बूल, १५. दक्षिणा, १६. साष्टाङ्गप्रणाम। जिस प्रकार बाहरी चक्रपूजा होती है उसी प्रकार देवी की नव आवरण शक्तियों की मानसी पूजा करनी चाहिये। गृहस्थ केवल मानस पूजा से सिद्धि नहीं प्राप्त करता। उसे बाह्यपूजा भी करनी चाहिये।

इसके पश्चात् ध्यान-योग का वर्णन किया गया है। न्यास पूजा जप और पुरश्चरण के विना भी केवल ध्यान-योग से सिद्धि मिल सकती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्र मनुष्य सब लोग ध्यान से सिद्धि को प्राप्त किये। ध्यान के लिये एकान्त रमणीय जनकोलाहल-रहित स्थान में आसन लगाकर साधक को गुरु मण्डली को प्रणाम करने के बाद जीव-ब्रह्म की एकता का ध्यान करना चाहिये। पृथिवी आदि समस्त तत्त्वों का विपरीत क्रम से परमात्मा में लय का ध्यान करना चाहिये। ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से हुई वृष्टि से समस्त विश्व परिप्लावित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये। उस जल में अपना तथा प्रकृति का चिन्तन कर पुनः सृष्टिप्रक्रिया की भावना करनी चाहिये। भूबीज (= लं) से पृथिवी को कठिन कर प्रणव से उस पृथिवी का दो भाग कर उस ब्रह्माण्ड के अन्दर नित्य मेढ़क की भावना करनी चाहिये। मेढ़क की पीठ पर कालाग्निरुद्र रूप आधारशक्ति का मूलप्रकृति के रूप में ध्यान करना चाहिये। वह मूलप्रकृति कूर्म के आकार की है। उसके शिर पर श्वेतवाराह है जो अपने दाँतों के ऊपर शस्यश्यामला पृथिवी को धारण किये हुए हैं। इस पृथिवीध्यान के साथ कल्पवृक्ष की वाटिका का भी चिन्तन करना चाहिये। इस वाटिका में कल्पवृक्षों के अतिरिक्त चन्दन, कर्णिकार, मातुलुङ्ग, करञ्ज, द्राक्षा, अनार, आम, कटहल आदि नाना प्रकार के वृक्ष विराजमान है। सुगन्धित पुष्पों वाली लतायें भी हैं।

उस वाटिका में रत्न-मण्डप स्थित है। वह चार सौ कोस लम्बा चौड़ा और चार द्वारों वाला है। उसमें अनेक रत्नों वाले तोरण वितान दण्ड ध्वजायें लगी हैं। लोकपाल सिद्ध चारण गन्धर्व आदि वहाँ उपस्थित होकर अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। उस विशाल मण्डप के भीतर एक महामाणिक्य मण्डप है। उसके नीचे बालसूर्य के किरणों जैसी चौकोर वेदी है। उसके ऊपर सिंहासन है जिसके चारो पायें शरीरधारी धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य के द्वारा पकड़े गये हैं। सिंहासन के मध्य सर्वतत्त्वात्मक कमल है जिसकी कर्णिका में सूर्य, सूर्य के बीच चन्द्र और चन्द्र के बीच अग्नि का ध्यान करना चाहिये। उस सिंहासन के चारो

ओर तथा ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्च प्रेत विराजमान है। प्रंकटा आदि देवियों का ध्यान करने के बाद पर्यङ्क शक्तिपीठ के ऊपर त्रिपुराम्बा का ध्यान करना चाहिये जो कामेश्वर की गोद में विराजमान है। आगे चलकर इस कामेश्वरी के रूप सौन्दर्य का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। नाना रत्नाभरण से युक्त वह इच्छाशक्तिरूपी पाश, ज्ञानशक्तिरूपी अङ्कुश और क्रियाशक्तिमय धनुष बाण ली हुई है। यह देवी सर्वदेवमयी सर्वमन्त्रमयी सर्वेश्वर्यमयी तथा साक्षात् परमानन्दरूपिणी है।

अन्त में इस ध्यान का माहात्म्य बतलाया गया है कि ऐसा ध्यान करने वाला पृथिवी पर देवता के रूप में विचरण करता है। वह मनुष्य रूप में देवता है। उसके सारे कार्य देवता बुद्धि से सम्पन्न होते हैं इसलिये वह चतुर्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

त्रयोदश पटल—इस पटल में बाह्य याग का वर्णन किया गया है। पूर्वपटल में वर्णित अम्बिका का ध्यान करने के बाद उसके मूलमन्त्र से अपने शिर पर पुष्प रखना चाहिये। अपने को ब्रह्म या ईश्वर के रूप में निरन्तर ध्यान करने वाला देवरूप हो जाता है। इस प्रकार के ध्यान के पश्चात् पूजार्घ्यपात्र बनाना चाहिये। इस क्रम में सारे पात्र ताम्र के होने चाहिये। शङ्ख शुक्ति रजत स्वर्ण के भी पात्र प्रयोज्य होते हैं। कौल साधकों के लिये नरकपाल का अर्घ्यपात्र विहित है। महादेवी का पात्र पन्ना माणिक्य हीरा वैदूर्य और नीलम के भी होते हैं।

इसके पश्चात् विशेषार्घ्य बनाना चाहिये। साधक अपने और श्रीचक्र के मध्य में चौकोर मण्डल बनाये। उसके अन्दर षट्कोण उसके अन्दर वृत्त फिर उसमें त्रिकोण लिखकर उस मण्डल की पूजा करे। उस पर अर्घ्यपात्र रखकर अग्निमण्डलरूप उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। फिर सूर्यमण्डल के रूप में उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार उसे चन्द्र मण्डलरूप समझकर चन्द्रकलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। उस पात्र में रत्नेशी, कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर ओड्यान पीठों का पूजन कर पञ्चवक्त्र शिव तथा उनकी गोद में स्थित सुरादेवी का धेनुमुद्रा से आवाहन ध्यान कर उस सुरा का गालिनीमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये। हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वौषट् तथा सहक्षमलवरयूं सुरादेव्यै वौषट् मन्त्रों से आनन्द भैरव और सुरा को जोड़ना चाहिये। इसी प्रकार मन्त्रोच्चार के साथ सन्दीपन आदि कर बोधिनी मुद्रा से बोधन करना चाहिये। पात्रों की संख्या नव होती है जिनमें चार पात्र वटुक के तीन पात्र गुरुओं के तथा एक-एक पात्र अपने होते हैं। कुशाग्र से सुरा को लेकर सबको तृप्त करने के बाद तीन बार स्वयं प्राशन करना चाहिये। पात्र के

टूटने या सुरा के भूमि पर गिरने से अशुभ होता है। उसके निराकरण के लिये होम करना चाहिये। आचार्य को दिये जाने वाले समस्त पदार्थों का प्रोक्षण अवश्य करना चाहिये।

चतुर्दश पटल—इस पटल में आधारशक्ति से लेकर कामेश्वर तक की पूजा का विधान वर्णित है। ओङ्कार बिन्दु के मध्य कामपीठ का ध्यान कर उसके ऊपर कामेश्वर का ध्यान करना चाहिये। वे एकवक्त्र चतुर्भुज भस्मोद्धूलित शरीर वाले हैं। हाथ में त्रिशूल पिनाक कमल और बीजपूर लिये हुए श्वेत कमल पर विराजमान हैं। तत्पश्चात् कामेश्वर की गोद में बैठी कामेश्वरी का ध्यान करना चाहिये। ध्यान का मन्त्र—ऐं ह्रीं सौः महात्रिपुरसुन्दर्यमृतचैतन्यमूर्त्तिं कल्पयामि। वह साधक को चतुर्वर्ग दे रही है। इसके पश्चात् नाराच मुद्रा से रक्षा करनी चाहिये। अवगुण्ठन दिग्बन्धन करने के बाद प्राणायाम कर पुष्पाञ्जलि से देवी का आवाहन करना चाहिये और बाह्य तथा आभ्यन्तर मूर्त्तियों के ऐक्य की भावना करनी चाहिये। नासिका से वायु को निकालकर पुष्पाञ्जलि पर छोड़ना चाहिये और स्थापना तक पुष्प को हाथ से अलग नहीं करना चाहिये। इसके बाद त्रिखण्डा मुद्रा से देवी को पीठपर रखना चाहिये। 'महापद्मवनान्तःस्थे.....कण्ठस्य देहि मे' श्लोकों का पाठ करना चाहिये।

आवाहनी मुद्रा से आवाहन सन्निधापनी से स्थापन करने के बाद धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये। परमीकरण अवगुण्ठन सकलीकरण करने के बाद सम्मुख मुद्रा से देवी के सम्मुख होकर प्रार्थना करनी चाहिये। इसके अनन्तर 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि' से देवी के पैरों में तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। तर्पण अभ्यर्थन के बाद पूजा के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। इसके अनन्तर इस पटल में आसन आदि देने की विधि बतलायी गयी है कि आसन स्वागत दर्शन पाद्य अर्घ्य के अन्त में 'नमः' कहना चाहिये। आचमन मधुपर्क पुनः आचमन के अन्त में 'स्वधा' कहना चाहिये। स्नान वस्त्र आभरण के अन्त में 'नमः' गन्ध पुष्प के अन्त में वौषट्, धूप दीप नैवेद्य को 'नमः' के साथ देना चाहिये। पुष्पाञ्जलि ज्ञानमुद्रा से तर्पण तत्त्वमुद्रा से तथा सबके अन्त में योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।

अन्त में मूलमन्त्र का जप होम और बलि देनी चाहिये। बलिदान के बाद दशाङ्गधूप दीपमाला सिन्दूर पान (= मदिरा) रेशमीवस्त्र नेत्राञ्जन देकर दर्पण दिखाना चाहिये। शिर पर छत्र लगाकर चामर से बीजन करना चाहिये। शङ्ख घण्टा को बजाकर पुनः धूप दिखानी चाहिये। तत्पश्चात् गीत वाद्य क्रीडा कौतुक को नट नर्त्तक वेश्याओं के साथ सम्पादित कर सर्वात्मभाव से सबकुछ देवी के लिये समर्पित कर अपने को देवीमय होने की भावना करनी चाहिये।

पञ्चदश पटल—इस पटल में देवी त्रिपुरसुन्दरी के लिये प्रयोज्य सोलह उपचारों, उनके समर्पण विधि आदि की चर्चा की गयी है । १. पहला उपचार आसन है । यह सोना चाँदी वस्त्र पुष्प काष्ठ का हो सकता है । पत्ते का आसन वर्जित है । २. दूसरा उपचार पाद्य है । चन्दन अगर से सुगन्धित शीतल जल शङ्ख या किसी तैजस पात्र में देने का विधान है । ३. श्वेत सरसो मूँग तिल दूध यव रक्तचन्दन पुष्प शङ्ख में रखकर शिर पर अर्घ्य देना चाहिये । ४. गन्धयुक्त स्वच्छ जल शङ्ख अथवा तैजस पात्र में रखकर पाद्य देने से आयु बल यश वृद्धि बढ़ती है । यह आचमन कर्पूर से वासित कालागुरु से प्रधूपित होना चाहिये । ५. मधुपर्क की रचना दही घी जल मधु गन्ने की शर्करा से की जाती है । जल नारियल का होना चाहिये । इस मधुपर्क के दान से साधक ज्योतिष्टोम और अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ६. स्नान—कपूर अगुरु कस्तूरी गोरोचन कुङ्कुम नारियल का जल, मधु, ईख का रस, पञ्चगव्य, सर्वौषधि और अन्त में जल यह त्रिपुरा का प्रिय स्नानीय द्रव्य है । प्रत्येक वस्तु के एक हजार पल से महास्नान होता है । सौ पल से मध्य स्नान होता है । दश पल से लघु स्नान होता है । सबको मिलाकर स्नान करने का परिमाण नहीं है । पहले त्रिपादूर्ध्व.. ......मन्त्र फिर मूलमन्त्र के बाद 'त्वमापः......से स्नान करना चाहिये । ७. वस्त्र—वस्त्र का अर्पण न करने वाला याजक पाप के समुद्र में गिरता है । यदि किसी परिस्थिति वश वस्त्र उपलब्ध न हो तो रक्त कमल या जवा कुसुम अर्पित करना चाहिये । मलिन, पुराना, पहना हुआ, अग्निदग्ध आदि वस्त्र देवी को नहीं चढ़ाना चाहिये । रंगविरंगे रेशमी वस्त्र से देवी प्रसन्न होती है । वस्त्रार्पण के समय 'विद्यातन्तु...........परिधत्स्व सुरेश्वरि' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । ८. अलङ्करण—क़िरीट शिरोरत्न आदि सोलह अलङ्कारों का अर्पण देवी को सन्तुष्ट और पुष्ट करता है । अलङ्कार अर्पण के समय 'नवरत्नसमायुक्ता........ निवेदितम्' मन्त्र को पढ़ना चाहिये । ९. गन्ध—यह पाँच प्रकार का होता है । गन्ध के अनेक प्रकार हैं । पाँच प्रकार तो सङ्केत मात्र है । सभी गन्धों में मलयज गन्ध उत्कृष्टतम माना गया है । गन्ध अर्पण के समय 'शरीरं ते न जानामि..........विलिप्यताम्' मन्त्र का पढ़ना चाहिये । गन्ध से सुसन्तोषित देवी चतुर्वर्ग फल प्रदान करती है । अञ्जन—स्वर्ण के पात्र में घी तेल से बना हुआ कर्पूरमिश्रित अञ्जन देवी को प्रिय होता है । यह अञ्जन विधवा स्त्री को नहीं बनाना चाहिए । मिट्टी के पात्र में बने हुए अञ्जन के अर्पण से अर्चक को पूजा का फल नहीं मिलता । पुष्पपत्र—दूसरे का, सूँघा गया, चोरी से लाया गया, बासी पत्र पुष्प देवी के लिये वर्जित है । श्वेत रक्त कमल कुमुद पाँच दिनों तक बासी नहीं होते । बिल्व पत्र तीन दिनों तक पर्युषित नहीं होता । दूर्वाङ्कुर मदन एवं बिल्व के अतिरिक्त अन्य पत्र देवी के लिये निषिद्ध है । स्वर्ण आदि से निर्मित पुष्प सर्वोत्तम होता है । पत्र पुष्प फल जिस रूप में विकसित होते हैं

उसी रूप में चढ़ाना चाहिये उल्टा नहीं । पुष्प अर्पण का मन्त्र है—'ब्रह्म विष्णु. ....प्रतिगृह्यताम् ।' ११. धूप—पत्र मुस्ता आदि सोलह वस्तुओं से बनी धूप षोडशी को प्रसन्न करती है । मन्त्र—'वनस्पतिरसो........प्रतिगृह्यताम् ।' १२. दीप—घी का दीपक सर्वोत्तम होता है । सोना चाँदी का दीपपात्र उत्तम होता है । दीपक को दीवट पर रखना चाहिये भूमि पर नहीं । दीपमाला—त्रिपुरभैरवी के लिये दीपमाला देनी चाहिये । यह तीन या पाँच दीपों की होती है । दीप में घी तेल का मिश्रण नहीं करना चाहिये । दीप का मन्त्र—'सूर्याचन्द्र................. प्रतिगृह्यताम् ।' दीप को देवी के दाँयें रखना चाहिये । गन्ध पुष्प भूषण को बायें रखना चाहिये । १३. नैवेद्य—भोजन आदि नैवेद्य को देवी के सामने रखना चाहिये । मद्य को पीछे और अन्य पेय वस्तु को बाँयें रखना चाहिये ।

षोडश पटल—मद्य—मद्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ईख के रस को दो दिन तक रखने के बाद उसमें आम का रस, मधु, बेर, जामुन, खजूर, नारियल और अङ्गूर के रस मिलायें । इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुओं के चूर्ण को स्वर्ण या चाँदी या शीशे के बर्त्तन में रखकर उसमें चीनी डाल दे । लाल वस्त्र से ढँक दे । चन्दन अगुरु धूप से धूपित करने पर यह देवी का प्रिय मद्य होता है । ब्राह्मण को मद्य का अर्पण नहीं करना चाहिये । यदि वह ऐसा करता है तो उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । किन्तु यदि ब्राह्मण निर्विकल्प हो जाय तो वह देवी के लिए मद्य-अर्पण का अधिकारी हो जाता है । ऐसा करने पर वह अष्टसिद्धिभाक् हो जाता है । मद्य अर्पण का मन्त्र है—'सुरे चानघ............... विस्फुरणं कुरु ।'

नैवेद्य—नैवेद्य चर्व्य चोष्य लेह्य और पेय भेद से चार प्रकार का होता है । नैवेद्य सर्वयज्ञमय तथा धर्मार्थकाममोक्षप्रद होता है । यह नैवेद्य पात्रता के अनुसार सामिष निरामिष दानों प्रकार का हो सकता है । जो मृग एवं पक्षी बलि के लिये विहित हैं उनके मांस का भोग लगाना चाहिये । निरामिष नैवेद्य की सीमा में सुसंस्कृत, घृत शर्करा दुग्ध से युक्त सुगन्धित, तण्डुल वाला पायस, शाक, हिंगु जीरा आदि मिश्रित आदि अनेक प्रकार के पदार्थ आते हैं । अशुद्ध अपक्व नैवेद्य निषिद्ध है । यह नैवेद्य रजत सुवर्ण ताम्र या पत्थर के पात्र में देना चाहिये । अभाव में कमल के पत्ते पर दिया जा सकता है । नैवेद्य को ढँककर देवी के सामने रखना चाहिये । फिर ढक्कन खोलकर वायु बीज (= यं) से संशोषण अग्नि बीज (= रं) से दहन और वरुण बीज (= वं) से सुधा के द्वारा उस नैवेद्य को धेनुमुद्रा दिखाकर आप्लुत करने के बाद अस्त्रमन्त्र से संरक्षण मूल मन्त्र से अभिषेक करना चाहिये । मन्त्र—मूलदेवी का नाम लेकर 'नैवेद्यं गृहाण स्वाहा' कहना चाहिये । इसके अतिरिक्त 'अन्नं चतुर्विधं...............भुज्यताम्' का भी पाठ करना चाहिये ।

आचमन—जावित्री लवङ्ग कङ्कोल से सुगन्धित जल से आचमन देना चाहिये । मन्त्र—'जातीलवङ्ग.....सुन्दरि । १४. ताम्बूल—कपूर आदि से सुवासित पान का बीड़ा देवी को देना चाहिये । नमस्कार—अनेक स्तोत्रों से देवी की स्तुति करते हुए प्रणाम करना चाहिये । नमस्कार से देवता मनुष्य आदि सब के सब प्रसन्न होते हैं । अतः नमस्कार महाफलदायी है । नमस्कार तीन प्रकार का होता है—१. कायिक, २. वाचिक और ३. मानसिक । पुनः वह अन्य रूप में तीन प्रकार का होता है । १. उत्तम, २. मध्यम और ३. अधम । घुठनों से बैठकर शिर को धरती से लगाना कायिक नमस्कार है । दोनों हाथ जोड़कर धरती का स्पर्श न करना अधम नमस्कार है । घुठनों से धरती को न छू कर केवल शिर से प्रणाम मध्यम कोटि का नमस्कार है । १५. प्रदक्षिणा—दाँयाँ हाथ फैलाकर नम्रशिरा होकर भक्तिश्रद्धा से पूरित देवता को दाँयी ओर रखते हुए गोलाकार में घूमना प्रदक्षिणा है । १६. साष्टाङ्ग प्रणाम—यह सात प्रकार का होता है—१. त्रिकोण, २. षट्कोण, ३. अर्धचन्द्र, ४. प्रदक्षिणा, ५. दण्डवत्, ६. अष्टाङ्ग और ७. उग्र । १. दक्षिण दिशा से वायुकोण तक, वहाँ से ईशान कोण, वहाँ से फिर दक्षिण को जाना त्रिकोण प्रणाम है । २. दक्षिण से वायु कोण वायु से ईशान वहाँ से दक्षिण वहाँ से अग्निकोण, फिर वहाँ से नैर्ऋत्य कोण फिर उत्तर दिशा वहाँ से अग्निकोण और वहाँ से दक्षिण, यह अर्धचन्द्र प्रणाम है । ४. प्रदक्षिणा करते हुये प्रणाम करना प्रदक्षिणा प्रणाम है । ५. अपना आसन छोड़कर देवता के पास जाकर दण्ड के समान भूमि पर लेटना दण्डवत् प्रणाम है । ६. ठोड़ी मुख नासिका हनु नेत्र कर्ण ब्रह्मरन्ध्र से प्रणाम करना अष्टाङ्ग प्रणाम है । ७. जिसमें केवल ब्रह्मरन्ध्र से क्षिति का स्पर्श करते हुए नमस्कार किया जाय वह उग्र प्रणाम कहलाता है । स्वरचित गद्य पद्य से नमस्कार उत्तम, पौराणिक तान्त्रिक मन्त्रों से नमस्कार मध्यम होता है । पर रचित से अधम होता है । मानसिक प्रणाम भी उत्तम मध्यम अधम भेद से तीन प्रकार का होता है ।

सप्तदश पटल—इस पटल का विषय प्रकटा आदि देवियों की पूजा विधि तथा मुद्रा का वर्णन है । इन देवियों की पूजा सृष्टि स्थिति संहार क्रम से की जाती है । मोहन और क्षोभण चक्रों की पूजा वामावर्त्त के क्रम से तथा शेष चक्रों की पूजा दक्षिणावर्त्त क्रम से की जाती है । नवचक्रों वाले श्रीचक्र की पूजा के पहले आवरण-शक्तियों की पूजा की जाती है । ये शक्तियाँ नौ हैं । प्रथम आवरण महायोगीश्वर बुद्ध हैं । इनकी पूजा 'बुं बुद्धाय नमः' मन्त्र से की जाती है । इसके बाद पश्चिम आदि चार दिशाओं में अणिमा आदि चार एवं वायव्य आदि कोणों में वशित्व आदि अधोभाग में प्राप्ति और ऊर्ध्वभाग में यत्रकामावसायित्व की पूजा करनी चाहिये । इनकी पूजा का मन्त्र—ह्रीं श्रीं श्रीपादुकां पूजयामि है । दूसरी

पंक्ति में ब्राह्मी आदि माताओं तथा असिताङ्ग आदि आठ भैरवों की एक साथ पूजा होती है । तीसरी पंक्ति में सर्वसंक्षोभिणी के साथ चारों दिशाओं में करशुद्धिकरी संक्षोभकारिणी आदि की अर्चना की जाती है । इनका अर्चन त्रैलोक्यमोहन चक्र में होता है जो कि त्रिपुरसुन्दरी के द्वारा अधिष्ठित है । सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का बीज 'द्रां' है ।

दूसरे भाग में सोलह नित्याओं की पूजा की जाती है । इस पूजा के माध्यम ब्रह्मा हैं । इनके बाँयें सावित्री दाँयें सरस्वती सामने वेद तथा देवगण रहते हैं । इनका मन्त्र है—ॐ ब्रह्मणे नमः । यहाँ चक्रेश्वरी की पूजा 'ऐं क्लीं सौः' से की जाती है । इन नित्याओं का बीज 'द्रीं' है । तीसरे स्तर पर पञ्चवक्त्र उमामहेश्वर का ध्यान पूजन किया जाता है । सर्वसंक्षोभण चक्र में इनकी इनके आवरण के साथ पूजा की जाती है । मन्त्र—क्लीं शिवाय नमः, ह्रीं उमायै नमः । मुद्रा का बीज—'द्रूं' है । उमा महेश्वर की पूजा के बाद कवर्ग से अनङ्गकुसुमा की पूजा की जाती है । 'चवर्ग' से अनङ्गमेखला, टवर्ग से अनङ्गमदना, तवर्ग के द्वारा अनङ्गमदनातुरा की पूजा करने का विधान है । इसी प्रकार पवर्ग से अनङ्गरेखा, यवर्ग से अनङ्गवेगिनी, शवर्ग से अनङ्गाङ्कुशा तथा ळ क्ष से अनङ्गमालिनी की पूजा कर त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिये । कामबीज से आकर्षिणी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये ।

सर्वसौभाग्यप्रद चक्र में सूर्य की पूजा होती है । उनके परिवारों की पूजा चक्रनायिका त्रिपुरा की पूजा के समान करने का विधान है । यहाँ 'ब्लूं' बीज तथा सर्ववश्यकरी मुद्रा का प्रयोग होता है । सर्वार्थसाधक चक्र के बाह्य दशार में विष्णु का ध्यान करने की विधि है । यहाँ पूजा का मन्त्र है—'क्लीं हृषीकेशाय नमः' । बीज 'सः' और मुद्रा उन्मादिनी का प्रयोग करना चाहिये । षष्ठ सर्वरक्षाकर चक्र के अन्तर्दशार में त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान और पूजा होती है । विष्णु के स्वरूप का वर्णन कर उनके वाम पार्श्व में शोभमान शक्ति की भी पूजा साथ-साथ विहित है । यहाँ 'क्लीं' बीज तथा महाङ्कुशा मुद्रा का प्रयोग करने का विधान है । महाङ्कुशा मुद्रा का बीज 'क्रों' है । सप्तम चक्र जो कि अष्टकोणात्मक होता है, में आवरण देवता के रूप में वशिनी आदि रहस्य योगिनियों का पूजन करना चाहिये । चक्रनायिका के बाँयें दाँयें मुक्तिसिद्धि यजन करना चाहिये । बीज 'सः' और मुद्रा खेचरी है ।

मध्य त्रिकोण अर्थात् सर्वसिद्धिप्रद चक्र में कामेश्वरी वज्रेश्वरी और भगमालिनी की पूजा होती है । यहाँ विष्णु ब्रह्मा की संयुक्त रूप से अर्चना होती है । बीज 'ह्सौः' तथा मुद्रा बीजमुद्रा है । सर्वानन्दमय नामक नवम चक्र में ब्रह्मविष्णु शिव रूपिणी त्रिपुरभैरवी की पूजा की जाती है । इनके बाँयें इच्छा ज्ञान क्रिया और

मोक्षसिद्धि रहती है । सामने सिंह रहता है । जो कि देवी के मुख को देखता रहता है । पहले 'ऐं' बीज कहकर योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । निष्कर्ष यह है कि त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा आदि नामों से ज्ञेय पराम्बा ब्रह्मस्वरूपिणी का सभी चक्रों में प्रधान देवता के रूप में पूजन होता है । आवरण देवता के रूप में अनेक देव देवियाँ सिद्धियाँ बीज तथा मुद्रायें भी अर्चनीय प्रदर्शनीय होती हैं । सबका पूजन तर्पण करने के साथ-साथ पुष्पाञ्जलि से अन्तिम अभ्यर्चन करना चाहिये ।

अष्टादश पटल—अठारहवें पटल का विषय जप होम भक्ति एवं मुद्रा है । जप के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि समस्त यज्ञों में जप यज्ञ अत्यन्त प्रशस्य है क्योंकि जप से देवता सन्तुष्ट होते हैं और सिद्धि मिलती है । अक्षरों का बार-बार अव्यवहित उच्चारण या मन में अव्यवहित स्मरण जप कहलाता है । जप-रूप शक्ति और ध्यानरूप शिव का एक साथ संयोग होने से सिद्धि मिलती है । माला से जप करने का विधान है । सभी प्रकार की मालाओं में वर्णमयी माला सर्वोत्तम होती है । पचास वर्णों के अनुलोम विलोम तथा आठ वर्गों के आठ वर्णों को मिलाकर एक सौ आठ वर्णों की माला बनती है । रुद्राक्ष आदि से निर्मित माला के अभाव में करमाला का प्रयोग करना चाहिये । अनामिका के मध्य से तर्जनी के मूल तक दश अङ्क होते हैं । इन पर जप करना चाहिये । अङ्गुलियाँ सटी होनी चाहिये । छिद्र रहने पर जप अङ्गुलियों से नीचे सरक जाता है । माला की पूजा करने के बाद दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये और 'ऐं माले.......' मन्त्र पढ़कर दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये ।

जप के समय हाथ से माला गिर जाने से विघ्न तथा टूट जाने से मृत्यु होती है । अक्षमाला को जोर से हिलाना या किसी दूसरे को दिखाना नहीं चाहिये । माला को हृदय से लगाकर जपना चाहिये । तर्जनी से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिये । बाँयीं जाँघ पर दाँयें पैर को रखकर गुरु देवता एवं मन्त्रों के ऐक्य की मन में भावना करते हुए जप करना चाहिये । जप के वाचिक उपांशु और मानस तीन भेद है । किसी मन्त्र का दश हजार जप उत्तम, एक हजार मध्यम और एक सौ आठ बार जप अधम कोटि का होता है । एक वस्त्र पहन कर या दो से अधिक वस्त्र पहन कर चिन्तायुक्त क्रुद्ध, रुग्ण, क्षुधार्त्त, बोलकर, सोते हुए, चलते हुए, खाते हुए जप नहीं करना चाहिये । मन्त्र जप को देवी के बाँयें हाथ में अर्पित कर देना चाहिये । जप के आदि और अन्त में ओङ्कार रूप सेतु लगाना चाहिये ।

जप करने के बाद संस्कारयुक्त अग्नि में जप का दशांश हवन करना

चाहिये। षडङ्ग से छह आहुतियाँ देने का विधान है । नित्य होम से रहित साधक त्रिविध दु:ख प्राप्त करता है । त्रिपुरभैरवी स्वयं अग्निमयी है । इसलिये होम न करने वाले जापक का वह धन आदि नष्ट कर देती है । पक्षमास वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होम करना चाहिये यदि किसी कारणवश होम न करने की स्थिति हो तो होम की संख्या का दो गुना अधिक जप करना चाहिये ।

होम के बाद स्तुति प्रदक्षिणा प्रणाम करने के बाद भक्तिपूर्वक नैवेद्य को भोग लगाना चाहिये । तत्पश्चात् अनुलेपन, सिन्दूर, नेत्राञ्जन, धूप, दीप, दर्पण, व्यञ्जन, छत्र, चामर, घण्टानाद, वाद्य, गीत, नृत्य एवं क्रीडा का प्रयोग करना चाहिये । पीली सरसों और दीपावलि से निर्मञ्छन कर देवी के शिर पर दूर्वा और अक्षत रखनी चाहिये । अन्त में भक्तिभाव के साथ दास्य एवं आत्मनिवेदन करने का विधान है । ऐसा करने वाला अर्चक सर्वसम्मान्य हो जाता है । आगे चलकर देवी के लिये तत्तद् वस्तु के समर्पण का फल बतलाया गया है ।

देवी के प्रति भक्ति का फल यह है कि वह भक्त सब पापों से रहित पितृमातृ कुल के साथ चिरकाल तक स्वर्ग मे रहता है । प्रारब्ध वश इस लोक में जन्म लेकर वह सार्वभौम नृपति होकर अन्त में कैवल्य पद प्राप्त करता है । आत्मनिवेदन के बाद तर्पण देकर पुन: नवमुद्राओं का देवी के समक्ष प्रदर्शन करना चाहिये ।

अन्त में देवी के सान्निध्य के हेतु बतलाये गये हैं । वे हैं—एकान्तसेवन, आत्मशुद्धि, निर्दोषता, पूजा सामग्री की अधिकता, पवित्रता, सुगन्धयुक्त पदार्थ, अपनी सुन्दर वेषभूषा, काकुवचन, पूजाविधि की निपुणता, एकचित्तता, स्तुति, प्रणाम, जप, बलि इत्यादि ।

उन्नीसवाँ पटल—इस पटल में वटुक योगिनी आदि के मन्त्र बलिदान इत्यादि का वर्णन है । ये वटुक आदि यदि बलि आदि के द्वारा तृप्त नहीं किये जाते तो यज्ञकार्य में विघ्न उपस्थापित करते हैं । इसलिये इन्हें मांस आदि की बलि देकर तृप्त करना चाहिये । श्रीचक्र की चारो विदिशाओं में वटुक योगिनी क्षेत्रपाल और गणपति की पूजा करने की विधि है । वटुक का ध्यान—कमलाक्ष, स्वर्णगौर, चतुर्भुज, हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए विष्णुरूप में करना चाहिये । वटुक की पूजा का मन्त्र है—क्लौं वटुकाय नमः । बलिदान का मन्त्र भी इस प्रकार है—एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभार भास्वरत्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहित बलिं गृह्ण स्वाहा । ऐसा करने वाला भाग्यहीन अर्चक भी सर्वसम्पत्-समन्वित होकर निर्विघ्न जीवन यापन करता है ।

त्रिपुरा देवी के बाँयें ओर मण्डल में योगिनी का ध्यान और बलिदान करना चाहिये । योगिनियाँ कामरूपी, तप्तकाञ्चन के समान देदीप्यमान, मदमत्त, कङ्काल की माला धारण की हुई, पृथुकटिवाली, गिरते हुए रक्त की गन्ध से पूरित, रक्तवस्त्र धारण की हुई, हाथों में लिङ्ग पाश कपाल और सृणि ली हुई हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । इसके लिये बाँयें अङ्गूठे एवं अनामिका से बलि देनी चाहिये । मन्त्र है—यां योगिनीभ्यः सर्ववर्णयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा । इसके पश्चात् 'ऊर्ध्वं............वीरेन्द्रवन्द्याः' श्लोक के द्वारा इनकी प्रार्थना करनी चाहिये ।

देवी के वामभाग में क्षेत्रपाल का ध्यान करने का विधान है । इनका ध्यान इस रूप में करणीय है—ये अपराजिता की लता से वेष्टित हैं । तिन्तिडी कल्पवृक्ष की छाया के नीचे रत्नभूषित रक्तकुसुमाच्छादित भूमि पर विराजमान हैं । नीलाञ्जन के समान शरीर वाले ये हाथों में कृपाण कपाल शूल और डमरु लिये हुए हैं । दाँतों से अधर को दबाये हुए हैं । इनके बलिदान का मन्त्र है—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

देवी के सामने दाँयीं ओर गणेश का ध्यान करने की विधि है । ये नवीन बादल के समान श्याम, सर्वाभरणभूषित, तोंद वाले, हाथी के मुखवाले, चतुर्भुज और नग्न हैं । वाम दक्ष ऊर्ध्व हाथों में पाश तथा अङ्कुश, नीचे के दाँयें हाथ में मद्यपूर्ण कपाल तथा बायें हाथ से सिन्दूर सदृश आकार वाली ऋद्धि के भग का स्पर्श किये हुए हैं और ऋद्धि उनके लिङ्ग को पकड़ी हुई है । उनका मन्त्र है—गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा । इनको गजतुण्डा मुद्रा दिखाकर बलि देनी चाहिये । इसके बाद सर्वभूत बलि देने की बात कही गयी है ।

देवता मनुष्य पितृगण यक्ष राक्षस पिशाच इनको भूत कहा गया है । बलि से तर्पित ये सब यक्ष के सहायक हो जाते हैं । तर्पित न होने पर यज्ञ में विघ्न उपस्थापित करते हैं । बलिदान के पश्चात् स्वयं तथा अपने द्वारा की गयी समस्त क्रियाओं को देवी के लिये समर्पित करना चाहिये । समर्पण के पश्चात् 'आवाहनं ....त्वदाज्ञया' मन्त्रों से देवी को प्रसन्न करना चाहिये । इसके बाद समस्त देवतायें त्रिपुरा के शरीर में विलीन हो गयीं ऐसी भावना करनी चाहिये । फिर अपने को कामकलारूप वाला समझते हुए परमेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी को अपने हृदय में विसर्जित करना चाहिये अर्थात् हृदय में स्थापित कर लेना चाहिये । निर्माल्य को भूमि पर फेंककर शिव के साथ स्वयं के ऐक्य की भावना करते हुए शेषिका देवी की निर्माल्य से पूजा करनी चाहिये ।

बीसवाँ पटल—शेषिका देवी का दूसरा नाम उच्छिष्टमातङ्गी है । इस पटल में उच्छिष्टमातङ्गी की पूजा का वर्णन है । इस देवी का ज्ञान होने पर आपत्तियाँ

नष्ट हो जाती है । इसके मन्त्र का जप करने से स्थावर जङ्गम कृत्रिम अङ्ग अङ्गज विषों का शमन होता है । यह विद्या स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है । इस विद्या का जप जूठे मुख किया जाता है । वह जप ही मुखशुद्धि का आचमन है । इसके बाद उच्छिष्टमातङ्गी मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । मन्त्र है—१. उच्छिष्टचाण्डालिनी सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः । २. ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा । इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—यह शव पर बैठी हुई, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त वर्ण के आभूषण पहनी हुई, यौवनसम्पन्न, पीन उन्मत पयोधरों वाली, हाथ में कपाल तथा कैंची ली हुई है । इसके मन्त्र का जप जूठे मुँह करने का विधान है । जप के बाद होम और होम के बाद बलि देनी चाहिये । हवनीय द्रव्यों में बिल्ली का मांस, मधुमिश्रित अजा मांस, से क्रमशः शस्त्र, शास्त्र, वशीकरण तथा यथेच्छ फल की प्राप्ति होती है । विद्याकामी मधु और घी से होम करे । घी, मधु, चाण्डाल के बाल को मार्जार मांस में मिलाकर हवन करने से आकर्षण होता है । खरगोश के मांस को मधु के साथ हवन करने पर विद्या धन और सुन्दर स्त्री मिलती है । इसी प्रकार विविध होम के द्वारा विविध लक्ष्य के प्राप्ति का वर्णन इस पटल में किया गया है । भिन्न-भिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय बतलाये गये हैं । उदाहरण के लिये पुष्यनक्षत्र में अपामार्ग की जड़ का शरीर में लेप करने से शरीर के ऊपर किया गया प्रहार व्यर्थ हो जाता है । इसी प्रकार अनेक उपचारों के द्वारा अनेक विषयों की उपलब्धि होती है ।

इक्कीसवाँ पटल—पूजा के क्रम में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए शङ्खस्थ जल को शिर से लगाना चाहिये । उसकी एक भी बूँद भूमि पर गिरने पर ब्रह्महत्या का दोष लगता है । देवी के चरणोदक का पान करना चाहिये एवं सम्पूर्ण शरीर में उसका लेप करना चाहिये । पूजा सामग्री को माया बीज से देखते हुए जहाँ-जहाँ पात्र रखा गया है उस-उस स्थान से पात्र को हटाकर जल छिड़कना तथा झाड़ू लगाना चाहिये । अच्छिद्र प्रार्थना के बाद सूर्य को प्रणाम करना चाहिये । नैवेद्य आदि समस्त पदार्थों को गुरु एवं गुरु शक्ति को दे देना चाहिये । देवता को भोग लगाने के बाद वह नैवेद्य अमृत हो जाता है । उसे अमृत समझकर खाने वाला देवगामी हो जाता है । तीन तत्त्व से तीन बार आचमन कर षडङ्गन्यास करना चाहिये । सर्वत्र दाता भोक्ता आदि के रूप में शिव को तथा अलंकृत स्त्रियों को देवता समझना चाहिये । इस प्रकार देवी त्रिपुरसुन्दरी की आराधना कर उसकी भावना से युक्त होकर पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करना चाहिए ।

आगे चलकर परतत्त्व के ज्ञान की विधि आदि की चर्चा के क्रम में कहा गया है कि शिवस्वरूप परब्रह्म अनुत्तर है । यह स्वप्रकाश है । वेदोक्त रीति से

इस तत्त्व का बार-बार दर्शनाभ्यास करना चाहिये । परतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती । परतत्त्व का ज्ञाता आस्तिक कहा जाता है और वह मुक्त होता है । यन्त्र को देवी का शरीर कहा गया है (अथवा अपने शरीर को देवी का यन्त्र कहा गया है) इसमें अहंभाव से स्थित होकर भक्तिपूर्वक यजन करना चाहिये । देवी की कृपा से विज्ञानवान् होने के पश्चात् 'मैं पूर्ण हो गया हूँ' इस भावना से सम्पन्न होकर पृथिवी तल पर उसकी इच्छानुसार विहरण करना चाहिये ।

आगे चलकर पर तत्त्वज्ञान की विधि और उसके माहात्म्य का वर्णन किया गया । इस क्रम में कहा गया है कि जब तक चिन्मय आत्मतत्त्व में मन का लय न हो जाय तब तक इष्ट मन्त्र का जप तथा होम करना चाहिये । जब परमतत्त्व का ज्ञान हो जाय तक समस्त नियमों का त्याग कर देना चाहिए । साथ ही जिस मन से त्याग किया जाता है उस मन का भी त्याग करना चाहिये । उभयत्यागी ही वास्तविक संन्यासी होता है । पराम्बा को अपने से अभिन्न समझते हुए जो साधक उसकी पूजा करता है उसके पञ्चतत्त्वात्मक शरीर में ही वह प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है । उस का अनुमान भी अपने अन्दर ही होता है बाहर नहीं ।

अन्त में यह बतलाया गया है कि देवतागण वस्तुओं की गन्ध तथा सुन्दर रूप से ही सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं । भूत प्रेत मनुष्य और अन्य जीव जन्तु वस्तुओं के उपयोग से तुष्ट होते हैं । देवता लोग वस्तुओं का उपभोग गुरु, कुमारी, ब्राह्मण तथा गौ के शरीर के माध्यम से करते हैं इसलिये उनको भोजन कराने से ही यज्ञ पूर्ण होता है ।

बाईसवाँ पटल—इस पटल का विषय समयाचार है । प्रारम्भ में बतलाया गया कि हृदयस्थ परमात्मा का अनुभव होने पर ही सिद्धि मिलती है । परमात्मा को हृदय में स्थापित कर अमृत से उनकी पूजा करनी चाहिये । ब्रह्मा विष्णु और शिव से अपने तादात्म्य का अनुभव करना ही अन्तिम प्राप्य होता है । इसके लिये नित्य नैमित्तिक एवं काम्य इन तीन प्रकार के कर्मों को करना चाहिये । इन कर्मों को करने से मनुष्य की तीनों तृष्णायें (= वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा) शान्त हो जाती हैं और साधक तृप्त होकर समस्त क्रियायें त्रिपुरा की प्रसन्नता के लिये करने लगता है । माता-पिता को शिव और शक्ति समझकर उनकी भी सेवा करनी चाहिये । गुरु की सेवा भी अनिवार्य है भाईबन्धु पितृगण को भी दान एवं कर्म से प्रसन्न रखना चाहिये । इनका बलि के द्वारा तर्पण करना चाहिये । विना इन सबकी अर्चना के माता त्रिपुरसुन्दरी पूजा स्वीकार नहीं करती एवं योगक्षेम भी नहीं होता ।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की विधिवत् पुत्र के समान रक्षा एवं लालन-पालन करे । दण्डनीय को दण्ड शास्त्र के अनुसार देना चाहिये । शास्त्रवर्णित कर्म के अनुष्ठान से साधक के समक्ष अणिमादि विभूतियाँ प्रकट होती हैं । ऐसा होने पर उन विभूतियों को देवी को समर्पित कर देना चाहिये । केवल परब्रह्मरूपा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । आगे चलकर योगी की चतुष्कालिक उपासना का वर्णन किया गया है कि साधक प्रातः मध्याह्न सायं एवं मध्यरात्रि में किस प्रकार देवी की उपासना करे । सूर्यचन्द्र शिवशक्ति है, दिवारात्रि शिदशक्ति हैं, पिता माता शिवशक्ति हैं । इनको एककर ध्यान करना ही इनकी चतुर्विध उपासना है । पञ्चवक्त्र शिव की गोद में हंसती हुई देवी की स्थिति एवं तद्रूपता का ध्यान ही मङ्गलकारी होता है । देवी की पूजा शुक्लद्रव्यों एवं शुक्लवेषों से करनी चाहिये । चोष्य लेह्य पेय चर्व्य भक्ष्य पदार्थों का भोग लगाना चाहिये ।

इसके पश्चात् प्रातः तथा मध्याह्न कालिक, सायं एवं अर्धरात्रिकालिक यजनों का वर्णन विहित है । प्रातःकाल शुक्ल उपचारों एवं सायङ्काल में रक्त उपचारों से पूजा करनी चाहिये । जब देवी शिव को नीचे कर विपरीत रति में रहती है तब विश्व की रात्रिकालीन अवस्था होती है । उस समय की पूजा महाफला होती है । इसके आगे पूजा में विहित एवं निषिद्ध कर्मों की चर्चा की गयी है । ध्यान पूजा जप होम न्यास तर्पण ये सब परम मङ्गलकारी है । सन्ध्या काल में केवल एक बूँद जल तथा गुरु को प्रणाम महाफलदायक होता है । काम क्रोध आदि समस्त दुर्गुणों का त्याग कर नित्य पुरश्चरण करने वाले उपासक के अन्दर देवी का आवेश हो जाता है । देवता लोग भी उसका सहवास चाहते हैं ।

तीन याम देवी का निद्राकाल होता है । इसमें साधक निद्रा के द्वारा उसकी उपासना करे । देवी के प्रबोध काल में जो निद्रा करता है उसकी आयु विद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं । जो साधक चार तीन या दो सन्ध्याओं में योगयुक्त होकर ब्रह्मचर्य के साथ देवी-मन्त्र का एक वर्ष तक जप करता है वह समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । ईश्वर ने अन्त में कहा कि मैं भी व्रतपूर्वक इस मन्त्र का जप करता रहता हूँ । यह परमरहस्य और पर-अप्रकाश्य है ।

तेईसवाँ पटल—इस पटल में कुमारी-पूजन का वर्णन है । किसी भी अनुष्ठान में किया गया होम आदि तभी पूर्णता को प्राप्त होता है जब अन्त में कुमारी पूजन कर दिया जाता है । ब्रह्मा विष्णु रुद्र से लेकर सारे स्थावर जङ्गम जीव जन्तु कुमारी पूजा से तृप्त होते हैं ।

यदि अनेक कुमारियाँ उपलब्ध न हो तो एक ही कुमारी की पूजा से पूर्णफल मिलता है किन्तु वह कुमारी पाँच से आठवर्ष के मध्य की तथा प्रमदा

युवति सुन्दरी होनी चाहिये । कुमारी के लिये जो अन्न जल दिया जाता है वह अक्षय्य होता है । कुमारी की पूजा कुमारीमन्त्र से करने का विधान है । पूजित होने के पश्चात् प्रसन्न होकर कुमारी जो-जो कहती हैं वह सब सत्य हो जाता है । इस पूजाक्रम मे कुमारी की जाति का विचार नहीं करना चाहिये । वह ब्राह्मणी या नापिता वेश्या कोई भी, हो पूजनीय होती है ।

पूजा के क्रम में आसन स्वागत पाद्य अर्घ्य आचमन आदि का देववत् अर्पण होता है । पूजन के समय कुमारी की स्तुति करने का विधान है । इसमें विघ्न को दूर करने और मन्त्रसिद्धि प्रदान करने की बात बार-बार कही जाती है। भोजनोत्तर आचमन ताम्बूल आदि देने का विधान है ।

जो कुमारी स्वयं ऋतुमती हो उसके आद्य रज को लेकर उसमें गोरोचन, कर्पूर, केसर, कस्तूरी और अगुरु मिलाकर उससे देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये मांस, मद्य, मुद्रा, शक्ति और आद्यरज ही साधन है।

चौबीसवाँ पटल—उक्त विधि के अनुसार जो कुमारी पूजा करता है उसके माता पिता धन्य होते हैं । वह अग्नि, बृहस्पति आदि के समान अतुल्य, अद्‌भुत दैवी शक्ति से सम्पन्न हो जाता है । उसके शरीर में सारे तीर्थ निवास करते हैं । यदि त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में एक दिन का भी व्यवधान हो जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये । कई दिनों का व्यवधान होने पर पूजक योगिनी के शाप का पात्र होता है और उसके आर्युविद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं तथा इष्टसिद्धि नहीं होती ।

देवी का अर्चक जन्मान्तर में चक्रवर्त्ती राजा होता है तथा इस जन्म में देवी का परम भक्त होकर कैवल्य प्राप्त करता है । देवी की पूजा में साधक यदि स्वयं समर्थ न हो तो गुरु को नियुक्त करे । देवी की पूजा नित्य अवश्य करनी चाहिये । देवी की नैमित्तिक और काम्य पूजा भी की जा सकती है । आवरण देवताओं की भी फल पुष्प से पूजा करनी चाहिये । देवी का यज्ञमय शरीर इस प्रकार है—ध्यान पूजा जप होम चारों हाथ हैं । न्याससमूह—शरीर, देवी का ज्ञान—आत्मा, भक्ति—शिर, श्रद्धा—हृदय, कौशल—नेत्र माना गया है । यज्ञ-पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण होने पर ही फल देता है । अङ्ग की हीनता अथवा आधिक्य दोनों पापदायक है ।

समय और स्थान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और मङ्गलवार साथ हों तो यह महाभूत दिन कहलाता है । यदि इसी दिन पुष्य नक्षत्र हो तो यह मुहूर्त्त अनन्त फलप्रद होता है । श्मशान में शव के ऊपर बैठकर पूजा की जा सकती है । अपने घर के अन्दर, बाहर, नदी-नद का

तट, कामरूप जालन्धर आदि पवित्र पीठ, शिवालय, शिवक्षेत्र, शिवलिङ्ग के समीप, विष्णुक्षेत्र, विष्णु का मन्दिर, विष्णुपीठ ये सब साधना के उत्तम स्थल हैं।

पचीसवाँ पटल—अनुष्ठान के लिये पवित्र क्षेत्रों के वर्णन क्रम में कहा गया है—नदी तीर, पर्वत की गुफा, पर्वत की चोटी, तीर्थस्थान, नदियों के सङ्गम, पवित्र वन, वेल का मूल, पर्वत के पास की भूमि, तुलसी का वन, वृक्षशून्य गोशाला, शिवालय, पीपल आँवला के नीचे की भूमि, गोशाला, जल के मध्य की भूमि, देवालय, समुद्र का तट, अपना घर ये सब पुण्य स्थान है। वाराणसी में की गयी पूजा पूर्णफल देती है। उससे दो गुना फल द्वारिका में की गयी पूजा से मिलता है। प्रयाग पुष्कर नन्दिकुण्ड आदि में गुणित फल मिलता है। कामाख्या योनिमण्डल में की गयी पूजा सबसे अधिक फल देती है।

साधक को अशौच दोष नहीं लगता। गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य से पूजा करनी चाहिये। चक्रदेवता की पूजा पुष्पाञ्जलि से करनी चाहिये। कुमारी भोजन भी आवश्यक होता है। अपने हदृय के अन्दर देवी की पूजा सर्वोत्कृष्ट होती है। इसमें अपने शरीर को ही अलंकृत करना, मन्द मुस्कानयुक्त होना, सुमधुर भोजन करना, सुखदुःख में समभाव रहना इत्यादि कृत्य विहित हैं। किसी सङ्कट की स्थिति में मानस पूजा का त्याग नहीं करना चाहिये।

मनुष्य लोक में भारतवर्ष श्रेष्ठ है। वहाँ के लोग पुण्यवान् और ज्ञानी हैं। अन्य देशों के लोग जो पशुवत् जीवनयापन करते हैं वे मरने के बाद प्रेतलोक में जाते हैं। इसी प्रकार भक्ष्याभक्ष्य का विचार न कर धनचिन्तापरायण लोग निशाचरलोकवासी होते हैं। जो लोग केवल शिश्न और उदर के सुख में लगे रहते हैं वे यक्ष लोक में जाते हैं। आचारवान् पुरुष पितृलोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य गङ्गा के आसपास भारत के मध्य देश में रहते हैं, दान-भोगपरायण, श्रुति स्मृति के अनुसार आचरण करने वाले हैं वे लोग देवलोक को प्राप्त होते हैं। देवी के त्रैगुण्यहारी पीठ पर जो योगी भोगयुक्त होकर भी देवी के साथ तादात्म्य भाव से अर्चन पूजन करता है वह देवी की कृपा से निस्त्रैगुण्यवान् हो जाता है।

छब्बीसवाँ पटल—इस पटल में दीक्षा, सद्गुरु, सत् शिष्य के लक्षण आदि का वर्णन है। दीक्षा उसे कहते हैं जो १. दिव्य ज्ञान दे और २. पाप का क्षय करे। भगवान् शिव दक्षिणामूर्त्ति के रूप में प्रथम गुरु हुए। इन्होंने तीन शिष्यों प्रकाश विमर्श और आनन्द की रचना की। ये तीन गुरु दिव्यौघ कहलाये। इनसे तीन और उनसे भी तीन उत्पन्न हुए। इस प्रकार नव गुरु मण्डली बनायी गयी।

गुरु का लक्षण बतलाते हुए कहा गया कि उसे सुन्दर शान्त दान्त निर्लोभी तथा अनेक गुणों से युक्त होना चाहिये। ऐसा ही गुरु शिष्य का कल्याण करता

है । इसके विपरीत गुणों वाला दुःखदायी होता है । शिष्य को भी विशुद्ध शरीर मुख वाला, परनिन्दा विमुख, दयावान्, अलुब्ध, तथा अन्य श्रेष्ठगुणों से युक्त होना चाहिये । गुरु-मन्त्र-देवता में दृढ़ भक्ति वाला शिष्य गुरु को सुख देता है । शुभ मुहूर्त्त में शिष्य गुरु के पास जाय और उनकी आज्ञा से उनके समीप बैठकर उनकी सेवा करे । गुरु के साथ ऋण का आदान-प्रदान क्रय-विक्रय नहीं करना चाहिये । उनकी छाया आदि का लङ्घन नहीं करना चाहिये ।

गुरु को चाहिये कि वह एक वर्ष तक शिष्य को अपने पास रखे और उसके बाद परीक्षा कर उसे दीक्षा दे । जहाँ तक दीक्षाकाल का प्रश्न है शरत्काल एवं वैशाख मास श्रेष्ठ हैं । फाल्गुन अगहन और ज्येष्ठ मध्यम तथा शेष मास अधम हैं । शुद्ध उत्तम काल में ही दीक्षा देनी चाहिये । दीक्षा तीन प्रकार की होती है—१. मान्त्री—जो मन्त्र पूजन ध्यान योग आदि के द्वारा की जाय वह मान्त्री दीक्षा होती है । २. सिद्ध पुरुष अपनी शक्ति को देखकर उसके द्वारा शिशु को जो दीक्षा देता है वह शाक्ती दीक्षा होती है । ३. आचार्य शिष्य की अभिसन्धि के विना गुरु केवल कृपाकर जो दीक्षा देता है वह शाम्भवी दीक्षा कही जाती है ।

आगे चलकर अधिवास-विधि, वास्तु देवता के लिये बलि तथा क्षेत्रपाल बलि की चर्चा की गयी है । मण्डप-निर्माण के सन्दर्भ में कहा गया कि उसमें सुन्दर वेदी पताका ध्वजा आदि रहने चाहिये । कदलीस्तम्भ आदि से सुशोभित उस मण्डप, चक्रराज तथा दीक्ष्य वटु का पञ्चगव्य से अभिमन्त्रण करना चाहिये । इससे सकल पदार्थ की शुद्धि तथा पापों का नाश होता है । तत्पश्चात् स्नान के द्वारा शुद्ध होकर शिशु यज्ञ करे । होम के बाद स्वप्नमात्र का उच्चारण करते हुए गुरु शिष्य को पूर्व शिर कर सुलाये । प्रातःकाल उठकर शिष्य स्वप्न की चर्चा गुरु से करे । अशुभ स्वप्न होने पर मूलमन्त्र से अग्नि में एक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये ।

सत्ताईसवाँ पटल—इस पटल का विषय मण्डप-प्रवेश, होम, पञ्चमकार, शिष्य पाश दहन, पादुका इत्यादि है । शिष्य को चाहिये कि वह आचार्य एवं ब्राह्मणों का वरण कर नारी तथा ब्राह्मणों के साथ जयघोष करते हुए मण्डप में प्रवेश करे । वहाँ कलश का पूजन कर उसमें वह्नि सोम और सूर्य की उनकी कलाओं के साथ पूजा करे । आँख बन्द कर हाथ की अञ्जलि में पुष्प लेकर फेंके । पश्चिम उत्तर पूर्व और ईशान कोण में फूलों का गिरना शुभ और अन्य दिशाओं में गिरना अशुभ माना जाता है । अशुभ दिशा में पुष्पपात होने पर होम करना चाहिये । इसके बाद अङ्गों एवं आवरण देवताओं की पूजा कर होम करने के बाद त्रिपुरसुन्दरी के लिये त्रिमधु से हवन करे । मन्द अग्नि में हवन नहीं करना चाहिये । ऐसा करने पर रोग या मृत्यु होती है । धूमाकुल अग्नि में हवन

करने पर यजमान अन्धा होता है और पुत्र आदि के सहित नष्ट हो जाता है ।

होम के अनन्तर शिष्य का मुख ढँककर देवी से प्रार्थना करनी चाहिये कि इस दीन शिष्य के ऊपर दया करो । इसके पश्चात् गुरु शिष्य को सिद्धान्त सुनाये। इसके पश्चात् अन्तरात्मा के स्वरूप का निरूपण करे । यही पुरुषार्थ है । गुरु के सम्प्रदाय का ज्ञान सिद्धि देता है । गुरु के वाक्यों में विश्वास से सर्वसिद्धि मिलती है । गुरु मन्त्र देवता मन और प्राण की ऐक्य भावना से अन्तरात्मा का ज्ञान होता है । पञ्चमकार का सेवन ब्रह्म का अभिव्यञ्जक है क्योंकि ब्रह्म आनन्दरूप है और वह उनके सेवन से प्राप्त होता है ।

इसके पश्चात् इस पटल में निषिद्ध कर्मों का वर्णन किया गया है । किसी भी सम्प्रदाय की निन्दा नहीं करनी चाहिये । काम क्रोध लोभ तथा लोकनिन्दित कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये । फलरहित कर्म नहीं करना चाहिये । शिव को अग्नि समझकर उसमें अपनी आहुति देनी चाहिये । वेद आदि समस्त शास्त्र वेश्या के समान हैं केवल आत्मविद्या ही वरेण्य है । उसी की दीक्षा देनी चाहिये। गुरु को यह भावना करनी चाहिये कि शिष्य के शिर पर शिवशक्ति के चरणों से गिरे अमृत से शिष्य का मांसबृंहित शरीर धुल गया है । फिर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक जलती हुई अग्नि के समान उष्ण एवं करोड़ों सूर्य के समान दीप्यमान कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा शिष्य के पापरूपी पाश को जला देना चाहिये । एतदनन्तर गुरु शिष्य से कहे कि वह स्वयं शिव हो गया है—ऐसी भावना करे । तत्पश्चात् स्वयं शिव होकर सन्देहहीन होता हुआ गुरु शिष्य के शिर का शिवहस्त से स्पर्श करे एवं अपनी आत्मा से शिष्य की आत्मा का संयोजन कर दे । वर्णात्मक चौकोर यन्त्रराज पर शिष्य को बैठाकर कलश से मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ गुरु शिष्य को स्नान कराये । इसके पश्चात् उसे अलंकृत कर अपने पास बैठाये । उसके अङ्गों में मातृकान्यास कर विद्याङ्गन्यास करे । शिष्य के मुख से वस्त्र हटाकर तत्त्वमन्त्र का उच्चारण करता हुआ ग्रासमुद्रा से उसे भोजन कराये ।

गुरु बालाबीज से युक्त पादुका को शिष्य को दे दे । यह बालामन्त्र शिष्य के दाँयें कान में सुनाये । अपने पैर को शिष्य के शिर पर रखकर मन्त्रों को एक या अनेक बार सुनाये । शिष्य के हाथ से अपने अङ्गों का स्पर्श कराने के बाद शिष्य का नामकरण करे । 'आनन्दनाथ' के पहले दो तीन या चार अक्षर जोड़ना चाहिये । इसके बाद आचार का उपदेश देकर हृदयस्थ चैतन्य का स्पर्श करे । शिष्य का आलिङ्गन कर शिष्य को पूर्ण तथा आत्मरूप समझे । अपनी शक्ति के क्षय की पूर्त्ति के लिये गुरु एक हजार आठ बार मूल मन्त्र का जप करे ।

तत्पश्चात् शिष्य कृपणतारहित होकर गुरु को सर्वस्व समर्पित कर दे । गुरु

की स्तुति करने के बाद गुरु शिष्य को आशीर्वाद दे कि हे पुत्र! परादेवी भोग और मोक्ष दोनों को देती है इसलिये तुम तन्मनस्क हो जाओ । तुम्हारे अन्दर द्वैत भाव न हो । पैर पर पड़े शिष्य को दोनों हाथों से उठाकर गुरु उसे आशीर्वाद दे कि मैं प्रसन्न हूँ मेरे आशीर्वाद से तुम्हें सब सिद्धियाँ सुलभ हों । उक्त अनुष्ठान के बाद शिष्य कुमारी ब्राह्मण दीन अन्धे कृपण आदि को भोजन कराये । उनसे भी आशीर्वाद लेकर जाति बन्धुओं को पुष्प माला भोजन आदि से तृप्त करने के बाद वह सर्वमन्त्र का अधिकारी बन जाता है ।

अट्ठाईसवाँ पटल—इस पटल में त्रिपुरसुन्दरी की पुरश्चरण-विधि का वर्णन किया गया है । गुरु की आज्ञा लेकर उसके बाद अपने को देवीमय समझते हुए एक हजार आठ या पचार हजार जप करने के बाद पुरश्चरण करना चाहिये । गुरु की आज्ञा लेना अनिवार्य है । किसी भी मन्त्र की सिद्धि में तीन प्रतिबन्धक होते हैं—१. आलस्य, २. अश्रद्धा और ३. पूर्वजन्मकृत पाप । तीनों को दूर करने के लिये पुरश्चरण आवश्यक होता है । यह कार्य गुरु से करवाना चाहिये । गुरु के अभाव में आचारवान् ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिये ।

पुरश्चरण के लिये किसी पवित्र क्षेत्र का चयन कर चतुर्दशी अष्टमी या अमावस्या के दिन इसका प्रारम्भ करना चाहिये । जिस ग्राम नगर या देश में पूजा होनी है वहाँ दीपस्थान का विचार कर कूर्मचक्र की रचना करनी चाहिये । फिर उस चक्र में दीप स्थान का निर्णय कर जप पूजा का आरम्भ करना चाहिये। प्रणव अक्षमाला और मायाबीज ये तीन अमृत है । इन तीनों के योग से दुष्टमन्त्र भी सिद्ध हो जाता हैं । वर्णमाला के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की माला भिन्न-भिन्न लक्ष्य की सिद्धि देती है जैसे—वाक्‌सिद्धि मोक्ष के लिये मोती की, वशीकरण के लिये मूँगा की, भोग मोक्ष तथा अनन्त फल के लिये रुद्राक्ष, मारण उच्चाटन आदि में खोपड़ी की माला प्रशस्य होती है । एक प्रकार की माला से जप का प्रारम्भ करने पर बीच में दूसरी माला से जप नहीं करना चाहिये ।

अनुष्ठान काल में दही दूध घी आदि विहित अन्न ग्रहण करना चाहिये । उड़द गुड तेल मांस गाजर आदि निषिद्ध पदार्थों का सेवन वर्जित है । रात्रि में जप नहीं करना चाहिये । भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, मौन, अनसूया के नियमों, नित्यपूजा, नित्यदान आदि बारह नियमों का पालन मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है । स्त्री शूद्र पतित से बातचीत, असत्य कुटिल वचन वर्जित है । जप होम पूजन के समय सभ्य लोगों से भी भाषण न करे । गीत नृत्य अनुलेप प्राणिहिंसा असङ्कल्पित कार्य, उष्णोदकस्नान क्षौर देवता को अनिवेदित भोजन का त्याग करना चाहिये । शिवाङ्ग को बाहर भीतर पञ्चगव्य से धोना चाहिये । स्नान भी पञ्चगव्य से करना चाहिये ।

अशुद्ध हाथ, नग्न, शिर ढँककर, आसनरहित होकर, चलते, खड़े होकर, अपवित्र स्थान में, प्रकाशरहित स्थान में, बात करते हुए जप का फल नहीं मिलता। एक बार मन्त्र से भिन्न शब्द का उच्चारण करने पर 'ॐ' कहकर जप करना चाहिये। छीङ्क जम्भाई, हवा खुलने, खाँसी इत्यादि आने पर जप रोककर आचमन करे फिर जप करे। प्रतिदिन शय्या को धुले। एकाकी शयन करे। देवता गुरु मन्त्र के ऐक्य को मन में सोचते हुए न बहुत विलम्ब और न बहुत शीघ्रता के साथ जप करे। जितनी संख्या का जप प्रथम दिन हुआ उतनी ही संख्या में नित्य जप करना चाहिये। न्यूनाधिक जप दोषाधायक होता है। दिन का लङ्घन नहीं करना चाहिये अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

जप की संख्या पूर्ण होने पर आँख में पानी लगाना चाहिये। केवल गुरु को प्रणाम करना चाहिये। त्रिकाल स्नान, सत्सङ्ग, देवता को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। जितना जप किया गया है उसका दशांश हवन सुविहित कुण्ड एवं सुसंस्कृत अग्नि में करने का विधान है। होम न कर सकने की स्थिति में होम की संख्या का दोगुना मन्त्र-जप करने की विधि है। यह हवन प्रतिदिन या केवल अन्तिम दिन किया जा सकता है। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये। मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजना कराना चाहिये। इसके पश्चात् अभिषेक अघमर्षण सूर्यार्घ्य जलपान और प्राणायाम में पाँच कृत्य और करने पड़ते हैं। गुरु को सब प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मण भोजन अत्यावश्यक अङ्ग है। इसके विना सब निष्फल हो जाता है।

उन्तीसवाँ पटल—प्रस्तुत पटल में मन्त्रसिद्धि और उसके अनेक प्रकार के अर्थों की चर्चा की गयी है। कौल-परम्परा के अनुसार अपने शरीर को यथाशक्ति अलंकृत कर साथ में रहने वाली शक्ति को भी उसी प्रकार आभूषण आदि से सुसज्जित कर ताम्बूलपूरित मुख होकर मध्य रात्रि में जप करना चाहिये। मूलाधार हृदय त्रिकोण और शिर के त्रिकोण क्रमशः स्वयम्भू बाण एवं इतर लिङ्ग कहे जाते हैं। इनमें एक-एक लाख जप करने का नियम है। ऐसा करने पर जापक देववत् हो जाता है। इसके पश्चात् नवलाख जप करना होता है। इससे सिद्धियाँ मिलती हैं। एक करोड़ जप होने पर मन मन्त्रमय हो जाता है। ऐसा होने पर ध्यान का ब्रह्मार्पण होने के बाद साधक सर्वज्ञ हो जाता है।

जप के नव स्थान हैं—१. मूलाधार, २. मेढ्र (= लिङ्ग), ३. नाभि, ४. हृदय, ५. कण्ठ, ६. भ्रूमध्य, ७. भ्रूमध्य के ऊपर, ८. लम्बिका और ९. लम्बिकोर्ध्व भाग (= सहस्रार)। इन नव स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप एवं प्रभा वाले लिङ्ग का ध्यान करते हुए इन नव स्थानों का भेदन करने के बाद पुनः कुण्डलिनी को मूलाधार में ले आना चाहिये। वहाँ त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र का नव लाख जप करने पर साधक दूसरा शिव हो जाता है। मन्त्र का जप मन्त्र को

जात एवं मृत सूतक से हीन करके करना चाहिये । सूतकरहित होने पर मन्त्र चैतन्य एवं वीर्य सम्पन्न हो जाता है अन्यथा वह वर्णसमूह मात्र जड़ रहता है ।

मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं—भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ । भावार्थ का अर्थ है अक्षरार्थ । इसमें मन्त्र का स्वरूप शिव शक्ति के यामल रूप का समझा जाता है क्योंकि मन्त्रों के अक्षर या तो शिव या शक्ति के प्रतीक होते हैं । त्रिपुरा मन्त्र का पहला भाग = हसकलह्रीं—वाग्भव कूट है । यह वामा शक्ति का सङ्केतक है । इसके देवता ब्रह्मा हैं और यह पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध है । दूसरा भाग = हसकहलह्रीं कामराजकूट है । यह ज्येष्ठा शक्ति से संवलित विष्णुदैवत तथा दक्षिणाम्नाय से सम्बद्ध है । तीसरा भाग सकलह्रीं शक्तिकूट है । यह रौद्री शक्ति से संवलित रुद्रदैवत तथा पश्चिमाम्नाय से सम्बद्ध है । इन तीनों कूटों के अन्त में स्थित 'ह्रीं' अम्बिका शक्ति का द्योतक है । हकार अग्नि रूप होने के कारण भेद का संहार करता है । रेफ कालाग्नि रूप होने से पापों का नाश करता है । बिन्दुयुक्त ईकार अमृतत्व की उत्पत्ति कर कामनाओं की पूर्ति करता है । इसी प्रकार हसकलह्रीं आदि तीनों भाग सृष्टि स्थिति संहार को बतलाते हैं । 'ह्रीं' का ईं शिव-शक्ति की यामल अवस्था जिसे अनाख्या कहते हैं, को बतलाता है।

जहाँ तक सम्प्रदायार्थ का प्रश्न है हसकलर ये वर्ण क्रमशः आकाश जल वायु पृथिवी एवं अग्नि के द्योतक हैं । यह विश्व पञ्चभूतमय है । त्रिपुरसुन्दरी विश्वमयी है । इन भूतों में पन्द्रह गुण हैं । वे इस प्रकार हैं—आकाश का गुण शब्द, वायु का शब्द स्पर्श, तेज का शब्द स्पर्श रूप, जल का शब्द स्पर्श रूप और रस तथा पृथिवी का उक्त चार के साथ गन्ध । मूल मन्त्र में भी पन्द्रह अक्षर हैं । इनमें स्वरों तथा व्यञ्जनों की संख्या ३७ है । वह इस प्रकार है—ह्+अ, स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र्+ईं+म् । ह+अ, स्+अ, क्+अ, ह्+अ, ल्+अ, ह्+र् ईं+म् । स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र् ईं+म् । ये छत्तीस हुए । इनकी समष्टि को एक मान कर कुल संख्या सैंतीस होती है । उक्त छत्तीस वर्ण छत्तीस तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निगर्भार्थ में शिव गुरु शिष्य एवं मन्त्र की एकता का प्रतिपादन होता है ।

कौलिकार्थ के विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि यहाँ मन्त्र यन्त्र और गुरु का ऐक्य प्रतिपादित होता है । यन्त्र या चक्र एक सौ ग्यारह देवता का उत्कृष्टतम रूप होता है । उनमें त्रिपुरसुन्दरी मुख्य देवता है । इच्छा ज्ञान क्रिया, नवग्रहों, सूर्य चन्द्र और अग्नि में भी वही स्फुरित होती है । ज्ञान-कर्म इन्द्रियों, उनके विषयों, मन बुद्धि अहङ्कार में सर्वत्र वही प्रकाशित होती है । अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, डाकिनी हाकिनी आदि छह योगिनी, अकच आदि आठ वर्ग,

प्राण अपान आदि दश वायु, जीवात्मा परमात्मा, राशि, बीज बिन्दु आदि सबके सब देवी के ही स्वरूप हैं। सम्पूर्ण विश्व उसी का स्फार है। गुरु का देह भी देवी के देह-सदृश होता है। उसकी कृपा से शिष्य भी देवीरूप हो जाता है।

शिष्य शरीरस्थ सहस्रार के मध्य में त्रिकोण, वहीं पर बिन्दु में क्लीं बीज का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार ललाट के ऊर्ध्व भाग में स्थित मूलाधार कुण्डलिनी, ललाट के मध्य में तीन इन्द्र (= ल) इसी प्रकार अन्य शारीर स्थानों में भिन्न-भिन्न अक्षररूपा देवी का ध्यान करना चाहिये। सर्वरहस्यार्थ के सन्दर्भ में कहा गया है कि मूलाधार जो कि 'ऐं' के आकार का है, में अँड़तीस कलाओं से युक्त पचास वर्णों वाली कुण्डलिनीरूपा मन्त्र विद्या का ध्यान करना चाहिये। महातत्त्वार्थ का तात्पर्य यह है कि आत्मतत्त्व को निष्फल परमसूक्ष्म प्रकाशानन्दरूप एक साथ विश्वोत्तीर्ण-विश्वमय तत्त्व से जोड़ देना चाहिये।

तीसवाँ पटल—इस पटल में अजपा विद्या से लेकर तीन मन्त्र कूटों का वर्णन किया गया है। हंस बीज (= हं सः) को अनुलोम, विलोम (= सोऽहम्) जपना चाहिये। इस बीज में हकार शुक्ल और सकार रक्त वर्ण का है। इस मन्त्र की भावना की जाती है, जप नहीं। ह प्राण का और स आत्मा का प्रतीक है। इसी प्रकार ह शिव का और स शक्ति का प्रतीक है। दोनों के ऐक्य की भावना से मोक्ष मिलता है। संस्कृत व्यञ्जन वर्णों के साथ स्वर मिलकर उन्हें सप्राण बनाते हैं। इसी प्रकार बिन्दु और विसर्ग उन्हें चेतन बनाते हैं। इसलिये अक्षरों का स्वर एवं बिन्दु का विसर्गयुक्त उच्चारण करना चाहिये।

बोधिनी विद्या के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया कि ऐं श्रीं ह्रीं हंसः ईं सोऽहं ह्रीं श्रीं ऐं बोधिनी विद्या है। ओं ह्रीं श्रीं हंसः ईं सोऽहं श्रीं ह्रीं ओं यह दीपिनी विद्या है। वाग्भव बीज को जीवनी विद्या कहते हैं। इसी के द्वारा साधक कुल अर्थात् मूलाधार से अकुल अर्थात् सहस्रार तक जाता है। फिर वहाँ से मूलाधार तक आता है। इस प्रकार आवागमन करता हुआ जीव ब्रह्मग्रन्थि का भेदन कर जिह्वा तक आता है। वहाँ अमृत-पान करता है। सञ्जीवनी मन्त्र का एक लाख जप सर्वपापहर होता है। इसी प्रकार कामराजकूट में कामकला बीज की सिद्धि से साधक समस्त संसार को वश में कर लेता है। कामकला बीजस्वरूपा विद्या उगते हुए सूर्य अथवा लाक्षारस के समान रक्त वर्ण की होती है। यह भी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। सारे भुवनों के जीवन को आत्मसात् कर लेती है। तीसरा कूट शक्तिकूट है। इसका भी मूलाधार से शक्तिकूट तक और फिर मूलाधार तक आना-जाना होता है। यह शरीर में अमृत की धारा बरसाता है। स्थावर जङ्गम विषों तथा महारोग का नाशक है।

कामकला का वर्णन करने हुए बतलाया गया कि यह तीन प्रकार की है—

स्थूल सम और सूक्ष्म । इसका स्थूल रूप इस प्रकार है—आकाश बिन्दु, चन्द्र सूर्य दो स्तन हैं । यह त्रिलोकी शरीर वाली है । एक दूसरे रूप में यह ईकार मुख अग्नि चन्द्र दोनों स्तन और हार्ध कला योनि है । एक अन्य रूप में ऊर्ध्व बिन्दु मुख, दो अधो बिन्दु स्तनद्वय, अन्य वर्ण शेष अङ्ग है । यह रूप बाह्य भावना के लिये है । आन्तर भावना में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक कुण्डलिनी ही कामकला है । षट्चक्र भेदन करने वाली यह चराचर में व्याप्त है। यह त्रयीमयी है । सामवेद इसका मुख ऋग् यजुः दोनों स्तन है । अथर्ववेद हार्ध कला है । इसका चौथा स्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही है ।

अभक्त और अशिष्य को इसे नहीं देना चाहिये । ऐसा करने पर साधक का विनाश हो जाता है । लोभ मोह या भय से इसका उपदेश करने वाला शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।

इकतीसवाँ पटल—इस पटल में होम और उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है। चौकोर हवनकुण्ड में पलाश कुसुम्भ नागकेशर महुआ लालकमल आदि का हवन सर्वसिद्धिप्रद होता है । त्रिकोण कुण्ड त्रिपुरासुन्दरी को प्रसन्नता देने वाला होता है । स्थण्डिल पर भी होम किया जा सकता है । स्थण्डिल के ऊपर यन्त्र बनाकर मध्य में पुष्पाञ्जलि देकर हवनीय द्रव्य और उपकरण का संग्रह करने के बाद कुश-कण्डिका करनी चाहिये । मूलमन्त्र का उच्चारण कर 'स्थण्डिलाय नमः' से स्थण्डिल की पूजा कर त्रिकोण के मध्य कामेश्वर-कामेश्वरी के यामल रूप का ध्यान पूजन कर हवन करने की विधि है । इस क्रम में कामेश्वरी के गर्भ में अग्नि का ध्यान कर पुनः उसे एवं बाह्य अग्नि को एक कर पूजन करना चाहिये। षडङ्ग यागकर मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि का गर्भाधार आदि संस्कार करना होता है । अन्य कृत्य का सम्पादन भी वर्णित है । यह नित्य होम है । काम्य होम में मल्लिका मालती दुग्ध त्रिमधु छागमांस आदि के हवन से होता को प्राप्त इष्टसिद्धि की चर्चा की गयी है। पुष्प का सम्पूर्ण हवन करना चाहिये तोड़कर नहीं । लावा एक मुट्ठी, घी एक कर्ष, मधु आधा चुल्लू इसी प्रकार अन्य द्रव्यों की हवनीय मात्रा का उल्लेख कर यह कहा गया कि तत्तद् वस्तुओं की पृथक्-पृथक् उक्त परिमाण में आहुति देने पर सर्वसिद्धि मिलती है । सारी वस्तुओं को मिलाकर हवन करने में कोई परिमाण नहीं है ।

बत्तीसवाँ पटल—इस पटल में कहा गया कि पहले त्रिलोह के द्वारा एक अङ्गूठी बनाने की विधि बतलाकर उसे पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से धोकर रखना चाहिये । वर्णमय कमल के ऊपर कलश की स्थापना कर उसके मध्य में उस अङ्गूठी को डाल देना चाहिये । उसमें परा देवी सम्मोहनी का आवाहन कर पूजन करना चाहिये । मातृकान्यास करने के पश्चात् वर्णमयी देवी तथा उसके चारो

ओर दिशाओं में रखे कुम्भों में व्यापिनी आदि की पूजाकर मुद्रिका का स्पर्श करते हुए जप करना चाहिये । जप के बाद होम का विधान है । बाद में शिष्य का अभिषेक कर उस अङ्गूठी को शिष्य को पहना देना चाहिये । यह सर्वरक्षाकरी मुद्रा तर्जनी में धारण की जाती है ।

रक्षाकरी मुद्रा नवरत्नों से भी बनती है । इस क्रम में पहले तत्तत् रत्नों में तत्तद् ग्रहों का आवाहन पूजन करना पड़ता है । फिर देवी का आवाहन पूजन कर मुद्रा को धारण करना पड़ता है । इससे सारे अनिष्ट दूर होते हैं तथा धन-धान्य की वृद्धि होती है ।

तैतीसवाँ पटल—इस पटल का विषय श्रीचक्र की प्रतिष्ठा है । प्रतिष्ठा तीन प्रकार की होती है—१. चक्रप्रतिष्ठा, २. मूर्त्तिप्रतिष्ठा और ३. शिष्यप्रतिष्ठा । शिष्य की प्रतिष्ठा दीक्षा से होती है । मूर्त्ति के सन्दर्भ में रत्न सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठा की जाती है । चक्रराज श्रीचक्र की प्रतिष्ठा शुभ घर में की जाती है । अधिवास आदि कृत्यों का सम्पादन कर आचार्य पहले पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से चक्र का प्रक्षालन कर उसकी विधिवत् पूजा करने के बाद उसे पलङ्ग पर रखे । दिव्य अनुलेप से अनुलिप्त कर सुवस्त्र से ढँककर धूप दीप दिखाये । इक्यासी कलशों की स्थापना कर चौकोर मण्डल में गुरु शिष्य के साथ शयन करे ।

प्रातःकाल सन्ध्या आदि करने के बाद विधिवत् मण्डप में प्रवेश करे । पूर्व की भाँति पूजन आदि सम्पन्न कर चक्र को इक्षुरस आदि से स्नान कराकर भद्रपीठ पर रखे । उस चक्र में देवी त्रिपुरसुन्दरी की भावना करनी चाहिये । आवाहन आदि कर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से देवी की उस चक्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिये । इसी क्रम में यहाँ प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उद्धार भी बतलाया गया है । चक्र का स्पर्श करते हुए प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राणप्रतिष्ठा की जाती है । तत्पश्चात् तीन दिनों तक उत्तम उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । एक सौ आठ बार प्रतिदिन हवन भी करना होता है । नाना प्रकार के वाद्य आदि से महोत्सव कर गुरु को दक्षिणा तथ प्रमदा स्त्रियों एवं ब्राह्मणों को भोजन, विविध वस्तु दान आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये । देवी की पूजा यन्त्र मन्त्र अस्त्र शस्त्र प्रतिमा अग्नि शिवलिङ्ग आदि में की जाती है अन्यत्र नहीं ।

चौंतीसवाँ पटल—प्रस्तुत पटल में कुलाचार एवं उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है । कौल परम्परा में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के लिये मांस मद्य मैथुन आवश्यक अङ्ग हैं । इस अर्चा में उपवास अथवा व्रत आवश्यक नहीं है । दुर्गन्धियुक्त, रागहीन, अलङ्काररहित तथा रक्तपुष्प के विना अविश्वस्तहृदय अथवा अन्यासक्तचित्त से देवी की उपासना नहीं करनी चाहिये । तुलसी के पत्र-पुष्प से

देवी की पूजा निषिद्ध है । कन्यायोनि, नग्नस्त्री, निर्वस्त्रस्तन आदि को नहीं देख़ना चाहिये । भोजना उतना ही करना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ रहे । कलिकाल में निराहार व्रत वर्जित है ।

जहाँ तक बलिदान का प्रश्न है साधक को स्वयं पशुमारण नहीं करना चाहिये । जब दूसरा कोई पशु की गर्दन को अलग कर रहा हो उस समय 'उद्बुध्यस्व पशो......' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । एक ही पशु की बलि देने का विधान है । ब्रह्मज्ञान होने पर बलि नहीं देनी चाहिये । ब्रह्म, शक्ति और महेश्वर एक ही अर्थ के वाचक है । लिङ्गभेद केवल शाब्दिक है ।

देवी की पूजा करते समय थूकना छींकना बात करना अधोवायु छोड़ना निषिद्ध है । ऐसा करने वाला योगिनी का भक्ष्य हो जाता है । लोकधर्म का पालन करना चाहिये । पुरुषों के विषय में देवबुद्धि, गुरुपुत्र गुरुस्त्री में गुरुभाव रखना चाहिये । विशेष पर्वों पर कुलवृक्ष कुलान्नों और कुलपल्लवों से विशेष पूजा करनी चाहिये । स्वस्तुति परनिन्दा से दूर रहना चाहिये । अपने शरीर को वस्त्र अनुलेप आदि से अलंकृत रखना चाहिये । मदिराक्षी के साथ मदिरापान मत्त रहना चाहिये । लोगों के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग अनासक्त चित्त होकर करना चाहिये । इन्द्रियों के चञ्चल होने पर पर्यटन करना चाहिये । अलङ्कार आदि से स्वयं विभूषित होते हुए शक्ति को भी विभूषित रखना चाहिये । उसे अपने से अभिन्न और अपने को त्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न समझने वाला साधक परमगति को प्राप्त होता है । वस्त्र भूषण आदि से पहले राजस फिर तामस और अन्त में सात्त्विक भावप्राप्त कर चतुर्थ अवस्था में पञ्चमकारपरायण होकर दिव्य भाव में स्थिर होना ही चरम लक्ष्य है ।

जिस साधक या राजा के राज्य में परिजन भाईबन्धु दुःखी तथा स्त्रियाँ दुश्चरित्र होती हैं; प्रजा पीड़ित रहती है उसके राज्य में पग-पग पर विपत्ति होती है और आयुष्ट्व तथा लक्ष्मी का नाश होता है । आयु और शान्ति के लिये राजा को चाहिये कि वह एक करोड़ होम करे । पुरश्चरण भी करने का विधान है । मद्यपान से जिसका ज्ञान लुप्त हो जाय और मन में विकार उत्पन्न होने लगे, वह अधोगति को प्राप्त होता है । मद्यपान से प्रलाप उन्माद क्रोध हास्य आवेश असूया आदि दोष उत्पन्न होते हैं । किन्तु उसका संस्कार कर अमृत रूप से पीने पर स्थितप्रज्ञता, समत्वभाव, ब्रह्मानन्द, निमेषहीनता, विकाररاहित्य, मधुर भाषण आदि गुण साधक के अन्दर आ जाते हैं । वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्वज्ञता आदि ऐश्वरी गुणों की अधिकता होने लगती है । अष्ट सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं ।

स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि साधक को चाहिये कि वह उनको सन्तुष्ट और तृप्त रखे । एक पतिव्रता भार्या ही पर्याप्त होती है । कुलटा स्त्री

मूषक की भाँति कुल का क्षय कर देती है । जो स्त्री विना किसी प्रयत्न के साधक के साथ रमण की इच्छा करे वह भी स्वकीया ही मानी जाती है । धन आदि के द्वारा हठात् आकृष्ट कर परायी स्त्री के साथ गमन करने वाले नरक मे जाते हैं । यदि स्त्री दु:शील हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये उसकी प्रताड़ना या हत्या पाप है ।

पैंतीसवाँ पटल—इस पटल में काम्य पूजा आदि का वर्णन है । काम्यार्चन को अत्यन्त गुप्त रूप से करना चाहिये । प्रकट होने पर लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती । इस अनुष्ठान में शक्तिपूजा आवश्यक अङ्ग है । शक्ति से घृणा नहीं करनी चाहिये और दर्पवश उसे पुष्प से भी नहीं मारना चाहिये । शक्ति को भक्ति के साथ प्रणाम करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है । त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में होम आवश्यक है । होम के विना शक्तिपूजा निष्फल होती है । इसलिये शक्त्यर्चन आवश्यक है । इसमें जाति का ध्यान नहीं रखना चाहिये ।

शक्ति की पूजा निर्जन स्थान में आधी रात को की जाती है । साधक सर्वाभरणभूषित चन्दन आदि से युक्त होकर शक्ति को भी अलंकृत कर मूल्यवान् विस्तर पर उसे बिठाये । पानपात्र भी रहना चाहिये । मांस मत्स्य मुद्रा का भी होना अनिवार्य है । देवता की भाँति उसकी पूजा कर उसे सामने बैठी हुई साक्षात् कामेश्वरी समझना चाहिये । अपने को कामेश्वर समझते हुए शक्तिजिह्वा से विलोडित मद्य को बार-बार पीना चाहिये । मदिराघूर्णित लोचन तथा नग्न होकर शक्ति से प्रार्थना करनी चाहिये । कौलिक पूजा में बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती । शारीरिक क्रियायें ही उपचार होती हैं । जैसे नखक्षत दन्तक्षत पुष्प, आलिङ्गन चन्दनलेप, चुम्बन स्तुति होती है । इस प्रकार कुलपूजा करने वाला कुलीन कहलाता है । एक मास तक पूजा करने से आकर्षणसिद्धि प्राप्त होती है । इसी प्रकार छह मास में वह रुद्र हो जाता है । कौलपूजा रात्रि में की जाती है किन्तु बाह्यपूजा प्रात: ही करनी चाहिये । मध्याह्न पूजा को योगिनी एवं सायं पूजा को राक्षसी ले लेती हैं ।

छत्तीसवाँ पटल—इस पटल में परशक्ति का आनयन, कौलिकी दीक्षा, वसन्तसुन्दरी ध्यान आदि की चर्चा की गयी है । दूसरी अदीक्षित स्त्री के साथ सङ्गम करने से सिद्धि की हानि होती है । अपनी शक्ति (पत्नी) को गुरु के पास ले जाकर दीक्षित करना चाहिये । गुरु उसे अपनी पुत्री समझे । दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी को कच्चे शराब में षट्कोण यन्त्र बनाकर सिन्दूर से स्त्री की प्रतिमा बनाये। कपोल पर साध्य का नाम मन्त्र से सम्पुटित लिखकर समस्त अङ्गों की सन्धियों में कामबीज लिखे । प्रतिमा के मुख में पुष्प का आसव देकर वसन्तसुन्दरी मन्त्र का जप करना चाहिये । अपनी शक्ति को बायें बिठाकर उसके

कन्धे पर अपना हाथ रखे। प्रतिमा के ऊपर न्यास करे। फिर पूर्वोक्त विधि से उसकी पूजा करनी चाहिये। देवी का ध्यान करते हुए एक लाख जप करना चाहिये।

इस प्रक्रिया में एक भिन्न प्रकार का होम विहित है। निर्जन शुद्ध स्थान में पद्मासन लगाकर बैठा हुआ साधक पूरक कुम्भक रेचक प्राणायामों के द्वारा नाडी-शोधन करे। नेत्रों को निमेषोन्मेषरहित कर नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करे। दाँत से दाँत ओष्ठ से अधर को लगाते हुए जिह्वा को तालु में सटाये। यह सुन्दरी मुद्रा है। सहस्रदल कमल में मूलाधार से उठी वायु से दीपशिखा के समान अमृतमण्डल को क्षुब्ध कर मूलाधार कमल में अमृतधारा का गिरते हुए ध्यान करे। इस प्रकार सात बार करना चाहिये। हृदयस्थ बाणलिङ्ग में आद्या भगवती की पूजा करनी चाहिये। यह पूजा भावनात्मक होती है जिसमें कुण्डलिनी पात्र होती है। छत्तीस तत्त्व गन्ध का काम करते हैं। अहिंसा आदि पुष्प हैं; इत्यादि।

सहस्रदल के मध्य सुन्दरी का ध्यान करना चाहिये। उसी कमल के मध्य योनियुक्त भैरवानन्द लिङ्ग का ध्यान करते हुए दोनों के ऐक्य से अमृतस्राव कर जिह्वा को गले के अन्दर संयुक्त कर उस अमृत को पीना चाहिये। पृथिवी में जल, जल में शून्य, शून्य में वायु उसमें ध्वनि, ध्वनि में नाद, नाद में बिन्दु, उसके मध्य ज्योति जो कि निराकारा निरात्मया है वही परा सुन्दरी है।

पृथिवी आदि का पृथिवी आदि में लय करते हुए ज्योति का लय ब्रह्म में, उसी में मन का लय करना चाहिये। मन के न रहने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता। कुण्डलिनीरूपी कुण्ड में सांसारिक प्रपञ्चरूपी हवि का होम करना चाहिये। यहाँ आत्मा अग्नि है। धर्म अधर्म हवि से वह अग्नि दीप्त है। सुषुम्ना के मार्ग से इन्द्रियों की वृत्तियों का होम किया जाता है। ऐसा करने से साधक चिन्मय ब्रह्म हो जाता है।

सैंतीसवाँ पटल—यह पटल शक्ति से सम्बद्ध है। वैदिक नियम के अनुसार स्त्री मोक्षमार्ग में बाधक होती है किन्तु तान्त्रिक साधना में वही मोक्ष का द्वार है। धर्म की गति विचित्र है। सर्वभोजी अग्नि, सर्वसेवी जल शुद्ध माना जाता है। इसी प्रकार मक्षिकोच्छिष्ट मधु, रक्त से बना गो दुग्ध आदि, अनर्थकारी मद्य सब के सब यज्ञोपयोगी माने जाते हैं। इसलिये जिस सम्प्रदाय में जो विहित है वही उसके लिये धर्मसाधन है। तान्त्रिक सम्प्रदाय में शक्ति तथा मद्य आदि अनिवार्य हैं किन्तु उनमें द्वैत भावना नहीं होनी चाहिये। विधिपूर्वक इनका सेवन मोक्षदायी होता है। मन के ब्रह्म में लीन एवं अद्वैत भाव को प्राप्त होने पर मेध्यामेध्य ग्राह्याग्राह्य भक्ष्याभक्ष्य का भेद नहीं रहता। यह भेद अविद्याजन्य है।

शक्ति को पराविद्या समझना चाहिये । उसी के अनेक नाम अनेक रूप अनेक शरीर हैं । शक्तियाग में मांस अमृत होता है । उसके लिये पशु का वध न करने वाला ब्रह्मघाती समझा जाता है । यदि वासना शुद्ध है तो मद्यपान भी पवित्र है । यह समस्त सृष्टि प्रकृति की रचना है । उसी की माया से मोहित जीव अपने को कर्त्ता समझता है । उसका कर्तृत्व स्फटिक मणि में जवापुष्प की रक्तता के समान है। इसलिये चित्त को ब्रह्म में लीन कर कर्म करने से मनुष्य पापपुण्य से लिप्त नहीं होता । जिस प्रकार दो कुम्भ से अथवा एक नाव से जल को पार करते हैं । उसी प्रकार कौलमार्ग या दक्षिण मार्ग से भवसागर को पार किया जा सकता है । यह सब माया शक्ति का खेल है । उसके प्रकृति विद्या अविद्या महाविद्या अनेक नाम है। ब्रह्मा आदि उसी की उपासना करते हैं । योग भोग आदि के द्वारा उसकी आराधना से भोग-स्वर्ग दोनों मिलते हैं । विना शक्ति को सन्तुष्ट किये मुक्ति नहीं मिलती । वेदमाता गायत्री शक्ति की उपासना से ही ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी और शिव-शक्ति के साथ मिलकर अपना-अपना कृत्य करते रहते हैं । जो लोग विष्णु भाव के उपासक हैं वे उसी भाव से उपासना कर भावसिद्धि प्राप्त करते हैं । यह क्रम पशुभाव उत्पन्न करता है । इस विषय में कहा गया कि विष्णु की प्रेरणा से शिव ने वैष्णव तन्त्र की रचना की ।

वैष्णव तन्त्र में शक्ति दो रूपों में वर्णित है—१. स्थूला और २. सूक्ष्मा । स्थूल रूप से वह देवी तीनों लोक को मोहित की हुई है । इसलिये लोग उस रूप में स्थित नारी को मारते पीटते और गालियाँ देते हैं । कुछ लोग उसको आभूषण वस्त्र सेवा सम्भोग से प्रसन्न रखते हैं । कुण्डलिनी शक्ति को प्राण के द्वारा सहस्रारस्थ परानन्द के साथ संयुक्त करने पर उससे निकलने वाले अमृत से कुण्डलिनी के मुख में हवन करना चाहिये । इसमें चन्द्रमा और सूर्य स्रुक् और स्रुवा का काम करते हैं। ऐसा करने से देह नीरोग होकर यथाकामी हो जाता है।

अँड़तीसवाँ पटल—शक्ति भोग से जितनी सन्तुष्ट होती है तप और योग से उतनी नहीं । ईश्वर कहते हैं कि मैंने भी योग से उसे सन्तुष्ट करना चाहा । मुझे शक्तिहीन देखकर ब्रह्मा और विष्णु ने देवीसूक्त से देवी को सन्तुष्ट किया । सन्तुष्ट होने पर देवी ने वरदान देने की इच्छा व्यक्त की । ब्रह्मा ने कहा—हे माता! मेरे विष्णु एवं रुद्र के अन्दर सृष्टि पालन और संहार की शक्ति दो । शिव को अपनी माया से मोहमय करो । देवी ने कहा—मैं सती रूप से शङ्कर को मुग्ध करूँगी। पुनः उस शरीर का त्याग कर पार्वती रूप में प्रकट होऊँगी । देवी के अन्तर्हित होने पर विष्णु ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर शिव में वीरभाव का निवेश किया । ईश्वर ने देवी की स्तुति की और उसके परिणामस्वरूप देवी ने शिव को अपना विराट् स्वरूप दिखलाया ।

उनतालिसवाँ पटल—देवी ने महादेव से कहा कि पुरुष और प्रकृति दो तत्त्व नित्य हैं । प्रकृति गुणवती और बलवती है; पुरुष निर्गुण और निर्बल है । मैंने सृष्टि की इच्छा से पुरुष को प्रेरित किया और फिर वह आनन्दयुक्त होकर मेरे साथ आनन्दित हुआ । दोनों के जड़ होने से शून्य की उत्पत्ति हुई । उस शून्यभाव से आद्या शक्ति पैदा हुई । वह त्रिगुणमयी और त्रिविन्दुरूपा हुई । शिव के साथ विपरीत रति के द्वारा वह अर्ध हकार रूपा होकर अग्नि चन्द्र और सूर्य रूपिणी हो गयी । यह सृष्टि तीन बिन्दुओं में स्थित है । पञ्चभूतमयी यह सृष्टि असत्य है और जो सत्य सदृश दिखती है वह भ्रम है ।

इस पाञ्च भौतिक शरीर में जाति की कल्पना, ऊँच नीच का विचार भ्रम है । वह सब शक्ति का ही विजृम्भण है । आत्मा देह से भिन्न है । वह आनन्द स्वरूप है—ऐसा जो जानता है वही ब्राह्मण है । प्राण आदि अथवा नाग आदि पाँच वायुओं से प्रेरित यह शरीर अपने को कर्त्ता मानता है—यह भ्रम है । यह उसी प्रकार है जैसे जल के अन्दर चञ्चल चन्द्र बिम्ब को देखकर चन्द्रमा को चञ्चल मानना । सारा विश्व आत्मा के ऊपर उपाधि रूप है । 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से उसका निराकरण कर 'अहं ब्रह्मास्मि' ज्ञान करना चाहिये ।

शिव ने पूछा—आत्मा देह से भिन्न कैसे है? ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता है? जगन्मयी ने उत्तर में कहा—अज्ञान से आवृत होने के कारण आत्मा पृथक् दिखायी देता है । जैसे बादल के हट जाने से सूर्य, उसी प्रकार अविद्या के हट जाने से सब कुछ ब्रह्म ही समझ में आता है ।

चालिसवाँ पटल—इस पटल में शिव शक्ति ज्ञान और कुलयाग का वर्णन है । प्रत्येक शरीर में पुरुष भाव शिव है, स्त्री भाव प्रकृति या शक्ति है । इन दोनों में कोई भेद नहीं है । एक के विना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं । चन्द्र और उसकी चन्द्रिका की भाँति दोनों अभिन्न हैं ।

एक ही चैतन्य जो कि शब्द-ब्रह्म है वर्ण मन्त्र विद्या आदि के भेद से प्रकट होता है । शक्ति की पूजा अनेक प्रकार से होती है । मन्त्र देवताओं के वर्णमय विग्रह हैं । उनका जप आदि उनकी पूजा है । दूसरी पूजा स्वर्णमय मूर्त्ति बनाकर की जाती है । तीसरी पूजा सोने या रत्नों के ऊपर यन्त्र बनाकर होती हैं । देवी का चौथा रूप गुप्त है । यह कौलमार्ग से सम्बद्ध है । इसलिये चौथी पूजा कौल साधक ही करते हैं । कौलमार्ग अत्यन्त दुर्गम है । योनि शक्ति है, लिङ्ग शिव है। रज शक्ति है, वीर्य शिव है । इस प्रकार जगत् शिवशक्ति से परिपूर्ण है । दोनों एक हैं । योनि के अन्दर लिङ्ग का लीन होना दोनों का एकीकार होना है । इसी के द्वारा मोक्ष होता है जगदम्बा के लिये इससे बढ़कर प्रीतिकारक संसार में कुछ नहीं है ।

शक्ति ने कहा—हे विश्वेश! मेरे अन्दर प्रवेश करो । ब्रह्मा मेरा बाँयाँ विष्णु मेरा दाँया स्तन पीते हैं । तुम मेरे अधरामृत को पियो । जिस प्रकार पतिहीन नारी सर्वकर्मविहीन होती है उसी प्रकार शक्ति के विना मन्त्री का प्रयास व्यर्थ होता है । भगलिङ्ग के संयोग से जो आनन्द मिलता है वही ब्रह्म है । शक्ति के साथ कामक्रीडा की समस्त क्रियायें आसन भूतशुद्धि प्राणायाम आदि मानी जाती हैं । प्रतिदिन ऐसा करने वाला जीवन्मुक्त होता है, असाध्य को सिद्ध कर लेता है। साधना की इस यात्रा में एक ही शक्ति पर्याप्त होती है ।

इकतालिसवाँ पटल—यहाँ प्रश्नोत्तर के द्वारा अनुत्तर के ज्ञान और उसकी प्रक्रिया की चर्चा है । पार्वती ने पूछा कि मन्त्र योग आदि का कारण क्या है? वाच्य शिव हैं वाचक शक्ति । प्रकाश शिव हैं विमर्श शक्ति तो क्या शिव शक्ति के अधीन हैं? शिव ने कहा—मैं सत् हूँ । तुम चित् हो । दोनों का संयोग ही सिद्धि है । जब दोनों एक हो जाते हैं तब इसे शाम्भव तत्त्व कहा जाता है ।

पार्वती के यह पूछने पर कि अनेक सकल निष्कल मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्र कौन सा है? परमेश्वर ने उत्तर दिया कि सारे मन्त्रों के प्रतिपाद्य हमी दोनों हैं और हम दोनों का भी प्राप्य अनुत्तर तत्त्व है जो कि 'अहम्' के रूप में जाना जाता है। परामन्त्र का भी प्राप्य अनुत्तर ही है । इसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए ईश्वर ने कहा—अनुत्तर तत्त्व वाङ्मनोऽगोचर होता हुआ भी बिन्दु नाद और बीज रूप में तीन प्रकार का होता है । ये ही सत् चित् और आनन्द है । बिन्दु शिव का रूप है । उससे नाद उत्पन्न होता है । दोनों के समरस होने पर बीज बनता है । स्वर शिव है व्यञ्जन शक्ति है । दोनों को मिथुन भाव से देखने पर अनुत्तर तत्त्व का साक्षात्कार होता है । इससे मन्त्र और मन्त्री अभिन्न हो जाते हैं ।

अनुत्तर का साक्षात्कार होने पर सम्पूर्ण विश्व अपने अन्दर उसी प्रकार उत्पन्न और लीन होता है जैसे निर्मल आकाश में बादल । इसको जानने के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती । यह स्वप्रमाण है । चित् ही इसमें प्रमाण है। यह विश्व उसी चित् का स्फार है । यह शुद्ध तत्त्व शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध-विद्या के भेद से पाँच रूपों में स्फुरित होता है । माया के द्वारा सङ्कुचित होकर शिव ही जीव होता है । उस जीव में सङ्कोच के कारण किञ्चित्-कर्तृत्व किञ्चित्-ज्ञत्व आदि भाव आ जाते हैं । शेष सृष्टि का विकास सांख्य के अनुसार होता है ।

आगे चलकर इस पटल में अकार आदि वर्णों से सृष्टि की प्रक्रिया बतलायी गयी है । अ अर्थात् अनुत्तर की, इ = इच्छा से उ = उन्मेष होने पर आ = आनन्द, ई = ईषणा, ऊ = ऊर्मि, होती है । अ इ उ मिलकर त्रिकोण बनाते हैं। ये ही त्रिशूल हैं । जो द्वैतभाव को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार यह आदि-

क्षान्त मातृका ही सृष्टि की योनि है । स्वर बीज और व्यञ्जन योनि है । इन्हीं के संघट्ट से विश्व उत्पन्न होता है और अन्त में संविद् रूपी अग्नि में विलीन हो जाता है ।

बयालिसवाँ पटल—पार्वती ने वाणी आदि से सम्बद्ध प्रश्न किया तो ईश्वर ने उन प्रश्नों का उत्तर दिया कि वाणी मन से उत्पन्न होती है । प्राण आहार लेता है । मन पाप करता है । मन का अस्तित्व समाप्त होने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता । जीव ही प्राण कहा जाता है । वह बाल के अग्रभाग का सौंवा भाग है । सत्त्व रजस् तमस् से युक्त होकर यह अनेक प्रकार के भावों से युक्त होता है । किन्तु जब नाभिस्थ होता है तो निष्कल को जानकर मुक्त हो जाता है । श्वास निश्वास के द्वारा वह ऊपर नीचे चलता रहता है ।

इसी क्रम में भगवान् शिव ने सनत्कुमार के उपदेश की चर्चा की । इसमें ग्रन्थकार ने कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतर उपनिषत् के मन्त्रों को कुछ परिवर्तन के साथ उद्धृत करते हुए आत्मा के स्वरूप उसके गुण तथा कार्य का वर्णन किया तथा अपरोक्षनुभूति का स्वरूप बतलाया है कि जाग्रत आदि जो कुछ अवस्था दिखायी देती है 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुभव के बाद सब लुप्त हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि मैं ही अणोरणीयान् अपाणिपाद होते हुए जवन ग्रहीता इत्यादि हूँ । वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ ।

अन्त में इस तन्त्र के अध्ययन की फलश्रुति वर्णित है कि इसका अध्ययन करने वाला अग्निपूत, सुरापान से पूत, कर्त्तव्याकर्त्तव्य से पूत, अगम्यागमन आदि आदि से पवित्र हो जाता है ।

◆

विषयानुक्रमणिका

प्रथमः पटलः १-११

तन्त्रप्रस्तावनानिरूपणम् १

द्वितीयः पटलः १२-२०

विद्याभेदोद्धारनिरूपणम् १२

त्रिपुरसुन्दर्या माहात्म्यवर्णनम् १२

त्रिपुरसुन्दरीमन्त्राधिकारिवर्णनम् १४

वाग्भवमन्त्रोद्धारतन्माहात्म्ययोर्वर्णनम् १५

कामराजविद्यातन्माहात्म्ययोर्वर्णनम् १६

षोडशी-सप्तदशीविद्याकथनोपक्रम: १७

षोडशीसप्तदशीविद्योद्धार: १८

राजराजेश्वरीविद्यावर्णनम् १९

तृतीयः पटलः २१-३३

पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपणम् २१

पञ्चमीविद्यावर्णनम् २१

पञ्चमीविद्याधिकारिवर्णनम् २३

पञ्चमीविद्यास्वरूपवर्णनम् २४

पञ्चमीविद्योद्धारवर्णनम् २५

पञ्चमीविद्यासाधनफलयोर्वर्णनम् २६

पञ्चमीविद्याया: कौलमार्गीपूजातत्फलयोर्वर्णनम् २९

एकादशीविद्यावर्णनोपक्रम: ३२

एकादशीविद्यावर्णनम् ३२

चतुर्थः पटलः ३४-५२

महात्रिपुरसुन्दरीत्रैलोक्यमोहनकवचविधानम् ३४

कवचस्य ऋष्यादिवर्णनम् ३५

कवचमाहात्म्यादिवर्णनम् ४३

श्रीचंक्रे देवीपूजाविधिवर्णनम् ४५

कवचपाठमाहात्म्यवर्णनम् ४७
यन्त्ररचना-तत्प्रयोगफलवर्णनम् ५०
पञ्चमः पटलः ५३-७१
यन्त्रोद्धारावरणशक्त्यर्चननिरूपणम् ५३
पूजायन्त्ररचनाविधानम् ५३
श्रीत्रिपुरमहायन्त्रं तस्य साङ्गोपाङ्गपूजाया वर्णनम् ५७
आवरणपूजाविधिवर्णनम् ५९
अन्य काम्यप्रयोगवर्णनम् ६१
ब्रह्मविष्णुशिवरेखास्थदेवतावर्णनम् ६२
सर्वाशापूरकचक्रवर्णनम् ६४
सर्वसङ्क्षोभणचक्रवर्णनम् ६५
सर्वसौभाग्यदचक्रवर्णनम् ६६
सर्वार्थसाधक बाह्यदशारचक्रवर्णनम् ६६
अन्तर्दशारचक्रवर्णनम् ६७
सर्वरोगहरचक्रवर्णनम् ६७
सर्वसिद्धिप्रदचक्रवर्णनम् ६८
त्रिविधपूजावर्णनम् ७०
षष्ठः पटलः ७२-९१
कर्मयोगादिक्रमनिरूपणम् ७२
देहशुद्धिवर्णनोपक्रमः ७२
कर्मयोगवर्णनम् ७२
गुरुशक्तिपूजामन्त्रोद्धारः ७३
गुरुप्रार्थनागुरुपूजामाहात्म्यवर्णनम् ७५
योगकथनोपक्रमः ७७
योगयोगाङ्गवर्णनम् ७८
समाधिस्वरूपवर्णनम् ८२
शरीरस्थनाडीषट्चक्रवर्णनम् ८५
योनिमुद्राबन्धवर्णनम् ८९
अन्यविधसमाधिवर्णनम् ८९
सप्तमः पटलः ९२-१०७
स्नानसन्ध्योपासनादिविधानम् ९२

सन्ध्यादिदैनन्दिनकृत्यवर्णनम् ९२
कुलदर्भलक्षणम् ९२
स्नानसन्ध्ययोस्त्रैविध्यम् ९४
शूद्रादीनां मोक्षोपायवर्णनोपक्रमः ९७
त्रिपुरागायत्र्या उद्धारः ९८
त्रिपुरागायत्रीजपमाहात्म्यम् १०२
तर्पणवर्णनम् १०४
सूर्यार्घ्यमन्त्रोद्धारः १०६

अष्टमः पटलः १०८-१२२
यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादिनिरूपणम् १०८
यागभूमिवर्णनम् १०८
मण्डपाभ्यन्तरकृत्यवर्णनम् १०९
आसनादिवर्णनम् ११३
आसनासनविधिः ११४
आसनोपवेशानन्तरकृत्यवर्णनम् ११७
कलशादिस्थापनम् ११८
भूतशुद्धिवर्णनम् १२०

नवमः पटलः १२३-१३०
करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यासनिरूपणम् १२३
अन्तर्मातृकान्यासः १२६
बहिर्मातृकान्यासः १२६
मातृकान्यासमाहात्म्यवर्णनम् १२८

दशमः पटलः १३१-१५०
षोढान्यासादिनिरूपणम् १३१
षोढान्यासविधिस्तत्फलं च १३१
नक्षत्रन्यासविधानम् १३६
१. डाकिनीध्यानम् १३८
डाकिनीमन्त्रोद्धारः १३८
२. राकिनीध्यानम् १३९
राकिनीमन्त्रोद्धारः १४०
३. लाकिनीध्यानम् १४०

लाकिनीमन्त्रोद्धारः १४०
४. काकिनीध्यानम् १४१
काकिनीमन्त्रोद्धारः १४१
५. शाकिनीध्यानम् १४२
शाकिनीमन्त्रोद्धारः १४२
६. हाकिनीध्यानम् १४२
हाकिनीमन्त्रोद्धारः १४३
७. याकिनीमन्त्रोद्धारः १४३
मेषादिराशीनां न्यासः १४४
पीठन्यासवर्णनम् १४५
षोढान्यासमाहात्म्यकथनम् १४८
एकादशः पटलः **१५१-१६६**
नित्यन्यासान्तर्यागविधिनिरूपणम् १५१
आसनन्यासमन्त्रः १५१
वशिन्यादिवाग्देवतान्यासः १५३
करषडङ्गन्यासः १५५
चतुष्पीठन्यासः १५७
तत्त्वादिन्यासः १५९
सम्मोहनन्यासः १६०
अन्तर्यागविधिः १६१
प्राणायामस्य लक्षणम् १६२
कुण्डलिनीस्वरूपवर्णनम् १६३
द्वादशः पटलः **१६७-१८६**
ध्यानयोगनिरूपणम् १६७
शिवाया मानसपूजा १६७
षोडशोपचारपूजाविधिः १६८
ध्यानयोगवर्णनम् १७१
ध्यानगतसृष्टिक्रमवर्णनम् १७३
ध्यानगतं कल्पवृक्षाद्युद्यानवर्णनम् १७५
ध्यानगतसरोवरवर्णनम् १७६
ध्यानस्थमण्डपवर्णनम् १७७

मण्डपस्थमहामाणिक्यमण्डपवर्णनम् १७९
कामेश्वरीध्यानम् १८१
त्रिपुरसुन्दरीध्यानयोगस्य माहात्म्यम् १८४
त्रयोदशः पटलः १८७-१९८
बहिर्यागतद्विशेषार्घ्यपात्रादिनिरूपणम् १८७
बहिर्यागोपक्रमः १८७
अर्घ्यपात्रादिवर्णनम् १८८
विशेषार्घ्यसाधनम् १८९
पात्रसाधने मुद्राप्रयोगः १९१
पात्रे रत्नेश्वर्यादिपूजनम् १९२
अमृतीकरणादिमुद्राणां प्रदर्शनम् १९३
अमृतीकरणमन्त्रोद्धारः १९५
सन्दीपनमन्त्रोद्धारः १९५
पात्रविभागपात्रभ्रंशादेः फलवर्णनम् १९६
अमृतप्रोक्षणविधिः १९७
चतुर्दशः पटलः १९९-२०८
बहिर्यागविधिनिरूपणम् १९९
आधारशक्त्यादेः पूजादिवर्णनम् १९९
देव्याः स्थापनपूजनादेर्वर्णनम् २०१
देव्याःकृते आवाहन्यादिमुद्राणां प्रयोगः २०२
उपचारसमर्पणविधिवर्णनम् २०६
देव्यै मन्त्रजपादिवर्णनम् २०७
पञ्चदशः पटलः २०९-२२४
पूजोपचारतत्फलादिवर्णनम् २०९
१. आसनम् २०९
२. पाद्यम् २१०
३. अर्घ्यम् २१०
४. आचमनम् २११
५. मधुपर्कः २११
६. स्नानम् २१२
७. वस्त्रम् २१३

८. अलङ्कारा: २१४

९. गन्ध: २१५

१०. अञ्जनम् २१७

११. पुष्पम् २१७

पत्रम् २१८

पुष्पम् २१८

पुष्पमाला २१९

१२. धूपम् २२१

१३. दीपम् २२१

दीपमाला २२३

नैवेद्यम् २२४

षोडश: पटल: २२५-२३८

उपचारफलविधिनिरूपणम् २२५

१४. नैवेद्यप्रकार: २२८

नैवेद्यार्पणविधि: २३२

आचमनम् २३३

१५. ताम्बूलम् २३४

१६. नमस्कार: २३४

नमस्कारभेद: २३५

प्रदक्षिणा २३६

नमस्कार: सप्तभेद: २३६

सप्तदश: पटल: २३९-२५५

प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरूपणम् २३९

प्रकटादिपूजाविधि: २३९

महायोगीश्वरादीनां ध्यानं तन्मन्त्राश्च २४०

ब्रह्मणोर्ध्यानं तन्मन्त्रश्च २४२

उमामहेश्वरध्यानतन्मन्त्रश्च २४४

अनङ्गकुसुमादीनां पूजनम् २४५

भास्करपूजनम् २४७

विष्णोर्ध्यानं तन्मन्त्रश्च २४८

चक्रनायिकापूजनम् २४९

- त्रैलोक्यमोहनविष्णोर्ध्यानतन्मन्त्रश्च २५०
- निगर्भयोगिनीपूजनम् २५१
- रहस्ययोगिनीपूजनम् (क) २५२
- रहस्ययोगिनीपूजन (ख) २५३
- चक्रेश्वरीपूजनम् २५३

अष्टादशः पटलः **२५६-२७१**

- जपादिविधिनिरूपणम् २५६
- जपस्य माहात्म्यादिकम् २५६
- मालास्वरूपवर्णनम् २५७
- मालायाः पूजनादिकम् २५८
- जपप्रक्रियावर्णनम् २६०
- ओंकारसहितजपविधानम् २६३
- होमस्यावश्यकरणीयता २६३
- होमानन्तरकरणीयकृत्यवर्णनम् २६५
- उपचारसमर्पणफलम् २६६
- देवीभक्तेःफलम् २६८
- मुद्राप्रदर्शनफलम् २७०
- देवीसन्निधिकारकाणि २७०

एकोनविंशः पटलः **२७२-२८१**

- बटुकादिबलिविधिनिरूपणम् २७२
- बटुकादिविध्यनुष्ठानम् २७२
- वटुकध्यानं तन्मन्त्रोद्धारश्च २७३
- बलिप्रदानविधिः २७३
- योगिनीध्यानादिकम् २७४
- क्षेत्रपालस्य ध्यानादिकम् २७५
- गणपतेर्ध्यानादिकम् २७६
- सर्वभूतबलिदानम् २७७
- आत्मसमर्पणं क्षमापनञ्च २७८
- देवीविसर्जनम् २८०

विंशः पटलः **२८२-२८९**

- शेषिकाविद्याप्रयोगक्रमनिरूपणम् २८२

उच्छिष्टमातङ्गीपूजावर्णनम् २८२
उच्छिष्टमातङ्गीमन्त्रोद्धारः २८३
उच्छिष्टमातङ्गीध्यानं पूजाविधिश्च २८४
होमविधिवर्णनम् २८५
विविधसिद्धये विविधौषधप्रयोगः २८७

एकविंशः पटलः **२९०-२९७**
पूजासम्पूरणाद्युपायविधिनिरूपणम् २९०
शङ्खजलप्रोक्षणं पादोदकग्रहणञ्च २९०
अच्छिद्रनिवेदनं भास्करप्रणामश्च २९१
सशक्तिगुरवे नैवेद्यनिवेदनम् २९२
मृतामृतभक्षणफलम् २९३
परतत्त्वज्ञानविधिस्तन्माहात्म्यञ्च २९४
देवतादीनातुष्टिप्रकारि वर्णनम् २९६

द्वाविंशः पटलः **२९८-३१४**
कुमारीपूजनविधिनिरूपणम् २९८
अन्तर्देवताप्रतीतेः सिद्धत्वम् २९८
कर्मणस्त्रैविद्ध्यवर्णनम् २९९
शिवशक्तिरूपेण मातापित्रोः पूजनफलम् ३००
अन्येभ्यो दानं योगक्षेमकरणं च ३०२
विभूतिदर्शनं देव्यै च तन्निवेदनम् ३०३
योगिनश्चतुष्कालिकोपासनाप्रकारः ३०३
देवीसहितदेवार्चनम् ३०५
प्रातरादिकालिकयजनविधिः ३०६
सायंसन्ध्याकालनिर्णयः ३०७
चतुःसन्ध्याकालयोर्वर्णनम् ३०९
सन्ध्याकालयोर्विहितनिषिद्धकर्मणोः फलवर्णनम् ३०९
देव्यानिद्राकालवर्णनम् ३१२
निद्राकाले जपादीनां निषिद्धत्वम् ३१२
बोधकाले जपादीनां विहितत्त्वम् ३१३

त्रयोविंशः पटलः **३१५-३२२**
कुमारीपूजावर्णनम् ३१५

- कुमारीपूजामाहात्म्यम् ३१५
- कुमारीपूजाविधिः ३१५
- कुमारीपूजनोपचारक्रमः ३१८
- कुमारीस्तुतिः ३१८
- भोजनोत्तरकृत्यम् ३२०
- रजोवत्या रजःसार्द्धं मद्यादिभिस्त्रिपुरापूजनम् ३२०

चतुर्विंशः पटलः ३२३-३३३

- कुमारीपूजामहिमप्रयोगादिनिरूपणम् ३२३
- त्रिपुरसुन्दरीपूजाफलवर्णनम् ३२३
- त्रिपुरापूजायाः पश्चात्कृत्यम् ३२४
- त्रिपुरसुन्दरीपूजाया अकरणे फलवर्णनम् ३२४
- स्वसामर्थ्याभावे गुरोर्नियोज्यत्वम् ३२५
- नित्याद्यर्चनविधिवर्णनम् ३२६
- साङ्गयज्ञकरणे सर्वसिद्धिः ३२६
- पूजायां विहिततिथ्यादयः ३२७
- पूजास्थलवर्णनम् ३२८
  - १. निजगृहम् ३२८
  - २. नदीनदसमीपम् ३२९
  - ३. पुण्यक्षेत्रादिकम् ३२९
  - ४. उद्यानम् ३२९
  - ५. वृक्षमूलम् ३३०
  - ६. नागलोकसन्धिभूम्यादि ३३०
  - ७. महापीठम् ३३०
  - ८. पुण्यनद्या जलान्तम् ३३१
  - ९. देवतायतनम् ३३१
  - १०. शिवालयादिकम् ३३२
  - ११. विष्णुक्षेत्रम् ३३२

पञ्चविंशः पटलः ३३४-३४१

- पुण्यपीठआपत्कालादिपूजावर्णनम् ३३४
- पुण्यक्षेत्रवर्णनम् ३३४
- पुण्यक्षेत्रेषु पूजागुणितत्त्वम् ३३५

अशौचादौ कर्त्तव्यविधिः ३३७
अशौचादौ वैकल्पिकेतिकर्त्तव्यता ३३८
मानसपूजावसरवर्णनम् ३३९
लोकदर्शनविचारः ३३९

षड्विंशः पटलः ३४२-३५४

गुर्वादिलक्षणदीक्षानिरूपणम् ३४२
दीक्षानिर्वचनम् ३४२
दिव्यगुरुशिष्यवर्णनम् ३४२
सद्गुरुलक्षणम् ३४४
सच्छिष्यलक्षणम् ३४५
शिष्यकर्त्तव्यवर्णनम् ३४६
दीक्षाकालविचारः ३४८
दीक्षाभेदवर्णनम् ३४९
मन्त्रपदनिरुक्तिः ३५०
अधिवासविधिः ३५०
दिक्पालबलिः ३५१
मण्डपनिर्माणम् ३५१
पञ्चगव्येन मण्डपादिशोधनम् ३५२
होमविधिः ३५२
स्वप्नमानवमन्त्रः ३५३
स्वप्नशुभाशुभवर्णनम् ३५३

सप्तविंशः पटलः ३५५-३६६

दीक्षाविधाननिरूपणम् ३५५
मण्डपप्रवेशविधिः ३५५
कलशस्थापनम् ३५६
पुष्पपाततत्फलवर्णनम् ३५७
चरुहोमः ३५७
शिष्यमुखछादनं प्रार्थनं च ३५८
सिद्धान्तश्रावणम् ३५९
अन्तरालपरिज्ञाननिरूपणम् ३६०
पञ्चमकाराणां ब्रह्माभिव्यञ्जकत्वम् ३६०

निषिद्धकर्मवर्णनम् ३६०

आत्मविद्यायाः सर्वोत्कृष्टत्वम् ३६१

शिष्यपाशदंहनम् ३६२

शिवहस्तविधिः शिष्यदेहप्रवेशश्च ३६२

शिष्यस्य स्नपनादिकम् ३६३

गुरुणा पादुकाविनिवेदनम् ३६३

शिष्यद्वारा गुरोः सन्तोषणम् ३६४

गुरोः स्तुतिस्तेषां चाशिषः ३६५

कुमारिकादिभोजनादिकम् ३६६

अष्टाविंशः पटलः **३६७-३७९**

पुरश्चर्याविधिनिरूपणम् ३६७

पुरश्चर्याविधिवर्णनोपक्रमः ३६७

मन्त्रसिद्धिकरणतत्प्रतिबन्धकयोर्वर्णनम् ३६८

पुरश्चरणस्थानकालयोर्वर्णनम् ३६९

कूर्मचक्रम् ३६९

मालाप्रकारः ३७०

प्रशस्त हविष्यवर्णनम् ३७२

त्याज्यहविष्यवर्णनम् ३७३

जपे कर्त्तव्याकर्त्तव्यवर्णनम् ३७३

जपे मन्त्रसंख्यानियमः ३७५

जपान्तकरणीयकृत्यम् ३७६

जपान्ते होमादिकर्त्तव्यतावर्णनम् ३७६

होमाशक्तौ कर्त्तव्यतावर्णनम् ३७८

ब्राह्मणभोजनस्यावश्यकरणीयता ३७८

पुरश्चर्याया अन्यप्रकारः ३७८

एकोनत्रिंशः पटलः **३८०-३९४**

विद्यासाधननिर्णयवर्णनम् ३८०

कौलिकजपविधिः ३८०

जपस्य स्थाननयम् ३८०

नव जपस्थानानि ३८२

नवलक्षजपफलम् ३८२

मन्त्रसूतकवर्णनम् ३८३
मन्त्रार्थकथनम् ३८४
क- भावार्थस्वरूपम् ३८४
ख- सम्प्रदायार्थस्वरूपम् ३८५
ग- निगर्भार्थस्वरूपम् ३८८
घ- कौलिकार्थःस्वरूपम् ३८८
ङ- सर्वरहस्यार्थस्वरूपम् ३९२
च- महातत्त्वार्थस्वरूपम् ३९३
त्रिंशः पटलः ३९५-४०४
विद्याकूटत्रयसाधननिरूपणम् ३९५
अजपाविद्यास्वरूपम् ३९५
मन्त्रेषु चैतन्यविजृम्भणम् ३९६
बोधिनीविद्यास्वरूपम् ३९८
संन्दीपनीविद्यास्वरूपम् ३९९
जीवनीविद्यास्वरूपम् ३९९
वाग्भवबीजजपफलम् ४००
कामकलाबीजस्वरूपम् ४००
शक्तिकूटसाधनम् ४०१
कामकलाभेदवर्णनम् ४०२
कामकलाया बाह्यध्यानम् ४०२
कामकलाया आन्तरध्यानम् ४०३
अपात्रे कामकलारूपप्रकाशने हानिः ४०३
एकत्रिंशः पटलः ४०५-४१२
होमतद्द्रव्यविधिनिरूपणम् ४०५
होमवर्णनोपक्रमः ४०५
होमद्रव्यादिवर्णनम् ४०५
कुण्डनिर्माणविधिः ४०६
कुशकण्डिकावर्णनम् ४०६
अग्निसंस्कारः ४०७
होमः ४०९
काम्यहोमः ४०९

द्वात्रिंशः पटलः ४१३-४१७
रक्षामुद्रावर्णनम् ४१३
परामातृकापूजनादिवर्णनम् ४१४
रक्षामुद्राधारणफलम् ४१६

त्रयस्त्रिंशः पटलः ४१८-४२२
चक्रराजप्राणप्रतिष्ठानिरूपणम् ४१८
चक्रराजप्रतिष्ठावर्णनोपक्रमः ४१८
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोद्धारः ४२०
श्रीचक्रपूजादिवर्णनम् ४२१

चतुस्त्रिंशः पटलः ४२३-४३७
कुलाचारवर्णनम् ४२३
यजने आवश्यकभोजनव्यवस्था ४२३
निषिद्धकर्मभोजनयोर्वर्णनम् ४२४
भोजननियमः ४२४
बलिदानविधिः ४२६
पूजामध्ये कर्त्तव्याकर्त्तव्यवर्णनम् ४२८
श्रेष्ठसाधकवर्णनम् ४२९
यतेराचारवर्णनम् ४३०
कोटिहोमस्यावश्यकत्वम् ४३३
मद्यपानविकाराः ४३४
अमृतगुणवर्णनम् ४३४
सिद्धेर्लक्षणम् ४३५
जायालक्षणम् ४३६
अकामागमनेऽधमत्वप्राप्तिः ४३६
दुःशीलादियुक्तनार्यास्त्यागः ४३७

पञ्चत्रिंशः पटलः ४३८-४४६
काम्यपूजाविधिनिरूपणम् ४३८
काम्यार्चावर्णनम् ४३८
शक्तिपूजाया आवश्यकत्वं तत्र घृणाद्यकरणीयत्वं च ४३९
शक्तिपूजाविधिः ४४०
कौलिकपूजाप्रक्रिया ४४३

कुलपूजाफलम् ४४४

षट्त्रिंशः पटलः **४४७-४५६**

शक्त्यानयनपूजातत्त्वादिनिरूपणम् ४४७
स्वशक्त्या परशक्तेरानयनफलम् ४४७
गुरुद्वारा कौलिनीदीक्षावर्णनम् ४४८
षट्चक्रे प्रतिमालेखनम् ४४८
वसन्तसुन्दरीमन्त्रोद्धारः ४४९
संविद्योगः स्वकुलासादनोत्तरं जपश्च ४४९
परकुलानयनम् ४५०
होमान्तरवर्णनोपक्रमः ४५१
सुन्दरीमुद्रावर्णनम् ४५१
देव्याःसान्निध्यं पूजा च ४५१
गन्धभावपुष्पादीनां वर्णनम् ४५२
सुन्दरीध्यानम् ४५३
पार्थिवादीनां पार्थिवादौ लये पुण्यपापराहित्यम् ४५४
कुण्डहविषोः स्वरूपम् ४५५
पूर्णहोमस्तत् फलवर्णनम् ४५५

सप्तत्रिंशः पटलः **४५७-४६८**

शक्तिमाहात्म्यदेहसिद्धिनिरूपणम् ४५७
शक्त्यासङ्गे मोक्षालाभशङ्का ४५७
धर्मस्य गतेर्गूढत्वम् ४५७
द्वैतभावनाफलम् ४५९
अद्वैतभावनाफलम् ४५९
शक्तौ पराविद्या भावना ४६०
प्रकृतिपुरुषभावनया सर्वशुद्धिः ४६०
कौलेन संसारार्णवतारणम् ४६१
शक्तेर्नानाभिधात्वम् ४६२
शक्तेस्तोषणादेव मुक्तिर्नान्यथा ४६२
शक्तिसमाश्रयणस्यावश्यकरणीयता तत्फलयोर्वर्णनम् ४६३
दिव्यभावगोपने हेतुवर्णनम् ४६४
वैष्णवदर्शने पशुभावपूजाहेतुवर्णनम् ४६५

शक्तेर्द्वैविध्यम्	४६५
अष्टात्रिंशः पटलः	**४६९-४७५**
शिवशक्तिप्राप्तिनिरूपणम्	४६९
भोगेनैव शक्तेस्तोषः प्रसन्नता च	४६९
ब्रह्मकृता स्तुतिः	४७०
देवीद्वारा ब्रह्मणे वरप्रदानम्	४७२
ब्रह्मणा वरयाञ्चा	४७२
देव्या ब्रह्मणे वरदानम्	४७२
विष्णुना महादेवाय वीरभावनिर्देशः	४७३
ईश्वरकृता देवीप्रार्थना	४७३
देव्या शम्भवे विश्वरूपदर्शनम्	४७४
ऊनचत्वारिंशः पटलः	**४७६-४८३**
देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णनम्	४७६
देव्या महादेवाय ज्ञानोपदेशः	४७६
चत्वारिंशः पटलः	**४८४-४९३**
शिवशक्तिमयज्ञानकुलमार्गनिरूपणम्	४८४
शिवशक्त्योर्भेदेऽप्यभिन्नत्वम्	४८४
शिवशक्त्योर्जगदभिन्नत्वम्	४८५
चैतन्यस्य वर्णादिरूपेणाभिव्यक्तिः	४८५
देवानां नानाविधशरीरवर्णनम्	४८६
कौलधर्मस्य दुर्गमत्वम्	४८८
कौलाचारानुत्सारेण यजनम्	४८८
शक्तिपूजाविधिः	४९१
कुलयागेन मोक्षावाप्तिः	४९२
एकचत्वारिंशः पटलः	**४९४-५०७**
अनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरूपणम्	४९४
शाम्भवतत्त्वजिज्ञासोपक्रमः	४९४
शाम्भवतत्त्वविवेचनम्	४९५
अनुत्तरमन्त्रवर्णनम्	४९६
पराविद्यया निर्वाणस्य प्राप्यत्वम्	४९७
अनुत्तरस्य भेदोपबृंहणम्	४९८

प्रकाशविमर्शस्वरूपतत्कारणयोश्च निरूपणम् ४९९
ब्रह्मसंज्ञस्यानुत्तरस्य भावनातत्फलयोर्वर्णनम् ५००
चैतन्यस्य स्वप्रमाणकत्वम् ५०१
षट्त्रिंशत्तत्त्वनिरूपणम् ५०१
शुद्धाशुद्धाध्वनोर्निरूपणम् ५०४
अकारादिस्वराणां तात्पर्यनिरूपणम् ५०४
मातृकाया सृष्टियोनित्वम् ५०५
परसंविद महामन्त्रे लयः ५०६
संविदग्नौ सर्वहोमस्य फलम् ५०६

द्विचत्वारिंशः पटलः ५०८-५१८
तत्त्वज्ञानोपदेशनिरूपणम् ५०८
वागादीनामुत्पत्यादिविषयकाः प्रश्नाः, तत्समाधानानि च ५०८
आकाशजीवयोः स्थितिविषयकः प्रश्नः ५०९
पूर्वप्रश्नस्योत्तरम् ५१०
जीवस्य भ्रमिनिरूपणम् ५१२
मोक्षप्रदज्ञानविषयकः प्रश्नः ५१२
पूर्वप्रश्नस्योत्तरम् ५१३
शिवशक्तिध्यानतत्फलयोर्वर्णनम् ५१३
अपरोक्षानुभूतेः स्वरूपवर्णनम् ५१६
उक्तानुभूतेः फलम् ५१७

श्लोकार्द्धानुक्रमणिका ५१९-६१५

पारिभाषिक शब्दावली ६१६-६२४

गन्धर्वतन्त्रम्

॥ श्रीः ॥

अथ शिवप्रोक्तम्

गन्धर्वतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

तन्त्रप्रस्तावनानिरूपणम्

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

यं वदन्त्यमलात्मानः पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
चिद्रूपं परमानन्दं वन्दे देवं विनायकम् ॥ १ ॥

प्रणम्य शिरसा पादौ वाग्देव्या इष्टदायकौ ।
व्याख्यां गन्धर्वतन्त्रस्य कुर्वे 'ज्ञानवतीम्' शुभाम् ॥ १ ॥
यत्पादपद्मघुसृणप्रसरप्रसादा
ल्लोकोऽभ्युपैति शुचिमोदमपूर्वलब्धम् ।
गायत्रिसाधनपरं 'शिव'पूर्ववर्त्ति-
'चैतन्य' नामकगुरुं शिरसा नमामि ॥ २ ॥
मातासीमकृपामयी हि 'सकला' श्रद्धातपोवर्त्तिनी
तातः श्री 'मुरलीधरश्च' सुषुवे यं दुःखहं मोददम् ।
'राधेश्याम' कृती प्रणम्य मनसातौ जन्मदौ सादरं
व्याख्यामातनुते यथामति शुभांविद्वज्जनानन्दिनीम् ॥ ३ ॥

निर्मल चित्त वाले ऋषि एवं मुनिजन जिनको प्रकृति से परे पुरुष बतलाते हैं । चित्स्वरूप परम आनन्द से परिपूर्ण उन देव विनायक की मैं सादर वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

भर्तारं गुणवृद्धिशून्यमचलं गत्वाभिसारक्रमाद्
दीव्यन्ती कुलवर्त्मनैव गुणवत्यानन्दमातन्वती ।
शेते सुप्तभुजङ्गपोतकुटिला या मेरुमूलं गता
सूते(यन्त्र?पुत्र)शतानि तानि मुरजिन्मुख्यानि पायादसौ ॥ २ ॥

जो अभिसार क्रम से गुणवृद्धिशून्य अचल पति के पास जाकर प्रकाशित होती है तथा कौलमार्ग के द्वारा गुणयुक्त होती हुई आनन्द का विस्तार करती है; जो सोये हुए सर्प के बच्चे के समान कुटिल होकर मेरुदण्ड के मूल में स्थित हुई मुरजित् अर्थात् विष्णु आदि सैकड़ों प्रमुख पुत्रों की सृष्टि करती है, वह आपकी रक्षा करें । (स्पष्टार्थ—कुण्डलिनी नामक चित्शक्ति प्रत्येक प्राणी के शरीर में वर्त्तमान रहती है । वह मेरुदण्ड के नीचे साढ़े तीन गोलाई में स्थित रहती है । साधना के द्वारा यह ऊपर चलती है और अनेक चक्रों का भेदन करती हुई शिर में स्थित सहस्रदल कमल में पहुँचती है । वहाँ वह परम शिव, जो कि उसके पति के रूप में शास्त्रों में वर्णित है, से मिलकर तन्मय हो जाती है । यह कुण्डलिनी विश्वशक्तिमयी है जो ब्रह्मा विष्णु रुद्र तथा शिव के साथ समस्त संसार की सृष्टि करती हुई उसका पालन और संहार भी करती है ।) ॥ २ ॥

विश्वामित्र इति ख्यातो नृपः परमधार्मिकः ।
सिद्धिं दृष्ट्वा वसिष्ठस्य तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ ३ ॥
अप्राप्य तपसः सिद्धिमुदीचीं दिशमाविशत् ।
गङ्गाद्वारसमासीनं मुनिं योगपरायणम् ॥ ४ ॥
दत्तात्रेयं महाभागमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाचेदं वचस्तस्मै विनयानतकन्धरः ॥ ५ ॥

विश्वामित्र नामक परम धार्मिक राजा महर्षि वशिष्ठ की सिद्धियों को देखकर दुष्कर तपस्या किये । तपस्या से सिद्धि को न प्राप्त कर वे उत्तर दिशा की ओर चले गये । गङ्गा द्वारा अर्थात् गोमुख या गङ्गोत्री में बैठे हुए योगपरायण मुनि दत्तात्रेय को प्रणाम कर विनययुक्त शरीर वाले इन विश्वामित्र ने उन दत्तात्रेय से यह बात कही ॥ ३-५ ॥

विश्वामित्र उवाच—

नाद्रा(क्ष्यं?क्षं)सम्यगिष्ट्वापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः ।
सत्पात्रे सर्वदानानि कृत्वापि मुनिसत्तम ॥ ६ ॥
महाविद्यां प्रजप्याथ पुरस्क्रियापुरःसराम् ।
भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ ७ ॥

सर्वागमैकतत्त्वज्ञ ब्रह्मनिष्ठ तपोधन ।
किं करिष्याम्यहं देव कुत्र यास्यामि तद्वद ॥ ८ ॥

विश्वामित्र ने कहा—हे महामुने! हे समस्त आगमों के एकमात्र तत्त्वज्ञाता! हे ब्रह्मनिष्ठ! हे तपोधन! प्रभूत दक्षिणा वाले यज्ञों को करके, सत्पात्रों को दान देकर, महाविद्या का पुरश्चरणपूर्वक जप कर दुष्कर तप करके भी संसारसागर से पार जाने का उपाय मैनें नहीं देखा । हे देव! अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ, यह मुझे बतलाइये ॥ ६-८ ॥

दत्तात्रेय उवाच—

मा विषीद नृपश्रेष्ठ सर्वथा त्वं स्थिरो भव ।
यत् श्रुत्वा(दि?धि)गतं पूर्वमस्माभिर्नन्दिकेश्वरात्॥ ९ ॥
तदशेषं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम् ।
सारमुद्धृत्य भगवान् यामलादपि सर्वतः ॥ १० ॥
तन्त्रं द्वादशसाहस्त्र्यं भोगमोक्षैकसाधनम् ।
पार्वत्यै कथयामास तन्त्रं गन्धर्वसंज्ञकम् ॥ ११ ॥
गीयते सर्वतन्त्राणामखिलाद्यो यतस्त्विह ।
तेनायं नृपशार्दूल तन्त्रो गन्धर्व उच्यते ॥ १२ ॥

दत्तात्रेय ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ! तुम खेद मत करो । सर्वथा स्थिर रहो । पहले हमने जिसे नन्दिकेश्वर से सुनकर समझा और जो गुह्य से भी परम गुह्यतर है मैं उसको पूर्णरूप से कहूँगा । भगवान् शिव ने सम्पूर्ण तन्त्रों तथा यामल से भी तत्त्व को लेकर भोग-मोक्ष का एकमात्र साधन, बारह हजार श्लोकों वाले गन्धर्व तन्त्र का पार्वती को उपदेश दिया । चूँकि यह समस्त तन्त्रों के प्रथम गाया जाता अर्थात् कहा जाता है । हे नृपशार्दूल! इस कारण यह तन्त्र गन्धर्व कहा जाता है ॥ ९-१२ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच—

कैलासशिखरारूढं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
पञ्चवक्त्रं महाकायं जटाजूटविभूषितम् ॥ १३ ॥
चारुचन्द्रकलायुक्तं मूर्ध्नि व्यालौघभूषितम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्मधरं शुभम् ॥ १४ ॥
कालकूटधरं कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
विभूतिभूषणं देवं प्रतिवक्त्रं त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १५ ॥
नेत्रैस्तु पञ्चदशभिर्युक्तं स्फटिकसन्निभम् ।

शक्तित्रिशूलखट्वाङ्गवरदाभयकानपि ॥ १६ ॥
अक्षसूत्रं बीजपूरं भुजङ्गं डमरुं धनुः ।
दक्षिणैर्दधतं हस्तैर्वामैः कोटीरभूषणम् ॥ १७ ॥
वृषभोपरिसंस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ।
सर्वात्मनाविष्टचित्तं गिरिमुखपङ्कजे ॥ १८ ॥
प्रणम्य परया भक्त्या कृताञ्जलिपुटा सती ।
उवाच पार्वती देवी ईश्वरं परमेश्वरम् ॥ १९ ॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—कदाचित् देवाधिदेव जगद्गुरु, पञ्चवक्त्र, महाकाय, भगवान् शिव कैलास के शिखर पर बैठे हुए थे । वे जटाजूट बाँधे हुए, शिर पर सुन्दर चन्द्रकला से युक्त तथा साँपों से विभूषित थे । दश भुजाओं से युक्त वे व्याघ्र का चर्म धारण किये हुए थे । कण्ठ में कालकूट विष और गले में नाग के हार से उपशोभित थे । पाँचों में से प्रत्येक मुख में त्रिपुण्ड्र वाली विभूति का आभूषण धारण किये थे । पन्द्रह नेत्रों से युक्त वे स्फटिक के समान गौराङ्ग थे । दाँयें बायें हाथों में शक्ति, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, वरद एवं अभय मुद्रा, अक्षमाला, जम्भीरी नीबू, सर्प, डमरू और धनुष धारण किये हुए थे । कोटीर अर्थात् मुकुट का आभूषण धारण किये हुए वे भगवान् शङ्कर बैल पर सवार थे तथा हाथी का चर्म ओढ़े हुए थे । गिरिजा के मुखकमल पर वे सब प्रकार से ध्यान लगाये हुए थे । ऐसे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर को पराभक्ति के साथ प्रणाम कर देवी पार्वती ने हाथ जोड़ कर कहा ॥ १३-१९ ॥

पार्वत्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ भक्तानामार्तिनाशन ।
प्रसन्नो यदि मां देव ब्रह्म किं वा तदुच्यते ॥ २० ॥
योगं किं वा शरीरं च ब्रूहि मे परमेश्वर ।
स्मितपूर्वं महादेवः पूर्णानन्दमयो विभुः ॥ २१ ॥
वामदेवाख्यवक्त्रेण प्रत्युवाच प्रियां विभुः ।

पार्वती ने कहा—हे देवाधिदेव! हे जगत् के स्वामी! हे भक्तों के दुःख का नाश करने वाले देव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो बतलाइये कि ब्रह्म किसे कहा जाता है? हे परमेश्वर! बतलाइये, क्या योग को ब्रह्म कहते हैं या शरीर को? सर्वव्यापी महादेव ने पूर्ण आनन्द से भरकर कुछ मुस्कान के बाद अपने वामदेव[१] नामक मुख से पार्वती से कहा ॥ २०-२१- ॥

---

[१] भगवान शिव के पाँच मुखों के नाम ये हैं—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान ।

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ॥ २२ ॥
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारय ।
यद् दृश्यान्नापरं दृश्यं यद् दृष्ट्वा न पुनर्भवः ॥ २३ ॥
तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
अनन्तमेकं नित्यं यत् तद् ब्रह्मेत्यवधारय ॥ २४ ॥

ईश्वर ने कहा—जिसके लाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं, जिस सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं और जिस ज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है, उसे ब्रह्म समझो । जिस दृश्य से बढ़कर कोई दर्शनीय नहीं, जिसे देखकर पुनर्जन्म नहीं होता । जो तिर्यक् ऊर्ध्व अधः सर्वत्र पूर्ण है, जो सच्चिदानन्द अव्यय अनन्त एक और नित्य है उसे ब्रह्म जानो ॥ २२-२४ ॥

पार्वत्युवाच—

कर्मपाशसमाबद्धो भोगी भोगपरायणः ।
कथं मुक्तो भवेद् देव भोगेनैव महेश्वर ॥ २५ ॥
तत् सर्वं कथयेशान यद्यहं तव वल्लभा ।

पार्वती ने कहा—हे महेश्वर! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ तो मुझे बतलाइये कि कर्मपाश से आबद्ध भोगी और भोगों में लगा हुआ यह जीव हे देव! भोग के ही द्वारा कैसे मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ २५- ॥

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद् गुह्यं परमाद्भुतम् ॥ २६ ॥
न वक्तव्यं त्वया किंचिज्जनेषु कथितं मया ।
अपृथक्त्वशरीरत्वाद् वक्ष्यामि तव सुव्रते ॥ २७ ॥
यदुक्तं ते मया तन्त्रं त्रिविधं त्रिगुणात्मकम् ।
तामसं कुत्र सम्प्रोक्तं राजसं चापि कुत्रचित् ॥ २८ ॥
सात्त्विकं तत्र कुत्रापि धीमांस्तस्मात् तदुद्धरेत् ।
तामसं नरकायैव स्वर्गाय राजसं प्रिये ॥ २९ ॥
सात्त्विकं मोक्षदं प्राहुस्तुरीयं निष्फलं शिवे ।
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोध मे ॥ ३० ॥
तामसानि पुराणानि तन्त्राणि तानि च प्रिये ।
स्वर्गमोक्षविहीनानि तानि यत्नाद्विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥
इ(य?म)मर्थं पुरा देवि पृष्टवान् देवकीसुतः ।
मां प्रसाद्य तपस्तप्त्वा भोगेन मुक्तिसाधनम् ॥ ३२ ॥

तस्मै वापि मया प्रोक्तं संदेहोच्छेदकारकम् ।
ततस्तेनापि सम्प्रोक्तं ब्रह्मणे हंसरूपिणे ॥ ३३ ॥
नन्दिकेश्वर एतद्वै मयोक्तं पुनरेव हि ।
सोऽपि चाभूत्स्वयं कर्ता मम तुल्यो महामतिः॥ ३४ ॥
पुष्पदन्ते ततः प्रोक्तं तन्त्रमेतद्वरानने ।
गन्धर्वेभ्यो ददौ तेन रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ३५ ॥
ब्रह्मणा च तथा प्राप्तं तस्मात् ते मुनयः प्रिये ।
पुरन्दरेणाङ्गिरसाद् भार्गवाद्दैत्यराट् प्रभुः ॥ ३६ ॥
पुलस्तेरपि पौलस्त्याः क्रमादेवं महीतले ।

ईश्वर ने कहा—हे देवि! जो परम अद्भुत और गुह्य है उसे सुनो । मेरे द्वारा उक्त वचन की तुम थोड़ी भी चर्चा लोगों के बीच मत करना । हे सुव्रते ! मुझसे अपृथक्शरीर (अर्थात् मेरा वामार्ध) होने के कारण मैं तुमको बतलाऊँगा । मैने जो तुमको तीन प्रकार का त्रिगुणात्मक तन्त्र बतलाया । उनमें से कहीं तामस तन्त्र कहा गया, कहीं राजस और कहीं सात्त्विक बतलाया गया । बुद्धिमान् व्यक्ति को तत्तत् स्थानों से उसे ले लेना चाहिये । हे प्रिये! तामस तन्त्र नरकप्राप्ति के लिये होता है । राजस तन्त्र स्वर्ग के लिये तथा सात्त्विक तन्त्र मोक्षप्रद होता है । हे शिवे! उपर्युक्त तीनों से भिन्न यदि कोई चतुर्थ तन्त्र है तो वह निष्फल होता है। हे गिरिजे! मुझसे तामस शास्त्रों के विषय में जानो । हे प्रिये! तामस पुराण और तामस तन्त्र दोनों स्वर्ग और मोक्ष से हीन हैं अर्थात् उनसे न तो स्वर्ग मिलता है और न मोक्ष । इसलिये प्रयत्नपूर्वक उनका त्याग कर देना चाहिये । हे देवि! पहले इस विषय को देवकी पुत्र (कृष्ण) ने पूछा । उन्होंने मुझे प्रसन्न कर तपस्या की और फिर भोग के द्वारा मोक्ष का सिद्धि जानी । मैने उनको सन्देह का उच्छेदक शास्त्र बतलाया । इसके पश्चात् उन्होंने हंस रूप धारण करने वाले ब्रह्मा को बतलाया । पुनः मैने इसको नन्दिकेश्वर को बतलाया । परिणाम- स्वरूप वह महामतिमान् मेरे समान तन्त्र शास्त्र का कर्त्ता बन गया । हे वरानने! इसके बाद मैने इस तन्त्र का पुष्पदन्त को उपदेश दिया । वह परम अद्भुत रहस्य उन्होंने गन्धर्वों को दिया । ब्रह्मा ने उस प्रकार अर्थात् हंसरूप में प्राप्त किया । उनसे हे प्रिये! मुनिजनों ने प्राप्त किया । आङ्गिरस अर्थात् बृहस्पति से इन्द्र ने और भार्गव अर्थात् शुक्राचार्य से दैत्यराज (= वृत्रासुर?), पुलस्ति से पौलस्त्यों ने प्राप्त किया । इस प्रकार क्रम से यह पृथ्वीतल पर आया ॥ २६-३६- ॥

नमुच्याद्या महादैत्याः पुरा स्वायम्भुवान्तरे ॥ ३७ ॥
महाबलपरीवारा महावीर्या महौजसः ।
सर्वधर्मरताः सर्वे सर्वपापविवर्जिताः ॥ ३८ ॥

त्रयीधर्मरताः सर्वे भग्ना इन्द्रपुरोगमाः ।
तदाकर्ण्य महेशानि ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३९ ॥
मदन्तिकं समासाद्य स्तुतिभिर्सा प्रसाद्य च ।
उवाचेदं वचश्चापि श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ ४० ॥

प्राचीन काल में स्वायभुव मन्वन्तर में नमुचि आदि दैत्य महाबल से युक्त महापराक्रमी, महातेजस्वी, समस्त धर्मों में तत्पर, शुद्ध, पापरहित तथा तीनों वेदों के अनुसार धर्माचरण करने वाले थे । इसके परिणाम स्वरूप इन दैत्यों के द्वारा इन्द्र आदि समस्त देवतागण पराजित और पदच्युत कर दिये गये । हे महेशानि! ऐसा सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा मेरे पास आये और स्तुतियों के द्वारा मुझे प्रसन्न किया । इसके बाद मधुर वाणी से यह मधुर वचन बोले ॥ ३७-४० ॥

ब्रह्मोवाच—

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुःखनिसूदन ।
भोगमोक्षप्रदे तन्त्रे त्वया प्रकाशिते प्रभो ॥ ४१ ॥
तदवाप्य महादेव नरराक्षसदानवाः ।
सिद्धिप्रदा भवेयुस्ते प्रभुनाम कथं चरेत् ॥ ४२ ॥
सर्वे ब्रह्मात्मना देव यदि यास्यन्ति विद्यया ।
कैव सृष्टिः किमत्रापि कार्य्यं स्याद् वद शङ्कर॥ ४३ ॥
इति विज्ञाप्य मां ब्रह्मा ययौ ब्रह्मसदः प्रति ।
ततोऽहं परमेशानि गत्वा मन्दरपर्वतम् ॥ ४४ ॥
तान् विप्रानथ संस्मृत्य मन्त्रयित्वा च तैः सह ।
नन्दिकेश्वरमाहूय द्वारि संस्थाप्य सत्वरम् ॥ ४५ ॥
रक्षितव्यस्त्वया भद्र वि(क्ष?घ्न)श्चेह समागतः ।
इत्यादिष्य प्रविष्टोऽहं निर्जनं परमं महत् ॥ ४६ ॥
मोहनार्थं परं तेषां दैत्यादीनां विशेषतः ।
शास्त्राणि विविधान्यत्रसम्प्रोक्तानि द्विजैः सह ॥ ४७ ॥
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ।
यच्चिन्तनान्महादेवि गोतमो मुनिपुङ्गवः ॥ ४८ ॥
अक्षपाद इति ख्यातः प्रमत्तो मां विगर्हयन् ।
अनुभूय तदास्वादं मामेव शरणं ययौ ॥ ४९ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे सर्वज्ञ! हे सर्वलोकेश! हे सर्वदुःखनिषूदन! हे प्रभो! आपने भोगप्रद और मोक्षप्रद दोनों प्रकार के तन्त्रों का प्रकाशन किया । इन तन्त्रों को

प्राप्त कर मनुष्य राक्षस और दानव सब के सब सिद्धिदायक हो जायेंगे तो भगवान् का नाम कैसे चलेगा । सब लोग यदि ब्रह्मविद्या के अनुसार चलने लगेंगे अर्थात् संसार को मिथ्या मानकर विरक्त हो जायेंगे तो यह सृष्टि कैसे चलेगी? हे शङ्कर! इस विषय में क्या करना चाहिये कृपया यह बतलाइये । ऐसा मुझसे कहकर ब्रह्मा ब्रह्मसभा में चले गये । हे परमेशानि! इसके बाद मैंने मन्दराचल पर जाकर उन ब्राह्मणों को बुलाकर उनके साथ मन्त्रणा की । तत्पश्चात् नन्दिकेश्वर को शीघ्र बुलाकर द्वार पर रखकर कहा—हे भद्र! यदि यहाँ कोई विघ्न आता है तो तुम उससे रक्षा करना । इस प्रकार आदेश कर मैं परम महानिर्जन स्थान में चला गया । उनको विशेषत: दैत्यों को सम्मोहित करने के लिये मैंने ब्राह्मणों के साथ ऐसे अनेक प्रकार के शास्त्रों की चर्चा की जिनको सुनने से ज्ञानी लोग भी पतित हो जाते हैं । हे महादेवि! जिसका श्रवण मनन करने से मुनिश्रेष्ठ गौतम अक्षपाद के नाम से प्रसिद्ध हुये । मत्त होकर मेरी निन्दा करते हुए उस तन्त्र का आस्वादन अर्थात् अनुगमन कर उससे खिन्न होकर मेरी शरण मे आ गये ॥ ४१-४९ ॥

तत् कृपालुरहं देवि स्वयमादिष्टवानिदम् ।
वैष्णवं तन्त्रमाचक्ष्व वि(ष्णाय?वृण्वं)स्तु सदा मुने ॥ ५० ॥
प्रसन्नको यदा विष्णुस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
यदुक्तं ते मया तन्त्रं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५१ ॥
अधीत्य नारदात् सर्वं सिद्धिमाप मुनिस्तदा ।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् ॥ ५२ ॥
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रै सम्प्रोक्तानि ततः परम् ।
कणादेन च सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् ॥ ५३ ॥
गोतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन तु ।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् ॥ ५४ ॥
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ।
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् ॥ ५५ ॥
आपा(त्यं?र्थ्य)श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र वै प्रतिपाद्यते ॥ ५६ ॥
सर्वकर्मपरिभ्रष्टाद्(वैकर्म सं?विकर्मासत्) तदुच्यते ।
गौतमप्रोक्तशास्त्रार्थनिरताः सर्व एव हि ॥ ५७ ॥
सर्गालीं योनिमापन्नाः सं(धि?दि)ग्धाः सर्वकर्मसु ।

हे देवि! उसके बाद मैने दयाकर यह आदेश दिया । हे मुने! तुम व्याख्या

करते हुए सदा वैष्णव तन्त्र का उपदेश करो । जब विष्णु प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम सिद्धि प्राप्त कर लोगे । मैने परमात्मा कृष्ण का जो तन्त्र (= वैष्णव तन्त्र) तुमको बतलाया वह सम्पूर्ण तन्त्र नारद से प्राप्त कर गौतम मुनि ने सिद्धि प्राप्त की । शैव पाशुपत आदि तन्त्रों का निर्वचन मैने पहले ही कर दिया । इसके बाद मेरी मोहमयी शक्ति से आवेशित ब्राह्मणों ने अधोलिखित शास्त्रों का प्रणयन किया । कणाद ने महान् वैशेषिक शास्त्र की रचना की । गौतम ने न्यायशास्त्र और कपिल ने सांख्यशास्त्र का प्रणयन किया । बृहस्पति ने अत्यन्त निन्दित चार्वाक मत का प्रवचन किया । बुद्धरूपी विष्णु ने दैत्यों के विनाश के लिये नग्ननीलपट दर्शन आदि असत् शास्त्र का वर्णन किया । इसमें वेदवाक्यों का लोकनिन्दित निकृष्ट अर्थ बतलाते हुए (यज्ञ आदि) सत्कर्म को त्याज्य कहा गया है । वह बौद्धशास्त्र समस्त कर्मों से परिभ्रष्ट होने के कारण विकर्म अर्थात् विरुद्ध कर्म वाला अतएव असत् कहा जाता है । गौतम के द्वारा प्रोक्त शास्त्र के अर्थ का अनुसरण करने वाले सब के सब शृगाल की योनि को प्राप्त होते हैं और सम्पूर्ण कर्मों के विषय में सन्देह करते हैं ॥ ५०-५७- ॥

सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं पुरा शिवे ॥ ५८ ॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव कथितं देवि जगतां नाशकारणात् ॥ ५९ ॥
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थतः ।
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ॥ ६० ॥
तत्रैवाहं महामन्त्रान् संदूष्य दोषविस्तरैः ।
कृत(वान्त?वांस्त)न्त्रविस्तारं ससंदेहपदान्वितम् ॥ ६१ ॥
अथ देवाश्च देव्यश्च दूषिते मन्त्रविग्रहे ।
अभवन् दूषिताः सर्वे हीनवीर्य्यपराक्रमाः ॥ ६२ ॥
निर्बलास्त्वङ्गहीनाश्च अथ सर्वे दिवौकसः ।
विष्णुलोकं समासाद्य व्यसनं तन्न्यवेदयन् ॥ ६३ ॥
विदित्वा व्यसनं विष्णुस्तत्तत् तेषां दिवौकसाम् ।
वैनतेयं समारुह्य नन्दिकेश्वरसन्निधौ ॥ ६४ ॥
आगतो वारितस्तेन मद्दर्शनसमुत्सुकः ।
तत्र स्थित्वा महेशानि भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ ६५ ॥
वर्धयितुं शरीरं च वैनतेयं समादिशत् ।
प्रवृद्धस्य खगेन्द्रस्य स्थित्वा तस्योत्तमाङ्गके ॥ ६६ ॥
स दृष्ट्वा समुपाविष्टमिदमाह स्मिताननः ।

हे शिवे! प्राचीन काल में समस्त संसार को मोहग्रस्त करने के लिये मैने वेद के अर्थों वाले अवैदिक मायावाद का वर्णन संसार के नाश के लिये किया। ब्राह्मण जैमिनि ने पहले वेद का अपकृष्ट अर्थ कर निरीश्वरवाद वाला महत्तर शास्त्र बनाया। उसमें मैंने अत्यधिक दोषों के द्वारा महामन्त्रों को दूषित कर सन्दिग्ध पदों वाले तन्त्र का विस्तार किया। इसके परिणामस्वरूप मन्त्रविग्रह के दूषित होने पर सब देव और देवियाँ दूषित होकर वीर्य और पराक्रम से रहित हो गयीं। सारे देवगण निर्बल और अङ्गहीन होने के बाद विष्णुलोक को प्राप्त कर उस कष्ट का विष्णु से निवेदन किये। विष्णु ने देवताओं के तत्तत् कष्ट को जानकर गरुड पर आरूढ हो नन्दिकेश्वर के पास आ गये। वे मेरे दर्शन के लिये उत्सुक थे किन्तु नन्दी ने उन्हें रोक दिया। हे महेशानि! इसके बाद भगवान् जगदीश्वर ने वहीं रुक कर गरुड़ को अपना शरीर बढ़ाने के लिये आदेश दिया। गरुड़ के बढ़ जाने के बाद महेश्वर उनके शिर पर बैठकर गये। भगवान् विष्णु ने उनको शिर पर बैठा हुआ देखकर मुस्करा कर यह वचन कहा ॥ ५८-६६- ॥

श्रीभगवानुवाच—

अकालं प्रलयः कस्मात् क्रियते भवताधुना ॥ ६७ ॥
न युज्यते महादेव कर्तुमेवं न साम्प्रतम्।

श्रीभगवान् ने कहा—हे महादेव! आप उस समय अकाल अर्थात् उचित समय न आने पर भी क्यों प्रलय कर रहे हैं। इस समय ऐसा करना समीचीन नहीं है ॥ ६७- ॥

ईश्वर उवाच—

दूषिता ब्रह्मणो मन्त्राः सौराश्चाग्निसमुद्भवाः ॥ ६८ ॥
तथा वै दूषिता यौन्याः श्रियश्चापीह केचन।
सरस्वत्या महामन्त्राः वैष्णवा अपि केचन ॥ ६९ ॥
वैनायका महामन्त्राः प्रायेण दूषिता मया।
शक्तितन्त्रेषु ये केचित् ससंदेहपदान्विताः ॥ ७० ॥

ईश्वर ने कहा—ब्रह्मा के, सूर्य के तथा अग्नि से उत्पन्न मन्त्र दूषित हो गये। योनि (अर्थात् काली) के तथा लक्ष्मी के भी कुछ मन्त्र दूषित हो गये। सरस्वती के महामन्त्र, विष्णु के कुछ मन्त्र, विनायक के महामन्त्र भी प्रायः मेरे द्वारा दूषित कर दिये गये। शाक्त तन्त्रों में जो मन्त्र हैं उनमें से भी कुछ सन्देहात्मकपद वाले हो गये हैं ॥ ६८-७० ॥

श्रीभगवानुवाच—

जगद्वन्द्य कलाधीश सर्वभूतोपकारक।

निवर्त्तस्व महादेव मद्वाक्यशासनादिभिः ॥ ७१ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे जगद्वन्द्य! हे कलाधीश! हे सर्वभूतोपकारक! हे महादेव! मेरे वचन, शासन आदि के कारण आप विरत हो जायें ॥ ७१ ॥

ईश्वर उवाच—

विरतोऽहं तदा तस्य विष्णोरमिततेजसः ।
वचनात् परमेशस्य शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ७२ ॥
तान्यधीत्यैव ते सर्वे मोहिता विष्णुमायया ।
भविष्यन्ति च संदिग्धा वालिशत्वादनास्थया ॥ ७३ ॥
विवदिष्यन्ति सम्मूढा हेतुवादपरायणाः ।
हे(ति?तु)साध्येतिवाक्याच्च भविष्यन्ति पराङ्मुखाः॥ ७४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे तन्त्रप्रस्तावना-
निरूपणनामकः प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

◆

ईश्वर ने कहा—तब मैं शङ्खचकगदाधारी अमित तेजस्वी परमेश्वर के वचन के कारण विरत हो गया । उन दूषित शास्त्रों को पढ़कर विष्णु की माया से वे सब मोहित होकर मूर्खता के कारण अनास्थायुक्त होकर हेतुवाद में संलग्न होकर परस्पर विवाद करेंगे । हेतु और साध्य नामक अनुमान प्रमाण के अवयववाक्यों के कारण वे तत्त्वज्ञान से पराङ्मुख हो जायेंगे ॥ ७२-७४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्रार्गत पार्वतीश्वरसंवाद के तन्त्र प्रस्तावनानिरूपण
नामक प्रथम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १ ॥

◆

द्वितीयः पटलः

विद्याभेदोद्धारनिरूपणम्

पार्वत्युवाच—

शक्तितन्त्रं महादेव संदेहरहितं कुरु ।
तथा कथय देवेश भोगेन मुक्तिसाधनम् ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—हे महादेव! शक्तितन्त्र को सन्देहरहित कीजिये अर्थात् शक्तितन्त्र प्रामाणिक है अथवा अप्रामाणिक; इसके पालन एवं अनुसरण से भोग मोक्ष दोनों मिलेगा या कोई एक? क्या भोग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति इस तन्त्र से हो सकेगी? इत्यादि शङ्काओं को दूर कीजिये तथा हे देवेश! भोग के द्वारा मोक्ष की सिद्धि बतलाइये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

निःसंदेहं महातन्त्रं श्रूयतां खलु साम्प्रतम् ।
गोपितव्यं पशोरग्रे पूर्णचन्द्रनिभानने ॥ २ ॥
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ।
ब्रह्मणोऽपि परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ॥ ३ ॥

ईश्वर ने कहा—हे पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली! इस समय (शक्तितन्त्र) निःसन्देह महातन्त्र है । पशु के समक्ष इसे स्पष्ट नहीं करना चाहिये । इस तन्त्र में मैं परमात्मा और जीवात्मा का अभेद प्रतिपादित करूँगा । मैं ब्रह्म का निर्गुण पर रूप बतलाऊँगा । हे विमले! हे भद्रे! सुनो ॥ २-३ ॥

त्रिपुरसुन्दर्या माहात्म्यवर्णनम्

श्रूयतां विमले भद्रे आत्मानमात्मना पुनः ।
प्रणमामि महादेवीं तुरीयां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ ४ ॥
यस्याः स्मरणमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जते ।

अस्याश्चाराधनं कृत्वा नान्यस्याराधनं चरेत् ॥ ५ ॥
अन्यस्य स्मरणाद्दुःखं योगिनीशापमालभेत् ।
अपमृत्युर्भवेत् तस्य मृते च नरकं व्रजेत् ॥ ६ ॥
एनामुपास्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ।
सकृदेनामुपास्यैव न मातुः स्तनपो भवेत् ॥ ७ ॥
तस्माद् देवि शुभे भद्रे तुरीयां समुपाश्रयेत् ।
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया द्वितीया भगमालिनी ॥ ८ ॥
वज्रेश्वरी तृतीया च तुर्या त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रयाणामपि देवानां प्रचोदिका त्रिपादिका ॥ ९ ॥
त्रिपुरेति समाख्याता कामदा सा कामेश्वरी ।
त्रीन् यस्मात् पुरतो दद्याद् दुर्गा सा परमेश्वरी ॥ १० ॥
त्रिपुरेति समाख्याता सौन्दर्य्यातिशयात् तथा ।
मयापि चिन्त्यते सा तु तत्प्रसादादहं प्रभुः ॥ ११ ॥
जगतामीश्वरत्वं च लब्धं तदनुकम्पया ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं विष्णुत्वं विष्णुना तथा ॥ १२ ॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां महत्त्वं तत्प्रसादतः ।
तेनेयं महती विद्या दुर्लभा भुवनत्रये ॥ १३ ॥

त्रिपुरसुन्दरी के माहात्म्य का वर्णन—मैं पुनः स्वयं के द्वारा उस ब्रह्मरूपिणी तुरीया आत्मरूपा महादेवी को प्रणाम करता हूँ जिसके स्मरणमात्र से (जीव) भवसागर में निमग्न नहीं होता । इसकी आराधना करने के बाद अन्य किसी की आराधना नहीं करनी चाहिये । (आत्मदेव के अतिरिक्त) किसी दूसरे का केवल स्मरण करने से साधक दुःख और योगिनी का शाप प्राप्त करता है । उसकी अकाल और अपमृत्यु होती है तथा मरने के बाद वह नरक में जाता है । हे देवेशि! इसकी उपासना करने से पृथ्वी पर क्या प्राप्त नहीं होता । इसकी एक बार उपासना करने पर मनुष्य पुनः माता का स्तनपायी नहीं होता अर्थात् उसका पुनः जन्म नहीं होता । इसलिये हे देवि! हे शुभे! हे भद्रे! तुरीया की उपासना करनी चाहिये । पहली देवी कामेश्वरी और दूसरी भगमालिनी जाननी चाहिये । तीसरी वज्रेश्वरी और चतुर्थी त्रिपुरसुन्दरी है । (ब्रह्मा, विष्णु शिव नामक) तीन देवों को प्रेरित करने वाली त्रिपादिका त्रिपुरा कही गयी है । वह कामदा और कामेश्वरी (भी कही जाती है) । चूँकि वह परमेश्वरी दुर्गा (धर्म अर्थ और काम नामक) तीन पुरुषार्थों को पहले (तथा मोक्ष को बाद में) देती है अतः वह त्रिपुरा के नाम से प्रसिद्ध हुई । अतिशय सौन्दर्य के कारण भी (वह उस नाम से प्रसिद्ध हुई) । मैं भी उसी का ध्यान करता हूँ । उसकी कृपा से मैं संसार का स्वामी हूँ । उसकी

अनुकम्पा से मैंने ईश्वरत्व प्राप्त किया । ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व और विष्णु ने विष्णुत्व प्राप्त किया । उसकी प्रसन्नता से सुर असुर और मुनीन्द्रों का महत्त्व है । इस कारण यह महाविद्या तीनों लोकों में दुर्लभ है ॥ ४-१३ ॥

देव्युवाच—

भगवन् सर्वमन्त्राश्च भवता मे प्रकाशिताः ।
महात्रिपुरसुन्दर्य्या मन्त्रा ये पूर्वसूचिताः ॥ १४ ॥
तांस्तानेवाधुना नाथ संदेहरहितान् कुरु ।

देवी ने कहा—हे भगवन्! आपने मुझे सारे मन्त्र बतलाये । महात्रिपुरसुन्दरी के जिन मन्त्रों को पहले आपने सूचित किया हे नाथ! उन्हीं को अब सन्देहरहित कीजिये ॥ १४- ॥

त्रिपुरसुन्दरीमन्त्राधिकारिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

सर्वकार्येषु सर्वत्र तान्त्रिके वैदिके तथा ॥ १५ ॥
अविश्वासो महान् दोषो यत्नतस्तं विवर्जयेत् ।
संसिद्धेः कारणं देवि विश्वासः समुदाहृतः ॥ १६ ॥
विदित्वा रक्षणं यत्तु सगुणं वीर्य्यवर्धनम् ।
रत्नेषु कीलकं यद्वद् ग्रन्थिर्मलयसम्भवे ॥ १७ ॥
आस्तिकोऽथ शुचिर्दान्तो द्वैतहीनो जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवादी च ब्रह्मी ब्रह्मपरायणः ॥ १८ ॥
सवहिंसाविनिर्मुक्तः सर्वप्राणिहिते रतः ।
सोऽस्मिञ् शास्त्रेऽधिकारी स्यात् तदन्यो श्रमसाधकः ॥ १९ ॥
नास्तिकाय कुशीलाय दाम्भिकाय कदाचन ।
न वक्तव्यं पशोरग्रे कुटिले चुम्बके तथा ॥ २० ॥

त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र के अधिकारी का निरूपण—ईश्वर ने कहा—तान्त्रिक वैदिक समस्त कार्यों में सर्वत्र अविश्वास करना महान् दोष है । यत्नपूर्वक उसका त्याग करना चाहिये । हे देवि! सिद्धि का कारण विश्वास कहा गया है । जिस प्रकार रत्नों में स्थित कीलक (= अपद्रव्य) तथा मलयचन्दन में गाँठ (= किसी दूसरे बीज से या कीड़ा के काटने से उत्पन्न गाँठ) को जानकर उसकी रक्षा (अपद्रव्य को दूर कर) की जाती है तथा (उसे) गुणवान् और वीर्यवर्द्धक बनाया जाता है (वैसे ही अविश्वास को हटा देना चाहिये) । जो व्यक्ति आस्तिक (= ईश्वर वेदशास्त्र और स्वर्ग आदि में विश्वास रखनें वाला) पवित्र, दान्त (= मन को

वश में रखने वाला), द्वैतहीन जितेन्द्रिय, ब्रह्मनीष्ठ, ब्रह्मवादी, ब्रह्मी, ब्रह्मपरायण, हिंसा न करने वाला, सब प्राणियों का हित करने वाला है वही इस शास्त्र में अधिकारी होता है । उससे भिन्न व्यक्ति भ्रमसाधक (= अयुक्तसिद्धि को प्राप्त करने वाला) होता है । हे देवि! इस शास्त्र का निर्वचन नास्तिक कुशील दम्भ वाले व्यक्ति को नहीं करना चाहिये । पशु कुटिल चुम्बक (= सभी शास्त्रों से थोड़ा-थोड़ा अंश लेने वाला तथा भिन्न-भिन्न लोगों के पास जाकर स्वार्थ सिद्धि करने वाला) के आगे इस शास्त्र का वर्णन नहीं करना चाहिये ॥ १५-२० ॥

वाग्भवमन्त्रोद्धारतन्माहात्म्ययोर्वर्णनम्

शृणु देवि महद् गुह्यं मन्त्रोद्धारं वरानने ।
आदौ पञ्चदशी विद्या कथ्यते वीरवन्दिते ॥ २१ ॥
कामदेवस्ततो योनिस्तुर्य्यस्वरपुरन्दरौ ।
भु(?भौ)वनेशी ततः पश्चात् पञ्च(रञ्ज?वर्ण)विभूषितः॥ २२ ॥
अयं स वाग्भवो देवि वागीशत्वप्रदायकः ।
एतज्जप्त्वा महाबीजं किं न सिध्यति भूतले ॥ २३ ॥
बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे न्यसेत् ।
मधुना श्वेतदूर्वाभिः सुवर्णस्य शलाकया ॥ २४ ॥
इदं वाग्भवकूटं तु लिखेद्वै जननान्तरे ।
स एव पण्डितो भूयान्न तु मूर्खो भवेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥
एतद्वाग्भवकूटं तु वालिशस्यापि मूर्धनि ।
हस्तं दत्त्वा पठेत् सिद्धमष्टोत्तरशतं प्रिये ॥ २६ ॥
सोऽपि श्लोकान्महेशानि करोत्येव न संशयः ।
सतर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् ॥ २७ ॥
जिह्वायां न्यसनाद्देवि मूकोऽपि सुकविर्भवेत् ।
बहुनात्र किमुक्तेन जल्पितेनापि सुन्दरि ॥ २८ ॥
वागीशं स्पर्धते वाकै(?वाग्भिः)सर्वज्ञो भुवि जायते ।
मूको भवति वागीशो वाचस्पतिरिवापरः ॥ २९ ॥

वाग्भव मन्त्र का उद्धार एवं माहात्म्य—हे देवि! हे वरानने! अत्यन्त गोपनीय मन्त्रोद्धार को सुनो । हे वीरवन्दिते! पहले पञ्चदशी विद्या कही जाती है । कामदेव, योनि, चतुर्थ स्वर और पुरन्दर कहा जाता है । उसके बाद भौवनेशी । इस प्रकार यह मन्त्र पाँच वर्णों से विभूषित है । (पञ्चदशी मन्त्र का स्वरूप—कामदेव = क, योनि = ए, चतुर्थ स्वर = ई, पुरन्दर = ल, भौवनेशी = ह्रीं । इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप हुआ—क ए ई ल ह्रीं) ।

इस मन्त्र के निम्नलिखित लाभ हैं—(१) हे देवि! यह वाग्भव मन्त्र वागीशत्व देने वाला है । हे महादेवि! इसका जप करने से पृथ्वीतल पर क्या प्राप्त नहीं होता । यदि जन्म से तीन दिन के अन्दर बालक की जिह्वा पर सोने की शलाका से मधु और श्वेत दूर्वा के स्वरस को मिश्रित कर इस वाग्भव कूट को लिख दिया जाय तो वह बालक निश्चित रूप से पण्डित होता है मूर्ख नहीं । (२) हे प्रिये! मूर्ख के शिर पर हाथ रखकर इस सिद्ध वाग्भव कूट का एक-सौ आठ बार पाठ किया जाय तो वह मूर्ख भी हे महेशानि! श्लोकों की रचना करने लगता है । वह न्याय व्याकरण मीमांसा और साहित्य शास्त्र के तत्त्वों का ज्ञाता हो जाता है । (३) हे देवि! इस मन्त्र को जिह्वा में रखने पर मूक भी सुकवि हो जाता है । (४) इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ । हे सुन्दरि! वह वाणी में बृहस्पति के साथ स्पर्द्धा करता है । इस पृथ्वी पर वह सर्वज्ञ हो जाता है । यदि वह मूक है तो दूसरे बृहस्पति के समान वागीश हो जाता है ॥ २१-२९ ॥

कामराजविद्यातन्माहात्म्ययोर्वर्णनम्

शिवचन्द्रौ समुद्धृत्य कामव्योमपुरन्दरान् ।
उद्धरेत् परमेशानि लज्जाबीजं ततः प्रिये ॥ ३० ॥
कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वशोभितम् ।
चन्द्रः कामस्तथेन्द्रश्च महामाया ततः परम् ॥ ३१ ॥
शक्तिबीजं वरारोहे वेदाक्षरसमन्वितम् ।
त्रिकूटेयं महाविद्या महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ३२ ॥
सर्वतीर्थम (ये?यी) देवी सर्वदेवस्वरूपिणी ।
सर्वशास्त्रमयी शुद्धा सर्वदोषविवर्जिता ॥ ३३ ॥
चतुर्वेदमयी साक्षात् सर्वसौभाग्यदायिनी ।
कामराजाख्यविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ॥ ३४ ॥
अनया सदृशी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
एतस्या एव विद्यायाः शक्तिं तुर्यं च पार्वति ॥ ३५ ॥
हित्वा मुखे शिवेन्दुभ्यां लोपामुद्राप्रकाशिता ।
मारबीजं ततो योनिः कामः (शु?श)क्रं तथेश्वरी॥ ३६ ॥
पूर्ववत् कामराजं च शक्तिकूटं तथैव च ।
सवीर्य्या सिद्धिदा विद्या त्रैलोक्यवशकारिणी ॥ ३७ ॥
तव स्नेहान्महेशानि मयेयं तु प्रकाशिता ।
एतच्छाम्भवमुद्दिष्टं शृणु शाक्तमतः परम् ॥ ३८ ॥

शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रबीजमतः परम् ।
महामाया ततः पश्चात् पूर्ववदपरं ततः ॥ ३९ ॥
विद्यात्रयमिदं भद्रे दुर्लभं भुवनत्रये ।

कामराज विद्या का उद्धार एवं माहात्म्य—शिव और चन्द्र को समुद्धृत कर हे परमेशानि! काम व्योम और पुरन्दर को उद्धृत करना चाहिये । हे प्रिये! इसके बाद लज्जा बीज कहना चाहिये । हे भद्रे यह कामराज बीज है जो छह वर्णों से सुशोभित है । (मन्त्र—शिव = ह, चन्द्र = स, काम = क, व्योम = ह, पुरन्दर = ल, लज्जाबीज = ह्रीं—इस प्रकार पूर्ण मन्त्र हुआ—हसकहलह्रीं) । हे वरारोहे! चन्द्र काम इन्द्र इसके बाद महामाया यह शक्तिबीज वेदाक्षर अर्थात् चार अक्षरों से युक्त है । (मन्त्रस्वरूप—चन्द्र = स, काम = क, इन्द्र = ल और महामाया = ह्रीं, इस प्रकार पूरा बीज हुआ—सकलह्रीं) । यह महाविद्या तीन कूटों (= वर्णसमूहों) वाली है । इसका दूसरा नाम महात्रिपुरसुन्दरी है । यह देवी सर्वतीर्थमयी सर्वदेवस्वरूपिणी सर्वशास्त्रमयी शुद्ध तथा समस्त दोषों से रहित है । साक्षात् चतुर्वेदमयी सर्वसौभाग्यदायिनी यह कामराज नामक विद्या भोग और मोक्ष दोनों प्रकार का फल देने वाली है । इसके समान विद्या तीनों लोकों में दुर्लभ है । हे पार्वति! इसी विद्या के शक्ति = ए और तुर्य = ईं को छोड़कर पहले शिव = ह और इन्दु = स से युक्त करने पर यह लोपामुद्रा के द्वारा प्रकाशित अर्थात् उपासिता मानी गयी है । (इस प्रकार लोपामुद्रा के द्वारा उपासिता विद्या का स्वरूप—हसकलह्रीं है) । मारबीज फिर योनि, काम, शक्र, ईश्वरी फिर पूर्ववत् कामराज फिर शक्तिकूट यह वीर्यसम्पन्न सिद्धिदा विद्या है जो तीनों लोक को वश में करने वाली है । (मन्त्र-स्वरूप—मार = क, योनि = ए, काम = क, शक्र = ल, ईश्वर = ह्रीं, कामराज = हसकहलह्रीं, शक्तिकूट = झसखग्रमऊं (?)) । इस प्रकार पूर्ण स्वरूप हुआ—कएकलह्रीं हसकलह्रीं झसखग्रमऊं । हे महेशानि! तुम्हारे स्नेह के कारण मैने इसे प्रकाशित किया। यह शाम्भव मन्त्र है । अब शाक्तमन्त्र को सुनो—शक्ति, महेश काम इन्द्रबीज इसके बाद महामाया इसके बाद पूर्व की भाँति दूसरे वाग्भव का योग होता है । (मन्त्रस्वरूप—शक्ति = स, महेश = ह, काम = क, इन्द्र = ल, महामाया = ह्रीं, वाग्भवकूट = कएईलह्रीं । कुल मिलाकर पूर्णरूप हुआ—सहकलह्रीं कएईलह्रीं । हे भद्रे! ये तीनों विद्यायें (= वाग्भव, कामराज, शक्तिबीज) तीनों लोक में दुर्लभ हैं ॥ ३०-३९- ॥

षोडशी-सप्तदशीविद्याकथनोपक्रमः

देव्युवाच—

षोडशार्णां महाविद्यां त्रैलोक्यवशदायिनीम् ॥ ४० ॥
अधुना कथयेशान यद्यहं तव वल्लभा ।

षोडशी एवं सप्तदशी विद्या का वर्णन—देवी ने कहा—हे ईशान! यदि मैं आपकी प्रेयसी हूं तो आप अब त्रैलोक्यवशकारिणी षोडशार्णा (= सोलह वर्णों वाली) महाविद्या का वर्णन करें ॥ ४०- ॥

षोडशीसप्तदशीविद्योद्धारः

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि महाविद्यां षोडशाक्षररूपिणीम् ॥ ४१ ॥
एतस्या एव विद्याया यदाद्ये भुवनेश्वरी ।
तदेयं परमेशानि षोडशाक्षररूपिणी ॥ ४२ ॥
मायास्थाने(वा?र)माबीजं दत्त्वान्या षोडशी भवेत् ।
वरदा सिद्धिदा विद्या कुबेरास्पददायिनी ॥ ४३ ॥
चिन्तामणिरियं विद्या त्रैलोक्ये चापि दुर्लभा ।
वेदादिमण्डिता चान्या विद्या मोक्षप्रदायिनी ॥ ४४ ॥
तथैव हि महाबीजं रमाबीजं तथैव च ।
पञ्चदशाक्षरीविद्यां तथैव च समुद्धरेत् ॥ ४५ ॥
सेयं सप्तदशी विद्या साक्षात् जाग्रत्स्वरूपिणी ।

षोडशी एवं सप्तदशी विद्या का उद्धार—ईश्वर ने कहा—हे देवि! सोलह अक्षरों वाली महाविद्या को सुनो । इस (पञ्चदशी) विद्या के पहले जब भुवनेश्वरी बीज जोड़ दिया जाता है हे परमेशानि! तब यह षोडशी हो जाती है अथवा माया (= भुवनेश्वरी) बीज के स्थान पर रमाबीज देकर दूसरे प्रकार की षोडशी होती है । (षोडशी विद्या का स्वरूप—(क) ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं । (ख) श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं) । यह विद्या वरदा, सिद्धिदा और कुबेर का पद देने वाली है । यह विद्या चिन्तामणि है और त्रैलोक्य में दुर्लभ है । इसका एक अन्य स्वरूप है—माया और रमा बीजों के बदले जब इसे वेदादि = ओऽम् से जोड़ दिया जाता है तक यह मोक्षदायिनी हो जाती है । जब महाबीज (= मायाबीज) और रमाबीज के साथ पञ्चदशाक्षरी को जोड़ा जाता है तब यह सप्तदशाक्षरी विद्या हो जाती है जो साक्षात् जाग्रत् स्वरूपिणी (= सर्वदा जाग्रत रहने वाली) होती है ॥ ४१-४५- ॥

देव्युवाच—

ततः कथय देवेश राजराजेश्वरीं पराम् ॥ ४६ ॥
षोडशार्णां महाविद्यां त्रैलोक्यवशदायिनीम् ।
जननीं सर्वमन्त्राणां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ ४७ ॥

देवी ने कहा—हे देवेश! इसके बाद परा राजराजेश्वरी महाविद्या को बतलाइये जो सोलह वर्णों वाली, त्रैलोक्य को वश में करने वाली, समस्त मन्त्रों की जननी और परब्रह्मस्वरूपिणी है ॥ ४६-४७ ॥

राजराजेश्वरीविद्यावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

राजराजेश्वरीं विद्यां तथास्याः कवचं प्रिये ।
यो जानाति महीपृष्ठे स देवो न तु मानुषः ॥ ४८ ॥
राजराजेश्वरी विद्या कथ्यते शृणु पार्वति ।
रमाबीजं समुद्धृत्य मायाबीजं नियोजयेत् ॥ ४९ ॥
कामबीजं समालिख्य वाग्बीजं तदनन्तरम् ।
चतुर्दशस्वरोपेतं चन्द्रं बिन्दुयुगान्वितम् ॥ ५० ॥
प्रणवं भुवनेशानीं रमां चैव महेश्वरि ।
पञ्चदशाक्षरीं पश्चादुद्धरेत् परमेश्वरि ॥ ५१ ॥
व्युत्क्रमात् परमेशानि पूर्वोक्तबीजपञ्चकम् ।
आलिख्य सम्पुटीकुर्य्याद् विद्येयं द्व्यष्टकूटका ॥ ५२ ॥
तुरीयेयं महाविद्या केवलात्मस्वरूपिणी ।
षोडशार्णा महाविद्या श्रीविद्या कथिता परा ॥ ५३ ॥
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥ ५४ ॥
षोडशार्णा महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
तव स्नेहान्महेशानि गन्धर्वे वै प्रकाशिता ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे विद्याभेदोद्धारनिरूपण
नामको द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

* * *

राजराजेश्वरी विद्या का वर्णन—ईश्वर ने कहा—हे प्रिये! जो व्यक्ति राजराजेश्वरी विद्या तथा इसके कवच को जानता है वह इस पृथ्वीतल पर देवता है मनुष्य नहीं । हे पार्वति! मैं राजराजेश्वरी विद्या को बतला रहा हूँ सुनो । रमाबीज को उद्धृत कर मायाबीज कहना चाहिये । कामबीज लिखकर वाग्बीज लिखना चाहिये । चौदहवें स्वर से युक्त चन्द्र को दो बिन्दुओं से युक्त कर प्रणव भुवनेश्वरी और रमा को कहना चाहिये । हे महेश्वरि! उसके बाद पञ्चदशाक्षरी को उद्धृत

करना चाहिये । हे परमेश्वरि! पूर्वोक्त पाँच बीजों को विपरीत क्रम से लिखकर सम्पुटित करना चाहिये । इस प्रकार यह विद्या दो आठ = सोलह कूटों वाली होती है । (मन्त्र-स्वरूप—(१) श्रीं (२) ह्रीं (३) क्लीं (४) ऐं (५) सौः (६) ओं (७) ह्रीं (८) श्रीं (९) एकईलह्रीं (१०) हसकहलह्रीं (११) सकलह्रीं (१२) सौः (१३) ऐं (१४) क्लीं (१५) ह्रीं (१६) श्रीं ।) यह चतुर्थी महाविद्या केवलात्मस्वरूपिणी है । सोलह वर्णों वाली यह महाविद्या परा श्रीविद्या कही गयी है । कोटिसहस्र मुखों कोटिशतों जिह्वाओं के द्वारा इस षोडशाक्षरी श्रीविद्या की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता । षोडशार्णा महाविद्या समस्त तन्त्रों में गुप्त रखी गयी है । हे महेशानि! तुम्हारे प्रेम के कारण इस गन्धर्वतन्त्र में इसको प्रकाशित किया गया ॥ ४८-५५ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वरसंवाद के विद्याभेदोद्धारनिरूपण
नामक द्वितीय पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २ ॥

* * *

तृतीयः पटलः

पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपणम्

देव्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ भक्तानामार्तिनाशन ।
पञ्चपञ्चाक्षरीं विद्यां पञ्चमीं सर्वकामदाम् ॥ १ ॥
अधुना कथयेशान समग्रां पापनाशिनीम् ।

पञ्चमी विद्या के वर्णन का उपक्रम—देवी ने कहा—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भक्तों के दुःख को दूर करने वाले! हे ईशान! अब आप पापनाशिनी सर्वकामप्रदा पाँच पञ्चाक्षर वाली पञ्चमी विद्या को पूर्ण रूप से बतलाइये ॥ १- ॥

पञ्चमीविद्यावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

दुर्लभा पञ्चमी विद्या पञ्चकूटात्मिका शुभा ॥ २ ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा शुद्धा सुखदा दुःखनाशिनी ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा सा चिन्त्यते परा ॥ ३ ॥
गुरुभक्तेन शुद्धेन साधकेन सुबुद्धिना ।
देवि पञ्चात्मकं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ४ ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पृथिवी ब्राह्मणी शक्तिर्जलं नारायणी तथा ॥ ५ ॥
तेजो रुद्रस्य रुद्राणी वायुरीशस्य चेश्वरी ।
माहेश्वरी तथाकाशं शक्तिर्महेश्वरस्य(च) ॥ ६ ॥
पञ्चदेवात्मकं पञ्च पञ्च(?ञ्चा)मीपञ्चशक्तयः ।
या शक्तिः सर्वभूतानां जगच्चैतन्यरूपिणी ॥ ७ ॥
सा एव पञ्चमी विद्या जगदाधाररूपिणी ।

सा एव हि जगत्सर्वं सा एव परमा कला ॥ ८ ॥
नान्यत् परतरं देवि विद्यते तद्बहिष्कृते ।
पञ्चविंशतितत्त्वेन कूटके पञ्च देवताः ॥ ९ ॥
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया ततो वज्रेश्वरी शुभा ।
तृतीया भगमाला च तुर्य्या त्रिपुरसुन्दरी ॥ १० ॥
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्य्याश्चिन्तनीया परा कला ।
सा एव पञ्चमी शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ११ ॥
परमानन्दरूपं यज्जगतां कारणं महत् ।
तस्या देव्यास्तु तद्रूपमुदयास्तविवर्जितम् ॥ १२ ॥
स्थूलत्वे स्थूलरूपा सा सूक्ष्मत्वे सूक्ष्मरूपिणी ।
स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन जगत्कारणरूपिणी ॥ १३ ॥
योऽसौ विश्वेश्वरो देवो विश्वं व्याप्य स्थितश्च यः ।
सैव विश्वेश्वरी देवी व्यापकत्वेन संस्थिता ॥ १४ ॥
नित्या सा सुखरूपा च महासुखशुभप्रदा ।
तत्स्वरूपानन्दमयी परमानन्दरूपिणी ॥ १५ ॥
किं पुनः शक्तिरूपेण परब्रह्मस्वरूपिणी ।
तस्याः पुनः पुनः सृष्टिर्जायते लीयते सदा ॥ १६ ॥
तस्माच्छक्तिः प्रधाना च शक्त्या व्याप्तमिदं जगत् ।

पञ्चमी विद्या का वर्णन—ईश्वर ने कहा—शुभकारक, भोग और मोक्ष देने वाली, शुद्ध, सुखद, दुःखनाशनी पाँच कूटों वाली पञ्चमी विद्या दुर्लभ है । हे देवि! जिस प्रकार सद्बुद्धि वाले शुद्ध गुरुभक्त साधक के द्वारा उसका ध्यान किया जाता है उसे सुनो । यह चराचर सम्पूर्ण जगत् पाँच देवियों वाला है अर्थात् पाँच देवियों से व्याप्त है । पृथिवी जल तेज वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व हैं (जो पञ्चदेव्यात्मक हैं) । पृथिवी ब्रह्मा की शक्ति है । जल नारायण अर्थात् विष्णु की और तेज रुद्र की रुद्राणी शक्ति है । वायु ईश्वर की ईश्वरी शक्ति है । आकाश महेश्वर की माहेश्वरी शक्ति है । ये पाँच देवियाँ पाँच देवों के रूप हैं और ये पाँच तत्त्व पाँच शक्तियों से व्याप्त हैं । जगत् की चैतन्यस्वरूपा जो समस्त प्राणियों की शक्ति है वही पञ्चमी विद्या है । वह (जगद्व्यापिनी होती हुई) जगत् का आधार भी है । वही सम्पूर्ण जगत् और वही परमा कला है । हे देवि! उससे बाहर उससे बढ़कर अन्य कुछ नहीं है । पचीस तत्त्वों से बने कूट में पाँच देवतायें हैं । वे इस प्रकार है—पहली देवता कामेश्वरी जाननी चाहिये । दूसरी शुभा वज्रेश्वरी है । तीसरी भगमाला और चौथी त्रिपुरसुन्दरी है । श्रीमतत्रिपुरसुन्दरी

की जो ध्यानयोग्य पराकला है वही परब्रह्मस्वरूपिणी पाँचवीं शक्ति है । जो महान् परमानन्दरूप है तथा संसार का कारण उदय और अस्त से रहित अर्थात् नित्य है वह उसी देवी का रूप है । स्थूल जगत् के सन्दर्भ में वह स्थूलरूपा, सूक्ष्म के लिये सूक्ष्मरूपिणी इस प्रकार स्थूल-सूक्ष्म दोनों भेद से वह जगत् की कारणभूता है । जो यह विश्वेश्वर हैं और विश्व को व्याप्त कर स्थित हैं जो यह विश्वेश्वर वह देवेश्वरी देवी ही है । वह नित्य सुखस्वरूपा और महासुख तथा महाशुभ देने वाली है । वह तत्स्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप और तदानन्द अर्थात् ब्रह्मानन्दमयी है साथ ही परमानन्दरूपिणी भी हैं । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वह आनन्दस्वरूपिणी होती हुई स्वानन्द की अनुभवित्री भी हैं । वह शक्तिरूप में परब्रह्मरूपा है । उससे बार बार सृष्टि होती है और बार-बार उसी में इस सृष्टि का लय होता है । इस कारण वह शक्ति प्रधान है और उससे यह संसार व्याप्त है ॥ २-१६- ॥

पञ्चमीविद्याधिकारिवर्णनम्

सर्वदानन्दहृदयश्चाद्वैतानन्दपारगः ॥ १७ ॥
समयाचारसम्पन्नो भोगी भोगपरायणः ।
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा गुरुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा पञ्चमीं समुपासयेत् ।
पृथिव्यां मान(वो?वः)श्रेष्ठो यदि जानाति पञ्चमीम् ॥ १९ ॥
शापभ्रष्टेन गन्धर्वो न नरो दैवयोगतः ।
यो जानाति महाविद्यां पञ्चकूटात्मिकां पराम् ॥ २० ॥
स भवेत् खचरो देवि षण्मासान्नात्र संशयः ।
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा मोक्षभागी भवेन्नरः ॥ २१ ॥
भोगेन लभते मुक्तिं यदि जानाति पञ्चमीम् ।
पञ्चपञ्चाक्षरीं विद्यां योऽसौ जानाति साधकः ॥ २२ ॥
स पूज्यः सर्वलोकेषु स देवो नतु मानुषः ।

पञ्चमी विद्या के अधिकारी का वर्णन—सर्वदा आनन्दपूर्ण हृदय वाला, अद्वैत आनन्द का पारगामी, समयाचार का पालन करने वाला, भोगयुक्त, भोग में लीन, सदा ज्ञानविशुद्धात्मा, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय साधक गन्धर्व का रूप धारण कर पञ्चमी विद्या की उपासना करे । पृथिवी पर वर्तमान मनुष्यों में श्रेष्ठ वह है जो पञ्चमीविद्या को जानता है । ऐसा मनुष्य दैवयोग से शापभ्रष्ट होने से गन्धर्व ही होता है न कि मनुष्य जो पञ्चकूटात्मिका इस पराविद्या को जानता है हे देवि! वह छह महीने में आकाशगामी हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं । सदा ज्ञान विशुद्धात्मा वह मनुष्य मोक्ष का भागी बनता है । यदि कोई पञ्चमी विद्या को

जानता है तो भोग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है । जो साधक पञ्चपञ्चाक्षरी विद्या को जानता है वह समस्त लोकों में पूज्य होता है । वह देवता हो जाता है मनुष्य नहीं रहता ॥ १७-२२- ॥

पञ्चमीविद्या स्वरूपवर्णनम्

त्रिकूटमेव कूटेषु कूटमेकं त्रिपञ्चकम् ॥ २३ ॥
पञ्चपञ्चाक्षरी विद्या त्रिकूटा पञ्चकूटकैः ।
पञ्चविंशतितत्त्वेन वर्णरूपेण संस्थिता ॥ २४ ॥
एकवर्णे त्रिकूटे च त्रिकूटे पञ्च देवताः ।
एकवर्णे पञ्चदश देवताः परिकीर्तिताः ॥ २५ ॥
पञ्चविंशतितत्त्वेन त्रिकूटे पञ्चसंख्यया ।
पञ्चसप्ततिपूर्वाणि तेन तासां शतत्रयम् ॥ २६ ॥
पञ्चकूटान्विता विद्या परा सौभाग्यसुन्दरी ।
वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणी ॥ २७ ॥
अक्षरात् सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।
नित्यमेकाक्षरं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् ॥ २८ ॥
जप्यमेकाक्षरं ब्रह्म आदिकूटान्तमध्यगम् ।
जप्त्वा तत्साधयेत् सर्वं बहुजप्तेन किं फलम् ॥ २९ ॥
तदेव परमं गुह्यं महासौभाग्यदायकम् ।
तदेव पञ्चकूटं तु पञ्चतत्त्वेन पञ्चमी ॥ ३० ॥

पञ्चमी विद्या का स्वरूप—पचीस तत्त्वात्मकवर्णरूप से वह स्थित है । यह विद्या एक वर्ण और त्रिकूट अर्थात् तीन वर्णों के समूह में स्थित है । त्रिकूट में पाँच देवतायें और एक वर्ण में पन्द्रह देवतायें कही गयी हैं । पचीस तत्त्वात्मक त्रिकूट में पाँच की संख्या से गुणा करने पर यह संख्या पचहत्तर पूर्व तीन सौ (अर्थात् २५ × ३ = ७५ × ५ = ३७५) होती है । इस प्रकार पञ्चकूटात्मिका अर्थात् पचहत्तर पचहत्तर के पाँच कूटों वाली यह विद्या परा तथा सौभाग्यसुन्दरी है (अथवा परम सौभाग्यसुन्दरी है) । वर्णरूप से स्थित वह देवी जगत् की आधाररूपा है । यह चराचरात्मक समस्त जगत् अक्षर से उत्पन्न है । एकाक्षर ब्रह्म नित्य है । यह अक्षर ही परम पद है । इस एकाक्षर ब्रह्म का जप करना चाहिये । यह आदि मध्य और अन्तगामी कूट है । उसका जप कर साधक समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । बहुत प्रकार के जप से क्या लाभ? (इसी से सब सिद्ध हो जाता है) वही परमगुह्य तथा महासौभाग्यदायक है । वही पञ्चकूट पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चमी विद्या है ॥ २३-३० ॥

पञ्चमीविद्योद्धारवर्णनम्

कामं विष्णुयुतं शक्तिर्माया शक्रश्च पार्वति ।
पश्चाद् देवि महामायाबीजं चान्ते नियोजयेत् ॥ ३१ ॥
शिवबीजं समुद्धृत्य शक्तिबीजं तदन्तरम् ।
तदधः कामबीजं तु भूर्व्योमानलसंयुतम् ॥ ३२ ॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तमर्द्धेन्दुबिन्दुभूषितम् ।
प्रथमं कामराजस्य कूटं त्रैलोक्यपूजितम् ॥ ३३ ॥
मध्यकूटं प्रवक्ष्यामि कामराजस्य मध्यगम् ।
अतिगुह्यतरं देवि स्नेहाद् वक्ष्यामि केवलम् ॥ ३४ ॥
वियद्विष्णुयुतं देवि मादनं तदनन्तरम् ।
तदधो हंसबीजं तु इन्द्रबीजं समुद्धरेत् ॥ ३५ ॥
विष्णोः पदं वह्नियुतं मायाबीजं समुद्धरेत् ।
मध्यकूटमिदं प्रोक्तं महासौभाग्यदायकम् ॥ ३६ ॥
तुरीयं तु प्रवक्ष्यामि शृणु देवि सुदुर्लभम् ।
कामबीजं महेशानि शिवबीजं ततः परम् ॥ ३७ ॥
यदधो वायुबीजं तु इन्द्रबीजं नियोजयेत् ।
वियद् वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरभूषितम् ॥ ३८ ॥
अर्द्धेन्दुबिन्दुसंयुक्तं चतुर्थं कूटमुत्तमम् ।
शक्तिकूटं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि सुदुर्लभम् ॥ ३९ ॥
यत् श्रुत्वा साधकाः सर्वे लभन्ते मुक्तिमुत्तमाम् ।
प्राणबीजं समुद्धृत्य कामबीजं समुद्धरेत् ॥ ४० ॥
इन्द्रबीजं तथा देवि क्रमेण विनियोजयेत् ।
सान्तं वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम् ॥ ४१ ॥
नादबिन्दुकलायुक्तं शक्तिकूटं समुद्धरेत् ।

पञ्चमी विद्या का उद्धार—हे पार्वति! विष्णु से युक्त काम शक्ति माया और शक्र के बाद हे देवि! अन्त में महामाया को जोड़ना चाहिये । (यह एक कूट हुआ । इसका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये—काम = क, विष्णु = अ से युक्त, शक्ति = ए, माया = ई, शक्र = ल, महामाया = ह्रीं । इस प्रकार कूट का रूप हुआ—कएईलह्रीं) । शिवबीज को उद्धृत कर उसके बाद शक्ति बीज, उसके पश्चात् कामबीज को भू व्योम और अनल से युक्त करना चाहिये । साथ उसे ही चतुर्थ स्वर अर्धचन्द्र तथा बिन्दु से भूषित होना चाहिये । (यह द्वितीय कूट हुआ । इसका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये—शिवबीज = ह,

शक्तिबीज = स, कामबीज = क, भू = ल, व्योम = ह, अनल = र्, चतुर्थ स्वर = ई, अर्धचन्द्र बिन्दु = ँ । इस प्रकार कूट का रूप बना—हसकलह्रीं) । पहला कामराज का कूट है जो कि त्रैलोक्य में पूजित है । इसके पश्चात् कामराज का मध्यगामी मध्यकूट बतलाऊँगा । हे देवि! यह अत्यन्त गुह्य है, केवल तुम्हारे स्नेह के कारण बताऊँगा । हे देवि! व्योम को विष्णु से युक्त करे । फिर मादनबीज, उसके पश्चात् हंस बीज और इन्द्र बीज को उद्धृत करना चाहिये । तदनन्तर विष्णु का पद अग्नि से युक्त मायाबीज को उद्धृत करना चाहिये । (यह तृतीय कूट हुआ । इसे इस प्रकार समझना चाहिये—वियुत = ह, विष्णु = अकार, मादन = क, हंस = ह, इन्द्र = ल, विष्णुपद = ह, वह्नियुत = र, मायाबीज = ईकार । इस प्रकार कूट का रूप बना—हकहलह्रीं) । यह मध्यकूट महासौभाग्यदायक कहा गया है । अब चतुर्थ कूट को बतलाऊँगा । हे देवि! इस दुर्लभ कूट को सुनो । हे महेशानि! पहले कामबीज उसके बाद शिवबीज इसके बीज वायुबीज फिर इन्द्रबीज को जोड़ना चाहिये । उसके अनन्तर आकाश को वह्नि से युक्त और चतुर्थ स्वर से भूषित होना चाहिये । यह चतुर्थ उत्तमकूट अर्धचन्द्र और बिन्दु से संयुक्त होता है । (यह चतुर्थ कूट हुआ) (इसका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये—कामबीज = क, शिवबीज = ह, वायुबीज = य, इन्द्रबीज = ल, वियद् = ह, वह्नियुक्त = र् से युक्त, चतुर्थस्वरभूषित = ई, अर्धेन्दु बिन्दुसंयुक्त = ँ । इस प्रकार कूट का स्वरूप हुआ—कहयलह्रीं । अब शक्तिकूट को बतलाऊँगा । जिसे सुनकर सब साधक उत्तम मुक्ति को प्राप्त करते हैं हे देवि! इस दुर्लभ कूट को सुनो । प्राण बीज को उद्धृत कर कामबीज का उद्धार करना चाहिये । हे देवि! फिर इन्द्रबीज को क्रम से जोड़ना चाहिये । स के अन्त में होने वाला अर्थात् ह, उसको अग्निबीज से युक्त और चतुर्थ स्वर से संयुक्त करना चाहिये । नाद बिन्दु और कला से युक्त शक्ति कूट को उद्धृत करना चाहिये । (यह पञ्चम कूट है । इसे इस प्रकार समझना चाहिये—प्राणबीज = ह, कामबीज = क, इन्द्रबीज = ल, देवीबीज = स, सान्त = ह को वह्नि = र तथा चतुर्थ स्वर = ई, नादबिन्दुकला = ँ से युक्त करने पर कूट का स्वरूप होगा—हकलसह्रीं ॥ ३१-४१- ॥

पञ्चमीविद्यासाधनफलयोर्वर्णनम्

फलं चास्या विशेषेण साधनं च वरानने ॥ ४२ ॥
कथितव्यं मया देवि सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना ।
एषा विद्या महाविद्या गुह्याद् गुह्यतमा प्रिये ॥ ४३ ॥
भोगदा मोक्षदा चैव सर्वकामार्थसिद्धिदा ।
वाग्भवं प्रथमं कूटं शक्तिकूटं तु पञ्चमम् ॥ ४४ ॥

मध्यकूटत्रयं देवि काम (बी?रा)जं मनोहरम् ।
काम(बी?रा)जं प्रवक्ष्यामि कूटभेदेन तच्छृणु॥ ४५ ॥
ज्ञात्वा तत्साधयेद् देवि असाध्यमपि भूतले ।
सौभाग्यं प्रथमं कूटं महासौभाग्यदायकम् ॥ ४६ ॥
त्रिकूटमेककूटेन काम (बी?रा)जं महत्परम् ।
एवं कूटत्रयेणैव नित्या सौभाग्यसुन्दरी ॥ ४७ ॥
एकत्र पञ्चकूटेन नित्यं कूटत्रयान्विता ।
दुर्लभा सर्वलोकेषु महासौभाग्यसुन्दरी ॥ ४८ ॥
एतस्या एव विद्याया मध्यकूटस्य मध्यमम् ।
जप्त्वानन्दमयो भूत्वा सर्वकाममुपालभेत् ॥ ४९ ॥
इयं स्वप्नावती नाम्ना विद्या त्रैलोक्यविश्रुता ।
आकर्षणकरी विद्या जगदाह्लादकारिणी ॥ ५० ॥

पञ्चमी विद्या की साधना और फल—हे वरानने! इस विद्या की साधना और फल को मुझे विशेष रूप से कहना चाहिये । अब मैं उसे संक्षेप में कह रहा हूँ । हे प्रिये! यह विद्या महाविद्या है तथा गुह्य से भी गुह्यतम है । यह भोग मोक्ष और समस्त कामनाओं की सिद्धि देने वाली है । (पाँच कूटों वाली इस पञ्चविद्या में) पहला वाग्भवकूट और पाँचवाँ शक्तिकूट है । हे देवि! मध्य के तीन कूट मनोहर कामराज कूट हैं । अब मैं कूट के भेद से कामराज को बतलाऊँगा । हे देवि! उसको जानकर साधक इस पृथिवी पर असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है । उन मध्य के तीन कूटों में से पहला सौभाग्यकूट है जो महासौभाग्यदायक है' । मध्यवर्त्ती तीन कूटों को एक कूट के रूप में देखने से यह महापरम कामराज होता है । इस प्रकार मध्य तीन कूटों के कारण यह विद्या नित्य एवं सौभाग्यसुन्दरी है । यदि पाँच कूटों को एकत्र कर दिया जाय तो (प्रथम + मध्य तीन + पञ्चम) इस प्रकार तीन कूटों से युक्त यह महासौभाग्यसुन्दरी विद्या समस्त लोकों में दुलभ है । इस महाविद्या के मध्यवर्त्ती तीन कूटों में से मध्यम अर्थात् तीसरे कूट का जप कर आनन्दमय होकर साधक समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । यह विद्या तीनों लोकों में स्वप्नावती नाम से विख्यात है । आकर्षणकरी यह विद्या संसार को आनन्द देने वाली है ॥ ४२-५० ॥

साधनं च प्रवक्ष्यामि यस्मादाकर्षणं भवेत् ।
स्वर्गे म(र्ते?र्त्ये) च पाताले नारीणा पुरुषस्य च ॥ ५१ ॥
नार्यो वश्या विशेषेण वशं (जा?या)ति जगत्त्रयम्।
भोगदा मोक्षदा चैषा विद्या गन्धर्वसेविता ॥ ५२ ॥

महाभोगवती विद्या महदैश्वर्यदायिनी ।
तथा मधुमतीसिद्धिर्जायतेऽस्याः प्रसादतः ॥ ५३ ॥
बृहत्त्वं च लघुत्वं च दर्शनादर्शने तथा ।
प्रवेशं परकायस्य कामरूपो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५४ ॥
पुंसां रूपं स्त्रियो(?यां) रूपं यच्चान्यद्रूपमुत्तमम् ।
सर्वं तत् परमं रूपं तस्या एव न संशयः ॥ ५५ ॥
कान्तिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः श्रद्धा लज्जा दया घृणा ।
धृतिः शान्तिस्तथा ऋद्धिः सिद्धिर्बुद्धिर्मतिः क्षमा ॥ ५६ ॥
महामाया महाबुद्धिर्महाविद्या महोदया ।
महामहत्करी विद्या ब्रह्मविद्यैव केवला ॥ ५७ ॥
महाभूतदिने नक्तं श्मशाने यदि साधकः ।
सहस्रैकप्रमाणेन किं न सिध्यति भूतले ॥ ५८ ॥
यो जपेत् पञ्चमीं विद्यां परां त्रैलोक्यमातृकाम् ।
स नरो देवदेवेशो महादेव इवापरः ॥ ५९ ॥
भोगात्मा लभते भुक्तिं नानाभोगेन केवलम् ।
भुनक्ति बहुलान् भोगान् रसान्नानाविधानपि ॥ ६० ॥
यद् ब्रुवन्त्यक्षरं लोके भुनक्ति बहुलं सुखम् ।

मैं इस विद्या की साधनापद्धति को बतलाऊँगा जिससे स्वर्गलोक मर्त्यलोक और पाताललोक में स्त्रियों और पुरुषों का आकर्षण होता है । विशेषरूप से नारियाँ वशीकरण की पात्र होती हैं । (इसकी साधना के फलस्वरूप) तीनों लोक वश में हो जाता है । गन्धर्वों के द्वारा सेवित यह विद्या भोग और मोक्ष दोनों को देने वाली है। यह विद्या महाभोग देने वाली तथा महाऐश्वर्य प्रदान करने वाली है । इसकी कृपा से मधुमती सिद्धि[1] प्राप्त होती है । महिमा लघिमा दृश्यत्व अदृश्यत्व परकायाप्रवेश और कामरूपता (= जिस किसी रूप को धारण करना) प्राप्त हो जाता है । पुरुषों का रूप स्त्रियों का रूप और जो भी उत्तम रूप है वह सब उसी का परम रूप है इसमें कोई सन्देह नहीं । कान्ति, तुष्टि (= सन्तोष) पुष्टि, श्रद्धा, लज्जा, दया, घृणा, धृति, शान्ति, ऋद्धि, सिद्धि, बुद्धि, मति, क्षमा

---

[1] 'तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो' ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वविशुद्धिमनुपश्यन्तः स्थानैरूपनिमन्त्रयन्ते—भो इहास्यतामिह रम्यतां, कमनीयोऽयं भोगः । कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्यु बाधते । वैहायसमिदं यानम्, अमीकल्पद्रुमाः, पुण्या मन्दाकिनी, सिद्धा महर्षयः उत्तमा, अनुकूला अप्सरसो..... ......प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरस्थानं देवानां प्रियम्' । पा.यो.सू.भा. ३।५१

(यह सब वही है)। महामाया, महाबुद्धि, महाविद्या, महान् उदय, महामहान् बनाने वाली विद्या यह सब केवल ब्रह्मविद्या ही है। यदि साधक महाभूतदिन (= कृष्ण चतुर्दशी) को रात्रि में श्मशान पर जाकर (पञ्चमी विद्या का) एक सहस्र जप करता है तो इस पृथिवी पर उसे क्या नहीं प्राप्त होता। जो त्रैलोक्य की मातारूपा इस परा पञ्चमी विद्या का जप करता है वह मनुष्य देवताओं का स्वामी तथा दूसरे महादेव सदृश हो जाता है। भोग चाहने वाला अनेक प्रकार के भोगों को भोगता है। वह अनेक प्रकार के भोगों तथा नाना प्रकार के रसास्वाद को भोगता है। लोग इस लोक में जिसे अक्षर कहते हैं उस बहुल सुख को वह भोगता है ॥ ५१-६०- ॥

पञ्चमीविद्यायाः कौलमार्गीपूजातत्फलयोर्वर्णनम्

शून्यागारे विहारे च चिन्त(येन्नो?यन्यो) जपेत्पराम्॥ ६१ ॥
आकर्षणं भवेत्तस्य सर्वकामं ततो लभेत्।
प्रथमानन्दहृदयो द्वितीय (म?मु)पभोगवान् ॥ ६२ ॥
तृतीयमुपभोगेन चतुर्थमपि कामयेत्।
पञ्चमं प्रथमं पुण्यं मन्त्रसिद्धिकरं परम् ॥ ६३ ॥
पञ्चमं तु विशेषेण भोगयेत् कामयेत् सदा।
पञ्चमाभ्यसनाद्वीरः पूजाया लभते फलम् ॥ ६४ ॥
कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भूकुसुमेन च।
रोचनाकुकुमाभ्यां च जपमालां प्रलेपयेत् ॥ ६५ ॥
कर्पूरागुरुकस्तूरीरोचनाकुंकुमेन च।
जपमालामुपस्कृत्य प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ॥ ६६ ॥
तद्द्रवैरक्षताञ्छुब्धान् सं(श्रा?स्रा)व्य च पुनः पुनः।
वारिणा शोधितं कृत्वा सिन्दूरे निक्षिपेत् ततः ॥ ६७ ॥
पटे चित्रमये शुद्धे नक्तं यः पूजयेन्नरः।
जप्त्वा विद्यां च मालायां सर्वकाममुपालभेत् ॥ ६८ ॥

पञ्चमी विद्या की कौलमार्गी पूजा और उसका फल—शून्यगृह अथवा रतिगृह में स्त्री के साथ विहार करते समय जो व्यक्ति ध्यान करता हुआ इस परा विद्या अर्थात् पञ्चमी विद्या का जप करता है वह आकर्षण शक्ति से युक्त हो जाता है अथवा सब लोग उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। फिर वह समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति कर लेता है। प्रथम कूट का जप करने से जापक हृदय में आनन्द का अनुभव करता है। दूसरे कूट के जप से नाना प्रकार का भोग प्राप्त करता है। तीसरे कूट के जप से उपभोग के द्वारा तृप्त होता है। चतुर्थ कूट भी कामना की

पूर्त्ति करता है । पञ्चम और प्रथम दोनों का एक साथ जप पवित्र करने और मन्त्रसिद्धि देने वाला है । केवल पञ्चम कूट का जप विशिष्ट भोग और कामतृप्ति देता है । पञ्चम कूट के अभ्यास से वीराचारी साधक पूजा का फल प्राप्त करता है । (१) कुण्ड[१] एवं गोल[२] के वीर्य तथा स्वयम्भू कुसुम[३] गोरोचन और कुङ्कुम इन सबको मिलाकर जपमाला को लिप्त करना चाहिये । कपूर अगर कस्तूरी गोरोचन और कुङ्कुम से जपमाला को उपस्कृत (= अलङ्कृत) कर उसकी विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा करे । कुण्ड आदि के द्रव से शुद्ध अक्षतों को बार-बार उपलिप्त कर जल से शुद्ध करने के बाद उसे सिन्दूर में रख दे । उस अक्षत को रंग-बिरंगे नये वस्त्र पर रखकर रात में जो व्यक्ति उसकी पूजा करता तथा उक्त माला से पञ्चमी विद्या का जप करता है वह समस्त कामनाओं की पूर्त्ति प्राप्त करता है ॥ ६१-६८ ॥

आनीय कन्यकां दिव्यां प्रमदां यौवनोन्नताम् ।
उक्षितां मूलमन्त्रेण सुशीलां चारुहासि(ह्रीं?नीम्)॥ ६९ ॥
सर्वदानन्दहृदयां घृणालज्जाविवर्जिताम् ।
गुरुभक्तां सुवेशां च देवतापूजने रताम् ॥ ७० ॥
तस्या गात्रे न्यसेन्मन्त्री पञ्चकामाञ् शरानपि ।
पञ्चकूटं न्यसेन्मन्त्री पञ्चाशन्मातृकां न्यसेत् ॥ ७१ ॥
दिव्यमालां समादाय साधको विजितेन्द्रियः ।
सहस्रैकप्रमाणेन जपेत् स्वप्नावतीं ततः ॥ ७२ ॥
अनेनैव विधानेन भवेदाकर्षणं महत् ।
तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥ ७३ ॥
सर्वसङ्क्षोभिणीं मुद्रां बद्ध्वा योनिं प्रचालयेत् ।
कामेश्वरीस्वरूपां तां चिन्तयेत् साधकोत्तमः ॥ ७४ ॥
कामेश्वरस्वरूपं च आत्मानमपि भावयन् ।
स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पञ्चमं चरन् ॥ ७५ ॥
तस्याः पुष्पं स्वयं यावद् रक्षणीयं प्रयत्नतः ।
ताम्बूलगन्धपुष्पैश्च प्रत्यहं पूजयेच्च ताम् ॥ ७६ ॥
नानारसान्नपानेन तृप्तिमाचर्य यत्नतः ।
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैस्तस्या सन्तोषमानयेत् ॥ ७७ ॥
यथाकाले तथा पुष्पं स्वयं तद्योप्यरूपतः ।

---

१. पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात् । २. मृतेभर्त्तारि गोलकः ।
३. स्त्री का प्रथम रज ।

गृहीत्वा तु प्रयत्नेन स्वयम्भूकुसुमं हि तत् ॥ ७८ ॥
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं त्रैलोक्येष्वपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति साधकश्रेष्ठो दुर्लभं साधयेद्भुवि ॥ ७९ ॥
स्वयम्भूपुष्पयोगेन साक्षतेन सदार्चयेत् ।
विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणं भवेत् ॥ ८० ॥
देवताश्च ग्रहा नागा दानवा राक्षसाश्च ये ।
राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ॥ ८१ ॥
स्वयम्भूकुसुमै पूजां प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
जप्त्वा वै दिव्यमालायां सर्वकाममुपालभेत् ॥ ८२ ॥

सुन्दर, युवती, मदमत्त, सुशील, सुन्दर हँसी वाली, सर्वदा आनन्दपूर्ण हृदय वाली, घृणा लज्जा से रहित, गुरुभक्त, सुन्दर वेषभूषा वाली, देवपूजा में रत कन्या को मूलमन्त्र से उक्षित कर मन्त्री उसके शरीर पर काम के पञ्चशरों[1] को न्यस्त करे । पाँच कूटों और पचास मातृकाओं का भी उसके शरीर पर न्यास करे । साधक जितेन्द्रिय होकर हाथ में दिव्यमाला लेकर एक सहस्त्र बार स्वप्नावती विद्या का जप करे । इस विधान से महान् आकर्षण होता है । उस सुन्दरी के मदनागार (= योनि) में परमेश्वरी की पूजा करनी चाहिये । हाथ में सर्वसङ्क्षोभिणी मुद्रा बाँध कर उस सुन्दरी की योनि को प्रचालित करना चाहिये । उत्तम साधक उस योनि का कामेश्वरी के रूप में ध्यान करे । साथ ही अपने को भी कामेश्वर-रूप में समझे । स्वयं क्षोभरहित हो साधक पञ्चम आचरण करता हुआ (अर्थात् पञ्चम मकार = मैथुन का आचरण करता हुआ अथवा पञ्चमी विद्या का ध्यान करता हुआ?) उसके रज की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करता रहे । उस सुन्दरी की ताम्बूल गन्ध पुष्प से प्रतिदिन पूजा करे । अनेक प्रकार के रसयुक्त अन्न पान से उसको तृप्त करते हुए वस्त्र आभूषण एवं अलङ्कारों से उसको सन्तुष्ट करना चाहिये । समय आने पर उसके रज को गोपनीय ढंग से प्रयत्नपूर्वक ले लेना चाहिये । ऐसा स्वयम्भू पुष्प त्रैलोक्य में दुर्लभ है । यदि साधक उसे प्राप्त कर ले तो इस पृथिवी पर दुर्लभ कार्य को सिद्ध कर सकता है । अक्षत के सहित स्वयम्भू पुष्प से सदा देवी की पूजा करे । स्वप्नावती विद्या का जप करने से शीघ्र आकर्षण होता है । इसके परिणामस्वरूप देवता, ग्रह, नाग, दानव, राक्षस, राजा एवं स्त्री ये सब नित्य वश में रहते हैं । जो व्यक्ति प्रतिदिन स्वयम्भूपुष्प से देवी की पूजा करता है तथा पूर्वोक्त दिव्य माला पर स्वप्नावती का जप सम्पन्न करता है वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध कर लेता है ॥ ६९-८२ ॥

---

[1] अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
पारिजातश्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

एकादशीविद्यावर्णनोपक्रमः

पार्वत्युवाच—

पुराप्येकादशी विद्या भवता कथिता मयि ।
नाराधिता मया यस्मात्तस्मान्मृत्युवशं गता ॥ ८३ ॥
सारात्सारतरां विद्यां श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

एकादशीविद्या के वर्णन का उपक्रम—पार्वती ने कहा—आपने पहले मुझे एकादशी विद्या बतलायी थी । मैंने उसकी आराधना नहीं की इस कारण मृत्यु को प्राप्त हुई । अब मैं सारों की सारभूता उस विद्या को सुनना चाहती हूँ ॥ ८३-॥

एकादशीविद्यावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

एकादशाक्षरी विद्या भैरव्या कथिता पुरा ॥ ८४ ॥
इदानीं तव प्रीत्यर्थं कथयामि तथा पराम् ।
मादनं गोत्रभि(च्छा?त्सा)न्तो रेफमायार्धचन्द्रवान् ॥ ८५ ॥
नादबिन्दुसमायुक्तो वाग्भवः परमेश्वरि ।
ब्रह्मा च गगनं शक्रो नकुलीशोऽनलः शशी ॥ ८६ ॥
माया बिन्दुः सनादेन काम (बी?रा)जं समुद्धरेत् ।
शक्तिर्मादनशक्रश्च हरो वह्नीन्दुमायया ॥ ८७ ॥
कलानादसमाक्रान्तः कथितः कामदो मनुः ।
यस्मै कस्मै न दातव्यो बान्धवाय च पार्वति ।
मनुर्विमृ(ष्य?श्य)दातव्यो ज्येष्ठपुत्राय धीमते ॥ ८८ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपण नामकस्तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

◆

ईश्वर ने कहा—पहले मैंने इस एकादशी विद्या को भैरवी को बतलाया । अब तुम्हारी प्रसन्नता के लिये उस पराविद्या को बतला रहा हूँ । मादन, गोत्रभित (= इन्द्र), रेफ, माया, अर्धचन्द्र से युक्त, सान्त, नाद बिन्दु से युक्त होकर वाग्भव होता है । हे परमेश्वरि! इसके बाद ब्रह्मा गगन, शक्र, नकुलीश, अनल, चन्द्र, माया बिन्दु नाद से युक्त कामराज को उद्धृत करना चाहिये । शक्ति, मादन शक्र हर को वह्नि इन्दु माया कला नाद से युक्त होने पर यह कामद मन्त्र होता है ।

(इस मन्त्र का स्पष्ट स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये—मादन = क, गोत्रभिद = ल, रेफ = रकार, माया = ई, अर्धचन्द्र = ˘, सान्त = ह, नादबिन्दु = इस प्रकार ह्रीं । यह वाग्भव कूट है । ब्रह्मा = क, गगन = ह, शक्र = ल, नकुलीश = ह, अनल = र, चन्द्रमाया बिन्दु नाद से युक्त होकर ह्रीं होता है । यह कामराज कूट है । शक्ति = स, मादन = क, शक्र = ल, हर = ह वह्नि इन्दु माया कला नाद से युक्त होकर ह्रीं बनता है । पूरा मन्त्र इस प्रकार हुआ—कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं । इस प्रकार यह ग्यारह अक्षरों वाला मन्त्र है ।) ॥ ८४-८८ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्रार्गतपार्वतीश्वरसंवाद में पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादि-निरूपण नामक तृतीय पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

* * *

चतुर्थः पटलः

महात्रिपुरसुन्दरीत्रैलोक्यमोहनकवचविधानम्

पार्वत्युवाच—

देवदेव महादेव लोकानां हितकारक ।
यत्सूचितं पुरा नाथ किमर्थं न प्रकाशितम् ॥ १ ॥
राजराजेश्वरीदेव्यास्त्रिपुरायाः शुभावहम् ।
कवचं यदि मे प्रीतः कथयस्व वृषध्वज ॥ २ ॥

पार्वती ने कहा—हे देवाधिदेव महादेव! हे लोकों के हितकारक! हे नाथ! आपने पहले जिसकी सूचना दी उसे प्रकाशित क्यों नहीं किया । हे वृषभध्वज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो राजराजेश्वरी देवी त्रिपुरसुन्दरी का मङ्गलदायक कवच मुझको बतलाइये ॥ १-२ ॥

ईश्वर उवाच—

लक्षवारसहस्राणि वारितासि पुनः पुनः ।
स्त्रीस्वभावान्महादेवि पुनस्त्वं परिपृच्छसि ॥ ३ ॥

ईश्वर ने कहा—हे महादेवि! लाखों हजारों बार तुम मना की गयी किन्तु स्त्री स्वभाव के कारण बार-बार पूछती रहती हो ॥ ३ ॥

अत्यन्तं दुर्लभं गुह्यं कवचं सर्वकामदम् ।
तथापि कथयाम्यद्य तव प्रीत्या वरानने ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यमोहनं नाम त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
सर्वसौभाग्यजननं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ ५ ॥
यद्धृत्वा दानवान् विष्णुर्निजघान सुदारुणान् ।
लोकान् वितनुते ब्रह्मा संहर्ताहं यतः प्रिये ॥ ६ ॥
धनाधिपः कुबेरोऽपि यतः सर्वे दिगीश्वराः ।

नैतत्परतरं गुह्यं प्रतिजाने हि पार्वति ॥ ७ ॥
वेदशास्त्रपुराणेषु सारमेतद्वरानने ।
पुत्रदारादिसहितं शिरो देयं कथंचन ॥ ८ ॥
न देयं कवचं गुह्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
शृणु सर्वाङ्गसुभगे दिव्यं कवचमुत्तमम् ॥ ९ ॥

त्रैलोक्यमोहन कवच—यह सर्वकामप्रद कवच अत्यन्त गुह्य और अत्यन्त दुर्लभ है । तथापि हे वरानने! तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण आज मैं तुमको बतला रहा हूँ । त्रैलोक्यमोहन कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है । यह समस्त सौभाग्य का जनक तथा भोग और मोक्ष रूपी फल को देने वाला है । इसे धारण कर विष्णु ने भयङ्कर दानवों का वध किया । इसको धारण कर ब्रह्मा लोकों की सृष्टि करते हैं और हे प्रिये! मैं संहार करता हूँ । जिसके कारण कुबेर धन के स्वामी और अन्य देवगण दिशाओं के स्वामी हैं, हे पार्वति! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि इससे बढ़कर कोई गुह्य नहीं है । हे वरानने! यह वेद शास्त्र पुराणों का सार है । पुत्र स्त्री आदि के साथ अपना शिर भले दे दे किन्तु प्राण के कण्ठगत होने पर भी यह कवच (अपात्र को) नहीं देना चाहिये । हे सर्वांगशुभगे! उत्तम और दिव्य कवच को सुनो ॥ ४-९ ॥

कवचस्य ऋष्यादिवर्णनम्

राजराजेश्वरीदेव्याः कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराड् देवता च मातात्रिपुरसुन्दरी ॥ १० ॥
हंसः शक्तिः परा बीजं रमाबीजं च कीलकम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥
त्रिपुरा त्रिविधा पातु मम सर्वार्थसिद्धये ।
ऐं क्लीं सौः वदने बाला पातुसर्वार्थसिद्धिदा ॥ १२ ॥
हस्त्रैं-हसकलरीं-हस्त्रौः कण्ठे
(पातु महादेवी श्रीमत्)त्रिपुरभैरवी ।
हृदयेऽव्यान्महेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ॥ १३ ॥
राजराजेश्वरीविद्या षोडशी या महोदया ।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु कमला परमेश्वरी ॥ १४ ॥
गिरिराजसुता देवी पातु नित्यं च शीर्षके ।
कामबीजं ललाटेऽव्याद्वाग्बीजं कण्ठदेशके ॥ १५ ॥
सौः पातु तथा पार्श्वे प्रणवो बाहुमूलके ।

शम्भुप्रिया सदा पातु बाह्वोर्दक्षिणसव्ययोः ॥ १६ ॥
विष्णुप्रिया सदा पातु मणिबन्धद्वये तथा ।
पार्वतीशः करे पातु नेत्रे नक्षत्रवल्लभः ॥ १७ ॥
श्रोत्रे रतिप्रियः पातु घ्राणे शक्रः सदाऽवतु ।
पृष्ठदेशे सदा पातु पार्वती परमेश्वरी ॥ १८ ॥
ह्सौः श्वासे चैव निश्वासे पातां परमसिद्धिदौ ।
कामः कामे सदा पातु पिनाकी लिङ्गगोचरे ॥ १९ ॥
पृथ्वी सर्वां(श?स)के पातु ह्रल्लेखाहृदयेऽवतु ।
स्तनौ विष्णुप्रिया पातु कुक्षौ च सपुरान्तकः ॥ २० ॥
नेत्रे वज्रधरः पातु माया वै जठरेऽवतु ।
पदद्वन्द्वे च सौः पातु ऐं जिह्वानिलयेऽवतु ॥ २१ ॥
क्लींकार सर्वदा पातु दन्तोष्ठयोर्वरानने ।
शीर्षादिपादपर्यन्तं सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी ॥ २२ ॥
रक्षाहीनं च यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं परमेशानि पातु नित्यं हरिप्रिया ॥ २३ ॥
आधारे वाग्भव पातु कामराजो हृदि प्रिये ।
शक्तिकूटं तथा पातु भ्रुवोर्मध्ये च पार्वति ॥ २४ ॥
शीर्षे कूटत्रयं पातु ललाटे सर्वमन्त्रकः ।
अष्टाविंशतिवर्णेयं मुखवृत्ते सदावतु ॥ २५ ॥
षोडशीयं महाविद्या ब्रह्मविद्यैव केवला ।
भोगमोक्षप्रदा देवी केवलात्मस्वरूपिणी ॥ २६ ॥
कामेश्वरी ललाटेऽव्यान्मुखे तु भगमालिनी ।
दक्षनेत्रे सदा पातु नित्यं(दीप्ता?क्लिन्ना)महोदया॥ २७ ॥
भीरुण्डा वामनेत्रेऽव्यात् कर्णे वै वह्निवासिनी ।
महा (विद्ये?वज्रे)श्वरी पातु वामकर्णप्रदेशके ॥ २८ ॥
दक्षनासापुटे पातु शिवदूती महेश्वरी ।
वामनासापुटे पातु त्वरिता सर्वसिद्धिदा ॥ २९ ॥
दक्षगण्डे सदा पातु नित्यं मां कुलसुन्दरी ।
त्रैलोक्यविमला पातु वामगण्डप्रदेशके ॥ ३० ॥
ओष्ठे नीलपताकाव्याद् अधरे विजयावतु ।
ऊर्ध्वदन्ते सदा पातु देवी मां सर्वमङ्गला ॥ ३१ ॥

अधोदन्तप्रदेशेऽव्यान्नित्यं ज्वालांशुमालिनी ।
विचित्रा सर्वदा पातु नित्यं मूर्धनि पार्वति ॥ ३२ ॥
आसां प्रधानभूता या महात्रिपुरसुन्दरी ।
षोडशी सा सदा पातु मुखे वै परमेश्वरी ॥ ३३ ॥
पृष्ठदेशे सदा पान्तु गुरवस्त्रिविधाश्च ते ।
पादयो सर्वदा पातु त्रिपुरा परमेश्वरी ॥ ३४ ॥
जानुदेशे सदा पातु देवी मां त्रिपुरेश्वरी ।
ऊरुद्वये सदा पातु देवी त्रिपुरसुन्दरी ॥ ३५ ॥
त्रिपुरवासिनी देवी कटिदेशे सदावतु ।
त्रिपुराश्रीश्च मां नित्यं गुह्यदेशे सदावतु ॥ ३६ ॥
मूलाधारे सदा पातु देवी त्रिपुरमालिनी ।
नाभौ त्रिपुरसिद्धाव्यात् त्रिपुरा(च?म्बा)सदा हृदि॥ ३७ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु महात्रिपुरसुन्दरी ।
आसां तु मन्त्रबीजानि प्रोक्तस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ३८ ॥
पाषाण्डगणमध्ये तु बुद्धो मां परिरक्षतु ।
ब्रह्माव्याद् ब्रह्मसङ्घाते शिवो मां योगसिद्धये ॥ ३९ ॥
ज्ञाने मां भास्करः पातु मोक्षे नारायणः प्रभुः ।
या शक्तिः सर्वभूतानां विद्याविद्येति गीयते ॥ ४० ॥
सा शक्तिः सर्वदा पातु स्त्रीपुत्रधनसम्पदि ।
अणिमा पश्चिमे पातु लघिमा चोत्तरेऽवतु ॥ ४१ ॥
पूर्वतः पातु महिमा ईशिता दक्षिणेऽवतु ।
वशिता वायुनिलये ईशे प्राकाम्यसिद्धिदा ॥ ४२ ॥
भुक्तिसिद्धिस्तथाग्नेये पात्विच्छासिद्धी राक्षसे ।
अधः पातु प्राप्तिसिद्धिर्मोक्षसिद्धिस्तथोर्ध्वके ॥ ४३ ॥
ब्रह्माणी संध्ययोः पातु माहेश्वरी दिवावतु ।
मध्याह्ने पातु कौमारी रात्रौ च शक्रवल्लभा ॥ ४४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्तके पातु वैष्णवी सर्वसिद्धिदा ।
निशीथे पातु वाराही चामुण्डा श(क्र?त्रु)विग्रहे ॥ ४५ ॥
महोत्साहे महालक्ष्मीः पातु नित्यं महेश्वरी ।
शीर्षे सङ्क्षोभिणी पातु(तारि?द्रावि)णी हृदयेऽवतु ॥ ४६ ॥
आकर्षिणी शिखायां तु कवचे पातु वश्यदा ।

उन्मादिनी तथा नेत्रे सर्वगात्रे महाङ्कुशा ॥ ४७ ॥
त्रिखण्डा भुजयोः पातु बीजे बीजस्वरूपिणी ।
खेचरी पादयोः पातु योनिमुद्रा च सर्वतः ॥ ४८ ॥
(स?का)माकर्षणरूपाव्यात् सदाकर्षणकर्मणि ।
बुद्ध्याकर्षणरूपाव्यात् परबुद्धिविकर्षणे ॥ ४९ ॥
अहङ्कारे सदा पातु अहङ्कारविकर्षणी ।
शब्दाकर्षणरूपाव्याच्छब्दाकर्षणकर्मणि ॥ ५०॥
स्पर्शाकर्षणरूपा मां पातु स्पर्शनकर्मणि ।
रूपाकर्षणरूपाव्यात् पररूपविकर्षणे ॥ ५१ ॥
रसाकर्षणरूपाव्याद् रसे वै परमेश्वरी ।
गन्धाकर्षणरूपा मां पातु गन्धे च सर्वदा ॥ ५२ ॥
चित्ताकर्षणरूपा मां पायादाकृष्टिकर्मणि ।
धैर्याकर्षणरूपा तु पातु धैर्यविधौ सदा ॥ ५३ ॥
स्मृत्याकर्षणरूपाव्याज्ज्ञानाकर्षणकर्मणि ।
नामाकर्षणरूपाव्यान्नामव्याहरणे सदा ॥ ५४ ॥
बीजाकर्षणरूपा मां सर्वबीजप्ररोपणे ।
परजीवाकर्षणे पात्वात्माकर्षणरूपिणी ॥ ५५ ॥
अमृताकर्षणी पातु अमृतीकरणे सदा ।
शरीराकर्षणी पातु सदा शरीररक्षणे ॥ ५६ ॥
अनङ्गकुसुमा पातु पुरतः सर्वकर्मणि ।
अनङ्गमेखला पातु पृष्ठतः परमेश्वरी ॥ ५७ ॥
अनंङ्गमदना पातु वामतो मे महेश्वरी ।
दक्षिणे सर्वदा पातु अनङ्गमदनातुरा ॥ ५८ ॥
नित्यं चानङ्गरेखाव्यादूर्ध्वं मम सदा प्रिये ।
अनङ्गवेगिनी पातु अधो मे परमेश्वरी ॥ ५९ ॥
तथानङ्गांकुशा नित्यं पातु मां दिक्षु सर्वदा ।
अनङ्गमालिनी पातु विदिक्षु मम सर्वदा ॥ ६० ॥
सर्वसङ्क्षोभिणी चोर्ध्वे पातु मां जगदीश्वरी ।
सर्वविद्राविणी चाधो दिक्षु सर्वविकर्षणी ॥ ६१ ॥
सर्वाह्लादकरी शक्तिर्विदिक्षु परिरक्षतु ।
सर्वसम्मोहिनी पातु समन्तात् परमेश्वरी ॥ ६२ ॥

अन्तर्बहिश्च मां पातु सर्वस्तम्भनकारिणी ।
तथैव पातु मां नित्यमाकाशे सर्वजृम्भणी ॥ ६३ ॥
पाताले चैव मां पातु सर्ववश्यकरी तथा ।
देवलोके सदा पातु सर्वरञ्जनकारिणी ॥ ६४ ॥
सर्वोन्मादनशक्तिर्मां भूतले परिरक्षतु ।
सर्वार्थसाधनी शक्तिः पायाद्भूतगणालये ॥ ६५ ॥
सिद्धानामालये पातु सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
राक्षसानां च यक्षाणां सर्वमन्त्रमयी गृहे ॥ ६६ ॥
असुराणां निवासे तु सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी पातु राजगृहे सदा ॥ ६७ ॥
सर्वसम्पत्प्रदा पातु स्वगृहे सर्वसम्पदि ।
सर्वप्रियङ्करी पातु सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ६८ ॥
सर्वमङ्गलकार्येऽव्यात् सर्वमङ्गलकारिणी ।
सर्वकामप्रदा देवी सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ ६९ ॥
ऐश्वर्ये सर्वदा पातु सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ।
सर्वमृत्युप्रशमनी पायान्नित्यं ममालये ॥ ७० ॥
सर्वारम्भे सदा पातु सर्वविघ्नविनाशिनी ।
देहसौन्दर्यकाले तु पातु सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ७१ ॥
सर्वसौभाग्यकाले तु सर्वसौभाग्यदायिनी ।
सर्वज्ञा च गृहे पातु सर्वशक्तिमयी रणे ॥ ७२ ॥
सर्वैश्वर्यप्रदा मार्गे सर्वज्ञानमयी जले ।
सर्वव्याधिषु सर्वत्र सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ ७३ ॥
पर्वते पातु प्रबला सर्वाधारस्वरूपिणी ।
सर्वपापहरा पातु सर्वकर्मसु सर्वदा ॥ ७४ ॥
सर्वानन्दकरी देवी नानाघकृतगोचरे ।
सर्ववैरिभये पातु सर्वरक्षास्वरूपिणी ॥ ७५ ॥
सर्वसङ्कल्पकार्येषु सर्वेप्सितफलप्रदा ।
वशिनी वश्यकार्येऽव्यात् कामेशी स्तम्भनेऽवतु ॥ ७६ ॥
मोहने मोदिनी पातु विमलोच्चाटनेऽवतु ।
अरुणा पातु मां वादे जयिनी जल्पकर्मणि ॥ ७७ ॥
सर्वेश्वरी काम्यकार्ये कौलिनी भेदकर्मणि ।

जृम्भणे सर्वदा पा(तु?न्तु) शरा पञ्च महेश्वरि ॥ ७८ ॥
धनुर्मोहविधौ पातु पाशस्तु वश्यकर्मणि ।
महातेजोमयः पातु स्तम्भने मां तथाङ्कुशः ॥ ७९ ॥
सर्वज्ञा हृदये पातु नित्यं(कृता?तृप्तिः)च शीर्षके।
अनादिबोधिका पातु नित्यं शिखाप्रदेशके ॥ ८० ॥
कवचे मां स्वतन्त्राव्यात् नेत्रे नित्यमलुप्तिका ।
अचिन्त्यशक्ति(व?र)स्त्रेषु पायात् परमसिद्धिदा ॥ ८१ ॥
कामेश्वरी रतौ पातु युद्धे वज्रेश्वरी तथा ।
नित्यं पातु महेशानी श्रीकामे भगमालिनी ॥ ८२ ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च पातु माम्।
सर्वानन्दमयी देवी महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ८३ ॥
ईशाने वटुकः पातु आग्नेय्यां योगिनीगणाः ।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि पान्तु नः ॥ ८४ ॥
क्षेत्रेशो नैर्ऋते पातु गणेशो वायुमन्दिरे ।
मातङ्गवनिता पातु शेषिका कुलसुन्दरी ॥ ८५ ॥
शक्तिर्मां सर्वदा पातु मूलाधारनिवासिनी ।

कवच के ऋषि आदि का वर्णन—राजराजेश्वरी देवी के इस कवच के ऋषि शिव, छन्द विराट् और देवता महात्रिपुरसुन्दरी है । हंस शक्ति, परा (= ह्रीं) बीज और रमा बीज अर्थात् (श्रीं) कीलक है । इसका विनियोग धर्म अर्थ काम और मोक्ष के विषय में होता है । (यहाँ से कवच का प्रारम्भ होता है । नीचे की सारिणी से स्पष्ट होता है कि किस अङ्ग आदि की रक्षिका कौन देवता हैं)—

क्र.सं.	अङ्गादि	रक्षिणी देवता
१.	वदन	बाला
२.	कण्ठ	त्रिपुरभैरवी
३.	हृदय	त्रिपुरसुन्दरीषोडशी
४.	ब्रह्मरन्ध्र	कमला
५.	शिर	पार्वती
६.	ललाट	कामबीज
७.	कण्ठदेश	वाग्बीज
८.	पार्श्व	सौः
९.	बाहुमूल	प्रणव
१०.	वामदक्षिणबाहु	शम्भुप्रिया
११.	मणिबन्धद्वय	विष्णुप्रिया
१२.	करद्वय	पार्वतीश
१३.	नेत्रद्वय	नक्षत्रवल्लभ
१४.	श्रोत्रद्वय	रतिप्रिय
१५.	घ्राणद्वय	शक्र
१६.	पृष्ठदेश	पार्वती
१७.	प्रश्वास	ह्सौ
१८.	निःश्वास	परमसिद्धिदायक
१९.	काम	काम
२०.	लिङ्ग	पिनाकी
२१.	सर्वांश	पृथिवी
२२.	हृदय	हृल्लेखा

क्र.सं.	अङ्गादि	रक्षिणी देवता
२३.	स्तनद्वय	विष्णुप्रिया
२४.	कुक्षि	त्रिपुरान्तक
२५.	नेत्रद्वय	वज्रधर
२६.	जठर	माया
२७.	पदद्वय	सौः
२८.	जिह्वा	ऐं
२९.	दन्तोष्ठ	क्लीं
३०.	शिर से पैर तक	भुवनेश्वरी
३१.	कवच वर्जित स्थान	हरिप्रिया
३२.	मूलाधार	वाग्भवबीज
३३.	हृदय	कामराजबीज
३४.	भ्रूमध्य	शक्तिकूट
३५.	शिर	कूटत्रय
३६.	ललाट	सर्वमन्त्रक
३७.	मुखवृत्त	अटठाईस वर्ण
३८.	ललाट	कामेश्वरी
३९.	मुख	भगमालिनी
४०.	दक्षिण नेत्र	नित्यक्लिन्ना
४१.	वामनेत्र	भीरुण्डा
४२.	दक्षकर्ण	वह्निवासिनी
४३.	वामकर्ण	महावज्रेश्वरी
४४.	दक्षनासापुट	शिवदूती
४५.	वामनासापुट	त्वरिता
४६.	दक्षगण्ड	कुलसुन्दरी
४७.	वामगण्ड	त्रैलोक्यविमला
४८.	ओष्ठ	नीलपताका
४९.	अधर	विजया
५०.	ऊर्ध्वदन्त	सर्वमङ्गला
५१.	अधोदन्त	ज्वलांशुमालिनी
५२.	मूर्धा	विचित्रा
५३.	मुख	षोडशी
५४.	पृष्ठदेश	त्रिविधगुरु (दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ)
५५.	दोनों पैर	त्रिपुरा
५६.	जानु	त्रिपुरेश्वरी
५७.	उरुद्वय	त्रिपुरसुन्दरी
५८.	कटिप्रदेश	त्रिपुरवासिनी
५९.	गुह्यदेश	त्रिपुरश्री
६०.	मूलाधार	त्रिपुरमालिनी
६१.	नाभिदेश	त्रिपुरसिद्धा
६२.	ब्रह्मरन्ध्र	महात्रिपुरसुन्दरी
६३.	पाषाण्डगण के मध्य में	बुद्ध
६४.	ब्रह्मसङ्घात	ब्रह्मा
६५.	योगसिद्धि के विषय में	शिव
६६.	ज्ञान	भास्कर
६७.	मोक्ष	नारायण
६८.	स्त्री पुत्र धन सम्पत्ति	शक्ति
६९.	पश्चिम	अणिमा
७०.	उत्तर	लघिमा
७१.	पूर्व	महिमा
७२.	दक्षिण	ईशिता
७३.	वायुकोण	वशिता
७४.	ईशानकोण	प्राकाम्य
७५.	अग्निकोण	मुक्तिसिद्धि
७६.	नैर्ऋत्यकोण	इच्छासिद्धि
७७.	अधोदिशा	प्राप्तिसिद्धि
७८.	ऊर्ध्वदिशा	मोक्षसिद्धि
७९.	दोनों सन्ध्यायें	ब्रह्माणी
८०.	दिवा	माहेश्वरी
८१.	मध्याह्न	कौमारी
८२.	रात्रि	शक्रवल्लभा
८३.	ब्राह्म मुहूर्त	वैष्णवी
८४.	निशीथ	वाराही
८५.	शत्रुकलह	चामुण्डा
८६.	महोत्साह	महालक्ष्मी
८७.	नित्य	महेश्वरी
८८.	शिर	सङ्क्षोभिणी

क्र.सं. अङ्गादि	रक्षिणी देवता
८९. हृदय	तारिणी
९०. शिखा	आकर्षिणी
९१. कवच	वश्यदा
९२. नेत्रद्वय	उन्मादिनी
९३. सर्वमात्र	महाङ्कुशा
९४. भुजद्वय	त्रिखण्डा
९५. बीज	बीजस्वरूपिणी
९६. पादद्वय	खेचरी
९७. सर्वत:	योनिमुद्रा
९८. आकर्षणकर्म	कामाकर्षणरूपा
९९. परबुद्धिविकर्षण	बुद्ध्याकर्षणरूपा
१००. अहङ्कार	अहङ्कारविकर्षिणी
१०१. शब्दाकर्षण	शब्दाकर्षणरूपा
१०२. स्पर्शकर्म	स्पर्शाकर्षणरूपा
१०३. पररूपविकर्षण	रूपाकर्षणरूपा
१०४. रस	रसाकर्षणरूपा
१०५. गन्ध	गन्धाकर्षणरूपा
१०६. आकृष्टिकर्म	चित्ताकर्षणरूपा
१०७. धैर्य	धैर्याकर्षणरूपा
१०८. ज्ञानाकर्षण	स्मृत्याकर्षणरूपा
१०९. नामत्याहारण	नामाकर्षणरूपा
११०. सर्वबीजप्ररोपण	बीजाकर्षणरूपा
१११. परजीवाकर्षण	आत्माकर्षणरूपिणी
११२. अमृतीकरण	अमृताकर्षिणी
११३. शरीररक्षा	शरीराकर्षिणी
११४. सर्वकर्म	अनङ्गकुसुमा
११५. पृष्ठदेश	अनङ्गमेखला
११६. वामभाग	अनङ्गमदना
११७. दक्षिणभाग	अनङ्गमदनातुरा
११८. ऊर्ध्वभाग	अनङ्गरेखा
११९. अधोभाग	अनङ्गवेगिनी
१२०. दिशायें	अनङ्गाकुशा
१२१. विदिशायें	अनङ्गमालिनी
१२२. ऊर्ध्वदिशा	सर्वसङ्क्षोभिणी
१२३. अधोदिशा	सर्वविद्राविणी
१२४. दिशायें	सर्वविकर्षिणी
१२५. विदिशायें	सर्वाहिलादकरी
१२६. सब ओर	सर्वसम्मोहिनी
१२७. अन्दर-बाहर	सर्वस्तम्भनकारिणी
१२८. आकाश	सर्वजृम्भिणी
१२९. पाताल	सर्ववश्यकरी
१३०. देवलोक	सर्वरञ्जनकारिणी
१३१. भूतल	सर्वोन्मादनशक्ति
१३२. भूतगणालय	सर्वार्थसाधनी
१३३. सिद्धालय	सर्वसम्पत्तिशक्ति
१३४. राक्षसयक्षगृह	सर्वमन्त्रमयी
१३५. असुरालय	सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी
१३६. राजगृह	सर्वसिद्धिप्रदा
१३७. स्वगृहसम्पत्	सर्वसम्पत्प्रदा
१३८. सर्वलोक	सर्वप्रियङ्करी
१३९. सर्वमङ्गलकार्य	सर्वमङ्गलकारिणी
१४०. सर्वकार्य	सर्वकामप्रदा
१४१. ऐश्वर्य	सर्वैश्वर्यप्रदायिनी
१४२. स्वगृह	सर्वमृत्युप्रशमनी
१४३. सर्वारम्भ	सर्वविघ्नविनाशिनी
१४४. देहसौन्दर्यकाल	सर्वांगसुन्दरी
१४५. सर्वसौभाग्यकाल	सर्वसौभाग्यदायिनी
१४६. गृह	सर्वज्ञा
१४७. युद्ध	सर्वशक्तिमयी
१४८. मार्ग	सर्वैश्वर्यप्रदा
१४९. जल	सर्वज्ञानमयी
१५०. सर्वव्याधि	सर्वव्याधिनाशिनी
१५१. पर्वत	सर्वाधाररूपाप्रबला
१५२. सर्वकर्म	सर्वपापहरा
१५३. अनेकपापभोग	सर्वानन्दकरी
१५४. सर्ववैरिभय	सर्वरक्षास्वरूपिणी
१५५. सर्वसङ्कल्पकार्य	सर्वेप्सितफलप्रदा
१५६. वश्यकर्म	वशिनी
१५७. स्तम्भन	कामेशी
१५८. सम्मोहन	मोदिनी

क्र.सं. अङ्गादि	रक्षिणी देवता
१५९. उच्चाटन	विमला
१६०. वाद	अरुणा
१६१. जल्पकर्म	जयिनी
१६२. काम्यकर्म	सर्वेश्वरी
१६३. भेदकर्म	कौलिनी
१६४. जृम्भण	पञ्चबाण
१६५. मोहकर्म	धनु
१६६. वश्यकर्म	पाश
१६७. स्तम्भन	अङ्कुश
१६८. हृदय	सर्वज्ञा
१६९. शिर	नित्यतृप्ति
१७०. शिखाप्रदेश	अनादिबोधिक
१७१. कवच	स्वतन्त्रा
१७२. नेत्रद्वय	अलुप्तिका
१७३. अस्त्र	अचिन्त्यशक्ति
१७४. रतिकार्य	कामेश्वरी
१७५. युद्धकर्म	वज्रेश्वरी
१७६. श्रीकाम	महेशानि
१७७. रसरूपगन्ध स्पर्शशब्द	भगमालिनी
१७८. ईशानकोण	त्रिपुरसुन्दरी
१७९. आग्नेयकोण	वटुक
१८०. त्वग् रक्तमांस मेदा अस्थि शुक्र	योगिनीसमूह
१८१. नैर्ऋतकोण	क्षेत्रपाल
१८२. वायुकोण	गणेश
१८३. शेषिका	मातङ्गवनिता
१८४. सर्वदासर्वत्र	मूलाधारनिवासिनी शक्ति[1]

इस प्रकार उपरोक्त सारणी द्वारा राजराजेश्वरी देवी के इस कवच में बतलाये गये सभी अङ्गादि के रक्षिका देवता स्पष्ट किये गये ॥ १०-८५- ॥

कवचमाहात्म्यादिवर्णनम्

इतीदं कवचं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ ८६ ॥
यन्नोक्तं डामरे तन्त्रे यन्नोक्तं रुद्रयामले ।
सर्वतन्त्रेषु यन्नोक्तं गन्धर्वे प्रकटीकृतम् ॥ ८७ ॥
तव प्रीत्या महादेवि गोपनीयं प्रयत्नतः ।
तव नाम्नि स्मृते देवि सर्वयज्ञफलं लभेत ॥ ८८ ॥
सर्वत्रैव जयप्राप्तिर्वाञ्छा सर्वत्र सिध्यति ।
नाम्नः शतगुणं स्तोत्रं व्याख्यानं चापि तच्छतम् ॥ ८९ ॥
तस्माच्छतगुणं ध्यानं ध्यानाच्छतगुणो मनुः ।
मन्त्राच्छतगुणं देवि कवचं ते मयोदितम् ॥ ९०॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं सुगोप्यमतिदुर्लभम् ।
न देयं परशिष्याय कृपणाय सुरेश्वरि ॥ ९१॥

---

[1] उपर्युक्त देवताओं के नामों के साथ कहीं-कहीं विशेषण भी जुड़े है । विद्वान् उन्हें मूलग्रन्थ से जानने का कष्ट करें ।

शिष्याय भक्तिहीनाय चुम्बकाय तथैव च ।
गुरुभक्तिविहीनाय परहिंसारताय च ॥ ९२ ॥
निन्दकाय कुशीलाय दाम्भिकाय महेश्वरि ।
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ९३ ॥
यो ददाति निषिद्धेभ्यः कवचं मन्मुखाच्च्युतम् ।
तस्य नश्यन्ति देवेशि विद्यायुःकीर्त्तिसञ्चयाः ॥ ९४ ॥
तं हिंसन्ति च योगिन्यो मदीयशासनात् प्रिये ।
परे नरकमाप्नोति जन्मकोटिशतानि च ॥ ९५ ॥
सर्वलक्षणयुक्ताय यन्त्रमन्त्ररताय च ।
शिष्याय शान्तचित्ताय गुरुभक्तिरताय च ॥ ९६ ॥
उदके लवणं लीनं यथा भवति पार्वति ।
मनो भवति वै लीनं पादयोः श्रीगुरोः प्रिये ॥ ९७ ॥
तदा देयं महद्गुह्यं कृपया चातिदुर्लभम् ।
गुरोः पादप्रसादेन श्रीविद्या यदि लभ्यते ॥ ९८ ॥
तथैव कवचं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
स च देवो हरः साक्षात् तत्पत्नी परमेश्वरी ॥ ९९ ॥
प्रमादादपि देवेशि श्रीगुरोर्नाम नाददेत् ।
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये ॥ १०० ॥
तस्य मन्त्रस्य यन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
कवचस्य तथा सिद्धिर्गुटिकायाश्च सुन्दरि ॥ १०१ ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् सुन्दरीं पराम् ।
नवलक्षं प्रजप्त्वा(?प्या)पि तस्य विद्या न सिध्यति ॥ १०२ ॥

कवच के माहात्म्य आदि का वर्णन—हे देवि! उपर्युक्त कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है । जो विषय डामरतन्त्र मे नहीं कहा गया; जिसका वर्णन रुद्रयामलतन्त्र में नहीं है एवं समस्त तन्त्रों में जिसकी चर्चा नहीं की गयी वह गन्धर्वतन्त्र में तुम्हारे प्रेम के कारण प्रकाशित किया गया । हे महादवि! इसको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये । हे देवि! तुम्हारे नाम का स्मरण करने पर सम्पूर्ण यज्ञों का फल मिलता है । सर्वत्र विजय की प्राप्ति एवं कामना की सिद्धि होती है । नाम की अपेक्षा स्तोत्र का महत्त्व सौ गुना होता है । उसकी अपेक्षा व्याख्यान सौ गुना महत्त्ववाला, उससे सौ गुना ध्यान और ध्यान की अपेक्षा सौ गुना महत्त्वपूर्ण मन्त्र होता है । हे देवि! मन्त्र से सौ गुना महत्त्व वाला कवच मैने तुमको बतलाया । सुगोप्य एवं अतिदुर्लभ कवच जिस किसी को नहीं देना चाहिये । हे

परमेश्वरि! कृपण एवं परशिष्य को इसे नहीं देना चाहिये । भक्तिहीनशिष्य चुम्बक (= भिन्न-भिन्न लोगों के पास जाकर विद्या ग्रहण एवं स्वार्थसिद्धि करने वाला), गुरुभक्तिरहित, परहिंसारत, निन्दक, कुशील एवं दाम्भिक को नहीं देना चाहिये । हे महेश्वरि! भक्तिरहित पुत्र को भी देकर साधक मृत्यु को प्राप्त करता है । हे देवेशि! मेरे मुख से निःसृत इस कवच को जो निषिद्ध लोगों को देता है उसके विद्या आयु यश के सञ्चय नष्ट हो जाते हैं । हे प्रिये! मेरी आज्ञा से योगिनियाँ उसे मार डालती हैं । वह करोड़ों जन्म नरक में निवास करता है । इस कवच को सर्वलक्षणयुक्त, यन्त्र-मन्त्र में श्रद्धालु एवं निरत, शान्तचित्त गुरुभक्तियुक्त शिष्य को देना चाहिये । हे पार्वति! जिस प्रकार पानी में नमक लीन हो जाता है उसी प्रकार जिसका चित्त गुरु के चरणों में लीन हो जाय तब इस अति दुर्लभ महागुह्य कवच को देना चाहिये । जिस प्रकार गुरुचरणों की कृपा से श्रीविद्या प्राप्त होती है हे देवि! उसी प्रकार तीनों लोकों में दुर्लभ इस कवच की प्राप्ति होती है । कवच को प्राप्त करने वाला वह मनुष्य साक्षात् शिव हो जाता है । उसकी पत्नी परमेश्वरी हो जाती है । हे देवेशि! प्रमाद से भी गुरु का नाम नहीं लेना चाहिये । हे प्रिये! देवता के समान गुरु में जिसकी नित्य भक्ति रहती है मन्त्र-यन्त्र की सिद्धि उसी को होती है अन्य को नहीं । हे सुन्दरि! कवच और गुटिका की सिद्धि भी उसी को होती है । जो मनुष्य इस कवच को न जान कर परासुन्दरी विद्या का जप करता है, नव लाख जप करने पर भी उसको विद्या सिद्ध नहीं होती ॥ ८६-१०२ ॥

श्रीचक्रे देवीपूजाविधिवर्णनम्

शुचिः समाहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
सर्वभूतालये सुप्ते निशायामर्धरात्रके ॥ १०३ ॥
हेतुयुक्तो महेशानि निर्जने पशुवर्जिते ।
रक्तासनोपविष्टस्तु रक्ताभरणभूषितः ॥ १०४ ॥
ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः ।
संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामिपरायणाम् ॥ १०५ ॥
रक्तवस्त्रपरीधानां शिवमन्त्रधरां शुभाम् ।
या शक्तिः सा महादेवी हररूपस्तु साधकः ॥ १०६ ॥
अन्योन्यचिन्तनाद् देवि देवत्वमुपजायते ।
शक्तियुक्तो यजेद् देवीं श्रीचक्रे लक्षणान्विते ॥ १०७ ॥
पुष्पाञ्जलित्रयं देव्यै मूलमन्त्रेण दापयेत् ।
भोगैश्च मधुपर्काद्यैस्ताम्बूलाद्यैः सुवासितैः ॥ १०८ ॥

पूजयित्वा महादेवीं पूजाकोटिफलं लभेत् ।
पूर्वोक्त(स्या?न्या)समेवास्मिन् समये च प्रविन्यसेत् ॥ १०९ ॥
आत्मानं परमं ध्यायेद् दिव्यस्त्रीभिरलंकृतम् ।
दिव्यं मूर्ध्नि महच्छत्रं सहस्रदलनिर्मितम् ॥ ११० ॥
सुधावर्षिमुखाम्भोजं सस्मितं दिव्यवर्चसम् ।
परमानन्दसंदोहमुदितं परमव्ययम् ॥ १११ ॥
दिव्यालङ्कारवस्त्राढ्यं दिव्यमाल्यानुलेपितम् ।
दिव्यासनसमासीनं दिव्यभोगविभोगिनम् ॥ ११२ ॥
सर्वगं सर्वभूतेशं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् ।
निर्लेपं निर्मलं शान्तं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥ ११३ ॥

श्रीचक्र में देवी-पूजा की विधि—साधक पवित्र, एकाग्रचित्त, भक्ति और श्रद्धा से युक्त होकर समस्त प्राणियों के सो जाने पर आधी रात को हे महेशानि! निर्जन एवं पशुरहित स्थान में साधनों से सम्पन्न होकर लाल रंग के आसन पर बैठ जाय । उसे ताम्बूल से पूरित मुख वाला तथा धूप की गन्ध से सुगन्धित रहना चाहिये । अपनी बायीं ओर स्वामिपरायणा शक्ति को बैठा कर रखे । वह शक्ति लाल रंग के वस्त्र धारण की हो । सुन्दरू और शिवमन्त्र का जप करने वाली हो । शक्ति महादेवी अर्थात् पार्वती रूपा है और साधक शिवस्वरूप है— ऐसा शक्ति और साधक एक दूसरे को समझें । हे देवि! इससे उन दोनों में देवत्व उत्पन्न होता है । शुभ लक्षणों से युक्त श्रीचक्र पर देवी की पूजा शक्तियुक्त होकर करनी चाहिये । सर्वप्रथम मूलमन्त्र से देवी के लिये तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । उसके बाद मधुपर्क आदि भोगों, सुगन्धयुक्त ताम्बूल आदि से महादेवी की पूजा करने से पूजक इस पूजा का करोड़ गुना फल प्राप्त करता है । इसके अनन्तर इस समय पूर्वोक्त न्यास करना चाहिये । अपने को परमात्मा के रूप में ध्यान करना चाहिये[1] । (ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—) मैं दिव्य स्त्रीजनों के द्वारा अलङ्कृत हूँ; मेरे शिर पर सहस्रदल निर्मित महाछत्र है । मेरा मुख कमलसुधा की वृष्टि कर रहा है । मैं मुस्कान वाला तथा दिव्य तेजोमय हूँ । दिव्य अलङ्कार और दिव्यवस्त्रों से सुपूरित मैं दिव्य मालाओं और चन्दन आदि लेपों से युक्त हूँ । दिव्य आसन पर बैठा हुआ मैं दिव्य भोगों का भोग कर रहा हूँ । मैं सर्वव्यापी समस्त प्राणियों का स्वामी, सृष्टि स्थिति संहार का कर्त्ता, निर्लेप, निर्मल, शान्त सर्वव्यापी और ईश्वर हूँ ॥ १०३-११३ ॥

ततो देवीं हृदम्भोजे ध्यायेत् तद्गतमानसः ।

---

[1] पक्षान्तर में परमात्मा का भी उक्त प्रकार से ध्यान किया जा सकता है ।

ज(वा?पा)कुसुमसङ्काशां बालार्ककिरणारुणाम् ॥ ११४ ॥
रक्तपद्मसमासीनां रक्ताभरणभूषिताम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ ११५ ॥
सैवाहमित्यभेदेन द्वैतहीनं विचिन्तयेत् ।
अद्वैतानन्दभावेन साधकः परमात्मनः ॥ ११६ ॥
छायया शोणया व्याप्तं जगदेतच्चराचरम् ।
भावनावशसम्पन्नो भावयेद् भावनापरः ॥ ११७ ॥
एवं चिन्तापरस्याशु सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
सम्प्राप्य विपुलान् भोगान् राज्यास्पदं च भूतले ॥ ११८ ॥
ऐन्द्रं पदमवाप्याथ विहरन् नन्दने वने ।
उर्वशीप्रमुखाभिश्च स्वेच्छया दिव्यभोग(दा?वा)न् ॥ ११९ ॥
तदाप्नोति परं स्थानं दुरापं त्रिदशैरपि ।
ततश्च कवचं दिव्यं पठेदेकमनाः प्रिये ॥ १२० ॥

इसके पश्चात् साधक देवी के विषय में चिन्तन करता हुआ अपने हृदयकमल में देवी का ध्यान करे । (ध्यान इस प्रकार है—) वह देवी गुड़हल के फूल के समान, उदीयमान सूर्य की किरण के सदृश रक्त वर्ण वाली, रक्त-कमल पर विराजमान, रक्तवर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत, रक्त वस्त्र पहनी हुई, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली है । मै भी वही हूँ । साधक को इस प्रकार अद्वैत भाव से ध्यान करना चाहिये । अद्वैत आनन्दभाव से युक्त साधक यह ध्यान करे कि यह चराचर जगत् परमात्मा की रक्तवर्ण वाली छाया से व्याप्त है । साधक भावना के वश में होकर ऐसी भावना करे । इस प्रकार ध्यान करने वाले साधक को अष्ट सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्त हो जाती हैं । धरती पर बहुत से भोगों और राज्य पद पाने के पश्चात् इन्द्र का पद प्राप्त कर नन्दन वन में उर्वशी आदि अप्सराओं के द्वारा स्वेच्छया दिव्य भोगों को भोगता हुआ वह उस दुर्लभ पद को प्राप्त करता है जो देवताओं के भी द्वारा दुष्प्राप्य है । हे प्रिये! इसके बाद एकाग्रचित्त होकर दिव्य कवच का पाठ करना चाहिये ॥ ११४-१२० ॥

कवचपाठमाहात्म्यवर्णनम्

तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
इदं रहस्यं परमं परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ १२१ ॥
सर्वेषामेव हिंस्राणां डाकिनीनां महेश्वरि ।
निशाचरगणानां च वारणं नाशनं तथा ॥ १२२ ॥
आयुर्बलप्रदं नित्यं तुष्टिपुष्टिशुभावहम् ।

नारीणां मृतवत्सानां गुणवत्सुतदायकम् ॥ १२३ ॥
सूत्या(ः) सूतिगृहस्यापि बालग्रहनिवारणम् ।
विषद(स्य? स्यु)ग्रहाणां च सदा शान्तिविवर्द्धनम् ॥ १२४ ॥
विषशस्त्राग्निरुद्राणां वारणं जयदं युधि ।
जले स्थले तथाकाशे सर्वोत्पातेषु सर्वदा ॥ १२५ ॥
त्रैलोक्यवासिनामेव सर्वमङ्गलदायकम् ।
सकृद्यस्तु पठेद् देवि कवचं देवदुर्लभम् ॥ १२६ ॥
हयमेधफलं तस्य भवत्येव न संशयः ।
नित्यं यस्तु पठेद् देवि श्रृणुयाद्वा समाहितः ॥ १२७ ॥
स सर्वांल्लभते कामान् परे देवीपुरं व्रजेत् ।
संग्रामे च जयेच्छत्रून् मातङ्गानिव केसरी ॥ १२८ ॥
दहेत् तृणं यथा वह्निस्तथा शत्रूञ्जयेत् सदा ।
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रभवन्ति च ॥ १२९ ॥
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्राणि च यानि च ।
माल्यानि कुसुमानीव सुखदानि भवन्ति हि ॥ १३० ॥
पराः पराङ्मुखा यान्ति वि(वा? ना)युद्धेन पार्वति ।
व्याधिस्तस्य कदाचित्तु दुःखं नास्ति कदाचन ॥ १३१ ॥
गतिस्तस्यैव सर्वत्र वायोस्तुल्या सदा भवेत् ।
दीर्घायुः कामभोगी सो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ १३२ ॥
जितव्याधी रूपवान् स्याद् गुणवानभिजायते ।
चातुर्वर्ग्यं करे तस्य भवत्येव न संशयः ॥ १३३ ॥
अन्यस्य वल्लभः सो वै पुत्रदारकुलान्वितः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परे मुक्तो भविष्यति ॥ १३४ ॥

कवच पाठ का माहात्म्य—दिव्य कवच का पाठ करने वाले उस साधक के समस्त सङ्कल्पों की सिद्धि होती है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । यह कवच परम गोपनीय और परम कल्याणकारी है । हे महेश्वरि! यह कवच समस्त हिंसक जीवों डाकिनियों राक्षसगणों को दूर करने वाला तथा नष्ट करने वाला है । यह सदा आयु बल तुष्टि पुष्टि देने वाला तथा शुभकारी है । मृतपुत्रा नारियों को गुणवान् पुत्र देने वाला तथा प्रसूतिगृह में प्रसूता के बालग्रह का निवारक है । विष डाकू और दुष्ट ग्रहों को शान्त करने वाला यह कवच विष शस्त्र अग्नि और रुद्रों का नाशक होने के साथ युद्ध में जय देता है । जल स्थल तथा आकाश में होने वाले समस्त उत्पातों को दूर कर त्रैलोक्यवासियों के लिये सर्वमङ्गल देने

वाला है । हे देवि! जो साधक इस देवदुर्लभ कवच का एक बार पाठ करता है उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है; इसमें सन्देह नहीं । हे देवि! जो इस कवच का समाहित होकर नित्य पाठ या श्रवण करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्णतया प्राप्त कर अन्त में देवी के लोक में जाता है । जिस प्रकार हाथियों को सिंह उसी प्रकार वह युद्ध में शत्रुओं को जीत लेता है । जिस प्रकार अग्नि तृण को जलाता है उसी प्रकार वह शत्रु को नष्ट कर देता है । समस्त अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर पर प्रभाव नहीं डालते । ब्रह्मास्त्र आदि तथा समस्त शस्त्र उसके शरीर का स्पर्श कर उसे फूल के समान सुख पहुँचाते हैं । हे पार्वति! शत्रुगण विना युद्ध किये वापस लौट जाते हैं । वह साधक दीर्घायु, यथेच्छ भोग करने वाला तथा धन-धान्य से समृद्ध हो जाता है । वह रोगमुक्त, रूपवान् तथा गुणवान् हो जाता है । चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष उसके हाथों में हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं । अन्य लोगों का प्रिय होता हुआ वह पुत्र स्त्री आदि से युक्त होकर इस लोक में सुख भोग करने के बाद परलोक में मुक्त होकर विराजता है ॥ १२१-१३४ ॥

न तस्य दुर्गतिर्देवि कदाचिदपि जायते ।
दुर्ग्रहाः सुग्रहा यान्ति वशं गच्छन्ति मानवाः ॥ १३५ ॥
न तस्य विघ्नो भवति न शोको भुवि जायते ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च भयानकाः ॥ १३६ ॥
ते सर्वे विलयं यान्ति कवचस्यास्य कीर्त्तनात् ।
तस्यैव शत्रवो देवि चिन्तामात्रप्रयोगतः ॥ १३७ ॥
विनश्यन्ति न संदेहो योगिन्यो भक्षयन्ति तान् ।
शान्तिकादीनि कर्माणि मारणोच्चाटनानि च ॥ १३८ ॥
वचोमात्रेण देवेशि तस्य सिध्यन्ति भूतले ।
न पापैर्लिप्यते देवि महोग्रैस्तु सुदारुणैः ॥ १३९ ॥
न कालस्य वशं गच्छेन्न जरा न च दुःखिता ।
तत्र देशे न दुर्भिक्षं न च मारी प्रवर्त्तते ॥ १४० ॥
न रोगास्तत्र जायन्ते नोत्पाताः प्रभवन्ति च ।
विविधाश्चैव योगिन्यस्तस्य साधकसन्निधौ ॥ १४१ ॥
शान्तिं चैव प्रयच्छन्ति रक्षति(?न्ति)पुत्रवत् सदा ।
सर्वदा च सुखप्राप्तिः सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ १४२ ॥
नानेन सदृशः कश्चित् साधको भुवि जायते ।
सुरासुरमनुष्याणां तत्त्वरूपः सुखावहः ॥ १४३ ॥

येन विज्ञातमात्रेण स्मृतेनैव च सुन्दरि ।
अक्षयांल्लभते कामान् मुक्तिस्थानं च गच्छति ॥ १४४ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि स्मरणात् कलुषापहः ।
अहो कवचमाहाम्यं पठमानस्य नित्यशः ॥ १४५ ॥
विनापि योगचर्येण योगिनां समतां व्रजेत् ।

हे देवि! उसकी कभी दुर्गति नहीं होती । दुष्टग्रह भी उसके लिये सौम्य हो जाते हैं । मनुष्य उसके वश में हो जाते हैं । पृथिवी पर उसको विघ्न और शोक नहीं होते । इस कवच के पाठ से वेताल, पिशाच, भयानक राक्षस सब के सब विलीन अर्थात् भय के कारण अदृश्य हो जाते हैं । हे देवि! उस कवच के ध्यान मात्र से ही शत्रु निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं और योगिनियाँ उन्हें खा जाती हैं । हे देवेशि! इस कवच का पाठ करने वाले के वचनमात्र से इस पृथिवी पर शान्ति, मारण एवं उच्चाटन आदि कर्म सिद्ध हो जाते हैं । हे देवि! इस कवच का पाठक सुदारुण महान् भयङ्कर पापों से लिप्त नहीं होता; काल अर्थात् मृत्यु के वश में नहीं जाता । उसे जरा और दुःख नहीं सताते । जिस देश में वह निवास करता है उसमें दुर्भिक्ष अर्थात् अकाल और महामारी नहीं फैलती । रोग और उत्पात वहाँ नहीं होते । उस साधक के पास अनेक योगिनियाँ शान्ति प्रदान करती हैं तथा उसकी पुत्र के समान रक्षा करती हैं । उसे सदा सुख मिलता है और वह सारे तीर्थगमन का फल प्राप्त करता है । पृथिवी पर कवच पाठ करने वाले इस साधक के समान कोई भी नहीं होता । यह सुर, असुर और मनुष्यों में तत्त्व स्वरूप और सबको सुख देने वाला होता है । हे सुन्दरि! कवच के केवल जान लेने या स्मरण मात्र करने से मनुष्य अक्षय कामनाओं तथा मुक्ति को प्राप्त करता है । समस्त सल्लक्षणों से रहित भी मनुष्य इसके स्मरण से पापरहित हो जाता है । इस कवच की महिमा का क्या कहना कि इसका नित्य पाठ करने वाला साधक योगाभ्यास के विना भी योगियों के समान (ऐश्वर्य सम्पन्न आदि) हो जाता है ॥ १३५-१४५- ॥

यन्त्ररचना-तत्प्रयोगफलवर्णनम्

भूर्जत्वचि समालिख्य चक्रं तत्त्वविनिर्मितम् ॥ १४६ ॥
मध्ये त्रिकोणं संलिख्य साध्यसाधकयोर्लिपिम् ।
तदूर्ध्वे मूलमन्त्रं च मातृकार्णेन वेष्टयेत् ॥ १४७ ॥
अगुरुद्रवमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ।
एतद्यन्त्रं महादेवि सुरासुरसुदुर्लभम् ॥ १४८ ॥
रोचनाकुङ्कुमेनैव तद्बाह्ये कवचं लिखेत् ।

श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य लाक्षया परिवेष्टयेत् ॥ १४९ ॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नपयित्वा शुभेऽहनि ।
सम्पूज्य देवीरूपां तां गुटिकां सर्वकामदाम् ॥ १५० ॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र निवेशयेत् ।
चारुणा शातकुम्भेन भूषितां योनिमुद्रया ॥ १५१ ॥
अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र संस्थापयेद् बुधः ।
एषा तु गुटिका देवि कण्ठलग्ना धनप्रदा ॥ १५२ ॥
शीर्षे वश्यक(रे?री)देवि कट्यां स्तम्भनकारिणी ।
बद्धा वामभुजे चैषा वैरिपक्षविनाशिनी ॥ १५३ ॥
जठरे रोगशमनी पुत्रदा हृदि संस्थिता ।
विद्याकरी ललाटस्था शिखायां तु यशःप्र(दः?दा) ॥ १५४ ॥
दक्षिणे बाहुमूले वै यदि तिष्ठति सर्वदा ।
तदा सर्वार्थसिद्धिः स्याद्यद्यन्मनसि वर्त्तते ॥ १५५ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।
न शक्नोमि प्रभावं हि कथितुं कवचस्य वै ॥ १५६ ॥
एतत्तु कवचेनैव पठनं साधनं प्रिये ।
कथितं मे तव स्नेहाद् गोपनीयं सदा प्रिये ॥ १५७ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे महात्रिपुरसुन्दरीत्रैलोक्यमोहनाकवचनिरूपणनामकश्चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

◆

यन्त्र रचना उसके प्रयोग तथा फल का वर्णन—इस चक्र को भोजपत्र पर तत्त्वों (= तन्त्रग्रन्थों में वर्णित द्रव्यों—रक्त चन्दन केशर आदि) के द्वारा लिखना चाहिये । इस चक्र के मध्य में त्रिकोण लिखकर साध्य और साधक की लिपि (= नाम) लिखना चाहिये । हे महादेवि! पुनः त्रिकोण के ऊपर मूलमन्त्र को लिखकर सुरासुर दुर्लभ इस यन्त्र को मातृका वर्णों (= 'अ' से 'क्ष' तक के अक्षरों) से अगुरुमिश्रित सुगन्धित चन्दन के द्वारा वेष्टित करना चहिये । फिर गोरोचन और कुङ्कुम से इस यन्त्र के बाहर कवच को लिखकर श्वेत सूत्र से लपेट कर लाक्षा से उसे लिप्त कर देना चाहिये । शुभ दिन में पञ्चामृत एवं पञ्चगव्य से उस यन्त्र को स्नान कराकर देवीरूपा सर्वकामप्रदा उस गुटिका की पूजा करनी चाहिये । तत्पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से उसमें प्राण की प्रतिष्ठा कर उसको सुन्दर सोने से अलङ्कृत करना चाहिये । इसके पश्चात् योनिमुद्रा के द्वारा योनि में ध्यान

कर उस गुटिका को विद्वान् साधक शक्ति की योनि के अन्दर रख दे ।[१] हे देवि! यह गुटिका कण्ठ में बाँधने पर धन देती है । हे देवि! शिर पर बाँधने से वश्यकरी और कटि में स्तम्भनकरी होती है । बाँयीं भुजा में बाँधने पर यह शत्रु का नाश करती है । पेट में बाँधने पर रोग-शान्ति, हृदय में रखने पर पुत्रदा, ललाटस्थ होने पर विद्या देने वाली और शिखा में यश देती है । यदि साधक की दाँयीं भुजा में यह बँधी रहती है तो मन में जो-जो इच्छा होती है उस सबकी सिद्धि होती है, यह अनेकशः सत्य है । मैं कवच के प्रभाव का वर्णन नहीं कर सकता । हे प्रिये! इस कवच का पाठ और इसकी साधना तुम्हारे प्रेम के कारण कही गयी । हे प्रिये! इसे सदा गोपनीय रखना चाहिये ॥ १४६-१५७ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्रार्गत पार्वतीश्वरसंवाद में महात्रिपुरसुन्दरीत्रैलोक्यमोहन-कवच नामक चतुर्थ पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

* * *

---

[१] यह गुटिका शक्ति की योनि में कितने समय तक रहेगी इसका निर्णय साधक को करना चाहिये ।

पञ्चमः पटलः

यन्त्रोद्धारावरणशक्त्यर्चननिरूपणम्

पार्वत्युवाच—

विना यन्त्रेण चेत् पूजा देवता न प्रसीदति ।
तस्मात् कथय देवेश यन्त्रमस्या मनोहरम् ॥ १ ॥
यस्य दर्शनमात्रेण दारिद्र्यं नश्यति ध्रुवम् ।

पार्वती ने कहा—पूजा यदि विना यन्त्र के की जाती है तो उससे. पूज्य देव प्रसन्न नहीं होते । इसलिये हे देवेश! जिसके दर्शन मात्र से दारिद्र्य निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है उस मनोहर पूजा यन्त्र को बतलाइये ॥ १ ॥

पूजायन्त्ररचनाविधानम्

ईश्वर उवाच—

सैवमालोच्य सर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ २ ॥
समस्ततत्त्वसंयोगात् स्मृत्यधिष्ठानरूपिणी ।
व्यक्तीकरोति नित्या(वः?या)प्रकृतिः परमः पुमान् ॥ ३ ॥
सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्राज्ज्योतिषः सन्निधेस्तथा ।
विचिकीर्षुर्योनिभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुना ॥ ४ ॥
अतिव्यक्ता पराशक्तिरविनाभावलक्षणा ।
अखण्डपरचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः ॥ ५ ॥
समस्ततत्त्वभावेन विवर्ते(त्सा?च्छा-) समन्विता ।
प्रयाति बिन्दुभावं च क्रियाप्राधान्यलक्षणम् ॥ ६ ॥
बैन्दवं मातृचक्रस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत् ।
बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् ॥ ७ ॥
तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो यच्चिन्तयाम्यहम् ।
तस्मात् तानि च चक्राणि तत्प्रकारः प्रकथ्यते ॥ ८ ॥

ततः प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समारभेत् ।
हेमरूप्यादिताम्राणां पट्टे चातिमनोहरे ॥ ९ ॥
चतुरस्रे समे शुद्धे मध्योच्छूनविभूषिते ।
युग्माङ्गमिलितं देवि पट्टस्येह समीरितम् ॥ १० ॥
अथवा परमेशानि भूमौ चक्रं समालिखेत् ।
हस्तमात्रमिते शुद्धे गोमयेनोपलेपिते ॥ ११ ॥
सिन्दूररजसा तत्र कुङ्कुमेनाथ वा प्रिये ।
आलिखेच्चक्रराजं च लेखन्या हैमया तथा ॥ १२ ॥
अथवा कुशमूलेन दर्भपाणिः समाहितः ।
नेत्ररम्यं तथा चक्रं तथा कुर्याद्विचक्षणः ॥ १३ ॥

पूजा-यन्त्रों की रचना का विधान—सच्चिदानन्दरूपिणी तथा स्मृति की अधिष्ठानभूता वह नित्या परमा शक्ति समस्त तत्त्वों के परस्पर संयोग से अपने को व्यक्त करती है । वह अभिव्यक्ति प्रकृति और पुरुष के रूप में होती है । तत्त्व नामक वह प्रकृति चिन्मात्र ज्योति के संसर्ग से उस अर्थात् सृष्टि को करने की इच्छा वाली होकर कारण बनती है । फिर किसी समय वह बिन्दु के रूप में अत्यन्त व्यक्त हो जाती है । वह पराशक्ति (शक्तिमान् के साथ) अविनाभाव रूप वाली है । अखण्ड पर चित्शक्ति चिद्रूपिणी व्यापक वह शक्ति सर्वत्र व्याप्त होती हुई जब समस्त तत्त्व के रूप में विवर्त्तित होने की इच्छा से युक्त होती है तब क्रियाप्राधान्यलक्षण बिन्दु भाव को प्राप्त होती है । मातृकाचक्र जो कि अपने मूलरूप में बिन्दु होता है, तीन रूप वाला होता है । बिन्दु को शिवात्मक तथा बीज को शक्त्यात्मक माना गया है । शिव और शक्ति अथवा बिन्दु और बीज का योग होने पर नाद उत्पन्न होता है । इन तीन अर्थात् बिन्दु बीज और नाद से जो उत्पन्न होता है मैं उसका चिन्तन करता हूँ । उस नाद से वे चक्र उत्पन्न होते हैं । उनका भेद बतलाया जा रहा है । इसके पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर चक्र का उद्धार (= लेखन) करना चाहिये । सोना चाँदी या ताँबा का एक सुन्दर पत्र लेना चाहिये । यह चौकोर समतल शुद्ध और मध्य में थोड़ा उठा हुआ होना चाहिये । हे देवि! पत्र के दोनों अङ्ग (= पार्श्व) परस्पर मिले हुए होने चाहिये न कि कटे फटे । हे परमेशानि! चक्र को भूमि पर भी लिखा जा सकता है । एक हाथ लम्बी चौड़ी भूमि को शुद्धकर अर्थात् उसमें से शल्य आदि को निकाल कर उसे गोबर से लीप देना चाहिये । हे प्रिये! सोने की लेखनी के द्वारा सिन्दूर अथवा कुङ्कुम से चक्रराज को लिखना चाहिये । यदि सोने की कलम न हो सके तो हाथ में कुश लेकर एकाग्रचित्त होकर कुश के मूल से चक्र को विद्वान् ऐसा बनाये कि देखने में सुन्दर लगे ॥ २-१३ ॥

प्रतीच्यग्रं लिखेदेकं त्रिकोणं तदुपर्यथ ।
पूर्वत्रिकोणमध्याग्रं त्रिकोणान्तरमालिखेत् ॥ १४ ॥
अथ संधिद्वयं भित्त्वा प्रागग्रं विलिखेत् परम् ।
त्रिकोणमध्यगं चक्रमष्टकोणं तथा भवेत् ॥ १५ ॥

अष्टकोण चक्र—पश्चिम की ओर अग्रभाग वाला एक त्रिकोण बनाये । इसके पश्चात् दोनों सन्धियों का भेदन कर पूर्वाग्र त्रिकोण लिखना चाहिये । इस प्रकार त्रिकोण के मध्य में एक अष्टकोण चक्र बन जाता है ॥ १४-१५ ॥

ततो दशारचक्रस्य निर्माणं श्रृणु पार्वति ।
दक्षिणोत्तरगा रेखास्तिस्रो यास्तत्र तास्वपि ॥ १६ ॥
मध्यरेखां परित्यज्य रेखे द्वे परिवर्धयेत् ।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदे चतुष्टयम् ॥ १७ ॥
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् दशकोणं तथा भवेत् ।

दशारचक्र—हे पार्वति! इसके बाद दशारचक्र के निर्माण को सुनो । दक्षिण से उत्तर की ओर जो तीन रेखायें होती हैं उनमें से मध्य रेखा को छोड़ कर शेष दो रेखाओं को बढ़ाना चाहिये । इससे षट्कोण बनाने के बाद सन्धिभेद में चार कोण बन जाने पर उसमें दो रेखायें खींचनी चाहिये । इस प्रकार दशकोण यन्त्र का निर्माण हो जाता है ॥ १६-१७- ॥

तथान्यदशकोणस्य निर्माणं परिकीर्त्यते ॥ १८ ॥
दक्षिणोत्तरगास्त्वेवं रेखाः पञ्च भवन्ति याः ।
तासां रेखा (द्व?त्र)यं मध्ये हित्वा पूर्वापरं तु तत्॥ १९ ॥
बाह्यरेखाद्वयं देवि पूर्ववत् परिवर्धयेत् ।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदचतुष्टयम् ॥ २० ॥
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् दशकोणं यथा भवेत् ।

अब एक दूसरे दशकोण का निर्माण बतलाया जा रहा है । इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर की ओर पाँच रेखायें होती हैं । उनमें से मध्य की तीन रेखाओं को छोड़कर बाह्य दो रेखाओं अर्थात् पहली और पाँचवीं रेखा को पूर्व की भाँति बढ़ाना चाहिये । इससे षट्कोण बनाकर सन्धिभेद से चार कोण बनाकर दो रेखायें ऐसी खींची जाती हैं कि उससे दशकोण बन जाता है ॥ १८-२०- ॥

चतुर्दशारचक्रस्य निर्माणं कथ्येऽधुना ॥ २१ ॥
दक्षिणोत्तरगास्वे(?स्त्वे)वं रेखाः सप्तभवन्ति याः ।
तासां रेखा(द्व?त्र)यं हित्वा बाह्ये पूर्वापरं ततः ॥ २२ ॥

दीर्घं रेखाद्वयं मन्त्री पूर्ववत् परिवर्धयेत् ।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदचतुष्टयम् ॥ २३ ॥
दशारीकृत्य तेनैव संधिभेदचतुष्टयात् ।
रेखाद्वयं बहिः कुर्याद्रेखाः स्युर्नव चैव वै ॥ २४ ॥
कल्पयेदथ तस्याग्रैरन्यकोणचतुष्टयम् ।
एवं चतुर्दशारं स्याद्विलोचनमनोहरम् ॥ २५ ॥
एवं निष्पादिते चक्रे यद्भवति च तच्छृणु ।

चतुर्दशार चक्र—अब चतुर्दशार अर्थात् चौदह कोणों वाले चक्र का निर्माण बतलाया जा रहा है । इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर की ओर सात रेखायें खींची होती हैं । उनमें से मध्य की तीन रेखाओं को छोड़कर मन्त्रवेत्ता बाहरी पूर्वापर दो रेखाओं को बढ़ाये । इससे षट्कोण बनाकर चार सन्धिभेद कर दशकोण बनाना चाहिये । फिर चार सन्धिभेदों से दो रेखायें बाहर करनी चाहिये । इस प्रकार पूर्व की सात तथा ये दो अर्थात् नव रेखायें बनानी चाहिये । उसके आगे वाले भाग से अन्य चार कोण होते हैं । इस प्रकार नेत्रमनोहर चतुर्दशार यन्त्र बनाये जाने पर जो होता है उसको सुनो ॥ २१-२५- ॥

मध्ये त्रिकोणमेव स्यात् तन्मध्ये बिन्दुरिष्यते ॥ २६ ॥
चतुर्णामपि चक्राणां बहिरग्रास्त्रिकोणकाः ।
त्रिचत्वारिंशच्च गुणिता योनयोऽष्टौ च शोभनाः ॥ २७ ॥
मत्स्या द्वादश सम्पन्नाश्चतुष्कोणेपशोभिताः ।
ग्रन्थयोऽष्टादशापि स्युः षट्पथा ग्रन्थयोऽपरे ॥ २८ ॥
चतुर्विंशतिसंख्याताः शोभनास्ते चतुष्पथाः ।
अष्टकोणकगर्भं तु चतुष्कोणत्रयं तथा ॥ २९ ॥
दक्षिणोत्तरपूर्वासु दिक्षु सम्भवति क्रमात् ।
दक्षिणोत्तरगास्तत्र नव रेखा भवन्ति हि ॥ ३० ॥
नव रेखास्तथैवान्या वह्निवायुदिगायताः ।
नव रेखास्तथैवान्या नैर्ऋतेशदिगायताः ॥ ३१ ॥
तत्र ये पञ्च देवेशि साधकाभिमुखाग्रकाः ।
त्रिकोणास्ते शक्तयः स्युः पञ्च(ने?त)त्र शुभोदयाः॥ ३२ ॥
पूर्वाग्रा..ये तु चत्वारो वह्नयस्ते प्रकीर्तिताः ।
एवं चक्रं विनिर्माय बाह्ये वृत्तं विलिख्य च ॥ ३३ ॥
तेनाष्टदलपद्मस्य निर्माणं तद्बहिस्तथा ।
वृत्तेन षोडशदलं लिखेत् पद्मं मनोहरम् ॥ ३४ ॥

वृत्तत्रयं तु तद्बाह्ये तद्बाह्ये चतुरस्त्रकम् ।
त्रिरेखं भूपुरं विद्धि चतुर्द्वारोपशोभितम् ॥ ३५ ॥
एवं भवन्ति चक्राणि बिन्दुनैव नव क्रमात् ।
वृत्तत्रयं महेशानि न पूजायां निगद्यते ॥ ३६ ॥

चक्र के मध्य मे त्रिकोण होता है । उस त्रिकोण के मध्य में बिन्दु माना जाता है । चारों चक्रों के बाहर अग्रभाग में त्रिकोण होते हैं । इनकी संख्या तैंतालिस होती है । सुन्दर योनियाँ आठ की संख्या में होती हैं । चारों कोणों में बारह मत्स्य शोभायमान होते हैं । अठारह ग्रन्थियाँ तथा दूसरी छह ग्रन्थियाँ होती हैं । चौबीस की संख्या में सुन्दर चौराहे होते हैं । दक्षिण उत्तर और पूर्व दिशाओं में क्रम से तीन चतुष्कोण होते हैं । उनके बीच-बीच में एक-एक अष्टकोण होता है । दक्षिण से उत्तर की ओर जाने वाली नव रेखायें होती हैं । इसी प्रकार अग्नि कोण से वायु कोण को जाने वाली नव रेखायें होती हैं । उसी प्रकार नैर्ऋत्य कोण से ईशान कोण में नव रेखायें जाती हैं । हे देवेशि! इनमें से जो पाँच कोण साधक के सामने होते हैं वे नेत्र अर्थात् दो प्रकार के शुभोदय वाली पाँच शक्तियाँ होती हैं । जो पूर्वाग्र चार त्रिकोण होते हैं वे चार वह्नियाँ होती हैं । इस प्रकार चक्र का निर्माण कर उसके बाहर एक वृत्त का निर्माण करना चाहिये । उस वृत्त के साथ बाहर मनोहारी अष्टदल कमल लिखना चाहिये । इसके बाहर वृत्त बनाकर सुन्दर षोडशदल कमल का निर्माण करना चाहिये । उसके बाहर तीन वृत्त उसके बाहर चौकोर तीन रेखाओं वाला भूपुर बनाये जिसमें चार द्वार होने चाहिये । इस प्रकार बिन्दु के साथ नवचक्र होते हैं । हे महेशानि! तीन वृत्तों की पूजा का विधान नहीं है ॥ २६-३६ ॥

श्रीत्रिपुरमहायन्त्रं तस्य साङ्गोपाङ्गपूजाया वर्णनम्

एवमेतस्य चक्रस्य प्रभावो वर्णि(तं?तु)मया ।
न शक्यते महेशानि कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३७ ॥
एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीत्रिपुरामयम् ।
यन्त्रं शरीरमित्याहुर्मन्त्रं ज्ञानमखण्डितम् ॥ ३८ ॥
शरीरं त्रिविधं प्राहुभौतिकं च मनोमयम् ।
परं ज्ञानमयं नित्यं यदनाशि निरन्तरम् ॥ ३९ ॥
मुद्रां भौतिकमित्याहुर्यन्त्रं विद्धि मनोमयम् ।
मन्त्रं ज्ञानमयं विद्धि एवं त्रिधा वपुर्भवेत् ॥ ४० ॥
मुद्राशरीरं मे (ब्रूहि?विद्धि)अङ्गभूतं तथा परम् ।
योनिभूता महामुद्रा शरीरमिति कीर्तितम् ॥ ४१ ॥

तस्या रससमुत्पन्नाः कामेश्वर्यादिकास्तथा ।
बिन्दुचक्रं वरारोहे सर्वानन्दमयं प्रिये ॥ ४२ ॥
संविद्वेद्यं महाचक्रं ज्ञेयं ब्रह्मस्वरूपकम् ।

श्री त्रिपुरा महायन्त्र और उसकी साङ्गोपाङ्ग पूजा—हे महेशानि! इस यन्त्र के प्रभाव का वर्णन मैं स्वयं करोड़ों कल्पों में भी नहीं कर सकता । महाश्रीत्रिपुराचक्र इस प्रकार का बतलाया गया है । यन्त्र को देवता का शरीर और मन्त्र को उसका अखण्ड ज्ञान कहा गया है । विद्वान् लोग शरीर को तीन प्रकार का बतलाते हैं—भौतिक, मनोमय और ज्ञानमय । यह पर ज्ञानमय शरीर अनाशि अर्थात् नित्य और निरन्तर सर्वदा एकरूप में रहने वाला है । मुद्रा को भौतिक शरीर कहते हैं । यन्त्र को मनोमय शरीर जानो । मन्त्र को ज्ञानमय शरीर समझो । इस प्रकार शरीर तींन विधा का होता है । मुद्रा को मेरा शरीर समझो । शेष उसका अङ्ग है । योनि नामक महामुद्रा ही मेरा शरीर कहा गया है । उसके तत्त्व से कामेश्वरी आदि नित्यायें उत्पन्न हुईं । हे वरारोहे! हे प्रिये! बिन्दुचक्र सर्वानन्दमय है । संविद् के द्वारा वेद्य (अथवा संविद् नाम से वेद्य) महाचक्र को ब्रह्मरूपी जानना चाहिये ॥ ३७-४२- ॥

ततः परं शिवाङ्कस्थां महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ४३ ॥
समावाह्य यजेद्देवीं परयाथ सपर्यया ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पार्वती(?ति) ॥ ४४ ॥
षडङ्गयुवतीः पश्चात् पूजयित्वा विधानतः ।
तन्मयीश्चाथ नित्याश्च यजेत् सौभाग्यकामुकः ॥ ४५ ॥
महात्र्यस्त्रं स्मरेत् तत्र पञ्चदशकलात्मकम् ।
वामावर्तक्रमेणैव कलाः पञ्चदश क्रमात् ॥ ४६ ॥
अकाराद्यामुकारान्तां दक्षिणस्यां विचिन्तयेत् ।
ततश्च पूर्वरेखायां दीर्घकर्णादि पञ्चकम् ॥ ४७ ॥
विचिन्त्योत्तररेखायां शक्त्या(सी?दि)परिचिन्तयेत् ।
कामेश्वर्यादिका नित्यास्तथैव परिपूजयेत् ॥ ४८ ॥
प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे ।
एकैकां पूजयेन्नित्यां तत्तत्तिथिक्रमेण तु ॥ ४९ ॥
आदावेकैकवृद्ध्या तु यजेत् साधकसत्तमः ।
कृष्णपक्षे महेशानि पूजयेत्तु त्रिमण्डलम् ॥ ५० ॥
विचित्राद्या वरारोहे यावत् कामेश्वरी भवेत् ।
पूजनीया विलोमेन वान्या (:) तथैव पार्वति ॥ ५१ ॥

उभयोः पक्षयोरन्ते यथोक्तध्यानयोगतः ।
(स्व?स)र्गस्थां षोडशीं नित्यां महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ५२ ॥
तत्तद्विद्यास्तथा ध्यानं यन्त्राणि पूजनानि तु ।
होमान्यन्यानि सर्वाणि काम्यानि च वरानने ॥ ५३ ॥
पटलैः पञ्चसंख्यैस्तु पश्चात् वक्ष्याम्यहं शिवे ।
अत्राङ्गावृतिभूतानां शृणु पूजां वरानने ॥ ५४ ॥

चक्रनिर्माण के बाद शिव की गोद में स्थित महात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन कर अत्यन्त उत्तम सपर्या से उसका पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् अग्नि ईशान नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणों एवं चारों दिशाओं में षडङ्ग युवतियों की विधिवत् पूजाकर सौभाग्यकाङ्क्षी साधक तन्मयी (= युवतियों वाली) नित्याओं की पूजा करनी चाहिए । उस चक्र में पञ्चदशकला वाले महात्रिकोण का ध्यान करना चाहिये । फिर वामावर्त्त क्रम से पन्द्रह कलाओं का ध्यान करना चाहिये । चक्र के दक्षिण रेखा में अकार से उकार तक पाँच का तथा पूर्व रेखा में दीर्घकर्ण आदि पाँच (= ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ) का ध्यान कर उत्तर रेखा में शक्ति आदि (= ए ऐ ओ औ अं) का परिचिन्तन करना चाहिये । उस प्रकार कामेश्वरी आदि नित्याओं की पूजा करनी चहिये । हे पार्वति! शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि से लेकर पूर्णमासी तक तत्तत् तिथि के क्रम से एक-एक नित्या का पूजन करना चाहिये । उत्तम साधक एक-एक वृद्धि के क्रम से पूजन करे अर्थात् पहले दिन एक, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन की—इस प्रकार से पूजा करनी चाहिये । हे महेशानि! कृष्ण पक्ष में त्रिमण्डल (= षडङ्गयुवतियों नित्याओं एवं पञ्चदशकलाओं) की पूजा करनी चाहिये । हे पार्वति! चित्रा से लेकर कामेश्वरी तक विलोम गति से पूजा करनी चाहिये अथवा अन्य की उसी प्रकार अर्थात् विलोम क्रम से पूजा करनी चाहिये । दोनों पक्षों के अन्त में पूर्वोक्त ध्यान के साथ सर्गस्था नित्या षोडशी, जिसका नाम महात्रिपुरसुन्दरी है, की पूजा करनी चाहिये । हे शिवे! तत्तद् विद्यायें उनके ध्यान यन्त्र पूजन होम और अन्य समस्त काम्य कर्मों को आगे आने वाले पाँच पटलों में बतलाऊँगा । हे वरानने! यहाँ अब आवरणभूत अङ्गों की पूजा को सुनो ॥ ४३-५४ ॥

आवरणपूजाविधिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

तत्र तत्र महेशानि समावाह्य विधानतः ।
पूजयेत् साधको भक्त्या
य(दो?थो)क्तक्रमवर्त्म(का?ना) ॥ ५५ ॥

मूलाद्येनैव तत्राद्यां हंसेन पुटितेन तु ।
द्वितीयेन द्वितीयां च तृतीयेन तृतीयकाम् ॥ ५६ ॥
चतुर्थेन चतुर्थीं च पञ्चमेनैव पञ्चमीम् ।
षष्ठेन तु तथा षष्ठी सप्तमेन तु सप्तमीम् ॥ ५७ ॥
अष्टमेनाष्टमीं चैव नवमीं नवमेन तु ।
दशमीं दश (मी?मे) नैव एकादशीं तथैव हि ॥ ५८ ॥
एकादशाक्षरेणैव द्वादशीं द्वादशेन तु ।
त्रयोदशीं च तत्रैव त्रयोदशाक्षरेण तु ॥ ५९ ॥
चतुर्दशाक्षरेणैव यजेत् तत्र चतुर्दशीम् ।
पञ्चदशाक्षरेणैव यजेत् पञ्चदशीं ततः ॥ ६० ॥
समस्तेन तथा देवि षोडशीं परिपूजयेत् ।
आदावन्ते च मध्ये च सपर्या खलु पार्वति ॥ ६१ ॥
महादेव्याः समाख्याता नित्यैव विहितागमे ।
तामेव पूजयेद्वापि महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ६२ ॥
यतस्तस्याः समुत्पन्नं नित्यामण्डलमीदृशम् ।

आवरण पूजा विधि—शिव ने कहा—हे महेशानि! तत्तत् तिथियों में विधिपूर्वक नित्याओं का आवाहन कर साधक यथोक्त रीति से मूलमन्त्र के प्रथम वर्ण को हंस (= ह) से सम्पुटित कर प्रथम नित्या की पूजा करे । उसी प्रकार हंस सम्पुटित द्वितीय वर्ण से द्वितीय नित्या की, तृतीय वर्ण से तृतीय, चतुर्थ वर्ण से चतुर्थ नित्या, पञ्चम वर्ण से पञ्चम, षष्ठ वर्ण से छठीं, सप्तम वर्ण से सातवीं, अष्टम वर्ण से आठवीं, नवम से नवीं, दशम वर्ण से दशवीं, एकादश से एकादशी, द्वादश से द्वादशी, त्रयोदश से त्रयोदशी, चतुर्दश से चतुर्दशी और हंस सम्पुटित पन्द्रहवें वर्ण से पन्द्रहवीं नित्या की पूजा करनी चाहिये । हे देवि! हंस सम्पुटित सम्पूर्ण मन्त्र से षोडशी अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिये । (मूलमन्त्र का स्वरूप—हसकलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं) । इन पन्द्रह अक्षरों को हंस से सम्पुटित करने पर तत्तत् नित्याओं की पूजा का मन्त्र निम्नलिखित होगा—

१. ह ह ह कामेश्वर्यै नमः ।
२. ह स ह भगमालिन्यै नमः ।
३. ह क ह नित्यक्लिन्नायै नमः ।
४. ह ल ह भेरुण्डायै नमः ।
५. ह ह्रीं ह वह्निवासिन्यै नमः ।
६. ह ह ह वज्रेश्वर्यै नमः ।
७. ह स ह शिवादूत्यैनमः ।
८. ह क ह त्वरितायै नमः ।

९. ह ह ह कुलसुन्दर्यै नमः । १०. ह ल ह नित्यायै नमः ।
११. ह ह्रीं ह नीलपताकायै नमः । १२. ह स ह विजयायै नमः ।
१३. ह क ह सर्वमङ्गलायै नमः । १४. ह ल ह ज्वालामालिन्यै नमः।
१५. ह ह्रीं ह चित्रायै नमः ।
१६. ह ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं ह त्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

हे पार्वति! महादेवी की यह पूजा अनुष्ठान के आदि मध्य और अन्त में करनी चाहिये । ऐसा नित्य करणीय के रूप में आगम में कहा गया है । पक्षान्तर में केवल महात्रिपुरसुन्दरी की ही पूजा करनी चाहिये क्योंकि उसी से नित्याओं का इस प्रकार का समूह उत्पन्न हुआ है ॥ ५५-६२- ॥

अन्य काम्यप्रयोगवर्णनम्

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि काम्यं कामार्थसिद्धये ॥ ६३ ॥
यथोक्तां कुलजां शस्तां चारुलक्षणलक्षिताम् ।
स्वेच्छात्त्रृतुमतीं पूर्णयौवनाच्छन्नशैशवाम् ॥ ६४ ॥
तत्राद्यदिवसे देवीं पूजयित्वा यथाविधि ।
यजेत् कामेश्वरीमाद्यां द्वितीयां द्वितीये तथा ॥ ६५ ॥
तृतीयेऽथ तृतीयां च चतुर्थे च चतुर्थिकाम् ।
पञ्चमे पञ्चमीं चैव षष्ठीं षष्ठे तथाहनि ॥ ६६ ॥
सप्तमे सप्तमीं चैव अष्टमीमष्टमेऽहनि ।
नवमे नवमीं देवीं दशमे दशमीं तथा ॥ ६७ ॥
एकादशीं तथा रुद्रे द्वादशीं द्वादशेऽहनि ।
त्रयोदशदिने देवीं त्रयोदशीं क्रमेण तु ॥ ६८ ॥
चतुर्दशीं तथा शक्रे पञ्चदशीं ततो यजेत् ।
षोडशीं षोडशे पूर्णे यजेद्(बु?वृ)द्धिक्रमेण तु॥ ६९ ॥
अन्यांश्चैव यज़् पश्चादपरं यत् प्रकीर्तितम् ।
षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु क्रमोत्क्रमाद् यजेत् ॥ ७० ॥
यथाविधि क्रमेणैव न दिनं व्यतिलङ्घयेत् ।
नैव विसर्जयेत् तां तु यावत्सा स्यात् फलार्थिनी॥ ७१ ॥
फलार्थिनीं विदित्वैव विसृज्यान्यां समाश्रयेत् ।
निशाः षोडश संयुक्ताः षोडश शक्तयस्तथा ॥ ७२ ॥
एकस्मिन् दिवसे देवि लभ्यन्ते भाग्ययोगतः ।

पूजयेत्ताः प्रयत्नेन यथावत् पूर्वसूचिताः ॥ ७३ ॥
रात्रौ बृद्ध्या दिने हान्या रसे मध्ये स्थितो बली।
ऋतुमेकं क्रमेणैव स भवेत् सुरपादपः ॥ ७४ ॥
विमलाजयिनीमध्ये गुरवः कथितास्तु ते ।
त्रैलोक्यमोहने चक्रे बुद्धं च परिपूजयेत् ॥ ७५ ॥

अन्य काम्य प्रयोग—इसके पश्चात् अभीप्सित उद्‌देश्य की पूर्त्ति के लिये दूसरा काम्य प्रयोग बतला रहा हूँ । यथोक्त अर्थात् पूर्ववर्णित कुलीन प्रशस्त उत्तम लक्षणों वाली स्वेच्छा से ऋतुमती (अर्थात् बलात् ऋतुमती नहीं) पूर्ण यौवन के द्वारा आच्छन्न शैशव वाली स्त्री का प्रयोग करना चाहिये । सोलह दिनों के इस अनुष्ठान में प्रथम दिन देवी (= शक्ति) की विधिवत् पूजा करने के बाद प्रथम नित्या कामेश्वरी की पूजा करनी चाहिये । दूसरे दिन दूसरी नित्या की, तीसरे दिन तीसरी, चौथे दिन चौथी, पाँचवें दिन पाँचवीं, छठें दिन छठीं, सातवें दिन सातवीं, आठवें दिन आठवीं, नवें दिन नवीं, दशवें दिन दशवीं, ग्यारहवें दिन ग्यारहवीं, बारहवें दिन बारहवीं, तेरहवें दिन तेरहवीं, चौदहवें दिन चौदहवीं, पन्द्रहवें दिन पन्द्रहवीं और सोलहवें पूर्ण दिन सोलहवीं अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिये । यह पूजा वृद्धिक्रम से करनी चाहिये । (अर्थात् प्रथम दिन प्रथम नित्या कामेश्वरी की पूजा फिर दूसरे दिन प्रथम और द्वितीय अर्थात् कामेश्वरी और भगमालिनी की । इस प्रकार अन्तिम सोलहवें दिन पूर्व पन्द्रह नित्याओं के साथ सोलहवीं नित्या की पूजा करनी चाहिये ।) अन्य की बाद में पूजा करनी चाहिए । दिन का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । उस शक्ति को तब तक विदा नहीं करना चाहिये जब तक कि वह फलार्थिनी न हो अर्थात् ऋतुमती न हो । उसको फलार्थिनी जानकर ही उसका विसर्जन करे और फिर दूसरी शक्ति को ले आये । सोलह रात्रियों में सोलह शक्तियाँ गृहीत होती हैं । हे देवि! एक ही दिन सोलह शक्तियाँ भाग्य से मिलती हैं । उनको पहले से यथाविधि सूचना देकर प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये । रात्रि में वृद्धि क्रम से दिन में ह्रास क्रम से मध्य में समरस होकर जो बलवान् स्थित रहता है और एक ऋतु अर्थात् दो मास तक आचरण करता है तो वह कल्पवृक्ष के समान हो जाता है । विमला और जयिनी के मध्य वे गुरु कहे गए हैं (?) त्रैलोक्यमोहन चक्र में बुद्ध की पूजा करनी चाहिये ॥ ६३-७५ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवरेखास्थदेवतावर्णनम्

ब्रह्मविष्णुशिवाख्यास्तास्तिस्रो रेखाश्च तन्निभाः ।
तत्रादौ ब्रह्मरेखायामणिमाद्याः स्थिताः प्रिये ॥ ७६ ॥
वराभयकरा रक्ताः समीहितफलप्रदाः ।

कौमारी पीतवर्णा च शक्तितोमरधारिणी ॥ ७७ ॥
वरदाभयहस्ता च ध्यातव्या परमेश्वरी ।
अङ्कुशं तोमरं विद्युत्कुलिशौ बिभ्रती करैः ॥ ७८ ॥
इन्द्राणी गौरवर्णा च ध्येया सर्वसमृद्धिदा ।
वैष्णवी श्याववर्णा च शङ्खचक्रवराभयान् ॥ ७९ ॥
हस्तपद्मैश्च बिभ्राणा दिव्यभूषणभूषिता ।
वाराही श्यामवर्णा च पोत्रिवक्त्रसमन्विता ॥ ८० ॥
हलं च मुसलं खड्गं खेटकं दधती करैः ।
चामुण्डा कृष्णवर्णा च शूलं डमरुकं तथा ॥ ८१ ॥
खड्गं वेतालकं चैव दधाना दक्षिणैर्भुजैः ।
खेटकं चषकं चैव नागं घण्टां च वामकैः ॥ ८२ ॥

ब्रह्मा विष्णु और शिव रेखाओं में स्थित देवताओं का वर्णन—ब्रह्मा विष्णु शिव नामक तीन रेखायें उन ब्रह्मा आदि के समान होती हैं । हे प्रिये! उनमें से प्रथम रेखा में अणिमा आदि स्थित रहती हैं । वे हाथों में वरद एवं अभय मुद्रायें धारण की रहती हैं । इनका वर्ण लाल होता है । ये इच्छित फल देने वाली होती हैं । कौमारी देवी का रंग पीला होता है । वह हाथ में शक्ति और तोमर तथा वरद एवं अभय मुद्रा ली हुई है । इस प्रकार की उस परमेश्वरी का ध्यान करना चाहिये । इन्द्राणी गौर वर्ण की है तथा हाथ में अङ्कुश तोमर विद्युत और वज्र धारण की है । समृद्धि देने वाली उसका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये । वैष्णवी नीलवर्ण की है तथा हाथ में शङ्ख चक्र वरद एवं अभय मुद्रा धारण की है । हाथों में कमल धारण करने वाली वह दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत है । वाराही काले रंग की है तथा सूअर के मुखवाली हैं । हाथों में हल मुसल खड्ग और खेटक (= ढाल) ली हुई हैं । चामुण्डा कृष्ण वर्ण की हैं । वह दायें हाथ में शूल डमरु खड्ग वेताल तथा बायें हाथ में खेटक चषक (= प्याला) नाग और घण्टा धारण की है ॥ ७६-८२ ॥

ब्रह्माणीप्रमुखाः सर्व(ा) विष्णुरेखा समाश्रिताः ।
ब्रह्माणी रक्तवर्णा च चतुर्भिः शोभिता मुखैः ॥ ८३ ॥
वरदाभयहस्ता च कुण्डिकाक्षलसत्करा ।
माहेश्वरी श्वेतवर्णा त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ ८४ ॥
कृपाणमे(नं?णं)परशुं दधाना पाणिभिः प्रिये ।
भेदमस्याः परं गुह्यं सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना ॥ ८५ ॥
महालक्ष्मीस्तु पीताभा पद्मे दर्पणमेव च ।

मातुलुङ्गफलं चैव दधाना परमेश्वरी ॥ ८६ ॥
शिवरेखां समाश्रित्य सङ्क्षोभण्यादिकाः स्थिताः ।
रक्ताः सङ्क्षोभणीमुख्याः स्वस्वमुद्राकरान्विताः ॥ ८७ ॥
एताः प्रकटयोगिन्यो ध्येयाः सर्वसमृद्धये ।
अणिमापुरतो देवि त्रिपुरा चक्रनायिका ॥ ८८ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशा मुक्तारत्नविभूषिता ।
पुस्तकं चाक्षमालां च कमलद्वयमुत्तमम् ॥ ८९ ॥
बिभ्रती सिद्धये ध्येया महापातकनाशिनी ।
त्रिवृत्तं चन्द्रसूर्याग्निस्वरूपं विद्धि पार्वति ॥ ९० ॥

विष्णु रेखा में ब्रह्माणी आदि[1] स्थित हैं । ब्रह्माणी रक्त वर्ण की तथा चार मुखों से सुशोभित है । उसके हाथ में वरद अभय मुद्रायें कण्डलु तथा अक्षमाला है । माहेश्वरी श्वेतवर्ण की, तीन नेत्रों वाली, हाथों में त्रिशूल धारण की हुई, कृपाण मृगचर्म परशु ली हुई है । इस (= माहेश्वरी) का भेद परमगुह्य है । इस समय संक्षेप में कहा जा रहा है । महालक्ष्मी पीतवर्ण की है । वह परमेश्वरी हाथों में दो कमल दर्पण और मातुलुङ्ग (= जम्भीरी नीबू) ली हुई हैं । शिव रेखा में सङ्क्षोभिणी आदि स्थित हैं । रक्त वर्ण की सङ्क्षोभिणी आदि हाथ में अपनी-अपनी मुद्रायें धारण की हुई हैं । सर्वसमृद्धि के लिये इन प्रकट योगिनियों का साधक को ध्यान करना चाहिये । चक्र की नायिकास्वरूपा त्रिपुरसुन्दरी का अणिमा आदि के साथ ध्यान करना चाहिये । यह शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ, मुक्ता तथा रत्नों आदि से विभूषित हैं । हाथों में पुस्तक अक्षमाला दो कमलों को धारण करने वाली महापातकनाशिनी इस देवी का सिद्धि प्राप्ति के लिये ध्यान करना चाहिये । हे पार्वति! अब चन्द्र सूर्य अग्निरूप त्रिवृत्त को जानो ॥ ८३-९० ॥

सर्वाशापूरकचक्रवर्णनम्

सर्वाशापूरके चक्रे रविवेददलान्विते ।
ब्रह्माणं चिन्तयेत्तत्र स्त्रवत्पीयूषवर्षिणी ॥ ९१ ॥
कामाकर्षणिकाद्यास्तु षोडशस्वरसंयुताः ।
सृणिपाशधराः सर्वा रूपेणापीह तत्समाः ॥ ९२ ॥
एतास्तु गुप्तयोगिन्यो ध्येयाः सर्वसमृद्धिदाः ।
कामाकर्षणिकाग्रे तु त्रिपुरेशी व्यवस्थिता ॥ ९३ ॥

---

[1] १. ब्रह्माणी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणी, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी ये आठ हैं, इनकी विष्णुरेखा में पूजा होती है।

त्रिपुरासदृशी ध्येया त्रिपुरेशी वरानने ।

सर्वाशपूरक चक्र का वर्णन—रवि = १२, वेद = ४ अर्थात् १६ दलों वाले सर्वाशापूरक चक्र में ब्रह्मा का ध्यान करना चाहिये । इसके अतिरिक्त कामाकर्षणिका आदि गुप्त योगिनियों[1] का भी ध्यान करना होता है । उनके ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—वे निरन्तर अमृत की वर्षा करती रहती हैं । हाथों में सृणि (= अङ्कुश) और पाश धारण किये रहती हैं । उनका रूप भी वैसा अर्थात् अङ्कुश के समान है । ये सब प्रकार की समृद्धि देने वाली हैं । कामाकर्षिणी के आगे त्रिपुरेश्वरी स्थित रहती हैं । हे वरानने! त्रिपुरेशी का ध्यान त्रिपुराभैरवी के समान करना चाहिये ॥ ९१-९३- ॥

सर्वसङ्क्षोभणचक्रवर्णनम्

अष्टपत्रं वरारोहे जपाकुसुमसन्निभम् ॥ ९४ ॥
सर्वसङ्क्षोभ(नं?णं) नाम सर्वकामफलप्रदम् ।
चिन्तयित्वा शिवं तत्र वर्गाष्टकसमन्विताः ॥ ९५ ॥
अनङ्गकुसुमाद्यास्तु स्मृता गुप्ततराश्च ताः ।
सुन्दरीसदृशाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ९६ ॥
अनङ्गकुसुमाग्रे तु ध्येया त्रिपुरसुन्दरी ।
सर्वालङ्कारसम्पन्ना पुस्तकं चाक्षमालिकाम् ॥ ९७ ॥
वराभयौ च दधती बन्धूककुसुमप्रभा ।

सर्वसङ्क्षोभण चक्र का वर्णन—हे वरारोहे! सर्वसङ्क्षोभण चक्र आठ दलों का तथा जपाकुसुम के रंग का एवं सर्वकामफलप्रद है । इसमें शिव का ध्यान करना चाहिये । इसके अतिरिक्त अष्ट वर्ग वाली अनङ्गकुसुमा आदि[2] का भी पूजन करना चाहिये । वे अत्यन्त गुप्त मानी गयी हैं । ये सब त्रिपुरसुन्दरी के रूप वाली तथा सर्वकामफलप्रद हैं । अनङ्गकुसुमा के सामने त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये। यह समस्त अलङ्कारों से अलङ्कृत तथा हाथ में पुस्तक अक्षमाला वरद एवं अभयमुद्रा धारण की हुई है । इसका वर्ण बन्धूकपुष्प के समान है ॥ ९४-९७-॥

---

[1] सोलह दलों में पूजित होने वाली गुप्त योगिनियों के नाम इस प्रकार कहे गये हैं—१. कामाकर्षिणी, २. बुद्ध्याकर्षिणी, ३. अहङ्काराकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षिणी, ५. स्पर्शाकर्षिणी, ६. रूपाकर्षिणी, ७. रसाकर्षिणी, ८. गन्धाकर्षिणी, ९. चित्ताकर्षिणी, १०. धैर्याकर्षिणी, ११. स्मृत्याकर्षिणी, १२. नामाकर्षिणी, १३. बीजाकर्षिणी, १४. आत्माकर्षिणी, १५. मृतशरीराकर्षिणी, १६. त्रिपुरेश्वरी ।

[2] १. अनङ्गकुसुमा, २. अनङ्गमेखला, ३. अनङ्गमदना, ४. अनङ्गमदनातुरा, ५. अनङ्गरेखा, ६. अनङ्गवेगिनी, ७. अनङ्गकुशा, ८. अनङ्गमालिनी ।

सर्वसौभाग्यदचक्रवर्णनम्

सर्वसौभाग्यदे चक्रे दाडिमीकुसुमप्रभे ॥ ९८ ॥
चतुर्दशारके देवि भास्करं परिचिन्तयेत् ।
सर्वसङ्क्षोभणीमुख्याः सम्प्रदायाः स्मृता इमाः ॥ ९९ ॥
सर्वसङ्क्षोभणीशक्तेः पुरस्त्रिपुरवासिनी ।
सुन्दर्याः सदृशी ध्येया सर्वकामफलप्रदा ॥ १०० ॥

सर्वसौभाग्यद चक्र वर्णन—अनार के पुष्प के समान रंग वाले तथा चतुर्दश पत्र वाले सर्वसौभाग्य चक्र में हे देवि! सूर्य का ध्यान करना चाहिये । इसमें सर्वसङ्क्षोभिणी आदि[1] का भी ध्यान करना होता है । ये सम्प्रदाय मानी गयी हैं । सर्वसङ्क्षोभिणी शक्ति के सामने त्रिपुरवासिनी को स्थित समझना चाहिये । साधक को इसका ध्यान त्रिपुरसुन्दरी जैसा ही करना चाहिये । यह सर्वकामफलप्रद बतलाया गया है ॥ ९८-१०० ॥

सर्वार्थसाधक बाह्यदशारचक्रवर्णनम्

सर्वार्थसाधके चक्रे सर्वरक्षाकरे तथा ।
बाह्यारदशकोणे च जपाकुसुमसन्निभे ॥ १०१ ॥
नारायणं प्रपूज्याथ बाह्यारदशके ततः ।
सर्वसिद्धिप्रदामुख्याः कुलकौला इमाः स्मृताः ॥ १०२ ॥
सर्वसिद्धिप्रदाग्रे तु त्रिपुराश्रीर्व्यवस्थिता ।
उद्यद्भानुसहस्राभा दिव्यालङ्कारभूषिता ॥ १०३ ॥
पुस्तकं जपमालां च दधती वरदाभये ।

सर्वार्थसाधक बाह्यदशार चक्र का वर्णन—सर्वार्थसाधक चक्र सब प्रकार से रक्षा करने वाला होता है । यह बाहर की ओर दश कोणों वाला तथा जपाकुसुम के रंग का होता है । इसके मध्य नारायण की पूजाकर बाह्य दश कोणों में सर्वसिद्धिप्रदा आदि[2] की पूजा करनी चाहिये । इनको कुल कौलयोगिनी कहा गया

---

[1] १. सर्वसङ्क्षोभणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणी, ४. सर्वाह्लादिनी, ५. सर्वमोहिनी, ६. सर्वस्तम्भिनी, ७. सर्वजृम्भिणी, ८. सर्ववशङ्करी, ९. सर्वरञ्जनी, १०. सर्वोन्मादिनी, ११. सर्वार्थसाधनी, १२. सर्वसम्पत्पूरणी, १३. सर्वमन्त्रमयी, १४. सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ।

[2] १. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियङ्करी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्नविनाशिनी, ९. सर्वांगसुन्दरी, १०. सर्वसौभाग्यदायिनी ।

है । सर्वसिद्धिप्रदा के आगे त्रिपुराश्री रहती है । यह उगते हुए सहस्रों सूर्य के समान कान्तिवाली, दिव्य अलङ्कारों से अलङ्कृत हाथों में पुस्तक जपमाला वरद एवं अभय मुद्रा धारण की है ॥ १०१-१०३- ॥

अन्तर्दशारचक्रवर्णनम्

अन्तर्दशारचक्रे च पूज्याः सर्वसमृद्धिदाः ॥ १०४ ॥
तथा निग(र्व? र्भ)योगिन्यः सर्वज्ञाप्रमुखाः प्रिये ।
सर्वज्ञापुरतो देवि स्थिता त्रिपुरमालिनी ॥ १०५ ॥
इन्द्रगोपप्रभा देवी पाशाङ्कुशकपालिनी ।
महाभीति(क?ह)रा सम्यक् साधकानां क्षणादियम् ॥ १०६ ॥

अन्तर्दशार चक्र का वर्णन—अन्तर्दशार चक्र[1] में सर्वसमृद्धि देने वाली सर्वज्ञा आदि[2] निगर्भ योगिनियों की पूजा करनी चाहिये । हे देवि! सर्वज्ञा के आगे त्रिपुरमालिनी स्थित है । यह इन्द्रगोप के समान वर्णवाली, हाथ में पाश अङ्कुश कपाल एवं अभय मुद्रा धारण की हुई हैं । यह एक क्षण में साधकों का भय दूर करती है इसका भी ध्यान करना चाहिये ॥ १०४-१०६ ॥

सर्वरोगहरचक्रवर्णनम्

सर्वरोगहरे चक्रे बालार्ककिरणारुणे ।
वशिनीप्रमुखास्तत्र रहस्ययोगिनीर्यजेत् ॥ १०७ ॥
वशिनीप्रमुखा रक्ता वराभयकरान्विताः ।
पुस्तकं जपमालां च दधानाः परमेश्वरि ॥ १०८ ॥
वशिनीपुरतो देवि सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ।
तथा त्रिपुरसिद्धां च ध्यायेद्विषविनाशिनीम् ॥ १०९ ॥
त्रिकोणाग्रविभागस्य दक्षिणे वामके प्रिये ।
चतुष्पथसमायुक्ते बाणचापौ प्रपूजयेत् ॥ ११० ॥
त्रिकोणस्योर्ध्वभागस्य वामदक्षिणयोस्तथा ।
षडध्वरूपयोर्देवि पाशाङ्कुशौ व्यवस्थितौ ॥ १११ ॥

---

[1] इसमें मध्य स्थान में पूज्य देवता का वर्णन नहीं है अतः नारायण को ही पूज्य मानना चाहिये ।

[2] १. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी, ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी, १०. सर्वेप्सितफलप्रदा ।

सर्वरोगहर चक्र का वर्णन—प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान अरुण वर्ण वाले सर्वरोगहरचक्र में वशिनी आदि[१] रहस्य योगिनियों की पूजा करनी चाहिये । हे परमेश्वरी! वशिनी आदि ये योगिनियाँ रक्तवर्ण वाली, हाथों में वरद अभय मुद्रायें पुस्तक एवं जपमाला धारण की हैं । हे देवि! वशिनी के आगे सर्वसिद्धिदा तथा विषविनाशिनी त्रिपुरसिद्धा का ध्यान करना चाहिये । हे प्रिये! त्रिकोण के अग्रभाग के दायें और बायें वाले चतुष्पथयुक्त भाग में बाण और धनुष की पूजा करनी चाहिये । इसी प्रकार त्रिकोण के ऊर्ध्वभाग में षडध्वरूप वाम दक्षिण भाग स्थित पाश और अङ्कुश की पूजा करनी चाहिये ॥१०७-१११॥

सर्वसिद्धिप्रदचक्रवर्णनम्

सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे त्रिकोणे परमेश्वरि ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभे बन्धूककुसुमप्रभे ॥ ११२ ॥
अतिरहस्ययोगिन्यः संस्थिता वीरवन्दिते ।
अग्रकोणे अग्निचक्रे कामरूपे वरानने ॥ ११३ ॥
कामेश्वरी त्रिनेत्रा च तरुणारुणविग्रहा ।
चषकं वरदानं च पाशं चाङ्कुशमेव च ॥ ११४ ॥
दधती परमेशानि ध्येया रुद्रात्मशक्तिका ।
वामकोणे त्रिकोणस्य सूर्यचक्रे महेश्वरि ॥ ११५ ॥
जालन्धरे महापीठे वज्रेश्वरी समीरिता ।
त्रिनेत्रा पूर्णचन्द्रास्या बन्धूककुसुमप्रभा ॥ ११६ ॥
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं चषकं मातुलुङ्गकम् ।
दधती चारुरूपा सा ध्येया विष्ण्वात्मशक्तिका ॥ ११७ ॥
दक्षकोणे त्रिकोणस्य (लो?सो)मचक्रे वरानने ।
पूर्णगिर्यालये देवि कथिता भगमालिनी ॥ ११८ ॥
त्रिनेत्रा तरुणेन्दुमस्ता सिन्दूरारुणविग्रहा ।
पुस्तकं जपमालां च पाशाङ्कुशकमेव च ॥ ११९ ॥
दधती परमेशानी ध्येया ब्रह्मात्मशक्तिका ।
कामेश्वरी पुरोभागे त्रिपुरा(म्ना?म्बा)व्यवस्थिता ॥ १२० ॥

---

[१] १. वशिनी, २. कामेश्वरी, ३. मोदिनी, ४. विमला, ५. अरुणा, ६. जयिनी, ७. सर्वेश्वरी, ८. कौलिनी, ९. वाग्देवता । यहाँ मध्य में वशिनी की तथा शेष आठ कोणों में कामेश्वरी आदि शेष आठ योगिनियों की पूजा करनी चाहिये ।

मालिनीसदृशी ध्येया सर्वकामफलप्रदा ।
अथवा रश्मयः सर्वा देवीरूपेण चिन्तयेत् ॥ १२१ ॥
नवावरणशक्तीनां ध्यानं देव्याः समं यतः ।
निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यबिम्बान्मरीचयः ॥ १२२ ॥
देव्यस्तथा समुत्पन्ना महादेव्याः शरीरतः ।
उड्याणपीठके देवि ब्रह्मचक्रे वरानने ॥ १२३ ॥
परापररहस्याख्या देवी ब्रह्मस्वरूपिणी ।
चक्रेशीमपि तामेव पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ १२४ ॥
स्थितिक्रमेण पूजेयं यन्त्रोद्धारक्रमेण तु ।
सृष्टिक्रमं महद्गुह्यं पूजनं परमेश्वरि ॥ १२५ ॥

सर्वसिद्धिप्रद चक्र का वर्णन—हे परमेश्वरि! त्रिकोणात्मक सर्वसिद्धिप्रद चक्र जो कि सहस्रों उगते हुए सूर्य के समान कान्ति वाला तथा बन्धूक कुसुम के समान है, में, हे वीरवन्दिते!, अति रहस्य योगिनियाँ स्थित रहती हैं । हे वरानने! इसका अग्रकोण अग्निचक्र कहलाता है । इसमें स्थित कामरूप पीठ पर तीन नेत्रों वाली, तरुणारुण शरीरधारिणी कामेश्वरी स्थित रहती हैं । यह चतुर्भुजा है तथा उन हाथों में चषक वरदमुद्रा पाश और अङ्कुश ली हुई हैं । हे परमेशानि! इसका रुद्रशक्ति के रूप में ध्यान करना चाहिये । हे महेश्वरि! त्रिकोण के वामकोण में सूर्यचक्र स्थित है । यहाँ जालन्धर नामक पीठ पर वज्रेश्वरी स्थित कही गयी है । यह तीन नेत्रों वाली, पूर्णचन्द्रानना तथा बन्धूकपुष्प के समान रंग वाली है । छह भुजाओं वाली यह हाथों में पाश अङ्कुश बाण धनुष चषक और मातुलुङ्ग धारण की हुई है (अथवा यह देवी चार भुजाओं वाली है । एक हाथ में पाश और अङ्कुश, दूसरे में धनुष और बाण, तीसरे में चषक और चौथे में मातुलुङ्ग को ग्रहण की हुई है ।) हे वरानने! त्रिकोण के दाँयें कोण में सोमचक्र है । हे देवि! यहाँ स्थित पूर्णगिरि पीठ पर भगमालिनी[१] स्थित है । यह तीन नेत्रों वाली तथा अपने मस्तक पर बालचन्द्र धारण की हुई है । इसका शरीर सिन्दूर के समान अरुण है । यह हाथ में पुस्तक जपमाला पाश एवं अङ्कुश ली हुई है । इस परमेश्वरी का ब्रह्मशक्ति के रूप में ध्यान करना चाहिये । त्रिकोण के सामने त्रिपुराम्बा कामेश्वरी स्थित है । सर्वकामफलप्रदा इस देवी का वर्ण मालिनी के सदृश जानना चाहिये । देवियों के ध्यान के स्थान पर उनके शरीर से निकलने वाली रश्मियों का देवी के रूप में ध्यान करना चाहिये । इन रश्मियों

---

[१] षोडशी का ही दूसरा नाम भगमालिनी है । अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा के पिता इसके उपासक थे । लोपामुद्रा ने उन्हीं से इस देवी के मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की थी ।

का ध्यान देवी के ही ध्यान के समान होता है । जिस प्रकार सूर्य के बिम्ब से किरणें निकलती हैं उसी प्रकार महादेवी के शरीर से ये देवियाँ अविर्भूत होती हैं । हे देवि! हे वरानने! उड्डयान पीठ वाले ब्रह्मचक्र में परापररहस्या नामक देवी स्थित रहती है जो ब्रह्मस्वरूपिणी है । यह सारे चक्रों की स्वामिनी है । उत्तम साधक इसी की पूजा करे । यन्त्रोद्धार क्रम से की जाने वाली यह पूजा स्थितिक्रम से की जाने वाली पूजा बतलायी गयी है । हे परमेश्वरि! सृष्टिक्रम वाला पूजन अत्यन्त गोपनीय है ॥ ११२-१२५ ॥

पार्वत्युवाच—

चक्रमण्डलमाख्यातं न पूजा तत्र मण्डले ।
इदानीं कथयेशान पूजाक्रममनुत्तमम् ॥ १२६ ॥

पार्वती ने कहा—हे ईशान! आपने चक्र मण्डल का वर्णन किया किन्तु उस मण्डल में पूजा की चर्चा नहीं की गयी । अब आप उत्तमोत्तम पूजा क्रम का वर्णन करने की कृपा करें ॥ १२६ ॥

त्रिविधपूजावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूजाक्रममनुत्तमम् ।
यस्य प्रबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रमोदते ॥ १२७ ॥
देव्या नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता ।
परा चैवापरा देवि तृतीया च परापरा ॥ १२८ ॥
चक्रमध्ये समावाह्य पू(ज?ज्य)ते द्रव्यविस्तरैः ।
प्रथमा सा समाख्याता मता पुरन्दरादिभिः ॥ १२९ ॥
मृ(दा?द्वा)सने समासीनः खगसंयमने रतः ।
समकायशिरोग्रीवो नासालोकनतत्परः ॥ १३० ॥
विकल्परूपसङ्कल्पविमुखो भावतत्परः ।
महापद्मवनान्तःस्थां परमानन्दरूपिणीम् ॥ १३१ ॥
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम् ।
तत्तज्ज्ञानमये चक्रे परमात्मस्वरूपिणीम् ॥ १३२ ॥
अर्धमात्रां योनिरूपां बिन्दुत्रिवलयात्मिकाम् ।
परमानन्दपुष्पेण पूजयेदात्मरूपिणीम् ॥ १३३ ॥
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितं स्वात्मपूजनम् ।
उत्तमेयं द्वितीया सा मया निष्पाद्यते सदा ॥ १३४ ॥

परापरा समाख्याता उभयं यत्र विद्यते ।
देवकीसूनुना चेयं निष्पाद्यते सदा प्रिये ॥ १३५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे यन्त्रोद्धारावरणशक्त्यर्चन नामकः पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

* * *

तीन प्रकार की पूजा का वर्णन—ईश्वर ने कहा—हे देवि! मैं पूजा का सर्वोत्तम क्रम बतलाऊँगा, सुनो । इसके प्रकृष्ट ज्ञान से मनुष्य जीवन्मुक्त होकर आनन्दलाभ करता है । देवी की नित्योदिता पूजा तीन प्रकार की कही गयी है । हे देवि! वह परा परापरा और अपरा है । चक्र के मध्य में देवी का आवाहन कर द्रव्य-विस्तार के साथ जब उसकी पूजा की जाती है तब वह इन्द्र आदि के द्वारा प्रथम कोटि की पूजा कही गयी है । साधक जब केवल कोमल आसन पर बैठकर खग (= प्राणवायु) के संयमन में लगा हुआ शरीर शिर और गर्दन को सीधा रखता हुआ अपनी नासिका पर दृष्टि स्थिर किये रहता है, विकल्पों का कथन नहीं करता, देवी की भावना में तत्पर रहता है, महापद्मवन के अन्दर स्थित परमानन्दरूपिणी जगत् को तृप्त करने वाली तत्तद् ज्ञानमय चक्र में परम अमृत की वर्षा करने वाली परमात्मस्वरूपिणी, अर्धमात्रारूपा, योनिस्वरूपा, बिन्दु त्रिवलयात्मिका आत्मरूपिणी देवी की परमआनन्द रूपी पुष्पों तथा इन्द्रियों को तृप्त करने वाले द्रव्यों से पूजा करता है तो यह दूसरी पूजा होती है । मैं इसको प्रतिदिन करता हूँ । जब दोनों प्रकार की पूजा मिश्रित रूप से की जाती है तो यह परापरा पूजा कहलाती है । हे प्रिये! देवकी पुत्र कृष्ण इस पूजा को प्रतिदिन करते हैं ॥ १२७-१३५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपार्वतीश्वरसंवादरूप गन्धर्वतन्त्र के यन्त्रोद्धारआवरणार्चन नामक पञ्चम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

* * *

षष्ठः पटलः

कर्मयोगादिक्रमनिरूपणम्

पार्वत्युवाच—

देव्याः पूजा समाख्याता तृतीया या महेश्वर ।
कथय तां सुरश्रेष्ठ विस्तरेणाधुना प्रभो ॥ १ ॥

पार्वती ने कहा—हे महेश्वर! देवी की जो तीसरी पूजा की चर्चा की गयी, हे सुरश्रेष्ठ! हे प्रभो! उसको आप विस्तार से बतलाइये ॥ १ ॥

देहशुद्धिवर्णनोपक्रमः

ज्ञानेन कर्मणा चेह देहशुद्धिर्द्विधा भवेत् ।
ज्ञानशुद्धिस्त्वया प्रोक्ता कर्मशुद्धिर्न दर्शिता ॥ २ ॥
वि(न्मु?ण्मू)त्रपिच्छलो देहः कथं देवमयो भवेत्।
तन्मे वद महादेव प्रसादसुमुख प्रभो ॥ ३ ॥

देहशुद्धिवर्णन का उपक्रम—इस संसार में देहशुद्धि ज्ञान से और कर्म से; इस प्रकार दो रीति से सम्पन्न होती है । आपने ज्ञानशुद्धि की चर्चा तो की किन्तु कर्मशुद्धि का दिग्दर्शन अभी नहीं कराया । मलमूत्र से भरा हुआ यह पिच्छिल देह कैसे देवमय होता है, हे प्रभो! हे प्रसादसुमुख! हे महादेव! कृपया उसको मुझे बताइये ॥ २-३ ॥

कर्मयोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

ज्ञानेन कर्मणा वापि सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
ज्ञानयोगश्च वक्तव्यः कर्मयोगं शृणु प्रिये ॥ ४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय साधकः स्थिरमानसः ।
पद्मासनसमासीनः प्राणायामपुरःसरः ॥ ५ ॥

ब्रह्मरन्ध्रस्थिते पद्मे सहस्रदलशोभिते ।
विमले पूर्णचन्द्रस्य मण्डले चिन्तयेद् गुरुम् ॥ ६ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेताभरणभूषितम् ।
तादृक्प्रसूनमाल्यादिविभूषितनुं तथा ॥ ७ ॥
पद्मासनसमासीनं सर्वयोगिनिषेवितम् ।
वराभयकरं शान्तं द्विनेत्रं करुणामयम् ॥ ८ ॥
वामोरुगतया शक्त्या रक्तया वामपाणिना ।
धारयन्त्योत्पलं दक्षहस्तेनालिङ्गितं विभुम् ॥ ९ ॥
परमानन्दसंदोहसान्द्रमानसमीश्वरम् ।
आनन्दसान्द्ररक्ताक्षं स्मरेत् स्मितमुखाम्बुजम् ॥ १० ॥

कर्मयोग का वर्णन—सिद्धि ज्ञान से अथवा कर्म से प्राप्त होती है । किसी तीसरे साधन से वह प्राप्त नहीं होती । हे प्रिये! ज्ञानयोग की चर्चा आगे की जायेगी कर्मयोग को सुनो । स्थिरचित्त वाला साधक ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर पद्मासन पर बैठ जाय । प्राणायाम करने के बाद ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल के अन्दर स्वच्छ पूर्ण चन्द्रमण्डल में गुरु का ध्यान करे । (ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है) वे गुरु शुद्ध स्फटिक के समान तथा श्वेत अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं । उनका शरीर उसी प्रकार अर्थात् श्वेत रंग की पुष्पमाला आदि से विभूषित है । पद्मासन लगाकर बैठे हुए वे समस्त योगिजनों से निरन्तर सेवित हैं । उनके हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा है । वे शान्त, दो नेत्रों वाले तथा करुणामय हैं । उनकी बायीं जाँघ पर रक्त वर्ण की तथा अनुरागपूर्ण शक्ति विराजमान है । वह बायें हाथ में रक्तकमल लेकर तथा दाँयें हाथ से परमेश्वर को आलिङ्गित कर बैठे हैं । ऐसे परम आनन्दसमूह से पूरित चित्त वाले, आनन्द से भरित रक्त नेत्रों वाले, स्मयमान मुखमण्डल वाले ईश्वर का स्मरण करना चाहिये ॥ ४-१० ॥

गुरुशक्तिपूजामन्त्रोद्धारः

बालाद्यं भुवनेशानी रमा चैवाथ खेचरी ।
शिवचन्द्रौ मातृकान्तं कालशक्रा(द्यु?म्बु)वह्नयः ॥ ११ ॥
वायुश्च वामकर्णेन योजिता बिन्दुनादिनः ।
(च?व)क्रं कृत्वादिमन्तेषु कर्णे वामाक्षियोजयेत् ॥ १२ ॥
शिवचन्द्रौ त्रिशूलाढ्यौ बिन्दुना परिमण्डितौ ।
चन्द्रशिवौ त्रिशूलाढ्यौ (स्व?स)र्गवन्तौ महेश्वरि ॥ १३ ॥
तस्मात् स्वगुरुनामान्ते आनन्दनाथ चालिखेत् ।

तथा शक्तिपदान्ते वै अम्बापदमतो लिखेत् ॥ १४ ॥
पादुकां पूजयामीति विधिना परिपूजयेत् ।

गुरुशक्तिपूजा-मन्त्र का उद्धार—बालाद्य भुवनेश्वरी रमा खेचरी शिव चन्द्र मातृका का अन्त, काल शक्र अम्बु वह्नि वायु वामकर्ण से योजित बिन्दु नाद, इनमें से वक्र को प्रथम बनाकर वामाक्षि को कर्ण से जोड़ना चाहिये । शिव और चन्द्र को त्रिशूल से संयुक्त कर बिन्दु से अलङ्कृत करना चाहिये । हे महेश्वरि! चन्द्र और शिव को त्रिशूल से संयुक्त कर विसर्गयुक्त करना चाहिये । उसके बाद अपने गुरु के नाम के अन्त में 'आनन्दनाथ' लिखना चाहिये । इसी प्रकार शक्तिपद के अन्त में 'अम्बा' पद लिखना चाहिये । पुनः 'पादुकां पूजयामि' कहकर पूरे मन्त्र के द्वारा गुरु और शक्ति की विधिवत् पूजा करनी चाहिये । (मन्त्र को इस प्रकार समझें—बालाद्य = ऐं, भुवनेश्वरी = ह्रीं, रमा = श्रीं, खेचरी = ह़सखफ्रें, शिव = ह, चन्द्र = स, मातृकान्त = क्ष, काल = म, शक्र = ल, अम्बु = व, वह्नि = र, वायु = य, वामकर्ण = ऊ से योजित बिन्दु नाद अर्थात् ऊं, वक्र अर्थात् खेचरी अर्थात् हसखफ्रें को पहले रखकर उनमें वामाक्षि = ई को जोडना चाहिये । शिव और चन्द्र = हस को, त्रिशूल = औ से अलङ्कृत कर बिन्दु से जोडिये । इस प्रकार हसौं बना । फिर चन्द्र शिव = स्ह् को त्रिशूल से जोड़कर विसर्ग से अलङ्कृत कीजिये तब स्हौः बनता है । इस प्रकार पूरा मन्त्रस्वरूप होगा—ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह स क्ष म ल व र य ऊं हसखफ्रें ईं ऊं हसौं स्हौः अमुकानन्दनाथ (अथवा अमुकाम्बा) पादुकां पूजयामि । इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये) ॥ ११-१४- ॥

लं पृथिव्यात्मना ब्रह्मणा गन्धं कल्पयामि गन्धतन्मात्रात्मने
घ्रा(ण?णेन्द्रियाय) गन्धं गृहाण स्वाहा,
अथाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां योजयेद्गन्धमुत्तमम् ॥ १५ ॥
हं आकाशात्मना सदाशिवेन पुष्पं कल्पयामि शब्दतन्मात्रात्मने
श्रोत्रेन्द्रि (य?याय) शब्दं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगं पुष्पदानं तथैव हि ।
यं वाय्वात्मना ईश्वरेण धूपं कल्पयामि स्पर्शतन्मात्रात्मने
त्वगिन्द्रियाय स्पर्शं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठमध्यमायोगं धूपदानं तथैव हि ॥ १६ ॥
(वं?रं) वह्न्यात्मना रुद्रेण दीपं कल्पयामि रूपतन्मात्रात्मने
चक्षुरिन्द्रियाय रूपं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठाभ्यां महेशानि दीपं दद्यात् समाहितः ।

वं अमृतात्मना विष्णुना नैवेद्यं कल्पयामि रसतन्मात्रात्मने
जिह्वेन्द्रियाय रसं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठानामिकायोगं नैवेद्यं तत्प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥
एवं कुलगुरुं देवि पूजयित्वा विधानतः ।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रणमेत् सिद्धिहेतवे ॥ १८ ॥

(गन्ध पुष्प आदि के समर्पण के मन्त्र निम्नलिखित हैं—) 'लं पृथिव्यात्मना ब्रह्मणा......गृहाण स्वाहा' । यह मन्त्र पढ़कर अङ्गुष्ठा और कनिष्ठा को जोड़कर उससे गन्ध देना चाहिये । इसी प्रकार 'हं आकाशात्मना सदाशिवेन..........गृहाण स्वाहा' कहकर अङ्गुष्ठा और तर्जनी से पुष्प देना चाहिये । 'यं वाय्वात्मना ईश्वरेण. ...गृहाण स्वाहा' कहकर अङ्गुष्ठा मध्यमा को जोड़कर धूप देना चाहिये । 'रं वह्न्यात्मना रुद्रेण.........गृहाण स्वाहा' से दोनों अङ्गूठों को जोड़कर दीप देना चाहिये । 'वं अमृतात्मना विष्णुना.........गृहाण स्वाहा' से अङ्गुष्ठ अनामिका को जोड़कर नैवेद्य देना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार कुलगुरु की विधिवत् पूजा उनके सामने योनिमुद्रा[1] का प्रदर्शन कर लक्ष्य की सिद्धि के लिये प्रणाम कर प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १५-१८ ॥

गुरुप्रार्थनागुरुपूजामाहात्म्यवर्णनम्

नमस्ते भगवन्नाथ शिवाय गुरुरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ॥ १९ ॥
नवाय नवरूपाय परमात्मैकरूपिणे ।
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥ २० ॥
स्वतन्त्राय दया (तृ?क्लृ)प्तविग्रहाय शिवात्मने।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥ २१ ॥
विवेकिनां विवेकाय विम(र्षा?र्शा)य
विम(र्ष?र्शि)नाम् ।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे ॥ २२ ॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः ।
सदा सच्चित्रूपेण विधेहि भवदासनम् ॥ २३ ॥

---

[1] मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद् योनिमुद्रेयमीरिता ॥ मुद्रानिघण्टु ७० ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २४ ॥
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मने ।
अविद्याग्रस्तसंसारसागरोत्तारहेतवे ॥ २५ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ज्ञानं गुरुरेव परं तपः ॥ २६ ॥
अतः सर्वत्र देवेशि गुरुपूजा गरीयसी ।
अन्यदेव सपर्या वा चान्यदेवस्य कीर्तनम् ॥ २७ ॥
गुरुदेवं विना देवि तदग्रे क्रियते यदि ।
तदा नरकमाप्नोति सत्यमेतद्वदाम्यहम् ॥ २८ ॥
पूजिते गुरुपादे वै सर्व(देव?दैव)सुखीभवेत् ।
सर्वेषां मन्त्रतन्त्राणां पितासौ यः सदाशिवः ॥ २९ ॥
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नान्यथा खलु पार्वति ॥ ३० ॥
गुरुपादरजो मूर्ध्नि ध्यात्वा कर्म समारभेत् ।
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुः ॥ ३१ ॥
वराभयकरो नित्यो ब्रह्मरूपी सदानघः ।
जागर्ति परमेशानि निजस्थानप्रकाशकः ॥ ३२ ॥
कुलनाथं परित्यज्य ये शाक्ताःप(रि?र)सेविनः ।
तेषां दीक्षा च यागश्च ह्यभिचाराय कल्पते ॥ ३३ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ।
कुलीनः सर्वविद्यानामधिकारीति गीयते ॥ ३४ ॥
दीक्षाप्रभुः स एवात्र सर्वमन्त्रेषु नापरः ।
गुरुमण्डलपूजां तु कुर्यात् सप्तसु पर्वसु ॥ ३५ ॥

गुरु-प्रार्थना और गुरु-पूजा माहात्म्य का वर्णन—हे भगवन्! हे नाथ! आपको नमस्कार है । गुरु रूपी शिव, विद्यावतार की सिद्धि के लिये अनेक शरीर धारण करने वाले, नवीन, नवीन रूप वाले, परमात्मरूप, समस्त अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान, चिद्घन, स्वतन्त्र, दयापूर्ण शरीर वाले, शिवात्मक, भक्तों के अधीन, भव्यों के भव्य, विवेकियों के विवेक, विमर्श करने वालों के विमर्श, प्रकाशयुक्त लोगों के प्रकाश, ज्ञानियों के

ज्ञानरूप आपको सामने दोनों पार्श्वों, पीछे ऊपर नीचे सब ओर से नमस्कार है। आप मेरे अन्दर सदा सच्चित्‌रूप से अपना आसन ग्रहण कीजिये। जिसने अज्ञानरूपी तिमिरान्धता से युक्त मनुष्य के नेत्रों को ज्ञानरूपी अञ्जनशलाका से उन्मीलित किया उस गुरु को नमस्कार है। अविद्याग्रस्त संसाररूपी सागर को पार करने के साधनस्वरूप ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक आप गुरु को नमस्कार है। गुरु ब्रह्मा हैं गुरु विष्णु और गुरु ही देवाधिदेव महेश्वर हैं। गुरु ही परम ज्ञान एवं गुरु ही परम तप हैं। इसलिए हे देवेशि! सर्वत्र गुरुपूजा अन्य पूजाओं से बढ़कर है। हे देवि! गुरुदेव के विना यदि उनके आगे अन्य देवता की पूजा अथवा कीर्त्तन किया जाता है तो ऐसा करने वाला नरक को जाता है—यह मैं सत्य कह रहा हूँ। गुरु के चरणकमलों की पूजा करने पर पूजक सर्वदा सुखी रहता है। सदाशिव सारे मन्त्र तन्त्रों के पिता हैं। हे प्रिये! जिस मनुष्य की गुरु के प्रति देवता के समान सर्वदा भक्ति रहती है, हे पार्वति! उसके समस्त उद्‌देश्यों की पूर्ति होती है, अन्यथा नहीं होती। इसलिये गुरुचरणों की धूलि का शिर पर ध्यान कर किसी कार्य का प्रारम्भ करना चाहिये। हे परमेशानि! सहस्रार ब्रह्मरन्ध्र में गुरु कपूर के समान धवल स्वरूप वाले, हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा धारण किये हुए, ब्रह्मस्वरूपी, निष्कलुष और अपने स्थान के प्रकाशक के रूप में नित्य जाग्रत रहते हैं। जो शाक्त साधक कुलनाथ अर्थात् कुलगुरु का त्याग कर दूसरे की सेवा करते हैं उनकी दीक्षा एवं यज्ञक्रिया अभिचार का कारण बनती है। इसलिये सब प्रयास कर कुलीन गुरु का आश्रयण करना चाहिये। कुलीन गुरु सारी विद्याओं का अधिकारी कहा जाता है। सारे मन्त्रों के विषय में वही दीक्षा देने का अधिकारी होता है दूसरा नहीं। सात पर्वों (= विशिष्ट अवसरों) पर गुरुमण्डल की पूजा करनी चाहिये ॥ १९-३५ ॥

योगकथनोपक्रमः

देव्युवाच—

विना योगं न सिध्येत कुण्डलीचङ्क्रमः प्रभो।
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो ॥ ३६ ॥
तावन्न किंचित् सिध्येत मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्।
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयै ॥ ३७ ॥
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्रयन्त्रार्चनादयः।
शिववद्विहरेल्लोके अष्टैश्वर्यसमन्वितः ॥ ३८ ॥
योगयोगाद् भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता।
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिर्णयः ॥ ३९ ॥

युक्तात्मा येन विहरेत् स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ ४० ॥
तत् कार्त्स्न्येन परं योगं कथयस्व मयीश्वर ।

योगकथन का उपक्रम—देवी ने कहा—हे प्रभो! विना योग के कुण्डलिनी का चंक्रम अर्थात् जागरण सिद्ध नहीं होता । हे प्रभो! मूलाधाररूपी कमल में जब तक कुण्डलिनी सुप्त रहती है तब तक मन्त्र यन्त्र पूजा आदि कुछ भी सिद्ध नहीं होता । अनेक पुण्यसञ्चय से जब वह देवी जागृत होती है तब मन्त्र यन्त्र पूजा आदि सफल होते हैं । (जिस साधक की कुण्डलिनी जाग जाती है वह) आठ ऐश्वर्यों अर्थात् आठ सिद्धियों से युक्त होकर शिव के समान इस संसार में विचरण करता है । योग के योग से मुक्ति और मन्त्र की अखण्ड सिद्धि होती है । मन्त्र के सिद्ध होने पर परतत्त्व का साक्षात्कार होता है—ऐसा शास्त्रों के तात्पर्य का निर्णय है । हे ईश्वर! जिसके द्वारा योगयुक्त मनुष्य स्वर्ग मर्त्य और पाताल में स्वच्छन्द विचरण करता है और जीवन्मुक्त होकर देहान्त में परम निर्वाण को प्राप्त होता है उस परयोग को मुझको बतलाइये ॥ ३६-४१- ॥

योगयोगाङ्गवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

कथयामि तव स्नेहाद् योगयोग्यासि पार्वति ॥ ४१ ॥
संसारोत्तारणं मुक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ।
योगो हि ललिता देवी निश्चितं विद्धि पार्वति ॥ ४२ ॥
न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवात्मनोश्चाहुर्योगं योगविशारदाः ॥ ४३ ॥
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः ।
तत्समूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरा इमे ॥ ४४ ॥
यो(गज्ञै? गाङ्गै)रेभिर्जित्वै तान्योगिनो योगमाप्नुयुः।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ॥ ४५ ॥
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने ॥ ४६ ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ ४७ ॥
तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ ४८ ॥

दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ।
पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनं तथा ॥ ४९ ॥
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे ॥ ५० ॥
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात् ततः ।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥ ५१ ॥
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायो वसेद्योगो स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ५२ ॥
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ।
वृषणाधः पादपार्ष्णि पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥ ५३ ॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः परिकीर्तितम् ।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली॥ ५४ ॥
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरावथेतरम् ॥ ५५ ॥
ऋजुकायो वसेद्योगी वीरासनमितीरितम् ।

योग और योगाङ्गों का वर्णन—ईश्वर ने कहा—हे पार्वति! तुम्हारे प्रेम के कारण मैं तुमको बतला रहा हूँ क्योंकि तुम योग के योग्य हो । संसार से पार होना मुक्ति है और 'योग' शब्द से यही कही जाती है । योग ही ललिता देवी है—यह निश्चित रूप से जानो । योग न तो आकाश के पीछे, न ही पृथ्वी पर और न रसातल में रहता है । जीवात्मा और परमात्मा की एकता को ही योगविशारद लोग योग कहते हैं । काम क्रोध लोभ मोह मद और मात्सर्य ये छह पृथक-पृथक अथवा उनका समूह, ये सब योग के विघ्नकारक हैं । अधोलिखित योगाङ्गो के द्वारा इनको जीतकर योगी लोग योग को प्राप्त किये । यम निमय आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि इन आठ अङ्गों को योगीलोग योगसाधन के विषय में अङ्ग मानते हैं ।

१. यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धैर्य, सीमित आहार और शौच ये दश यम कहे जाते हैं ।

२. नियम—तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देवता का पूजन, शास्त्रीय सिद्धान्तों का श्रवण, लज्जा, मनन, जप और होम, योगशास्त्रविशारदों ने इन्हें नियम कहा है ।

३. आसन—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन तथा वीरासन—ये पाँच आसन कहे गये हैं । (इनका विशेष विवरण निम्नलिखित है—) दोनों जाँघों के ऊपर पैर के दोनों तलुवों को भली प्रकार रखकर दोनों हाथों से पीछे की ओर दोनों अङ्गूठों को पकड़ना पद्मासन कहा गया है । यह योगियों का अत्यन्त प्रिय आसन है । दोनों पादतलों को जाँघों और घुटनों के अन्तर भली-भाँति घुसाकर रखता हुआ योगी शरीर को सीधा रखता है तो इसे लोग स्वस्तिक आसन कहते हैं । सीवनी (= लिङ्गमणि का सन्धिशोथ) के दोनों ओर दोनों गुल्फों (= टखनों) को स्थिर रूप से रखना एवं पैरों की एड़ियों को अण्डकोष के नीचे दोनों हाथों से बाँध देना, योगियों ने इसे भद्रासन कहा है । दोनों पैरों को क्रम से दोनों जाँघों पर रखकर घुटनों पर हाथों को उनकी उँगलियों के साथ उल्टा कर रखें । यह उत्तम वज्रासन है । जब एक पैर को नीचे कर दूसरे पैर को उरु के ऊपर रखने के साथ शरीर को सीधा रख कर योगी लेटता है तो यह वीरासन कहा गया है ॥ ४१-५५- ॥

इडया कर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ॥ ५६ ॥
धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया ।
सुषुम्नामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥ ५७ ॥
नाड्या पिङ्गलया चैवं रेचयेद्योगवित्तमः ।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ॥ ५८ ॥
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग् द्वादश षोडश ॥ ५९ ॥
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तद्विदुर्बुधाः ।
त(दु?द)पेतं विगर्भं च प्राणायामं परं विदुः ॥ ६० ॥
क्रमादभ्यसतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
मध्यमः क(ल्प?म्प)संयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ॥ ६१ ॥
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यच्छीलनकमिष्यते ।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निराकुलम् ॥ ६२ ॥
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽयमीरितः ।
अङ्गुष्ठगुल्फजानुषु सी(म?व)नीलिङ्गनाभिषु ॥ ६३ ॥
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि ।
भ्रूमध्ये स्तनके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ॥ ६४ ॥
धारणं प्राणमरुतोर्धारणेति निगद्यते ।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना ॥ ६५ ॥

आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ।
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ६६ ॥
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ।
इति ते कथितं देवि कामादिषट्कनाशनम् ॥ ६७ ॥
दुर्लभं विषयासक्तैः सुलभं संयमात्मनाम् ।

४. प्राणायाम[1]—योगी जब इडा नाडी के द्वारा सोलह मात्रा से बाह्य वायु को अन्दर खींचता है और चौंसठ मात्रा से उसे अन्दर रोकता है तथा पिङ्गला नाडी के द्वारा बत्तीस मात्रा से धीरे-धीरे बाहर छोड़ता है तो इसे योगशात्र विशारदजन प्राणायाम कहते हैं । इस प्राणायाम का बार-बार उलट फेर करके अभ्यास करना चाहिये । इसकी मात्रा बारह या सोलह मात्रा के क्रम से बढ़ाई जानी चाहिये (अर्थात् सोलह मात्रा के स्थान पर १६ + १२ = २८ मात्रा इसी प्रकार ६४ + १२ = ७२ करना चाहिये । इसी प्रकार १६ मात्रा से बढ़ाना चाहिये ।) इसे एक बार से प्रारम्भ कर क्रमशः बढ़ाते हुए बारह बार अथवा सोलह बार करना चाहिये । यह प्राणायाम यदि जप ध्यान आदि से युक्त होता है तो उसे विद्वान् लोग सगर्भ प्राणायाम मानते हैं और उनसे रहित को विगर्भ कहते हैं । इस प्राणायाम का क्रमशः अभ्यास करने वाले पुरुष के शरीर में पसीना होने लगता है । यह अधम कोटि का प्राणायाम है । मध्यम प्राणायाम में शरीर में कम्पन होती है और प्राणायाम करने के समय यदि योगी भूमि को छोड़कर ऊपर उठ जाय तो यह उत्तम प्राणायाम होता है । उत्तम प्राणायाम में गुणों की जो प्राप्ति होती है उसे शीलनक कहते हैं ।

५. प्रत्याहार—विषयों में स्वच्छन्द विचरण करने वाली इन्द्रियों को बलपूर्वक उनके विषयों से हटाना प्रत्याहार कहा जाता है ।

६. धारणा—अङ्गूठा गुल्फ जानु सीवनी लिङ्ग नाभि हृदय ग्रीवा कण्ठ लम्बिका नासिका भ्रूमध्य स्तनक (= ललाट?) शिर तथा द्वादशान्त में प्राणवायु को विधिवत् धारण करना धारणा कही जाती है ।

७. ध्यान—एकाग्र एवं चैतन्यान्तरवर्त्ती मन के द्वारा अपने अन्दर अभीष्ट देवता का चिन्तन ध्यान कहलाता है ।

८. समाधि—जीवात्मा और परमात्मा में नित्य समत्व भावना को मुनिलोग समाधि कहते हैं । हे देवि! इस प्रकार तुमको काम आदि छह रिपुओं का नाश

---

[1] इसके अनेक प्रकार योगोपनिषदों में वर्णित हैं ।

करने वाला, विषयी लोगों के द्वारा दुर्लभ और संयमी लोगों के द्वारा सुलभ, अष्टाङ्गयोग बतलाया गया ॥ ५६-६७- ॥

समाधिस्वरूपवर्णनम्

समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति ॥ ६८ ॥
यदि जीवः पराद्भिन्नः कार्य्यतामेति सुव्रते ।
(स्व?अ)चित्त्वं च प्रसज्येत घटवत् परमेश्वरि ॥ ६९ ॥
विनाशित्वं भयं चैव
द्वि(त?ती)या(वि?दि)ति ते श्रुतिः ।
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ॥ ७० ॥
एकः सन् विद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः ।
तस्माद् द्वैतं न मे चास्ति न प्रपञ्चो न सं(स्मृ?सृ)तिः॥ ७१ ॥
यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः ।
तथा भ्रान्तिर्द्विधा प्रोक्ता ह्यात्मजीवेश्वरात्मना ॥ ७२ ॥
नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च ।
न मनो नैव बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः ॥ ७३ ॥
नाहं पृथ्वी न सलिलं न च वह्निस्तथानिलः ।
न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः ॥ ७४ ॥
नहि गन्धो न रूपं च न मायाहं न संसृतिः ।
सदा साक्षिस्वरूपत्वाद् ब्रह्म चैवास्मि केवलः ॥ ७५ ॥
सोऽहं ब्रह्म न संसारी न मत्तोऽन्यत् कदाचन ।
इति विद्यात् स्वमात्मानं समाधिः परिकीर्तितः ॥ ७६ ॥

समाधि के स्वरूप का वर्णन—परमात्मा और जीवात्मा के ऐक्य की संवित् अर्थात् भावना की उत्पत्ति समाधि कही जाती है । हे सुव्रते! यदि जीवात्मा परमात्मा से भिन्न है तो वह कार्य माना जायगा और फिर हे परमेश्वरि! वह घट के समान अचित् (= जड़) हो जायगा । तब वह विनाशी और भयवाला होने लगेगा क्योंकि द्वितीय से भय होता है—यह तुम्हारी श्रुति[1] है । इसलिये जीवात्मा नित्य सर्वव्यापी कूटस्थ[2] एवं दोषरहित है । वह एक होता हुआ भी माया के कारण भ्रमवश भिन्न प्रतीत होता है । स्वरूपतः वह भिन्न नहीं है । इसलिये मेरे

---

[1] १. द्वितीयाद् वै भयं भवति । बृ.उ. १।४।२

[2] २. कूट इव तिष्ठति इति कूटस्थः अर्थात् कूट (= लोहार की निहाई) के समान अपरिवर्तनशील रहता है ।

अन्दर न द्वैत है, न प्रपञ्च और न संसार । जिस प्रकार एक ही आकाश घटाकाश और महाकाश (के रूप में भिन्न) कहा जाता है उसी प्रकार भ्रान्ति जीवात्मा और परमात्मा के भेद से दो प्रकार की कही गयी है । मैं न देह हूँ न प्राण न इन्द्रियाँ न मन, न बुद्धि न चित्त और न अहङ्कार । न मैं पृथ्वी हूँ न जल न अग्नि न वायु और न आकाश । न मैं शब्द हूँ न स्पर्श न रस न गन्ध और न रूप । न मैं माया हूँ न संसार । मैं सर्वदा साक्षीस्वरूप होने के कारण केवल ब्रह्म हूँ । वह मैं ब्रह्म संसारी नहीं हूँ । मुझसे अन्य कोई नहीं है । इस प्रकार जो अपने को जानता है वह समाधि वाला कहा जाता है ॥ ६८-७६ ॥

समाधौ स्वस्वरूपोऽसौ तुरीयस्वर एव हि ।
तुरीयांशः पराशक्तिर्बिन्द्वात्मा ब्रह्म केवलम् ॥ ७७ ॥
प्रज्ञात्मानं वदन्त्येके एकेऽपि ब्रह्म केवलम् ।
जीवमीश्वरभावेन विद्यात् सोऽहमिति ध्रुवम् ॥ ७८ ॥
यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ।
समुद्रे लीयते तद्वज्जगदात्मनि (प्र)लीयते ॥ ७९ ॥
यस्यैवं परमात्मा(स?स्वा)-पृथग्भूतःप्रकाशितः ।
स याति परमं भावं स्वयं साक्षात् परामृतम् ॥ ८० ॥
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वात्मकं सदा ।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम् ॥ ८१ ॥
यदा भूतानि सर्वाणि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते (स?त) दा ॥ ८२ ॥
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ॥ ८३ ॥
यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेव भेषजम् ।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ॥ ८४ ॥
तस्माद्विज्ञानतो मुक्तिर्नान्यथा भवकोटिभिः ।
मन्त्रौषधिबलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम् ॥ ८५ ॥
तद्वत् सर्वाणि कर्माणि जीर्यन्ति ज्ञानिनः क्षणात् ।
देहाभिमाने गलिते विदिते परमात्मनि ॥ ८६ ॥
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ।

समाधि अवस्था में यह योगी अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । यह चतुर्थ स्वर (= ह्रस्व दीर्घ प्लुत की अपेक्षा सूक्ष्मतर) होता है । यह तुरीयांश

पराशक्ति बिन्दुस्वरूप केवल ब्रह्म होता है । कुछ लोग इस अवस्था को प्रज्ञास्वरूप मानते हैं । दूसरे लोग इस स्थिति को केवल ब्रह्म मानते हैं । साधक को चाहिये कि वह जीव को ईश्वर समझे । उस अवधारणा का स्वरूप है—सोऽहम् (= वह मैं हूँ/मैं वह हूँ) । जिस प्रकार समुद्र में उठने वाले फेन लहर इत्यादि पुनः समुद्र में ही लीन हो जाते हैं उसी प्रकार यह जगत् आत्मतत्त्व (से प्रकट होता है और उसी में) लीन हो जाता है । जिस साधक को इस प्रकार परमात्मा अपने से अपृथक् प्रतीत होता है, वह परम भाव को प्राप्त होता है । वह स्वयं साक्षात् परम अमृत हो जाता है । जब योगी के मन में चैतन्य अव्यवहित रूप से विश्वरूप से आभासित होने लगता है तब वह स्वभाव को प्राप्त हो जाता है । योगी जब समस्त प्राणियों को अपने में तथा अपने को समस्त प्राणियों में देखता है तब वह ब्रह्म हो जाता है ।[१] योगी समाधिस्थ होने पर जब समस्त प्राणियों को नहीं देखता तब वह परतत्त्व के साथ एक हो जाता है । तब वह केवली होता है । जब उसका ब्रह्मविज्ञान केवल जन्म वृद्धत्व दुःख और व्याधि की औषधि बनकर रह जाता है तब वह योगी साक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है । इस कारण ब्रह्म विज्ञान से ही मोक्ष लाभ होता है, करोड़ों बार संसार में जन्म लेने से नहीं । जिस प्रकार खाया हुआ विष मन्त्र तथा औषधि के बल से पच जाता है (और खाने वाले की मृत्यु नहीं होती) उसी प्रकार ज्ञानी के समस्त (सञ्चित) कर्म (ज्ञान के प्रभाव से) नष्ट हो जाते हैं (और ज्ञानी उनके संस्कार से प्रभावित नहीं होता) । जब देहाभिमान (अर्थात् यह देह ही मैं हूँ अथवा यह मेरा शरीर है इस प्रकार की धारणा) समाप्त हो जाता है तथा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है तब जहाँ-जहाँ मन जाता है वहाँ-वहाँ उसके लिये समाधि हो जाती है ॥ ७७-८६- ॥

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥ ८७ ॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यं मुक्तस्वभाववान् ।
एवं समाधियुक्तो य समाधये स कल्पते ॥ ८८ ॥
सदाशिवोऽहमित्युक्त्वा स्वेच्छया विहरेद्यतिः ।
लिप्यते न स पापेन बध्यते न च कर्मणा ॥ ८९ ॥
यथाग्निविद्रुतं स्वर्णं मालिन्यं दहति क्षणात् ।
तथा ब्रह्मार्पितात्मासौ सर्वकर्माणि दह्यति ॥ ९० ॥
आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा बहिर्देवान्विचिन्वते ।
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते(?न्ते) काचतृष्णया॥ ९१ ॥

---

[१] तुलनीय—सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ भ.गी. ६।२९

न योगेन न यन्त्रेण न मन्त्रेण विना हि सः (?) ।
द्वयोरभ्यासयोगेन ब्रह्म संसिद्धिकारणम् ॥ ९२ ॥
तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ ९३ ॥
एतत्ते कथितं देवि ब्रह्मज्ञानमिदं महत् ।
विज्ञाय गुरुतो जप्त्वा संसारसागरं तरेत् ॥ ९४ ॥
यत्र यत्र मृतश्चायं गङ्गायां श्वपचालये ।
ब्रह्मविद् ब्रह्मभूयाय कल्पते नान्यथा प्रिये ॥ ९५ ॥

योगी को चाहिये कि वह—'मैं ब्रह्म हूँ दूसरा नहीं, मैं मुक्त हूँ' ऐसी भावना करता रहे । 'मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ नित्य मुक्त स्वभाव वाला हूँ' इस प्रकार की समाधि से जो युक्त होता है वह समाधि लगाने में समर्थ होता है । 'मैं सदाशिव हूँ' ऐसा कहकर जो यति स्वेच्छापूर्वक विहार करता है वह न तो पाप से लिप्त होता है और न कर्म के कारण बन्धन में पड़ता है । जिस प्रकार अग्नि में पिघलाया गया सोना एक क्षण में अशुद्धि को जला देता है उसी प्रकार अपने को ब्रह्म के लिये समर्पित करने वाला यह यति सारे कर्मों को जला देता है । अपने अन्दर स्थित देवता को छोड़कर जो लोग बाहरी देवता की आराधना करते हैं वे हाथ में स्थित कौस्तुभमणि को छोड़कर शीशा को प्राप्त करने के लिये इधर-उधर भटकते हैं । योग यन्त्र और मन्त्र के विना वह योगी ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । किन्तु (मन्त्र और ध्यान) दोनों के अभ्यास से सिद्धि मिलती है । अन्धकार से भरे घर में घट को दीपक से देखा जाता है । इसी प्रकार माया से आवृत आत्मा का साक्षात्कार मन्त्र से होता है । हे देवि! तुमको यह महान् ब्रह्मज्ञान बतलाया । गुरु से मन्त्र की दीक्षा लेकर उसका जप कर साधक संसारसागर के पार जाता है । हे प्रिये! यह जापक चाहे गङ्गा में प्राणत्याग करे अथवा चाण्डाल के घर में, ऐसा ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म हो जाता है । अन्य उपायों से ऐसा नहीं होता ॥ ८७-९५ ॥

शरीरस्थनाडीषट्चक्रवर्णनम्

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं प्रिये ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैकरूपकम् ॥ ९६ ॥
तिस्त्र कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः॥ ९७ ॥
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥ ९८ ॥

इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी।
पिङ्गलाख्या च या दक्षे पुंरूपा सूर्यविग्रहा ॥ ९९ ॥
दाडिमीकुसुमप्रख्या विषाख्या चापरा मता ।
मेरुमध्यस्थिता या तु मूलादाब्रह्मरन्ध्रगा ॥ १०० ॥
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ॥ १०१ ॥
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा ।
विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ॥ १०२ ॥

शरीरस्थ नाडी एवं षट्चक्र का वर्णन—हे प्रिये! यह पञ्चभूतनिर्मित शरीर ही विश्व कहा जाता है । चन्द्र सूर्य अग्नि रूप तेज से समन्वित यह जीवरूपी ब्रह्म वाला है । इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ स्थित मानी गयी हैं । उनमें दश मुख्य हैं । उन दश में भी तीन सर्वप्रमुख हैं । इनमें सर्वप्रधान नाडी मेरुदण्ड में स्थित है । ये तीनों नाड़ियाँ चन्द्र सूर्य और अग्नि रूप हैं । वह अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी शक्तिरूपा है । जो साक्षात् अमृतरूपा है वह इडा नाडी मेरुदण्ड के बायें भाग में स्थित है । यह नाडी शुक्ल वर्ण की तथा चन्द्ररूपिणी है । पिङ्गला नाडी जो कि मेरुदण्ड के दायें पार्श्व में स्थित है, पुरुषरूपा तथा सूर्यविग्रहा है । यह अनार के फूल के रंग की है । दूसरी अर्थात् पिङ्गला नाडी साक्षात् विष कही गयी है । जो मेरु के अन्दर स्थित है तथा मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है; सर्वतेजोमयी वह सुषुम्ना है जो कि अग्निरूपिणी है । उस सुषुम्ना के मध्य में एक विचित्रा नाम की नाडी है । यह अमृतस्राव करने वाली शुभ नाडी सर्वदेवमयी और योगियों की अत्यन्त प्रिय है । यह विसर्ग से लेकर बिन्दु पर्यन्त व्याप्त होकर विराजमान है ॥ ९६-१०२ ॥

मूलाधारे त्रिपुराख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ १०३ ॥
तदूर्ध्वे तत्तुरीयं तु ध्यायेद्बन्धूकसन्निभम् ।
तदूर्ध्वे तच्छिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ॥ १०४ ॥
सा एव हि परा सूक्ष्मा महात्रिपुरसुन्दरी ।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्म यदुच्यते ॥ १०५ ॥

इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक त्रिपुर नामक मूलाधार के मध्य में कोटिसूर्य के समान कान्ति वाला स्वयम्भू लिङ्ग है । उस लिङ्ग के ऊपर तुरीय (= इच्छा ज्ञान क्रिया से परे चतुर्थ) रूप का ध्यान करना चाहिये । इसका रंग बन्धूक के समान है । उसके ऊपर उसकी शिखा के आकार वाली कुण्डलिनी शक्ति है जिसका शरीर

रक्तवर्ण का है । वही परा सूक्ष्मा महात्रिपुरसुन्दरी है । यही समस्त प्राणियों का चैतन्य और शब्दब्रह्म कही जाती है ॥ १०३-१०५ ॥

तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् ।
सर्वतेजोमयं तत्तु सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ १०६ ॥
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं (रं?व)सवर्णं चतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ॥ १०७ ॥
तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
बादिलान्तषडर्णेन युक् स्वाधिष्ठानसंज्ञकम् ॥ १०८ ॥
मूलमाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ १०९ ॥
तदूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महत् पुरम् ।
हेमाभं वैद्युताभं च बहुतेजोमयं तथा ॥ ११० ॥
मणिवद्भिन्नं तत्पूरं मणिपूरं ततो विदुः ।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ॥ १११ ॥
विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकनकारणम् ।

उस चैतन्य भूत शब्दब्रह्म को प्राप्त कर अपने शरीर में उसकी भावना करनी चाहिये । वह इस प्रकार—वह चैतन्य प्राणियों के देह के मध्यभाग में अर्थात् लिङ्ग के ऊपर और नाभि के नीचे कुण्डलिनी रूप में स्थित है। वह सर्वतेजोमय, सच्चिदानन्द स्वरूप और अव्यय है । उसके बाहर अर्थात् ऊपर सोने के रंग का चार दलों वाला कमल है । जिसके दलों पर वस अर्थात् व श ष स चार वर्ण स्थित हैं । (इसे मूल आधार कहते हैं) । उसके ऊपर अग्नि के समान आभा वाले छह दलों से युक्त हीरे जैसी चमक वाला कमल है । इसके छह दलों में बादिलान्त अर्थात् ब भ म य र ल ये छह वर्ण स्थित हैं । इस कमल का नाम स्वाधिष्ठान चक्र है । पूर्ववर्णित चक्र चूँकि सारे आधार भूत छह चक्रों का मूल है अतः उसे मूलाधार चक्र कहते हैं । स्व-अधिष्ठान पद में 'स्व' का अर्थ है—परलिङ्ग । चूँकि यह चक्र परलिङ्ग का अधिष्ठान अर्थात् स्थितिस्थल है अतः उसे विद्वान् लोग स्वाधिष्ठान के नाम से जानते है । इसका स्थितिस्थान मूत्राशय के पास नाभि के नीचे पेल्विक प्रदेश है । उसके ऊपर नाभि प्रदेश में मणिपूर नामक महापुर है । यह सोने जैसी आभा वाला साथ ही विद्युत् की कान्ति से युक्त अत्यन्त तेजोमय स्थान है । चूँकि यह मणि के समान भिन्न अर्थात् अन्य चक्रों से पृथक् तथा कठिनाई से भेदन करने योग्य है अतः इसको मणिपूर कहा जाता है । यह चक्र दश दलों वाले कमल से युक्त है और उन दलों पर ड ढ

ण त थ द ध न प और फ—ये दश वर्ण हैं । इस कमल पर विष्णु विराजमान हैं । यह विश्वदर्शन का कारण है अर्थात् इस चक्र का भेदन करने पर योगी को सम्पूर्ण विश्व का करामलकवत् साक्षात्कार होता है ॥ १०६-१११- ॥

तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ११२ ॥
कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्च समलंकृतम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ११३ ॥
शब्दब्रह्ममयः शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
अनाहताख्यं तत्पद्मं योगिभिः परिकीर्त्यते ॥ ११४ ॥
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ।
तदूर्ध्वे तु विशुद्धाख्यं दलैः षोडशभिर्युतम् ॥ ११५ ॥
स्वरैः षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णं महत्प्रभम् ।
विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥ ११६ ॥
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ॥ ११७ ॥
हक्षादिद्विदलं पद्मं चन्द्रेणाधिष्ठितं तु तत् ।
आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ॥ ११८ ॥
कैलासाख्यं तदूर्ध्वे तु बोधिनी तु तदूर्ध्वतः ।
सहस्राराम्बुजं देवि बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वतः ॥ ११९ ॥

उस मणिपूर के ऊपर अनाहत चक्र हैं जो कि उगते हुए सुर्य के समान अत्यन्त अरुण वर्ण का है । यहाँ जो कमल हैं वह क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट और ठ इन बारह अक्षरों वाला है । इस अनाहत चक्र के मध्य में दश हजार सूर्य के समान प्रभा वाला बाणलिङ्ग है । वहाँ अनाहत शब्दब्रह्म स्थित है। उस कमल चक्र को योगी लोग अनाहत कहते हैं । वह आनन्द का आगार एवं पुरुष अर्थात् ईश्वर से अधिष्ठित है । उसके ऊपर विशुद्ध नामक चक्र है जो षोडश दल कमल वाला है । उसके दलों में सोलह स्वर (= अ आ.........अं अः) रहते हैं । इसका रंग धूम जैसा है तथा यह महाकान्ति वाला है । चूँकि हंस अर्थात् सूर्य का अवलोकन करने से यह जीव की विशुद्धि का विस्तार करता है अतः इसे विशुद्ध पद्म कहा गया है । यह महा अद्भुत आकाश तत्त्व है । इसके ऊपर आज्ञाचक्र है । जिसका अधिष्ठाता आत्मा है । यहाँ द्विदल पद्म है । (ऊपर नीचे दल वाले) इस पद्म के दोनो दलों में ह और क्ष वर्ण स्थित है । यह कमल चन्द्र से अधिष्ठित है । यहाँ जो आज्ञा का संक्रमण होता है वह गुरु की

आज्ञा होती है। आज्ञा चक्र के ऊपर कैलास और उसके ऊपर बोधिनी स्थित है। हे देवि! उसके ऊपर सहस्र दल कमलों वाला बिन्दु स्थान है ॥ ११२-११९ ॥

योनिमुद्राबन्धवर्णनम्

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः ।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ॥ १२० ॥
लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुस्थानं समानयेत् ।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकी(भाव?भूतां) विचिन्तयेत्॥ १२१ ॥
तदुद्भवामृतं वक्त्रद्रुतं लाक्षारसोपमम् ।
पाययित्वा च तां शक्तिं परोक्षां योगसिद्धिदाम् ॥ १२२ ॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः ॥ १२३ ॥
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।
एवमभ्यस्यमानं तु अहन्यहनि पार्वति ॥ १२४ ॥
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनैः ।
इत्युक्तं परमं योगं योनिमुद्राप्रबन्धनम् ॥ १२५ ॥

योनिमुद्रा बन्धन—सबसे पहले पूरक प्राणायाम के द्वारा मन को मूलाधार में लगाना चाहिये। फिर उस शक्ति को गुदा और लिङ्ग के बीच सङ्कुचित कर उसका प्रबोधन करना चाहिये। फिर लिङ्गभेद के क्रम से उस शक्ति को ऊपर बिन्दुस्थान में ले जाना चाहिये। फिर वह शक्ति शिव के साथ अभिन्न हुई है—ऐसी भावना करनी चाहिये। तत्पश्चात् उस योग के कारण उसके मुख से द्रुत अमृत, जो कि लाक्षारस के समान है, को उस योगसिद्धिदायिनी शक्ति को पिलाने के बाद अमृतधारा से छह चक्रों में स्थित देवताओं को तृप्त कर जिस मार्ग से शक्ति को बिन्दु तक ले जाया गया था उसी मार्ग में विद्वान् पुनः उसको मूलाधार तक ले आये। इस पद्धति से बार-बार कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से बिन्दु और बिन्दु से मूलाधार तक यातायात कर उसमें मन को लीन कर देना चाहिये। हे पार्वति! इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास कर साधक संसार के बन्धन तथा जरा एवं मृत्यु से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार तुमको योनिमुद्रा बन्ध नामक परमयोग बतलाया गया ॥ १२०-१२५ ॥

अन्यविधसमाधिवर्णनम्

अथापरं प्रवक्ष्यामि समाधिं भवनाशनम् ।
अथवा परमेशानि यथोक्तध्यानयोगतः ॥ १२६ ॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये ध्यायेद्देवीमनन्यधीः ।
त्रिपुरात्मकमात्मानं भावयेन्न्यस्तविग्रहः ॥ १२७ ॥
ऐक्यं सम्भावयेन्नित्यं स्वगुरुदेवतात्मनाम् ।
अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ १२८ ॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहं शुद्धबुद्धस्वभाववान् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तदिति परतस्ततः ॥ १२९ ॥
सदिति तु समालोच्य कर्म कुर्याद्विचक्षणः ।
स्मरणात् कर्मणामाद्ये ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १३० ॥
सर्वमङ्गलसम्पन्नो बहिर्निर्गत्य साधकः ।
त्य(क्त?क्त्वा)मूत्रपुरीषे च करपादौ विशोधयेत्॥ १३१ ॥
मुखं प्रक्षाल्य देवेशि नासारन्ध्रद्वयं ततः ।
नेत्राञ्जनं विधायैव शुद्धस्थानं समाश्रयेत् ॥ १३२ ॥
नेत्राञ्जनमकृत्वैव यः पश्येत् सौरमण्डलम् ।
जन्मार्जितफलं नश्येत् का कथा तस्य दुर्मतेः ॥ १३३ ॥
त्रितत्त्वेन त्रि(धा?रा)चम्य दन्तधावनमाचरेत् ।
दन्तकाष्ठम(था?खा)दित्वा पूजयेद्यस्तु देवताम् ॥ १३४ ॥
तत्पूजा विफला देवि मृते च नरकं व्रजेत् ।
क्लीमात्मकं कामदेवं सर्वान्ते जनमालिखेत् ॥ १३५ ॥
प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये ।
चतुर्दशस्वरैर्वक्त्रं क्षालयेच्छुद्धिहेतवे ॥ १३६ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कर्मयोगादिक्रमनिरूपण नामकः षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

* * *

अन्य प्रकार की समाधि का वर्णन—अब मैं जन्म एवं संसार की नाशक अन्य समाधि का वर्णन करूँगा । हे परमेशानि! दूसरा विकल्प यह है कि पूर्वोक्त ध्यानयोग के द्वारा हृदयकमल की कर्णिका के मध्य एकत्रित होकर साधक देवी अर्थात् शक्ति का ध्यान करे और अपना शरीर से पृथक शिव रूप में ध्यान करे । साथ ही अपना गुरु एवं देवता आदि से अभिन्न के रूप में ध्यान करे । ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—मैं देव हूँ दूसरा कुछ नहीं । मैं ब्रह्म नहीं हूँ,

शोक का भागी नहीं । मैं शुद्ध बुद्ध स्वभाव वाला सच्चिदानन्द हूँ । इसके बाद विद्वान् 'ओं तत्सत्' की भावना कर कर्म करे । हे आद्या शक्ति! इस प्रकार कर्म का स्मरण करने वह साधक ब्रह्म हो जाता है । सर्वमङ्गल से सम्पन्न हुआ वह साधक घर से बाहर निकल कर मलमूत्र का त्याग कर हाथ पैर का शोधन करे । हे देवेशि! उसके बाद मुख तथा दोनों नासारन्ध्र का प्रक्षालन कर आँखों में अञ्जन लगाकर शुद्ध स्थान में चला जाय । जो साधक नेत्रों में अञ्जन लगाये विना सौरमण्डल का दर्शन करता है उसका इस जन्म में अर्जित शुभ फल नष्ट हो जाता है फिर उस दुर्मति का क्या कहना । तीन तत्त्व (= पृथिवी जल तेज) से तीन बार आचमन कर दन्तधावन करना चाहिये । जो मनुष्य विना दन्तधावन किये देवता की पूजा करता है हे देवि! उसकी वह पूजा निष्फल हो जाती है और मरने पर वह नरक में जाता है । दन्तधावन का मन्त्र इस प्रकार जानना चाहिये—पहले 'क्लीं' लिखकर फिर 'जन' लिखना चाहिये । तत्पश्चात् 'प्रियाय' लिखकर अर्थात् कहकर हृदय कहना चाहिये । (मन्त्र का स्वरूप—क्लीं जनप्रियाय नमः) । इसके पश्चात् अकारादि चौदह स्वरों का उच्चारण करते हुए शुद्धि के लिये मुख का प्रक्षालन करना चाहिये ॥ १२६-१३६ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद रूप कर्मयोगादिक्रम-
निरूपण नामक षष्ठ पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

* * *

सप्तमः पटलः

स्नानसन्ध्योपासनादिविधानम्

शङ्कर उवाच—

प्रातः स्नानं ततः कुर्यात् त्रैपुरं योजयन् क्रमम् ।
सुगन्धिसलिलैः शुद्धैः कुलतीर्थेऽथवा पुनः ॥ १ ॥

सन्ध्यादिदैनन्दिनकृत्यवर्णनम्

नद्यादौ विधिवत् स्नायात् कुलदर्भविधा(य?र)कः ।

कुलदर्भलक्षणम्

रौप्यं दक्षिणतर्जन्यामनामा हेमसंयुता ॥ २ ॥
वामकनिष्ठिका हेमैः कुलदर्भोऽयमीरितः ।
एष एव भवेद्दर्भो न दर्भो वनसम्भवः ॥ ३ ॥
अशून्यं तु करं कुर्याद्वह्नीन्द्वर्कप्रतिष्ठया ।
सर्वभूतवशी स स्यान्मुद्रया चातिशोभया ॥ ४ ॥
त्रितत्त्वेन त्रि(धि?रा)चम्य सङ्कल्प्य पापनुत्तये ।
कुलपात्रे सरत्नं च सतिलं सजलं ततः ॥ ५ ॥
गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् ।
अस्नातस्य फलं नास्ति तथातर्पयतः पितृन् ॥ ६ ॥
इदं विष्णुभैरवं तु विचक्रम इतीरितम् ।
मृदालम्भनकृत्ये च नित्यमेवमुदीरयेत् ॥ ७ ॥

सन्ध्या आदि नित्य कृत्य का वर्णन—इसके पश्चात् त्रिपुरक्रम (=) की योजना करते हुए प्रातः स्नान करना चाहिये । इस क्रम में साधक या तो सुगन्धित शुद्ध जल से स्नान करे अथवा कुलदर्भ धारण कर कुलतीर्थ या नदी आदि में विधिवत् स्नान करे । दाँयें हाथ की तर्जनी में चाँदी, अनामिका में सोना

और बाँयें हाथ की कनिष्ठा में सोना धारण करना—यह कुलदर्भ कहा गया है । यही दर्भ है न कि जङ्गल में उत्पन्न होने वाली कुश नामक घास द्वारा हाथ में अग्नि चन्द्रमा और सूर्य की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये । इस अत्यन्त शोभन मुद्रा से साधक समस्त प्राणियों को वश में करने वाला हो जाता है । तीन तत्त्व से तीन बार आचमन कर तथा अपने पाप को दूर करने के लिये सङ्कल्प करने के बाद साधक कुलपात्र में तिल जल और रत्न लेकर कुलदेवता को प्रसन्न करने के लिये स्नान करे । जो व्यक्ति स्नान नहीं करता तथा जो पितृतर्पण नहीं करता उसको किसी काम्य कर्म का फल नहीं मिलता । मिट्टी के लेपन के कर्म में सर्वदा 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्यपांसुरे स्वाहा' मृदालम्भन कृत्य इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥ १-७ ॥

कुलचक्रं जलं न्यस्य कुलमुद्रां विधाय च ।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥ ८ ॥
आवाहयामि देवि त्वां स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
आवाह्याम्भसि संयोज्य सोमसूर्याग्निमण्डलम् ॥ ९ ॥
संचिन्त्य मन्त्री तन्मध्ये ध्यायेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ।
गायत्र्या च महादेव्याः सुन्दरीमाह्वयेच्छिवाम् ॥ १० ॥
त्रिवारम(जनौ?ज्जने) वारिमूलमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
अभिषिञ्चेत् ततो मूर्ध्नि मूलमन्त्रं हृदि स्मरन् ॥ ११ ॥
त्रिभिस्तु त्रिपुराबीजैस्त्रिधा मज्जनमाचरेत् ।
तस्मादुत्थाय देवेशि निर्मुक्ताशेषविग्रहः ॥ १२ ॥
त्र्यक्षरीं च समुच्चार्य दुकूले परिधापयेत् ।
सकेशं मूषिकाक्रान्तमधौतं भग्नमम्बरम् ॥ १३ ॥
मलिनं परकीयं च पर्युषितं च वर्जयेत् ।
तिलकं कुलरूपं च कृत्वाचम्य विधानतः ॥ १४ ॥

जल में कुलचक्र का न्यास करने के बाद कुलमुद्रा का प्रदर्शन कर 'एहि गङ्गे..........सुन्दरि' (हे गङ्गे! आओ, हे समस्त तीर्थों से युक्त गङ्गे! तुमको नमस्कार है । हे सुन्दरि! मैं स्नान के लिये इस जल में तुम्हारा आवाहन कर रहा हूँ ।) इस प्रकार जल में गङ्गा का आवाहन कर उस जल में सोम सूर्य और अग्नि मण्डल का संयोग का ध्यान कर मन्त्रवेत्ता उस जल के मध्य त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करे । इसके पश्चात् महादेवी अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी की गायत्री से शिवा नामक सुन्दरी अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करे । मूलमन्त्र से तीन बार जल में डुबकी लगाये । तत्पश्चात् हृदय में मूलमन्त्र का स्मरण करते हुए शिर पर जल छिड़के । इसके बाद तीन त्रिपुराबीज (= ह्ल्क्षौं) से तीन बार जल में

डुबकी लगाये । हे देवेशि! जल से निकलकर सारे वस्त्रों को उतार कर त्र्यक्षरी (= ओऽम्) का उच्चारण कर दो वस्त्र धारण करे । सकेश अर्थात् बाल लिपटा हुआ, चूहे के द्वारा काटा गया, पहनने के बाद न धोया गया, फटा हुआ, गन्दा, दूसरे के द्वारा उपयुक्त और पुराना बासी कपड़ा नहीं पहनना चाहिये । अपनी परम्परा के अनुसार तिलक कर विधिवत् आचमन करने के बाद साधक पाप को नष्ट करने के लिये सन्ध्या करे ॥ ८-१४ ॥

स्नानसन्ध्ययोस्त्रैविध्यम्

ततः संध्यामुपासीत पापहानाय साधकः ।
स्नानं च त्रिविधं प्रोक्तं संध्या च त्रिविधा स्मृता ॥ १५ ॥
आन्तरं च भवेद्देवि बाह्यं मानसमेव च ।
मानसं वै भवेत् स्नानं यः सदा शुद्धमानसः ॥ १६ ॥
स्पर्श(?स्पृश)ते पादुके देवि निर्विकल्पः सदैव हि ।
बाह्यमन्त्रैश्च सम्प्रोक्तमान्तरं शृणु साम्प्रतम् ॥ १७ ॥
प्रागुक्तक्रमयोगेन प्राणायामपरो बुधः ।
शक्तिं परशिवेनैव सङ्गमय्य विधानतः ॥ १८ ॥
तदुद्भवामृते शश्वन्निमज्य पुनरेव हि ।
स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते ॥ १९ ॥
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।
आत्मानं सर्वदा सम्यग् ध्यायेद्ध्यानपरायणः ॥ २० ॥
देवताभेदतः सन्ध्या मानसीयं परा प्रिये ।
शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते ॥ २१ ॥
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते ।
अपरां कथयाम्यत्र सर्वपापविनाशिनीम् ॥ २२ ॥
उपविश्य शुचौ देशे त्रितत्त्वेन त्रिराचमेत् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा त्रिभिर्बीजैस्त्रिधावि(ध?धि)म् ॥ २३ ॥
वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकबिन्दुभिः ।
सप्तधा प्रोक्षणं कुर्यान्मूर्ध्नि मन्त्रमनुस्मरन् ॥ २४ ॥
अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य साधकः ।
नासामाश्लिष्य तोयेन ततस्तेनाघमर्षणम् ॥ २५ ॥

स्नान एवं सन्ध्या के तीन भेद—स्नान तीन प्रकार का कहा गया है । सन्ध्या भी तीन प्रकार की मानी गयी है । हे देवि! स्नान आन्तर, बाह्य और

मानस तीन प्रकार का होता है । **मानस स्नान**—हे देवि! जो सर्वदा शुद्ध चित्त वाला है, सदा विकल्परहित है । वह जब पादुका (= गुरु के खड़ाऊँ) का स्पर्श करता है तो इस प्रक्रिया को मानस स्नान कहते हैं । **बाह्य स्नान**—बाह्य स्नान मन्त्रों के द्वारा किया गया होता है । अर्थात् मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो जलस्नान किया जाता है उसे बाह्य स्नान कहते हैं । अब आन्तर स्नान को सुनो । **आन्तर स्नान**—पूर्वोक्त क्रम वाले योग के अनुसार विद्वान् प्राणायाम करते हुए विधिपूर्वक शक्ति का शिव से सङ्गम कराने के बाद उन दोनों के सङ्गम से उत्पन्न अमृत में निरन्तर स्नान कर पुनः हृदय में स्थित पुष्कर तीर्थ में अथवा बिन्दु तीर्थ में स्नान करे । दोनों में से किसी भी तीर्थ में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता । **परा (मानसी) सन्ध्या**—साधक ध्यानपरायण होकर सदा अपनी आत्मा का ध्यान करे । हे प्रिये! देवता के अभेद से यह मानसी सन्ध्या कही जाती है । तात्पर्य यह है कि जिस साधक की जो इष्ट देवता होती है वह साधक उसका ध्यान करते हुए अपने आत्मा का भी ध्यान करे अर्थात् आत्मा का उस देवता के रूप में और उस देवता का आत्मा के रूप में ध्यान करे । यह मानसी सन्ध्या कही जाती है । **परापरा (कालिका) सन्ध्या**—जिस समय शिव और शक्ति का समायोग होता है वह कौलमार्गी लोगों की सन्ध्या होती है । उसका अनुभव समायोग से समाधिस्थ लोगों को होता है । **अपरा (पापनाशिनी) सन्ध्या**—अब मैं सर्वपापनाशिनी अपरा सन्ध्या को बतला रहा हूँ । पवित्र स्थान में बैठकर तीन तत्त्व से तीन बार आचमन करे । इसके पश्चात् तीन बीजों से तीन प्रकार का प्राणायाम करना चाहिये । तदनन्तर बायें हाथ में जल लेकर गिरती हुई जल की बूँदों से सात बार शिर पर मन्त्र का स्मरण करते हुए प्रोक्षण करना चाहिये । इसके अनन्तर साधक अवशिष्ट जल को दाँये हाथ में लेकर उस जल से नासिका का स्पर्श कराये फिर उससे अधमर्षण करे ॥ १५-२५ ॥

इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितैः पापसञ्चयैः ।
कृष्णवर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचितम् ॥ २६ ॥
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च ।
पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः ॥ २७ ॥
इत्यघमर्षणं कृत्वा पुनराचमनं तथा ।
अभिषिञ्चेत् ततो मूर्ध्नि विधिना साधकोत्तमः ॥ २८ ॥
ओं आपो देवी रसोऽमृतं पूतं ब्रह्म पुनीमहे ।
जलाञ्जलित्रयं भूमौ मार्तण्डभैरवाय च ॥ २९ ॥
ऊर्ध्वबाहुस्ततो मन्त्री मार्तण्डं समुपाश्रयेत् ।
ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ॥ ३० ॥

दृशे विश्वाय मार्तण्डशेषे भैरवमीरयेत् ।
सूर्यमण्डलमध्ये तु कुलचक्रं विचिन्तयेत् ॥ ३१ ॥
बाल्योचितं स्पृहन्तीं वै बालिकां चक्रमध्यतः ।
बालार्कमण्डलाभासं(?सां) भानुबह्नीन्दुलोचनाम् ॥ ३२ ॥
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां स्मरेत् ।
मध्याह्ने चिन्तयेद् देवीं नवयौवनशोभिताम् ॥ ३३ ॥
सायाह्ने चिन्तयेद् देवीं त्रैलोक्यैकप्रभामयीम् ।
सर्वयौवनसम्पन्नामुज्ज्वलां परमां कलाम् ॥ ३४ ॥
तामेव चिन्तयेद्रात्रौ भोगी भोगपरायणाम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं च जपेत् सुधीः ॥ ३५ ॥
रविमण्डलगां देवीं प्रणिपत्य समापयेत् ।
एवं सन्ध्यां समाप्याथ हृदि विद्यां परामृ(षे?शे)त् ॥ ३६ ॥
अथवा परमेशानि सदैनां परिचिन्तयेत् ।

उस समय इडा नाड़ी से जल अन्दर खींच कर उस जल से पापसमूह का प्रक्षालन कर पाप के स्पर्श से काले हुए जल को पिङ्गला नाडी से बाहर निकाल देना चाहिये । फिर मन्त्रसाधक उस जल को पाप रूपी समझकर सामने वज्रपत्थर पर अस्त्र मन्त्र (= फट्) का उच्चारण करते हुए पटक दे । इस प्रकार अघमर्षण करने के पश्चात् पुनः आचमन करे । तत्पश्चात् उत्तम साधक विधिपूर्वक शिर पर अभिषेक करे । अभिषेक का मन्त्र है—'ओं आपोदेवी रसोऽमृतं पूतं ब्रह्म पुनीमहे ।' इसके बाद मार्तण्डभैरव के लिये पृथिवी पर तीन अञ्जली जल दे । इसके अनन्तर मन्त्री दोनों भुजायें ऊपर उठा कर सूर्योपस्थान करे । उपस्थान का मन्त्र है—'ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय मार्त्तण्डभैरवम् ।' सूर्यमण्डल के मध्य में कुलचक्र स्थित है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । उस चक्र के मध्य में बाल्योचित इच्छा करने वाली बालिका जो कि प्रातःकालीन सूर्यमण्डल की आभा के समान लाल है, सूर्य अग्नि और चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं, हाथों में पाश अङ्कुश धनुष और बाण ली हुई हैं—ऐसी शिवा का ध्यान करना चाहिये । इसी प्रकार सायङ्काल में त्रैलोक्य की सम्पूर्ण प्रभा से युक्त, सर्वयौवनसम्पन्न, उज्ज्वल, परमाकला का ध्यान करना चाहिये । भोग करने वाला उसी प्रकार की भोग में लगी हुई शिवा का ध्यान करना चाहिये । ध्यान के पश्चात् विद्वान् एक-सौ आठ बार गायत्री का जप करे और वह देवी सूर्यमण्डल में स्थित है—ऐसा समझकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे । इस प्रकार सन्ध्या कार्य को समाप्त कर मन में विद्या का परामर्श करना चाहिये अथवा हे परमेशानि! इस देवी का सदा ध्यान करना चाहिये ॥ २६-३६- ॥

शूद्रादीनां मोक्षोपायवर्णनोपक्रमः

देव्युवाच—

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथमत्राधिकारिता ॥ ३७ ॥
वेदव्रतविहीनानां व्र(?व्रा)त्यादीनां कृतागसाम् ।
तथैवानुपनीतानां स्त्रीशूद्राणां भवेच्छिव ॥ ३८ ॥
कथमेते महादेव मुक्तिं गच्छन्त्यनुत्तमाम् ।
न विना ब्राह्मणं मुच्येद्देहब(न्ध्या?न्धा)दिति श्रुतिः ॥ ३९ ॥

शूद्र आदि के मोक्ष के उपाय का वर्णन—देवी ने कहा—हे शिव! अब मैं यह सुना चाहती हूँ कि वेदानुपालन से रहित पापी चाण्डाल आदि का तथा उसी प्रकार जो उपवीत अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न नहीं है उन स्त्री शूद्र आदि का इस मोक्ष शास्त्र में अधिकार कैसे होता है ? हे महादेव! ये कैसे उत्तमोत्तम मुक्ति को प्राप्त होते हैं क्योंकि वेदों के अनुसार विना ब्राह्मण के देहबन्ध से मुक्ति नहीं मिलती ॥ ३७-३९ ॥

ईश्वर उवाच—

देवदारुवने पूर्वं ब्राह्मणानतिदुर्धियः ।
विलोक्य भगवान् विष्णुर्मामभ्येत्याभिवाद्य च ॥ ४० ॥
उपविष्टस्तदा देवः कारुण्यद्रुतचेतसा ।
पृष्टवान् मां महादेवि तेषां मुक्तेर्हि कारणम् ॥ ४१ ॥

ईश्वर ने कहा—हे महादेवि! प्राचीन काल में देवदारु वन में भगवान् विष्णु दुर्बुद्धि ब्राह्मणों को देखकर मेरे पास आये और मुझे प्रणाम कर बैठ गये । उस समय करुणापूर्ण चित्त से उन्होंने मुझसे उन अर्थात् स्त्री शूद्र आदि की मुक्ति का कारण पूछा ॥ ४१-४१ ॥

भगवानुवाच

इमे दुर्मतयः सर्वे वेदाचारबहिष्कृताः ।
अन्यायमैथुने(श?स)क्तः(?क्ताः)सुरापानपरायणाः ॥ ४२ ॥
आत्मज्ञानविहीनानां योगाभ्यासावहेलिनाम् ।
कथमेषां भवेन्मुक्तिस्तदुपायं वद प्रभो ॥ ४३ ॥
शूद्रादीनां कथं देव दीक्षायामधिकारिता ।

भगवान् विष्णु ने कहा—हे देव! ये सब दुर्बुद्धि आचारविचार से बहिष्कृत हैं, अन्याय एवं मैथुन (अथवा अवैध मैथुन) में लगे हुए तथा सुरापान में आसक्त

हैं। इनकी मुक्ति कैसे होगी ? हे प्रभो! उसका उपाय बतलाइये । हे देव! शूद्र आदि का दीक्षाग्रहण करने में कैसे अधिकार होता है ॥ ४२-४३- ॥

त्रिपुरागायत्र्या उद्धारः

ईश्वर उवाच—

अपि कृत्वा दुराचारान् पतितो वेदवर्जितः ॥ ४४ ॥
नारी शूद्रोऽथवा व्रात्यो यां ज्ञात्वा ब्राह्मणो भवेत् ।
यया विज्ञायते ब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥ ४५ ॥
तामेव कथयाम्यद्य तवैव हृदि संस्थिताम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वेन निर्मितां तत्स्वरूपिणीम् ॥ ४६ ॥
त्रिकारं चम्पकापीतं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
शतपत्रासनारूढं ध्यायेत् पद्मासनस्थितम् ॥ ४७ ॥
पुकारं चिन्तयेदेवमतसीपुष्पसन्निभम् ।
पद्ममध्यस्थितं सौम्यमुपपातकनाशनम् ॥ ४८ ॥
रकारं कपिलं नित्यं कमलासनसंस्थितम् ।
ध्यायेच्छान्तं सुरश्रेष्ठ महापातकनाशनम् ॥ ४९ ॥
सुकारं चिन्तयेदेवमिन्द्रनीलसमप्रभम् ।
निर्दहेत् सर्वदुःखानि ग्रहरोगोद्भवानि च ॥ ५० ॥
न्दकारं वह्निदीप्ताभं चिन्त(ना?ये)त् पुरुषर्षभ ।
भ्रूणहत्याकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ५१ ॥
(रि?यैं)कारं विमलं ध्यायेद् ब्रह्महत्याविनाशनम् ।
(रि?वि)कारं चिन्येद्विद्वान् शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ ५२ ॥
पापं नश्यति तत्क्षिप्रमगम्यागमनोद्भवम् ।
(सु?द्म)कारं चिन्तयेद्योगी शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ ५३ ॥
अभक्ष्यभक्षणं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
हेकारं तारकावर्णमिन्दु (शेष?शीर्ष) विभूषितम् ॥ ५४ ॥
योगिनां वरदं ध्यायेद् ब्रह्महत्याविनाशनम् ।

त्रिपुरागायत्री का उद्धार—ईश्वर ने कहा—जो दुराचारों को करने के कारण पतित हो गया हो, वेदरहित हो ऐसा नारी शूद्र अथवा चाण्डाल जिसको जानकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है, जिसके द्वारा सत् चित् आनन्द अव्यय ब्रह्म का ज्ञान होता है; आज मैं तुम्हारे हृदय में स्थित उसी की चर्चा करूँगा । वह

चौबीस तत्त्वों[1] से निर्मित है और तत् स्वरूपिणी अर्थात् ब्रह्मस्वरूपिणी है । त्रिपुरा गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों में पहला अक्षर है । **त्रि**—इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—यह चम्पा के समान पीले रंग का है । ब्रह्मा विष्णु शिव इसके देवता हैं । यह पद्मासन लगाकर शतपत्र अर्थात् सौ दलों वाले कमल पर स्थित है । **पु**—इसी प्रकार पुकार का ध्यान करना चाहिये । यह अलसी के पुष्प के समान नीलवर्ण का है । कमल के मध्य में स्थित है । सौम्य रूप वाला यह उपपातक[2] का नाश करने वाला है । **र**—यह कपिल वर्ण का है । नित्य कमलासन पर स्थित है । हे सुरश्रेष्ठ! यह शान्त और महापातकों[3] का नाशक है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । **सु**—इसी प्रकार सुकार का ध्यान करना चाहिये । यह नीलमणि के रंग वाला है तथा ग्रहों एवं रोगों के कारण उत्पन्न दुःख का नाश करता है । **न्द**—इसका रूप जलती हुई अग्नि के समान है । हे पुरुषों में श्रेष्ठ! इसका ध्यान करने से भ्रूणहत्या से किया गया पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है । **यैं**—यह स्वच्छ है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । इसका ध्यान ब्रह्महत्या के द्वारा जन्य पाप का नाश करता है । **वि**—विद्वान् शुद्ध स्फटिक के सदृश इसका ध्यान करे । इसके ध्यान से अगम्यागमन से उत्पन्न पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है । **द्म**—योगी इसका ध्यान शुद्ध स्फटिक जैसा करे । इसके ध्यान से अभक्ष्यभक्षण जन्य पाप तत्काल नष्ट हो जाता है । **हे**—यह तारा के रंग का है । इसके शिर पर चन्द्रमा विराजमान है । योगियों के लिये वरप्रद इस अक्षर का ध्यान ब्रह्महत्याजन्य पाप का नाश करता है ॥ ४४-५४- ॥

काकारं कृष्णवर्णं च नीलमेघसमप्रभम् ॥ ५५ ॥
ध्यात्वा पुरुषशार्दूल पापं नाशयति ध्रुवम् ।
मेकारं रक्तवर्णं च कमलासनसंस्थितम् ॥ ५६ ॥
गोहत्यादिकृतं पापं नाशयत्येव तत्क्षणात् ।
श्वकारं परमं ध्यायेत् तप्तकाञ्चनसन्निभम् ॥ ५७ ॥
कमलासनमासीनं मन्त्री हत्याविमोचनम् ।
(रि?यैं)कारं शुक्लवर्णं तु जातीपुष्पसमप्रभम्॥ ५८ ॥
गुरुहत्याकृतं पापं ध्यात्वा दहति तत्क्षणात् ।
धीकारं चिन्तयेच्छुक्लं कुन्दपुष्पसमप्रभम् ॥ ५९ ॥

---

[1] चौबीस तत्त्व—पृथिवी जल तेज वायु आकाश + पञ्चतन्मात्रा + दश इन्द्रियाँ + मन + अहङ्कार + बुद्धि + प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व हैं ।

[2] महापातकों से कम महत्व वाले

[3] ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
एतानि पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥

पितृमातृवधात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
मकारं पद्मरागाभं चिन्तयेद् दीप्ततेजसम् ॥ ६० ॥
पूर्वजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
हिकारं शङ्खवर्णं तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ६१ ॥
अशेषपापदहनं ध्यायेन्नित्यमिहाच्युत (?) ।
तत्कारं पाण्डुरं ध्यायेत् पद्मस्योपरि संस्थितम् ॥ ६२ ॥
प्रतिग्रहकृतं पापं स्मरणादेव नश्यति ।
नःकारं रक्तवर्णं तु इन्द्रगोपसमप्रभम् ॥ ६३ ॥
ध्यात्वा प्राणिवधं पापं निर्दहेज्जगदीश्वर ।

का—यह काले रंग का है । इसकी चमक नीलमेघ के समान है । हे नरशार्दूल! इसका ध्यान कर पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है । **मे**—यह रक्तवर्ण वाला है । कमल के आसन पर स्थित है । इसका ध्यान गोहत्या आदि से उत्पन्न पाप को तत्क्षण नष्ट कर देता है । **श्व**—इसका रंग तप्त सुवर्ण जैसा है । मन्त्रवेत्ता साधक इसका ध्यान करे । यह कमल के आसन पर विराजमान है तथा हत्याजन्य पाप को दूर करता है । **यैं**—यह शुक्ल वर्ण का है और इसकी कान्ति जातीपुष्प (= चम्पा) के समान है । ध्यान करने पर यह गुरुहत्याकृत पाप को तत्काल दग्ध कर देता है । **धी**—शुक्ल एवं कुमुद पुष्प के सदृश इस वर्ण का ध्यान करना चाहिये । इसके ध्यान से ध्याता पिता माता के वध से मुक्त हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं । **म**—यह पद्मरागमणि के वर्ण का तथा अत्यन्त दीप्त तेज वाला है । इसका ध्यान पूर्वजन्मार्जित पाप को तत्क्षण नष्ट कर देता है । **हि**—यह शङ्ख के रंग का है । इसकी कान्ति पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी है । हे अच्युत! सारे पापों को दग्ध करने वाले इसका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये । **तत्**—यह पाण्डुर वर्ण का है कमल के ऊपर स्थित है । इसके स्मरण से प्रतिग्रह अर्थात् दानग्रहण कृत पाप नष्ट हो जाता है । **नः**—यह रक्त वर्ण का इन्द्रगोप (= वीरवहूटी) के समान है । हे जगदीश्वर! इसका ध्यान कर साधक प्राणिवधजन्य पाप को नष्ट करता है ॥ ५५-६३- ॥

क्लिन्कारं रक्तवर्णं तु स्मरेद्वज्रसमप्रभम् ॥ ६४ ॥
निर्दहेत् सर्वपापानि नान्यैः पापैः प्रलिप्यते ।
नेकारं तु मुखं पूर्वमुद्यदर्कसमप्रभम् ॥ ६५ ॥
सकृद्ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं प्रकारं दक्षिणाननम् ॥ ६६ ॥
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।

सौम्यं गोरोचनापीतं चोकारं चोत्तराननम् ॥ ६७ ॥
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद्रुद्रतां पुनः ।
शरच्चन्द्रनिभं शान्तं दकारं पश्चिमाननम् ॥ ६८ ॥
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेदैश्वरं पदम् ।
यात्कारं च शिरः प्रोक्तमूर्ध्वाननमितीरितम् ॥ ६९ ॥
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ सदाशिवपुरं व्रजेत् ।
अक्षराणां तु सर्वेषां वक्ष्यन्ते देवताः क्रमात् ॥ ७० ॥

क्लिन्—यह रक्तवर्ण वाला तथा वज्र की कान्ति से युक्त है । यह सारे पापों को नष्ट कर देता है और साधक अन्य पापों से प्रलिप्त नहीं होता । ने—इसका मुख पूर्व दिशा की ओर रहता है । यह उगते हुए सूर्य के समान शोभा वाला है। हे सुरश्रेष्ठ! जो इसका एक बार ध्यान करता है वह ब्रह्मा के पद को प्राप्त करता है । **प्र**—यह नीलकमल के दल के समान है । इसका मुख दक्षिण की ओर रहता है । हे सुरश्रेष्ठ! इसका एक बार ध्यान कर ध्याता विष्णुपद को प्राप्त करता है । **चो**—यह सौम्यरूप एवं गोरोचन के समान हल्के पीले रंग का है । हे सुरश्रेष्ठ! इसका एक बार ध्यान कर साधक रुद्र पद को प्राप्त करता है । द—यह शरत्कालीन चन्द्रमा के समान प्रभा वाला है । इसका मुख पश्चिम दिशा की ओर है । हे सुरश्रेष्ठ! इसका एक बार ध्यान कर साधक ईश्वर पद को प्राप्त करता है । यात्—यह पूरे मन्त्र विग्रह का शिर कहा गया है । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।) इसका मुख ऊर्ध्व है । इसका एक बार ध्यान कर ध्याता सदाशिव पद को प्राप्त करता है ॥ ६४-७० ॥

अग्निवायुसूर्यविद्युद्यमा वरुण एव च ।
बृहस्पतिस्तु पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्व एव च ॥ ७१ ॥
पूषा शिवश्च त्वष्टा च वसवश्च मरुत्तथा ।
सोमोऽङ्गिरा विश्वेदेवा अश्विनौ च प्रजापतिः ॥ ७२ ॥
सर्वदेवश्च रुद्रश्च ब्रह्मा विष्णुश्च देवताः ।

अब उक्त चौबीस अक्षरों की देवतायें क्रम से बतलायी जा रही हैं । १. अग्नि, २. वायु, ३. सूर्य, ४. विद्युत्, ५. यम, ६. वरुण, ७. बृहस्पति, ८. पर्जन्य, ९. इन्द्र, १०. गन्धर्व, ११. पूषा, १२. शिव, १३. त्वष्टा, १४. वसु, १५. मरुत्, १६. सोम, १७. अङ्गिरा, १८. विश्वेदेव, १९. अश्विद्वय, २०. प्रजापति, २१. सर्वदेव, २२. रुद्र, २३. ब्रह्मा और २४. विष्णु ॥ ७१-७२- ॥

त्रिपुरागायत्रीजपमाहात्म्यम्

जपकाले चिन्तयित्वा तासांसायुज्यमाप्नयात् ॥ ७३ ॥
ललितायास्त्रिभिर्बीजैस्त्रिपदीयं त्रयीमयी ।
एतज्ज्ञात्वा तु मेधावी जपहोमं करोति यः ॥ ७४ ॥
षडङ्गमविधायादौ ध्यायं (तां?स्तां)परदेवाम् ।
न भवेत् सूतकं तस्य मृतकं च न विद्यते ॥ ७५ ॥
यश्चैवं तु न जानाति गायत्रीं च यथाविधि ।
कथितं सूतकं तस्य मृतकं च मयानघ ॥ ७६ ॥
नैव दानफलं तस्य न च यज्ञफलं लभेत ।
न च तीर्थफलं प्रोक्तं तस्यैवं सूतके सति ॥ ७७ ॥
गायत्र्येषा समाख्याता त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा ।
गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन चोच्यते ॥ ७८ ॥
महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद् दशधा यदि ।
सत्यं सत्यं महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ७९ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वै जपेदेनामनन्यधीः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेत् पूजाधिकारवान् ॥ ८० ॥
जीवन्मुक्तो जामदग्न्यः शिष्यो मे घोरपातकैः ।
विमुक्तो मातृहत्याद्यैर्मीननाथस्तथा परः ॥ ८१ ॥
जेगीषव्यश्च चन्द्रश्च वासवश्च विमोचितः ।
गुरुतल्पगमनाद्यैस्तथागस्त्यः प्रमोचितः ॥ ८२ ॥
अभक्ष्यभक्षणात् पापादनयैव विमोचितः ।
चाण्डालगमनाद्यैश्च वशिष्ठश्चापि मोचितः ॥ ८३ ॥
दत्तात्रेयः सुरापानाज्ज्वलनः सर्वभक्षणात् ।
त एव ब्रह्मणा सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ८४ ॥
अनयैव महादेवि सर्व एव प्रमोचिताः ।

त्रिपुरागायत्री-जप की महिमा—जपकाल में इन देवताओं का ध्यान कर ध्याता इन देवताओं का सायुज्य[1] प्राप्त करता है । ललिता अर्थात् त्रिपुरा के तीन बीजों के साथ यह त्रिपुरागायत्री त्रयीमयी अर्थात् ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी (अथवा ऋग्यजु:साममयी) है । जो मेधावी इसको जानकर जप और होम करता है उसे सूतक अर्थात् जननाशौच तथा मृतक अर्थात् मरणाशौच नहीं लगता । हे अनघ!

---

[1] चार प्रकार की मुक्तियों में से यह एक प्रकार की मुक्ति है ।

जो इस प्रकार गायत्री को विधिवत् नहीं जानता उसे जनन एवं मरण दोनों प्रकार के अशौच लगते हैं । उसे न तो दान का और न यज्ञ का फल मिलता है । इस प्रकार का सूतक लग जाने पर उसको तीर्थफल की भी प्राप्ति नहीं कही गयी है । उपर्युक्त गायत्री को त्रैपुरी गायत्री कहा गया है जो कि सब प्रकार की सिद्धियों को देने वाली है । यतो हि यह अपना गान अर्थात् जप पाठ आदि करने वाली की रक्षा करती है इसलिये इसे गायत्री कहा जाता है । छह प्रकार अथवा उनमें से एक भी महापातक से युक्त कोई व्यक्ति यदि दश बार इस गायत्री का जप करता है तो हे महादेवि! वह उसी क्षण पापमुक्त हो जाता है । यदि कोई मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इसका एक-सौ आठ बार जप करे तो वह समस्त पापों से रहित तथा सब प्रकार की पूजा का अधिकारी हो जाता है । मेरे शिष्य जीवन्मुक्त जामदग्न्य अर्थात् परशुराम मातृहत्या[1] आदि घोर पापों से मुक्त हो गये । मत्स्येन्द्रनाथ जैगीषव्य चन्द्रमा[2] और इन्द्र[3] भी इसके जप से गुरुपत्नी-समागम के पाप से मुक्त हो गये । अभक्ष्यभक्षण के पाप से अगस्त्य इसकी कृपा से मुक्त हुए । वशिष्ठ चाण्डालगमन आदि से मुक्त हो गये । ऋषि दत्तात्रेय सुरापान से तथा अग्नि सर्वभक्षण के पाप से मुक्त कराये गये । उपर्युक्त ये सब देव ऋषि ब्रह्मा एवं प्रभावशाली विष्णु के द्वारा इसी गायत्री की सहायता से मुक्त कराये गये ॥ ७३-८४- ॥

देव्युवाच—

धन्या चानुगृहीतास्मि त्वया नाथेन शङ्कर ॥ ८५ ॥
निःसंशयास्मि देवेश भ्रमो द्वैतश्च मे हतः ।
कतिधा सा भवेद् देव तदिदानीं वद प्रभो ॥ ८६ ॥

देवी ने कहा—हे शङ्कर! मेरे पति आप के द्वारा मैं धन्य एवं अनुगृहीत हूँ ।

---

[1] जमदग्नि ऋषि की पत्नी रेणुका ने अपने पति की अनुपस्थिति में चन्द्रकेतु नामक गन्धर्व के साथ सहवास किया । जमदग्नि को जब यह घटना ज्ञात हुई तो उन्होंने अपने चारों पुत्रों से रेणुका का वध करने को कहा । प्रथम तीनों ने पिता की यह आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया । चतुर्थ पुत्र परशुराम ने परशु से माता का शिर काट दिया । जब जमदग्नि ने परशुराम के ऊपर प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा तो परशुराम ने माता को पुनरुज्जीवित करने की याचना की । जमदग्नि के आशीर्वाद से वह पुनः जीवित हो उठी ।

[2] चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण किया । उसे अपने साथ रखा । उन दोनों से बुध की उत्पत्ति हुई । बाद में तारा बृहस्पति के पास गयी ।

[3] इन्द्र ने छलपूर्वक गौतम ऋषि का रूप धारण कर उनकी पत्नी अहल्या के साथ सम्भोग किया । गौतम के शाप से इन्द्र के शरीर में एक हजार भग उत्कीर्ण हो गये । गायत्री जप से वह पाप दूर हुआ और वे एक हजार भग नेत्रों में बदल गये ।

हे देवेश! अब मैं निःसंशय हूँ। मेरा भ्रम एवं द्वैतभाव नष्ट हो गया। हे प्रभो! अब मुझे यह बताइये कि वह शक्ति कितने प्रकार की है?॥ ८५-८६ ॥

तर्पणवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

एकैव सा महादेवि बहुधा भिन्नतां गता।
सौरी च वैष्णवी चैव शाक्ती ब्राह्म्यथ शाम्भवी ॥ ८७ ॥
तत्तन्त्रे ताः प्रयोक्तव्यास्त्रैपुरीयं प्रकाशिता।
तर्पणं च त्रिधा प्रोक्तं साम्प्रतं तच्छृणृ (स्व?ष्व)मे ॥ ८८ ॥
सोमार्कानलसङ्घट्टात् स्खलितं यत् परामृतम्।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवताम् ॥ ८९ ॥
आन्तरं तर्पणं ह्येतन्मानसं श्रृण साम्प्रतम्।
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा सदा सन्तर्पितात्मवान् ॥ ९० ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु सन्तुष्टः स्थिरमानसः।
उपविश्य शुचौ देशे ततस्तर्पणमारभेत् ॥ ९१ ॥
तर्पयित्वा गुरूनादौ मूलदेवीं च तर्पयेत्।
बीजद्वयं ततो विद्या हुतभुग्दयितान्विता ॥ ९२ ॥
ततो देव्याः स्वनामान्ते तर्पयामि नमःपदम्।
देवान पितृन् ऋषींश्चैव तर्पयेत् कुलवारिणा ॥ ९३ ॥
तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यतां वृद्धभैरवः।
तथैव परमेशानि विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ॥ ९४ ॥
एवं ऋषीन् प्रतर्प्याथ पितृनपि च भैरवान्।
तृप्यतां सुन्दरी माता पिता भैरवस्तृप्यताम् ॥ ९५ ॥
आदौ त्रिपुरपूर्वं च तर्पणे विनियोजयेत्।

देवी का तर्पण—ईश्वर ने कहा—हे महादेवि! मूल रूप में वह परदेवता एक ही है तथापि अनेक प्रकार से भिन्नता को प्राप्त हुई। सौरी वैष्णवी शाक्ती ब्राह्मणी शाम्भवी के रूप में तत्तत् तन्त्रों में उसका प्रयोग किया जाता है। यह त्रिपुरसुन्दरी अनेक रूपों में प्रकाशित हुई हैं। तर्पण तीन प्रकार का कहा गया है। अब मुझसे उसको सुनो। सोम सूर्य और अग्नि के सङ्घर्षण से जो परम अमृत की बूँदें टपकती हैं उससे पर देवता का तर्पण करना चाहिये। यह आन्तर तर्पण है। अब मानस तर्पण को सुनो। अपने को तन्मय अर्थात् परादेवतामय के रूप में स्मरण कर सदा आत्मा को सन्तर्पित करते रहना मानस तर्पण है। इसमें साधक सर्वदा सब कार्य करते हुए स्थिर चित्त और सन्तुष्ट रहता है। (तीसरा

बाह्य तर्पण है) इसके लिये पवित्र स्थान में बैठकर फिर तर्पण का प्रारम्भ करना चाहिये । पहले गुरुओं का तर्पण करना चाहिये । गुरु तीन प्रकार के होते हैं— १. मानवौघ, २. सिद्धौघ और ३. दिव्यौघ । तीनों प्रकार के गुरुओं का तर्पण करना चाहिये । इसके अनन्तर परदेवता का तर्पण विहित है । तर्पण मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—दो बीज (ऐं सौः?) इसके बाद विद्या के साथ अग्निवल्लभा । इसके पश्चात् देवी के अपने नाम के अन्त में 'तर्पयामि नमः' पद कहना चाहिये । मन्त्र-स्वरूप—(ऐं सौः कएईलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं कहयलह्रीं हकलसह्रीं स्वाहा त्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि नमः?)

देवता पितृगण तथा ऋषियों का कुलवारि अर्थात् मद्य से तर्पण करना चाहिये । तर्पण के आदि में 'वृद्ध भैरवः तृप्यताम्' का प्रयोग करना चाहिये । हे परमेशानि! इसी प्रकार विष्णु रुद्र प्रजापति का तत्पश्चात् ऋषियों पितरों भैरवों का तर्पण कर 'त्रिपुरसुन्दरी माता तृप्यताम् पिता भैरवस्तृप्यताम्' कहना चाहिये । इस प्रकार तर्पण में 'त्रिपुर' शब्द को पहले जोड़ना चाहिये ॥ ८७-९५- ॥

श्राद्धे विवाहे दाने च स्नाने चानङ्गपूजने ॥ ९६ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु तान्त्रिके वैदिके तथा ।
त्रिपुरभैरवं चैव स्मरेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ९७ ॥
स्वविद्यां संस्मरन् कुर्य्यात् क्रियां सर्वत्र चोदिताम् ।
द्विजातीनां च संस्कारो वेदोक्तः समुदाहृतः ॥ ९८ ॥
तेषां तु तत्र तत्रापि विद्यया विधिमाचरेत् ।
अन्येषामपि वर्णानां विद्ययैव समापयेत् ॥ ९९ ॥
विद्यया संस्कृतो यस्तु स एव ब्राह्मणो मतः ।
निध(नो?ने)विद्यया दाहो विद्ययान्यत् समाचरेत् ॥ १०० ॥
तेनैव तन्मयी सिद्धिः सर्वत्र भवति ध्रुवम् ।
यावन्न दीयते देवि सूर्यायार्ध्यं विधानतः ॥ १०१ ॥
विधिना विहिता पूजा तावत् केन प्रगृह्यते ।
मार्तण्डभैरवायार्घ्यं दूर्वाभिः सिततण्डुलैः ॥ १०२ ॥
रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च सगणाय निवेदयेत् ।

श्राद्ध विवाह दान स्नान कामपूजा अथवा तान्त्रिक वैदिक समस्त कार्यों में त्रिपुरभैरव और त्रिपुरसुन्दरी का स्मरण करना चाहिये । शास्त्रों में विहित समस्त क्रियाओं को अपनी विद्या अर्थात् अपने परम्परागत मन्त्र का स्मरण करते हुए करना चाहिये । द्विजातियों अर्थात् ब्राह्मणों के लिये वेद में वर्णित संस्कार करने की बात कही गयी है । उनकी संस्कारविधि सर्वत्र विद्या के साथ करनी चाहिये ।

अन्य वर्णों क्षत्रिय आदि का भी संस्कार विद्या से ही करना चाहिये । जो विद्या के द्वारा संस्कृत किया गया है वही वास्तविक ब्राह्मण है । मरने पर भी मृतक का दाहसंस्कार विद्या से ही करना चाहिये । अन्य कार्य भी विद्या से ही करना चाहिये । इसी से सर्वत्र तन्मयी अर्थात् विद्यामयी सिद्धि होती है । हे देवि! जब तक सूर्य के लिये विधिपूर्वक अर्घ्य नहीं दिया जाता तब तक किस विधि से पूजा की जायेगी अर्थात् पूजा नहीं की जाएगी । इसलिये प्रत्येक पूजा के पहले सूर्यार्घ्य आवश्यक है । दूर्वा श्वेततण्डुल रक्तपुष्प रक्तचन्दन से गणसहित सूर्य के लिये अर्घ्य देना चाहिये ॥ ९६-१०२- ॥

सूर्यार्घ्यमन्त्रोद्धारः

शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ॥ १०३ ॥
नादबिन्दुकलायुक्तं हंसःपदमथो लिखेत् ।
मार्तण्डभैरवायेति प्रकाशशक्ति चालिखेत् ॥ १०४ ॥
सहितायेति चोक्त्वा वै इदमर्घ्यमतः परम् ।
वह्निजायान्वितं कृत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ १०५ ॥
न दद्याद्भास्करायार्घ्यं शङ्खतोयैर्महेश्वरि ।
सर्वदेवमयं सूर्यं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १०६ ॥
पूजयित्वा विधानेन प्रदक्षिणमनुव्रजन् ।
प्रणम्य भगवन्तं वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १०७ ॥
यः सदा पूजयेद् देवं दृष्ट्वा वा प्रणमेत् प्रभुम् ।
पूजितं दैवतत्वेन ब्रह्माण्डान्तरगोचरम् ॥ १०८ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां यदुदाहृतम् ।
सकृत् प्रदक्षिणं देवि दद्यात् तत्फलमञ्जसा ॥ १०९ ॥
तीर्थानां दर्शने यद्यत् तत्तद्भास्करदर्शनात् ।
सर्वतीर्थामृतैः स्नातो स सदा सूर्यरश्मिभिः ॥ ११० ॥
अथ त्रिपुरगायत्र्या देव्यै चार्घ्यं निवेदयेत् ।
सूर्यमण्डलसंस्थायै पूर्वोक्तध्यानयोगतः ॥ १११ ॥
चक्रराजं हृदि ध्यात्वा तत्र देवीं समापयेत् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या जपन् विद्यामनन्यधीः ॥ ११२ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे स्नानसंध्योपासनादिविधि-निरूपणनामकः सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

* * *

सूर्यार्घ्य मन्त्र का उद्धार—शिवबीज (= ह) वह्नि (= र) के साथ, वामनेत्र (= दीर्घ इकार) से विभूषित नाद बिन्दुकला (= अनुस्वार) से युक्त होना चाहिये। उसके बाद 'हंसः' पद का उल्लेख करना चाहिये। फिर 'मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्ति- सहिताय' कहकर 'इदमर्घ्यं' को वह्निजाया से युक्त कर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। (मन्त्रस्वरूप—ह्रीं हंसः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा)।

हे महेश्वरि! सूर्य को शङ्ख के जल से अर्घ्य नहीं देना चाहिये। सूर्य सर्वदेवमय हैं। समस्त देवतायें उनको नमस्कार करती हैं। ऐसे सूर्य की विधिवत् पूजा कर प्रदक्षिणा करने के बाद भगवान् सूर्य को प्रणामं करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य सदा सूर्यदेव की पूजा करता है, उनका दर्शन कर प्रणाम करता है, ब्रह्माण्डान्तर में रहने वाले इस सूर्य की देवता के रूप में पूजा करता है, साढ़े तीन करोड़ तीर्थों की यात्रा का जो फल होता है वह सूर्य की एक प्रदक्षिणा का फल होता है। तीर्थों का दर्शन करने पर जो-जो फल मिलता है वह-वह फल सूर्य के दर्शन से मिलता है। जो सर्वदा सूर्य की किरणों से स्नान करता है वह मानो सारे तीर्थों के अमृत से स्नान कर लेता है। इसके पश्चात् त्रिपुर गायत्री और सूर्यमण्डल की मध्यस्थ इष्टदेवी के लिये अर्घ्य देना चाहिये। तदनन्तर पूर्वोक्त ध्यानयोग की विधि से चक्रराज का हृदय में ध्यान कर एकाग्रचित्त होकर देवी के मन्त्र का एक-सौ आठ बार जप करते हुए उस पर देवी को बिठाना चाहिये ॥ १०३-११२ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में स्नानसन्ध्योपासनादि विधि नामक सप्तम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

* * *

अष्टमः पटलः

यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

ततो मौनी विशुद्धात्मा हृदि विद्यां परामृ(षे?शे)त् ।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत् ॥ १ ॥

ईश्वर ने कहा—उसके बाद साधक को मौनी तथा विशुद्ध आत्मा वाला होकर विद्या का ध्यान करना चाहिए और आभ्यन्तर चित्त वाला होकर यागभूमि में प्रवेश करना चाहिए ॥ १ ॥

यागभूमिवर्णनम्

केशकीटादिसंयुक्ता न स्निग्धानातिपिच्छला ।
न रूक्षा नातिनीचा वै नात्युच्चा न वनान्विता ॥ २ ॥
न च वायुभिराच्छन्ना नान्यप्राणिसमाकुला ।
धूलिकर्दमसंयुक्ता पशुभिर्न विलोकित्ता ॥ ३ ॥
वृक्षादिभिरनाकीर्णा द्रववारिसमाकुला ।
अनावृता चतुर्दिक्षु मनसस्तुष्टिकारिणी ॥ ४ ॥
ऊषरे कृषिसंयुक्ते स्थाने पुण्येऽपि नार्चयेत् ।

यागभूमि का वर्णन—यागभूमि केश कीट आदि से रहित स्निग्ध अर्थात् चिकनी हो किन्तु फिसलने वाली न हो । वह रुक्ष अत्यन्त ऊँची नीची न हो । जङ्गल से आच्छन्न तथा वायु से ढँकी न हो । अन्य प्रकार के जीव जन्तु उसमें नहीं होने चाहिये । धूलि कीचड़ से रहित उस पर पशुओं का आवागमन नहीं होना चाहिये । वह वृक्ष आदि से अनाकीर्ण तथा पानी की टपकती बूँदों से युक्त होनी चाहिये । अर्थात् उस भूमि पर पानी का छिड़काव होना चाहिये । चारों ओर से खुली वह मन को प्रसन्न करने वाली होनी चाहिये । ऊषर, खेती की भूमि अगर पवित्र हो तो भी उस पर पूजन नहीं करना चाहिये ॥ २-४- ॥

यागभूमिर्निषिद्धैषा विहिता कथ्यतेऽधुना ॥ ५ ॥
वापीकूपसमीपस्था सुमनोद्यानमध्यगा ।
विचित्रमण्डपैर्युक्ताशुद्धवेदिपरि(स्कृ?ष्कृ)ता ॥ ६ ॥
पताकाध्वजसङ्कीर्णा लाक्षारुणपरिच्छदा ।
पुष्पप्रकरसङ्कीर्णा घण्टाचामरभूषिता ॥ ७ ॥
दीपदर्पणसंयुक्ता वितानोपपरिष्कृता ।
पेयैर्भक्ष्यैः समायुक्ता कर्पूरागुरुधूपिता ॥ ८ ॥
बालार्कसदृशी रम्या मनःसन्तोषकारिणी ।
तत्तदायुधपूर्णान्तर्विभूषितप्रपूजिता ॥ ९ ॥
एवमेषा महादेवि यागभूमिः समीरिता ।

इस प्रकार की भूमि यज्ञ के लिये निषिद्ध होती है । अब याग के लिये विहित भूमि को बतला रहा हूँ । यह भूमि तालाब अथवा कुआँ के समीप होनी चाहिये । उसके बीच में पुष्प की वाटिका होनी चाहिये । वहाँ विचित्र मण्डप होने चाहिये तथा शुद्ध वेदि से उसे परिष्कृत होना चाहिये । पताका ध्वज से सङ्कीर्ण, घण्टा चामर से भूषित, दीप से युक्त उस पर तम्बू टँगे होने चाहिये । वह पेय और भक्ष्य की व्यवस्था के साथ कपूर धूप आदि से सुगन्धित होनी चाहिये । प्रातःकालीन सूर्य के समान रमणीय वह मन को सन्तुष्ट करने वाली होनी चाहिए। उसके अन्दर चक्र आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के आयुध रखे होने चाहिये । हे महादेवि! इस प्रकार यह यागभूमिं बतलायी गयी ॥ ५-९- ॥

मण्डपाभ्यन्तरकृत्यवर्णनम्

पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥ १० ॥
गृहे चेद् द्वारदेशस्थ आचम्य मनसा गुरून् ।
प्रणमेदिष्टदेवीं च दिक्पालानपि चेतसा ॥ ११ ॥
इन्द्रमग्निं यमं वन्दे निर्ऋतिं वरुणं तथा ।
पवनं धनदं चेशं प्रजापतिमनन्तकम् ॥ १२ ॥
गणेशं चैव क्षेत्रेशं वन्दे द्वारश्रियं तथा ।
गणनाथं च वटुकं दुर्गां क्षेत्रं रतिं स्मरम् ॥ १३ ॥
प्रीतिं वसन्तकं चैव शङ्खपद्मनिधी तथा ।
सरस्वतीं महालक्ष्मीं मायां दुर्गां नमाम्यहम् ॥ १४ ॥
भद्रकालीं च स्वस्तिं च स्वाहां शुभङ्करीं तथा ।
गौरीं च लोकधात्रीं च वागीश्वरीं नमाम्यहम् ॥ १५ ॥

ब्रह्माणं वास्तुपुरुषं प्रणमामि यथाक्रमम् ।
पुष्पाञ्जलिमथैतेभ्यो भक्त्या परमया दिशेत् ॥ १६ ॥

मण्डप के अन्दर का कृत्य—यदि मण्डप बाहर है तो पूजावेदी से चार हाथ दूर रहकर और यदि घर के अन्दर पूजा वेदी है तो दरवाजे पर खड़ा होकर आचमन कर मन में गुरु का ध्यान कर उनको तथा इष्टदेवता दिक्पाल इन्द्र अग्नि यम निर्ऋति वरुण वायु कुबेर ईशान प्रजापति अनन्त गणेश क्षेत्रपाल तथा द्वारलक्ष्मी को प्रणाम करना चाहिये । पूजक कहे कि मैं गणेश वटुक दुर्गा क्षेत्रपाल रति काम प्रीति वसन्त शङ्ख पद्मनिधियों सरस्वती महालक्ष्मी माया और दुर्गा को प्रणाम कर रहा हूँ । मैं भद्रकाली स्वस्ति स्वाहा शुभङ्करी गौरी लोकधात्री वागीश्वरी को प्रणाम करता हूँ । ब्रह्मा वास्तुपुरुष को क्रम से प्रणाम करता हूँ । इसके बाद परमभक्ति के साथ इनको पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये ॥१०-१६॥

मण्डलं वामतः कृत्वा चतुरस्रं महेश्वरि ।
आधारं पूजयेत् तत्र पात्रं चान्नोदकान्वितम् ॥ १७ ॥
संस्कृत्य परमेशानीं सर्वभूतबलिं हरेत् ।
तारं च भुवनेशानीं सर्वविघ्नपदं ततः ॥ १८ ॥
(हृ?कृ)दन्ते सर्वभूतेभ्यो हुङ्कारं वह्निवल्लभाम् ।
समुच्चरन् बलिं दद्यान्मुद्रया तत्त्वसंज्ञया ॥ १९ ॥
अङ्गुष्ठानामिकायोगं तत्त्वमुद्रेयमीरिता ।
बालान्ते चास्त्रमालिख्य ङेन्तंफट्कारसंयुतम् ॥ २० ॥
अस्त्रमन्त्रः समाख्यातः सर्वविघ्नौघनाशकः ।
अनेनैवाक्षतान् सम्यक्सम्मन्त्र्य सप्तधा ततः ॥ २१ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः ।
दिव्यलोकगता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ २२ ॥
अनेनैवाक्षतांस्तत्र विकिरेद्यज्ञमण्डपे ।

वहाँ पर अन्न तथा जल से भरे हुए आधार एवं पात्र की पूजा करनी चाहिये । परमेश्वरी का संस्कार करने के बाद सर्वभूतों के लिये बलि देनी चाहिये । बलिमन्त्र का उद्धार—तार भुवनेश्वरी बीजों के बाद 'सर्वविघ्न' पद फिर हृन्मन्त्र तत्पश्चात् 'सर्वभूतेभ्यो हूं' के बाद 'अग्निवल्लभा' कहना चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप —ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृत् सर्वभूतेभ्यः स्वाहा) ।

इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए तत्त्वमुद्रा से बलि देनी चाहिये । तत्त्वमुद्रा का स्वरूप इस प्रकार है—अङ्गुष्ठा और अनामिका को मिलाने पर तत्त्वमुद्रा

बनती है । बाला के अन्त में ङेऽन्त अस्त्र लिखकर फट् से संयुक्त करना—यह समस्त विघ्नों का नाशक अस्त्र-मन्त्र कहा गया । (मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट्) ।

इस मन्त्र से अक्षत को सात बार अभिमन्त्रित करने के उपरान्त 'अपसर्पन्तु ....शिवाज्ञया' (वे भूत जो पृथ्वी अन्तरिक्ष अथवा दिव्यलोक में हैं, शिव की आज्ञा से यहाँ से भाग जाँय) इस मन्त्र से यज्ञमण्डप में अक्षतों को बिखेर देना चाहिये ॥ १७-२२- ॥

ऐंक्लींसौः इतिमन्त्रेण पूजा(देव्या?वेद्यां)महेश्वरि ॥ २३ ॥
अङ्गं सङ्कोचयन् वामं प्रविशेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा ।
यागमन्दिरगांस्तत्र विघ्नानुत्सारयेत् ततः ॥ २४ ॥
पार्ष्णिघातकरस्फोटसमुदञ्चितवक्त्रकैः ।
तालत्रयमिदं कृत्वा पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ॥ २५ ॥
ततः पुनर्हुंफडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ।
आत्मनः क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत् ॥ २६ ॥
वीक्षणं (सर्व?वर्म)बीजेन यज्ञभूमेः समीरितम् ।
त(तू?त्तु)र्यो बिन्दुसंयुक्तः कलानादसमन्वितः ॥ २७ ॥
वर्मबीजमिदं प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
प्रोक्षणं चास्त्रमन्त्रेण वागभूमेः समाचरेत् ॥ २८ ॥
अशुद्धपक्षिसंयोगपक्षिविष्टावसेचनम् ।
मूषिकामण्डूकस्पर्शकृमिकीटादिसङ्गमः ॥ २९ ॥
अज्ञातदूषणं स्थानं मार्जनादौ च यद्भवेत् ।
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनात् स्पर्शनात् प्रिये ॥ ३० ॥

हे महेश्वरि! 'ऐं क्लीं सौः' इस मन्त्र से वेदी पर देवी की पूजा करनी चाहिये । तत्पश्चात् बाँयें अङ्ग को झुकाकर दाँयाँ पैर आगे बढ़ाते हुए यागमण्डप में प्रवेश करना चाहिए । उसके अनन्तर यागमन्दिर में रहने वाले विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये । एड़ी के द्वारा भूतल पर आघात, हाथ की चुटकी तथा मुख से बोलकर तीन ताल से समस्त विघ्नों को हटाना चाहिये । इसके बाद 'हुं फट्' कहते हुए अपने अगल-बगल ऊपर-नीचे क्रुद्ध दृष्टि से अवलोकन कर प्रसन्नचित्त हो जाना चाहिये । यज्ञ-भूमि का निरीक्षण कवच बीज से कहा गया है । कवच बीज चतुर्थ वर्ण (= ह) बिन्दु कला और नाद से संयुक्त (= हुं) होता है । यह वर्म बीज धर्म अर्थ काम का साधक कहा गया है । यागभूमि का प्रोक्षण अस्त्र मन्त्र (= फट्) से करना चाहिये । हे प्रिये! अशुद्ध पक्षी का संयोग,

पक्षी का विष्टा गिरना, मूष, मेढ़क का स्पर्श, कृमि कीट आदि का सङ्गम ये सब भूमि में दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं । ऐसा स्थान जिसका दोष ज्ञात नहीं है जो कि झाडू लगाने के पहले रहते हैं; इस प्रकार के दोष भूमि को देखने तथा उसका स्पर्श करने से दूर हो जाते हैं ॥ २३-३० ॥

मधुकैटभयोर्मेदसङ्घातैर्दृढतां गता ।
मेदिनी सर्वदाऽशुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ॥ ३१ ॥
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं कामबीजं लिखेत् क्षितौ ।
नैवेद्यादि स्वयं धृत्वा आच्छाद्य मीनमुद्रया ॥ ३२ ॥
वायुबीजेन संशोष्य वह्निना च मलं दहेत् ।
श्रीवत्समुद्रया दृष्ट्या तत् सर्वमवलोकयेत् ॥ ३३ ॥
यदात्मना न विज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ।
अस्पर्शनादिकं वापि यदन्यायार्जितं भवेत् ॥ ३४ ॥
तथा निर्माल्यसंसृष्टिः कोटाद्यारोहणं च यत् ।
तत् सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ॥ ३५ ॥
नैवेद्यकादिकं यत्तु पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
सर्वमाच्छादितं कार्यं यावदावाहयेत् पराम् ॥ ३६ ॥
आवाह्य स्थापयित्वा तु निराच्छादं प्रकाशयेत् ।
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति निराच्छादं यतः प्रिये ॥ ३७ ॥

यह पृथिवी मधु कैटभ नामक राक्षसों के मांस मेदा आदि से कठोर हो गयी। इसलिये यह देवताओं की पूजा के लिये सब प्रकार से सदा के लिये अशुद्ध हो गयी । उस दोष से मुक्ति पाने के लिये पृथिवी पर कामबीज (= क्लीं) लिखना चाहिये । नैवेद्य आदि को स्वयं लेकर मत्स्य मुद्रा[1] से उसे ढँक कर वायुबीज (= यं) से उसे सुखाकर अग्निबीज (= रं) से दोष को जला देना चाहिये । श्रीवत्स मुद्रा[2] वाली दृष्टि से सबका अवलोकन करना चाहिये । जो पुष्प आदि का दोष अपने को ज्ञात नहीं है वह तथा अस्पर्शन जो कि अन्याय से प्राप्त है, निर्माल्य की रचना अर्थात् पूजा के अयोग्य पुष्प आदि का आनयन, माला रचना आदि तथा कीड़े-मकोड़े का पूजा वस्तुओं पर चढ़ना यह सब नैवेद्य

---

१. दक्षपाणिपृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठौ चालयेत् सम्यङ् मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी ॥

२. अन्योऽन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमा नामिकाङ्गुली ।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंस्थिते ।
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिका ॥ मु.नि. १०६, ४७

आदि को देखने से नष्ट हो जाता है । परादेवी के आवाहन तक नैवेद्य आदि पुष्प गन्ध आदि जो कुछ भी है, उसे ढँक कर रखना चाहिये । परादेवी का आवाहन कर जब उसका स्थापन कर लें तब सारी वस्तुओं को खोल देना चाहिये क्योंकि हे प्रिये! देवी के आने के पूर्व खुली हुई वस्तुओं को राक्षस ले लेते हैं ॥ ३१-३७ ॥

आसनादिवर्णनम्

आसनं च ततः कुर्यान्नातिनीचं न चोच्छ्रितम् ।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्न तु ॥ ३८ ॥
कृष्णाजिने मोक्षसिद्धिः श्रीमोक्षौ व्याघ्रचर्मणि ।
काम्यार्थं कम्बले चैवमभीष्टं रक्तकम्बले ॥ ३९॥
कुशासने सर्वसिद्धिर्मारणे कृष्णकम्बलम् ।
त्रिपुरापूजने शस्तं रक्तकम्बलमासनम् ॥ ४० ॥
नैतद् द्विहस्ततो दीर्घसार्धहस्ता(नु?न्न)विस्तृतम् ।
न त्र्यङ्गुलात् समुच्छ्रायं पूजाकर्म्मणि संग्रहेत् ॥ ४१ ॥
यथेष्टं चार्म्मणं कुर्यात्पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ।
न दीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही ॥ ४२ ॥

आसन आदि का वर्णन—इसके बाद अपना आसन बनाना चाहिये । आसन न अत्यन्त ऊँचा और न अत्यन्त नीचा होना चाहिये । आसन और अर्घ्यपात्र टूटा-फूटा नहीं होना चाहिये । कृष्णाजिन अर्थात् मृग के चर्म के आसन पर बैठकर आराधना करने से मोक्षसिद्धि, बाघ के चमड़े वाले आसन पर श्री अर्थात् धन-सम्पत्ति तथा मोक्ष प्राप्त होता है । काम्यकर्म के लिये कम्बल तथा अभीष्टसिद्धि के लिये लाल रंग का कम्बल उपयुक्त होता है । कुश का आसन सर्वसिद्धि देता है । मारण के लिये काले कम्बल का प्रयोग करना चाहिये । त्रिपुरसुन्दरी के पूजन में लाल कम्बल का आसन उत्तम माना गया है । आसन दो हाथ से लम्बा और डेढ़ हाथ से चौड़ा होना चाहिये । पूजाकर्म में तीन अङ्गुल से ऊँचा आसन नहीं लेना चाहिये । पूर्वोक्त चर्म का सिद्धिदायक आसन अपनी इच्छानुसार अर्थात् जितना लम्बा चौड़ा चाहें लेना चाहिये । गृहस्थ यदि दीक्षा प्राप्त है तो उसे कृष्णसारमृग के चर्म पर नहीं बैठना चाहिये ॥ ३८-४२ ॥

धरण्यां दुःखसम्भूतिदौर्भाग्यं दारुजासने ।
आम्रनिम्बकदम्बानामासनं वंशनाशनम् ॥ ४३ ॥
बकुले किंशुके चैव पनसेषु हतश्रियः ।
वंशेष्टकाश्मधरणीतृणपल्लवनिर्म्मितम् ॥ ४४ ॥

वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्र्यव्याधिदुःखदम् ।
नाराचैर्वारिभिन्नं स्याद्विशीर्णं भग्नमेव च ॥ ४५ ॥
पर्युषितं परेषां तदधौतं च विवर्जयेत् ।
गान्तारीनिर्म्मितं शस्तं नानादारुमयं शुभम् ॥ ४६ ॥
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्म्मणि साधकः ।
काष्ठादिकासनं कुर्यान्मितमेव सदा प्रिये ॥ ४७ ॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं शिवे ।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रायाच्चतुरङ्गुलम् ॥ ४८ ॥
तदर्धाङ्गुलं वा कुर्यान्नोच्छ्रितं चात आचरेत् ।
धरण्या वस्त्रसंयोगाद् दारुजे कम्बलस्य च ॥ ४९ ॥
कौशेयाजिनसंयोगो हन्ति पुण्यं पुरातनम् ।
यथाशक्त्येकतो मन्त्री शस्तासनमुपाविशेत् ॥ ५० ॥

पृथिवी पर बैठकर पूजा करने से दुःख होता है । लकड़ी के आसन पर दुर्भाग्य होता है । आम नील कदम्ब का आसन वंश का नाश करता है । बकुल पलाश और कटहल के आसन पर बैठने से शोभा एवं लक्ष्मी नष्ट होती है । बाँस ईंट पत्थर मिट्टी घासफूस तथा पत्तों से निर्मित आसन को छोड़ देना चाहिये क्योंकि ऐसा आसन दरिद्रता व्याधि अर्थात् शारीरिक कष्ट तथा दुःख देता है । बाणों अथवा पानी से फटा हुआ, पुराना फटा हुआ, कटा हुआ दूसरों के द्वारा प्रयोग में लाया गया किन्तु धुला न हो ऐसे आसन का त्याग करना चाहिये । गान्तारी (?) से बना आसन उत्तम होता है । अनेक प्रकार की लकड़ी से बना आसन शुभदायक होता है । साधक को पूजाकर्म में मनमाना आसन का नहीं वरन् विहित आसन का प्रयोग करना चाहिये । हे प्रिये! काष्ठ आदि को आसन विहित परिमाण वाला होना चाहिये । हे शिवे! काष्ठ का आसन चौबीस अङ्गुल लम्बा, सोलह अङ्गुल चौड़ा और चार अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये अथवा उसका आधा अर्थात् दो अङ्गुल ऊँचा होना चाहिये । चार अङ्गुल से अधिक ऊँचा आसन नहीं बनाना चाहिये । पृथिवी के साथ पहने हुए वस्त्र का संयोग, लकड़ी पर कम्बल का आसन, रेशमी वस्त्र एवं चर्म का संयोग पूर्वजन्म के भी पुण्य को नष्ट कर देता है । मन्त्रसाधक को चाहिये कि वह यथासम्भव एक उत्तम आसन के ऊपर बैठे ॥ ४३-५० ॥

आसनासनविधिः

पाणिभ्यामासनं धृत्वा विहितं विस्तरेद् भुवि ।
पराबीजं समुच्चार्य ततश्चाधारपूर्वकम् ॥ ५१ ॥

शक्तिपदं समालिख्य कमलासनमालिखेत् ।
ङेन्तं नमःपदं कुर्यादनेनैवासनं यजेत् ॥ ५२ ॥
मूलप्रकृतिं तत्रैव कूर्मं च परिचिन्तयेत् ।
अनन्तं चापि सम्पूज्य पृथिव्यर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पृथिव्यै नम इत्यपि ।
पाणिभ्यामासनं धृत्वा स्मरेदेवं विधानतः ॥ ५४ ॥
मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम् ।
कूर्मो वै देवता चात्र आसनस्योपवेशने ॥ ५५ ॥
विनियोगस्तथा प्रोक्त उपविशेत् समन्त्रकम् ।
पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥ ५६ ॥
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु ।
दुःशिल्पिरचितत्वादि यदन्यासनदूषणम् ॥ ५७ ॥
अज्ञातरूपकं याति विलयं विधिना प्रिये ।
पदद्वयं समं सम्यगुरुद्वयोपरिस्थितम् ॥ ५८ ॥
सव्यं पादमुपादाय दक्षिणोपरि विन्यसेत् ।
विष्टभ्य कट्योः पार्ष्णी तु नासाग्र(ग्र?न्य)स्तलोचनः ॥ ५९ ॥
पद्मासनं भवेदेतत् प्रशस्तं त्रिपुरार्चने ।
स्वस्तिकं गोमुखं चैवमूर्ध्वस्वस्तिकमेव वा ॥ ६० ॥
पर्यङ्कमासनं शस्तमेवं बद्धासनः प्रिये ।
पश्यन्नभीष्टदेवं च पाददोषं न पश्यति ॥ ६१ ॥
न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने ।

आसन पर बैठने की विधि—जिस प्रकार के आसन का विधान किया गया है उस आसन को दोनों हाथों से पकड़ कर पृथिवी पर फैलाना चाहिये । उसके बाद आसन की पूजा आरम्भ करनी चाहिए । उसका मन्त्रोद्धार निम्नलिखित है—पराबीज का उच्चारण कर उसके बाद 'आधारशक्ति' पद लिखकर 'कमलासन' को ङेअन्त लिखना चाहिये । अन्त में 'नमः' पद कहना चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः) इस मन्त्र द्वारा आसन की पूजा करनी चाहिये । उस पर मूलप्रकृति तथा कूर्म का ध्यान करना चाहिये । अनन्त की पूजा कर पृथिवी के लिये अर्घ्य देना चाहिये । अर्घ्य के मन्त्र का उद्धार यह है—पहले प्रणव लिखकर फिर 'पृथिव्यै नमः' कहना चाहिये । (मन्त्र—ओं पृथिव्यै नमः) । दोनों हाथों से आसन को पकड़ कर स्मरण करना चाहिये । इसके बाद विनियोग करना चाहिये । विनियोग का स्वरूप यह है—ॐ

पृथिवीत्वेति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः'— ऐसा कहकर भूमि पर जल गिराये । फिर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए आसन पर बैठे । मन्त्र—'पृथ्वि! त्वया........आसनं कुरु । हे पृथ्वि! तुमने बहुत लोगों का धारण किया है और तुमको भगवान् विष्णु ने धारण किया है । हे देवि! तुम मुझे धारण करो और इस आसन को पवित्र करो । हे प्रिये! इस विधान से आसन के अन्दर जो दूषित शिल्पी से रचित आदि होने का दोष है वह सब दूर हो जाता है । दोनों पैरों को सम्यक् रूप से दोनो जाँघों पर रखना; फिर बाँयें पैर को उठाकर दाँयें पैर पर रखना चाहिये । दोनों एड़ियों को दोनों कटिप्रदेश के पास ले जाकर स्तम्भित करने के पश्चात् दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में स्थिर करना चाहिये । यह पद्मासन होता है । त्रिपुरा की पूजा में यह आसन लगाना उत्तम माना गया है । इसके अतिरिक्त हे प्रिये! स्वस्तिक गोमुख ऊर्ध्वस्वस्तिक एवं पर्यंक आसन भी उत्तम माने गये हैं । आसन लगाकर बैठने पर इष्टदेव का ध्यान अथवा दर्शन करते हुए पैरों को देखने पर पाददोष नहीं होता । इसके अतिरिक्त देवता की पूजा करते हुए पैरों को देखना दोषाधायक होता है ॥ ५१-६१- ॥

दिग्विभागेषु कौबेरी दिक् शिवाप्रीतिदायिनी ॥ ६२ ॥
तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेत् त्रिपुरां सदा ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा यदा देवीं प्रपूजयेत् ॥ ६३ ॥
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव न संशयः ।
ईशानमग्निकोणं स्याद्वायपुकोणं तथेशकम् ॥ ६४ ॥
दक्षिणाशा तदा ज्ञेया पश्चिमाशा महेश्वरि ।
राक्षसं वायुकोणं स्यादाग्नेयं राक्षसं भवेत् ॥ ६५ ॥
प्राक्प्रत्यङ्मुखपूजायां लौकिकं पश्चिमं स्मृतम्।
दक्षिणोत्तरपूजायां सम्मुखं पश्चिमं स्मृतम् ॥ ६६ ॥
योगिनीचक्रपूजायां दिगियं नान्यथा भवेत् ।

जहाँ तक दिशाओं का प्रश्न है, उत्तर दिशा में मुख कर पूजा करना शिवा को प्रसन्न करता है । इसलिये सर्वदा उत्तराभिमुख होकर त्रिपुरा की पूजा करनी चाहिये । हे देवि! अर्चक जब उत्तर दिशा की ओर मुख कर पूजा करता है तो उत्तर दिशा उसके लिये पूर्व दिशा हो जाती है । ईशान कोण अग्नि कोण और वायु कोण ईशान कोण हो जाता है । हे महेश्वरि! पूजा के समय दक्षिण दिशा पश्चिम हो जाती है । नैर्ऋत्य कोण वायु कोण तथा अग्नि कोण नैर्ऋत्य कोण हो जाता है । पूर्वाभिमुखी तथा पश्चिमाभिमुखी पूजा में पश्चिम दिशा की ओर मुख कर की जाने वाली पूजा लौकिक अभ्युदय देती है । दक्षिण और उत्तरमुखी पूजा में

जो दिशा सामने रहती है वह पश्चिम दिशा मानी जाती है । इस प्रकार का निर्णय केवल योगिनीचक्र की पूजा में मान्य है अन्यत्र नहीं ॥ ६२-६६- ॥

आसनोपवेशानन्तरकृत्यवर्णनम्

कुङ्कुमारुणदेहस्तु रक्ताभरणभूषितः ॥ ६७ ॥
रक्तासनोपविष्टस्तु लाक्षारुणगृहे स्थित(म?ः) ।
ताम्बूलरागवदनो धूपामोदसुगन्धितः ॥ ६८ ॥
कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गो रक्तचन्दनभूषितः ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यस्त्रिपुरीकृतविग्रहः ॥ ६९ ॥
मनःसङ्कल्परक्तो वा साधकः स्थिरमानसः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मन्दस्मितमुखाम्बुजः ॥ ७० ॥
वामकर्णोर्ध्वभागे तु गुरुं च प्रणमेत् ततः ।
दक्षकर्णोर्ध्वभागे तु गणेशं प्रणमेद् बुधः ॥ ७१ ॥
दुर्गां नमेत् पुरोभागे पृष्ठतः क्षेत्रनायकम् ।
स्वदक्षे वामतो देव्या दीपं संस्थापयेत्ततः ॥ ७२ ॥
तो रमिति मन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत् ।
देवतीर्थेन देवेशि संस्पृश्य च विधानतः ॥ ७३ ॥
सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहा ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽस्तु शुभदायकः ॥ ७४ ॥
स तस्य शुभदो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रतः ।
पतङ्गकीटकेशादिदाहक्रव्यादसङ्गतः ॥ ७५ ॥
वसामज्जास्थिसम्भूतिर्यदाद्यनुपयोगि(नः?ता) ।
अज्ञातरूपकं सर्वं दोषं स्पर्शाद्विनाशयेत् ॥ ७६ ॥
रोचनाङ्कुकुमाभ्यां च कस्तूरीचन्दनेन्दुभिः ।
रञ्जितं चक्रराजं च स्वयम्भूकुसुमैर्युतम् ॥ ७७ ॥
सिन्दूररजसाक्रान्तं पुरतः सिंहविष्टरे ।
संस्थाप्य सहसा देवि योगिनीभिः समं ततः ॥ ७८ ॥
देवीरूपं विचिन्त्याथ चक्रे पुष्पाञ्जलिं दिशेत् ।
अशून्यं कुसुमैः कुर्याच्छून्ये विघ्नाद्यनेकशः ॥ ७९ ॥
गन्धपुष्पाक्षतादीनि दक्षभागे निधापयेत् ।
प्रक्षालनाय करयोः पात्रं पश्चान्निधापयेत् ॥ ८० ॥

अर्घ्यादिकं पुराभागे सव्ये कुम्भं निधापयेत् ।
मण्डलं वामतः कृत्वा जलेन चतुरस्त्रकम् ॥ ८१ ॥

आसन पर बैठने के बाद का कर्म—साधक अपने शरीर में कुङ्कुम लगाकर अरुण वर्ण का हो जाय । लाल रंग के कपड़ों एवं आभूषणें से सुसज्जित हो । लाल रंग के आसन पर बैठकर लाक्षा के लेप से रक्त वर्ण वाले पूजा गृह में स्थित हो । मुख में ताम्बूल लेने से मुख लाल रंग का होना चाहिये । पूजागृह धूप के आमोद से सुगन्धित होना चाहिये । शरीर में कपूर के चूर्ण का लेप लगा रहना चाहिये । लाल चन्दन से साधक को भूषित होना चाहिये । समस्त प्रकार के शृङ्गारिक वेष से उसे सुसज्जित होना चाहिये । इस प्रकार शरीर को त्रिपुरसुन्दरी जैसा बना लेना चाहिये । ऐसा साधक मन में सङ्कल्प युक्त तथा स्थिरचित्त वाला होना चाहिये ।

स्पर्श के समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—'सुप्रकाशो.............शुभदायक ॥' (सुन्दर प्रकाश वाला, सब ओर से अन्धकार को नष्ट करने वाला, बाहर एवं भीतर ज्योति बिखेरने वाला यह महादीप हमारे लिये शुभ देने वाला हो) । इस प्रकार का पाठ करने वाले अर्चक के लिये वह दीप स्पर्शमात्र से शुभ हो जाता है । पतङ्ग कीट केश आदि के जलने तथा मांसभक्षी पक्षियों के संसर्ग, वसा मज्जा अस्थि की उत्पत्ति तथा अनुपयोग्य मद आदि के स्पर्श से जन्य तथा अज्ञात समस्त दोष को इस दीप का स्पर्श नष्ट कर देता है । इसके बाद चक्रराज को गोरोचन कुङ्कुम कस्तुरी चन्दन कपूर से रँगकर स्वयम्भूकुसुम (= स्त्री का आर्त्तव) से युक्त करना चाहिये । उस पर सिन्दूर छिड़क कर सामने सिंहविष्टर (= सिंहासन ?) पर रख देना चाहिये । उस चक्र को योगिनियों के साथ देवी रूप समझकर उस पर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । उस पर से स्वयम्भूपुष्प को नहीं हटाना चाहिये । हटाने पर अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं । उस चक्र की दाँयीं ओर गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि तथा उसके पश्चात् हाथों को धोने के लिये जलपात्र रखना चाहिये । अर्घ्य आदि को चक्रराज के सामने तथा कलश को बाँयीं ओर रखना चाहिये । इसके पश्चात् चक्र के वामभाग में जल से चौकोर मण्डल बनाना चाहिये ॥ ६७-८१ ॥

कलशादिस्थापनम्

वह(त्?न्)कराभ्यां देवेशि तत्राधारं मनोहरम् ।
सुवर्णरौप्यताम्रादिविहितं स्थापयेत् ततः ॥ ८२ ॥
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।
कलशं हेमजं धन्यं निश्छिद्रं चापि सुन्दरम् ॥ ८३ ॥

वस्त्रपूतैर्जलैः पूर्णं सगन्धैर्दोषवर्जितैः ।
पानीयं घटमध्यस्थं वी(क्षन्?क्ष्य) गुह्यं च साधकः ॥ ८४ ॥
वामेन पाणिना देवि तत्राधारे निवेशयेत् ।
पूजयेत् सूर्यरूपं तं कलाभिः परमेश्वरि ॥ ८५ ॥
(कल्यं तं च?कलशं तं)समभ्यर्च्य विशेषेण वरानने ।
तत्रस्थममृतं साक्षाच्चन्द्ररूपं विचिन्तयेत् ॥ ८६ ॥

कलश आदि की स्थापना—हे देवेशि! इसके बाद सोने चाँदी ताम्र आदि से निर्मित उस मनोहर आधारकलश को दोनों हाथों से उठाकर चक्र पर स्थापित करना चाहिये । वह्निमण्डलरूप उस कलश की अग्नि की कलाओं[1] के साथ पूजा करनी चाहिये । सुवर्ण से बना छिद्र अर्थात् छेद अथवा दोष से रहित कलश सर्वोत्तम होता है । सुगन्धयुक्त दोषरहित जल से उस घट को पूर्ण कर हे देवि! घट के मध्य में स्थित जल को गोपनीय ढंग से देखकर साधक बाँये हाथ से उसे आधार चक्र के ऊपर रख दे । हे परमेश्वरि! तत्पश्चात् सूर्यरूपी उस घट की उसकी कलाओं[2] के साथ पूजा करनी चाहिये । हे वरानने! उस कलश की विशेष रूप से पूजाकर उसमें स्थित जल का साक्षात् चन्द्ररूप में ध्यान करना चाहिये ॥ ८२-८६ ॥

चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्य कलाभिः सुरवन्दिते ।
आनन्दभैरवं तत्र यजेदानन्दभैरवीम् ॥ ८७ ॥
यद्यन्यद्दूषणं पात्रे तोये वाज्ञानतो भवेत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति पूजार्हः कलशो भवेत् ॥ ८८ ॥
पात्रमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य दक्षतो वह्निमण्डले ।
साधारं स्थापयेद्देवि पूजयेत् तं यथाविधि ॥ ८९ ॥
शुद्धोदकेन सम्पूर्णं मूलविद्यां ततो जपेत् ।
प्रोक्षयेत्तेन कलशं प्रोक्षिणीस्थेन वारिणा ॥ ९० ॥
वामतस्तु तथा शङ्खं प्रतिष्ठाप्य विधानतः ।
तदुत्तरत एवास्मिन् पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ९१ ॥

---

[1] अग्नि की दश कलायें—१. धूम्रार्चिः, २. ऊष्मा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुलिङ्गिनी, ६. सुश्री, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवाहना, १०. कव्यवाहना ।

[2] सूर्य की द्वादश कलायें—१. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्ना, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा ।

हे सुरवन्दिते! चन्द्रमण्डल की उसकी कलाओं[३] के साथ पूजा कर उसमें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी की पूजा करनी चाहिये । इससे पात्र अथवा तत्रस्थ जल में जो कोई अज्ञात अथवा ज्ञात दोष रहता है वह नष्ट हो जाता है और कलश पूजा के योग्य हो जाता है । हे देवि! पात्र का अस्त्र अर्थात् 'फट्' का उच्चारण करते हुए जल से प्रोक्षण कर उसे दाँयीं ओर अग्निमण्डल पर आधार के सहित रख देना चाहिये तथा उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये । उसको शुद्ध जल से पूरित कर मूलमन्त्र का जप कर उस मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्रोक्षणी में स्थित जल से उस कलश का प्रोक्षण करना चाहिये । उसके बायें शङ्ख की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कर उसके आगे पाद्य और आचमनीय जल रखना चाहिये ॥ ८७-९१ ॥

भूतशुद्धिवर्णनम्

चक्रोपरि शिवां नत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत् ।
स्वभावतः सदाऽशुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः ॥ ९२ ॥
(मनः?सदा)पूतिसमायुक्तं श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ।
तस्यैव हि विशुद्ध्यर्थं वाय्वग्निसलिलाक्षरैः ॥ ९३ ॥
शोषदाहौ तथा भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।
आप्लावनं च कर्तव्यं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ९४ ॥
पञ्चशुद्धिविहीनेन कृतं यदभिचारवत् ।
विपरीतफलं दद्यादभक्त्याभ्यर्चनं तथा ॥ ९५ ॥
शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् ।
अव्ययब्रह्मसंस्पर्शाद् भूतशुद्धिरियं प्रिये ॥ ९६ ॥
अन्तःकरणमध्ये तु ज्योतिरात्मा प्रवर्तते ।
लिङ्गदेहं तु तं प्राहुर्योगिनस्तत्त्ववेदिनः ॥ ९७ ॥
तस्य वै शोधनं चैव सर्वशुद्धिः प्रजायते ।
तदेव विश्वजननकारणं जन्मकारणम् ॥ ९८ ॥
तत्प्रतीतौ भवेन्मुक्तिर्नान्यतो जन्मकोटिभिः ।

भूतशुद्धि—चक्र के ऊपर शिवा को प्रणाम कर भूतशुद्धि करनी चाहिये । यह पाञ्चभौतिक शरीर स्वभावतः अशुद्ध है । इसमें दुर्गन्ध रहती है । कफ मल मूत्र से यह पिच्छिल अर्थात् गीला रहता है । उसी की शुद्धि के लिये वायु अग्नि एवं जल के बीजाक्षरों (= यं रं वं) से शोष दाह तथा भस्म को उड़ाना और अमृत वर्षण तथा प्लावन का कार्य पूरक कुम्भक और रेचक प्राणायामों से करना

---

३. चन्द्रमा की कलायें—चन्द्रमा की ज्योत्स्ना आदि सोलह कलायें ।

चाहिये । पञ्चभूत की शुद्धि से रहित साधक के द्वारा जो कुछ किया जाता है वह अभिचार के समान विपरीत फल देता है । इसी प्रकार भक्तिरहित अर्चन भी विपरीत फल देता है । शरीर का आकार धारण करने वाले पञ्चमहाभूतों का जो शोधन है, हे प्रिये! अव्यय अक्षरब्रह्म के संस्पर्श से यही भूतशुद्धि है । अन्तःकरण के मध्य स्वयंज्योतिः आत्मा विराजमान है । तत्त्ववेत्ता योगी लोग उसको लिङ्गदेह कहते हैं । उसका शोधन निश्चित रूप से सबका शोधन है । वह लिङ्गदेह अथवा अव्यय ब्रह्म ही विश्वसृष्टि का अथवा शरीर के जन्म का कारण है । उसका सम्यक् साक्षात्कार होने पर मुक्ति होती है । अन्य उपायों से करोड़ों जन्म में भी मुक्ति नहीं हो सकती ॥ ९२-९८- ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा योनिमुद्रां तथा स्मरेत् ॥ ९९ ॥
विद्याकूटत्रयं देवि वह्न्यर्केन्दुमयं धिया ।
पुरत्रयेऽथ संचिन्त्य तेषामैक्यं ततः स्मरेत् ॥ १०० ॥
तस्मिंस्तेजोमये (विश्वे?बिम्बे)सच्चिदानन्दधामनि ।
केवलानुभवानन्दे परब्रह्मणि शाश्वते ॥ १०१ ॥
निमज्य बिन्दुगे धाम्नि क्षणं स्थित्वा तु चिन्तयेत् ।
बालार्ककिरणारक्तं तत्तत्तेजोमयं स्मरेत् ॥ १०२ ॥
शुद्धलाक्षामृताम्भोधिमध्ये चातिमनोहरे ।
नवरत्नमये द्वीपे तच्चिन्तामणिमण्डपे ॥ १०३ ॥
रत्नसिंहासनाम्भोजे वह्न्यर्केन्दुस्वरूपिणीम् ।
बालार्ककोटिसङ्काशां तुरीयां परमां कलाम् ॥ १०४ ॥
दक्षिणाधःकरे बाणान् वामाधो धनुरेव च ।
दक्षिणोर्ध्वे (शृ?सृ)णिं वामे पाशं चापि करे धृतम् ॥ १०५ ॥
अरुणामरुणाकल्पवसनाक्षित्रयान्विताम् ।
आत्माभेदेन संचिन्त्य शुद्धज्ञानस्वभाविनम् ॥ १०६ ॥
केवलानुभवानन्दमात्मानं परिचिन्तयेत् ।
ओं ह्रीं हंसस्ततः सोऽहं स्वाहेति मनुना शिवे ॥ १०७ ॥
बालाबीजत्रयस्यान्ते महात्रिपुरसुन्दरि ।
आत्मानं रक्ष रक्षेति कुर्याद्रक्षां हृदि स्पृशन् ।
दिग्बन्धः स्वस्त्रिया(?)चैवं छोटिकाभिः समन्ततः ॥ १०८ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादिवर्णननामाष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

◆

तीन बार प्राणायाम करने के बाद योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । हे देवि! उसके बाद अग्नि सूर्य और चन्द्र वाले तीन विद्याकूट का मन के द्वारा तीन पुरों में ध्यान कर उनके ऐक्य की भावना करनी चाहिये । सच्चिदानन्द तेजोमय केवल अनुभव के द्वारा आनन्दस्वरूप शाश्वत बिन्दुगामी परब्रह्म तेज में स्वयं का निमज्जन कर वहाँ एक क्षण के लिये ठहर कर ध्यान करना चाहिये । प्रात:कालीन सूर्य के समान पूर्णरक्त तत्तत् तेजोमय ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। उस तेज के अन्दर परमा तुरीया कला का ध्यान करना चाहिये । वह ध्यान इस प्रकार है—अत्यन्त मनोहर, शुद्ध, लाक्षा के रंग वाले अमृतसमुद्र में वर्त्तमान नवरत्न से बना हुआ द्वीप है । उस द्वीप में चिन्तामणि रत्न से बना हुआ एक मण्डप है । उस मण्डप में रत्नों से जटित एक कमलाकार सिंहासन है । उस पर अग्नि सूर्य और चन्द्ररूपिणी, करोड़ों बाल सूर्य के समान तेजस्विनी तुरीया कला विराजमान है । उसके दक्षिण अध: हाथ में बाण, बाँयें अध: कर में धनुष है । दाँयें ऊर्ध्व हाथ में शृणि (= अंकुश/कशा), बाँयें ऊर्ध्व हाथ में पाश है । वह स्वयं अरुणा है और अरुण वस्त्र धारण की हुई तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं । उसका अपने से अभिन्न रूप में ध्यान करना चाहिये और अपने आपको शुद्ध ज्ञानस्वरूप केवल अनुभवानन्द वाला समझना चाहिये । इसके बाद 'ओं ह्रीं हंस: सोऽहं स्वाहा' इस मन्त्र को बाला त्रिबीज (= ऐं क्लीं सौ:) के अन्त में 'महात्रिपुरसुन्दरी आत्मानं रक्ष रक्ष' से हृदय का स्पर्श करते हुए अपनी रक्षा करनी चाहिये । इसके बाद चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करना चाहिये । (रक्षा का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं क्लीं सौ: महात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष ओं ह्रीं हंस: सोऽहं स्वाहा) ॥ ९९-१०८ ॥

**॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादि
वर्णन नामक अष्टम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्यां सम्पूर्ण हुई ॥ ८ ॥**

* * *

नवमः पटलः

करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यासनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

देव एव यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।
न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं शिवे ॥ १ ॥
न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु तं यजेत् ।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैर्देवशरीरता ॥ २ ॥
न्यासविधिं शृणु प्राज्ञे करशुद्धिपुरःसरम् ।
मातृकाद्यं समुद्धृत्य द्वितीयं च सबिन्दुकम् ॥ ३ ॥
शा(?सा)न्तान्तं कादिसंयुक्तमेकारान्तान्तयोजितम्।
एवमेषा महाविद्या करशुद्धिकरी मता ॥ ४ ॥
गृहीत्वा रक्तपुष्पं च सगन्धं साधकस्तः ।
अनेनैव तु मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ॥ ५ ॥
सम्मार्ज्य सव्यहस्तेन वामेन पाणिना ततः ।
निर्मञ्छ्य कामबीजेन जिघ्रपेद्वाग्भवेन तु ॥ ६ ॥
ऐशान्यां निःक्षिपेदेतच्छेषबीजेन पार्वति ।
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पस्य ग्रहणाद्भवेत् ॥ ७ ॥
मर्दनात् करयोः शुद्धिर्निर्मञ्छनात्तु पृष्ठयोः ।

न्यास-विधि—देवता बनकर ही देवता की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये । विना देवता बने देवता की अर्चना नहीं करनी चाहिये । हे शिवे! न्यास के विना जप को आसुर और व्यर्थ कहा गया है । न्यास करने से जापक तदात्मक अर्थात् न्यासरूप होकर देवता स्वरूप बन जाता है । फिर उसे देवता की पूजा आरम्भ करनी चाहिये । प्राणायाम ध्यान एवं न्यास के द्वारा मनुष्य का शरीर देवता का शरीर बन जाता है । हे प्राज्ञे! करशुद्धि को सुनकर अब न्यास विधि को सुनो ।

मातृका के आद्य = अ को उद्धृत करना चाहिये । फिर दूसरे वर्ण कों बिन्दुसहित सान्त कहना चाहिये । पुनः कादि से संयुक्त और अन्त में एकार होना चाहिये । इसका स्वरूप इस प्रकार होगा—अं आं कं खं गं घं ङं, इं ईं चं छं जं झं ञं, उं ऊं टं ठं डं ढं णं, ऋं ॠं तं णं दं धं नं, ऌं ॡं पं फं बं भं मं, एं ऐं यं रं लं वं शं ओं औं षं सं हं (?) यह विद्या कर को शुद्ध करने वाली बतलायी गयी है । साधक गन्ध के सहित रक्त पुष्प लेकर इसी मन्त्र से हाथ के ऊपर स्थित पुष्प को दाँयें हाथ से मले । इसके बाद बाँयें हाथ से कामबीज के द्वारा झाड़कर वाग्भव बीज से सूँघे, फिर हे पार्वति! शेष बीज (= आं) से उसे ईशान दिशा में फेंक दे ॥ १-७- ॥

घ्राणाद्देवाश्च तुष्यन्ति तीर्थानां च समागमः ॥ ८ ॥
प्रक्षेपात् सर्वविघ्नानां दूरसंस्थानमेव च ।
दुर्गन्धोच्छिष्टसंस्पर्शदूषणं करयोस्तु यत् ॥ ९ ॥
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेद्विधिनामुना ।
करशुद्धिं विधायादावृषिन्यासादिकं ततः ॥ १० ॥
ऋषिच्छन्दो दैवतानां विन्यासेन विना यदा ।
जप्यते साधितेऽप्येष न तत्र तत्फलं लभेत ॥ ११ ॥
ऋषिरस्या महेशानि दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।
पङ्क्तिश्छन्दस्तथा प्रोक्तं विद्यायाः शृणु पार्वति ॥ १२ ॥
देवता परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।
विनियोगः समाख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रसाधने ॥ १३ ॥
शिरसि मुखवृत्ते च हृदये च प्रविन्यसेत् ।

पुष्प के ग्रहण से अङ्गुलियों के अग्रभाग शुद्ध होते हैं । उसके मर्दन से करतल की शुद्धि होती है । निर्मञ्छन (= झटकने?) से दोनों करों के दोनों पृष्ठ शुद्ध होते हैं । फूलों को सूँघने से देवता सन्तुष्ट होते हैं । सूँघने वाले के शरीर में तीर्थों का आगमन होता है । प्रक्षेप से समस्त विघ्न दूर भाग जाते हैं । दुर्गन्ध और जूठा के स्पर्श से हाथों में उत्पन्न जो कोई भी दोष है वह और अज्ञात दोष वह सब साधक इस विधि से नष्ट कर देता है । पहले करशुद्धि कर फिर उसके बाद ऋषि न्यास आदि करना चाहिये । ऋषि छन्द देवता के न्यास के बिना जो जप पूर्ण किया जाता है पूर्ण किये जाने पर भी उसका फल प्राप्त नहीं होता । हे पार्वति! हे महेशानि! इस त्रिपुरसुन्दरी विद्या के ऋषि अव्यय दक्षिणामूर्त्ति हैं । छन्द पंक्ति कहा गया है । देवता परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी है । इसका प्रयोग भोग एवं मोक्ष की सिद्धि में किया जाता है । यह न्यास शिर मुख और हृदय में करना चाहिये ॥ ८-१३- ॥

मातृकां शृणु देवेशि सर्वपापविनाशिनीम् ॥ १४ ॥
या ब्राह्मीप्रमुखा देव्यो मातरः परिकीर्तिताः ।
तासां मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा॥ १५ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ।
ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तश्छन्दो गायत्रमुच्यते ॥ १६ ॥
देवतेयं समुद्दिष्टा समस्तजननी परा ।
शक्तयस्तु(सु?स्व)रा देवि बीजं व्यञ्जनसञ्चयः॥ १७ ॥
विनियोगः समुद्दिष्टः समस्तजनमोहने ।
स्वरेण दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥ १८ ॥
हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः ।
नेत्रम(न्त्रं?स्त्रं)न्यसेत् स्वीयमुद्राजातियुतं नमः॥ १९ ॥
स्वाहा वषड् हुं च वौषट् फडन्तं योजयेत् प्रिये।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपदोत्तरः शिवे ॥ २० ॥

हे देवेशि! अब समस्त पापों को नष्ट करने वाली मातृका को सुनो । ब्राह्मी आदि जो देवियाँ मातायें कही गयी हैं, चन्द्रबिन्दुयुक्त सारे व्यञ्जन सारे सर्वकामफलप्रद स्वर उनके मन्त्र हैं । उस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री, देवता सबकी जननी परा त्रिपुरसुन्दरी, शक्तियाँ स्वर और व्यञ्जनसमूह बीज कहे गये हैं । इसका प्रयोग समस्त जनों के सम्मोहन के विषय में होता है । दीर्घ स्वर से षडङ्गन्यास करना चाहिये । हे देवि! हृदय शिर शिखा कवच नेत्रद्वय अस्त्र का अपनी-अपनी मुद्राओं से न्यास करना चाहिये । प्रत्येक न्यास के अन्त में क्रमशः नमः स्वाहा हुम् वौषट और फट् जोड़ना चाहिये । हे शिवे! यह मातृका का सर्वपदोत्तर षडङ्गन्यास है । इसके बाद ध्यान करना चाहिये ॥ १४-२० ॥

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां
कोदण्डमिक्षुजनितं (स्व?स्म)रपञ्चबाणान् ।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां
ध्यायेत् समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम् ॥ २१ ॥

ध्यान—वह त्रिपुरसुन्दरी करोड़ों बाल सूर्य के समान सुन्दर है । हाथ में स्फटिक मणियों की अक्षमाला धारण की हुई है । ईख का धनुष और काम के पाँच बाण ली हुई है । हाथ में विद्या ली हुई तथा तीन नेत्रों वाली वह अपनी चूडा में बालचन्द्र लगायी हुई है । ऐसी समस्त विश्व की जननी महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये ॥ २१ ॥

अन्तर्मातृकान्यासः

द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान्षोडश चिन्तयेत् ।
हृत्पद्मे द्वादशच्छदे कादीन् द्वादश विन्यसेत् ॥ २२ ॥
दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन् न्यसेद्दश ।
षट्पत्रे लिङ्गमध्यस्थे बकारादीन्न्यसेद्(?रसान्)॥ २३ ॥
आधारे चतुरो वर्णान् वादीन् न्यसेच्चतुर्दले ।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले परिचिन्तयेत् ॥ २४ ॥
इत्यन्तर्मातृकाः स्मृत्वा बहिर्न्यासं ततश्चरेत् ।

अन्तर्मातृका न्यास—षोडशदल कमल से बने कण्ठ में सोलह स्वरों का ध्यान करना चाहिये । द्वादशदल कमल से बने हृदय में क से लेकर बारह अक्षर अर्थात् ठ तक का न्यास करना चाहिये । दशदल से बनी नाभि में ड से लेकर दश वर्ण अर्थात् 'फ' तक न्यास करना चाहिये । षड्दल लिङ्ग के मध्य में ब से लेकर छह दल अर्थात् ल तक का चिन्तन करना चाहिये । चतुर्दल मूलाधार से व से लेकर स तक चार वर्णों का ध्यान करना चाहिये । भ्रूमध्यगत द्विदल कमल में ह और क्ष का चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकार अन्तर्मातृका न्यास करने के बाद बहिर्मातृका न्यास करना चाहिये ॥ २२-२४- ॥

बहिर्मातृकान्यासः

अकारादिक्षकारान्ता मातृकाः परिकीर्तिताः ॥ २५ ॥
प्रत्येकं कामबीजाद्याः सर्वकामफलप्रदाः ।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ता नमोऽन्ताश्च प्रविन्यसेत् ॥ २६ ॥
ललाटे मुखवृत्ते च नेत्रकर्णेषु पार्वति ।
नासागण्डौष्ठदन्तेषु समूर्धास्येषु शाङ्करि ॥ २७ ॥
पाणिपादयुगस्यान्तः सन्ध्यग्रेषु क्रमाच्छिवे ।
पार्श्वद्वये पृष्ठनाभिजठरेषु क्रमान्न्यसेत् ॥ २८ ॥
यादीन् सधातुकान् देवि क्रमेणैव ततो न्यसेत् ।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥ २९ ॥
प्राणात्मा च जीवात्मा च परमात्मा तथैव च ।
हृदये बाहुमूले च तथा कण्ठप्रदेशके ॥ ३० ॥
स्कन्ध(कक्ष)योर्हृदयप्रान्ते पाणिपादयुगे तथा ।
जठराननयोर्देवि सर्वाङ्गेषु क्रमान्न्यसेत् ॥ ३१ ॥

बहिर्मातृका न्यास—अकार से लेकर क्षकार तक के वर्ण मातृका कही जाती हैं । इनमें से प्रत्येक मातृका के पहले कामबीज जोड़ने पर ये मातृकायें सर्वकामफलप्रद हैं । चन्द्रबिन्दु से इनको युक्त कर अन्त में 'नमः' पद कहना चाहिये । (जैसे—क्लीं अं नमः, क्लीं आं नमः, क्लीं इं नमः एवं क्लीं ईं नमः इत्यादि) । हे पार्वति! न्यसनीय अङ्ग निम्नलिखित हैं—१. ललाट, २. मुखवृत्त, ३-४. दोनों नेत्र, ५-६. दोनों कर्ण, ७-८. दोनों नासापुट, ९-१०. दो गण्ड, ११-१२. दो ओष्ठ, १३-१४. दो दन्त, १५. मूर्धा, १६-१७. पाणिद्वय, १८-१९. पादद्वय, २०-२१. दो अन्तः- सन्धि, २२-२३. पार्श्वद्वय, २४. पृष्ठ, १५. नाभि, २६. जठर, २७. त्वक्, २८. रक्त, २९. मांस, ३०. मेदस्, ३१. अस्थि, ३२. मज्जा, ३३. शुक्र, ३४. प्राणात्मा, ३५. जीवात्मा, ३६. परमात्मा, ३७. हृदय, ३८-३९. दो बाहुमूल, ४०. कण्ठदेश, ४१-४२. स्कन्ध द्वय, ४३. हृदयप्रान्त, ४४-४५. पाणियुग, ४६-४७. पादयुग, ४८. जठर, ४९. आनन और ५०. सर्वांग ॥ २५-३१ ॥

ललाटेऽनामिकां मध्यां विन्यसेन्मुखपङ्कजे ।
तर्जनीमध्यमानामावृद्धा एव तु नेत्रयोः ॥ ३२ ॥
अङ्गुष्ठं कर्णयोर्देवि कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ नसोः ।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च मध्यमामोष्ठयोः प्रिये ॥ ३३ ॥
अनामां दन्तयोर्देवि मध्यमामुत्तमाङ्गके ।
मुखेऽनामां मध्यमां च हस्तपादेऽथ पार्श्वयोः ॥ ३४ ॥
कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठेऽथ पार्वति ।
तास्तु साङ्गुष्ठका नाभौ सर्वाः कुक्षौ प्रविन्यसेत्॥ ३५ ॥
हृदये च तलं सर्वं बाह्वोः कण्ठप्रदेशके ।
स्कन्धयोर्हृदयप्रान्ते हस्तपादयुगे तथा ॥ ३६ ॥
जठरास्ययुगे देवि तलमेव प्रकीर्तितम् ।
एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्तिताः ॥ ३७ ॥
अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः।
अनामया वा पुष्पैर्वा मनसा वा न्यसेदुत ॥ ३८ ॥

ललाट में अनामिका, मुख में मध्यमा, दोनों नेत्रों में तर्जनी-मध्यमा, अनामा को न्यस्त करना चाहिये । हे देवि! दोनों कानों में अङ्गुष्ठ को, दोनों नासापुटों में कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ को रखना चाहिये । दोनों गण्डों में तीन मध्य अङ्गुलियों को, दोनों ओष्ठों में मध्यमा का न्यास करना चाहिये । हे देवि! दोनों दाँतों में अनामिका, उत्तमाङ्ग अर्थात् शिर में मध्यमा, मुख में अनामा और मध्यमा, हाथ

पैर और दोनों पार्श्वों में कनिष्ठा अनामिका और मध्यमा और हे पार्वति! पृष्ठदेश में भी उपर्युक्त तीनों को न्यस्त करना चाहिये । अङ्गुष्ठा के सहित उपर्युक्त तीनों को नाभिं पर, कुक्षि में समस्त अङ्गुलियों को न्यस्त करना चाहिये । हृदय में करतल, दोनों भुजाओं कण्ठ, दोनों स्कन्ध, हृदय, दोनों हस्त, दोनों पाद, जठर आस्य (= मुख) में करतल का ही न्यास कहा गया है । ये मातृकामुद्रायें क्रम से कही गयी हैं । जो इनको विना जाने न्यास करता है उसका न्यास निष्फल हो जाता है । यदि समस्त अङ्गुलियों से न्यास सम्भव न हो तो अनामिका, पुष्प अथवा दोनों के अभाव में मन से न्यास करना चाहिये ॥ ३२-३८ ॥

मातृकान्यासमाहात्म्यवर्णनम्

एवं तु मातृकान्यासं य कुर्यात् परमेश्वरि ।
सर्वयज्ञेषु पूजासु पूता योग्यश्च जायते ॥ ३९ ॥
नातः परतरो मन्त्रो विद्यते क्वचिदेव हि ।
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ॥ ४० ॥
ते सर्वे मातृकामन्त्रे नित्यमेव प्रतिष्ठिताः ।
सर्वमन्त्रमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ॥ ४१ ॥
चतुर्वर्गप्रदश्चायं तुष्टिपुष्टिप्रदायकः ।
सर्वपीठमयश्चापि मातृकान्यास उच्यते ॥ ४२ ॥
यः कुर्यान्मातृकान्यासं विनैव सुरपूजनात् ।
तस्माद्बिभेति सततं भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ ४३ ॥
तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्प(र्श?ध)यन्तिमहौजसम् ।

मातृका-न्यास का माहात्म्य—हे परमेश्वरि! जो पुरुष इस प्रकार मातृका न्यास करता है वह समस्त यज्ञों तथा समस्त पूजाओं में पवित्र और उसके योग्य होता है । इससे बढ़कर कहीं भी कोई भी मन्त्र नहीं है । देवताओं, ऋषियों और राक्षसों के जो जो मन्त्र हैं वह सब सर्वदा मातृका मन्त्र में ही स्थित रहते हैं । यह मातृका मन्त्र सर्वमन्त्रमय तथा सर्वदेवमय है । यह धर्म अर्थ काम मोक्ष नामक चतुर्वर्ग का देने वाला एवं तुष्टि पुष्टि का प्रदाता है । यह मातृका-न्यास सर्वपीठमय कहा जाता है । जो साधक मातृकान्यास करता है विना देवपूजा के भी चारों प्रकार के भूत उससे डरते हैं । महा ओजस्वी उस पुरुष को देखने के लिये देवता भी परस्पर स्पर्धा करते हैं ॥ ३९-४३- ॥

स तु सर्वं वशं कुर्यान्न च याति पराभवम् ॥ ४४ ॥
पुटितां सर्वबीजेन समस्तजननीं पराम् ।

पञ्चाशन्मातृकां विद्यां जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ४५ ॥
वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा मूर्ध्नि सर्वाक्षराणि तु ।
द्विधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैर्व्युत्क्रमैरपि ॥ ४६ ॥
मन्त्रयित्वा महेशानि प्रभाते यः पिबेज्जलम् ।
स वाग्मी पण्डितो धीमाञ्जायते प्रवरः कविः ॥ ४७ ॥
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद्बुधः ।
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् प्रिये ॥ ४८ ॥

वह सबको वश में कर लेता है और कभी भी पराजय का मुँह नहीं देखता। सर्वबीज (= ह्सौः) से समस्त विश्व की जननी परा पचास वर्णों वाली मातृका को सम्पुटित कर एक-सौ आठ बार जपना चाहिये । वाग्देवता का हृदय में और शिर में समस्त अक्षरों का ध्यान कर अनुलोम विलोम मातृका मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर जो प्रातःकाल जल पीता है वह वाग्मी पण्डित धीमान् प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ कवि हो जाता है । विद्वान् को चाहिये कि वह पहले चन्द्रबिन्दु से युक्त स्वरों का पाठ करे । हे प्रिये! फिर व्यञ्जन को बिन्दुरहित पढ़े ॥ ४४-४८ ॥

जलं हस्ततले गृह्य पठित्वाऽक्षरसंहतिम् ।
अभिमन्त्र्य च तत्तोयं प्रथमं पू(र्व?र)कैः पिबेत् ॥ ४९ ॥
कुम्भकेन द्वितीयं तु तृतीयं रेचकेन तु ।
एवं सकृत् त्रिवारं तु पीत्वा तोयं विचक्षणः ॥ ५० ॥
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैवं मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥ ५१ ॥
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामांस्तथैव च।
सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥ ५२ ॥
तोयदा(पा?नं) महादेवि पूरकुम्भकरेचकैः ।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ ५३ ॥
भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रमः ।
सर्वत्र दुर्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥
राजानमथवा राजपुत्रं भार्यां च वा प्रिये ।
वशीकरोति न चिरान्मातृकामन्त्रपालकः ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्याससवर्णननामको नवमः पटलः ॥ ९ ॥

* * *

जल को हाथ में लेकर मातृकाओं का पाठ कर उस जल को अभिमन्त्रित कर पहले पूरक से पीना चाहिये। फिर कुम्भक से उस जल को दूसरी बार और रेचक से तीसरी बार उस जल को पीना चाहिये। इस प्रकार विद्वान् एक बार या तीन बार जल पीकर बलवान्, पुष्ट अङ्गों वाला, पण्डित तथा पुत्रपौत्र से युक्त हो जाता है। इस प्रकार मातृका से अभिमन्त्रित जल को तीनों सन्ध्या कालों में पीकर साधक कवित्व एवं समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है। हे महादेवि! जो पूरक कुम्भक और रेचक से तोयपान करता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त कर पुत्र-पौत्र से युक्त होता हुआ लोक में महाकवि, बलवान् और सत्यपराक्रम वाला हो जाता है। वह सर्वत्र दुर्लभ्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। मातृका मन्त्र का जापक राजा, राजपुत्र अथवा भार्या को वश में कर लेता है ॥ ४९-५५ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यास वर्णन नामक नवम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

* * *

दशमः पटलः

षोढान्यासादिनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच—

षोढाख्यां मातृकां देव कथयस्व वृषध्वज ।

षोढान्यासविधिस्तत्फलं च

ईश्वर उवाच—

गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः ॥ १ ॥
नक्षत्रैश्च तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः ।
राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते ॥ २ ॥
षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः ।

षोढा न्यास-विधि और उसका फल—श्रीदेवी ने कहा—हे देव! हे वृषध्वज! षोढा मातृका न्यास का वर्णन कीजिये ।

ईश्वर ने कहा—प्रथम न्यास गणेश के मन्त्रों से, दूसरा ग्रहों के मन्त्रों से माना गया है । तीसरा न्यास नक्षत्रों, चौथा योगिनियों के द्वारा कहा गया है । पाँचवाँ न्यास राशियों तथा छठां पीठों के द्वारा किया जाता है । इसे षोढान्यास कहा गया है । यह सर्वकामफलप्रद है ॥ १-२- ॥

श्रीदेव्युवाच—

फलं चास्य प्रयोगं च विशदीकुरु तत्त्वतः ॥ ३ ॥

श्री देवी ने कहा—आप इसके प्रयोग और प्रयोग के फल को विस्तृत रूप से बतलाइये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच—

नारायणोऽस्यर्षि प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।

शिवशक्त्यात्मवर्ण(ऋषी?राशि)र्देवता च सदाशिवः ॥ ४ ॥
हंसः शक्तिः परा बीजं श्रीबीजं चैव कीलकम् ।
पुरुषार्थप्रसाध्ये च विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥
मूर्ध्नि संचिन्तयेद्देवि श्रीगुरुं शिवरूपिणम् ।
रमांबीजं परं पश्चाद्धंसात् स्वराद्यमीरितम् ॥ ६ ॥
विघ्नेश्वराय वै प्रोच्य श्रियै नमस्ततः परम्[1] ।
विघ्नराजादिकानेवं शक्तियुक्तांस्तथैव च ॥ ७ ॥
विन्यसेन्मातृकास्थाने मातृकङ्कान्वितं शिवे ।
विघ्नराजाय देवेशि (क्रि?ह्रि)यै नमस्तः परम् ॥ ८ ॥
विनायकाय च तुष्ट्यै शान्त्यै शिवोत्तमाय च ।
विघ्नकर्त्रे तथा पुष्ट्यै नम इति प्रविन्यसेत् ॥ ९ ॥
विघ्नहर्त्रे सरस्वत्यै नम इति प्रविन्यसेत् ।
विनायकाय मेधायै पूर्ववदत्र विन्यसेत् ॥ १० ॥
एकदन्ताय कान्त्यै च द्विदन्ताय च यामिनीम् ।
गजवक्त्राय मोहिन्यै निरञ्जनजटे तथा ॥ ११ ॥
कपर्दिने च तीव्रायै ज्वालिनी दीर्घवक्त्रकः ।
शङ्कुकर्णाय नन्दायै स्वरसा च वृषध्वजः ॥ १२ ॥
गणनाथश्च कामिन्या गजेन्द्रश्च शुभा तथा ।
जयिनी शूर्पकर्णश्च सत्यया च त्रिलोचनः ॥ १३ ॥
लम्बोदराय विघ्नेश्यै महानन्दः स्वरूपिणी ।
कामदया चतुर्मूर्तिः सदाशिवस्ततः परम् ॥ १४ ॥

ईश्वर ने कहा—इस षोढा न्यास के ऋषि नारायण कहे गये हैं । छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है । शिवशक्त्यात्मक वर्णराशि और देवता सदाशिव है । हंस (= हं) शक्ति, परा (ह्रीं) बीज और श्रीबीज (= श्रीं) कीलक है । इसका विनियोग पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये होता है । हे देवि! मस्तक में शिवस्वरूप गुरु का ध्यान करना चाहिये । हंस बीज के बाद रमा बीज बाद में प्रथम स्वर फिर 'विघ्नेश्वराय' कहकर 'श्रियै नमः' कहना चाहिये । इसी प्रकार विघ्नराज आदि को शक्तियुक्त कर तथा मातृका के स्थान में एक-एक मातृकायुक्त कर न्यास करना चाहिये । इस प्रकार न्यास का रूप इस क्रम से होगा—

---

[1] अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमो ललाटे इत्यादिरूपो न्यासो बोध्यः ।

१. हं श्रीं अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः ।
२. हं श्रीं आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः ।
३. हं श्रीं इं विनायकाय तुष्ट्यै नमः ।
४. हं श्रीं ईं शिवोत्तमाय शान्त्यै नमः ।
५. हं श्रीं उं विघ्नकर्त्रे पुष्ट्यै नमः ।
६. हं श्रीं ऊं विघ्नहर्त्रे सरस्वत्यै नमः ।
७. हं श्रीं ऋं विनायकाय मेधायै नमः ।
८. हं श्रीं ॠं एकदन्ताय कान्त्यै नमः ।
९. हं श्रीं ऌं द्विदन्ताय यामिन्यै नमः ।
१०. हं श्रीं ॡं गजवक्त्राय मोहिन्यै नमः ।
११. हं श्रीं एं निरञ्जनाय जटायै नमः ।
१२. हं श्रीं ऐं कपर्दिने तीव्रायै नमः ।
१३. हं श्रीं ओं दीर्घवक्त्राय ज्वालिन्यै नमः ।
१४. हं श्रीं औं शङ्कुकर्णाय नन्दायै नमः ।
१५. हं श्रीं अं वृषध्वजाय स्वरसायै नमः ।
१६. हं श्रीं अः गणनाथाय कामिन्यै नमः ।
१७. हं श्रीं कं गजेन्द्राय शुभायै नमः ।
१८. हं श्रीं खं सूर्पकर्णाय जयिन्यै नमः ।
१९. हं श्रीं गं त्रिलोचनाय सत्यायै नमः ।
२०. हं श्रीं घं लम्बोदराय विघ्नेश्यै नमः ।
२१. हं श्रीं ङं महानन्दाय स्वरूपिण्यै नमः ।
२२. हं श्रीं चं चतुर्मूर्त्तये कामदयायै नमः ।
२३. हं श्रीं छं सदाशिवाय मदविह्वलायै नमः ॥ ४-१४ ॥

मदविह्वलया युक्तः आमोदो विकटायुतः ।
दुर्मुखाय च घूर्णायै सुमखो भूतिसंयुतः ॥ १५ ॥
प्रमदाय तथा भूम्यै एकपादो मतिस्तथा ।

द्विजिह्वो रमया युक्तः सुरसेनश्च मानुषी ॥ १६ ॥
मकरध्वजया युक्तो वीरश्च परमेश्वरि ।
षण्मुखाय विकर्णायै वरदो(भृङ्ग? भ्रुकु)टीयुतः॥ १७ ॥
वामदेवाय लज्जायै दीर्घघोणायुतस्ततः ।
वज्रतुण्डो द्विरण्डश्च धनुर्धरायुतः प्रिये ॥ १८ ॥
सेनान्ये चैव यामिन्यै ग्रामणी रात्रिसंयुतः ।
मत्तश्चन्द्रिकया युक्तो विमत्ताय शशिप्रभा ॥ १९ ॥
तथैव परमेशानि लोलया मत्तवाहनः ।
जटि(ले?ने)चपलाक्ष्यै च मुण्डी ऋद्धियुतस्तथा॥ २० ॥
खड्गी दुर्भगया युक्तो वरेण्यः (शु?सु)भगायुतः ।
न्यस्तव्यः परमेशानि शिवया वृषकेतनः ॥ २१ ॥
भक्तप्रियाय दुर्गायै मेघनादाय कामिनी ।
कालकुब्जासमायुक्तो गणेश्वरः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥
गणेशो विघ्नहारिण्या न्यस्तव्यः साधकोत्तमैः ।

२४. हं श्रीं जं आमोदाय विकटायै नमः ।

२५. हं श्रीं झं दुर्मुखाय घूर्णायै नमः ।

२६. हं श्रीं ञं सुमुखाय भूत्यै नमः ।

२७. हं श्रीं टं प्रमदाय भूम्यै नमः ।

२८. हं श्रीं ठं एकपादाय मत्यै नमः ।

२९. हं श्रीं डं द्विजिह्वाय रमायै नमः ।

३०. हं श्रीं ढं सुरसेनाय मानुष्यै नमः ।

३१. हं श्रीं णं वीराय मकरध्वजायै नमः ।

३२. हं श्रीं तं षण्मुखाय विकर्णायै नमः ।

३३. हं श्रीं थं वरदाय भ्रुकुट्यै नमः ।

३४. हं श्रीं दं वामदेवाय लज्जायै नमः ।

३५. हं श्रीं धं वज्रतुण्डाय दीर्घघोणयै नमः ।

३६. हं श्रीं नं द्विरण्डाय धनुर्धरायै नमः ।

३७. हं श्रीं पं सेनान्ये यामिन्यै नमः ।

३८. हं श्रीं फं ग्रामण्यै रात्र्यै नमः ।

३९. हं श्रीं बं मत्राय चन्द्रिकायै नमः ।

४०. हं श्रीं भं विमत्ताय शशिप्रभायै नमः ।

४१. हं श्रीं मं मत्तवाहनाय लोलायै नमः ।

४२. हं श्रीं यं जटिने चपलाक्ष्यै नमः ।

४३. हं श्रीं रं मुण्डिने ऋद्धयै नमः ।

४४. हं श्रीं लं खड्गिने दुर्भगायै नमः ।

४५. हं श्रीं वं वरेण्याय सुभगायै नमः ।

४६. हं श्रीं शं वृषकेतनाय शिवायै नमः ।

४७. हं श्रीं षं भक्तप्रियाय दुर्गायै नमः ।

४८. हं श्रीं सं मेघनादाय कामिन्यै नमः ।

४९. हं श्रीं हं गणेश्वराय कालकुब्जायै नमः ।

५०. हं श्रीं क्षं गणेशाय विघ्नहारिण्यै नमः ॥ १५-२२- ॥

सूर्यमुखान् महादेवि न्यसेत् कामदुघानथ ॥ २३ ॥
स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्वितान् ।
सूर्याय नम उच्चार्य हृदये च प्रविन्यसेत् ॥ २४ ॥
भ्रुवोर्मध्ये तथा सोमं(ष?य)वर्गेण प्रविन्यसेत्।
भूपुत्रं लोचनद्वन्द्वे कवर्गेण तथैव च ॥ २५ ॥
बुधं च हृदये देवि चवर्गेण प्रविन्यसेत् ।
बृहस्पतिं तथा कण्ठे टवर्गेण प्रविन्यसेत् ॥ २६ ॥
भार्गवं तु गले देशे तवर्गेण तथा प्रिये ।
पवर्गेण शनिं नाभौ राहुं गुदे शवर्गकैः ॥ २७ ॥
ळक्षाभ्यां पादयोः केतुं न्यसेदेवं विधानतः ।

हे महादेवि! सूर्य आदि कामदोग्धाओं को न्यस्त करना चाहिये । पहले चन्द्रबिन्दु से युक्त स्वरों को उद्धृत कर 'सूर्याय नमः' का उच्चारण कर हृदय में न्यास करना चाहिये । यवर्ग का उच्चारण कर चन्द्रमा का दोनों भौहों के मध्य न्यास करना चाहिये । भौम को कवर्ग का उच्चारण करते हुए दोनों आँखों में न्यास करना चाहिये । हे देवि! चवर्ग से बुध का हृदय में न्यास करना चाहिये । हे प्रिये! शुक्र को तवर्ग से गल प्रदेश में न्यस्त करना चाहिये । पवर्ग से शनि

को नाभि में तथा शवर्ग से राहु को गुदा में न्यस्त करना चाहिये। ळ क्ष से केतु को दोनों पैरों में न्यस्त करना चाहिये। न्यास स्वरूप—

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्याय नमः—हृदये।

यं रं लं वं सोमाय नमः—भ्रुवोर्मध्ये।

कं खं गं घं ङं भौमाय नमः—नेत्रयोः।

चं छं जं झं ञं बुधाय नमः—हृदये।

टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः—कण्ठे।

तं थं दं धं नं शुक्राय नमः—गलप्रदेशे।

पं फं बं भं मं शनिश्चराय नमः—नाभौ।

शं षं सं हं राहवे नमः—गुदे।

ळं क्षं केतवे नमः—पादयोः॥ २३-२७-॥

नक्षत्रन्यासविधानम्

स्वराद्यं च द्वितीयं च अश्विन्यै नम इत्यपि॥ २८॥
ललाटे च प्रविन्यस्य तथाऽन्यानपि विन्यसेत्।
इंयुतां भरणीं देवी दक्षनेत्रे प्रविन्यसेत्॥ २९॥
ईंउंऊंकृत्तिकां चैव विन्यसेद्वामनेत्रके।
ऋंॠंलृंलॄंयुतां देवि रोहिणीं दक्षकर्णके॥ ३०॥
एंयुतां मृगशीर्षां च वामकर्णे प्रविन्यसेत्।
ऐंकारेण तथार्द्रां च दक्षनासापुटे न्यसेत्॥ ३१॥
ओऔंपुनर्वसुं चैव वामनासापुटे न्यसेत्।
कंयुतं च न्यसेत् पुष्यं कण्ठदेशे च पार्वति॥ ३२॥
खगाभ्यां च तथाश्लेषां दक्षस्कन्धे प्रविन्यसेत्।
घङाभ्यां च मघां देवि वामस्कन्धे प्रविन्यसेत्॥ ३३॥
चम्पूर्वफल्गुनीं चैव दक्षकूर्परके न्यसेत्।
वामकूर्परके देवि छज्झंउत्तरफल्गु(णी?नी)म्॥ ३४॥
दक्षिणे मणिबन्धे तु झंञंहस्तं च विन्यसेत्।
मणिबन्धे तथा वामे टंठंचित्रां प्रविन्यसेत्॥ ३५॥
डङ्कारेण तथा स्वातीं दक्षहस्ततले न्यसेत्।
ढणाभ्यां च विशाखां वै वामहस्ततले तथा॥ ३६॥

तथाभ्यामनुराधां च न्यसेन्नाभौ समाहितः ।
दंधंज्येष्ठां कटौ दक्षे त्रिभिर्मूलं च वामतः ॥ ३७ ॥
पूर्वाषाढां बकारेण दक्षोरौ विन्यसेत् ततः ।
भकारेणोत्तराषाढां वामोरौ तदनन्तरम् ॥ ३८ ॥
दक्षजानुप्रदेशे च मंश्रवणं च विन्यसेत् ।
यंरंयुतां धनिष्ठां च वामे जानुनि विन्यसेत् ॥ ३९ ॥
शतभिषां लकारेण दक्षजङ्घाप्रदेशके ।
वंशंवर्णस्थितां वामे पूर्वभाद्रपदां न्यसेत् ॥ ४० ॥
तथैवोत्तरभाद्रां च षसहैर्दक्षपादतः ।
ळक्षाभ्यां बिन्दु(मद्द्वा?मूर्ध)भ्यां रेवतीं विन्यसेत्ततः ॥ ४१ ॥

अब नक्षत्रों के न्यास का क्रम बतलाया जा रहा है । पहले दूसरे स्वर को कहकर 'अश्विन्यै नमः' कहकर ललाट में न्यस्त करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों का भी न्यास करना चाहिये । उसका न्यासक्रम इस प्रकार है—

१. अं आं अश्विन्यै नमः—इति ललाटे ।

२. इं भरण्यै नमः—इति दक्षनेत्रे ।

३. ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः—इति वामनेत्रे ।

४. ऋं ॠं ऌं ॡं रोहिण्यै नमः—इति दक्षकर्णे ।

५. एं मृगशिरसे नमः—इति वामकर्णे ।

६. ऐं आर्द्रायै नमः—इति दक्षनासापुटे ।

७. ओं औं पुनर्वसवे नमः—इति वामनासापुटे ।

८. कं पुष्याय नमः—इति कण्ठे ।

९. खं गं आश्लेषायै नमः—इति दक्षस्कन्धे ।

१०. घं ङं मघायै नमः—इति वामस्कन्धे ।

११. चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमः—इति दक्षकूर्परे ।

१२. छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमः—इति वाम कूर्परे ।

१३. झं ञं हस्ताय नमः—इति दक्षिणमणिबन्धे ।

१४. टं ठं चित्रायै नमः—इति वाममणिबन्धे ।

१५. डं स्वात्यै नमः—इति दक्षकरतले ।

१६. ढं णं विशाखायै नमः—इति वामकरतले ।

१७. तं थं अनुराधायै नमः—इति नाभौ ।

१८. दं धं ज्येष्ठायै नमः—इति दक्षकट्याम् ।

१९. नं पं फं मूलाय नमः—इति वामकट्याम् ।

२०. बं पूर्वाषाढायै नमः—इति दक्षोरौ ।

२१. भं उत्तराषाढायै नमः—इति वामोरौ ।

२२. मं श्रवणाय नमः—इतिं दक्षजानुनि ।

२३. यं रं धनिष्ठायै नमः—इति वामजानुनि ।

२४. लं शतभिषायै नमः—इति दक्षजङ्घायाम् ।

२५. वं शं पूर्वभाद्रपदाय नमः—इति वामजङ्घायाम् ।

२६. षं सं हं उत्तराभाद्रपदाय नमः—इति दक्षपादे ।

२७. ळं क्षं रेवत्यै नमः—इति वामपादे ॥ २८-४१ ॥

डाकिनीध्यानम्

रक्ताक्षीं च श्वेतवर्णां पशुभीतिकरां शुभाम् ।
खड्गं च चषकं चैव शूलं खट्वाङ्गमेव च ॥ ४२ ॥
अनुग्रामुग्रदंष्ट्रां च एकास्यां रिपुनाशिनीम् ।
पायसान्नप्रसक्तां च स्वरैः कल्पितविग्रहाम् ॥ ४३ ॥
डाकिनीं भावयेद्देवीं सर्वकामप्रपूरणीम् ।

डाकिनी-ध्यान—डाकिनी लाल आँखों वाली है । उसका वर्ण श्वेत है । वह शुभङ्करी तथा पशुओं के अन्दर भय उत्पन्न करने वाली है । हाँथों में खड्ग, पानपात्र, शूल और खट्वाङ्ग धारण की हुई है । वह आकार-प्रकार से ही शान्त है किन्तु उसके दाँत बड़े भयानक हैं । वह एकमुखी तथा शत्रुहन्त्री है । खीर उसे अतिप्रिय है । उसका शरीर स्वर वर्णों से रचित है । सर्वकामप्रपूरणी डाकिनी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये ॥ ४२-४३- ॥

डाकिनीमन्त्रोद्धारः

स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्वितान् ॥ ४४ ॥
ठान्तद्वयं ततः पश्चात् पाशतुरीयभेदितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजद्वयमुदीरितम् ॥ ४५ ॥

ठान्तं भान्तं महीबीजं वारुणं वह्निवायवौ ।
वामकर्णस्ततो देवि नादबिन्दुकलायुतः ॥ ४६ ॥
डाकिन्यै नम इत्यन्ते सबोध्य डाकिनीं ततः ।
(दुग्धान्न?त्वग्धातु)गत इत्युक्त्वा चतुःषष्टिपदं ततः ॥ ४७ ॥
लक्षकोटिपदस्यान्ते योगिनीस्वामिनीति च ।
सर्वसत्त्ववशं ब्रूयात् क(वि?रि) शब्द(मयं?पदं) ततः॥ ४८ ॥
आज्ञां मे देहि तत्पश्चान्मम वि(क्रि?च्चे) पदद्वयम् ।
विशुद्धौ विन्यसेद् देवि राकिनीं चिन्तयेत् ततः ॥ ४९ ॥

डाकिनी-मन्त्र का उद्धार—पहले चन्द्रबिन्दु से युक्त स्वरों को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद दो ठान्त = ड कहना चाहिये । यह ड पाश = आ और तुरीय = ई से युक्त होना चाहिये । इन दोनों बीजों को नाद बिन्दु से युक्त होना चाहिये । ठ का अन्त = ड और भ का अन्त = म, महीबीज = ल, वारुणबीज = व कहना चाहिये । वह्निबीज = र और वायुबीज = य कहने के बाद हे देवि! वामकर्ण को नादबिन्दु कला से युक्त रखना चाहिये । 'डाकिन्यै नमः' । के बाद डाकिनी का सम्बोधन कर 'दुग्धान्नगते' कहकर 'चतुःषष्टि' पद फिर 'लक्षकोटि' पद के अन्त में 'योगिनी स्वामिनी सर्वसत्त्ववशं' कहना चाहिये । इसके बाद 'करि' पद फिर 'आज्ञां मे देहि' तत्पश्चात् 'मम विच्चे' दो पद कहने चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः । डाकिनी दुग्धान्नगते चतुःषष्टिलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ।

हे देवि! यह मन्त्र पढ़कर विशुद्धि में न्यास करना चाहिये । इसके बाद राकिनी का ध्यान करना चाहिये ॥ ४४-४९ ॥

राकिनीध्यानम्

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां दंष्ट्राभीममुखीं तथा ।
नवीननीरदश्यामां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ ५० ॥
शूलं डमरुकं चैव दधतीं वज्रपद्मके ।
शुक्ला(म्वाश?म्बरास)क्तचित्तां च कठवर्णात्मविग्रहाम् ॥ ५१ ॥

राकिनी का ध्यान—हृदयकमल के अन्दर स्थित, भयङ्कर दाँतों के कारण भयानक मुखवाली, नवीन बादल के समान श्यामा, चौड़े और ऊँचे स्तनों वाली, हाथों में त्रिशूल डमरु वज्र एवं कमल ली हुई, शुक्ल अन्न के प्रति आसक्तचित्त वाली क से लेकर ठ तक वर्णों से निर्मित शरीर वाली राकिनी का ध्यान करना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

राकिनीमन्त्रोद्धारः

कठवर्णांस्ततो रेफे पूर्ववत् स्वरभेदिते ।
(चा?ठा)न्तं हित्वाग्निबीजं च पूर्ववत् तदनन्तरम् ॥ ५२ ॥
राकिन्यै नम आभाष्य सम्बोध्य च तथा भवेत् ।
असृग्धातुगते पश्चाद् द्वात्रिंशल्लक्षकोटि च ॥ ५३ ॥
योगिनीस्वामिनि प्रान्ते पूर्ववत् तदनन्तरम् ।

राकिनी-मन्त्र का उद्धार—पूर्ववत् स्वरों को उद्धृत कर फिर कादि ठान्त वर्णों को पूर्ववत् रेफ एवं स्वरवर्णों से युक्त करने पर ठान्त = ड को छोड़ देना चाहिये। अग्निबीज = रं को कहना चाहिये । तदनन्तर 'राकिन्यै नमः' कहकर 'असृग्धातुगते' के पश्चात् 'द्वात्रिंशल्लक्षकोटियोगिनी स्वामिनि' के अन्त में पूर्ववत् शेष शब्दों को कहना चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप—कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं रां रीं इमलवरयूं रूं राकिन्यै नमः राकिनी असृग्धातुगते द्वात्रिंशल्लक्षकोटि-योगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥ ५२-५३- ॥

लाकिनीध्यानम्

रक्तवर्णां त्रिनेत्रां च देवदेवेशसंयुताम् ॥ ५४ ॥
दं(ष्ट्री?ष्ट्रिणी)मुग्ररूपाभां वज्रं शक्तिं वराभयौ।
दधतीं चिन्तयेत् देवीं गुडभक्तोत्सुकां पराम् ॥ ५५ ॥
एवं ध्यात्वा महेशानीं डफवर्णात्मविग्रहाम् ।

लाकिनी का ध्यान—रक्तवर्ण वाली लाकिनी तीन नेत्रों से युक्त है । वह देवदेवेश (= शिव) से संयुत है अर्थात् शिव के वाम भाग में स्थित है । उसके दाँत बड़े तथा भयङ्कर हैं जिनके कारण वह भयानक रूप वाली है । हाथों में वज्र शक्ति वरद एवं अभयमुद्रा धारण की हुई है । गुड़ और भात खाने के लिये उत्सुक परा देवी लाकिनी का ध्यान करना चाहिये । उसका शरीर ड से लेकर फ वर्णों से बना हुआ है ॥ ५४-५५- ॥

लाकिनीमन्त्रोद्धारः

डफवर्णास्ततो देवि भूबीजद्वितयं तथा ॥ ५६ ॥
वह्निं हित्वा म(हा?ही) बीजं पूर्ववदपरं तथा ।
(सा?ला)किन्यै नम उच्चार्य सम्बोध्य च तथा व्रजेत् ॥ ५७ ॥
मांसधातुगते पश्चात् षोडशलक्षकोटितः ।
पूर्ववदपरं सर्वं नाभिपद्मे प्रविन्यसेत् ॥ ५८ ॥

लाकिनी मन्त्र का उद्धार—डादि फान्त वर्ण उसके बाद दो भूबीज (= लं) फिर वह्नि बीज को छोड़कर महीबीज को पूर्ववत् कहकर शेष को कहना चाहिये । 'लाकिन्यै नमः' का उच्चारण कर सम्बोधन कर 'मांसधातुगते' कहना चाहिये । 'षोडशलक्षकोटि' पद के बाद शेष पूर्ववत् कहना चाहिये । इस मन्त्र से नाभिकमल में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लां लीं लमयवरयूं लूं लाकिन्यै नमः लाकिनि मांसधातुगते षोडशलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥ ५६-५८ ॥

काकिनीध्यानम्

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे च काकिनीं परिचिन्तयेत् ।
पीतवर्णां महामत्तां गजकुम्भोपमस्तनीम् ॥ ५९ ॥
दध्यन्ना(श?स)क्तचित्तां च सुरप्रवरवन्दिताम् ।
शूलं डमरुकं चैव पाशं चाभयमेव च ॥ ६० ॥
वहन्तीं परमेशानीं बादिलान्तात्मविग्रहाम् ।

काकिनी का ध्यान—स्वाधिष्ठान नामक कमल में काकिनी का ध्यान करना चाहिये । वह पीत वर्ण की है । महा मतवाली, गजकुम्भ के समान पीन स्तनों वाली, वह दधि अन्न में मन को लगाने वाली अर्थात् दध्यन्नप्रिया कही गयी हैं । सुरश्रेष्ठ के द्वारा स्तुत वह हाथों में त्रिशूल डमरुक पाश एवं अभय मुद्रा धारण की है । उस परमेश्वरी का शरीर ब से लेकर ल तक के वर्णों से बना है ॥ ५९-६०- ॥

काकिनीमन्त्रोद्धारः

बादिलान्तास्तथा काङ्कींकमलवरयूं ततः ॥ ६१ ॥
काकिन्यै नम इत्यन्ते सम्बोध्य चैव काकिनीम् ।
मेदोधातुगते पश्चात् तथाष्ट(दल?लक्ष)कोटि च ॥ ६२ ॥
योगिनीस्वामिनि प्रोच्य पूर्ववदपरं तथा ।

काकिनी मन्त्र का उद्धार—ब से लेकर ल तक के वर्ण तथा 'कां कीं कमलवरयूं काकिन्यै नमः' के बाद काकिनी को सम्बोधित कर 'मेदोधातुगते अष्टलक्ष कोटियोगिनीस्वामिनि' कहकर शेष पूर्ववत् कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—बं भं मं यं रं लं कां कीं कमलवरयूं काकिन्यै नमः, काकिनि मेदोधातुगते अष्टलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥ ६१-६२- ॥

शाकिनीध्यानम्

पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां च वह्निभानुस्वरूपिणीम् ॥ ६३ ॥
चापं बाणं तथा पाशं सृणिं च पुस्तकं तथा ।
ज्ञानमुद्रां च हस्ताब्जैर्दधतीं परमेश्वरीम् ॥ ६४ ॥
मुद्गान्नप्रीतिसंयुक्तां मूलाधारे विचिन्तयेत् ।

शाकिनी ध्यान—शाकिनी देवी पाँच मुखों वाली है । प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र है । वह अग्नि-सूर्य-रूपिणी है । छह हाथों में उन्होंने क्रमशः धनुष, बाण, पाश, सृणि (= हाथी को हाँकने वाला अङ्कुश) पुस्तक (= वेद) तथा ज्ञानमुद्रा धारण की हुई है । मूँग का भोजन उन्हें प्रिय है । इनका ध्यान मूलाधार में करना चाहिये ॥ ६३-६४- ॥

शकिनीमन्त्रोद्धार:

वादि(ध?सा)न्तास्तथा सांसींसमलवरयूं तथा ॥ ६५ ॥
(शा?सा)किन्यै नम इत्यन्ते सम्बोध्य साकिनीं ततः।
अस्थिधातुगते चैव चतुर्लक्षेति कोटि च ॥ ६६ ॥
योगि(नि?नी)स्वामिनि प्रान्ते वरवरदपदं तथा ।

शाकिनी मन्त्र का उद्धार—व से लेकर स तक वर्ण तथा 'सां सीं समलवरयूं शाकिन्यै नमः शाकिनि अस्थिधातुगते चतुर्लक्षकोटियोगिनीस्वामिनि वरवरदे सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—वं शं षं सं सां सीं समलवरयूं शाकिन्यै नमः शाकिनि अस्थिधातुगते चतुर्लक्षकोटियोगिनीस्वामिनि वरवरदे सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥ ६५-६६- ॥

हाकिनीध्यानम्

बिन्दुस्थां शुक्लवर्णां चहक्षवर्णस्वरूपिणीम् ॥ ६७ ॥
डमरुं चाक्षसूत्रं च कपालं खड्गमेव च ।
पुस्तकं ज्ञानमुद्रां च दधतीं बाहुभिः सदा ॥ ६८ ॥
लोचनत्रयसंयुक्तां षड्वक्त्रां सर्वमोहिनीम् ।
हरिद्रान्नप्रसक्तां च मधुमदमुदान्विताम् ॥ ६९ ॥
देवेन्द्रवन्दितां देवीं भावयेद्धाकिनीं पराम् ।

हाकिनी का ध्यान—बिन्दु पर स्थित, शुक्ल वर्ण वाली, ह क्ष वर्णरूपिणी वह हाकिनी देवी डमरु अक्षमाला कपाल खड्ग पुस्तक और ज्ञानमुद्रा को हाथों

में धारण की हुई है । यह छह मुखों वाली देवी तीन-तीन नेत्रों वाली है । सर्वमोहिनी यह देवी हल्दीमिश्रित अन्न पसन्द करती है । मधु के मद से वह प्रमोदयुक्त रहती है । देवेन्द्र के द्वारा वन्दित इस परा देवी हाकिनी का ध्यान करना चाहिये ॥ ६७-६९- ॥

हाकिनीमन्त्रोद्धारः

हंक्षंहांहीं च देवेशि हमलवरयूं तथा ॥ ७० ॥
हाकिन्यै नम उच्चार्य सम्बोध्यचैव हाकिनीम् ।
मज्जाधातुगते पश्चाद् द्विलक्षकोटिशब्दतः ॥ ७१ ॥
शेषं पूर्ववदुद्धृत्य भ्रुवोर्मध्ये प्रविन्यसेत् ।

हाकिनी मन्त्र का उद्धार—'हं क्षं हां हीं' के बाद हे देवेशि! हमलवरयूं हाकिन्यै नमः' का उच्चारण कर हाकिनी का सम्बोधन करने के बाद 'मज्जाधातुगते' कहना चाहिये । बाद में 'द्विलक्षकोटि' शब्द के बाद शेष पूर्ववत् उद्धृत करना चाहिये । दोनों भौहों के मध्य अर्थात् आज्ञा चक्र में इसका ध्यान करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—हं क्षं हां हीं हमलवरयूं हाकिन्यै नमः हाकिनि मज्जाधातुगते द्विलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥७०-७१-॥

याकिनीमन्त्रोद्धारः

अकारादिक्षकारान्तां मातृकां सर्वमुच्चरेत् ॥ ७२ ॥
यांयीं तु परमेशानि यमलवरयूं तथा ।
याकिन्यै नम इत्यन्तेसम्बोध्यैव तु याकिनीम् ॥ ७३ ॥
शुक्रधातुगते पश्चाद्दशकोटिपदं ततः ।
पूर्ववच्च प्रविन्यस्य राशिन्यासमतः परम् ॥ ७४ ॥

याकिनी[१] मन्त्र का उद्धार—अ से लेकर क्ष तक सम्पूर्ण मातृकाओं का उच्चारण करना चाहिये । हे परमेशानि! उसके बाद यां यीं यमलवरयूं याकिन्यै नमः' कहना चाहिये । फिर याकिनी का सम्बोधन कर 'शुक्रधातुगते' के पश्चात् 'दशकोटि' पद और शेष पूर्ववत् कहना चाहिये । इसका ध्यान सहस्रार से करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं

---

[१] यहाँ ग्रन्थ में याकिनी देवी के स्वरूप का वर्णन नहीं है ।

रं लं वं शं षं हं क्षं यां यीं यमलवरयूं याकिन्यै नमः याकिनि शुक्रधातुगते दशकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्वशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे) ॥ ७२-७४ ॥

मेषादिराशीनां न्यासः

वेदार्णैर्दक्षगुल्फेऽथ मेषं विन्यस्य पार्वति ।
दक्षजानौ वृषं त्र्यर्णैर्वृषणे मिथुनं त्रिभिः ॥ ७५ ॥
द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ द्वाभ्यां स्कन्धेऽथ सिंहकम् ।
अनुस्वारविसर्गाभ्यां शवर्गेण च कन्यकाम् ॥ ७६ ॥
दक्षिणे च शिरोभागे विन्यसेद्वीरवन्दिते ।
तथा वामशिरोभागे कवर्गेण तुलां न्यसेत् ॥ ७७ ॥
चवर्गेण तथा स्कन्धे वृश्चिकं विन्यसेत् ततः ।
टवर्गेण तथा कुक्षौ धन्विनं विन्यसेत् ततः ॥ ७८ ॥
मकरं तु तवर्गेण वृषणे (दक्षिणे?वामके) न्यसेत् ।
पवर्गेण तथा कुम्भं वामजानुनि विन्यसेत् ॥ ७९ ॥
यवर्गेण क्षकारेण मीनं गुल्फे तु वामके ।
चतुर्थीनतिसंयुक्तं स्थानेष्वेवं क्रमान्न्यसेत् ॥ ८० ॥

मेष आदि राशियों का न्यास—हे पार्वति! चार वर्णों से दक्षिण गुल्फ में मेष का न्यास करने के बाद दाँयें जानु में तीन वर्णों से वृष का न्यास करना चाहिये। तीन वर्णों से वृषण (= अण्डकोश) में मिथुन का न्यास कर दो वर्णों से कुक्षि में कर्क का न्यास करना चाहिये । दो वर्णों से स्कन्धों में सिंह का, अनुस्वार विसर्ग और शवर्ग से कन्या का हे वीरवन्दिते!, दक्षिण शिरोभाग में न्यास करना चाहिये । कवर्ग से तुला का वाम शिरोभाग में न्यास करना चाहिये। चवर्ग से स्कन्ध में वृश्चिक को न्यस्त कर टवर्ग से कुक्षि में धनुष का न्यास करणीय होता है । तवर्ग में मकर का वृषण में न्यास करने के बाद पवर्ग से कुम्भ का वाम जानु में न्यास करना चाहिये । यवर्ग और क्षकार से वाम गुल्फ में मीन का न्यास करना चाहिये । राशियों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर 'नमः' का प्रयोग करते हुए इन उपर्युक्त स्थानों में क्रम से न्यास करना चाहिये ।

(न्यास का स्वरूप—

अं आं इं ईं मेषाय नमः—इति दक्षिणगुल्फे ।

उं ऊं ऋं वृषाय नमः—इति दक्षिणजानुनि ।

ॠं ऌं ॡं मिथुनाय नमः—इति दक्षिणवृषणे ।

एं ऐं कर्कटाय नमः—इति दक्षिणकुक्षौ ।

ओं औं सिंहाय नमः—इति दक्षिणस्कन्धे ।

अं अः शं षं सं हं कन्यायै नमः—इति दक्षिणशिरोभागे ।

कं खं गं घं ङं तुलायै नमः—इति वामशिरोभागे ।

चं छं जं झं ञं वृश्चिकाय नमः—इति वामस्कन्धे ।

टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः—इति वामकुक्षौ ।

तं थं दं धं नं मकराय नमः—इति वामवृषणे ।

पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः—इति वामजानुनि ।

यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः—इति वामगुल्फे) ॥ ७५-८० ॥

पीठन्यासवर्णनम्

अथ(पि?पी)ठानि विधिना यथास्थाने प्रविन्यसेत् ।
परापूर्वं च सर्वेषां मातृकां च पृथक् पृथक् ॥ ८१ ॥
चतुर्थीनतियुक्तानि मातृकावन्न्यसेत् क्रमात् ।
कामरूपं महापीठं वाराणसीं ततः परम् ॥ ८२ ॥
नेपालं च महापीठं पौण्ड्रवर्धनमेव च ।
पुरस्थिरं महादेवि चरस्थिरमतः परम् ॥ ८३ ॥
पूर्णशैलं महापीठमर्बुदं च ततः परम् ।
काश्मीरं च तथा पीठं कान्यकुब्जमथो भवेत् ॥ ८४ ॥
आम्रातकेश्वरं पीठमेकाम्रं च ततः शिवे ।
त्रिस्रोतः पीठमुद्दिष्टं कामकोट्टमतः परम् ॥ ८५ ॥
कैलासं भूतनगरं केदारं पीठमुत्तमम् ।
श्रीपीठं च तथौंकारं जालन्धरमतः परम् ॥ ८६ ॥
मालवं च कुलान्तं च देवमातृकमेव च ।
गोकर्णं च ततो देवि मारुतेश्वरमेव च ॥ ८७ ॥
अट्टहासं च विरजं राजगृहमतः परम् ।
पीठं कोल्लगिरिं चैव एलापुरमतः प्रिये ॥ ८८ ॥
कालेश्वरमहापीठं प्रणवं च जयन्तिका ।
पीठमुज्जयिनीं चैव क्षीरिकापीठमेव च ॥ ८९ ॥
हस्तिनापुरकं पीठं पीठमुड्डीशमेव च ।
प्रयागं चैव षष्ठीशं मायापुरजलेश्वरौ ॥ ९० ॥

मलयं च महापीठं श्रीशैलमथवापि च ।
मेरुं गिरिं महेन्द्रं च वामनं चापि विन्यसेत् ॥ ९१ ॥
हिरण्यपुरकं पीठं महालक्ष्मीपुरं च वै ।
उड्डीयानं महापीठं छायापुरमतः परम् ॥ ९२ ॥

पीठन्यास वर्णन—इसके पश्चात् पीठों का विधिपूर्वक यथास्थान न्यास करना चाहिये । पहले परा का उच्चारण कर बाद में मातृकाओं का पृथक्-पृथक् उच्चारण करना चाहिये । तत्पश्चात् पीठों का चतुर्थ्यन्त तथा 'नमः' के साथ उच्चारण कर मातृका के समान क्रमशः न्यास करना चाहिये । पीठों के नाम इस प्रकार हैं—१. कामरूप, २. वाराणसी, ३. नेपाल, ४. पौण्ड्रवर्धन, ५. पुरस्थित, ६. चरस्थित, ७. पूर्णशैल, ८. अर्बुद, ९. काश्मीर, १०. कान्यकुब्ज, ११. आम्रातकेश्वर, १२. एकाम्र, १३. त्रिस्रोतः, १४. कामकोट्ट, १५. कैलास, १६. भूतनगर, १७. केदार, १८. श्रीपीठ, १९. ओंकारेश्वर, २०. जालन्धर, २१. मालव, २२. कुलान्तक, २३. देवमातृक, २४. गोकर्ण, २५. मरुतेश्वर, २६. अट्टहास, २७. विरज, २८. राजगृह, २९. कोल्लगिरि, ३०. मारुतेश्वर, ३१. कालेश्वर, ३२. प्रणव, ३३. जयन्तिका, ३४. उज्जयिनी, ३५. क्षीरिका, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उड्डीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्ठीश, ४०. मायापुर (= हरिद्वार), ४१. जलेश्वर, ४२. मलय, ४३. श्रीशैल, ४४. सुमेरुगिरि, ४५. महेन्द्रगिरि, ४६. वामन, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मीपुर, ४९. उड्डीयान और ५०. छायापुर ।

(पीठन्यास का स्वरूप—

१. ओं अं कामरूपाय नमः—इति ललाटे ।

२. ओं आं वाराणस्यै नमः—इति मुखवृत्ते[1] ।

३. ओं इं नेपालाय नमः—इति ।

४. ओं ईं पौण्ड्रवर्धनाय नमः—इति ।

५. ओं उं पुरःस्थिताय नमः—इति ।

६. ओं ऊं चरस्थिताय नमः—इति ।

७. ओं ऋं पूर्णशैलाय नमः—इति ।

८. ओं ॠं अर्बुदाय नमः—इति ।

---

[1] पूर्ववर्णित न्यास में ५० अङ्गों के नाम दिये गये हैं । उसी प्रकार यहाँ भी अङ्गों के नाम जोड़ने चाहिये । उदाहरण के लिये ललाटे मुखवृत्ते कह दिया गया है ।

९. ओं ऌं काश्मीराय नमः—इति ।
१०. ओं ॡं कान्यकुब्जाय नमः—इति ।
११. ओं एं आम्रातकेश्वराय नमः—इति ।
१२. ओं ऐं एकाम्राय नमः—इति ।
१३. ओं ओं त्रिस्तोतसे नमः—इति ।
१४. ओं औं कामकोट्टाय नमः—इति ।
१५. ओं अं कैलासाय नमः—इति ।
१६. ओं अः भूतनगराय नमः—इति ।
१७. ओं कं केदाराय नमः—इति ।
१८. ओं खं श्रीपीठाय नमः—इति ।
१९ ओं गं ओंकारेश्वराय नमः—इति ।
२०. ओं घं जालन्धराय नमः—इति ।
२१. ओं ङं मालवाय नमः—इति ।
२२. ओं चं कुलान्ताय नमः—इति ।
२३. ओं छं देवमातृकाय नमः—इति ।
२४. ओं जं गोकर्णाय नमः—इति ।
२५. ओं झं मारुतेश्वराय नमः—इति ।
२६. ओं ञं अट्टहासाय नमः—इति ।
२७. ओं टं विरजाय नमः—इति ।
२८. ओं ठं राजगृहाय नमः—इति ।
२९. ओं डं कोल्लगिरये नमः—इति ।
३०. ओं ढं एलापुराय नमः—इति ।
३१. ओं णं कालेश्वराय नमः—इति ।
३२. ओं तं प्रणवाय नमः—इति ।
३३. ओं थं जयन्तिकायै नमः—इति ।
३४. ओं दं उज्जयिन्यै नमः—इति ।

३५. ओं धं क्षीरिकायै नमः—इति ।

३६. ओं नं हस्तिनापुराय नमः—इति ।

३७. ओं पं उड्डीशाय नमः—इति ।

३८. ओं फं प्रयागाय नमः—इति ।

३९. ओं बं षष्ठीशाय नमः—इति ।

४०. ओं भं मायापुराय नमः—इति ।

४१. ओं मं जलेश्वराय नमः—इति ।

४२. ओं यं मलयाय नमः—इति ।

४३. ओं रं श्रीशैलाय नमः—इति ।

४४. ओं लं मेरवे नमः—इति ।

४५. ओं वं महेन्द्राय नमः—इति ।

४६. ओं शं वामनाय नमः—इति ।

४७. ओं षं हिरण्यपुराय नमः—इति ।

४८. ओं सं महालक्ष्मीपुराय नमः—इति ।

४९. ओं हं उड्डीयानाय नमः—इति ।

५०. ओं क्षं छायापुराय नमः—इति ।) ॥ ८१-९२ ॥

षोढान्यासमाहात्म्यकथनम्

षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वपापहरः सदा ।
षोढान्यासविहीनो यः प्रणमेद्देवि सुन्दरीम् ॥ ९३ ॥
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते ।
एवं न्यस्तशरीरस्तु भवेद् गङ्गाधरः स्वयम् ॥ ९४ ॥
मन्त्री न चात्र संदेहो निग्रहानुग्रहक्षमः ।
न तस्य पूज्यो लोकेऽस्मिन् पितृमातृमुखो नरः ॥ ९५ ॥
स्वयं च साधकश्रेष्ठो यं कंचन च(विन्दति?वन्दते)।
स म(र्थो?र्त्यो)मृत्युमाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥ ९६ ॥
नमस्कारं न कुर्वीत ज्येष्ठस्यापि कदाचन ।
गुरोरपि न पद्येत म्रियते नात्र संशयः ॥ ९७ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नमस्कारं विवर्जयेत् ।

षोढान्यास का माहात्म्य—इस षोढान्यास को सदा सर्वपापहर कहा गया है। हे देवि! जो षोढान्यास से रहित होकर त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करता है वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है और नरक को जाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार अपने शरीर में पीठों का न्यास कर लेता है वह साक्षात् शिव हो जाता है। वह मन्त्री निग्रह और अनुग्रह में समर्थ हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं। यहाँ तक कि पिता माता आदि गुरुजन भी उसके प्रणम्य नहीं होते। वह श्रेष्ठ साधक जिस किसी मनुष्य को प्रणाम करता है वह प्रणाम किया गया मर्त्य तत्काल मर जाता है;[१] इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। न्यासी को चाहिये कि वह अपने से ज्येष्ठ को भी प्रणाम न करे। यहाँ तक कि गुरु को भी प्रणाम नहीं करना चाहिये अन्यथा गुरु का भी देहान्त हो जायगा; इसमें सन्देह नहीं। इसलिये पूर्ण प्रयास कर नमस्कार का त्याग करना चाहिये ॥ ९३-९७- ॥

कामं क्रोधं तथा लोभं मायाहङ्कारमेव च ॥ ९८ ॥
सङ्कल्पं भोजनालापं न कुर्यात् केनचित्सह।
भोक्तव्यं योषिता सार्धं यत्किंचित् तत्तयैव हि ॥ ९९ ॥
विन्यसेद्देवि युक्तात्मा त्रिकालं च दिवा निशि।
यथा साभ्यासयोगेन सामर्थ्यं तद्वदाम्यहम् ॥ १०० ॥

काम क्रोध लोभ माया अहङ्कार सङ्कल्प छोड़ देना चाहिये। किसी के साथ भोजन या बातचीत नहीं करना चाहिये। केवल पत्नी के साथ भोजन करना चाहिये या जो कुछ करना है उसी के साथ करना चाहिये। हे देवि! दिन और रात्रि में तीन बार न्यास करना चाहिये। जिस प्रकार न्यास का अभ्यास करने से शक्ति प्राप्त होती है उसे मैं बतला रहा हूँ ॥ ९८-१०० ॥

यत्रायं निवसेद्देवि षोढान्यासी च साधकः।
दिव्यं क्षेत्रं भवेत्तत्र समन्ताच्छतयोजनम् ॥ १०१ ॥
देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः।
कृत्वा न्यासमिमं देवि यत्र गच्छति साधकः ॥ १०२ ॥

---

[१] भास्करराय के दरवाजे से एक संन्यासी प्रतिदिन नदी स्नान के लिये जाया करते थे। भास्करराय उन संन्यासी को कभी भी प्रणाम नहीं करते थे। एक दिन संन्यासी ने पूछा—भास्कर! संन्यासी सबका प्रणम्य होता है फिर तुम मुझे प्रणाम क्यों नहीं करते। भास्करराय ने कहा—यदि मैं आपको प्रणाम करूँ तो आपका देहान्त हो जायगा। संन्यासी को विश्वास नहीं हुआ। श्रीराय ने कहा—आप अपना दण्ड भूमि पर रख दें। मैं इसे प्रणाम करता हूँ। संन्यासी ने दण्ड भूमि पर रखा। भास्करराय ने ज्यों प्रणाम किया दण्ड जल कर राख हो गया।

तत्र यद्विषये चैव यन्मानं पुरुषैः सह ।
द्यावान्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिनः ॥ १०३ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षकूष्माण्डराक्षसाः ।
पश्यन्ति पावकारूढं ये चान्ये हिंसका जनाः ॥ १०४ ॥
शत्रुसंहतिसङ्कीर्णे संग्रामेऽथापदेषु च ।
न भयं विद्यते तस्य परत्र शिवतां व्रजेत् ॥ १०५ ॥
ये केचित् पापसङ्घाताः सप्तजन्मान्तरोद्भवाः ।
नश्यन्ति न्यासमात्रेण भास्करेण तमो यथा ॥ १०६ ॥
सतताभ्यासयोगेन षण्मासेन च मानवे ।
दह्यते सर्वपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
किंचातिबहुनोक्तेन मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ १०७ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे षोढान्यासक्रमनिरूपणनामा दशमः पटलः ॥ १० ॥

* * *

यह षोढान्यासी साधक जहाँ रहता है उसके आसपास सौ योजन तक का क्षेत्र दिव्य हो जाता है । सारे देवता उसे नमस्कार करते हैं । मैं स्वयं उसे नमस्कार करता हूँ । इसमें सन्देह नहीं । हे देवि! इस न्यास को करके साधक जहाँ भी जाता है । स्वर्ग अन्तरिक्ष पृथ्वी पहाड़ जल जङ्गल में रहने वाले भूतप्रेत पिशाच यक्ष कूष्माण्ड राक्षस और अन्य जो हिंसक प्राणी हैं वे उसे आग पर सवार देखते हैं । शत्रुओं से भरे संग्रामक्षेत्र में अथवा आपत्ति के समय उसे कभी भय नहीं होता । मरने के बाद वह शिवत्व को प्राप्त होता है । पिछले सात जन्मों में उसके द्वारा किये गये जो भी पाप हैं वे केवल इस न्यास से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे अन्धकार सूर्य से नष्ट होता है । छह मास तक निरन्तर अभ्यास करने से ब्रह्महत्या आदि सारे पाप दग्ध हो जाते हैं । अधिक कहने से क्या लाभ । वह न्यासी मेरे सदृश हो जाता है ॥ १०१-१०७ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में षोढान्यासक्रमनिरूपण
नामक दशम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १० ॥

* * *

एकादशः पटलः

नित्यन्यासान्तर्यागविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

करशुद्धिर्ऋषिन्यास आसनं च ततः परम् ।
कराङ्गयोः षडङ्गानि वशिन्याद्यमतः परम् ॥ १ ॥
न(र?व)योनिचतुर्व्यूहतत्त्वन्यासादिकं तथा ।
मूलवर्णादिविन्यासः सम्मोहनाख्य एव च ॥ २ ॥
एतदेव हि नित्यं स्यात् काम्यं चान्यत् प्रकीर्तितम् ।

सम्मोहन आदि न्यास वर्णन का उपक्रम—ईश्वर ने कहा—करशुद्धि ऋषिन्यास आसनन्यास कराङ्गन्यास षडङ्गन्यास वशिनी आदि नवयोनि चतुर्व्यूह तत्त्वन्यास मूलवर्ण आदि सम्मोहन न्यास इतने कार्य नित्य करणीय होते हैं । अन्य कार्य काम्य कहे गये हैं ॥ १-२- ॥

आसनन्यासमन्त्रः

करशुद्धिकरीपूर्वं त्रिपुरेति पदं ततः ॥ ३ ॥
अमृतार्णवशब्दोपर्यासनाय नमो मनुः ।
पादयोर्विन्यसेत् पश्चाद्बालान्ते त्रिपुरेश्वरी ॥ ४ ॥
पीताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत् ।
ह्रींक्लींसौस्त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदं ततः ॥ ५ ॥
ङेन्तमात्मासनायान्ते नम(उच्चार्य?ऊर्वोःप्र) विन्यसेत्।
आद्यं मध्यं तथान्तं च(श?कु)मार्याः शिवसंयुतम् ॥ ६ ॥
त्रिपुरवासिनीत्युक्त्वा चक्रासनाय हृत्ततः ।
कटिद्वये प्रविन्यस्य शिवं सोमयुतं कुरु ॥ ७ ॥
एतस्या एव विद्यायास्त्रिपुरश्रीपदं ततः ।
सर्वमन्त्रासनायान्ते नमो गुह्ये प्रविन्यसेत् ॥ ८ ॥

आसन न्यास का मन्त्र—पहले करशुद्धिकरी विद्या फिर 'त्रिपुर' पद उसके बाद 'अमृतार्णव' शब्द के पश्चात् 'आसनाय नमः' इस मन्त्र से दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये । बाला बीज के बाद 'त्रिपुरेश्वरी' पद फिर 'पीताम्बुजासनाय' के अन्त में 'नमः' । इससे जानुओं में न्यास करना चाहिये । 'ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुर' कहकर 'सुन्दरी' पद फिर ङेऽन्त 'आत्मासनाय नमः' का उच्चारण कर दोनों ऊरुओं में न्यास करना चाहिये । 'कुमारी' के आदि मध्य और अन्त को शिव से युक्त कर 'त्रिपुरवासिनी' कहकर 'चक्रासनाय' हृदय अर्थात् 'नमः' इससे दोनों कटिप्रदेश में न्यास कर शिव (= ह) को सोम से जोड़ना चाहिये । फिर इसी विद्या के साथ 'त्रिपुरश्री' पद कहकर 'सर्वमन्त्रासनाय' अन्त में 'नमः' इससे गुह्य में न्यास करना चाहिये ॥ ३-८ ॥

परा च कामबीजं च वारुणं त्विन्द्रसंयुतम् ।
योनियुक्तं सबिन्दुं च त्रिपुरमालिनी ततः ॥ ९ ॥
साध्यासनाय मूले च नम इति प्रविन्यसेत् ।
मायाबीजं रमाबीजं कुमार्याश्च तृतीयकम् ॥ १० ॥
तथा त्रिपुरसिद्धान्ते साध्यसिद्धासनं ततः ।
नाभिदेशे प्रविन्यस्य हृदये च प्रविन्यसेत् ॥ ११ ॥
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम् ।
कामराजं कुमार्यास्तु शिवचन्द्रान्वितं कुरु ॥ १२ ॥
पृथ्वीबीजात्ततो वह्निं शक्तिबीजे ततः परम् ।
शिववह्नी नियोज्यैव हित्वा सर्गं तु बैन्दवम् ॥ १३ ॥
संयोज्य परमेशानि त्रिपुराम्बापदं ततः ।
प(र्वण?र्यङ्क)शक्तिपीठाय नमो हृदि प्रविन्यसेत् ॥ १४ ॥
वदन्याशेषबीजान्ते महात्रिपुरभैर(व?वी) ।
सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय चालिखेत् ॥ १५ ॥
नम इत्यज(बंद्धे?रन्ध्रे)तु विन्यसेत् साधकोत्तमः ।

परा कामबीज वारुणबीज इन्द्रबीज योनि और बिन्दु से युक्त कर फिर 'त्रिपुरमालिनी' पद तत्पश्चात् 'साध्यासनाय नमः' कहना चाहिये । इससे मूलाधार में न्यास करना चाहिये । मायाबीज रमाबीज कुमारीबीज तथा 'त्रिपुरसिद्धान्ते साध्यसिद्धासन' कहकर नाभिप्रदेश में न्यास करना चाहिये । इसके अनन्तर हृदय में न्यास करना चाहिये । न्यास का उद्धार इस प्रकार है—शिव और चन्द्र को अग्नि से जोड़ें । तदनन्तर वाग्भवबीज फिर कामराजबीज । कुमारी को शिव चन्द्र से युक्त करना चाहिये । शिवबीज और वह्निबीज को जोड़कर विसर्ग को छोड़

बिन्दु को जोड़ना चाहिये । फिर 'त्रिपुराम्बा' पद 'पर्यंकशक्तिपीठाय नमः' से हृदय में न्यास करना चाहिये । वदन्या अर्थात् सम्पत्प्रदा भैरवी के सम्पूर्ण बीज के अन्त में 'महात्रिपुरभैरवी सदाशिव महाप्रेतपद्मासनाय' लिखना चाहिये । 'नमः' कहकर साधकोत्तम अजरन्ध्र = ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करे । (मन्त्र-स्वरूप—

१. अं आं सौः त्रिपुरामृतार्णवासनाय नमः—इति पादयोः ।

२. ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी पीताम्बुजासनाय नमः—इति जान्वोः ।

३. ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी आत्मासनाय नमः—इति उर्वोः ।

४. ऐं क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रासनाय नमः—इति कटिद्वये ।

५. ऐं क्लीं स्हौः त्रिपुरश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः—इति गुंह्ये ।

६. ह्रीं क्लीं व्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यासनाय नमः—इति मूलाधारे ।

७. ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरसिद्धासाध्यसिद्धासनाय नमः—इति नाभौ ।

८. स्रैं ह्लैं क्लीं सैं हैं लैं ह्लं त्रिपुराम्बा पर्यंकशक्तिपीठाय नमः—इति हृदये ।

९. हस्रौ हसकलरीं हसरौं महात्रिपुभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः—इति ब्रह्मरन्ध्रे ॥ ९-१५- ॥

वशिन्यादिवाग्देवतान्यासः

वह्निर्वरुणशक्रं च षष्ठस्वरविभूषितम् ॥ १६ ॥
नादबिन्दुकलायुक्तं वशिनीति पदं ततः ।
वाग्देवता चतुर्थ्यन्ता नमः स्वरैः प्रविन्यसेत् ॥ १७ ॥
मादनं शक्रमारूढं महामाया ततः परम् ।
इयं कामेश्वरी ज्ञेया कवर्गेण ललाटके ॥ १८ ॥
धान्तं वरुणमिन्द्रं च चतुर्थस्वरबिन्दुकम् ।
एषैव मोदिनी देवी भ्रुवोर्मध्ये च वर्गके ॥ १९ ॥
वायुं पुरन्दरं देवि षष्ठस्वरविभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं विमलेयं समीरिता ॥ २० ॥
न्यस्तव्या कण्ठदेशे तु टवर्गेणैव पार्वति ।
छान्तं भान्तं च ज्वलनं तुरीयस्वरबिन्दुकम् ॥ २१ ॥
बरुणेयं तु वाग्देवी तवर्गेण हृदि स्मृता ।
जयिनी च ततो देवि नकुलिः सोमशक्रकम् ॥ २२ ॥
वारुणं वायुबीजं च षष्ठस्वरविभूषितम् ।

नाभिदेशे समाख्याता पवर्गेण वरानने ॥ २३ ॥
जान्तं भान्तं ततो रेफं वायुबीजसमन्वितम् ।
षष्ठस्वरसमायुक्तं नादबिन्दुकलायुतम् ॥ २४ ॥
सर्वेश्वरी(ष? य)वर्गेण स्वाधिष्ठानाख्यपङ्कजे ।
संवर्तकं महेशानि कालबीजोपरिस्थितम् ॥ २५ ॥
वह्निबीजं ततो माया नादबिन्दुकलान्विता ।
मूलाधारे शवर्गेण कौलिनी परिकीर्तिता ॥ २६ ॥
एता वाग्देवता देवि वशिनीवत् प्रविन्यसेत् ।

वाशिन्यादि वाग्देवता न्यास का वर्णन—अग्नि = र, वरुण = व, इन्द्र = ल को षष्ठ स्वर से विभूषित करें । नाद बिन्दु कला से युक्त कर उसके बाद 'वशिनी' पद फिर 'वाग्देवता' को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । 'नमः' कहने के बाद स्वरों से (ब्रह्मरन्ध्र में) न्यास करना चाहिये ।

मादन = क को शक्र = ल के ऊपर रखें । उसके बाद महामाया इसे कामेश्वरी समझना चाहिये । कवर्ग से ललाट में न्यास करना चाहिये ।

धान्त = न, वरुण = व, इन्द्र = ल को चतुर्थ स्वर और बिन्दु से विभूषित करने पर यह मोदिनी देवी होती है । चवर्ग से दोनों भौहों में इसका न्यास करना चाहिये ।

हे देवि! वायु = य, पुरन्दर = ल को षष्ठ स्वर से युक्त कर नाद बिन्दु कला से जोड़ने पर यह विमला देवी कही गयी है । हे पार्वति! टवर्ग से कण्ठदेश में इसका न्यास करना चाहिये ।

छान्त = ज, भान्त = म, ज्वलन = र और वरुण = व यह चतुर्थ स्वर और बिन्दु से भूषित हो । यह वरुणा वाग्देवी है । तवर्ग से इसका हृदय में न्यास करना चाहिये ।

हे वरानने! नकुलीश = ह, सोम = स, शक्र = ल, वरुण = व, वायुबीज = य यह सब षष्ठ स्वर से विभूषित हो तो यह जयिनी देवी होती है । पवर्ग से इसका नाभिदेश में न्यास करना चाहिये ।

जान्त =झ, भान्त = म इसके पश्चात् रेफ वायु बीज से युक्त तथा षष्ठ स्वर से भूषित हो । साथ ही नाद बिन्दु कला से युक्त हो तो यह सर्वेश्वरी देवता है । यवर्ग से इसका स्वाधिष्ठान कमल में न्यास करना चाहिये ।

हे महेशानि! संवर्त्तक = क्ष को कालबीज = मं के बाद रखे । फिर वह्निबीज = र उसके बाद मायाबीज = ईं । इसको बाद बिन्दु कला से युक्त

करें। यह कौलिनी देवी कही गयी है । इसका शवर्ग से मूलाधार में न्यास करना चाहिये । हे देवि! इन वाग्देवताओं का वशिनी के समान न्यास करना चाहिये । (न्यास मंन्त्रों का स्वरूप—

१. ब्लूं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनीवाग्देवतायै नमः—इति ब्रह्मरन्ध्रे ।

२. क्लीं कं खं गं घं ङं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः—इति ललाटे ।

३. क्लीं चं छं जं झं ञं मोदिनीवाग्देवतायै नमः—इति भ्रुवोः ।

४. ट्लूं टं ठं डं ढं णं विमलावाग्देवतायै नमः—इति कण्ठे ।

५. ज्म्रीं वीं तं थं दं धं नं वरुणावाग्देवतायै नमः—इति हृदये ।

६. हं सं लं वं यूं पं फं बं भं मं जयिनीवाग्देवतायै—इति नाभौ ।

७. झं मं रं यूं यं रं लं वं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः—इति स्वाधिष्ठान कमले ।

८. क्षमरीं शं षं सं हं क्षं कौलिनीवाग्देवतायै नमः—इति मूलाधारपद्मे) ॥ १६-२६- ॥

करषडङ्गन्यासः

मूलविद्याद्विरावृत्त्या सर्वाङ्गुलितलेषु च ॥ २७ ॥
ङेन्तेषु परमेशानि न्यसेदङ्गानि षट् क्रमात् ।
नमः स्वाहा वषड् वौषड् हुं फडिति षडङ्गकम् ॥ २८ ॥
करयोरथ विन्यस्य षडङ्गेषु तथा न्यसेत् ।
नमोऽन्तं हृदयं ङेन्तं स्वाहान्तं च तथा शिरः ॥ २९ ॥
शि(खरे?खा व)षट् चतुर्थ्यन्ता हुं ङेन्तं कवचं ततः ।
नेत्रत्रयं च वौषट् च अस्त्रं फडन्तमीश्वरि ॥ ३० ॥
हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः ।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा प्रिये ॥ ३१ ॥
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम् ।
तथैवोक्ताङ्गुलीभ्यां च सशब्दमस्त्रमीरितम् ॥ ३२ ॥

करन्यास षडङ्गन्यास—मूलविद्या अर्थात् मूलमन्त्र (= ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं) की दो बार आवृत्ति कर समस्त अङ्गुलियों के तलों में ङेऽन्त उच्चारण कर छह अङ्गों का न्यास करना चाहिये । अन्त में क्रमशः नमः स्वाहा वषट् वौषट् हुं और फट् कहना चाहिये ।

(करन्यास का स्वरूप—

१. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः—इति अङ्गुष्ठयोः ।

२. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं मध्यमाभ्यां नमः—इति मध्यमयोः ।

३. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अनामिकाभ्यां नमः—इति अनामिकयोः ।

४. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं कनिष्ठाभ्यां नमः—इति कनिष्ठयोः ।

५. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः—इति करतलकरपृष्ठयोः ।)

इसके पश्चात् षडङ्गन्यास करना चाहिये । उक्त मूलमन्त्र का दो बार पाठ कर मन्त्र के अन्त में 'नमः' से हृदय, स्वाहा से शिर, वषट् से शिखा, हुं से कवच वौषट् से नेत्रत्रय और हे ईश्वरि! फट् से अस्त्र का चतुर्थ्यन्त बोलकर न्यास करना चाहिये ।

१. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हृदयाय नमः ।

२. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं शिरसे स्वाहा ।

३. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं शिखायै वषट् ।

४. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं कवचाय हुम् ।

५. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६. ह्रीं कएईंलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अस्त्राय फट् ।

न्यास के समय मध्यमा अनामिका तर्जनी से हृदय का स्पर्श करना चाहिये । मध्यमा तर्जनी से शिर का, अङ्गूठा से शिखा का स्पर्श करना चाहिये । दशो अङ्गुलियों से कवच, मध्यमा अनामिका तर्जनी से नेत्रत्रय का, और मध्यमा

तर्जनी से शब्दसहित अस्त्र का न्यास करना चाहिये ॥ २७-३२ ॥

पूजा तपोऽर्चनं होमः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ॥ ३३ ॥
वशिनीप्रमुखान् देवि विन्यसेत्तदनन्तरम् ।
मूलकूटत्रयेणैवं स्थानेष्वेषु क्रमान्न्यसेत् ॥ ३४ ॥
कर्णयोश्चिबुके चैव शङ्खयोर्वदने पुनः ।
नेत्रयोर्नसि विन्यस्य अंसयोर्जठरे ततः ॥ ३५ ॥
पुनः कूर्परयोः कुक्षौ जानुनोर्लिङ्गमूर्धनि ।
पादयोर्गुह्यदेशे च पार्श्वयोर्हृदयाम्बुजे ॥ ३६ ॥
स्तनयोः कण्ठदेशे च न्यसेदेवं विधानतः ।
चतुर्व्यूहं ततो देवि न्यसेत् पीठसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

पूजा तपस्या अर्चना होम जो कुछ सिद्धमन्त्री के द्वारा किये जाते हैं यदि ये अङ्गन्यास से रहित हैं तो फल नहीं देते । हे देवि! उक्त न्यास के पश्चात् वशिनी आदि वाग्देवताओं को तीन मूलकूट (= कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं और सकलह्रीं) के द्वारा निम्नलिखित स्थानों में क्रम से न्यस्त करना चाहिये । वे स्थान हैं—१. दोनों कान, २. चिबुक, ३. दोनों शङ्ख, ४. मुख, ५. दोनों नेत्र, ६. नासिका, ७. दोनों स्कन्ध, ८. जठर, ९. दोनों कूर्पर, १०. दोनों कुक्षि, ११. दोनों जानु, १२. लिङ्ग, १३. शिर, १४. दोनों पैर, १५. गुह्य, १६. दोनों पार्श्व, १७. हृदय, १८. दोनों स्तन और १९. कण्ठ । हे देवि! उसके बाद चतुष्पीठ न्यास करना चाहिये[1] ॥ ३३-३७ ॥

चतुष्पीठन्यासः

मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रेपदं ततः ।
कामगिर्यालये पश्चान्मित्रेशपदमुद्धरेत् ॥ ३८ ॥
नाथात्मकेपदं पश्चात् कामेश्वरीपदं ततः ।
रुद्रात्मशक्तिशब्दाच्छ्रीपादुकायै नमो न्यसेत् ॥ ३९ ॥
आधारे परमेशानि हृदये च ततः परम् ।
मूलद्वि(त?ती) यमुच्चार्य सूर्यचक्रेपदं ततः ॥ ४० ॥
जालन्धरपदात् पीठे षष्ठीशनाथशब्दतः ।
आत्मकेपदमाभाष्य वज्रेश्वरीपदं ततः ॥ ४१ ॥

---

[1] इस न्यास का क्रम एवं स्वरूप पीछे वर्णित करन्यास षडङ्गन्यास की भाँति समझना चाहिये ।

विष्ण्वात्मशक्तिशब्दान्ते पूर्ववच्च तदीरितम् ।
शक्तिकूटं समुच्चार्य सोमचक्रेपदं तत ॥ ४२ ॥
पूर्णगिरिपदान्ते च पीठपदमतः परम् ।
उड्डीशपरतो देवि नाथात्मकेपदं ततः ॥ ४३ ॥
तदन्ते योजयेद्देवि भगपूर्वा च मालिनी ।
ब्रह्मात्मशक्तिशब्दान्ते पूर्ववद् द्विदले न्यसेत् ॥ ४४ ॥
तुर्यबीजमथोच्चार्य ब्रह्मचक्रेपदात् ततः ।
तथैवोड्यानपीठे तु (व?च)र्यानाथात्मकेपदम् ॥ ४५ ॥
तदन्ते परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरी ।
परब्रह्मात्मशक्त्यन्ते पूर्ववद् ब्रह्मरन्ध्रके ॥ ४६ ॥
विन्यस्यैवं महेशानि तत्त्वन्यासं समाचरेत् ।

चतुष्पीठ न्यास—मूल वाग्भव का उच्चारण कर पुनः 'अग्निचक्रे' पद फिर 'कामगिर्यालये' बाद में 'मित्रेश' पद को उद्धृत करना चाहिये । 'नाथात्मके' पद के बाद 'कामेश्वरी' पद फिर 'रुद्रात्मशक्ति' शब्द के बाद 'श्रीपादुकायै नमः' कहकर हे परमेशानि! मूलाधार में न्यास करना चाहिये । उसके बाद हृदय में न्यास करना चाहिये । इसके लिये मूल मन्त्र के द्वितीय कूट का उच्चारण कर 'सूर्यचक्रे' पद फिर 'जालन्धर' पद के बाद 'पीठे पष्ठीशनाथ' शब्द के बाद 'आत्मके' पद कहकर 'वज्रेश्वरी' पद फिर 'विष्ण्वादिशक्ति' शब्द के बाद पूर्ववत् (= श्रीपादुकायै नमः) कहना चाहिये । शक्तिकूट का उच्चारण कर 'सोमचक्रे' पद उसके बाद 'पूर्णगिरि' पद के अन्त में 'पीठे' पद कहना चाहिये । हे देवि! 'उड्डीश' के बाद 'नाथात्मके' पद उसके पश्चात् हे देवि! 'भग' कहकर 'मालिनीब्रह्मात्मशक्ति' पद के अन्त में पूर्ववत् उच्चारण कर द्विदल = आज्ञाचक्र में न्यास करना चाहिये । चतुर्थ बीज का उच्चारण कर 'ब्रह्मचक्रे' पद के बाद 'उड्डयानपीठे चर्यानाथात्मके' पद उसके अन्त में हे परमेशानि! 'महात्रिपुरसुन्दरी परब्रह्मात्मशक्ति' के अन्त में पूर्ववत् उच्चारण कर ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—

१. कएईलह्रीं ऐं अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके कामेश्वरीरुद्रात्मशक्तिश्रीपादुकायै नमः—इति मूलाधारे ।

२. हसकहलह्रीं क्लीं सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मके वज्रेश्वरी-विष्ण्वात्मशक्तिश्रीपादुकायै नमः—इति हृदये ।

३. सकलह्रीं सौः सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके भगमालिनीब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकायै नमः—इति आज्ञाचक्रे ।

४. ईं (?) ब्रह्मचक्रे उड्डयानपीठे चर्यानाथात्मके महात्रिपुरसुन्दरीपर ब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकायै नमः—इति ब्रह्मरन्ध्रे ।)

हे महेशानि! इस प्रकार न्यास सम्पादित करने के पश्चात् तत्त्वन्यास करना चाहिये ॥ ३८-४६- ॥

तत्त्वादिन्यासः

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलान्तं पुनरेव हि ॥ ४७ ॥
मूलवाग्भवमुच्चार्य आत्मतत्त्वपदं ततः ।
(स्वा?ध्या)पिकायै चतुर्थ्यन्ता महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ४८ ॥
नम इति प्रविन्यस्य कामराजमतः परम् ।
विद्यातत्त्वपदात् पूर्व पूर्ववद् हृदयावधि ॥ ४९ ॥
न्यसे (त्त्वात्मी?त्तार्ती)यबीजान्ते शिवतत्त्वस्वरूपिणीम् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तदादिभ्रूलतावधि ॥ ५० ॥
ततो न्यसेन्महादेवि विद्याकूटत्रयं पृथक् ।
करयोर्मूलमध्याग्रमूलहृद्धृद्युगान्तरे ॥ ५१ ॥
मूलविद्यात्रयावृत्त्या स्थानेष्वेषु क्रमान् न्यसेत् ।
ब्रह्मरन्ध्रे तुरीयं च तेनैव व्यापकं न्यसेत् ॥ ५२ ॥

तत्त्वादिन्यास—मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक पुनः ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक, मूलवाग्भव का उच्चारण कर 'आत्मतत्त्व' पद उसके बाद 'व्यापिकायै' फिर चतुर्थ्यन्त 'महात्रिपुरसुन्दरी नमः' इस प्रकार न्यास करने के बाद कामराजबीज के पश्चात् 'विद्यातत्त्व' पद उसके अनन्तर पूर्व की भाँति कहना चाहिये और हृदयपर्यन्त न्यास करना चाहिये । तीसरे बीज के अन्त में शिवतत्त्वरूपिणी की मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक, हृदय से भ्रूमध्य तक न्यास करना चाहिये । हे महादेवि! इसके बाद तीन विद्याकूट का पृथक्-पृथक् न्यास करना चाहिये । इनको दोनों हाथों के मूल मध्य और अग्रभाग में, फिर हृदय और दोनों नेत्रों के मध्य में मूलविद्या की तीन आवृत्ति से क्रम से न्यास करना चाहिये । तुरीय न्यास ब्रह्मरन्ध्र में और उसी से व्यापक न्यास करना चाहिये ।

(न्यास-स्वरूप—

१. ऐं आत्मतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः—इति मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रान्मूलाधारान्तम् ।

२. क्लीं विद्यातत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः—इति हृदयाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रान्तात् हृदयान्तम् ।

३. सौः शिवतत्त्वव्यापिकायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः—इति मूलाधारात् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रात् भ्रूमध्यावधि ।

१. ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः—इति करमूले, करमध्ये, कराग्रे ।

२. ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः—इति हृदये ।

३. ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः—इति दृशोः ।

४. ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः—इति ब्रह्मरन्ध्रे ।

५. ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः—इति व्यापकं कुर्यात् ।) ॥ ४७-५२॥

सम्मोहनन्यासः

ब्रह्मरन्ध्रे तथाधारे हृदि नेत्रत्रये तथा ।
कर्णयोर्मुखवृत्ते च भुजयोः पृष्ठदेशके ॥ ५३ ॥
जानुद्वये तथा नाभौ मूलवर्णान् प्रविन्यसेत् ।
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा देवीं मन्त्रमयीं यजेत् ॥ ५४ ॥
त्रैलोक्यमरुणं ध्यायञ् श्रीविद्यां मनसि स्मरेत् ।
योनिमुद्रां महेशानि ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥ ५५ ॥
ललाटे च प्रविन्यस्य भ्रुवोर्मध्ये च विन्यसेत् ।
मुखे कण्ठप्रदेशे तु हृदये तामनुक्रमात् ॥ ५६ ॥
न्यासः सम्मोहनाख्योऽयं त्रैलोक्यमोहनक्षमः ।

सम्मोहनन्यास—इसके बाद मूलवर्णों को १. ब्रह्मरन्ध्र, २. मूलाधार, ३. हृदय, ४. नेत्रत्रय, ५. कर्णद्वय, ६. मुख, ७. भुजद्वय, ८. पृष्ठदेश, ९. जानुद्वय और १०. नाभि में न्यस्त करना चाहिये ।

(न्यास का मन्त्र—

१. ऐं क्लीं सौः—इति ब्रह्मरन्ध्रे । २. ऐं क्लीं सौः—इति मूलाधार ।
३. ऐं क्लीं सौः—इति हृदये । ४. ऐं क्लीं सौः—इति नेत्रत्रये ।
५. ऐं क्लीं सौः—इति कर्णयोः । ६. ऐं क्लीं सौः—इति मुखे ।
७. ऐं क्लीं सौः—इति भुजद्वये । ८. ऐं क्लीं सौः—इति पृष्ठदेशे ।
९. ऐं क्लीं सौः—इति जानुद्वये । १०. ऐं क्लीं सौः—इति नाभौ ।)

इस प्रकार साधक को स्वयं मन्त्रमय शरीर वाला होकर मन्त्रमयी देवी की पूजा करनी चाहिये । तीनों लोकों को अरुण वर्ण का ध्यान करते हुए मन में श्रीविद्या का स्मरण करना चाहिये । हे महेशानि! योनिमुद्रा[1] का ब्रह्मरन्ध्र ललाट भ्रूमध्य मुख कण्ठ देश एवं हृदय में क्रम से न्यास करना चाहिये । यह सम्मोहनन्यास त्रिलोकी को सम्मोहित करने में सक्षम है ॥ ५३-५६- ॥

श्रीदेव्युवांच—

अन्तर्यागविधिं ब्रूहि बहिर्यागविधिं तथा ॥ ५७ ॥

श्रीदेवी ने कहा—अन्तर्याग विधि और बहिर्याग विधि को बतलाइये ॥ ५७॥

अन्तर्यागविधिः

ईश्वर उवाच—

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यजनं चान्तरं महत् ।
मनोजीवात्म(नः?नोः)शुद्धिः प्राणायामेन जायते॥ ५८ ॥
अन्तर्गतं यच्च मलं तच्च शुद्धं प्रजायते ।
प्राणायामैर्विना देवि कृतं कर्म निरर्थकम् ॥ ५९ ॥
प्राणायामात्परं तत्त्वं प्राणायामात् परं तपः ।
प्राणायामात् परं ज्ञानं प्राणायामात् परं पदम् ॥ ६० ॥
प्राणायामात्परं योगं प्राणायामात्परं धनम् ।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति कथितं तव सुव्रते ॥ ६१ ॥
वत्सराभ्यासयोगेन ब्रह्म साक्षाद्भवेद् ध्रुवम् ।
चैतन्यावरणं यद्वत् क्षीयते नात्र संशय ॥ ६२ ॥
प्राणायामं विना मुक्तिमार्गो नास्ति मयोदितम् ।
प्राणायामेन मुनयः सिद्धिमापुर्न चान्यथा ॥ ६३ ॥
प्राणायामपरो योगी न योगी शिव एव सः ।

अन्तर्याग विधि का वर्णन—हे देवि! सुनो, मैं महान् अन्तर्याग विधि को बतलाऊँगा । मन और जीव की शुद्धि प्राणायाम से होती है । इसके अतिरिक्त जो अन्दर का मल है वह भी प्राणायाम से शुद्ध होती है । हे देवि! प्राणायाम के

---

[1] मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ।
अनामिके मध्यगते तथैव च कनिष्ठिके ।
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिता ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेयमीरिता ॥ मु.नि. १३७-१३८ ॥

विना सारे किये गये कर्म निरर्थक हो जाते हैं । प्राणायाम से बढ़कर कोई तत्त्व, कोई तप, कोई ज्ञान, कोई पद, कोई योग और कोई धन नहीं है नहीं है नहीं है । हे सुव्रते! यह तुमको बार-बार बतलाया जा चुका है । एक वर्ष तक निरन्तर अभ्यास से मनुष्य निश्चित रूप से साक्षात् ब्रह्म हो जाता है । चैतन्य का आवरण क्षीण हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं । प्राणायाम से ही मुनि लोग सिद्धि को प्राप्त किये अन्य उपाय से नहीं । प्राणायाम का अभ्यास करने वाला योगी योगी नहीं शिव होता है ॥ ५८-६३- ॥

प्राणायामस्य लक्षणम्

गमनागमनं वायोः प्राणस्य धारणं तथा ॥ ६४ ॥
प्राणायाम इति प्रोक्तो योगशास्त्रविशारदैः ।
प्राणो वायुरिति ख्यात आयामस्तन्निरोधनम् ॥ ६५ ॥
प्राणायाम इति प्रोक्तो योगिनां योगसाधनम् ।
बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको भवेत् ॥ ६६ ॥
सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत् ।
बहिर्यद्रेचनं बायोरुदराद्रेचको भवेत् ॥ ६७ ॥
पूरकं च यथाशक्त्या कुम्भकं तच्चतुर्गुणम् ।
कुम्भकार्धं भवेद्रेचः प्राणायामोऽयमीरितः ॥ ६८ ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायाम स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥ ६९ ॥
वामया पूरयेद्वायुं शनैः शनैस्तु मध्यया ।
धारयेद्दक्षया मुञ्चेदपरं तत् क्रमोत्क्रमात् ॥ ७० ॥
यावच्छक्यं नियम्यासून्मनसैव स्मरन् पराम् ।
मन्त्रस्य मुखबीजं वा समस्तं वा जपन् प्रिये ॥ ७१ ॥

प्राणायाम का लक्षण—प्राणवायु का बाहर जाना और अन्दर आना तथा धारण करना यही प्राणायाम है । योगशास्त्र के विद्वान् इसी को प्राणायाम कहते हैं । प्राण का अर्थ है—वायु । आयाम उसे रोकने को कहते हैं । यही प्राणायाम है जो योगियों के योग का साधन है । वायु को बाहर से उदर में भरना पूरक कहलाता है । भरे हुए कुम्भ के समान उस वायु को रोकना कुम्भक होता है । पेट से बाहर वायु को निकालना रेचक कहलाता है । पूरक को यथाशक्ति करना चाहिये । उसका चार गुना कुम्भक और कुम्भक का आधा रेचक होता है । इसे प्राणायाम कहते हैं । तर्जनी मध्यमा के अतिरिक्त अङ्गुष्ठा अनामिका और कनिष्ठा से नासापुटों को पकड़ना प्राणायाम है । वाम अर्थात् इड़ा नाड़ी से वायु को

धीरे-धीरे अन्दर भरना चाहिये । मध्य नाड़ी से उसे रोकना चाहिये और दाहिनी अर्थात् पिङ्गला नाड़ी से छोड़ना चाहिये । जितनी देर तक सम्भव हो प्राणों को रोककर परा देवता का ध्यान करते हुए मन्त्र के मुख बीज = ओं का या पूरे मन्त्र का जप करते रहना चाहिये ॥ ६४-७१ ॥

कुण्डलिनीस्वरूपवर्णनम्

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये कोटिसूर्यसमप्रभे ।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं नित्यं कालानलशिखोपमाम् ॥ ७२ ॥
रक्तां सूक्ष्मां च विश्वस्य सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम् ॥ ७३ ॥
हूङ्कारोच्चारणेनैव समुत्था (य?प्य)परां शिवे ।
षट्चक्रं च विनिर्भिद्य प्रापयित्वा परं शिवम् ॥ ७४ ॥
परानन्देन संयोज्य परमानन्दरूपिणीम् ।
तदभेदसमापन्नामनाकुलमनाः स्मरेत् ॥ ७५ ॥
(श्रा?स्रा)वयित्वा सु(रा?धा)धारां प्रापयेच्छक्तिमण्डलम् ।
तेनैव चक्रभेदेन मूलाधारं समानयेत् ॥ ७६ ॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुस्वरूपिणीम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां ध्यायेन्मन्त्रात्मदेवताम् ॥ ७७ ॥

कुण्डलिनी का स्वरूप—करोड़ों सूर्य के समान कान्तिमान त्रिकोण मूलाधार में कालाग्नि की शिखा के समान कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । यह रक्तवर्ण की तथा अत्यन्त सूक्ष्म है । यह विश्व की सृष्टि-स्थिति-प्रलय स्वरूपा है । विश्वातीत एवं ज्ञानरूप इसका नीचे से ऊपर की ओर जाती हुई ध्यान करना चाहिये । हे शिवे! हुङ्कार के द्वारा इस परा को उद्‌बोधित कर षट्चक्र का भेदन करते हुए इसे सहस्रार में स्थित शिव के पास पहुँचाना चाहिये । परम आनन्दस्वरूपिणी इसको परानन्दरूप शिव से संयुक्त कर उस शिव से अभिन्न हुई इसका शान्त मन से ध्यान करना चाहिये । इसके ऊपर अमृतधारा की वर्षा कर इसे शक्तिमण्डल में ले जाना चाहिये । जिस क्रम से चक्रभेदन हुआ है उसी क्रम से पुनः इसको मूलाधार में ले आना चाहिये विसतन्तु (= कमलनाल के धागे) के समान, उगते हुए सहस्रों सूर्य के सदृश आभा वाली मन्त्रात्मदेवता इस कुण्डलिनी का मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक ध्यान करना चाहिये ॥ ७२-७७॥

कुण्डलीं त्रिविधां तत्र तथा बीजत्रयं त्रिधा ।
तुरीयां कुण्डलीं मूर्ध्नि महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ७८ ॥

वाग्भवं मूलदेशे च द्रवत्स्वर्णनिभं स्मरेत् ।
मूलादिहृदयं यावद् वह्निकुण्डलिनीं तथा ॥ ७९ ॥
हृदये कामराजं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र सूर्यकोटिसमप्रभाम् ॥ ८० ॥
हृदयाद्गलपर्यन्तं ध्यायेदनाकुलः शिवे ।
भ्रूमध्ये शक्तिबीजं तु चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ८१ ॥
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं चन्द्रकुण्डलिनीं शिवे ।
चन्द्रकोटिसमप्रख्यां (श्र?स्र) वदमृतविग्रहाम् ॥ ८२ ॥

इस देह में तीन कुण्डली[1] (= अधः मध्य और ऊर्ध्वकुण्डली) का तथा तीन बीज (= ऐं क्लीं सौः) का ध्यान करना चाहिये । महात्रिपुरसुन्दरी चतुर्थ कुण्डली का शिर में ध्यान करना चाहिये । मूलाधार में द्रवत्स्वर्ण के समान वाग्भव बीज (= ऐं) का ध्यान करना चाहिये । मूलाधार से हृदय पर्यन्त अग्निकुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । हृदय में कोटिसूर्य के समान दीप्तिमान् कामराज बीज (= क्लीं) का ध्यान करना चाहिये । हे शिवे! हृदय से लेकर गलपर्यन्त शान्तचित्त होकर कोटिसूर्य सदृश सूर्यकुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । भौहों के मध्य कोटिचन्द्र के समान कान्ति वाले शक्तिबीज (= सौः) का ध्यान करना चाहिये । हे शिवे! भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक चन्द्रकुण्डली का ध्यान करना चाहिये जो कि कोटिचन्द्र के सदृश तथा अमृतस्राव करने वाली है ॥ ७८-८२ ॥

बीजत्रयमयीं बिन्दौ तुर्यां बिन्दुत्रयात्मिकाम् ।
देशकालानवच्छिन्नां सर्वतेजोमयीं स्मरेत् ॥ ८३ ॥
तुर्यकुण्डलिनीं तद्वत्केवलं ज्ञानविग्रहाम् ।
एवं ध्यात्वा पुनर्विद्यां सम्पूर्णां मनसा स्मरेत् ॥ ८४ ॥
चिदानन्दमयीं स्वच्छामेकात्मकतया प्रिये ।
सुधावृष्ट्याभिपतन्त्या तर्पयेत् परदेवताम् ॥ ८५ ॥
ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सहजानन्दविग्रहाम् ।
बिन्दु(श्रु?स्रु)तसुधाभिस्तुतर्पयेच्च पुनः पुनः ॥ ८६ ॥

बिन्दु में तीन बीजों (= ऐं क्लीं सौः) वाली तीन बिन्दुस्वरूपा तुरीय अर्थात् चतुर्थ कुण्डली का ध्यान करना चाहिये । यह देश काल की सीमा से परे सर्वतेजोमयी तथा केवल ज्ञानमयी है—ऐसा स्मरण करना चाहिये । ऐसा ध्यान

---

[1] वस्तुतः कुण्डलिनी एक ही है । स्थान और सहकारी उपादान से वह पृथक्-पृथक् नामों से जानी जाती है ।

करने के बाद पुनः सम्पूर्ण विद्या का चिदानन्दमयी स्वच्छ स्वरूपा के रूप में ध्यान कर उस बिन्दु से बरसने वाली अमृतवर्षा से परा देवता को तृप्त करना चाहिये । स्वभावतः आनन्दमूर्त्ति परा देवता का बार-बार ध्यान कर बार-बार अमृतधारा से उसका तर्पण करना चाहिये ॥ ८३-८६ ॥

अन्तर्याग इति प्रोक्तो जीवतो मुक्तिदायकः ।
मुनीनां च मुमुक्षूणामधिकारोऽत्र केवलम् ॥ ८७ ॥
प्रातः सायं चरेन्नित्यं षोडश प्राणसंयमान् ।
नाशयेत् सर्वपापानि तृणराशिमिवानलः ॥ ८८ ॥
सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।
स्वदेहस्थं यथा सर्पश्चर्मोत्सृज्य निरामयः ॥ ८९ ॥
प्राणायामात्तथा मुञ्चेदविद्याकामकर्मकम् ।
परोपपापजं पापं परद्रव्यापहारजम् ॥ ९० ॥
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामशतं दहेत् ।
महापातकजातानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ९१ ॥
सर्वाण्येतानि दह्यन्ते प्राणायामचतुःशतैः ।
(नमः?मनः)शक्तिःसमाख्याता पञ्चास्याः पञ्च देहगाः ॥ ९२ ॥
एकरूपं शिवं कृत्वा तदङ्के तां निवेशयेत् ।
शून्यरूपे परे स्थाप्य तावुभौ सममास्थितौ ॥ ९३ ॥
चिन्तयेत् साधको नत्वा नादरूपं तयोः क्रमात् ।
तदन्तर्मनसात्मानं ज्योतीरूपं सनातनम् ।
समाधिना समागत्य त्यजेत् संसारबन्धनम् ॥ ९४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे नित्यन्यासान्तर्यागविधि-
निरूपणंनामैकादशः पटलः ॥ ११ ॥

◆

यही अर्न्तयाग कहा गया है । यह जीवन्मुक्ति प्रदान करता है । इस याग में केवल मुनियों और मुमुक्षुओं का अधिकार बतलाया गया है । नित्य प्रातःकाल एवं सायङ्काल सोलह बार किया गया प्राणायाम सारे पापों को उसी प्रकार जला देता है जैसे अग्नि तृण राशि को । इसे समस्त पापों का प्रायश्चित्त कहा गया है। जिस प्रकार साँप अपने देह पर स्थित केंचुल को छोड़कर नीरोग हो जाता है उसी प्रकार प्राणायाम से मनुष्य अविद्या जन्म कर्म और उसके फल को छोड़कर मुक्त हो जाता है । दूसरे के उपपाप, दूसरों के द्रव्य के अपहार से जन्य पाप,

परस्त्री समागम से उत्पन्न पाप को साधक सौ प्राणायाम करके जला डालता है। चार सौ प्राणायाम के द्वारा ब्रह्महत्या आदि महापातक जला दिये जाते हैं। मनःशक्ति पाँच मुखों वाली एवं पाँच देह में स्थित रहने वाली कही गयी है। जीव शिव एवं परम शिव को एक रूप बनाकर मनःशक्ति को उसके अङ्क में बैठाना चाहिये। परशून्य में उसको स्थापित कर उन दोनों अर्थात् शिव और शक्ति का समान रूप से स्थित ध्यान करना चाहिये। साधक उन दोनों को प्रणाम कर उनके नादरूप का ध्यान करे। सनातन ज्योतीरूप उस आत्मा का अन्तर्मन से समाधि के द्वारा साक्षात्कार कर साधक इस संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ८७-९४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवादान्तर्गत नित्यन्यास-अन्तर्याग-निरूपण नामक एकादश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

* * *

द्वादशः पटलः

ध्यानयोगनिरूपणम्

शिवाया मानसपूजा

ईश्वर उवाच—

अथवा परमेशानीं लीलाकलितविग्राम् ।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां निगृह्येन्द्रियमानसः ॥ १ ॥
तन्मनाः साधकवरो मनसा पूजयेच्छिवाम् ।
वामकरस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठया ॥ २ ॥
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठेन योजयेत् ।
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ॥ ३ ॥
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ।
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ॥ ४ ॥
अधोमुखे तु ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च ।
रक्तपुष्पं गृहीत्वैवं विधाय पाणिकच्छपम् ॥ ५ ॥
कुर्यात्तद् हृदयासन्नं निमील्य नयनद्वयम् ।
समकायशिरोग्रीवं(?वः) कृतासनपरिग्रहः ॥ ६ ॥
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा ततः ।
प्रत्यक्षीकृत(त?त्य) हृदये मानसैरुपचारकैः ॥ ७ ॥
षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् ।

शिवा की मानस पूजा—ईश्वर ने कहा—उत्तम साधक इन्द्रिय और मन को नियन्त्रित कर शिवा के लिये दत्तचित्त हो लीला के लिये शरीर धारण करने वाली, हृदय कमल के मध्य में स्थित शिवा की मानस पूजा करे । बाँयें हाथ की तर्जनी से दाँयें हाथ की कनिष्ठा को तथा दाँयें हाथ की तर्जनी से बाँयें अङ्गूठे

को जोड़ना चाहिये । दाँयाँ अङ्गूठा ऊपर उठा रहे साथ ही बायें हाथ की मध्यमा आदि अङ्गुलियों को दाँयें हाथ के पृष्ठ से जोड़ना चाहिये । मध्यमा और अनामिका को बाँयें हाथ के पितृतीर्थ से जोड़ना चाहिये । इस प्रकार कच्छप मुद्रा बनाकर हाथ में रक्त पुष्प लेकर उस हाथ को हृदय के पास ले आना चाहिये । दोनों नेत्रों को बन्दकर शरीर गर्दन और शिर को सीधा रखकर आसन लगाकर बैठने के बाद एकाग्रमन से देवी का ध्यान करना चाहिये । हृदय में उस शिवा का प्रत्यक्ष कर मानसिक सोलह उपचारों से हृदयस्थ शिवा का पूजन करना चाहिये ॥ १-७- ॥

षोडशोपचारपूजाविधि:

आसनं प्रथमं दद्याद्रत्नसिंहासनं शुभम् ॥ ८ ॥
पाद्यं चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।
परमामृतपानीयं भावपुष्पैः सुवासितम् ॥ ९ ॥
स्वर्णपात्रे जलं कृत्वा दद्यादाचमनं मुखे ।
मधुपर्कं ततो दद्यात् पुनराचमनं ततः ॥ १० ॥
स्ववामे मण्डलं कृत्वा पर्यङ्कं परिभावयेत् ।
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा नीत्वा तां स्नानमन्दिरे ॥ ११ ॥
भद्रासनोपविष्टाया उद्वर्तनं समाचरेत् ।
घृतेनोद्वर्तनं कृत्वा मनसा परिभावयेत् ॥ १२ ॥
कर्पूरागुरुकस्तूर्या तथा मृगमदेन च ।
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रैर्नानागन्धसमन्वितैः ॥ १३ ॥
सुगन्धिदिव्यतैलैश्च स्नापयेत् परमेश्वरीम् ।
देवकन्यासहस्रैस्तु स्वर्णकुम्भसहस्रकैः ॥ १४ ॥
नदीभिर्नदराजैश्च अप्सरोगणपन्नगैः ।
सिञ्चता वारिणा स्नातां चिन्तयेत् परदेवताम् ॥ १५ ॥

षोडशोपचार पूजा—सबसे पहले रत्नजटित सुन्दर सिंहासन का आसन देना चाहिये । दोनों चरणों में पाद्य और शिर पर अर्घ्य देना चाहिये । यह अर्घ्य भावनात्मक पुष्पों से सुवासित परम अमृत पानी वाला होता है । स्वर्णपात्र में जल रखकर मुँह में आचमन देना चाहिये । मधुपर्क देने के बाद पुनः आचमन देना चाहिये । अपने वामभाग में मण्डल बनाकर वहाँ पलङ्ग की भावना करनी चाहिये । श्रेष्ठ रत्नजटित खड़ाऊँ देकर शिवा को स्नानगृह में ले जाकर भद्र आसन पर बैठाना चाहिये । तत्पश्चात् उद्वर्त्तन अर्थात् उबटन करना चाहिये । पहला उबटन घृत से मन में करना चाहिये । इसके बाद कपूर अगर कस्तूरी

(= लताकस्तूरी) मृगमद गोरोचन कुङ्कुम मिश्रित अनेक द्रव्य से युक्त, सुगन्धित तैल से परमेश्वरी को स्नान कराना चाहिये । परादेवता का ध्यान इस रूप में करना चाहिये कि उसे हजारों देवकन्यायें हजारों नदियाँ नद अप्सरायें सर्पकन्यायें हजारों स्वर्णकुम्भों में जल लेकर स्नान करा रहीं हैं ॥ ८-१५ ॥

दुकूलैर्मार्जितं गात्रं दुकूले परि(धेतथा? धाप्य च)।
कङ्कतीकेशसंस्कारो विधिवद्बन्धनं तथा ॥ १६ ॥
सूत्रावलीं केशपाशे सिन्दूरं केशमध्यमे ।
ललाटे तिलकं दद्यादलक्तं रदनच्छदे ॥ १७ ॥
नेत्रेषु ह्यञ्जनं कृत्वा गन्धैर्गात्रानुलेपनम् ।
काञ्चनाञ्चितकञ्चूलीशोभनं हृदयोपरि ॥ १८ ॥
विभूषणं ततो दद्यात् सुवर्णरजतादिना ।
शिरःकर्णग्रीवादोषसूज्ज्वलाभरणानि च ॥ १९ ॥
नूपुरौ च ततो दद्यान्मुक्ताहारं समुज्ज्वलम् ।
अन्यदाभरणं चैव यत्र येन विराजते ॥ २० ॥
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा चक्रमध्ये समानयेत् ।
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ॥ २१ ॥
हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम् ।
कपिलाघृतसंयुक्तं नानाव्यञ्जनसंयुतम् ॥ २२ ॥
भक्ष्यं भोज्यं तथा लेह्यं पेयं चोष्यं तथैव च ।
क्षीरपानीयसंयुक्तं दधिमधुसमन्वितम् ॥ २३ ॥

इसके बाद वस्त्रों से उसके शरीर को पोंछा गया । फिर दो वस्त्र पहनाये गये। कन्घी के द्वारा बालों को संवार कर विधिवत् उनको बाँधा गया । केश में जूड़ा बाँध कर माँग में सिन्दूर भरा गया ऐसी भावना करनी चाहिए । इसके अनन्तर ललाट पर तिलक देने की भावना करनी चाहिये । ओठों पर अलक्तक आँखों में आँजन लगाने के बाद शरीर पर गन्धलेप की भावना करनी चाहिये । हृदय में ऊपर सोने से बनी कञ्चुली रखनी चाहिये । इसके बाद सोने चाँदी के बने आभूषण देने चाहिये । शिर कान ग्रीवा भुजाओं में चमकते आभूषण पहनाने चाहिये । नूपुर मोती का हार और जहाँ जिससे शोभ बनती हो वह अन्य आभूषण भी देना चाहिये । रत्नजटित दो चरण पादुका देकर चक्र के मध्य में उसे ले आना चाहिये । गन्ध पुष्प धूप दीप के बाद स्वर्णपात्र के अन्तर्गत दिव्य अन्न वाले सुसंस्कृत नैवेद्य जो कि कपिला गाय के घी से युक्त एवं नाना व्यञ्जनस्वरूप हैं, परोसना चाहिये । ये व्यञ्जन भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय चोष्य तथा

क्षीर पानी से युक्त दधि मधु से समन्वित होने चाहिये ॥ १६-२३ ॥

सकर्पूरं च ताम्बूलं मानसं परिकल्पयेत् ।
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि ॥ २४ ॥
यो नरो भक्तिसंयुक्तः स दीर्घायुः सुखी भवेत् ।
माल्यं पद्मसहस्रस्य मनसा यः प्रयच्छति ॥ २५ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा तव पुरे श्रीमान् सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ॥ २६ ॥
मनसा तु महादेव्यै यः कुर्याच्च प्रदक्षिणम् ।
स दक्षिणं यमगृहं नरकान्नैव पश्यति ॥ २७ ॥
नमनं मानसं देव्या यो भक्त्या कुरुते नरः ।
सोऽपि लोकान्विजित्यैव नरलोके महीयते ॥ २८ ॥

उसके बाद कपूर केसर आदि से युक्त ताम्बूल समर्पण की मन में कल्पना करनी चाहिये । जो मनुष्य मन से भी महादेवी के लिये भक्तिपूर्वक नैवेद्य समर्पित करता है वह दीर्घायु होता हुआ सुखी होता है । हे पार्वति! जो मनुष्य मन से सहस्रकमलों की माला देवी को अर्पित करता है वह श्रीमान् एक हजार करोड़ तथा एक-सौ करोड़ वर्षों तक तुम्हारे लोक में रहकर धरती पर सार्वभौम राजा होता है । जो मन से महादेवी की प्रदक्षिणा करता है वह दक्षिण दिशा में स्थित यमपुर एवं नरकों को नहीं जाता । जो मनुष्य भक्ति के साथ देवी को प्रणाम करता है वह लोगों को जीत कर मनुष्य लोक में पूजित होता है ॥ २४-२८ ॥

महामायां महादेवीं समर्चयामि शक्तितः ।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः ॥ २९ ॥
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः ।
सोऽपि लोकान् विभिद्यैव देवीलोके महीयते ॥ ३० ॥
बहिर्वच्चक्रपूजां च मनसैव समाचरेत् ।
नवावरणशक्तीनां पूजनं मनसैव हि ॥ ३१ ॥
इत्थमन्तः समाराध्य मनसैव जपेन्मनुम् ।
तदा भवति सिद्धीशो देववद्विहरेत् क्षितौ ॥ ३२ ॥
एवमेव महेशानि पूजयामि महेश्वरीम् ।
योगिनो मुनयश्चैव पूजयन्ति सदा प्रिये ॥ ३३ ॥
केवलं मानसेनैव नैव सिद्धो भवेद्गृही ।
सबाह्येन तु तेनैव गृहस्थो मुनिपुङ्गवः ॥ ३४ ॥

मैं अनेक प्रकार के नैवेद्यों से महादेवी महामाया की शक्ति के अनुसार पूजा करूँ—इस चिन्ता से जो व्याकुल रहता है तथा हे देवि! मुझे अर्पण करने के लिये अधिकाधिक नैवेद्य दो—ऐसा बार-बार कहता है, वह भी मृत्यु आदि लोकों को पार कर देवीलोक में पूजित होता है। साधक को चाहिये कि वह बाह्य पूजा की भाँति चक्रपूजा भी मानसिक स्तर पर करे। देवी के नव आवरण देवताओं की भी मानसिक ही पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन के अन्दर देवी की आराधना कर मन से ही मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने पर अर्चक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है और पृथ्वी पर देवता के समान विहार करता है। हे महेशानि! मैं भी महेश्वरी की इसी प्रकार मानस पूजा करता हूँ। हे प्रिये! योगी और मुनिजन भी केवल मानसी पूजा ही करते हैं किन्तु गृहस्थ मनुष्य केवल मानसी पूजा से सिद्ध नहीं होता। वह बाह्य पूजा के साथ मानसी पूजा करे तो वह गृहस्थ होता हुआ भी श्रेष्ठमुनि हो जाता है ॥ २९-३४ ॥

पार्वत्युवाच—

ध्यानयोगं महादेव श्रोतुमिच्छामि हे प्रभो।
सम्पूर्णं कथयेशान येन सिद्धो भवेत् परः ॥ ३५ ॥

पार्वती ने कहा—हे प्रभो! हे महादेव! मैं ध्यान-योग सुनना चाहती हूँ। हे ईशान! जिससे मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है कृपया ऐसे सम्पूर्ण योग को मुझे बतलाइये ॥ ३५ ॥

ध्यानयोगवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

विना न्यासैर्विना पूजां विना जप्यपुरस्क्रियाम्।
ध्यानयोगाद्भवेत् सिद्धोनान्यथा खलु पार्वति ॥ ३६ ॥
ध्यानयोगादहं सिद्धो विष्णुश्चापि पितामहः।
ध्यानयोगात् परं सिद्धा मानवा अपि पापिनः ॥ ३७ ॥
सर्वतन्त्रेषु यद्गुह्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
विना येन न सिध्यन्ति वर्षकोटिशतैरपि ॥ ३८ ॥
ध्यानयोगं प्रवक्ष्यामि सर्वतत्त्वप्रदायकम्।

ध्यान योग का वर्णन—मनुष्य विना न्यास, विना पूजा, विना जप और विना पुरश्चरण के भी केवल ध्यान-योग से सिद्ध हो जाता है। ध्यान-योग को छोड़कर किसी अन्य प्रकार से वह सिद्ध नहीं होता। मैं विष्णु और ब्रह्मा ध्यान-योग से ही सिद्ध हुये हैं। महापापी मनुष्य भी ध्यान-योग से महासिद्ध हो गये। जो समस्त तन्त्रों में गोपनीय है, जो सर्वसिद्धि देने वाला है तथा जिसके विना सौ

करोड़ वर्षों में भी लोग सिद्ध नहीं होते सर्वत्त्वप्रदायक उस ध्यान-योग को मैं बतलाऊँगा ॥ ३६-३८- ॥

एकान्ते विजने रम्ये कृतासनपरिग्रहः ॥ ३९ ॥
निवृत्ताखिलचिद्वृतिर्मुद्रामुद्रितविग्रहः ।
कारणानन्दसंदोहैर्बहिरन्तःप्रपूरितः ॥ ४० ॥
गुरून् नत्वा विधानेन सोऽहमित्युपरोधतः ।
ऐक्यं सम्भावयेद्धीमाञ्जीवस्य ब्रह्मणोऽपि च ॥ ४१ ॥
कारणे सर्वभूतानां तत्त्वान्यपि च चिन्तयेत् ।
बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात् परमात्मनि ॥ ४२ ॥
एवं विचिन्त्य देवेशि पार्थिवांशं जले गतम् ।
जलं तेजसि लीनं च तेजो वायौ विचिन्तयेत् ॥ ४३ ॥
आकाशे संहृतं वायुं खं च मनसि लीयते ।
मनोऽहङ्कारवशगं तथाहं महति स्थितम् ॥ ४४ ॥
महान्तं प्रकृतौ लीनं चिन्तयेत् परमेश्वरि ।
मुमुक्षुश्चिन्तयेल्लीनां प्रकृतिं परमात्मनि ॥ ४५ ॥
नाहो न रात्रिर्न संध्या न सूर्यो नैव चन्द्रमाः ।
इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम् ॥ ४६ ॥
अप्रज्ञातमलक्ष्यं च प्रसुप्तमिव सर्वतः ।
चिन्तयित्वा महेशानि न किंचिदपि भावयेत् ॥ ४७ ॥

जनकोलाहल से रहित एकान्त रमणीय स्थान में आसन लगाकर बैठ जाना चाहिये । चित्रवृत्तियों को अवरुद्ध कर मुद्रा से शरीर को बद्ध कर लेना चाहिये । अन्दर एवं बाहर उभयत्र कारणानन्दसमूह से अपने को प्रपूरित कर विधिपूर्वक गुरु को प्रणाम करना चाहिये । 'सोऽहम्' इस भावना के साथ धीमान् जीव और ब्रह्म की एकता की भावना करे । पृथिवी आदि समस्त तत्त्व समस्त प्राणियों के कारणभूत परमात्मा में व्युत्क्रम से लीन हो गये ।

(इनका व्युत्क्रम से लय इस प्रकार है—पृथिवी—जल—तेज—वायु—आकाश—तन्मात्रा—अहङ्कार—बुद्धि—प्रकृति—पुरुष—कारणब्रह्म) इसी को स्पष्ट करते हैं—

पार्थिव अंश जल में लीन हो गया—ऐसा ध्यान करना चाहिये । जल तेज में तेज वायु में लीन हो गया—ऐसा ध्यान करना चाहिये । वायु आकाश में, आकाश मन में, मन अहङ्कार में, अहङ्कार बुद्धि में, बुद्धि प्रकृति में लीन हो

गयी—ऐसा ध्यान करना चाहिये । प्रकृति परमात्मा में लीन हो गयी, मुमुक्षु को ऐसा सोचना चाहिये । न दिन है न रात्रि, न सन्ध्या । न सूर्य है न चन्द्रमा । भुवन से रहित यह सब कुछ तमोमय था[१] । अप्रज्ञात अलक्ष्य यह सब ओर से प्रसुप्त जैसा था[२] । हे महेशानि! ध्यान करके भी किसी वस्तु की भावना नहीं करनी चाहिये ॥ ३९-४७ ॥

ध्यानगतसृष्टिक्रमवर्णनम्

एकमासीत् परं ब्रह्म नित्यं सूक्ष्ममतीन्द्रियम् ।
नित्यानन्दमयं धाम तेजोरूपं सनातनम् ॥ ४८ ॥
तदेव प्रकृतिः सा तु तेजोरूपा सनातनी ।
नित्यानन्दवपुर्देवी तद्रूपा तत्प्रकाशिनी ॥ ४९ ॥
तयोर्योगादभूद्वृष्टिः परमामृतरूपिणी ।
परिपूर्णमिदं देवि समस्तं प्लावयेत् तथा ॥ ५० ॥
तत्राम्भसि स्वमात्मानं चिन्तयेत् साधकोत्तमः ।
बुद्बुदं चिन्त्येत्तत्र प्रकृतिं चिन्तयेत् पराम् ॥ ५१ ॥
प्रकृतेर्हि महान्तं वै अहं च महतस्तथा ।
अहङ्कारान्मनश्चैव मनस खं समुत्थितम् ॥ ५२ ॥
आकाशाद्वायुमुत्कृष्य वायोस्तेजः समुत्थितम् ।
तेजसो जलमासाद्य जलाच्च पृथिवीं स्मरेत् ॥ ५३ ॥

ध्यान में सृष्टिक्रम का वर्णन—सृष्टि के आदि में नित्य सूक्ष्म अतीन्द्रिय एक परब्रह्म था । वह नित्यानन्दमय तेजोरूप सनातन था । वही प्रकृति हुआ जो कि तेजोरूपा सनातनी नित्यानन्दरूपा ब्रह्मरूपिणी और ब्रह्म की प्रकाशिनी थी । उन दोनों के योग से परम अमृतरूपा वृष्टि हुई । साधक उसी के द्वारा इस सबको जल से प्लावित ध्यान करे । साधक को चाहिये कि वह अपने को जल में स्थित समझे । उसी जल में परा प्रकृति का बुदबुद के रूप में ध्यान करे । फिर प्रकृति से महत्तत्त्व (= बुद्धितत्त्व) महत् से अहङ्कार, अहङ्कार से मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ ४८-५३ ॥

---

[१] तुलनीय—न मृत्यु रासीदमृतं न तर्हि न रात्र्य ।
अह्न आसीत् प्रकेतः तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ॥ ऋ.वे. १०।१२९।११३

[२] तुलनीय—आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु. सं. १।५

बहिष्कृत्य यथास्थानं निवेश्य विधिना ततः ।
हैमं ब्रह्माण्डमेभिः स्याद् भूबीजेन दृढं स्मरेत् ॥ ५४ ॥
प्रणवेन द्विधा कृत्वा जलौघैः परिपूरयेत् ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तदधो भेकमव्ययम् ॥ ५५ ॥
तस्य पृष्ठे महादेवि कालाग्निरुद्ररूपकम् ।
आधारशक्तिं तत्रैव मूलप्रकृतिरूपिणीम् ॥ ५६ ॥
ब्रह्मशिलासमारूढां कूर्माकारां शशिप्रभाम् ।
पद्मद्वयधरां देवीं मूर्धनि कूर्मधारिणीम् ॥ ५७ ॥
नीलाभं चिन्तयेत् कूर्ममनन्तं कुन्दसन्निभम् ।
तस्य मूर्ध्नि स्थितं देवि श्वेतं वाराहरूपकम् ॥ ५८ ॥
तमालश्यामलां दन्ते धारयन्तं वसुन्धराम् ।
तां च संचिन्तयेत्तत्र नीलेन्दीवरधारिणीम् ॥ ५९ ॥
चिन्तयेत् सलिलैः पूर्णां चतुःसागरमेखलाम् ।

इन तत्त्वों को बाहर कर तथा विधिवत् यथास्थान निवेशित कर इनसे स्वर्णमय ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति समझनी चाहिये और इस ब्रह्माण्ड को भूबीज (= लं) से ठोस कर देना चाहिये । तत्पश्चात् इस ठोस बनाये गये ब्रह्माण्ड को प्रणव के द्वारा दो भागों में बाँट कर दोनों को जल से भर देना चाहिये । हे देवि! ब्रह्माण्ड के भीतर जल और उसके नीचे अनादि निधन भेक (= मेढ़क) का ध्यान करना चाहिये । हे महादेवि! उस मेढक की पीठ पर कालाग्निरुद्र रूप आधारशक्ति का ध्यान करना चाहिये । उस आधारशक्ति के ऊपर ब्रह्मशिला पर बैठी कूर्माकारा शशिप्रभा, दो कमल ली हुई तथा शिर पर कच्छप धारण की हुई मूलप्रकृति का ध्यान करना चाहिये । वह अनन्त कच्छप कुन्द पुष्प के समान कुछ-कुछ नीला है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । उस कछुये के शिर पर श्वेत वाराह का ध्यान करना चाहिये । वह वाराह अपने दाँत पर चार सागरों से घिरी जल से पूर्ण नील कमल के रंग वाली पृथिवी को धारण किया है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये ॥ ५४-५९- ॥

तन्मध्ये चिन्तयेद्देवि सुधासागरमद्भुतम् ॥ ६० ॥
रक्ताभममृतं तत्र शुद्धलाक्षारसोपमम् ।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवि द्वीपं विद्रुमसन्निभम् ॥ ६१ ॥
गिरिराजशताकीर्णं परितेक्षुवनं महत् ।
गिरौ स्वर्णगिरिं चैव कल्पोद्यानं गिरेस्तटे ॥ ६२ ॥

हे देवि! उस पृथिवी के बीच अद्भुत अमृतसिन्धु का ध्यान करना चाहिये। वह समुद्र रक्तवर्ण का है। उसमें वर्तमान अमृत शुद्ध लाक्षारस के समान है। हे देवि! उसके बीच विद्रुम के रंग वाले एक द्वीप का ध्यान करना चाहिये। वह द्वीप सौ पर्वतों से घिरा हुआ है तथा उसके चारों ओर ईख का वन है। वहाँ स्वर्णपर्वत है और इस पर्वत के तट पर कल्पवृक्ष की वाटिका है ॥ ६०-६२ ॥

ध्यानगतं कल्पवृक्षाद्युद्यानवर्णनम्

चम्पकाशोकपुन्नागपाटलैः कुटजैस्तथा ।
लवङ्गमाधवीबिल्वदेवदारुनमेरुभिः ॥ ६३ ॥
मन्दारपारिजाताद्यैः कल्पवृक्षैः सुपुष्पितैः ।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः ॥ ६४ ॥
चन्दनैः कर्णिकारैश्च मातुलुङ्गैः करञ्जकैः ।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्मधुकैराम्रकैरपि ॥ ६५ ॥
दाडिमीचूतपनसैः पूगैः कर्पूरकैरपि ।
कदलीकुन्दखर्जूरनारिकेलैरलंकृतम् ॥ ६६ ॥
कदम्बैः करवीरैश्च तगरैर्नागकेसरैः ।
यावन्तीस्वर्णयूथीभिर्वज्रैर्दमनकैरपि ॥ ६७ ॥
मालतीमल्लिकाजातीकेतकीशतपत्रकैः ।
अन्यैः सुगन्धिपुष्पाद्यैः शोभितं यूथिकादिभिः ॥ ६८ ॥

ध्यान में कल्पवृक्ष आदि का उद्यान—वह कल्पोद्यान चम्पक, अशोक, पुन्नाग (= नागकेशर), पाटल, कुटज वृक्षों से तथा लवङ्ग, माधवी लताओं, देवदारु, नमेरु (= रुद्राक्ष), मन्दार, पारिजात आदि सुपुष्पित कल्पवृक्षों से भरा पुरा और सुशोभित हो रहा है। दिव्य नित्य पुष्प फल वाले वृक्षों चन्दन, कर्णिकार (= अमलतास), मातुलुङ्ग (= बिजौरा नीबू), करञ्जक, द्राक्षा (= अङ्गूर), ईख, केला, जामुन, महुआ, आमरा, अनार, आम, कटहल, सुपाड़ी, कपूर, कदली, कुन्द, खजूर, नारियल के वृक्षों से वह उद्यान अलङ्कृत है। कदम्ब, करवीर (= कनेर), तगर, नागकेसर, यावन्ती, स्वर्णयूथी, वज्र (= कुश), दमनक (= दौना), मालती (= चमेली), मल्लिका (= चमेली), जाती (= जायफल), केतकी (= केवडा), शतपत्र (= कमल) तथा अन्य यूथिका (= जूही) आदि पुष्प आदि से वह उद्यान सुशोभित है ॥ ६३-६८ ॥

अन्योन्यासक्तवल्लीभिर्वृक्षषण्डैश्च मण्डितम् ।
सर्वर्तुकुसुमोपेतैर्नमद्भिरुपशोभितम् ॥ ६९ ॥

मन्दमारुतसंभिन्नकुसुमामोददिङ्मुखम् ।
उत्फुल्लकुसुमामोदप्रहृष्यद्भृङ्गसंकुलम् ॥ ७० ॥
कूजत्कोकिलसङ्घेन वाचालितदिगन्तरम् ।
कालमेघसमालोकनृत्यद्बर्हिकदम्बकम् ॥ ७१ ॥
शारिकाशुकबहुलैः कूजत्कलरवैर्युतम् ।
द्वन्द्वभावं प्रकुर्वद्भिर्मृगैर्नानाविधैरपि ॥ ७२ ॥
सरित्सरोभिरच्छोदैः शोभितं कुमुदोत्पलैः ।

एक दूसरे से लिपटी हुई लताओं वृक्षों से मण्डित, समस्त ऋतुओं में मिलने वाले फूलों से लदे अतएव झुके हुए वृक्षों से सुशोभित, मन्द मारुत से मिश्रित पुष्प परागों से दिशायें सुगन्धित है। खिले हुए फूलों के परागरस का पान करने से प्रसन्न भ्रमरों से वह उद्यान व्याप्त है। कूजते हुए कोकिलसमूह से दिग्-दिगन्तर शब्दायमान हो रहा है। काले बादलों को देखकर मयूरमण्डल नाच रहा है। अधिकाधिक मैना एवं तोता के कूजन से यह उद्यान व्याप्त है। अनेक प्रकार के मृग परस्पर मैथुनीक्रिया में रत हैं। उस उद्यान में नदी तालाब में कमल खिले हुए हैं ॥ ६९-७२- ॥

ध्यानगतसरोवरवर्णनम्

तेषु सरःसु विपुलं महारससरसामृतम् ॥ ७३ ॥
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ।
मत्तषट्पदनि(र्य्य?र्जु)ष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ ७४ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
तन्महासरःपुलिने रत्नसोपानमण्डिते ॥ ७५ ॥
महारससरसान्दोलवीचिविक्षेपशीतले ।
सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ ७६ ॥
मौक्तिकैः कुसुमैःस्त्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ।
स्मरेत् कल्पतरुं तत्र तदधो रत्नभूमिकाम् ॥ ७७ ॥
विस्तीर्णं सुमनोव्याप्तां तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।

सरोवरवर्णन—उन तालाबों में एक महातालाब है जिसमें सोने के कमल खिले हुए हैं। उसमें जल के स्थान पर महारसयुक्त अमृत भरा हुआ है। वहाँ मतवाले भ्रमर और मधुर ध्वनि करने वाले पक्षी विराजमान है। हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस से वह तालाब भरा हुआ है। रत्नों से निर्मित सीढ़ियों वाले तथा सरस रस के आन्दोलन वाली लहरों के विक्षेप से शीतल उस मानसरोवर के

तट पर कल्पवृक्ष का ध्यान करना चाहिये जो कि दिव्य, समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला, समस्त रत्नों से युक्त, मोतियों के फूलों मालाओं, वस्त्रों एवं स्वर्ण तोरणों से शोभायमान है । उसके नीचे रत्नमयी विस्तृत भूमि है जो फूलों से व्याप्त है । उस रत्नभूमि के बीच साधक को रत्ननिर्मित मण्डप का ध्यान करना चाहिये ॥ ७३-७७- ॥

ध्यानस्थमण्डपवर्णनम्

परितः पारिजाताढ्यं भास्वरं शशिशीतलम् ॥ ७८ ॥
उद्यदादित्यसङ्काशं रत्नसोपानमण्डितम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ ७९ ॥
द्वार्षु विद्रुमदेहल्याभातं वज्रकवाटकम् ।
रत्नसंक्लृप्तसंशोभिकवाटाष्टकसंयुतम् ॥ ८० ॥
नानारत्नविशोभाढ्यरत्नप्राकारमण्डितम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गप्राकारतोरणम् ॥ ८१ ॥
तत्र तत्र विनिःक्षिप्तनानारत्नोपशोभितम् ।
महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥ ८२ ॥
शिखरेष्विन्द्रनोलेषु हेमकुम्भैरलंकृतम् ।
चक्षुष्मत्पद्मरागाग्रैर्वज्रभित्तिषु निर्गतैः ॥ ८३ ॥
जुष्टं विचित्रवैतानैर्महा(र्ध्यैं?र्घैं)र्हैमतोरणैः ।
सर्वर्द्ध्युपचयैरर्कमणिस्तम्भैर्विराजितम् ॥ ८४ ॥

रत्नमण्डप का वर्णन—वह रत्नमण्डप चारों ओर पारिजात से घिरा है । देदीप्यमान वह चन्द्रमा के समान शीतल है । उगते हुए सूर्य के समान मण्डप में रत्नों की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । सौ योजन विस्तृत उस मण्डप में चार द्वार हैं । द्वारों में मूँगें की चौखट और हीरे के किवाड़ लगे हैं । रत्नों से जटित अतएव सुन्दर आठ कपाट हैं । उसके चारों ओर अनेक रत्नों से बनी हुई चहारदीवारी खड़ी है । उस प्राचीर पर नवरत्नों से निर्मित ऊँचें-ऊँचें तोरण लगे हैं । उसमें स्थान-स्थान पर अनेक रत्न जड़े हुए हैं । महा मरकत की भूमि पर मूँगे की वेदियाँ बनी हुई हैं । नीलमणि से निर्मित शिखरों पर सोने के घड़े बने हुए हैं । वह मण्डप विचित्र वितान एवं बहुमूल्य स्वर्णतोरणों से संयुक्त है । समस्त ऋद्धियों वाले सूर्यकान्त मणि से निर्मित खम्भों से वह मण्डप शोभायमान हो रहा है ॥ ७८-८४ ॥

हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
स्वस्वस्थान(स्थि?कृ)तावस्थैर्लोकपालैरधिष्ठितम् ॥ ८५ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भि(र्दु?र्जु)ष्टदिङ्मुखम् ॥ ८६ ॥
नृत्यसङ्गीतनिरतैरमरस्त्रीगणैर्युतम् ।
नवरत्नसमाबद्धस्तम्भराजिविराजितम् ॥ ८७ ॥
सप्तहाटकसंक्लृप्तवातायनमनोहरम् ।
नानारत्नांशुकोद्बद्धसुवर्णशतकोटिभिः ॥ ८८ ॥
किंकि(नी?णी)मणिसन्नद्धपताकाभिरलंकृतम् ।
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरभूषितम् ॥ ८९ ॥
जातरूपमयै रत्नैश्चित्रितैरतिविस्तृतैः ।
माणिक्यरत्नवैदूर्यस्वर्णमालावलीयुतैः ॥ ९० ॥
अन्तरान्तरसम्बद्धरत्नैर्दृष्टिमनोहरैः ।
विचित्रितैश्चित्रवर्णैर्वितानैरुपशोभितम् ॥ ९१ ॥

स्वर्णदण्ड के शिर पर लटकने वाली ध्वजाओं से परिष्कृत वह मण्डप अपने-अपने स्थान में बैठे हुए लोकपालों से शोभायमान है । वहाँ पर चारों ओर सिद्ध चरण, गन्धर्व, विद्याधर, पन्नग, किन्नर एवं अप्सरायें क्रीडा कर रहीं है । नृत्य-सङ्गीत में लगी हुई देवस्त्रियों से वह व्याप्त है । उसके स्तम्भों में नव रत्न बँधे हुए हैं । उसमें सोने से निर्मित सात खिड़कियाँ भी लगी हुई हैं । यह मण्डप अनेक रत्नों से जटित वस्त्रों में बँधे हुए सैकड़ों कोटि सोने वाली किङ्किणी तथा मणियों से जटित पताकाओं से अलङ्कृत है । महामाणिक्य वैदूर्य तथा अन्य रत्नों से जटित चामर से वह सुशोभित है । उस मण्ड्प में वितान (= चाँदनी) लगे हुए हैं जो सोने तथा रत्नों से रंग-बिरंगे, हैं । वे वितान बहुत बड़े-बड़े हैं । माणिक्य रत्न वैडूर्य तथा स्वर्ण मालाओं से युक्त हैं । बीच-बीच में गुँथे रत्नों के कारण वे वितान देखने में सुन्दर लग रहे हैं । रस्सियों में बँधें बड़े-बड़े वह मण्डल अलङ्कृत है ॥ ८५-९१ ॥

स्थूलमुक्ताफलोद्दामलम्बमानैरलंकृतम् ।
उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ॥ ९२ ॥
क्लृप्तैः कशि(म्बू?पु)भिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः।
दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ ९३ ॥
दुकूलक्षौमकौ(षे?शे)यैर्नानावर्णैर्विराजितम् ।
स्त्रग्भिर्विचित्रपुष्पाभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ॥ ९४ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरमृगनाभिविलेपितम् ।

चन्दनागुरुकर्पूरधूपितं सुमनोहरम् ॥ ९५ ॥
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहान्वितम् ।
नन्दनोद्यानमध्यस्थमधः कल्पतरोरपि ॥ ९६ ॥
एवं संचिन्त्य मनसा मण्डपं सुमनोहरम् ।

ऊपर-ऊपर बनाये गये निलयों में अलग-अलग रखे गये पलङ्ग, बिस्तर, तकिया, पङ्खा, आसन से वह मण्डप मनोहर है । वहाँ दिव्य उपकरण रखे गये हैं । वह मण्डप सब समय में सुख देने वाला है । अनेक रंगों वाले रेशमी वस्त्रों से शोभायमान है । वह मण्डप विचित्र पुष्पों से बनायी गयी मालाओं, मधुर गुञ्जार करने वाले भौंरों, चन्दन अगर कपूर कस्तूरी से विलेपित, चन्दन अगुरु कपूर से धूपित है। सुमनोहर अनेक फूलों की गन्ध को ढोने वाली हवायें वहाँ चल रही हैं । वह मण्डप नन्दन कानन के मध्य स्थित है । उसके ऊपर कल्पवृक्ष हैं ॥ ९२-९६- ॥

मण्डपस्थमहामाणिक्यमण्डपवर्णनम्

तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेन्महामाणिक्यमण्डपम् ॥ ९७ ॥
शरच्चन्द्रनिभच्छत्रं मुक्तामाणिक्यमण्डितम् ।

मण्डपस्थ महामाणिक्य मण्डप का वर्णन—इस प्रकार के मनोहारी मण्डप का ध्यान कर उसके अन्दर चमकते हुए महामाणिक्यनिर्मित मण्डप का ध्यान करना चाहिये । उसमें शरत्कालीन चन्द्रमा के समान धवल छत्र लगे हैं तथा वह मण्डप मुक्तामाणिक्य से अलङ्कृत है ॥ ९७- ॥

हेमदण्डशिखालम्बिश्वेतचामरभूषिताम् ॥ ९८ ॥
तदधःस्थां स्मरेद्रक्तां महामाणिक्यवेदिकाम् ।
उद्यदर्केन्दुकिरणां चतुरस्रोपशोभित(?ता)म् ॥ ९९ ॥
वेदिकां वेदिकास्थाने सिंहासनं ततोपरि ।
तस्याग्नेयादिकोणेषु धर्मादिकांस्तु संस्मरेत् ॥ १०० ॥
दिक्ष्वधर्मादिकांस्तत्र चिन्तयेद्गात्ररूपिणः ।
रक्तश्यामहरिद्रेन्द्रनीलाभान् पादरूपिणः ॥ १०१ ॥
वृषके(शविभृ?सरिभू)तेभरूपान् धर्मादिकान् स्मरेत्।
प्रसूनतूलिकां तत्र सिंहासनस्य मध्यमे ॥ १०२ ॥
तन्मध्ये परमं ध्यायेत् सर्वतत्त्वात्मकाम्बुजम् ।
आनन्दकन्दमेवात्र संविन्नालं तथैव च ॥ १०३ ॥

प्रकृतिविकाररूपद्वात्रिंशत्पत्रकेसरम् ।
पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यकर्णिकापरिमण्डितम् ॥ १०४ ॥
कर्णिकायां स्मरेत् सूर्यं तन्मध्ये सोममण्डलम् ।
(सोममण्डलमध्ये तु संस्मरेद्वह्निमण्डलम्) ॥ १०५ ॥

उसमें महामाणिक्य से बनी रक्तवर्ण की एक वेदी है जो कि सोने के दण्ड में लटकने वाले श्वेत चामर से भूषित है । उसमें से प्रातःकालीन सूर्य की किरणें निकल रही हैं । वह वेदी किनारों वाली है । वेदी के ऊपर सिंहासन रखा है । उस सिंहासन के आग्नेय आदि कोणों में धर्म आदि (= ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य) का ध्यान करना चाहिये । चारों दिशाओं में शरीरधारी अधर्म आदि (= अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य) का चिन्तन करना चाहिये । इन अधर्म आदि के रंग रक्तश्याम पीला एव नीला है । धर्म आदि क्रमशः वृष, सिंह भूत और हाथी के रूप वाले हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । वहाँ सिंहासन के मध्य पुष्पों की तूलिका है । उसके मध्य में सर्वतत्त्वात्मक परमकमल का ध्यान करना चाहिये । इस कमल में आनन्द इसका कन्द है । उसी प्रकार संवित् नाल है । प्रकृति और उसकी महत् आदि विकृतियाँ जिनकी संख्या बत्तीस है, इसके पत्र केसर हैं । पचास वर्ण बीज इसकी कर्णिकायें हैं । कर्णिका में सूर्य मण्डल का उसके बीच सोम मण्डल का ध्यान करना चाहिये । सोम मण्डल के बीच वह्निमण्डल का चिन्तन करना चाहिये ॥ ९८-१०५ ॥

वह्निमण्डलमध्ये तु सत्त्वं च परिचिन्तयेत् ।
रजश्च तत्र संचिन्त्य तमोऽपि च तन्मध्यतः ॥ १०६ ॥
ज्ञानतत्त्वात्मनश्चैव मायातत्त्वात्मनस्तथा ।
विद्यातत्त्वात्मनो देवि कलातत्त्वात्मनो यजेत् ॥ १०७ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताश्चतुर्दिङ्मध्यसंस्थिताः ॥ १०८ ॥
सदाशिवोपरिगतं त्रिशृङ्गज्योतिरव्ययम् ।
तस्य मध्ये महापद्मं पीयूषपरिपूरितम् ॥ १०९ ॥
सुधार्णवासने तत्र त्रिपुरां प्रकटेश्वरीम् ।
पीतार्म्बुजासने तद्वच्चिन्तयेत् त्रिपुरेश्वरीम् ॥ ११० ॥
चिन्तयेत् साधको भक्त्या गुप्तयोगिन्यधीश्वरीम् ।
आत्मासनगतां तत्र स्मरेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ १११ ॥
गुप्ततरेश्वरीं देवीं चक्रासने विचिन्तयेत् ।
त्रिपुरवासिनीं देवीं सम्प्रदायगणेश्वरीम् ॥ ११२ ॥

सर्वमन्त्रासने देवि चिन्तयेत् त्रिपुरश्रियम् ।
कुलकौलेश्वरीं देवीं, साध्यासनगतां ततः ॥ ११३ ॥
त्रिपुरमालिनीं प्राज्ञे निगर्भयोगिनीश्वरीम् ।
सिद्धासने ततः पश्चात् सिद्धां त्रिपुरपूर्विकाम् ॥ ११४ ॥
पर्यङ्कशक्तिपीठे तु त्रिपुराम्बां विचिन्तयेत् ।

वह्निमण्डल के मध्य सत्त्व का उसके मध्य रजस् का और रजस् के मध्य तमस् तत्त्व का ध्यान करना चाहिये । उसके मध्य ज्ञानतत्त्व मायांतत्त्व विद्यातत्त्व एवं कलातत्त्व का यजन करना चाहिये । हे देवि! उस कमल के ऊपर चार दिशाओं में ब्रह्मा विष्णु रुद्र और ईश्वर तथा मध्य में सदाशिव ये पाँच महाप्रेत स्थित हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । सदाशिव के ऊपर तीन शृङ्ग अर्थात् त्रिशूल वाली अव्यय ज्योति है । उसके मध्य अमृतपूर्ण महापद्म है । उस अमृतार्णव के आसन पर त्रिपुरा प्रकटेश्वरी का, उसी प्रकार पीत कमल के आसन पर त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । साधक को योगिनी की इस गुप्त अधीश्वरी का भक्ति के साथ ध्यान करना चाहिये । त्रिपुरसुन्दरी का आत्मासन पर ध्यान करना चाहिये । चक्रासन में इस गुप्तरेश्वरी देवी का चिन्तन करना चाहिये । सम्प्रदायगणेश्वरी त्रिपुरवासिनी का तथा त्रिपुरश्री का सर्वमन्त्रासन पर चिन्तन करना चाहिये । यहीं पर कुलकौलेश्वरी का भी ध्यान करणीय है । हे प्राज्ञे! निगर्भयोगिनीश्वरी त्रिपुरमालिनी का साध्यासन पर ध्यान करना चाहिये । त्रिपुरसिद्धा का सिद्धासन पर चिन्तन करना चाहिये । त्रिपुराम्बा का पर्यंक पीठ पर स्मरण करना चाहिये ॥ १०६-११४- ॥

कामेश्वरीध्यानम्

कामेश्वराङ्कपर्यङ्कसमासीनां परां कलाम् ॥ ११५ ॥
रक्तपद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ।
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ११६ ॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ॥ ११७ ॥
कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥ ११८ ॥
किंचिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम् ॥ ११९ ॥
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ॥ १२० ॥

सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्दुमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥ १२१ ॥
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
दाडिमीबीजवद्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥ १२२ ॥

कामेश्वरी ध्यान—परा कलारूपा कामेश्वरी कामेश्वर की गोदरूपी पलङ्ग पर आसीन है । वह देवी लाल कमल सदृशी है । प्रातःकालीन सूर्य के समान वह अरुण है । जवापुष्प अनार के कुसुम तथा पद्मराग मणि के समान वह कुङ्कुम मिश्रित जल सदृश है । चमकते हुए मुकुट तथा माणिक्य जटित किङ्किणी से वह अलङ्कृत है । उसके केश काले भ्रमर के समान घुँघराले हैं । मुँह ताजे कमल के समान अरुण है । ललाट अर्धचन्द्र के समान थोड़ा वक्र है । वह परमेश्वरी पिनाक धनुष के आकारवाली भौंहों से सुशोभित है । आँखें आनन्द से पूर्ण अतएव चञ्चल है । कानों में सोने के कुण्डल हैं जिनकी चमकती हुई किरणें उसके मुख को सुशोभित कर रही है । कपोलमण्डल का विस्तार चन्द्रमण्डल को तिरस्कृत करने वाला है । नासिका मानो विश्वकर्मा की रचना का स्पष्ट सूत्र है । उसके ओष्ठ ताम्रवर्ण के विद्रुम अथवा बिम्बफल के समान अरुण है । वह अमृत सदृश है । उसकी दन्तपंक्ति अनार के बीज या हीरे सदृश है ॥ ११५-१२२ ॥

रत्नद्वीपसमुद्भासिजिह्वां मधुरभाषिणीम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥ १२३ ॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललिलतैर्भुजैः ॥ १२४ ॥
मणिकङ्कणकेयूरभारखिन्नं(?न्नां)प्रशोभिताम् ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ॥ १२५ ॥
कराम्बुजनखज्योत्स्नाविराजितनभःस्थलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतपीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिवलीवलनायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥ १२६ ॥

उसकी जिह्वा रत्नद्वीप के समान चमक रही है । वह मधुरभाषिणी है । उसकी मुस्कान की मधुरिमा माधुर्य के सागर को जीत लेने वाली है । उसकी चिबुक (= ठोड़ी) अद्वितीय गुणों से युक्त है । उसकी ग्रीवा जैसे शङ्ख के समान तथा भुजायें कमलनाल के सदृश हैं और वे मणिजटित कङ्गनों से भरी हुई हैं । उसके हाथ रक्तोत्पलदल के समान कोमल एवं अरुण हैं । करकमल के नख की किरणें आसमान को सुशोभित कर रही हैं । उसके पीन उन्नत स्तनों पर

मोतियों की माला शोभायमान हो रही है । कटिप्रदेश त्रिवली के वलन से सुशोभित है ॥ १२३-१२६ ॥

लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ।
अनर्घरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ॥ १२७ ॥
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजीवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ॥ १२८ ॥
लावण्यकन्दलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ।
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ॥ १२९ ॥
नूपुरैर्विलसत्पादपङ्कजातिमनोहराम् ।
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजाम् ॥ १३० ॥
तनुदीर्घाङ्गुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥ १३१ ॥
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां रक्ताभरणभूषिताम् ॥ १३२ ॥

सौन्दर्य की सरिता के भँवर के समान नाभि से वह विभूषित है । उसके नितम्बों पर बहुमूल्य रत्नों से जटित करधनी शोभायमान हो रही है । नितम्बों के ऊपर रोमराजि ऐसी प्रतीत हो रही है मानो वह नितम्बरूपी हाथी के कुम्भ को नियन्त्रित करने वाले अङ्कुश हों । वह ईश्वरी केले के सुन्दर स्तम्भों के समान सुघड़ उरुओं वाली है । लावण्य की दो कन्दलियों के समान उसकी दोनों जङ्घायें हैं । मजबूत टखनो वाले पैरों से वह कच्छपों को भी लज्जित करने वाली है । उसके सुन्दर पैरों में नूपुर शोभायमान है । ब्रह्मा एवं विष्णु के शिर के रत्न सदा उसके चरणों का स्पर्श करते रहते हैं । उसकी पतली लम्बी अङ्गुलियों में नखचन्द्र शोभा वृद्धि कर रहे हैं । उसकी हँसी मानो सैकड़ों चन्द्रमा की कान्ति के समान है । अपनी लालिमा से वह सिन्दूर, जपा पुष्प एवं अनार के रंग को जीतने वाली है । लाल वस्त्रों को पहनी हुई वह लाल अलङ्कारों से भूषित है ॥ १२७-१३२ ॥

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधतीं पराम् ॥ १३३ ॥
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ॥ १३४ ॥
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥ १३५ ॥

जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वदेवमयीं देवीं सर्वमन्त्रमयीं पराम् ॥ १३६ ॥
सर्वलक्ष्मीमयीं साक्षात्परमानन्दरूपिणीम् ।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं त्रिपुरामयम् ॥ १३७ ॥
आत्माभेदेन संचिन्त्य याति तन्मयतां नरः ।
साहमित्यस्य सततं चिन्तनात्तन्मयो भवेत् ॥ १३८ ॥
तामेव चिन्तयेद्देवि नान्यत् किंचित्तया विना ।
तत्तेजोभिरिदं सर्वं परिपूर्णं विभावयेत् ॥ १३९ ॥

इच्छाशक्ति वाला पाश, ज्ञानशक्ति का अङ्कुश, क्रियाशक्ति रूपी धनुष बाण को वह धारण की हुई हैं । उसका मुख कपूरमिश्रित ताम्बूल से परिपूरित है । उसका शरीर महामृग के मद से अत्यन्त सुगन्धित तथा रक्तवर्ण का है । उसने सारे शृङ्गार कर रखे हैं तथा सारे आभूषणों को पहन रखा है । वह कामेश्वरी संसार के आनन्द की जननी और संसार को आनन्दित करने वाली हैं । संसार को आकृष्ट करने वाली वह संसार का कारणभूत है । सर्वदेवमयी सर्वमन्त्रमयी सर्वलक्ष्मीमयी साक्षात् परमानन्दरूपिणी परादेवी तथा निरवद्य निरञ्जन निर्गूण शुद्ध त्रिपुरसुन्दरीमय आत्मा को अभिन्न रूप में ध्यान करने वाला मनुष्य तन्मय हो जाता है ।, मैं वह अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी हूँ—ऐसा निरन्तर ध्यान करने वाला त्रिपुरामय हो जाता है । हे देवि! उसी का निरन्तर ध्यान करना चाहिये क्योंकि उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है । उसके तेज से यह सब व्याप्त है—ऐसी भावना करनी चाहिये ॥ १३३-१३९ ॥

त्रिपुरसुन्दरीध्यानयोगस्यमाहात्म्यम्

एवं भावनयाविष्टो देववद्विहरेत् क्षितौ ।
ध्यानयोगपरस्यास्य पूज्यो नास्तीह कश्चन ॥ १४० ॥
स एव सुकृती लोके स पूज्यो न तु पूजकः ।
योगात्मा योगविज्ञानी स देवो न तु मानुषः ॥ १४१ ॥
संन्यासी स च विन्यासी युक्तात्मा स मुनिर्मतः ।
नासाध्यं वर्तते तस्य स सिद्धो योगिपुङ्गवः ॥ १४२ ॥
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैस्तोषयेद् भूषयेत् सदा ।
आत्मानमेव सततं पूजयेद् देवताधिया ॥ १४३ ॥
देववद्विहरेन्नित्यं कालयोगपरायणः ।
यत् पश्यति यच्छृणोति गीतनृत्यादिकं च यत् ॥ १४४ ॥
परिदधाति यत्किंचित् स्वयं यदनुलिम्पति ।

हस्त्यश्वरथखट्वादि यदारोहति साधकः ॥ १४५ ॥
यत् करोति यदश्नाति त् सर्वं देवताधिया ।

ध्यान-योग का माहात्म्य—इस प्रकार की भावना से आविष्ट मनुष्य पृथिवी पर देवता के समान आनन्द करता है । ध्यान-योग में लगे हुए इस साधक के लिये इस धरती पर कोई भी पूज्य नहीं है प्रत्युत वही सबका पूज्य होता है । इस लोक में वही पुण्यवान् है । वह पूज्य है न कि पूजक । योगात्मा योगवेत्ता ज्ञानी वह भक्त देवता है न कि मनुष्य । वही संन्यासी विन्यासी मुक्तात्मा और मुनि माना गया है । उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है । वह सिद्ध और योगियों में श्रेष्ठ है । साधक को चाहिये कि वह अपने को देवता समझकर इन्द्रियतोषक द्रव्यों से उनको सन्तुष्ट करे और उनको अलङ्कृत करे । कालयोग में लगा हुआ वह देवता के समान नित्य विहार करता है । वह साधक जो कुछ नृत्य गीत आदि देखता सुनता है; जो पहनता है, जो कुछ लेप करता है; जिस हाथी घोड़ा खटियाँ आदि पर आरुढ़ होता है; जो करता है जो खाता है वह सब देवताबुद्धि से करता है ॥ १४०-१४५- ॥

विषयान् विषयी भुङ्क्ते यानेव स्वमनोरथान् ॥ १४६ ॥
तत्तत् समग्रमासाद्य तत्सर्वं- देवताधिया ।
जाग्रदादि सुषुप्त्यन्तं सर्वं तद्देवताधिया ॥ १४७ ॥-
दिव्य एव भवेत्तत्र न चैवान्यः कदाचन ।
तस्माद् दिव्यपरो यस्तु देवीमानन्दरूपिणीम् ॥ १४८ ॥
पूजयेत् सततं भक्त्या महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं ध्यानयोगपरायणः ॥ १४९ ॥
तां तु यश्चिन्तयेद्रात्रौ भोगी ध्यानपरायणः ।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कसमासीनां परां कलाम् ॥ १५० ॥
सर्वाङ्गसुन्दरीं हृद्यां प्रसादसुमुखेक्षणाम् ।
सकारणामभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ।
चतुर्वर्गं करे तस्य जीवन्मुक्तः स एव हि ॥ १५१ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे ध्यानयोगनिरूपण
नामको द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

◆

विषयासक्त मनुष्य अपने मनोरथ के अनुसार जिन विषयों का भोग करता है तथा अपने को भोक्ता समझता है, साधक वह सब अपने को देवता मानकर

भोगता है। जाग्रत से लेकर सुषुप्ति पर्यन्त जो कुछ वह करता है यदि वह देवता की बुद्धि से करता है तो वह देवता ही हो जाता है, दूसरा कुछ नहीं। इसलिये जो दिव्य भोगपरक है उसे चाहिये कि वह आनन्दरूपा देवी महात्रिपुरसुन्दरी की सदा भक्ति के साथ पूजा करे। ध्यानयोगपरायण मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करता है। भोगी भी व्यक्ति यदि रात्रि में ध्यान लगाकर कामेश्वरी की गोद में बैठी हुई पराकला सर्वांगसुन्दरी हृदयहारिणी प्रसन्न मुख-नेत्र वाली सकारणा त्रिपुरसुन्दरी का उसके समस्त अङ्गों में मन लगाकर ध्यान करता है तो चारों पुरुषार्थ उसके हाथ में होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ १४६-१५१ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में ध्यान-योग-निरूपण नामक द्वादश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

* * *

त्रयोदशः पटलः

बहिर्यागतद्विशेषार्घ्यपात्रादिनिरूपणम्

बहिर्यागोपक्रमः

श्री पार्वत्युवाच—

बहिर्यागविधिं ब्रूहि साङ्गेन परमेश्वर ।
विशेषार्घस्य संस्थानं नित्या(ज?य)जनमेव च ॥ १ ॥

बहिर्याग का उपक्रम—श्री पार्वती ने कहा—हे परमेश्वर! अङ्गों के सहित बहिर्याग की विधि, विशेषार्घ का संस्थान और नित्या का यजन बतलाइये ॥ १॥

ईश्वर उवाच—

तादृशीमम्बिकां ध्यात्वा त्रिधात्मानं च तन्मयम् ।
तेनैव मूलमन्त्रेण शिरोदेशे तदेव हि ॥ २ ॥
स्वकीये कुसुमं दद्यादङ्गन्यासं पुनस्तथा ।
चैतन्यं सर्वभूतानां यद् ब्रह्म सोऽहमीश्वरः ॥ ३ ॥
सोऽहमित्यस्य सततं चिन्तनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यग्भावनान्नात्र संशय ॥ ४ ॥
पूजोपकरणस्यापि देवत्वमिह जायते ।
सर्वेषां देवतादृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥ ५ ॥
अहं देवोऽथ नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
देवाधारो ह्यहं देवो न देवो मत्परः क्वचित् ॥ ६ ॥
देवमेव यजे चाहं देवदेवोऽहमेव च ।
यदि बाह्यार्चनद्रव्यसम्पत्तिरपि विद्यते ॥ ७ ॥
विशेषार्घ्यादिकं देवि तदा कुर्यादन्द्रितः ।

ईश्वर ने कहा—पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार माता त्रिपुरसुन्दरी का तथा अपना

तीन प्रकार (= निर्लेप, निर्गुण और शुद्धत्रिपुरामय रूप) से ध्यान कर उसी के मूलमन्त्र से अपने शिर पर पुष्प रखना चाहिये । इसके बाद अङ्गन्यास करना चाहिये । जो ब्रह्म समस्त भूतों अर्थात् प्राणियों के अन्दर चैतन्य रूप में विराजमान है, मैं वही ईश्वर हूँ । 'सोऽहम्' इस भावना का निरन्तर ध्यान करने से देवरूपता प्राप्त होती है तथा आत्मा की सम्यक् भावना (= साक्षात्कार) हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं । यहाँ तक कि ऐसा ध्यान करने पर पूजा की सामग्री भी देवरूप हो जाती है । सब वस्तुओं में देवता की भावना रखने पर वे वस्तुयें भी शुद्ध हो जाती है । 'मैं देवता हूँ' यह नैवेद्य, पुष्प, गन्ध आदि सब देव ही हैं; मैं देवता का आधार हूँ; देवता मेरे से भिन्न कुछ भी नहीं है; मैं देवता की ही पूजा कर रहा हूँ; मैं देवाधिदेव हूँ—ऐसी भावना करनी चाहिये । यदि बाह्य पूजा के लिए द्रव्य प्राप्त हो तब हे देवि! आलस्यरहित होकर विशेषार्घ्य आदि करना चाहिये ॥ २-७- ॥

अर्घ्यपात्रादिवर्णनम्

पूजार्घ्यपात्रं नैवेद्याद्याधारपानपात्रकम् ॥ ८ ॥
सर्वं ताम्रमयं कुर्याद्यत्किंचिदिह पूजने ।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा ॥ ९ ॥
देवीप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत् ।
शङ्खशुक्तिरजतस्वर्णैर्दिव्यानां पात्रमिष्यते ॥ १० ॥
महाशङ्खैस्तु वीराणां फलजं वनवासिनाम् ।
अष्टाङ्गुलस्य न न्यूनं नाधिकं सार्धपाणितः ॥ ११ ॥
सर्वेषामेव पात्राणां मानमेवं विधीयते ।
पञ्चरत्नैर्महादेव्याः पञ्च पात्राणि कारयेत् ॥ १२ ॥

अर्घ्यपात्र आदि—पूजा का अर्घ्यपात्र, नैवेद्य रखने का पात्र पानपात्र या इस पूजा में जिस किसी के आधारपात्र की आवश्यकता हो, सारे पात्र ताँबे के होने चाहिये । इसका कारण यह है कि ताँबे के पात्र में यजन करने से देवतायें प्रसन्न होती हैं । सारे देव ताम्र में सर्वदा स्थित रहते हैं । ताम्र देवी को प्रसन्न करता है इसलिये ताँबे के पात्रों का प्रयोग करना चाहिये । दिव्य साधकों के पात्र शङ्ख शुक्ति चाँदी और सोने के होते हैं । वीरसाधकों का पात्र महाशङ्ख (= नरकपाल) का होता है । वानप्रस्थ लोगों का पात्र नारियल आदि फलों का होता है । कोई भी पात्र आठ अङ्गुल से कम लम्बा और आधा हाथ अर्थात् बारह अङ्गुल से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिये । समस्त पात्रों का परिमाण ऐसा ही बतलाया जाता है । महादेवी के पाँच पात्र पाँच रत्नों (= सोना चाँदी ताँबा पीतल और काँस्य) से निर्मित होने चाहिये ॥ ८-१२ ॥

सामान्यं च विशेषं च पाद्यमाचमनीयकम् ।
कुम्भं चापि प्रयत्नेन रत्नैः कुर्याद्विभूतये ॥ १३ ॥
रत्नं गगनसंज्ञं च स्वर्गरत्नं तथैव च ।
मर्त्यपातालरत्ने च नागरत्नं तथैव च ॥ १४ ॥
गारुडं चैव माणिक्यं वज्रं वैदूर्यमेव च ।
नीलं च क्रमतो विद्यात् पञ्च रत्नानि योजयेत् ॥ १५ ॥
बीजपञ्चकमेतेषां क्रमाद्वक्ष्ये सुदुर्लभम् ।
गसौ च(स?प)मनाः पश्चादिन्द्रस्थाः क्रमतः प्रिये ॥ १६ ॥
नादबिन्दुकलायुक्ता वामकर्णविभूषिताः ।
तर्पणार्थं विशेषेण चक्रपूजानिवेदने ॥ १७ ॥
श्रीपात्रं साधयेद्धीमान् विधिना साधकोत्तमः ।

सामान्यपात्र, विशेषपात्र, पाद्यपात्र आचमनीय पात्र और घट—इनको क्रमश विभूति के लिये बनाना चाहिये । गगनरत्न, स्वर्गरत्न, मर्त्यरत्न, पातालरत्न और नागरत्न—ये क्रमशः गारुड (= पन्ना), माणिक्य, वज्र (= हीरा), वैडूर्य और नीलम हैं । पात्र को इन सभी रत्नों से युक्त करना चाहिये । इन पात्रों के दुर्लभ बीजों को क्रम से बतलाऊँगा । ग स प म और न इनको इन्द्र = ल के साथ जोड़कर नाद बिन्दु कला एवं वामकर्ण (= ऊ) से युक्त करने पर पाँच बीज होते हैं । वे हैं—ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं । तर्पण के लिये और विशेषरूप से चक्रपूजा में नैवेद्य के लिये धीमान् उत्तम साधक विधिपूर्वक श्रीपात्र अर्थात् विशेषार्घ्य की रचना करे ॥ १३-१७- ॥

विशेषार्घ्य साधनम्

योनिमुद्रां विधायादौ कुर्यादर्घ्यस्य साधनम् ॥ १८ ॥
आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये चतुरस्त्रं तु कारयेत् ।
तन्मध्ये चैव षट्कोणं तन्मध्ये वृत्तमुत्तमम् ॥ १९ ॥
त्रिकोणं तत्र संलिख्यं चन्दनेन वरानने ।
मण्डलं तं समभ्यर्च्य साधयेदासनं ततः ॥ २० ॥
बालाबीजत्रयं देवि ततस्त्रिपुरसुन्दरी ।
अर्घ्यपात्रासनं चैव साधयामीति साधयेत् ॥ २१ ॥
तथैवास्त्रेण तु तथा सामान्यार्घ्योदकेन तु ।
प्रक्षाल्य परमेशानि मण्डले स्थापयेत्ततः ॥ २२ ॥
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।

पूर्ववत् परमेशानि पात्रं प्रक्षाल्य साधकः ॥ २३ ॥
विशेषार्घ्यपदात् पात्रं प्रतिशब्दादनन्तरम् ।
स्थापयामीति मनुना संस्थाप्य तदनन्तरम् ॥ २४ ॥
सूर्यमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।
पूजयेत्तं विधानेन बिन्दु(श्रु?स्रु)तसुधामयैः ॥ २५ ॥

विशेषार्घ्यपात्र की रचना—पहले योनिमुद्रा दिखाकर अर्घ्यपात्र की सिद्धि करनी चाहिये । अपने और श्रीचक्र के मध्य एक चौकोर मण्डल बनाना चाहिये । उसके बीच षट्कोण, उसके बीच उत्तमवृत्त और वृत्त के मध्य त्रिकोण बनाना चाहिये । यह सब चन्दन से बनाया जाता है । इस मण्डल की पूजा कर वहाँ आसन बनाना चाहिये । उसके लिये मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—पहले बालाबीज फिर 'त्रिपुरसुन्दरीअर्घ्यपात्रं साधयामि' कहना चाहिये । मन्त्रस्वरूप—'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीअर्घ्यपात्रं साधयामि' से अर्घ्यपात्र को हाथ में लेकर अस्त्र मन्त्र (= फट्) का उच्चारण करते हुए सामान्य जल से उसको धुलना चाहिये । हे परमेशानि! तत्पश्चात् उसको मण्डल पर रखना चाहिये । वह्निमण्डल रूप उसकी दश कलाओं[1] के साथ पूजा करनी चाहिये । हे परमेशानि! पुनः पूर्ववत् दूसरे पात्र को धुल कर साधक को 'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीविशेषार्घ्यपात्रं प्रतिष्ठापयामि' से पात्र की स्थापना करनी चाहिये और सूर्यमण्डलरूप उस पात्र की द्वादश कलाओं[2] के साथ बिन्दु के रूप में बूँद-बूँद कर गिरने वाले अमृत से पूजा करनी चाहिये ॥ १८-२५ ॥

मातृकां प्रतिलोमेन मूलाभिमन्त्रितामृतैः ।
आदिमैः पूरयेद्वापि तथा पुष्पासवैरपि ॥ २६ ॥
कपिलायास्तथा क्षीरैर्नारिकेलामृतैरपि ।
इक्षुरसैः सुगन्धैश्च मधुरत्रितयेन वा ॥ २७ ॥
पूरयेत् तन्महापात्रं नानाद्रव्यैः कदाचन ।
अधिकारिप्रभेदेन द्रव्यभेदा भवन्ति हि ॥ २८ ॥
स्वयम्भूकुसुमं तत्र कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रं कस्तूरीपरिभावितम् ॥ २९ ॥
निक्षिपेत् परमेशानि शर्करां मधुसंयुताम् ।

---

[1] १. धूम्रार्चिः, २. ऊष्मा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुलिङ्गिनी, ६. सुश्री, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवाहना, १०. कव्यवाहना ।

[2] १. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुषुम्ना, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी, १२. क्षमा ।

अकार आदि मातृकाओं का प्रतिलोम उच्चारण कर मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित द्रव्यों से उस पात्र को पूरित करना चाहिये । पूरक द्रव्य है—पुष्पासव, कपिला गाय का दूध, नारियल का गूदा, ईख का रस, त्रिमधु और भी अनेक द्रव्य । अधिकारी के भेद से द्रव्य के भेद होते हैं । हे परमेशानि! कपूर अगुरु चन्दन गोरोचन कुङ्कुम से मिश्रित तथा कस्तूरी से सुगन्धित स्त्री के आर्त्तव को मधु और शर्करा मिलाकर उस पात्र में छोड़ना चाहिये ॥ २६-२९- ॥

पात्रसाधने मुद्राप्रयोगः

पूर्वोक्तमण्डलं तत्र संचिन्त्य साधकोत्तमः ॥ ३० ॥
अङ्कुशमुद्रया पश्चात् तीर्थं वै प्रार्थयेत् ततः ।
ऋजुमध्यामध्यपर्वाक्रान्ता तर्जन्यधोमुखी ॥ ३१ ॥
विज्ञेयाङ्कुशमुद्रेयं कुञ्चिता मध्यपर्वतः ।
सौरमण्डलतः पश्चात् तीर्थमावाहयेत् तथा ॥ ३२ ॥
गङ्गावतारमन्त्रेण सर्वैस्तीर्थगणैः सह ।
गङ्गापि यमुनायाति पूजापात्रजलं प्रति ॥ ३३ ॥
मीनमुद्रां विधायाथ हस्ताभ्यां पात्रमुत्तमम् ।
आच्छाद्य परमेशानि चिन्मयं तीर्थमागतम् ॥ ३४ ॥
अधोमुखावुभौ हस्तौ स्वस्वोपरि च संस्थितौ ।
पार्श्वद्वयगताङ्गुष्ठौ मीनमुद्रेयमीरिता ॥ ३५ ॥
माणिक्यं मौक्तिकं देवि विद्रुमं गारुडं तथा ।
पुष्परागं तथा वज्रं नीलं गोमेदकं शुभम् ॥ ३६ ॥
वैदूर्यं नवरत्नानि तत्राम्भसि नियोजयेत् ।
रत्नेशीं पूजयेत्तत्र सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ३७ ॥

पात्र रचना में मुद्रा का प्रयोग—इसके बाद साधक उस पात्र में अङ्कुश मुद्रा के द्वारा तीर्थ का आवाहन और प्रार्थना करे । मध्यमा अङ्गुली सीधी हो तथा मध्य पर्व पर मुड़ी हो तर्जनी अधोमुखी हो । मध्यपर्व पर कुञ्चित हो तो यह अङ्कुश मुद्रा होती है । बाद में सौर मण्डल से तीर्थ का आवाहन करे । यह आवाहन सारे तीर्थों के साथ गङ्गावतार मन्त्र[1] से करना चाहिये । गङ्गा के साथ यमुना भी पूजापात्र के जल में आती है । दोनों हाथों से मत्स्य मुद्रा बनाकर उत्तम पात्र को ढँककर उस पात्र में चिन्मय तीर्थ को आया हुआ ध्यान करना

---

१. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ (ऋ.सं. १०.७५.५)

चाहिये । दोनों हाथों को अधोमुख कर एक के ऊपर दूसरे को रखें । दोनों अङ्गूठों को हाथों के पास रखें । यह मत्स्यमुद्रा कही गयी है । पात्र के जल में माणिक्य, मोती, मूँगा, पन्ना, पुष्पराज, हीरा, नीलम, गोमेद और वैदूर्य—इन नवरत्नों को छोड़ना चाहिये । उस पात्र में सर्वपापप्रणाशिनी रत्नेश्वरी की पूजा करनी चाहिये ॥ ३०-३७ ॥

पात्रे रत्नेश्वर्यादिपूजनम्

श्रीबीजं च पराबीजं तथैव बीजपञ्चकम् ।
पूर्वबीजे विलोमेन तत्पश्चाद्विनियोजयेत् ॥ ३८ ॥
द्रव्यदोषहरा देवी रत्नेशीयं नवाक्षरी ।
षडङ्गानि च षट्कोणे पूर्वोक्तानि प्रपूजयेत् ॥ ३९ ॥
तन्मध्ये च परेशानि वृत्तं पूर्णेन्दुसन्निभम् ।
चन्द्रमण्डलरूपं तममृतं परिचिन्तयेत् ॥ ४० ॥
कलाभिस्तं प्रपूज्याथ चिन्तयेन्मध्यमण्डलम् ।
अकथादित्रिरेखाढ्यं हक्षाभ्यन्तरमध्यगम् ॥ ४१ ॥
तदग्रे कामरूपं च जालन्धरं च वामतः ।
दक्षे पूर्णगिरिं चैव मध्ये चैवोड्डियानकम् ॥ ४२ ॥
तत्र तत्र यजेद् देवीं चतुर्व्यूहस्वरूपिणीम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोट्ययुतप्रभम् ॥ ४३ ॥
तथा दशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
खड्गखट्वाङ्गपट्टीशमुद्गरं शूलकुन्तकम् ॥ ४४ ॥
बिभ्रतं खेटकं शक्तिं वरदाभयपाणि(न?क)म् ।
तस्योत्सङ्गे(स्वधां?सुरां)देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ॥ ४५ ॥
हिमकुन्देन्दुधवलां पूर्वायुधकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् ॥ ४६ ॥

पात्र में रत्नेश्वरी आदि की पूजा—श्रीबीज पराबीज तथा पाँच बीज फिर पूर्व दो बीज को उल्टा कहना चाहिये । नव अक्षरों वाली[1] यह रत्नेश्वरी द्रव्यदोष को दूर करने वाली है । छह कोणों में पूर्वोक्त छह अङ्गों की पूजा करनी चाहिये । हे परमेशानि! उसके बीच में पूर्णचन्द्र के समान वृत्त का अमृत चन्द्रमण्डल के रूप में ध्यान करना चाहिये । उस चन्द्रमण्डल रूप वृत्त की पूजा कर मध्यमण्डल का

---

[1] श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं ।

सोलह कलाओं[1] के साथ ध्यान करना चाहिये । मध्यमण्डल में अ क थ आदि तीन रेखायें होती हैं । भीतर मध्य में 'ह' एवं 'क्ष' वर्ण रहते हैं । उस वृत्त के आगे कामरूप बाँयें जालन्धर, दाँयें पूर्णगिरि और मध्य में उड्डीयान पीठ रहते हैं । इन पीठों में चतुर्व्यूहरूपा देवी की पूजा करनी चाहिये । वहीं पर करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान, दश हजार करोड़ चन्द्र के समान आभा वाले, दश भुजाओं पाँच वक्त्रों और तीन नेत्रों वाले देव का ध्यान करना चाहिये जो कि हाथों में खड्ग, खट्वाङ्ग, पट्टीश, मुद्गर, त्रिशूल, भाला, खेट, शक्ति, वरद एवं अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं । उनकी गोद में करोड़ों चन्द्र के समान कान्तिमयी, हिम कुन्द चन्द्रमा के समान धवल, पूर्ववर्णित आयुधों को हाथ में रखने वाली, सुरादेवी देवाधिदेव के सम्मुख बैठी हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । कुलाकुलमयी प्रभु का ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ ३८-४६ ॥

अमृतीकरणादिमुद्राणां प्रदर्शनम्

एवं ध्यात्वा समावाह्य कुलाकुलमयीं विभुः ।
अमृतीकरणं कुर्यान्मुद्रया धेनुसंज्ञया ॥ ४७ ॥
अवगुण्ठ्य ततो मन्त्री नीरजायतलोचने ।
सकलीकरणं कुर्यात् षडङ्गेन च पूर्ववत् ॥ ४८ ॥
परमीकरणं कुर्यान्महामुद्रिकया ततः ।
मु(ष?स)लमुद्रिकां योनिं गालिनीं च प्रदर्शयेत् ॥ ४९ ॥
वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठे दक्षिणे स(वशा?रला)ङ्गुलीः ।
वामाङ्गुष्ठं स्पृशेदग्रे योजिता दक्षिणादधः(?) ॥ ५० ॥
मुष्टी कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मु(ष?स)लमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ ५१ ॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ भुग्नौ करयोरितरेतरम् ।
तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नवर्जिताः ॥ ५२ ॥
मुद्रेयं गालिनी प्रोक्ता परमामृतदायिनी ।

अमृतीकरण आदि और मुद्राओं का प्रदर्शन—ध्यान आदि सम्पन्न करने के बाद साधक धेनुमुद्रा से उन सुरादेवी का अमृतीकरण करे । हे कमलायतलोचने! उसके पश्चात् मन्त्री उस सुरा को ढँककर षडङ्ग से उसका सकलीकरण करे ।

---

१. १. अमृता, २. मानदा, ३. पूषा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्रीः, १३. प्रीति, १४. अङ्गदा, १५. पूर्णा और १६. अमृता—ये सोलह कलाएँ हैं । (सं.हि.कोश)

तत्श्चात् महामुद्रा[3] से उसका परमीकरण करना चाहिये । इसके अनन्तर उस सुरादेवी के सामने मुसलमुद्रा योनिमुद्रा और गालिनी मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये । दाँयें अङ्गूठे को बाँयीं मुट्ठी के अन्दर करे तथा दाँयीं अङ्गुलियों को सीधी कर बाँयें अङ्गूठे को बाँधे । इस प्रकार इस मुसल मुद्रा होती है । दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर बायीं मुट्ठी के ऊपर दाँयीं मुट्ठी रखे । यह मुसलमुद्रा होती है जो सारे विघ्नों को दूर करती है । दोनों हाथों की कनिष्ठा और अङ्गुष्ठा एक दूसरे से झुके हों । तर्जनी मध्यमा अनामिका मिली हों लेकिन झुकी न हो । यह गालिनी मुद्रा कही गयी है जो कि परमामृत देती है ॥ ४७-५२- ॥

शिवचन्द्रौ मातृकान्तं कालशक्रा (द्यु?म्बु)वह्नयः ॥ ५३ ॥
वायुश्च वामकर्णेन योजिता बिन्दुनादिनः ।
बीजमेतत् समुच्चार्य तथा चानन्दभैरवम् ॥ ५४ ॥
ङेन्तं शिखामन्त्रयुतं पुनर्बीजानि संलिखेत् ।
चन्द्रं हित्वादि (न?तः)कुर्यात्कर्णे वामाक्षि योजयेत् ॥ ५५ ॥
(स्वधा?सुरा) देव्यै ततो वौषडियमानन्दभैरवी ।
अनेन तौ तु संयोज्य परमानन्दनन्दितौ ॥ ५६ ॥
तदामृते तयोर्योगादमृतं क्षरतेऽचिरम् ।
तयोः पञ्चोपचारेषु ॠचः पञ्च नियोजयेत् ॥ ५७ ॥
प्रथमप्रकृतेर्हंसः प्र तद्विष्णुरनन्तरम् ।
त्रैयम्बकस्तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तत्पदादिकः ॥ ५८ ॥
विष्णुर्योनिं-पदादिस्तु पञ्चमः परिकीर्तितः ।
दशधा प्रजपेद्विद्यां संस्पृश्यामृतमद्रिजे ॥ ५९ ॥

शिव = ह, चन्द्र = स, मातृकान्त = क्ष, काल = म, शक्र = ल, अम्बु = व, वह्नि = र और वायु = य को वामकर्ण = उ के साथ जोड़कर नाद बिन्दु से जोड़ा जाय । 'आनन्दभैरव' को ङेऽन्त कहकर शिखामन्त्र = वषट् कहना चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप—हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्) । चन्द्र को छोड़कर वामकर्ण के स्थान पर वामाक्षि जोड़ना चाहिये । इसके पश्चात् 'सुरादेव्यै' फिर 'वौषट्' यह आनन्दभैरवी मन्त्र है । इससे उन दोनों को अमृत = सुरा से जोड़ने पर शीघ्र ही अमृत = रजवीर्य, का क्षरण होने लगता है । उन दोनों रजवीर्य का पञ्चोपचार से पूजन करने के समय पाँच ॠचाओं का पाठ करना चाहिये ।

---

[3] अन्योऽन्यामिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथिताङ्गुली ।
अङ्गुष्ठमध्यमे भूयः संलग्ने सुप्रसारिते ॥
महामुद्रेति विख्याता पराभुक्तिकरी तथा ।

वे ऋचायें हैं—

१. हंसः शुचिषद् वसुरन्तक्षिसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्यामसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ।

२. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषं त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगिन्धं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

४. तद् विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ।

५. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥

हे अद्रिजे! इसके पश्चात् अमृत का स्पर्शकर विद्या (= अमृतीकरण मन्त्र) का जप करना चाहिये ॥ ५३-५९ ॥

अमृतीकरणमन्त्रोद्धारः

वाग्भवं कामबीजं च सर्गवान् मनुयुग् भृगुः ।
तथामृते पदं ब्रूयात् पश्चादमृतोद्भवे तथा ॥ ६० ॥
अमृतेश्वरि तथेत्युक्त्वा पश्चादमृतवर्षिणि ।
अमृतं (श्रा?स्रा)वययुगं वह्निजायावधिर्मनुः ॥ ६१ ॥

अमृतीकरण मन्त्र का उद्धार—वाग्भव बीज कामबीज मनु = औ से युक्त भृगु = स, को सर्गवान् = विसर्ग वाला करना चाहिये । तत्पश्चात् 'अमृते' पद कहना चाहिये । बाद में 'अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि' कहकर 'अमृतवर्षिणि अमृतं' के अनन्तर दो 'स्रावय' और वह्निजाया—यह मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं सौः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा) ॥ ६०-६१ ॥

सन्दीपनमन्त्रोद्धारः

वाग्भवं वदयुग्मं च वाग्वादिनि च वाग्भवम् ।
कामबीजं क्लिन्ने चोक्त्वा क्लेदिनि क्लेदयेति च ॥ ६२ ॥
महाक्षोभं कुरुयुगं कामबीजमतः परम् ।
तार्तीयं मोक्षमित्युक्त्वा कुरुयुग्मं वदेत्ततः ॥ ६३ ॥

शक्तिबीजं पुनश्चान्ते संदीपनमनुः प्रिये ।
संदीपनादिकं कृत्वा बोधिन्या बोधयेत् ततः ॥ ६४ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्मरेन्मन्त्रं वरानने ।

सन्दीपन मन्त्रोद्धार—वाग्भव दो 'वद वाग्वादिनि' फिर वाग्भवबीज कामबीज 'क्लिन्ने' कहकर 'क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं' दो 'कुरु' कामबीज तीसरा बीज (= सौः) फिर 'मोक्षं' कहकर दो 'कुरु' कहना चाहिये । अन्त में शक्तिबीज । हे प्रिये! यह सन्दीपन मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय (क्लेदय ?) महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु ह्सौः) ।

सन्दीपन आदि करने के बाद बोधिनी मन्त्र से उद्बोधन करना चाहिये । हे वरानने! इसके अनन्तर हाथ जोड़कर मन्त्र का स्मरण करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—यार्द्रं ज्वलति ज्योतिरेवाहं ब्रह्माहमस्मि साहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा) ॥ ६२-६४- ॥

पात्रविभागपात्रभ्रंशादेः फलवर्णनम्

एवं पात्रचतुष्कं च वटुकादेः पुनर्भवेत् ॥ ६५ ॥
गुरूणां च त्रयं चैकमेकमेवात्मनो भवेत् ।
एवं भवन्ति पात्राणि नवैव ह्युत्तमानि च ॥ ६६ ॥
पञ्चपात्रं भवेन्मध्ये मध्यमं त्वेकपात्रकम् ।
गुरवे गुरु (पा?पु)त्राय तत्पत्न्यै तत् समर्पयेत् ॥ ६७ ॥
(व?वी)रशक्त्यै(वरं?वीर)पात्रं निवेद्यात्मनि योजयेत् ।
एवमेवार्चनाद् देवि भवेदमृतमुत्तमम् ॥ ६८ ॥
कुशाग्रेण समादाय अमृतं सर्वपावनम् ।
गुरुत्रयं च सन्तर्प्य वटुकादीन् प्रतर्प्य च ॥ ६९ ॥
प्रलयानलसङ्काशे चिदग्नौ जुहुयात् ततः ।
आत्मनः कुण्डलिन्याश्च हुत्वा वै ब्रह्मरन्ध्रके ॥ ७० ॥
बीजत्रयेण त्रिः प्राश्य मुद्रया तत्त्वसंज्ञया ।
विशुद्धान्तर्मनाः पूतो योग्यः स्याद्यागकर्मणि ॥ ७१ ॥
अमृतत्वं कवित्वं च प्राश्यामृतं लभेन्नरः ।
भ्रंशनादस्य पात्रस्य भूमौ बिन्दुनिपातनात् ॥ ७२ ॥

अशुभं स्यात् तदा तस्य होमाच्छान्तिर्न चान्यतः ।

पात्रों का विभाग और पात्रभ्रंश आदि का फल—इस प्रकार वटुक भैरव आदि के लिये चार पात्र होते हैं । गुरुओं के लिये तीन और एक अपने आत्मा के लिये एक पात्र इस प्रकार चार पात्र होते हैं । इस विधि से नव ही पात्र उत्तम कोटि के होते हैं । पाँच पात्र मध्य में होते हैं । मध्य का एक पात्र होता है । उस पात्र को गुरु गुरुपुत्र और उसकी पत्नी के लिये देना चाहिये । वीरशक्ति के लिये वीरपात्र देकर एक पात्र स्वयं ले लेना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार पूजन करने से वह अमृत (= सुरा) उत्तम हो जाता है । सर्वपावन अमृत को लेकर कुशाग्र से तीनों गुरुओं (= गुरु गुरुपुत्र गुरुपत्नी) को तथा वटुक भैरव आदि को तृप्तकर प्रलयाग्नि के सदृश तेजोमयी चिदग्नि में हवन करना चाहिये । उसके पश्चात् जीवआत्मा और कुण्डलिनी का ब्रह्मरन्ध्र में हवन कर तीन बीज (= ऐं क्लीं सौः) से तीन बार तत्त्वमुद्रा से प्राशन कर अन्दर बाहर पवित्र होकर साधक यागकर्म के योग्य होता है । इस अमृत का प्राशन कर मनुष्य अमृतत्व और कवित्व को प्राप्त करता है । यदि अमृतपात्र का शब्द के साथ भ्रंश हो जाय और एक बूँद भी अमृत भूमि पर गिरे तो साधक के लिये यह अशुभङ्कर होता है । होम करने से उस अशुभ की शान्ति होती है, अन्य उपाय से नहीं ॥ ६५-७२- ॥

अमृतप्रोक्षणविधिः

प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं मूलेन वारुणेन वा ॥ ७३ ॥
पूजोपकरणं चापि त्रिरभ्युक्ष्य तथैव हि ।
अमृतैः प्रोक्षितं यत्तु सर्वं ब्रह्ममयं भवेत् ॥ ७४ ॥
यदन्यद् दीयते द्रव्यमलङ्कारादिकं च यत् ।
वरुणस्यैव बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ॥ ७५ ॥
सर्वेषां देवमुच्चार्य मूलमुच्चार्य पूर्वतः ।
अर्घ्यपात्रस्थतोयेन प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ॥ ७६ ॥
अन्यतोयैस्तु संसृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ।
तत्र गृह्णातीष्टदेवी दत्तं विधिशतैरपि ॥ ७७ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे बहिर्यागविधौ विशेषार्घ्यपात्रादि-साधनक्रमनिरूपणं नाम त्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

◆

अमृत से प्रोक्षण की विधि—मूलमन्त्र एवं वारुण बीज का उच्चारण करते हुए उस अमृत से अपना प्रोक्षण करना चाहिये । उसी प्रकार पूजा की सामग्री का भी तीन बार प्रोक्षण करना चाहिये । अमृत के द्वारा जिस किसी वस्तु का प्रोक्षण होता है वह सब वस्तु ब्रंह्ममय हो जाती है । द्रव्य अलङ्कार आदि जो कुछ दिया जाता है उसका वरुणबीज का उच्चारण कर अमृत से प्रोक्षण करना चाहिये । पहले मूलमन्त्र का उसके बाद समस्त प्रदेय वस्तु को उच्चारित कर अर्घ्यपात्र में स्थित जल से सबका नाम लेकर निवेदन करना चाहिये । अर्घ्यपात्रस्थ जल के अतिरिक्त अन्य जल से जो पदार्थ संसृष्ट होता है इष्ट देवता अनेक विधि से दिये जाने पर भी उसका ग्रहण नहीं करती ॥ ७३-७७ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में बहिर्यागविधिसम्बद्धविशेषार्घ्यपात्रसाधननिरूपण नामक त्रयोदश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

◆

चतुर्दशः पटलः

बहिर्यागविधिनिरूपणम्

आधारशक्त्यादेः पूजादिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

आधारशक्तिमारभ्य कामेश्वरान्तमद्रिजे ।
पूजयेत् साधको भक्त्या पीठं मन्त्रमयं पुरः ॥ १ ॥
ओंकारबिन्दुमध्यस्थं नामधेयाद्यमक्षरम् ।
देवतानां स्वबीजं तत्पूजायामृद्धिसिद्धिदम् ॥ २ ॥
कामपीठं ततो ध्यात्वा पूजयेत् साधकस्तथा ।
देवं कामेश्वरं तत्र ह्येकवक्त्रं चतुर्भुजम् ॥ ३ ॥
भस्मा(श्रु?श्चि)तं मध्यहृदि रक्तारक्तं च कुङ्कुमैः ।
त्रिशूलं च पिनाकं च वामहस्तद्वये धृतम् ॥ ४ ॥
उत्पलं बीजपूरं च दक्षिणद्वितये तथा ।
श्वेतपद्मोपरिस्थं च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥

आधारशक्ति की पूजा—हे पार्वति! साधक आधारशक्ति से लेकर कामेश्वर तक की भक्ति के साथ पूजा करे । इस क्रम में पहले मन्त्रमय पीठ (= आसन) पूजनीय होता है । यह ओंकार बिन्दु के मध्य में स्थित होता है । आद्य अक्षर इसका नाम है अर्थात् यह ओंकार पीठ कहा जाता है । यह देवताओं का अपना बीज है तथा पूजा में ऋद्धि सिद्धि देने वाला है । इसके बाद साधक कामपीठ का ध्यान कर वहाँ कामेश्वर देव की पूजा करे । यह कामेश्वर एक मुख चार भुजाओं वाले हैं । पूरे शरीर में भस्म लगाये हैं । मध्य में हृदय के पास कुङ्कुम से शरीर रक्त और ईषित् रक्त हैं । दोनों बायें हाथों में त्रिशूल तथा पिनाक नामक धनुष एवं दाँयें दोनों हाथों में रक्त कमल तथा बिजौरा नीबू लिये हुए हैं । श्वेत कमल के ऊपर आसीन इनका पीठ के मध्य में पूजन करना चाहिये ॥ १-५ ॥

शक्त्या युक्तो यदा देवि साधकः परिचिन्तयेत् ।
आयुधा(नाम?नां स्व)रूपं च मूलदेव्या समं निशि॥ ६ ॥
शाम्भवेन यजेद् देवं पूर्वोक्तेन च साधकः ।
सप्तम्या मूलमुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ७ ॥
अमृतपदमुच्चार्य चैतन्यमूर्तिमादितः ।
कल्पयामीति मनुना मूर्ति संचिन्तयेत् तथा ॥ ८ ॥
देवीं कामेश्वराङ्कस्थां परमानन्दनन्दिताम् ।
साधकाय प्रयच्छन्तीं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ ९ ॥
आनन्दालसया दृष्ट्या वीक्षन्तीं करुणार्द्रया ।
नाराचमुद्रया पश्चाद्रक्षां मन्त्रेण कारयेत् ॥ १० ॥

हे देवि! जब साधक शक्ति से युक्त होकर रात्रि में मूलदेवी के साथ आयुधों के स्वरूप का ध्यान करता है तब साधक को पूर्वोक्त शाम्भव मन्त्र (= कएकलह्रीं) से देव कामेश्वर की अर्चना करनी चाहिये । इस क्रम में साधक सप्तमी मूल मन्त्र (= ऐं क्लीं सौः) का उच्चारण कर 'महात्रिपुरसुन्दरी अमृत' पद का उच्चारण करने के बाद 'चैतन्य मूर्तिं कल्पयामि' मन्त्र का उच्चारण करे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं सौः महात्रिपुर सुन्दर्यमृतचैतन्यमूर्त्तिं कल्पयामि) ।

इस मन्त्र से देवी का ध्यान करना चाहिये । इस ध्यान-क्रम में देवी कामेश्वर की गोद में बैठी हुई हैं । वह परमानन्द से आनन्दित होकर साधक को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान कर रही हैं । वह साधक को अत्यन्त आनन्द से, अलसायी तथा करुणार्द्र दृष्टि से देख रही हैं । ऐसा ध्यान करने के बाद साधक नाराचमुद्रा[१] से मन्त्रोच्चारपूर्वक रक्षा करें ॥ ६-१० ॥

अवगुण्ठ्य ततो मन्त्रीकुर्याद् दिग्बन्धनं ततः ।
प्राणायामं ततः कृत्वा गृह्णीयात् कुसुमाञ्जलिम्॥ ११ ॥
पुष्पाञ्जलिं विना देवीं नावाहयेत् कदाचन ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं यथोक्तां परमेश्वरीम् ॥ १२ ॥
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये जितप्राणोऽथ साधकः ।
ऐक्यं संचिन्तयेद् देव्या बाह्यान्तर्मूर्तियुग्मयोः ॥ १३ ॥

इसके बाद मन्त्री को चाहिए कि वह अवगुण्ठन मुद्रा[२] से अवगुण्ठन कर

---

[१] दक्षमुष्टेस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका ।
[२] सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥

दिग्बन्धन[१] आदि सम्पन्न करे । तत्पश्चात् प्राणायाम कर हाथ में पुष्पाञ्जलि लेनी चाहिये । देवी का आवाहन कभी भी विना पुष्पाञ्जलि के नहीं करना चाहिये । पुष्पाञ्जलि लेकर यथोक्त परमेश्वरी का ध्यान करना चाहिये । साधक देवी का हृदय में प्रत्यक्ष कर श्वास को रोककर बाह्यमूर्त्ति और ध्यानस्थ मूर्त्ति की एकता का चिन्तन करे ॥ ११-१३ ॥

देव्याः स्थापनपूजनादेर्वर्णनम्

ततस्तु वायुबीजेन वहन्नासापुटेन तु ।
तच्चैतन्यं विनिःसार्य पुष्पाञ्जलौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥
नासिकावायुनिःसारात् पुष्पस्था देवता भवेत्।
यावत् संस्थापयेद् देवीं स्वहस्तं न वियोजयेत्॥ १५ ॥
कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्मान्महेश्वरि ।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ॥ १६ ॥
त्रिखण्डामुद्रया तस्मात् तामावाहनविद्यया ।
निर्गमय्यातिदीप्ताभां श्रीपीठान्तर्निधारयेत् ॥ १७ ॥
पाणिद्वयं समं सम्यक् परिवर्तनयोगतः ।
योजयित्वा तर्जनीभ्यामनामे धारयेत् ततः ॥ १८ ॥
मध्यमे योजयेन्मध्ये कनिष्ठे तदधस्ततः ।
अङ्गुष्ठावपि संयोज्यौ त्रिधा युग्मक्रमेण तु ॥ १९ ॥
त्रिखण्डेयं महामुद्रा त्रिपुराह्वानकर्मणि ।
हंसबीजसमारूढा बाला चाग्न्यासनस्थिता ॥ २० ॥
अनया मूलमुच्चार्य मुद्रया च त्रिखण्डया ।
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे ॥ २१ ॥
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ॥ २२ ॥
अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु ।
एहि देवि प्रभावात् ते शुभदे भयनाशिनि ॥ २३ ॥
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव।

---

[१] अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते गच्छन्तु शिवाज्ञया ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे ॥
भूतानि राक्षसा वाऽपि येऽत्र तिष्ठन्ति केचन ।
ते सर्वेऽप्यपगच्छन्तु पूजा कर्म करोम्यहम् ॥

कामेशि त्वमिहागच्छ सर्वैः परिकरैः सह ॥ २४ ॥
पूजाकर्मणि सांनिध्यमिह कल्पय कामिनि ।
कामेश्वरि समागच्छ कामेशाङ्कनिषेदुषि ॥ २५ ॥
अव्युच्छिन्नां मतिं शुद्धां वाचं कण्ठस्य देहि मे ।
एवं कृते महादेवि स्थितिस्तस्याः प्रजायते ॥ २६ ॥

देवी की स्थापना पूजा आदि का वर्णन—इसके बाद वायु बीज (= यं) के द्वारा उस चैतन्य को नासापुट से बाहर करते हुए पुष्पाञ्जलि में निविष्ट करा देना चाहिये । नासिकास्थित वायु के साथ निस्सारण करने से देवता पुष्प में स्थित हो जाती है । जब तक देवी की स्थापना न हो जाय पुष्प को हाथ से अलग नहीं करना चाहिये । हे महेश्वरि! पुष्प को हाथ से अलग करने पर गन्धर्व लोग देवी की पूजा करने लगते हैं और अर्चक लोग उस पूजा के फल से वञ्चित रह जाते हैं । इसलिये त्रिखण्डा मुद्रा से अतिदीप्तिमती उस देवी का आवाहन मन्त्र के द्वारा पुष्पाञ्जलि से बाहर निकाल कर श्रीपीठ के अन्दर रखना चाहिये । त्रिखण्डा मुद्रा का स्वरूप इस प्रकार है—दोनों हाथों को भलीभाँति परिवर्त्तन के साथ जोड़कर दोनों तर्जनियों से दोनों अनामिकाओं को पकड़ना चाहिये । दोनों मध्यमाओं को बीच में जोड़ना चाहिये और कनिष्ठाओं को उनके नीचे रखना चाहिये । दोनों अङ्गूठों को भी जोड़ना चाहिये । तीन प्रकार से दो-दो अङ्गुलियों को जोड़ने से यह त्रिखण्डा महामुद्रा होती है । इसका प्रयोग त्रिपुरसुन्दरी के आवाहन के लिये होता है । बाला अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी हंसबीज 'हं' पर आरुढ और अग्निबीज 'रं' के आसन पर स्थित है । हस्रैं हसकलरीं हस्लौः—इस त्रिखण्डा विद्या के द्वारा त्रिखण्डा मुद्रा से देवी का आवाहन करना चाहिये । आवाहन का मन्त्र इस प्रकार है—महांपद्मवनान्तःस्थे..........कण्ठस्य देहि मे । (हे महापद्मवन के भीतर रहने वाली कारणानन्द शरीर वाली सम्पूर्ण प्राणियों का हित करने वाली परमेश्वरी माँ! आओ आओ । हे देवेशि! हे भक्तसुलभे! परिवारसमन्विते इस मूर्त्ति में आओ । मेरे ऊपर कृपाकर यहाँ स्थान ग्रहण करो । हे शुभदे! हे भयनाशिनि देवि! अपने प्रभाव से यहाँ आओ और जब तक मैं आपकी पूजा करूँगा तब तक सुस्थिर रहो । हे कामेश्वरि! इस पूजा-कर्म में सन्निहित होओ । हे कामेश्वर की गोद में बैठने वाली कामेश्वरि! आओ; मेरे कण्ठ को अव्युच्छिन्न शुद्ध वाणी दो । मुझे शुद्ध बुद्धि दो) । हे महादेवि! ऐसा करने पर उस मूर्त्ति में महात्रिपुरसुन्दरी की स्थिति हो जाती है ॥ १४-२६ ॥

देव्याःकृते आवाहन्यादिमुद्राणां प्रयोगः

सम्यक् सम्पूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः ।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा सर्वार्थसाधिका ॥ २७ ॥

अधोमुखीकृता सैव सदा वै स्थापनी भवेत् ।
मिलितं मुष्टियुगलं सन्निधापनरूपिणी ॥ २८ ॥
अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु सन्निरोधानरूपिणी ।
एतस्या एव मुद्रायास्तर्जन्यौ (सवने?प्रसृते)यदा ॥ २९ ॥
अवगुण्ठनमुद्रेयं सर्वरक्षाकरी मता ।
अमृतीकरणं कुर्यात् साधको धेनुमुद्रया ॥ ३० ॥
परिवर्त्य करौ पश्चात् तर्जनीमध्यमे युगे ।
कनिष्ठानामिकायुग्मं परस्परयुतं कुरु ॥ ३१ ॥
धेनुमुद्रेयमाख्याता अमृतीकरणे प्रिये ।
अङ्गमन्त्रान् न्यसेत् देवि देव्यङ्गे साधकोत्तमः ॥ ३२ ॥
सकलीकरणं नाम मुद्रेयं व्याप्तिरूपिणी ।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितपराङ्गुलिः ॥ ३३ ॥
महामुद्रेयमाख्याता परमीकरणे शिवे ।
ततोऽवगुण्ठयेद् देवीमवगुण्ठनमुद्रया ॥ ३४ ॥

देवी के लिये आवाहनी आदि मुद्राओं का प्रयोग—दोनों हाथों से अञ्जलि बनाकर उसे पूर्णतया पुष्प से भर देना आवाहनी मुद्रा कही जाती है । यह सर्वार्थसाधिका होती है । उसी मुद्रा को अधोमुखी करने पर वह स्थापनी मुद्रा होती है । दोनों मुठ्ठियों को मिला देने से सन्निधापनी मुद्रा होती है । इसी मुद्रा में यदि दोनों तर्जनी फैला दी जाय तो अवगुण्ठन मुद्रा होती है । यह मुद्रा सर्वरक्षाकरी मानी गयी है । साधक को चाहिये कि वह धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे । धेनुमुद्रा का स्वरूप इस प्रकार का है—दोनों हाथों को परिवर्त्तित कर दोनो तर्जनी और मध्यमाओं को तथा कनिष्ठा और अनामिका को परस्पर मिला देना चाहिये । हे प्रिये अमृतीकरण के सन्दर्भ में यह धेनुमुद्रा कही गयी है । हे देवि! इसके बाद साधक देवी के अङ्गों में अङ्गमन्त्रों का न्यास करे । यह सकलीकरण है । यह व्याप्तिरूपिणी मुद्रा है । अङ्गूठे एक दूसरे से मिले हों अन्य अङ्गुलियाँ फैली हों तो हे शिवे! परमीकरण के सन्दर्भ में यह महामुद्रा कही गयी है । इसके बाद अवगुण्ठन मुद्रा से देवी का अवगुण्ठन करना चाहिये ॥ २७-३४ ॥

आवाहनं भवेद् देवि दूरादाह्वानमेव च ।
संस्थापनं भवेद् देवि निश्चलत्वोपपादकम् ॥ ३५ ॥
नैकट्यावस्थितित्वं च सन्निधानमितीरितम् ।
अनन्यचित्तत्वया(च्छा?च्चा) सन्निरोधनमुच्यते ॥ ३६ ॥
सम्पूर्णावस्थितेर्या(च्छा?च्चा) सकलीकरणं प्रिये ।
अयोग्यदृष्ट्यविषयपा(दो?त) नमवगुण्ठनम् ॥ ३७ ॥

आनन्दपूर्णाव(स्थिति?स्थ) त्वममृतीकरणं शिवे ।
सर्वापराधजातानां सहिष्णुत्वप्रकाशकम् ॥ ३८ ॥
परमीकरणं नाम सम्प्रार्थनमिहोच्यते ।
सम्मुखमुद्रया देवीं सम्मुखं प्रार्थयेत् ततः ॥ ३९ ॥
मुष्टिद्वयस्थिताङ्गुष्ठौ सम्मुखौ च परस्परम् ।
संश्लिष्टावुच्छ्रितौ कुर्या(च्छ्रेयः?त्सेयं)सम्मुखमुद्रिका ॥ ४० ॥
मूलविद्यां समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरी ।
श्रीपादुकां ततः पश्चात् पूजयामीति भक्तितः ॥ ४१ ॥
देवीपादाम्बुजद्वन्द्वे पुष्पाञ्जलित्रयं दिशेत् ।
तथैव तर्पयाम्यन्ते मुद्रया तर्पयेत् त्रिधा ॥ ४२ ॥

हे देवि! आवाहन का अर्थ है—दूर से पुकारना । संस्थापन का तात्पर्य है—स्थिर करना । निकट स्थिति होना सन्निधान कहलाता है । अनन्यचित्त होना संन्निरोधन कहा जाता है । परमीकरण का अर्थ है—सम्प्रार्थना । इसके अनन्तर सम्मुख मुद्रा के द्वारा देवी के सामने प्रार्थना करनी चाहिये । सम्मुख मुद्रा का स्वरूप इस प्रकार है—दोनों मुठ्ठियाँ और दोनों अङ्गुष्ठ परस्पर सामने स्थित हों। दोनों सटे और उठे हुए हों । यह सम्मुख मुद्रा होती है । मूल विद्या का उच्चारण कर 'महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां' उसके बाद 'पूजयामि' कहकर देवी के चरणकमल में भक्ति के साथ पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि) । इसी प्रकार 'पूजयामि' के स्थान पर 'तर्पयामि' कहकर तीन बार उसी मुद्रा से तर्पण करना चाहिये ॥ ३५-४२ ॥

प्रार्थनमुद्रया पश्चादभ्यर्थयेदनेन तु ।
प्रसादसम्मुखे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ ४३ ॥
पूजाभागं गृहाणेमं मामकं भक्तवत्सले ।
अहं यद्यपि देवेशि दुर्बलोऽप्यल्पसाधनः ॥ ४४ ॥
भक्त्या करोमि पूजां ते कृपयानुगृहाण माम् ।
प्रसृताङ्गुलिकौ हस्तौ मिथःश्लिष्टौ च सम्मुखौ ॥ ४५ ॥
कार्यौ च हृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ।
संदर्शयेत् स्वस्वबीजपूर्वं मु(द्रां त?द्रास्त)तो नव ॥ ४६ ॥
सङ्क्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्ततः क्रमात् ॥ ४७ ॥
एता मुद्रा महेशानि ब(न्ध?न्धू)ककुङ्कुमप्रभाः ।

स्वस्वमुद्राकराः सर्वाः श्रीविद्यासम्मुखी(:) स्मरेत्॥ ४८ ॥

बाद में प्रार्थना मुद्रा से निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा प्रार्थना करनी चाहिये । (मन्त्र—प्रसाद सुमुखे...........नुगृहाण माम् ॥)

(हे प्रसादसम्मुखे देवि सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ । हे भक्तवत्सले! मेरे इस पूजाभाग का ग्रहण करो । हे देवेशि! यद्यपि मैं दुर्बल और अल्पसाधनों वाला हूँ तथापि भक्ति के साथ तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ । मेरे ऊपर कृपा करो ।)

अब प्रार्थना मुद्रा का स्वरूप बतलाते हैं—दोनों हाथों की अङ्गुलियाँ फैली हों दोनों हाथ सटे हुए सम्मुख हृदय से लगे हों तो यह प्रार्थना मुद्रा होती है । इसके बाद अपने-अपने बीजों का पूर्व-पूर्व उच्चारण करते हुए निम्नलिखित नव मुद्राओं का सन्दर्शन कराना चाहिये । वे मुद्रायें हैं—१. सङ्क्षोभिणी[1], २. द्रावणी[2], ३. आकर्षणी[3], ४. वशीकरणी[4], ५. उन्मादकरणी[5], ६. महाङ्कुशा[6], ७. खेचरी[7],

---

१. मध्यमा मध्यगे कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसङ्क्षोभकारिणी ॥

२. एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियेते परमेशानि तदा विद्राविणी भवेत् ॥

३. मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
अङ्गुष्ठं तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी मता ॥

४. पुटाकारौ करौ वृत्वा तर्जन्यावङ्कुशाकृती ।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधो गते ॥
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके तथा ।
संयोज्य निविडाः सर्वा अङ्गुष्ठस्याग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ॥

५. सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमा मध्यगेऽन्त्यजे ।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ॥

६. अस्यां त्वनामिका युग्ममधः कृत्वाङ्कुशाकृतिः ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ॥

७. सव्यं दक्षिणदेशे तु सव्यदेशे तु दक्षिणम् ।
बाहुं कृत्वा महादेवि! हस्तौ सम्परिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ते तेन क्रमेण च ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपिमध्यमे ॥
अङ्गुष्ठौ तु महेशानि! सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम्ना मुद्रा सर्वोत्तमा मता ॥

८. बीजमुद्रा[1] और ९. योनिमुद्रा[2] । हे महेशानि! ये मुद्रायें गुलदुपहरिया पुष्प एवं कुङ्कुम के रंग की हैं । अपनी-अपनी मुद्राओं को करने वाली इन सबको श्रीविद्या के सम्मुख स्मरण करना चाहिये ॥ ४३-४८ ॥

उपचारसमर्पणविधिवर्णनम्

अथैवं परमेशान्या उपचारान् निवेदयेत् ।
भक्त्यैव ते कृता देवि साधकं देवसन्निधिम् ॥ ४९ ॥
चारयन्ति यतस्तस्मादुच्यन्ते चोपचारकाः ।
समीपे चारणाद्वापि(कला?बालि)कान्ते तथोदिताः ॥ ५० ॥
नमोऽन्तमासनं दद्यात् स्वागतं दर्शनं भवेत् ।
नमोऽन्तं पादयोः पाद्यमर्घ्यं (शिवो?नमो)ऽन्तमेव च॥ ५१ ॥
स्वधेत्याचमनं (प्राज्ञि?प्रोक्तं) मधुपर्कस्तथैव च ।
तेनैव मनुनाचामं नमोऽन्तं स्नानमेव च ॥ ५२ ॥
नमोऽन्ते वाससी प्रोक्ते तथाङ्गाभरणानि च ।
नमोऽन्तमर्पयेत् (कुन्दं?गन्धं)पुष्पं च वौषडन्तकम्॥ ५३ ॥
पुष्पं समर्पयेद् देव्यै मुद्रया ज्ञानसंज्ञया ।
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगाज् ज्ञानमुद्रेयमीरिता ॥ ५४ ॥
नमोऽन्तं च तथा धूपं दीपं मालां तथैव च ।
नैवेद्यं च ततो दद्याद्यथोक्तं वै चतुर्विधम् ॥ ५५ ॥
पानार्थं मधुरं वारि दद्यादाचमनं पुनः ।
कर्पूरसहितं देव्यै ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ५६ ॥
तर्पणानि पुनर्दद्यात् त्रिपुरातत्त्वमुद्रया ।
अङ्गुष्ठानामिकायोगात् तत्त्वमुद्रेयमीरिता ॥ ५७ ॥
अङ्गुष्ठं शिवमिस्याहुरनामा शक्तिरुच्यते ।

---

१. परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत्ततः ।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ।
बीजमुद्रेयमचिरात् सर्वसम्पद्विवर्द्धिनी ॥

२. मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ।
अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ।
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिताः ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेयमीरिता ॥ (मुद्रानिघण्टु)

तर्पणं तु तयोर्योगादमृतैर्वामपाणिना ॥ ५८ ॥
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ मुद्राः संदर्शयेत् क्रमात् ।

उपचार समर्पण की विधि—इसके बाद देवी के सामने उपचारों का निवेदन करना चाहिये । हे देवि! भक्ति के साथ समर्पित किये गये ये उपचार साधक को इष्ट देवता के उप = समीप सञ्चारित कराते हैं अतः इनको उप = समीप, चार = पहुँचाने वाला, कहते हैं । बालिका अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी के समीप पहुँचाने से वे उपचार कहे गये हैं । आसन स्वागत दर्शन को अन्त में 'नमः' कहकर देना चाहिये । जैसे 'इदमासनं समर्पयामि नमः' । पैरों में पाद्य हाथों में अर्घ्य को भी 'नमः' अन्त में कहकर देना चाहिये । आचमन और मधुपर्क को तथा उसी मन्त्र से आचमन देना चाहिये । स्नान को अन्त में 'नमः' के साथ, दो वस्त्र तथा अलङ्कारों को नमोऽन्त से समर्पित करना चाहिये । गन्ध पुष्प को 'वौषट्' कहकर समर्पित करना चाहिये । हे देवि! पुष्प को ज्ञानमुद्रा[1] का प्रदर्शन कर समर्पित करना चाहिये । अङ्गुष्ठ और तर्जनी के योग से ज्ञानमुद्रा कही जाती है । धूप दीप माला को 'नमोऽन्त' देना चाहिये । चतुर्विध नैवेद्य (= भक्ष्य चोष्य लेह्य पेय) को भी नमोऽन्त देना चाहिये । पीने के लिये मधुर जल और फिर आचमन देना चाहिये । पुनः कपूरसहित ताम्बूल देवी के लिये अर्पित करना चाहिये । तत्पश्चात् त्रिपुरा तत्त्वमुद्रा से तर्पण करना चाहिये । अङ्गुष्ठ और अनामिका के योग से तत्त्वमुद्रा कही जाती है । अङ्गुष्ठा को शिव और अनामिका को शक्ति कहते हैं । उन दोनों को जोड़कर बाँयें हाथ से अमृत के द्वारा तर्पण करना चाहिये । इसके बाद योनिमुद्रा का प्रदर्शन कर क्रमशः अन्य मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये ॥ ४९-५८- ॥

देव्यै मन्त्रजपादिवर्णनम्

स्तुत्वा प्रणम्य विधिवज्जपेद्विद्यामनन्यधीः ॥ ५९ ॥
जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते बलिमुत्सृजेत् ।
बलिदानावसाने तु निवेद्यानि निवेदयेत् ॥ ६० ॥
दशाङ्गाद्यैस्ततो धूपैः पुनर्देवीं प्रधूपयेत् ।
दीपमालाः प्रदर्श्याथ पादाल्ललाटकावधि ॥ ६१ ॥
वीरेश्वराय वौषट् च सिन्दूरं दापयेदथ ।
अङ्गरागेषु सिन्दूरं पानेषु मदिरां तथा ॥ ६२ ॥

---

[1] तर्जन्यङ्गुष्ठकौ सक्तौ वक्रतो हृदि विन्यसेत् ।
वामहस्ताम्बुजं वामजानुमूर्धनि विन्यसेत् ।
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी ॥

वस्त्रेषु रक्तकौशेयं त्रिपुराप्रीतिदायकम् ।
नेत्राञ्जनं निवेद्याथ दर्शयेद् दर्पणं तथा ॥ ६३ ॥
मूर्ध्नि च्छत्रं निधायाथ वीजयेद्रक्तचामरैः ।
सितैर्वा परमेशानीं न तु कृष्णैः कदाचन ॥ ६४ ॥
वादयेच्छङ्खघण्टे च पुनः पुनः प्रधूपयेत् ।
ततः सन्तोषयेद् देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ६५ ॥
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।
नटनर्तकसङ्घैश्च वेश्याभिरपि पार्वति ॥
आत्मना सर्वभावेन निवेद्य तन्मयो भवेत् ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे बहिर्यागविधिनिरूपणं
नाम चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

* * *

देवी के लिये मन्त्र का जप आदि कार्य—स्तुति एवं प्रणाम कर साधक एकाग्रचित्त होकर विद्या का जप करे । जप के अन्त में उसका दशांश अग्नि में हवन करे । होम के अन्त में बलि देनी चाहिये । बलिदान के अन्त में नैवेद्य का निवेदन करना चाहिये । तत्पश्चात् दशाङ्ग धूप से देवी को धूपित करना चाहिये । पैर से लेकर ललाट तक दीपक दिखाकर 'वीरेश्वराय वौषट्' कहकर नीचे सिन्दूर देना चाहिये । अङ्गरागों में सिन्दूर, पेय पदार्थों में मदिरा और वस्त्रों में रेशमी वस्त्र त्रिपुरसुन्दरी के लिये प्रीतिकारक होता है । देवी के नेत्रों में अञ्जन लगाकर दर्पण दिखलाना चाहिये । शिर पर छत्र रखकर रक्त चामर से अथवा हे परमेशानि! श्वेत चामर से पङ्खा झलना चाहिये, काले चामर से नहीं । शङ्ख घण्टा को बजाकर बर-बार धूप करनी चाहिये । इसके बाद गीत बाजा आदि से देवी को सन्तुष्ट करना चाहिये । हे देवि! अनेक प्रकार के वाद्यों क्रीडाओं मङ्गलकारी अभिनयों नटनर्त्तक समूहों और हे पार्वति! वेश्याओं के साथ अपने को सर्वथा समर्पित कर तन्मय अर्थात देवीमय हो जाना चाहिये ॥ ५९-६६ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में बहिर्यागविधिनिरूपण
नामक चतुर्दश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

* * *

पञ्चदशः पटलः

पूजोपचारतत्फलादिवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच—

उपचारान् कथं देव फलं तेषां च कीदृशम् ।
यच्च प्रियतमं देव्यास्तत् सर्वं वद शङ्कर ॥ १ ॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव! उपचार से कैसे और किस प्रकार का फल मिलता है । हे शङ्कर! त्रिपुरसुन्दरी देवी का जो सबसे प्रिय उपचार है उसे बतलाइये ॥१॥

ईश्वर उवाच—

उपचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश पार्वति ।
यैः साक्षात् तुष्यते देवी विधानैर्विहितैर्वि(दुः?भुः) ॥ २ ॥

१. आसनम्

सौवर्णं राजतं वास्त्रं तथा रत्नविनिर्मितम् ।
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ॥ ३ ॥
न पत्रमासनं दद्यात् कदाचिदिह पूजने ।
यथोक्तविधिना देव्यै रक्तकम्बलमेव वा ॥ ४ ॥
सुमेरुपादपीठान्ते पद्मकल्पित आसने ।
भोगमोक्षप्रदे मातस्तिष्ठ त्वं परमेश्वरि ॥ ५ ॥
अनेनैवासनं देव्यै यो दद्याद्विहितं शिवे ।
भुक्तिमुक्ती करे तस्य सर्वत्र स्थानवान् भवेत्॥ ६ ॥

देवी के षोडशोपचार का वर्णन—ईश्वर ने कहा—हे पार्वति! सुनो । मैं तुमको षोडशोपचार को बतलाऊँगा विधि-विधान से किये गये इन उपचारों से प्रभु देवी साक्षात् सन्तुष्ट होती है ।

१. आसन—सबसे पहले देवी के लिये सोने, चाँदी, वस्त्र, रत्न, पुष्प

अथवा काष्ठ का आसन देना चाहिये । इस पूजा में कभी भी पत्ते का आसन नहीं देना चाहिए । देवी के लिये शास्त्रोक्त विधि से लाल रंग के कम्बल का भी आसन दे सकते हैं । 'सुमेरुपाद..............परमेश्वरि' ।

(हे परमेश्वरि! सुमेरुपादपीठ के अन्त में कमल के द्वारा बनाये गये भोगमोक्षप्रद आसन पर हे माँ ! बैठो ।)

हे शिवे! इस मन्त्र से जो अर्चक देवी के लिये आसन देता है भोग और मोक्ष दोनों उसके हस्तगत हो जाते हैं और वह सर्वत्र उचित स्थान प्राप्त करता है ॥ २-६ ॥

२. पाद्यम्

पा(द्या?दा)र्थमुदकं पाद्यं चन्दनागुरुसंयुतम् ।
सुशीतलं मया देवि सुखाय तव पादयोः ॥ ७ ॥
तत्तैजसेन पात्रेण शङ्खेनाथ प्रदापयेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थानं पाद्यमिष्यते ॥ ८ ॥
पाद्यमन्त्रो मया प्रोक्त(म?स्त्व)नेनैव निवेदयेत् ।

२. पाद्य—'पादार्थमुदक...........तव पादयोः ॥' (पैर धोने के लिये जल को पाद्य कहते हैं । वह चन्दन अगर से युक्त और सुशीतल है । हे देवि! यह आपके पैरों के सुख के लिये समर्पित कर रहा हूँ ।)

इस मन्त्र को पढ़कर तैजस पात्र या शङ्ख के द्वारा पाद्य देना चाहिये । पाद्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष का संस्थान माना जाता है । मैने पाद्य का मन्त्र बतला दिया । इसी मन्त्र से देवी के लिये पाद्य का निवेदन करना चाहिये ॥ ७-८- ॥

३. अर्घ्यम्

अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ॥ ९ ॥
पुत्रायुःसुखमोक्षा(णि?दि) दानाद(र्घ?र्घ्य)स्य वै लभेत ।
पूर्वसंस्थापितेनैव शङ्खेन विधिना स्वयम् ॥ १० ॥
श्वेतसर्षपमुद्गाभ्यां तिलक्षीरैस्तथा यवैः ।
रक्तचन्दन पु(ष्पे च?ष्पैश्च) त्रिपुरायै महेश्वरि ॥ ११ ॥
निधाय पुरतो दद्यादर्घ्यमन्त्रेण साधकः ।
अर्घ्यमर्घ्यमिदं देवि मया भक्त्या निवेदितम् ॥ १२ ॥
सुजलं शङ्खपात्रस्थं गृहीत्वा मूर्ध्नि योजय ।

३. अर्घ्य—अर्घ्य प्रदान से अर्चक इच्छाओं की पूर्त्ति प्राप्त करता है। अर्घ्य से वह धन लाभ करता है। अर्घ्य के दान से पुत्र आयु मोक्ष आदि प्राप्त करता है। इसलिये हे महेश्वरि! पूर्व स्थापित शङ्ख के द्वारा विधिपूर्वक स्वयं श्वेत सरसो, मूँग, तिल, दूध, यव, रक्तचन्दन, पुष्प से त्रिपुरसुन्दरी के लिये अर्घ्य देना चाहिये। साधक देवी के सामने अर्घ्य रखकर निम्नलिखित मन्त्र से अर्घ्य दे। मन्त्र—'अर्घ्यमर्घ्य............मूर्ध्नि योजय।'

(हे देवि! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित इस मूल्यवान् अर्घ्य को जो कि जल सहित शङ्खपात्र में है, लेकर अपने शिर पर लगाइये) ॥ ९-१२- ॥

४. आचमनम्

उदकं दीयते य(स्तु?त्तु)सगन्धं फेनवर्जितम् ॥ १३ ॥
आचमना (द्यं?र्थं) देवाय तदाचमनमुच्यते।
कर्पूरवासितैर्वापि कालागुरुप्रधूपितैः ॥ १४ ॥
यथा तथा सगन्धैर्वा प्रसन्नैः (क?फे)न वर्जितैः।
दद्यादाचमनीयं तु सगन्धसलिलैः शुभैः ॥ १५ ॥
तैजसेन तु पात्रेण शङ्खेनाप्यथवा प्रिये।
आयुर्बलयशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकम् ॥ १६ ॥
लभते साधको नित्यं (स?का)मांश्चैव यथेप्सितान्।
सगन्धाचमनं देवि मया भक्त्या निवेदितम् ॥ १७ ॥
आयुर्बलयशोवृद्ध्यै तदिदं प्रतिगृह्यताम्।

४. आचमन—सुगन्धित फेनरहित जो जल देवता के लिये आचमनार्थ दिया जाता है वह जल आचमन कहलाता है। कपूर से वासित कालागुरु से धूपित सब प्रकार से गन्धयुक्त स्वच्छ फेनरहित शुभ जल को गन्धसहित कर सोने के पात्र अथवा शङ्ख से देवी के लिये आचमन देना चाहिये। साधक आचमन देकर आयु, बल, यश की वृद्धि और यथोप्सित कामनाओं को प्राप्त करता है। आचमन प्रदान का मन्त्र इस प्रकार है—'सगन्धाचमनं............प्रतिगृह्यताम् ॥' (हे देवि! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक निवेदित सगन्ध आचमन का मेरे आयु बल यश की वृद्धि के लिये ग्रहण करो) ॥ १३-१७- ॥

५. मधुपर्कः

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सिताभिश्चापि(प्रक्षभिः?सेक्षुभिः) ॥ १८ ॥
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु देवीप्रीतिप्रदायकः।
जलं च नारिकेलोत्थं सिता दधि घृतं समम् ॥ १९ ॥

सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्कें प्रयोजयेत् ।
तद्दद्यात् कांस्यपात्रेण रौप्यपात्रेण वा पुनः ॥ २० ॥
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत् पुण्यं लभते नरः ।
सर्वं तत् परमेशानि मधुपर्कें प्रतिष्ठितम् ॥ २१ ॥
आज्यं दधि मधून्मिश्रं जलं चापि सशर्करम् ।
मधुपर्कं रोप्यपात्रे गृहीत्वा भुङ्क्ष्व सुन्दरि ॥ २२ ॥
मधुपर्कं विना पूजा साधकक्षयकारिणी ।
मधुपर्कमदृटष्ट्वैव साधकं भक्षयेत् परा ॥ २३ ॥

५. **मधुपर्क**—दधि, घी, जल, मधु, ईख की शक्कर को मिश्रित कर मधुपर्क बनता है । यह देवी को प्रसन्न करने वाला होता है । दूसरे प्रकार का मधुपर्क यह है—नारियल का जल, चीनी, दही और घृत को समान मात्रा में मिलायें । इनके मिश्रण के बराबर मधु मिलायें । यह भी मधुपर्क होता है ।[१] इस मधुपर्क को कांस्यपात्र या चाँदी के पात्र में देना चाहिये । हे परमेशानि! मनुष्य ज्योतिष्टोम अश्वमेघ आदि के करने से जो फल प्राप्त करता है वह फल मधुपर्क प्रदान में प्रतिष्ठित है । मन्त्र—'आज्यं दधि..............सुन्दरि ॥' (हे सुन्दरि! मधु से मिश्रित घी, दधि, शर्करा सहित जल से निर्मित मधुपर्क को चाँदी के पात्र में लेकर खाओ ।) मधुपर्क से रहित पूजा साधक का नाश करती है । पूजा में मधुपर्क को न देखकर परा त्रिपुरासुन्दरी साधक को खा जाती है ॥ १८-२३ ॥

६. स्नानम्

कर्पूरागुरुकस्तूरीरोचनाकुङ्कुमं तथा ।
नारिकेलजलं क्षौद्रं तथेक्षुरसमुत्तमम् ॥ २४ ॥
सिता च पञ्चगव्यं च सर्वौषधिगणं तथा ।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं त्रिपुराप्रियम् ॥ २५ ॥
भृङ्गारेणाथवा शङ्खैस्त्रिपुरायै निवेदयेत् ।
साधकः स्नानदानात्तु हयमेधफलं लभेत् ॥ २६ ॥
दीर्घायुः कामभोगी च महापातकहा भवेत् ।
प्रत्येकं सर्ववस्तूनां सहस्त्रपलमानतः ॥ २७ ॥
महास्नानं भवेद्देवि मध्य पलशतेन तु ।
कनिष्ठं वै भवेत् स्नानं प(लानां?लैः) दशभिरीरितम्॥ २८ ॥

---

[१] महाकालसंहिता का वचन है—दध्ना मधुसर्पिभ्यां मधुपर्क इहोच्यते अर्थात् दही घी और मधु से मधुपर्क बनता है ।

मिश्रीकृतैस्तु सर्वेषां स्नानमानं न विद्यते ।
स्नपयेत् प्रथमं देवीं त्रिपादिति ऋचा पुनः ॥ २९ ॥
मूलेनापि ततः पश्चादमुना च निवेदयेत् ।
त्वमापः पृथिवी चैव ज्योति (स्तं?स्त्वं)वायुरेव च ॥ ३० ॥
केवलं भक्तिभावेन देवि त्वां स्नपयाम्यहम् ।

६. स्नान—कपूर, अगर, कस्तूरी, गोरोचन, कुङ्कुम, नारियल का पानी, मधु, ईख का रस, चीनी, पञ्चगव्य सर्वौषधि और अन्त में जल यह त्रिपुरसुन्दरी का प्रिय स्नानीय द्रव्य है । किसी पात्र अथवा शङ्ख से यह सब त्रिपुरा के लिये निवेदित करना चाहिये । स्नानीय द्रव्य से स्नान कराने से साधक अश्वमेध का फल प्राप्त करता है । वह दीर्घायु यथेच्छ भोगवान् और महापातक से रहित हो जाता है । उपर्युक्त प्रत्येक वस्तु के एक हजार पल से विहित स्नान महास्नान कहलाता है। हे देवि! सौ पल का स्नान मध्यम कोटि का और दशपल से स्नान अधम कोटि का होता है । समस्त वस्तुओं को मिलाकर स्नानीय बनाने पर कोई परिमाण नहीं होता । देवी को पहले त्रिपाद[1] ऋचा से स्नान कराना चाहिये । उसके बाद मूलमन्त्र[2] तत्पश्चात् अधोलिखित मन्त्र से स्नान कराना चाहिये । मन्त्र—'त्वमापः..........................स्नपयाम्यहम् ॥' (हे देवि! तुम जल हो तुम पृथिवी हो तुम अग्नि और तुम वायु हो । केवल भक्तिभाव से मैं तुम्हें स्नान करा रहा हूँ ।) ॥ २४-३०- ॥

७. वस्त्रम्

स्नपयित्वा महादेवीं वस्त्रं यदि न दापयेत् ॥ ३१ ॥
स निर्लज्जः परः पापः प्रपते(द?द्वृ)जिनार्णवे ।
वस्त्राभावे ततो दद्याद्रक्तपद्मं तथा ज(वाः?पाः) ॥ ३२ ॥
स्नपयित्वा महादेवीं वस्त्रमुत्तममुच्यते ।
वस्त्रेणह्रियते लज्जा वस्त्रेण ह्रियते त्वघम् ॥ ३३ ॥
सर्वभूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ।
देवीप्रीतिकरं वस्त्रं चतुर्वर्गप्रदं शुभम् ॥ ३४ ॥
निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीयं ह्या(थु?खु)दष्टं सूचीविद्धं तथोषितम् ॥ ३५ ॥
सत्पताका(रि?वि)तानादौ सूचीविद्धं प्रयोजयेत् ।

---

[1] त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साक्षनाशनेऽअभि ॥

[2] ऐं क्लीं सौः ।

केशान्वितमधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ॥ ३६ ॥
वह्निदग्धं कुचैलं च महादेव्यै न दापयेत् ।
चित्रवस्त्रं दुकूलं च देवीप्रीतिकरं परम् ॥ ३७ ॥
सर्वसिद्धिप्रदं वस्त्रं वह्निष्टोमफलप्रदम् ।
विद्यातन्तुसमायुक्ते मन्त्रवर्णसमन्विते ॥ ३८ ॥
विद्याविद्ये ज(वा?पा)शोणवाससी तव सुन्दरि ।
उद्यदादित्यसङ्काशं वासोयुग्मं सुनिर्मलम् ॥ ३९ ॥
नूतनं गात्रसुखदं परिधत्स्व सुरेश्वरि ।

७. वस्त्र—जो मनुष्य देवी को स्नान कराकर वस्त्र नहीं देता वह निर्लज्ज परमपापी पाप के समुद्र में गिर जाता है । यदि वस्त्र उपलब्ध न हो तो रक्त कमल अथवा जपाकुसुम देना चाहिये । देवी को स्नान कराकर दो वस्त्र देना चाहिये । वस्त्र के समर्पण से लज्जा और पाप दोनों को दूर किया जाता है । सारे अलङ्कारों में वस्त्र सर्वोत्तम अलङ्करण माना जाता है । वस्त्र देवी को प्रसन्न करने वाला तथा चतुर्वर्गप्रद है । निर्दश (= गोट रहित), मलिन, पुराना, कटा-फटा, पहना हुआ, दूसरे का, चूहे से कटा, सिला हुआ तथा उषित (= जला हुआ) वस्त्र नहीं देना चाहिये । पताका चाँदनी आदि के लिये सिला हुआ कपड़ा प्रयोग में लाया जा सकता है । बाल लगे हुए, विना धुला, थूक कफ मूत्र आदि से दूषित, अग्नि दग्ध और गन्दा वस्त्र देवी के लिये नहीं देना चाहिये । रंग-बिरंगा वस्त्र, दुबूल (= रेशमी वस्त्र) देवी को अत्यन्त प्रिय हैं । वस्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला और अग्निष्टोम यज्ञ का फल देता है । वस्त्र समर्पण का मन्त्र—विद्यातन्तु.........................सुरेश्वरि ॥' (हे सुरेश्वरि! विद्या तन्तु से युक्त मन्त्रवर्ण से समन्वित तुम्हारे दो वस्त्र विद्या और अविद्या रूप हैं । ये जपा कुसुम के समान रक्त हैं । उगते हुए सूर्य के समान रक्त स्वच्छ नवीन शरीर को सुख पहुँचाने वाले दो वस्त्रों को पहनो) ॥ ३१-३९- ॥

८. अलङ्काराः

किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका ॥ ४० ॥
तालपत्रं च हारश्च ग्रैवेयकमथोर्मिका ।
सूत्रावलीकेशपाशेता(ड?ट)ङ्कवलया(न्ददौ?ङ्गदाः) ॥ ४१ ॥
पादाङ्गु(री?ली)यकं सूत्रं नूपुरं क्षुद्रघण्टिकाः ।
अलङ्काराः समाख्याता अलङ्कारेषु षोडश ॥ ४२ ॥
चतुर्वर्गप्रदं नित्यं भूषणं सर्वसौख्यदम् ।
तुष्टिपुष्टिकरं देव्यै यथाशक्त्या निवेदयेत् ॥ ४३ ॥

नवरत्नसमायुक्ता द्रुतहाटककल्पिताः ।
गात्राणि शोभयन्त्वेते अलङ्कारास्तु सुन्दरि ॥ ४४ ॥
कामेशि कामरूपे त्वं सर्वकामफलप्रदे ।
भूषणं गृह्ण चार्वङ्गि मया भक्त्या निवेदितम् ॥ ४५ ॥

८. अलङ्कार—अलङ्कारों में सोलह अलङ्कार इस प्रकार बतलाए गए हैं—१. किरीट, २. शिरोरत्न, ३. कुण्डल, ४. ललाटिका, ५. तालपत्र, ६. हार, ७. ग्रैवेयक, ८. उर्मिका, ९. सूत्रावली, १०. केशपाश, ११. ताटङ्क, १२. वलय, १३. अङ्गद, १४. पादाङ्गुलीयक, १५. नूपुर और १६. क्षुद्रघण्टिका। अलङ्कार चतुर्वर्गफलप्रद सर्वसौख्यदायी तथा तुष्टि-पुष्टिकर होता है। यथाशक्ति इसे देवी के लिये समर्पित करना चाहिये। मन्त्र—'नवरत्न..........निवेदितम् ॥' (हे सुन्दरि! नवरत्नों से युक्त गलाये गये सोने से बने ये अलङ्कार तुम्हारे अङ्गों को सुशोभित करें। हे कामेशि! हे कामरूपे! हे सर्वकालफलप्रदे! हे चार्वङ्गि! मेरे द्वारा भक्ति के साथ निवेदित इस अलङ्कारसमूह को स्वीकार करें)। इस मन्त्र से अलङ्कार देना चाहिये ॥ ४०-४५ ॥

९. गन्धः

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा ।
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ॥ ४६ ॥
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवीप्रीतिप्रदायकः ।
प्रशस्तगन्धयु(क्ता?क्त्या)तु गन्धचूर्णानि यानि च ॥ ४७ ॥
तानि गन्धाह्वयानि स्युः स गन्धः प्रथमः स्मृतः ।
घृष्टो मलयजो गन्धः (स?श) बलश्च नमेरुणा ॥ ४८ ॥
अगुरुप्र(भू?भृ)तिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते ।
अगुरुदेवदार्वादि यो दग्ध्वा गृह्यते रसः ॥ ४९ ॥
स दाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः ।
सगन्धगन्धिनीबिल्वतिलकं शतपत्रिकाम् ॥ ५० ॥
निष्पीड्य गृह्यते योऽसौ सम्मर्दजः स उच्यते ।
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोशोद्भव एव वा ॥ ५१ ॥
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तः पञ्चमस्तु स उच्यते ।
गन्धस्य विस्तरो भेदो दिङ्मात्रं समुदाहृतम् ॥ ५२ ॥
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥ ५३ ॥

९. गन्ध—गन्ध पाँच प्रकार का बतलाया गया है—१. चूर्ण किया हुआ, २. घिसा हुआ, ३. आग लगाकर पैदा किया हुआ, ४. सम्मर्दन कर निकाला गया रस और ५. प्राणि के अङ्ग से निकला हुआ। ये पाँचों प्रकार के गन्ध देवी को प्रसन्न करने वाले होते हैं। प्रशस्त गन्ध से युक्त होने से जो चूर्णगन्ध होते हैं वे भी गन्ध कहे जाते हैं जैसे किसी चूर्ण को सेण्ट लगाकर मल दिया जाय। यह प्रथम कोटि का गन्ध माना गया है। मलय चन्दन को घिसकर नमेरु से मिला दिया जाय। यह दूसरा गन्ध है। अगुरु आदि को पानी में मिलाकर गीला करने से या आग से जलाकर उसका रस निकालने पर तीसरी कोटि का गन्ध होता है। बेल तिलक शतपत्री को निचोड़ कर जो गन्ध मिलता है वह सम्मर्दज चतुर्थ प्रकार का गन्ध होता है। मृग की नाभि या उसके अण्डकोष से उत्पन्न गन्ध प्राण्यङ्गज कहा गया है। यह पाँचवें प्रकार का गन्ध है। गन्ध के भेद बहुत अधिक है। यह तो मैंने थोड़ा सा उदाहरण दिया। सारे गन्ध में मलय से उत्पन्न गन्ध सर्वोत्तम माना गया है इसलिये सब प्रयत्न कर मलयज गन्ध देना चाहिये ॥ ४६-५३ ॥

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरमलयोद्भवैः ।
समीकृतैस्तु यो गन्धस्त्रिपुराप्रीतिदायकः ॥ ५४ ॥
कुचन्दनं(शि?सि)तं चैव कालीयकसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्याः प्रीतिकरं परम् ॥ ५५ ॥
अलक्तं नखरागेषु देवीप्रीतिकरं तथा ।
गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा ॥ ५६ ॥
अ(म्बा?ङ्गा)नां साधको गन्धो मोक्षे चापि प्रतिष्ठितः ।
शरीरं ते न जानामि चेष्टां (चै?श्चै)व महेश्वरि ॥ ५७ ॥
मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ।
गन्धैः सुतोषिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ॥ ५८ ॥
अनेनैव महेशानि गन्धान् देव्यै निवेदयेत् ।

कुङ्कुम अगर कस्तूरी कपूर मलयचन्दन इनको बराबर मात्रा में मिलाकर जो गन्ध तैयार होता है वह त्रिपुरादेवी का प्रीतिवर्द्धक होता है। श्वेत कुचन्दन को कालीयक (= एक प्रकार के चन्दन की लकड़ी) के साथ मिलाकर जो लेप बनता है वह मुख्य रूप से देवी का प्रीतिकर होता है। नख के रंगों में अलक्तक देवी को प्रसन्न करता है। गन्ध के अर्पण से अर्चक इच्छाओं की पूर्त्ति प्राप्त करता है। गन्ध सर्वदा धर्मप्रद होता है। अङ्गों (= धर्म अर्थ काम) का साधक गन्ध मोक्ष भी देता है। गन्ध दान का मन्त्र—'शरीरं ते................ भवेत् ॥' (हे महेश्वरि! मैं आपके शरीर और आपकी चेष्टाओं को नहीं जानता।

मेरे द्वारा अर्पित गन्धों को लेकर अपने शरीर में लगाओ । गन्धों से सम्यक् सन्तुष्ट की गयी देवी चतुर्वर्ग को देती है) । हे महेश्वरि! इस मन्त्र से देवी के लिये गन्ध देना चाहिये ॥ ५४-५८- ॥

१०. अञ्जनम्

घृततैलादियोगेन स्वर्णादौ दीपवह्निना ॥ ५९ ॥
यदञ्जनं प्रजायेत कृत्वा कर्पूरमिश्रितम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाय त्रिपुरायै निवेदयेत् ॥ ६० ॥
विधवा ना(च्छ?ञ्ज)नंकुर्यान्महामायार्थमद्रिजे ।
न मृत्पात्रे गतं कुर्यात् साधको नेत्ररञ्जनम् ॥ ६१ ॥
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रेविहिताञ्ज(लैः?नैः)।

१०. अञ्जन—सोना चाँदी आदि में घृत तैल आदि लगाकर दीप की ज्वाला से जो कालिख उत्पन्न होती है उसे कपूर के साथ मिलाकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिये त्रिपुरसुन्दरी को समर्पित करना चाहिये । हे पार्वति! महामाया के लिये जो अञ्जन बनाया जाता है उसे विधवा स्त्री न बनाये । साधक मिट्टी के पात्र में रखकर अञ्जन न लगाये । मृत्पात्र में अञ्जन रखकर लगाने से पूजा का फल नहीं मिलता ॥ ६०-६१- ॥

११. पुष्पम्

परकीयांस्तथा घ्रातान् स्तेयं
कृ(या?त्वा)भिमर्दितान् ॥ ६२ ॥
पुष्पं धूपं च गन्धं च नोपच
(रान्?रेत्) तथापरान् ।
घ्रातान् निवेद्य देवेशि नरो नरकमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥
नैव पर्युषितैः पुष्पैः पत्रैश्चापि महेश्वरीम् ।
पूजयेत् परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ६४ ॥
सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं पत्रं पुष्पं फलं तथा ।
पद्मानि सितरक्तानि कुमुदान्युत्पलानि च ॥ ६५ ॥
एषां पर्युषिताशङ्का कार्या पञ्चदिनोर्ध्वतः ।
अन्येषां कुसुमानां च यावद्गन्धविपर्ययः ॥ ६६ ॥
बिल्वपत्रे महेशानि नास्ति पर्युषितात्मता ।
बकुलं केसरं वज्रं माल्यां कुन्दं च शाल्मलम् ॥ ६७ ॥

करवीरं चार्कपुष्पं बन्धूककमले तथा ।
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा॥ ६८ ॥
तगरः कर्णिकारश्च द्रोणश्चोत्पलचम्पकौ ।
अशोकः कुमुदश्चैव शेफालिकाकदम्बकौ ॥ ६९ ॥
केतकी वनमाला च कुसुम्भकिंशुकौ तथा ।
कह्लारबकुले चैव लवङ्गनागकेसरौ ॥ ७० ॥
सर्वेषु पुष्पजातेषु त्रिपुरायाः सदैव हि ।
एतान्येव प्रियाणि स्युर्न पत्रैरर्चयेच्छिवाम् ॥ ७१ ॥

११. पुष्प—दूसरे के द्वारा प्रयुक्त, सूँघा हुआ, चोरी से लाया गया, मर्दित तथा निषिद्ध पुष्पों धूप और गन्ध को देवी के लिये अर्पित नहीं करना चाहिये । हे देवेशि! सूँघे गये पुष्पों को देवी के लिये निवेदित कर मनुष्य नरक को प्राप्त होता है । हे परमेशानि! बासी फूलों और पत्तों से महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा नहीं करनी चाहिये । सारे पत्र पुष्प और फल यदि बासी हों तो वे प्रदेय नहीं होते । किन्तु श्वेत एवं रक्त कमल तथा कुमुद पाँच दिनों के बाद बासी माने जाते हैं । अन्य पुष्प तब बासी हो जाते हैं जब उनकी गन्ध बदल जाती है । हे महेशानि! बिल्व पत्र कभी भी बासी नहीं होता । समस्त पुष्पों में बकुल (= मौलसिरी), केसर, वज्र (= कुश), माल्य (= गजरा), कुन्द, सेमर, करवीर, मदार, गुलदुपहरिया, कमल, मालती, मल्लिका, चम्पा, जूही, माधवी, तगर, कनेर, द्रोण (= सफेद फूल), उत्पल, चम्पक, अशोक, कुमुद, शेफालिका, कदम्ब, केतकी, वदमाला, कुसुम्भ, पलाश, कह्लार, बकुल, लवङ्ग, नागकेसर देवी को अत्यन्त प्रिय हैं । पत्रों से शिवा अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा नहीं करनी चाहिये ॥ ६२-७१ ॥

पत्रम्

पत्रेषु बिल्वपत्रं च तथा मदनपल्लवम् ।
दूर्वाङ्कुरं तथा प्रो(क्ता?क्तं)नान्यत् पत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७२ ॥

पत्र—पत्तों में बेलपत्र मदन अर्थात् धतूर का पत्र, दूर्वा का अङ्कुर—ये ही देवी के लिये अर्पणीय बतलाया गया है । अन्य पत्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ७२ ॥

पुष्पम्

मल्लिका मालती कुन्दो द्रोणश्चाथ सिताम्बुजम् ।
शुक्लपक्षे महादेवि त्रिपुरायै निवेदयेत् ॥ ७३ ॥

सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्मं तथा ज(वा?पा) ।
देवीप्रीतिकरं प्राज्ञे सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७४ ॥
रत्नपुष्पं च देवेशि तथा स्वर्णादिनिर्मितम् ।
रक्तपद्मेन वज्रेण तुलां नायाति कर्हिचित् ॥ ७५ ॥

शुक्ल पक्ष में मल्लिका के पुष्प, मालती का पुष्प, कुन्द, द्रोण एवं श्वेतकमल को त्रिपुरसुन्दरी के लिये निवेदित करना चाहिये । हे प्राज्ञे ! समस्त पुष्पों में लाल कमल और जवा कुसुम देवी को अत्यधिक प्रसन्न करने वाला तथा सर्वकाम फलप्रद बतलाया गया है । हे देवेशि! रत्नों से निर्मित पुष्प तथा स्वर्ण आदि से निर्मित पुष्प भी रक्त कमल तथा वज्र (= कुश का फूल) के तुल्य कभी नहीं होता ॥ ७३-७५ ॥

पुष्पमाला

एतेषां पुष्पजातानां येन केन विनिर्मिताम् ।
मालां कृत्वा महादेव्यै यत् फलं लभते नरः ॥ ७६ ॥
अपि वक्त्रसहस्रैस्तद्वक्तुं नालं ततः प्रभुः ।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः ॥ ७७ ॥
पुष्पाग्रेऽहं स्थितो नित्यं सर्वे देवाः स्थिताः दले ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्पवसाः स्मृताः ॥ ७८ ॥
परं ज्योति पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीददति ।
भोगमोक्षप्रदं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोददम् ॥ ७९ ॥
पुष्पैर्देवी प्रसन्ना स्याद् धर्मकामार्थदायिनी ।
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवीं नित्यं भक्तियुतो नरः ॥ ८० ॥

पुष्पमाला—उपर्युक्त पुष्पों में से जिस किसी भी एक पुष्प की माला बना कर देवी के लिये अर्पित करनी चाहिये । महादेवी के लिये माला अर्पित कर मनुष्य जो फल प्राप्त करता है उसका हजारों मुखों से स्वयं शिव भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं । पुष्प के मूल में ब्रह्मा, मध्य में केशव और उसके अग्रभाग में मैं स्वयं स्थित रहता हूँ । उसके दलों में सारे देवता नित्य स्थित रहते हैं । समस्त चराचर पुष्प के निवासी माने गये हैं । परम ज्योति पुष्प में रहती है और पुष्प से ही प्रसन्न होती है । पुष्प भोग मोक्ष तुष्टि लक्ष्मी पुष्टि और आनन्द देने वाला होता है । पुष्पों से प्रसन्न होकर देवी धर्म अर्थ और काम को देती है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह भक्ति से युक्त होकर देवी की पुष्पों से पूजा अराधना करे ॥ ७६-८० ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पुष्पमेव सदा प्रियम् ।
तत्ते मातः प्रयच्छामि पवित्रं प्रतिगृह्यताम् ॥ ८१ ॥
उग्रगन्धमगन्धं च कृमिकेशादिदूषितम् ।
अशुद्धपात्रपाणिस्थं वासोभिः कुत्सितात्मभिः ॥ ८२ ॥
आनीतं नार्पयेद् देव्यै प्रमादादपि दोषकृत् ।
स्ना(त्वा?ता)नीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः ॥ ८३ ॥
स्वयं विका(शि?सि)तैर्मुक्तैः स्वयं च पतितैर्भुवि ।
नार्चयेत् कलिकाभिश्च विना चम्पकपङ्कजैः ॥ ८४ ॥

'ब्रह्मा....................प्रतिगृह्यताम् ।' (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि को पुष्प ही सर्वदा प्रिय है । हे माता! वह पवित्र पुष्प मैं तुझे अर्पण कर रहा हूँ, आप इसे ग्रहण करो ।) इस मन्त्र के द्वारा देवी के लिये पुष्प अर्पित करना चाहिये । तीव्र गन्ध वाला, गन्धरहित, कीड़े-मकोड़े से खाया हुआ, अशुद्ध पात्र और अशद्ध हाथों में रखा हुआ, गन्दे वस्त्रों में लाया हुआ पुष्प देवी को कदापि नहीं चढ़ाना चाहिये । यदि भूल से भी ऐसा पुष्प देवी को चढ़ाया जाता है तो भी वह पाप होता है । मध्याह्न स्नान के बाद लाये गये, बासी, माँगे गये, काले रंग वाले, स्वयं जङ्गल आदि में खिले हुए, स्वयं भूमि पर गिरे हुए फूलों और कलियों से देवी की पूजा नहीं करनी चाहिये । चम्पा और कमल की कली से देवी की पूजा की जा सकती है ॥ ८१-८४ ॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् ।
दुःखदं तत् समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ॥ ८५ ॥
चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धं न दूषणम् ।
अधोमुखार्पणं नेष्टं पुष्पाञ्जलिविधिं विना ॥ ८६ ॥
किंचातिबहुनोक्तेन सामान्येनेदमुच्यते ।
उक्ता(न्मु?नु)क्तैस्तथा पुष्पैर्जलजैःस्थलजैरपि॥ ८७ ॥
पत्रै सर्वैर्यथालाभं भक्तिमान् सततं यजेत् ।
पुष्पाभावे यजेत् पत्रैः पत्रालाभे च तत्फलैः ॥ ८८ ॥
अक्षतैर्वा जलैर्वापि न पूजां व्यतिलङ्घयेत् ।
एतेषामप्यलाभे तु मानसीं भक्तिसामश्रयेत् ॥ ८९ ॥

पुष्प अथवा पत्र अथवा फल अधोमुख चढ़ाने पर अनिष्टकारी तथा दुःखद होता है इसलिये जैसा उत्पन्न होता है वैसा ही चढ़ाना चाहिये । समस्त चित्र पूजाओं में न कहीं कोई विरोध और न दोष होता है । पुष्पाञ्जलि को छोड़कर अधोमुख पुष्प पत्र आदि इष्ट नहीं है । अधिक कहने से क्या लाभ? यह

सामान्य प्रक्रिया बतलायी गयी । पूर्वोक्त अथवा अनुक्त पुष्प चाहे वे जलज हों या स्थलज उनसे तथा पत्रों से जितना मिल सके भक्तिमान् उनसे निरन्तर पूजा करे । पुष्प न मिलने पर पत्रों से, पत्रों के न मिलने पर फलों से, अक्षत अथवा जल से भी पूजा करनी चाहिये । पूजा का लङ्घन नहीं करना चाहिये । इनमें से यदि कुछ भी न मिले तो मानसी पूजा करनी चाहिए ॥ ८५-८९ ॥

१२. धूपम्

दह्यमानस्य काष्ठादेर्निस्तापो यस्य जायते ।
नासादिरन्ध्रसुखदः सगन्धोऽतिमनोहरः ॥ ९० ॥
स धूप इति विज्ञेयो देवीप्रीतिप्रदायकः ।
पत्रं मुस्तं नखं कुष्ठं जटामांसी च शैलजम् ॥ ९१ ॥
सरलं देवकाष्ठं च जतु सर्जसचन्दनम् ।
कपिलाघृतकर्पूरशर्करागरुमिश्रितम् ॥ ९२ ॥
षोडशाङ्गो महाधूपः षोडशीप्रीतिदायकः ।
न भूमौ वितरेद् धूपं नासने कलशे नतु ॥ ९३ ॥
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं तु निवेदयेत् ।
वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ॥ ९४ ॥
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।

१२. धूप—जलते हुए जिस काष्ठ आदि का तपा नहीं रहता और नाक के छिद्र को जो आनन्द देता है, जो गन्ध युक्त और मन को आकृष्ट करने वाला हो उसे धूप समझना चाहिये । वह देवी को प्रसन्न करने वाला होता है । पत्र (= तेज पत्र) मुस्ता, नखी, कूट, खस, जटामासी, शिला, जातु, सरल, देवदारु, लाह, सर्जस, चन्दन, कपिलाघृत, कपूर, शक्कर और अगर—इनको मिलाकर षोडशाङ्ग धूप होता है जो षोडसी अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी को प्रसन्न करता है । धूप को भूमि आसन और कलश पर नहीं दि्खाना चाहिये । जिस किसी प्रकार किसी आधारपात्र में रखकर देवी को दिखाना चाहिये । मन्त्र—'वनस्पति....... प्रतिगृह्यताम् ।' (वनस्पतियों के रस से बना हुआ गन्ध से भरपूर उत्तम गन्ध वाला तथा समस्त देवताओं का आघ्रेय धूप आप लीजिये) ॥ ९०-९४- ॥

१३. दीपम्

अथ दीपं प्रवक्ष्यामि ज्योतिष्टोमफलप्रदम् ॥ ९५ ॥
घृतदीपस्तु प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ।
सार्षपश्चाधमः प्रोक्तस्तदन्यो निन्दितः स्मृतः ॥ ९६ ॥

पद्मसूत्रभवा चाद्या कार्पाससम्भवा परा ।
दर्भगर्भभवा चापि वर्तिका परिकीर्तिता ॥ ९७ ॥
को(ष?श)जं रोमजं वास्त्रं तूलं पर्युषितं तथा ।
वर्तिकार्थं न चादद्यात् साधको भूतिमिच्छुकः ॥ ९८ ॥
तैजसं पार्थिवं लौहं दीपपात्रं प्रशस्यते ।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्याः पृथक् पृथक् ॥ ९९ ॥
वृक्षे दीपः प्रदातव्यो नतु भूमौ कदाचन ।

१३. दीप[१]—उसके बाद में ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल देने वाले दीपक का वर्णन करूँगा । घी का दीप प्रथम कोटि का होता है । तिल का दीपक उसके बाद का अर्थात् मध्यम होता है । सरसो के तेल का दीपक अधम कहा गया है । उसके अतिरिक्त अन्य दीपक निन्दनीय होता है । इसी प्रकार बत्ती जो कमलनाल से बनती है वह सर्वोत्तम होती है । उसके बाद कपास की होती है । कुश के गर्भ की भी बत्ती बनायी जाती है । धन सम्पत्ति चाहने वाले साधक को रेशम की, ऊन की, वस्त्र की या बहुत पुरानी रूई की बत्ती नहीं बनानी चाहिये । सोना चाँदी मिट्टी और लोहे का दीपक उत्तम माना जाता है । सोने चाँदी से पृथक्-पृथक् दीप वृक्ष बनाने चाहिये ॥ ९५-९९- ॥

कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः ॥ १०० ॥
तामिस्त्रं नरकं घोरमाप्नोत्येव न संशयः ।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः ॥ १०१ ॥
सशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते ॥ १०२ ॥
दक्षिणावर्तवर्त्या वै चारुदीप्तः प्रदीपकः ।
उत्तमः प्रोच्यते सोऽत्र त्रिपुराप्रीतिदायकः ॥ १०३ ॥
वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ।
विहीनः पात्रतैलाभ्याम(ध्य?ध)मः परिकीर्तितः ॥ १०४ ॥

दीप को वृक्ष (= दीपदान) पर रखकर देना चाहिये । भूमि पर दीप नहीं देना चाहिये । जो व्यक्ति धरती को गरम करने वाले दीप को देता है वह घोर तामिस्त्र नरक को जाता है—इसमें सन्देह नहीं । जो आँखों को आनन्द दे, जिसकी शिखा सुन्दर हो, जो दूर तक ताप न फैलाता हो, शिखायुक्त और शब्दरहित हो, जिसमें से धुँवाँ न उठ रहा हो तथा जो बहुत छोटा न हो, दीवट के ऊपर रखा

---

[१] दीप के बाद नैवेद्य दक्षिणा और प्रणाम मिलकर सोलह उपचार होते हैं । नैवेद्य आदि का वर्णन अग्रिम पटल में है ।

शुद्ध घी तैल से भरे पात्र वाला, दक्षिणावर्त्त बत्ती वाला, सुन्दर, जलता हुआ दीपक उत्तम कहा जाता है। वह त्रिपुरसुन्दरी को प्रसन्न करने वाला होता है। जो दीप दीवट से रहित होता है, वह मध्यम कोटि का तथा पात्र एवं तैल से रहित दीपक अधम कोटि का कहा गया है ॥ १००-१०४ ॥

दीपमाला

दीपमाला प्रकर्तव्या नैकदीपः कदाचन।
त्रयो दीपा प्रदातव्याः पञ्च वा परमेश्वरि ॥ १०५ ॥
इतो न्यूनं न दातव्यं त्रिपुरायै कदाचन।
त्रयो दीपाः प्रदातव्यो विधूतः श्रीविवृद्धये ॥ १०६ ॥
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपस्नेहान् घृतादिकान्।
कृत्वा मिश्रीकृतस्नेहं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १०७ ॥
नैव निर्वापयेद् दीपं देवार्थमपि कल्पितम्।
दीपहर्ता भवे(द्न?द)न्धः
का(नो?णो)निर्वापको भवेत् ॥ १०८ ॥
न तेन व्यवहारोऽपि कर्तव्यः साधकोत्तमैः।
सूर्याचन्द्रमसोर्ज्योतिर्विद्यु(द?तोऽ)ग्नेस्तैव च ॥ १०९ ॥
त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।

दीपमाला—देवी के लिये दीपमाला बनानी चाहिये। एक दीपक नहीं दिखाना चाहिये। हे परमेश्वरि! तीन या पाँच दीपक लगाना चाहिये। त्रिपुरा देवी के लिये इससे कम दीपक नहीं दिखाना चाहिये। धन की वृद्धि के लिये विधूत (= हिलता हुआ) दीपक नहीं लगाना चाहिये। कई स्नेहों-घी-तेल आदि को मिलाकर दीपक नहीं लगाना चाहिये। जो मिश्रित स्नेह का दीपक लगाता है वह रौरव नरक को जाता है। देवता के लिये बनाये गये दीपक को बुझाना नहीं चाहिये। दीपक चुराने वाला अन्धा तथा दीपक बुझाने वाला काना होता है। ऐसे लोगों के साथ व्यवहार भी नहीं करना चाहिये। देवी के लिये दीपदान का मन्त्र यह है—'सूर्याचन्द्र.......................प्रतिगृह्यताम्।' (सूर्य चन्द्रमा विद्युत् और अग्नि की ज्योति इन ज्योतियों की ज्योति तुम स्वयं हो। इसलिये इस दीप को स्वीकार करो) ॥ १०५-१०९- ॥

दीपं दक्षिणतो देव्याः पुरतो नतु वामतः ॥ ११० ॥
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा नतु दक्षिणे।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम् ॥ १११ ॥

नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः ।
गात्रे दातुं च यद्योग्यं यन्त्रेष्वेव निवेदयेत् ॥ ११२ ॥

नैवेद्यम्

दद्यादयोग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ।
मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यपानं तु वामतः ॥ ११३ ॥
या विद्या चेह देवेशि श्रीविद्यायामनासवा ।
फलहीना समाख्याता साभिचाराय कल्पते ॥ ११४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पूजोपचारतत्फलवर्णनं नाम
पञ्चदशः पटलः सम्पूर्णः ॥ १५ ॥

◆

दीपक को देवी के दाँयें या सामने रखना चाहिये बाँयें नहीं । धूप को बाँयें रखना चाहिये । दाँयें या सामने नहीं । गन्ध पुष्प सामने रखना चाहिये पीछे नहीं। जो शरीर पर रखने योग्य है उसे यन्त्र पर ही रखना चाहिये। जो शरीर पर रखने योग्य नहीं है वह नैवेद्य भोजन आदि देवी के सामने रखना चाहिये । मदिरा तथा अन्य पानक आदि को देवी के पीछे रखना चाहिये । हे देवेशि! श्रीविद्या की जो पूजा आसवरहित होती है वह निष्फल होती है । वह अभिचार उत्पन्न करती है ॥ ११०-११४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में पूजोपचारतत्फलवर्णन
नामक पञ्चदश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

◆

षोडशः पटलः

उपचारफलविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

इक्षुरसं समादाय पर्युषितं सुसंस्कृतम् ।
सहकाररसं तत्र निक्षिपेन्मधुना सह ॥ १ ॥
बादरं जाम्बवं चैव रसं खार्जूरमेव च ।
नारिकेलोद्भवं तत्र द्राक्षारसमनुत्तमम् ॥ २ ॥
मोहिनीफलजं चूर्णं जातीकोषरजस्तथा ।
कनकबीजचूर्णं च जातीफलसमुद्भवम् ॥ ३ ॥
त्रिजातं त्रिसुगन्धिं च त्रिकटुं त्रिफलान्वितम् ।
तथान्येषां च द्रव्याणां सुगन्धीनां रजः शिवे ॥ ४ ॥
किंचित् किंचिच्च निक्षिप्य कर्पूरैरधिवासयेत् ।
स्वर्णे वा राजते पात्रे का(ट?च)पुटेऽथवाप्रिये ॥ ५ ॥
स्थापयित्वा सितां तत्र निक्षिपेत् परमेश्वरि ।
निक्षिप्य लोहितैर्देवि वस्त्रैराच्छाद्य यत्नतः ॥ ६ ॥
सप्तरात्रोषितं तत्तु जायते ह्यमृतोपमम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपयित्वा निवेदयेत् ॥ ७ ॥

मद्य—ईश्वर ने कहा—ईख का बासी रस लेकर उसे छान लें । उसमें आम का रस और मधु मिलायें । बेर जामुन खजूर नारियल अङ्गूर का उत्तम रस, मोहिनी (= चमेली) फल का चूर्ण जायफल का चूर्ण धतूरे के बीज का चूर्ण जावित्री का चूर्ण त्रिजात (= तेजपात इलायची दालचीनी) त्रिसुगन्धि (= केसर कस्तूरी मलयचन्दन) त्रिकटु (= सोंठ पीपर मिर्च) त्रिफला (= हर्रा, बहेड़ा, आँवला) तथा हे शिवे! अन्य सुगन्धित द्रव्यों का चूर्ण पात्र में थोड़ा-थोड़ा डालकर कपूर से उसे अधिवासित करना चाहिये । हे प्रिये! सोना चाँदी अथवा काँच के

बर्त्तन में उस मद्य को रखकर हे परमेश्वरि! उसमें मिश्री मिलानी चाहिये । हे देवि! सब कुछ मिलाने के बाद उस पात्र को रक्त वस्त्र से ढँक देना चाहिये । सात रात तक उसे वैसा ही रखने पर वह अमृत के समान हो जाता है । चन्दन अगर कपूर से उसे धूपित कर देवी के लिये अर्पित करना चाहिये ॥ १-७ ॥

एषा सर्वोत्तमा प्रोक्ता देवीप्रियतमा सदा ।
मदिरेति समाख्याता परमानन्ददायिनी ॥ ८ ॥
एनां निवेद्य सुन्दर्यै सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा ततो राजा क्षितौ भवेत् ॥ ९ ॥
तत्रापि चानयाराध्य कैवल्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।
सविकल्पस्य देवेशि विहितैषा न चान्यथा ॥ १० ॥
निर्विकल्पस्य देवेशि सुरै(रव) विहितागमे ।
अमृतं च तदेव स्यान्म(दां?द्यं)चापि तदेव हि॥ ११ ॥

यह सर्वोत्तमा एवं सदा देवी की प्रियतमा वस्तु मदिरा के नाम से प्रसिद्ध है। यह परम आनन्द देने वाली है । त्रिपुरसुन्दरी के लिये इसे निवेदित कर साधक सर्वसिद्धि प्राप्त करता है । वह बहुत काल तक देवीलोक अर्थात् त्रिपुरादेवी के लोक में रहकर फिर धरती पर राजा होता है । पृथिवी पर भी इस सुन्दरी की आराधना कर इसकी कृपा से कैवल्य प्राप्त करता है । हे देवेशि! यह सविकल्प के लिये विहित नहीं है अर्थात् जो भक्त देवी के अतिरिक्त संसार को भी महत्त्व देते हैं अर्थात् देवी पूजा के साथ सांसारिकता में भी लिप्त रहते हैं उनके लिये यह विहित नहीं है । जो निर्विकल्प है अर्थात् जिसके लिये देवी के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है उसके लिये हे देवेशि! हे आगमशास्त्र को जानने वाली! देवताओं ने इसे बनाया है (अथवा जो सविकल्प अर्थात् मद्य के अतिरिक्त और भी नैवेद्य देने वाला है उसके लिए यह विहित नहीं है और जो निर्विकल्प है अर्थात् नैवेद्य के नाम पर सुरा ही अर्पित करने वाला है उसके लिए आगम में यह सुरा ही विहित है)। यह अमृत भी है और मदयुक्त करने वाली भी ॥८-११॥

नापद्यपि द्विजो मद्यं दद्याद् देव्यै कदाचन ।
मोहाद्यदि ददेन्मद्यं ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ १२ ॥
ब्रह्मघाती स एव स्यात्तस्मान्मद्यं विवर्जयेत् ।
मद्यमेव पुरा सेव्यमासीत् कमललोचने ॥ १३ ॥
पीत्वा मद्यं पुरा शुक्र आत्मानं चापि(विस्मृतः?व्यस्मरत्)।
पीत्वा मत्तो निशानाथः पत्नीं तां जगृहे गुरोः ॥ १४ ॥
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।

ब्रह्मा च मुनिभिः सार्धमिदमेव पुरा जगौ ॥ १५ ॥
महादेव्यै द्विजो मद्यं यो दद्याज्ज्ञानविह्वलः ।
पशुभावे स्थितो यश्च स महापातकी भवेत् ॥ १६ ॥
शेषयोर्विहितं मद्यं निर्विकल्पकयोः पुनः ।
नाद्यस्य विहितं तेन ब्रह्मघाती भवेच्च सः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण आपत्ति आने पर भी देवी के लिये कभी भी मद्य न दे । यदि कोई ब्राह्मण मोह से भी देवी के लिये मद्य देता है तो वह ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है । साथ ही उसे ब्रह्महत्या का पाप भी लगता है । इसलिये मद्य का त्याग करना चाहिये । हे कमललोचने! प्राचीनकाल में सब लोगों के लिये मद्य सेव्य था । प्राचीन काल में मद्य पीकर शुक्राचार्य अपने को भी भूल गये (और उनके शत्रुओं के द्वारा उनके ही पुत्र का मांस पका कर उन्हें खिला दिया गया)। मद्य का पान कर चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया । इसी कारण मुनि से उसे दारुण शाप दे दिया । प्राचीन काल में ब्रह्मा ने मुनियों के साथ कहा कि जो ब्राह्मण ज्ञानविह्वल होकर अर्थात् ज्ञानी होता हुआ भी महादेवी त्रिपुरसुन्दरी के लिये मद्य निवेदित करेगा वह तथा जो पशुभाव में स्थित है अर्थात् अज्ञानी है दोनों महापातकी हो जायेंगे । जो शेष दो निर्विकल्पक अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य हैं उनके लिये मद्यदान का विधान है । प्रथम अर्थात् ब्राह्मण के लिये यह विहित नहीं है । यदि ब्राह्मण देता है तो उससे वह ब्रह्महत्या पाप का भागी होता है ॥ १२-१७ ॥

तेनेदं पृथिवीक्षेत्रे वर्ज्यमासीत् सुलोचने ।
ज्ञानिनां सिद्धिदा चेयममृतत्वप्रदायिनी ॥ १८ ॥
ज्ञानेन संस्कृता चेयं महापातकनाशिनी ।
ब्रह्महत्या-सुरापान-स्वर्णस्तेयादिपातकान् ॥ १९ ॥
नाशयेत् पूजना(द्धेरि?द्देवि) निर्विकल्पो भवेद्यदि ।
निर्विकल्पो यदा मद्यं महादेव्यै निवेदयेत् ॥ २० ॥
अश्वमेधसहस्रस्य अग्निष्टोमशतस्य च ।
राजसूयशतस्यापि फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ २१ ॥

हे सुलोचने! इस कारण यह मद्यदान पृथिवीक्षेत्र में वर्जित बतलाया गया है । जो लोग आत्मतत्त्व के ज्ञाता या ब्रह्मज्ञानी हैं उनके लिये यह सिद्धिप्रदा एवं अमृतत्व प्रदान करने वाली है । ज्ञान से संस्कृत यह सुरा महापातक को भी नष्ट करती है । यदि साधक निर्विकल्प है अर्थात् देवी को ही सब कुछ मानता है उनके लिये सर्वथा और सर्वदा समर्पित है तो देवीपूजा से वह ब्रह्महत्या सुरापान

स्वर्णस्तेय आदि महापातकों को नष्ट कर देता है । निर्विकल्प भक्त जब महादेवी त्रिपुरसुन्दरी के लिये मद्य का निवेदन करता है तो वह सहस्र अश्वमेघ यज्ञ, सौ अग्निष्टोम और सौ राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १८-२१ ॥

अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको जायतेऽचिरात् ।
सविकल्पो यदा देवि पापभाङ् नात्र संशयः ॥ २२ ॥
सुरे चानघधामासि स्वा(धा?हा)त्वं च दिवौकसाम् ।
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां मनुष्याणां च सिद्धिदा ॥ २३ ॥
क्षीरा(ब्धि)मथने पूर्वमुद्धृता देवसंसदि ।
आनन्दभैरवी सार्धमानन्दभैरवेण तु ॥ २४ ॥
त्वयि प्र(सन्न?सादं) यातायां सिद्धिरेव न संशयः ।
विमुखी चेत्तदा तस्य कुलज्ञानविनाशिनी ॥ २५ ॥
प्रसन्ना खलु देवानां गन्धर्वाणां तथैव च ।
विमुखी त्वं च दैत्यानामसकृत् सर्वनाशिनी ॥ २६ ॥
त्वां(म?द)द्यां व(द?र)दे देव्यै मयि चित्स्फुरणं कुरु ।
एवं स्तुत्वा सुरां देव्यै पूर्वोक्तेन च संस्कृताम् ॥ २७ ॥
त्रिपुरायै निवेद्यैव निग्रहानुग्रहक्षमः ।

वह शीघ्र ही अणिमा आदि अष्टसिद्धियों का स्वामी हो जाता है । हे देवि! यदि सविकल्प भक्त सुरा का अर्पण करता है तो निःसन्देह वह पाप का भागी होता है । देवी को अर्पण करने के पहले सुरा की स्तुति करनी चाहिये । स्तुति इस प्रकार है—'सुरे चानघ...............चित्स्फुरणं कुरु ।' (हे सुरे! त्वं निष्पाप का स्थान हो । तुम देवताओं की स्वाहा पितरों की स्वधा और मनुष्यों के लिये सिद्धिदा हो । प्राचीनकाल में क्षीरसागर के मथे जाने पर तुम देवसभा में उद्धृत की गयी । तुम आनन्दभैरव के साथ आनन्दभैरवी हो । तुम्हारे प्रसन्न होने पर सिद्धि प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं । यदि तुम अप्रसन्न हो गयी तो कुलज्ञान का नाश कर देती हो । तुम देवताओं गन्धर्वों के ऊपर प्रसन्न रहती हो । दैत्यों से विमुख होकर बार-बार उनका सर्वनाश करती हो । हे वरदे! मै तुम मदिरा को देवी के लिये अर्पित कर रहा हूँ । मेरे अन्दर चैतन्य को स्फुरित करो) । इस प्रकार स्तुति कर निग्रह-अनुग्रह में सक्षम साधक पहले से संस्कृत मदिरा को देवी के लिये अर्पित करे ॥ २२-२७- ॥

१४. नैवेद्यप्रकारः

चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं चेति चतुर्विधम् ॥ २८ ॥

सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम् ।
ज्ञानदं कामदं पुण्यं बलारोग्यमयं तथा ॥ २९ ॥
नैवेद्येन लभेत् स्वर्गं नैवेद्येनामृतं भवेत् ।
धमार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ ३० ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नैवेद्यं खलु दापयेत् ।
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि ॥ ३१ ॥
यो नरो भक्तिसंयुक्तो दीर्घायुः स सुखी भवेत् ।

१४. नैवेद्य के प्रकार—नैवेद्य चार प्रकार का बतलाया गया है—१. चर्व्य, २. चोष्य, ३. लेह्य, ४. पेय । नैवेद्य सदा सर्वयज्ञमय तथा सर्वसन्तोषप्रद होता है । यह ज्ञानद, कामद, पवित्र, बल और आरोग्य से पूर्ण होता है । नैवेद्य अर्पण कर साधक स्वर्ग प्राप्त करता है । नैवेद्य से वह साधक अमर हो जाता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये सब नैवेद्य में स्थित हैं, इसलिये सब प्रकार का यत्न कर भगवती त्रिपुरसुन्दरी के लिये नैवेद्य अर्पण करना चाहिये । यदि मन से भी देवी के लिये नैवेद्य दिया जाता है तो जो मनुष्य इसे देता है वह दीर्घायु और सुखी होता है ॥ २८-३१- ॥

हविः सुसंस्कृतं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ॥ ३२ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं चन्द्रबिम्बसमप्रभम् ।
लसत्त(न्तु?ण्डु)लजं देवि चारुगन्धसहं मृदु ॥ ३३ ॥
सुगन्धिशा(द्वि?लि)जं चा(त्वं?रु)मधुमांससमन्वितम् ।
अपूपपायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
बलिदानेषु विहिता (च) य एव मृगपक्षिणः ।
तेषां मांसानि मत्स्यानि देयानि विविधानि च ॥ ३५ ॥
सर्वं सुरभिगन्धाढ्यं व्यञ्जनं सुमनोहरम् ।
यथा यथा भवेद्भक्ष्यं यत्नाद्(द्रव्यं?देयं)तथा तथा ॥ ३६ ॥
संस्कृत्य वेशवाराद्यैर्महादेव्यै निवेदयेत् ।

सुसंस्कृत हवि घी और शर्करा से युक्त, शुद्ध स्फटिक के समान धवल, चन्द्रबिम्ब के सदृश चमकदार, चावल से सुशोभित, सुगन्धयुक्त सुगन्धित साठी के चावल से बनी होनी चाहिये । दूसरा प्रकार है—मधु (= मदिरा) मांस भी हवि होती है । हलुआ खीर दूध में पका हुआ अन्न यह भी देवी के लिये प्रशस्य होता है । जो बलि के लिये मृग और पक्षी विहित हैं उनके मांस, अनेक प्रकार की मछलियाँ भी नैवेद्य के रूप में देय होती हैं । सुगन्ध से युक्त मनोहारी समस्त व्यञ्जन जो-जो जिस-जिस प्रकार से भक्ष्य हो सकें वैसा-वैसा बनाकर

प्रयत्नपूर्वक देना चाहिये । उन नैवेद्यों का संस्कार कर परोसने वाले लोगों के द्वारा महादेवी के लिये निवेदित करना चाहिये ॥ ३२-३६- ॥

यत्पूतिगन्धसंयुक्तं दग्धं भोगबहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥
तदुक्तमपि (यो?न)दद्यात् त्रिपुरायै कदाचन ।
कालशाकं कलायं च पालकं चापि पोतिकाम् ॥ ३८ ॥
सार्षपं मूलकं चापि वास्तूकं च कलम्बिकाम् ।
शाकानेतान् महादेव्यै यो दद्याद्भक्तिसंयुतः ॥ ३९ ॥
सोऽतुलां श्रियमाप्नोति देवीलोके महीयते ।
माषमु(ग्द?द्ग)मसूराद्यैर्व्यञ्जनं लवणान्वितम् ॥ ४० ॥
हिङ्गुजीरमरीचाद्यैरार्द्रकैश्चापि संस्कृतम् ।
तितिण्डीखण्डसंयुक्तं भक्तियुक्तो निवेद्य च ॥ ४१ ॥
ज्योतिष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ।

जो दुर्गन्ध युक्त हो, जला हुआ हो, भोग लगाकर हटाया जा चुका हो, वह पूर्वोक्त विहित द्रव्यों में से हो तब भी त्रिपुरा के लिये कभी नहीं देना चाहिये । तत्तत् ऋतु में उत्पन्न होने वाले शाक, मटर, पालक पोतिका (= पोय) सरसों का साग मूली बथुआ और कलाम्बिका (= करेमू) इन सबको जो साधक भक्तियुक्त होकर देवी को देता है वह अतुल लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा देवी के लोक में पूजित होता है । माष (= उड़द) मूङ्ग मसूर आदि से बने व्यञ्जन में नमक हींग जीरा कालीमिर्च और अदरख मिलाने के बाद इमली के टुकड़ों को मिलाकर भक्तिपूर्वक देवी के लिये अर्पित करने वाला ज्योतिष्टोम का फल प्राप्त कर देवीलोक को जाता है ॥ ३७-४१- ॥

नानाविधानि पेयानि व्यञ्जनानि बहून्यपि ॥ ४२ ॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिषाणि च सर्वशः ।
आमिक्षां परमेशान्यै दधि चापि सशर्करम् ॥ ४३ ॥
पायसं शर्करापूपं कपिलाघृतसंयुतम् ।
पक्वान्नमतिमिष्टं च सिताकर्पूरसाधितम् ॥ ४४ ॥
शर्करालोलितान् कृत्वा वटकान् कुङ्कुमारुणान् ।
सशर्करं पक्वदुग्धं कदल्यादिफलान्वितम् ॥ ४५ ॥
सितोपदंशं मद्यं च स्वर्णपात्रे निवेदयेत् ।
अथवा रौप्यपात्रे च ताम्रपात्रेऽथवा पुनः ॥ ४६ ॥
अभावात् पद्मपत्रे वा अन्यथा नरकं व्रजेत् ।

अनेक प्रकार के अधिकाधिक पेय व्यञ्जन जैसे गाय या भैंस का दूध छेना दही में शक्कर मिलाकर देना चाहिये । खीर शक्करमिश्रित मालपुआ, जो कि कपिला के घृत में पकाया गया हो, अन्न प्रकार का मधुर पक्वान्न जिसमें मिश्री कपूर मिली हो, शक्कर से उपलिप्त बड़ा जो कि कुङ्कुम के समान लाल हो, शक्कर मिश्रित पकाया गया दूध, उसमें केला अङ्गूर आदि का फल मिलाया गया हो मिश्री से युक्त मद्य को सोने के पात्र में देना चाहिये । न मिलने पर चाँदी अथवा ताँबा के पात्र में परोसना चाहिये । यदि उक्त पात्र न मिले तो कमल के पत्ते पर परोसना चाहिये । दूसरे पात्रों अथवा भूमि पर परोसने वाला साधक नरक में जाता है ॥ ४२-४६- ॥

आममन्नं महादेव्यै नैव दद्यात् कदाचन ॥ ४७ ॥
मन्त्रकालाविशुद्धानि नैवेद्यानि कदाचन ।
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत(गुरो[1]) हिते रतः ॥ ४८ ॥
सितासंमिश्रितां दत्त्वा सुरां मधुसमन्विताम् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा कैवल्यं मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥
आमिक्षया समं दत्त्वा सलिलं नारिकेलजम् ।
क्षीरा(द्य?ज्य)मधुकर्पूरसितादधिसमन्वितम् ॥ ५० ॥
त्रिजातत्रिकटूनां च लवङ्गेन द्वयोरपि ।
तथान्येषां च वस्तूनां चूर्णैर्गन्धवतीं शिवे ॥ ५१ ॥
साधयित्वा प्रकारेण वासि(त?तां) गन्धरेणुभिः ।
यस्तैजसेन पात्रेण पेयं देव्यै निवेदयेत् ॥ ५२ ॥
भक्तिप्रवणचित्तेन तस्य पुण्यफलं शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ५३ ॥
स्थित्वा देवीपुरे श्रीमान् सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।
ततः परं तु कैवल्यमाप्नोति च यथेच्छया ॥ ५४ ॥

कच्चा अन्न महादेवी को कभी नहीं देना चाहिये । अपने हित में लगा मनुष्य मन्त्र के द्वारा अथवा समय से शुद्ध न किये गये नैवेद्य को देवताओं अथवा गुरु के लिये न दे । मिश्री एवं मधु से मिश्रित सुरा को देवी के लिये अर्पित कर साधक बहुत दिनों तक देवीलोक में रहकर अन्त में मुक्ति को प्राप्त करता है । आमिक्षा के साथ नारियल का पानी, दूध, घी, मधु, कपूर और मिश्री से युक्त करे । त्रिजात, त्रिकटु, लवङ्ग तथा अन्य वस्तुओं के चूर्ण से सुगन्धित कर तथा हे शिवे! अन्य प्रकार से सुगन्धित चूर्ण से वासित कर पेय को जो भक्त

---

१. गुरोर्वामे पुरो वा स्व ।

सोने के पात्र में देवी के लिये भक्तिप्रवण चित्त से अर्पित करता है उसके पुण्य का फल सुनो। वह एक हजार एक-सौ करोड़ कल्पों तक देवीलोक में निवास कर पृथिवी पर सार्वभौम राजा होता है। इसके बाद वह इच्छानुसार कैवल्य को प्राप्त करता है ॥ ४७-५४ ॥

केवलं नारिकेलाम्बु दत्त्वा देव्यै महेश्वरि।
अग्निष्टोमफलं लब्ध्वा नरलोके महीयते ॥ ५५ ॥
ग्राम्यारण्यैः फलैर्देवीं सकलैः परिपूजयेत्।
बलिप्रियं च नैवेद्यं कशेरुकविषादिकम् ॥ ५६ ॥
ऋते श्लेष्मातकं बिल्वं शौनकं च विशेषतः।
फलान्ययत्नपक्वानि निसर्गमधुराणि च ॥ ५७ ॥
सुपक्वानि सुगन्धीनि मनोहराणि यानि च।
एवमेतानि शस्तानि नान्यानि शुभदानि च ॥ ५८ ॥
सौवर्णे राजते वापि ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्यं त्रिपुराप्रियम् ॥ ५९ ॥

हे महेश्वरी! जो केवल नारियल का फल देवी के लिये अर्पित करता है। वह अग्निष्टोम का फल प्राप्त कर मनुष्य लोक में पूजित होता है। जङ्गली एवं ग्रामीण दोनों प्रकार के फलों से देवी की पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार कशेरू कमलनाल आदि बलिप्रिय पदार्थों से भी उनका अर्चन करना चाहिए। श्लेष्मातक (= लसोड़ा) बेल और शौनक (=?) को छोड़कर जो अन्य पके फल स्वभावतः मीठे होते हैं; सुपक्व सुगन्धित तथा मनोहारी होते हैं वे सब देवीपूजा के लिये प्रशस्त हैं। अन्य फल शुभङ्कर नहीं होते। त्रिपुरा के लिये प्रिय नैवेद्य को सोने चाँदी ताम्र या पत्थर के पात्र में या कमल के पत्ते पर देना चाहिये ॥ ५५-५९ ॥

नैवेद्यार्पणविधिः

निराच्छादं समालोक्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
वायुबीजेन संशोष्य संदहेद्वह्निना तथा ॥ ६० ॥
वारुणेन(स्व?सु)धावृ(त्या?ष्ट्या)प्लावयेद्धेनुमुद्रया।
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य मूलेनैवाभिषिच्य तु ॥ ६१ ॥
मूलदेव्याः स्वनामान्ते नैवेद्यमिति चोच्चरेत्।
गृहाण वह्निजायान्तो नैवेद्यमनुरीरितः ॥ ६२ ॥
अन्नं चतुर्विधं देवि रसैः षड्भिः समन्वितम्।

मया निवेदितं भक्त्या तदिदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६३ ॥
लेह्यचोष्यानुपानादिभक्ष्य(तोह्या? भोज्या)नि यानि च।
मयाहृतानि यत्नेन (रू?कृ)पया देवि भुज्यताम् ॥ ६४ ॥

नैवेद्य समर्पण की विधि—ढँके हुए नैवेद्य को खोलने के बाद उसको भक्ति और श्रद्धा से युक्त होकर देखना चाहिये । वायुबीज (= यं) से उसका संशोधन कर अग्निबीज (= रं) से उसकी अशुद्धियों को जला देना चाहिये । वरुणबीज (= वं) से उसको अमृत से प्लावित करे । इस क्रम में धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) से उसकी रक्षा कर मूलमन्त्र से उसका अभिषेचन करना चाहिये । प्रधान देवता का नाम लेकर 'नैवेद्यं गृहाण' कहकर वह्निजाया कहना चाहिये । यह नैवेद्य मन्त्र बतलाया गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ त्रिपुरसुन्दरि नैवेद्यं गृहाण स्वाहा) । इसके साथ ही निम्नलिखित श्लोक का भी उच्चारण करना चाहिये—'अन्नं चतुर्विधं......... भुज्यताम् ।' (हे देवि! भक्ष्य चोष्य लेह्य पेय रूप चार प्रकार का अन्न मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त भेद से से छह प्रकार के रसों से समन्वित कर मैने भक्ति के साथ आपको समर्पित किया । आप इसे लीजिये । लेह्य चोष्य अनुपानादि भक्ष्य भोज्य जो कुछ मैनें प्रयत्नपूर्वक आहृत किया है, हे देवि! कृपा कर उसे लीजिये) ॥ ६०-६४ ॥

आचमनम्

जातीलवङ्गकक्कोलवासितं स्वर्धुनीजलम् ।
मुखवासकरं पुण्यं गृहीत्वाचाम सुन्दरि ॥ ६५ ॥
मूलमन्त्रेण देवेशि हुनेत् पञ्चाहुतीः क्रमात् ।
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ॥ ६६ ॥
एतत्स्वरूपं जानीयादाहुतीनां च पञ्चकम् ।
पञ्चाङ्गुलीभिरेव स्यात् क्रमात् पञ्चाहुतीः प्रिये ॥ ६७ ॥
पुनराचमनं दत्त्वा मुखवासं निवेदयेत् ।

आचमन—आचमन के लिये निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—'जातीलवङ्ग. ....सुन्दरि ।' (जावित्री, लवङ्ग, कङ्कोल से वासित स्वर्गंगा का जल जो कि मुख को सुवासित करता है और स्वच्छ है, हे सुन्दरि! उसको लेकर आचमन करो) । हे देवेशि! मूलमन्त्र से क्रमशः पाँच आहुतियाँ देवी के मुँह में डालनी चाहिये । प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान आहुतियों के ये पाँच स्वरूप जानने चाहिये । (मन्त्र-स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

१. ऐं क्लीं सौः प्राणाय स्वाहा । २. ऐं क्लीं सौः अपानाय स्वाहा ।
३. ऐं क्लीं सौः व्यानाय स्वाहा । ४. ऐं क्लीं सौः उदानाय स्वाहा ।
५. ऐं क्लीं सौः समानाय स्वाहा ।)

हे प्रिये! इन पाँच आहुतियों को पाँच अङ्गुलियों से देना चाहिये । पुनः आचमन देकर मुखवास (= ताम्बूल आदि) प्रदान करना चाहिये ॥ ६५-६७- ॥

१५. ताम्बूलम्

ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६८ ॥
संस्कृत्य विविधैर्द्रव्यैर्गन्धवद्भिर्निवेदयेत् ।

१५. ताम्बूल—गन्ध से युक्त कपूर आदि से सुवासित गन्ध वाले अनेक द्रव्यों से सुसंस्कृत ताम्बूल देवी के लिये निवेदित करना चाहिये ॥ ६८- ॥

१६. नमस्कारः

स्तुवन् नानाविधैः स्तोत्रैर्भक्तिभावसमन्वितः ॥ ६९ ॥
प्रणमेत् परमेशानीं विधिना साधकोत्तमः ।
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ७० ॥
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः ।
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महोदयम् ॥ ७१ ॥
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते ।
नत्वा विजयते लोकान् नत्वा धर्मः प्रवर्तते ॥ ७२ ॥
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः ।
चतुर्वर्गं लभेद्भक्तो न चिरादेव साधकः ॥ ७३ ॥
नमस्कारो महायज्ञः प्रीतिदः सर्वतः सदा ।
नमस्कुरु महादेवीं प्रदक्षिणं च भक्तितः ॥ ७४ ॥
मनसापि महादेव्या यो भक्त्या कुरुते नतिम् ।
सोऽपि लोकान् विनिर्जित्य देवीलोके महीयते ॥ ७५ ॥

१६. नमस्कार—साधक भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर विधिपूर्वक स्तोत्रों का पाठ करते हुए आदरपूर्वक देवी को प्रणाम करें । देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और महात्मा लोग नमस्कार से प्रसन्न और सन्तुष्ट होते हैं । नमस्कार के द्वारा मनुष्य महान् उदय वाला चतुर्वर्ग प्राप्त करता है । सर्वत्र समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये नमस्कार की ही प्रशंसा की जाती है । नमस्कार कर मनुष्य सभी लोकों को जीत लेता है । नमस्कार से धर्म प्रवर्त्तित होता है।

नमस्कार से मनुष्य दीर्घायु और अविच्छिन्न सन्तान-परम्परा को प्राप्त करता है। भक्त साधक नमस्कार से शीघ्र ही चतुर्वर्ग प्राप्त करता है। नमस्कार सदा आनन्द देने वाला महायज्ञ बतलाया गया है। इसलिये महादेवी को भक्तिभाव से प्रणाम करो और भक्ति के साथ उनकी प्रदक्षिणा करो। जो भक्त साधक केवल मन से भी यदि देवी को नमस्कार करता है वह सर्व लोकों को जीत कर देवी लोक में पूजित होता है ॥ ६९-७५ ॥

नमस्कारभेदः

कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
नमस्काराश्च विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः ॥ ७६ ॥
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति सर्वतः ।
नमस्कारेषु सर्वेषु कायिकः प्रथमः स्मृतः ॥ ७७ ॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा संस्पृश्य शिरसा क्षि(त?ति)म् ।
क्रियते यो नमस्कारः स एव कायिकः स्मृतः ॥ ७८ ॥
पुटीकृत्य करौ शीर्षे नमस्कारः प्रदीयते ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ॥ ७९ ॥
जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकस्तु सः ॥ ८० ॥
पौराणिकैस्तान्त्रिकैर्वा मूलमन्त्रेण वा पुनः ।
प्रदक्षिणं प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधनम् ॥ ८१ ॥

नमस्कार के भेद—नमस्कार कायिक, वाचिक और मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है। इसका दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार है—उत्तम, मध्यम, अधम भेद से नमस्कार पुनः तीन प्रकार का होता है। कायिक नमस्कार से देवता सर्वदा प्रसन्न होते हैं। समस्त नमस्कारों में कायिक नमस्कार सर्वोत्तम माना गया है। उसका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—दोनों घुटनों को पृथिवी पर रखकर अपने शिर से धरती का स्पर्श करें। ऐसा जो नमस्कार किया जाता है वह कायिक नमस्कार होता है। दोनों हाथों को जोड़कर यदि शिर पर लगाया जाय और जानु तथा शिर से पृथिवी का स्पर्श न किया जाय तो वह अधम नमस्कार होता है। दोनों घुटनों से पृथिवी का स्पर्श न करते हुए केवल शिर से पृथिवी का स्पर्श मध्यम कोटि का नमस्कार होता है। चाहे पौराणिक हों या तान्त्रिक, उन सबको चाहिये कि वे धर्म, अर्थ की सिद्धि के लिये देवी की प्रदक्षिणा करें और उन्हें प्रणाम करें ॥ ७६-८१ ॥

प्रदक्षिणा

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिरः पुनः ।
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ८२ ॥
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा बर्तुलाकृति साधकः ।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥ ८३ ॥
अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
स सर्वकामानासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥

प्रदक्षिणा—दाँयें हाथ को फैलाकर स्वयं शिर को झुकाकर भक्ति-श्रद्धा से युक्त हो दाँयें पार्श्व को दिखलाता हुआ साधक गोलाई में एक बार जो घूमता है । वह प्रदक्षिणा कही जाती है जो देवसमूह को सन्तुष्ट करती है । जो मनुष्य देवी की एक-सौ आठ बार प्रदक्षिणा करता है वह इस लोक में समस्त कामनाओं को पूरा कर शरीरान्त में मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ८२-८४ ॥

नमस्कारः सप्तभेदः

त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्रं प्रदक्षिणम् ।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रं च सप्तधा नतिलक्षणम् ॥ ८५ ॥
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम् ।
ततोऽपि दक्षिणां(द?ग)त्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ॥ ८६ ॥
त्रिकोणाख्यो नमस्कारिस्त्रिपुराप्रीतिदायकः ।
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा वायव्याः शाम्भवीं तथा ॥ ८७ ॥
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाग्नौ प्रविश्य च ।
अग्नितो राक्षसीं गत्वा कौबेरीं च ततो विशेत् ॥ ८८ ॥
आग्नेयीं च ततो गत्वा नमस्कारः प्रकीर्तितः ।
षट्कोणाख्यो नमस्कारो दुर्गायाः प्रीतिदायकः ॥ ८९ ॥
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा तस्माद्व्यावृत्य दक्षिणम् ।
गत्वा योऽसौ नमस्कार सोऽर्धचन्द्रो मम प्रियः ॥ ९० ॥
नमस्कारेषु जानीयादासां प्राकृतमद्रिजे ।
त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद्गत्वा नमस्कृतः ॥ ९१ ॥
निपत्य दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन् च ।
तथैव दण्डवद् भूमौ दण्ड इत्युच्यते बुधैः ॥ ९२ ॥
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च ।
चक्षुषा वाथ कर्णाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रेण चैव हि ॥ ९३ ॥

तदष्टाङ्गमिति प्रोक्तं यद्भूमिं स्पृशते क्रमात् ।
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्या नमस्कृतेः ॥ ९४ ॥
स उग्र इति विज्ञेयो विष्णोस्तुष्टिप्रदायकः ।

नमस्कार के सात लक्षण—त्रिकोण षट्कोण अर्धचन्द्र प्रदक्षिण (= वर्त्तुल) दण्ड अष्टाङ्ग और उग्र सात प्रकार का नमस्कार होता है । १. दक्षिण दिशा से वायवी कोण उससे फिर ईशान कोण फिर वहाँ से दक्षिण दिशा में जाना—यह त्रिकोण वाला त्रिकोण नमस्कार है । यह त्रिपुरसुन्दरी को प्रसन्न करने वाला है । २. दक्षिण से वायव्य कोण, वायव्य से ईशान कोण, वहाँ से दक्षिण फिर दक्षिण से अग्निकोण अग्निकोण से नैर्ऋत्य कोण और फिर उत्तर दिशा उसके बाद अग्निकोण में जाना—यह षट्कोण नमस्कार है जो दुर्गा को प्रसन्न करता है । ३. दक्षिण से वायव्य कोण वहाँ से लौटकर दक्षिण यह अर्धचन्द्र नमस्कार है—यह मुझे प्रसन्न करता है । हे पार्वति! नमस्कारों में इन दिशाओं को प्रधान जानना चाहिये । ४. प्रदक्षिणा का वर्णन पहले किया जा चुका है । ५. अपने आसन को छोड़कर आसन के पीछे जाकर नमस्कार करना अर्थात् दण्ड की भाँति धरती पर लेटना और हृदय के साथ पुनः दण्ड की भाँति उठना यह विद्वानों के द्वारा दण्ड नमस्कार कहा जाता है । ६. चिबुक मुख नासिका हनु चक्षु कर्ण और ब्रह्मरन्ध्र से जो नमस्कार किया जाता है वह अष्टाङ्ग नमस्कार कहा जाता है । ७. साधक जो क्रम से भूमि का स्पर्श करता है जिस नमस्कार में ब्रह्मरन्ध्र का भूमि से स्पर्श होता है वह उग्र नमस्कार है जो विष्णु. को सन्तुष्ट करता है ॥ ८५-९४- ॥

यत् स्वयं गद्यपद्याभ्यां (ग?घ)टिताभ्यां नमस्कृतिः ॥ ९५ ॥
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमः स्मृतः ।
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा तान्त्रिकैः क्रियते नतिः ॥ ९६ ॥
स मध्यमो नमस्कारो भवेद्वाचनिकः सदा ।
परेषां गद्यपद्याभ्यां नमस्कारो यदा भवेत् ॥ ९७ ॥
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु सर्वतः ।
इष्ट(धामा?मध्या)निष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं भवेत् ॥ ९८ ॥
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ।
विविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः ॥ ९९ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे उपचारफलविधिनिरूपणं नाम
षोडशः पटलः सम्पूर्णः ॥ १६ ॥

मुख से गद्य पद्य के उच्चारण के द्वारा भक्तिपूर्वक जो नमस्कार किया जाता है वह उत्तम वाचिक नमस्कार है। पौराणिकों वैदिकों अथवा तान्त्रिकों के द्वारा जो प्रणाम किया जाता है वह मध्यम वाचिक नमस्कार होता है। दूसरों के द्वारा रचित गद्य पद्य से जो नमस्कार होता है वह नमस्कारों में अधम कहा गया है। मन यदि इष्ट मध्य और अनिष्ट में लगा है तब उत्तम मध्यम और अधम मानसिक नमस्कार होता है। कायिक वाचिक आदि तीनों नमस्कारों में कायिक नमस्कार सर्वोत्तम माना गया है ॥ ९५-९९ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में उपचारफलविधिनिरूपण नामक षोडश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

* * *

सप्तदशः पटलः

प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरूपणम्

श्रीदेव्युवाच—

प्रकटाद्याः कथं देव पूज्यन्ते परमेश्वर ।
तत् सर्वं कथयेशान मुद्राविरचनं तथा ॥ १ ॥

श्री देवी ने कहा—हे परमेश्वर! हे देव! प्रकटा आदि देवियों की पूजा कैसे की जाती है । हे ईशान! वह सब तथा मुद्रा आदि की रचना को बतलाइये ॥१॥

प्रकटादिपूजाविधिः

ईश्वर उवाच—

तास्तु प्रपूजयेद्भक्त्याः सृष्टिस्थितिलयक्रमैः ।
मोहनं क्षोभणं चक्रं दक्षवर्तक्रमाद्यजेत् ॥ २ ॥
वामावर्तक्रमेणैव शेषचक्राणि पूजयेत् ।
आरभ्य पश्चिमाद् देवि वायव्यन्तं समापयेत् ॥ ३ ॥
रश्मिवृन्दानि ते देवी पूजयामि विधानतः ।
आज्ञापय जगन्मातर्यत(स्त?स्त्व)मेव तानि(व?च) ॥ ४ ॥
कृताञ्जलिर्महेशानि देव्याज्ञां साधकोत्तमः ।
गृहीत्वा पूजयेत् तुष्टः प्रागुक्तक्रमयोगतः ॥ ५ ॥
पूजावरणशक्तीनां गन्धपुष्पाद्भिरक्षतैः ।
ज्ञानमुद्रान्वितैर्देवि तर्पणं तत्त्वमुद्रया ॥ ६ ॥

प्रकटा आदि की पूजा विधि—ईश्वर ने कहा—उन प्रकटा आदि देवियों की पूजा भक्ति के साथ सृष्टि स्थिति और प्रलय के क्रम से करनी चाहिये । मोहन और क्षोभण चक्रों की दक्षिणावर्त्त क्रम से पूजा करनी चाहिये । शेष चक्रों का यजन वामावर्त्त क्रम से करना चाहिये । हे देवि! पूजा का प्रारम्भ पश्चिम दिशा से

करने के बाद उसका अन्त वायव्य कोण में करना चाहिये । पूजा के लिये अनुज्ञा निम्नलिखित मन्त्र से लेनी चाहिये । मन्त्र—'रश्मिवृन्दानि........तानि च ।' (हे देवि! तुम्हारे रश्मिसमूहों की मैं विधान के साथ पूजा करने जा रहा हूँ । हे जगन्माता! आप इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये क्योंकि तुम्हीं रश्मिसमूह हो) ।

हे महेशानि! साधकोत्तम हाथ जोड़कर देवी की आज्ञा लेकर सन्तोष के साथ पूर्वोक्त क्रम से आवरण शक्तियों की पूजा गन्ध पुष्प जल अक्षत से ज्ञानमुद्रा का प्रदर्शन करते हुए करे । इसके पश्चात् तत्त्वमुद्रा से उनका तर्पण करे ॥ २-६ ॥

महायोगीश्वरादिनां ध्यानं तन्मन्त्राश्च

महायोगीश्वरं देवं योगिनं करुणामयम् ।
वारुणं पूर्वमुद्धृत्य दक्षकर्णेन्दुभूषितम् ॥ ७ ॥
बुद्धाय नम इत्युक्त्वा पूजयेज्जगदीश्वरम् ।
पश्चिमादिचतुर्दिक्षु पूजयेद(नि?णि)मादिकाः ॥ ८ ॥
वायव्यादिषु कोणेषु वशित्वप्रमुखा(न्?खाः) यजेत् ।
प्राप्तिसिद्धिमधोभागे सर्वकामां तथोद्र्ध्वके ॥ ९ ॥
मायालक्ष्मीसमायोगं कृत्वा पूर्वं महेश्वरि ।
तथैव सिद्धिशब्दान्ते श्रीपादुकां ततो वदेत् ॥ १० ॥
पूजयामीति मनुना पूजयेदुक्तमार्गतः ।
तथा द्वितीयरेखायां ब्रह्माण्याद्याः प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥
असिताङ्गं रुरुं चैव चण्डं क्रोधं तथैव च ।
उन्मत्तं च तथा देवि भैरवं च कपालिनम् ॥ १२ ॥
भीषणं चैव संहारं ताभिः सह प्रपूजयेत् ।

महायोगीश्वर आदि का ध्यान और उनके मन्त्र—आवरण की प्रथम पंक्ति में सर्वप्रथम करुणामय देव महायोगीश्वर की पूजा करनी चाहिये । उनकी पूजा के मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—पहले वारुण बीज को उद्धृत कर उसे दक्षकर्ण इन्दु से भूषित करना चाहिये । फिर 'बुद्धाय नमः' कहकर महायोगीश्वर की पूजा करनी चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—बुं बुद्धाय नमः) ।

पश्चिम आदि चार दिशाओं में अणिमा आदि (= महिमा लघिमा गरिमा) की पूजा करनी चाहिये । वायव्य आदि चार कोणों में वशित्व आदि (= ईशित्व) की अर्चना करनी चाहिये । प्राप्ति सिद्धि को अधोभाग में तथा सर्वकामत्व को उसके ऊर्ध्व भाग में पूजित करना चाहिये । इस पूजा-क्रम में पहले माया एवं लक्ष्मी

बीजों का योग कर हे महेश्वरि! फिर 'सिद्धि' शब्द के अन्त में 'श्रीपादुकां' कहना चाहिये । अन्त में 'पूजयामि' यह मन्त्र है । (मन्त्र-स्वरूप इस प्रकार है—

१. ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
२. ह्रीं श्रीं महिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. ह्रीं श्रीं लघिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. ह्रीं श्रीं गरिमासिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. ह्रीं श्रीं वशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. ह्रीं श्रीं ईशित्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. ह्रीं श्रीं प्राप्तिसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. ह्रीं श्रीं सर्वकामत्वसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।)[1]

दूसरी पंक्ति में ब्रह्माणी आदि की पूजा करनी चाहिये । (इस क्रम में ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही माहेन्द्री चामुण्डा और महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये ।) इनके साथ आठ भैरवों की पूजा सम्पन्न करनी होती है । भैरवों के नाम इस प्रकार हैं—१. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार ॥ ७-१२- ॥

सर्वसङ्क्षोभिणीमुख्यास्तथा तृतीयरेखगाः ॥ १३ ॥
करशुद्धिकरीं पूर्वे पूजयेच्चक्रनायिकाम् ।
दक्षिणे पूजयेद् देव्या मुद्रां सङ्क्षोभकारिणीम् ॥ १४ ॥
अ(नि?णि)मां पूजयेद्वामे बुद्धं तस्याः पुरः पुनः ।

तीसरी रेखा में सर्वसङ्क्षोभिणी आदि की अर्चना करनी चाहिये । (सर्वसङ्क्षोभिणी आदि के नाम इस प्रकार हैं—१. सर्वसङ्क्षोभिणी, २. सर्वविद्राविणी, ३. सर्वाकर्षिणी, ४. सर्ववशङ्करी, ५. सर्वोन्मादिनी, ६. सर्वमहाङ्कुशा, ७. सर्वखेचरी, ८. सर्वयोनि और सर्वत्रिखण्डा) । इसमें सबसे पहले इस चक्र की नायिका करशुद्धिकरी की पूजा करनी चाहिये । फिर देवी के दाँयें सङ्क्षोभकारिणी मुद्रा की पूजा करनी होती है । बाँयीं ओर अणिमा की और देवी के सामने बुद्ध की पूजा की जाती है ॥ १३-१४- ॥

मध्यमे मध्यतः कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठ(बो?रो)धिते ॥ १५ ॥

---

[1] यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक चक्र में आवरण पूजा के बाद चक्र नायक या चक्रनायिका की पूजा अवश्यकरणीय होती है ।

तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसङ्क्षोभकारिणी ॥ १६ ॥
(खा? था)न्तं वह्निसमारूढं द्वितीयस्वरभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजं तस्याः प्रकीर्तितम् ॥ १७ ॥
आदाय दक्षहस्तेन विशेषार्घ्योदकं ततः ।
बीजद्वयं समाभाष्य तथैताः प्रकटास्ततः ॥ १८ ॥
योगिन्यश्च समुद्राश्च ससिद्धयश्च सायुधाः ।
तथा सपरिवाराश्च सर्वोपचारकैस्तथा ॥ १९ ॥
त्रैलोक्यमोहने चक्रे त्रिपुराधिष्ठिते तथा ।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु देव्या हस्ते निवेदयेत् ॥ २० ॥
एवमखिलचक्रस्थयोगिनीनां महौजसाम् ।
यथाव(दह? दुक्त)वाक्येन चक्रपूजां निवेदयेत् ॥ २१ ॥
मायालक्ष्मीकलाभिस्ता नित्याः कलाः प्रपूजयेत् ।

(अब सर्वसङ्क्षोभिणी मुद्रा का स्वरूप बतलाते हैं—) दोनों मध्यमा अङ्गुलियों को बीच में कर दोनों कनिष्ठाओं को अङ्गूठों से अवरुद्ध करना चाहिये । दोनों तर्जनियों को दण्ड के समान सीधी रखकर मध्यमा के ऊपर दोनों अनामिकाओं को रखना चाहिये । यह प्रथम मुद्रा सर्वसङ्क्षोभकारिणी नाम वाली है । उसका बीज इस प्रकार हैं—थान्त अर्थात् द, वह्नि = र पर आरूढ और द्वितीय स्वर से भूषित, नाद बिन्दु कला से युत हो तो वह इसका बीज 'द्रां' कहा गया है । दोनों हाथ से अर्घ्योदक लेकर बीज को दो बार कहकर फिर 'एताः प्रकटाः' इसके बाद 'योगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः' तथा 'सपरिवाराः सर्वोपचारकैः' एवं 'त्रैलोक्यमोहनचक्रे- त्रिपुराधिष्ठिते' फिर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर देवी के हाथ में उस अर्घ्य का निवेदन करे ।

(अर्घ्यमन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—द्रां द्रां एताः प्रकटाः योगिन्यः समुद्राः ससिद्धयः सपरिवाराः सर्वोपचारकैस्त्रैलोक्यमोहनचक्रे त्रिपुराधिष्ठिते पूजितास्तर्पिताः सन्तु) ।

इस प्रकार सम्पूर्ण चक्र में स्थित अत्यन्त ओजस्विनी योगिनियों की पूर्वोक्त वाक्य से चक्रपूजा करनी चाहिये ॥ १५-२१- ॥

ब्रह्मणोध्यानं तन्मन्त्रश्च

ब्रह्मा कमण्डलुधरश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ॥ २२ ॥
राजहंससमासीनः प्रांशुस्तुङ्गांस उन्नतः ।

सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणे च सरस्वती ॥ २३ ॥
सर्वे देवाः स्थितास्त्वग्रे वेदाः सर्वेऽग्रतः स्थिताः ।
वर्णेन रक्तगौराङ्गौ जपमा(न?ला)लसत्करः ॥ २४ ॥
वराभयप्रदो देवः सर्वलोकपितामहः ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मणे नम आलिखेत् ॥ २५ ॥
अनेन मनुना देवि ब्रह्माणं परिपूजयेत् ।
बालया योजितां कृत्वा पूजयेच्चक्रनायिकाम् ॥ २६ ॥
दर्शयेद् (भा?द्रा)विणीं मुद्रां तत्तद्बीजपुरस्कृताम् ।
(खा?था)न्तं वह्निसंमारूढं तुर्यस्वरविभूषितम् ॥ २७ ॥
नादबिन्दुकलायुक्तं द्राविणीबीजमुत्तमम् ।
सर्वसङ्क्षोभमुद्राया मध्यमे स(व?र)ले यदा ॥ २८ ॥
क्रियते परमेशानि सर्वविद्राविणी तदा ।

ब्रह्मा का ध्यान और उनका मन्त्र—उन नित्याओं की माया (= ह्रीं) लक्ष्मी (= श्रीं) कला (= ईं) बीजों से पूजा करनी चाहिये । ब्रह्मा का स्वरूप इस प्रकार है—वे कमण्डलु लिये हुए हैं । उनकी चार भुजायें हैं । चार मुख भी हैं । वे हंस पर बैठे हैं । वे लम्बी भुजा, ऊँचे कन्धे वाले तथा ऊँचे आकार वाले हैं । उनके बाँयें पार्श्व में सावित्री दाँयें सरस्वती हैं । सारे देव सारे वेद उनके सामने स्थित हैं । उनका रंग गोरा है । उनके हाथ में जपमाला है । वे वरद एवं अभय मुद्रा धारण किये है । वे देव सारे लोकों के पितामह हैं । ब्रह्मा की पूजा का मन्त्र इस प्रकार है—पहले प्रणव फिर बाद में 'ब्रह्मणे नमः' कहना चाहिये अर्थात् ॐ ब्रह्मणे नमः । हे देवि! इस मन्त्र से ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये । बाला बीज से योजित कर चक्रनायिका की पूजा करनी चाहिये । द्राविणी मुद्रा[1] का प्रदर्शन करना चाहिये । द्राविणी बीज का उद्धार—थान्त = द, वह्निबीज = र के ऊपर आरुढ होकर चतुर्थ स्वर = ईं से विभूषित तथा नाद बिन्दु कला से युक्त द्राविणी बीज होता है = द्रीं । सर्वसङ्क्षोभिणी मुद्रा की दोनों मध्यमा अङ्गुलियाँ जब सरल अर्थात् सीधी कर दी जाँय तो हे परमेशानि! यह सर्वविद्राविणी मुद्रा होती है । ब्रह्मा की उन कलाओं के साथ पूजा का मन्त्र इस प्रकार है—

१. ओं ह्रीं श्रीं ईं कं सृष्ट्यै नमः । २. ओं ह्रीं श्रीं ईं खं ऋद्ध्यै नमः ।
३. ओं ह्रीं श्रीं ईं गं स्मृत्यै नमः । ४. ओं ह्रीं श्रीं ईं घं मेधायै नमः ।

---

[1] एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियेते परमेशानि तदा विद्राविणी भवेत् ॥
एतस्याः = सर्वसङ्क्षोभकारिण्याः ।

५. ओं ह्लीं श्रीं ईं ङं कान्त्यै नमः । ६. ओं ह्लीं श्रीं ईं चं लक्ष्म्यै नमः ।
७. ओं ह्लीं श्रीं ईं छं द्युत्यै नमः । ८. ओं ह्लीं श्रीं ईं जं स्थिरायै नमः।
९. ओं ह्लीं श्रीं ईं झं स्थित्यै नमः । १०. ओं ह्लीं श्रीं ईं ञं सिद्ध्यै नमः।

इसके पश्चात् 'ॐ हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् नृषद् वाजिसद् ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् नमः'— उपरोक्त मन्त्र का पाठ कर 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से ब्रह्मा की पूजा सम्पन्न करनी चाहिये ॥ २२-२८- ॥

उमामहेश्वरध्यानतन्मन्त्रश्च

शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ २९ ॥
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगतं सदा ।
संश्लिष्यन्तमुमां देवीं चामरोत्पलधारिणीम् ॥ ३० ॥
द्विभुजां स्वर्णगौराङ्गीं सौम्यातिसौम्यरूपिणीम् ।
लीलारविन्दं(रा?वा)मे(ण?न)पाणिना बिभ्रतीं सदा ॥ ३१ ॥
शुक्लं तु चामरं (द?धृ)त्वा शिवस्याङ्गेऽथ दक्षिणे ।
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं तिष्ठन्तीं परिचिन्तयेत् ॥ ३२ ॥
त्रैलोक्यजननीं देवीं त्रैलोक्यजनकं शिवम् ।
उमामहेश्वरं ध्यात्वा मोहयेज्जगतीमिमाम् ॥ ३३ ॥
कामं शक्रं यथाकाशं तुरीयमनुभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं द्वयं बीजं तयोः क्रमात् ॥ ३४ ॥
उमाङेन्ता तथा ङेन्तो महेश्वरो हृद (म्वि?न्वि)तः ।
मन्त्रराजः समाख्यातश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ३५ ॥
अनेन तौ समभ्यर्च्य सर्वसङ्क्षोभके ततः ।

उमामहेश्वर का ध्यान और उनका मन्त्र—उमामहेश्वर का ध्यान इस प्रकार है—वे शुद्ध स्फटिक के समान, पाँच मुखों तथा तीन नेत्रों वाले हैं । व्याघ्रचर्म के ऊपर स्थित कमल पर पद्मासन लगाकर बैठे हैं । उनके साथ चामर और रक्त कमल धारण करने वाली द्विभुजा, स्वर्ण गौराङ्गी अत्यन्त सौम्य रूप वाली उमा बाँयें हाथ में सदा लाल कमल ली हुई, दाँयें हाथ में शुक्ल वर्ण का चामर लेकर शिव के दाँयें अङ्ग पर अपना दाँयाँ हाथ रखकर बैठी हुई है । इस प्रकार का ध्यान करना चाहिये । इस रूप में त्रैलोक्यजननी और त्रैलोक्यजनक उमामहेश्वर का ध्यान कर साधक इस संसार को सम्मुग्ध कर देता है ।

उमामहेश्वर के पूजा-मन्त्र का उद्धार इस प्रकार बतलाया गया है—काम = अ, शक्र = ल, आकाश = ह को चतुर्थमन्त्र = फट् से भूषित कर उन दोनों के बीज को नादबिन्दु कला से युक्त कर ङेऽन्त 'उमा' और ङेऽन्त 'महेश्वर' के बाद हृदय मन्त्र कहना चाहिये। यह मन्त्रराज चतुर्वर्गफल देने वाला कहा गया है।

(मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—अं लं हं ईं ऐं फट् उमायै महेश्वराय नमः)।

इस मन्त्र से दोनों अर्थात् उमामहेश्वर की सर्वसङ्क्षोभण चक्र में पूजा करनी चाहिये ॥ २९-३५- ॥

अनङ्गकुसुमादीनांपूजनम्

अनङ्गकुसुमां पूर्वे कवर्गेणैव पूजयेत् ॥ ३६ ॥
चवर्गेण च देवेशि दक्षिणेऽनङ्गमेखलाम्।
अनङ्गमदनां देवि टवर्गेण च पश्चिमे ॥ ३७ ॥
तवर्गेणोत्तरे भागे पूजयेन्मदनातुराम्।
तथैवानङ्गरे(खासु? खां तु) पवर्गेण हुताशने ॥ ३८ ॥
यवर्गेण च देवेशि नैर्ऋतेऽनङ्गवेगिनी(म्)।
शवर्गेण च वायव्येऽनङ्गाङ्कुशां च पूजयेत् ॥ ३९ ॥
लक्षाभ्यां परमेशानि ईशे चानङ्गमालिनीम्।
प्रोक्तस्थाने समावाह्य पूजयेच्चक्रनायिकाम् ॥ ४० ॥
कामबीजं पुरस्कृत्य मुद्रां संदर्शयेत् ततः।
मध्यमानामिकाभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ॥ ४१ ॥
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षकारिणी ॥ ४२ ॥

अनङ्गकुसुमा आदि का पूजन—उक्त पूजन करने के बाद चक्र के पूर्व भाग में अनङ्गकुसुमा की कवर्ग का उच्चारण करते हुए पूजा करनी चाहिये। हे देवेशि! चवर्ग से दक्षिण में अनङ्गमेखला की पूजा करनी चाहिये। हे देवि! पश्चिम में टवर्ग से अनङ्गमदना का पूजन करना चाहिये। उत्तर भाग में तवर्ग से मदनातुरा की तथा पवर्ग से अग्निकोण में अनङ्गरेखा की पूजा करनी चाहिये। हे देवेशि! यवर्ग से नैर्ऋत कोण में अनङ्गवेगिनी की तथा शवर्ग से वायव्य कोण में अनङ्गाङ्कुशा की अर्चना करनी चाहिये। हे परमेशानि! ह क्ष से ईशानकोण में अनङ्गमालिनी का अर्चन करना चाहिये। उक्त चक्र में चक्रनायिका षोडशी अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करना चाहिये। कामबीज (= क्लीं) का उच्चारण कर

आकर्षिणी मुद्रा से पूजा की जाती है । आकर्षिणी मुद्रा[1] का स्वरूप यह है— मध्यमा और अनामिका से कनिष्ठा और अनामिका को समान स्थिति में रखे । हे परमेश्वरि! दोनों मध्यमा को अङ्कुशाकार रूपा रखे । यह आकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्य का आकर्षण करने वाली होती है । (उपर्युक्त आठ शक्तियों की पूजाविधि निम्नलिखित है—

१. ओं ह्रीं श्रीं ईं कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ओं ह्रीं श्रीं ईं चं छं जं झं ञं अनङ्गमेखलादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ओं ह्रीं श्रीं ईं टं ठं डं ढं णं अनङ्गमदनादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ओं ह्रीं श्रीं ईं तं थं दं धं नं अनङ्गमदनातुरादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ओं ह्रीं श्रीं ईं पं फं बं भं मं अनङ्गरेखादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ओं ह्रीं श्रीं ईं यं रं लं लं वं अवङ्गवेगिनीदेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ओं ह्रीं श्रीं ईं शं षं सं हं अनङ्गाकुशादेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ओं ह्रीं श्रीं ईं ळं क्षं अनङ्गमालिनीदेवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।)

अन्त में पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये—ह्रीं श्रीं ईं एता गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसङ्क्षोभणचक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तिकाः सवाहनाः सपरिवाराः सम्पूजिताः सन्तर्पिता स्तिष्ठन्तु नमः)[2] ॥ ३६-४२ ॥

---

[1] मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अङ्कुशाकाररूपाभ्या मध्यमे परमेश्वरि ॥
अङ्गुष्ठं तु नियुञ्जीत कनिष्ठानाभिकोपरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी मताः ॥

[2] इसके पश्चात् चक्र नायिका की पूजा करनी चाहिये । ग्रन्थं विस्तार के भय से इसका वर्णन यहाँ नहीं दिया जा रहा ।

भास्करपूजनम्

सर्वसौभाग्यदे चक्रे भास्करं परिचिन्तयेत् ।
पद्मरागप्रतीकाशं किरीटाङ्गदभूषणम् ॥ ४३ ॥
पद्मासनसमासीनं स्वशक्त्यालिङ्गितं विभुम् ।
दधानं बाहुभिर्देवं रक्तपद्मे वराभयौ ॥ ४४ ॥
प्रागुक्तेन तु मन्त्रेण भास्करं परिपूजयेत् ।
सम्प्रदायाः प्रपूज्यैव पूजयेच्चक्रनायिकाम् ॥ ४५ ॥
वारुणं चेन्द्रबीजस्थं (दक्ष?वाम)कर्णविभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजं वश्यकरं महत् ॥ ४६ ॥
पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यङ्कुशरूपिणी ।
परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ॥ ४७ ॥
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके अ(?ह्य)पि ।
संयोज्य निविडाः कार्याः सर्वा अङ्गुष्ठदेशतः ॥ ४८ ॥
मुद्रैषा परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ।

भास्कर-पूजन—इसके बाद सर्वसौभाग्यप्रद चक्र में भास्कर का ध्यान करना चाहिये । भास्कर का स्वरूप इस प्रकार है—वे पद्मराग के समान हैं । किरीट और अङ्गद का आभूषण धारण किये हैं । पद्मासन पर बैठे हुए वे अपनी शक्ति के द्वारा अलिङ्गित हैं । अपनी चारों भुजाओं में दो लाल कमल और वरद एवं अभय मुद्रा धारण किये हैं । पूर्वोक्त मन्त्र से भास्कर का पूजन करना चाहिये । सम्प्रदायों की पूजा कर चक्रनायिका की पूजा करनी चाहिये । वारुण बीज = क, इन्द्रबीज = ल के साथ वामकर्ण = ई से विभूषित होते हुए नादबिन्दु कला से युक्त हो तो वह 'क्लीं' महावशीकरण मन्त्र होता है । दोनों हाथों को पुटक अर्थात् दोना के आकार का बनाकर तर्जनी को अङ्कुश के रूप में टेढी कर मध्यमाओं को उलट कर उसके नीचे ले जाँय । उसी क्रम से हे देवि! अनामिका और अङ्गुष्ठा को ले जाँय और सबको सटाकर अङ्गूठे से जोड़ दें । हे परमेशानि! यह सर्ववशङ्करी मुद्रा होती है । (इस मुद्रा को दिखाकर सूर्य की उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । पूजा का मन्त्र इस प्रकार है—

१. ओं ह्रीं श्रीं ईं कं भं तपिन्यै नमः ।

२. ओं ह्रीं श्रीं ईं खं बं तापिन्यै नमः ।

३. ओं ह्रीं श्रीं ईं गं फं धूम्रायै नमः ।

४. ओं ह्रीं श्रीं ईं घं पं मरीच्यै नमः ।

५. ओं ह्रीं श्रीं ईं ङं नं ज्वालिन्यै नमः ।
६. ओं ह्रीं श्रीं ईं चं धं रुच्यै नमः ।
७. ओं ह्रीं श्रीं ईं छं दं सुषुम्णायै नमः ।
८. ओं ह्रीं श्रीं ईं जं थं भोगदायै नमः ।
९. ओं ह्रीं श्रीं ईं झं तं विश्वायै नमः ।
१०. ओं ह्रीं श्रीं ईं ञं णं बोधिन्यै नमः।
११. ओं ह्रीं श्रीं ईं टं ढं धारिण्यै नमः ।
१२. ओं ह्रीं श्रीं ईं ठं डं क्षमायै नमः ।) ॥ ४३-४८- ॥

विष्णोर्ध्यानं तन्मन्त्रश्च

सर्वार्थसाधके चक्रे बाह्ये दशारके ततः ॥ ४९ ॥
मणिमयम(हद्? हा)रत्नपङ्कजेऽतिमनोहरे ।
पीठे तस्मिन्निविष्टस्य प्रद्योतनशतद्युतेः ॥ ५० ॥
तप्तकाञ्चनवर्णा(भावनतो? भवैनते)यस्य पार्वति।
आसीनमुन्नतांसे च विष्णुं विद्रुमसन्निभम् ॥ ५१ ॥
स्ववामोरुगतां पद्मां श्लिष्यन्तमरुणेक्षणम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं (च?स)स्मितं चारुभूषणम् ॥ ५२ ॥
शङ्खचक्रगदापद्मं दधानं बाहुभिः सदा ।
चिन्तयित्वा महेशानि पूजयेज्जगदीश्वरम् ॥ ५३ ॥
मन्त्रम(स्याः?स्य)प्रवक्ष्यामि चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
कामबीजं समुद्धृत्य हृषीकेशमतः परम् ॥ ५४ ॥
ङेन्तं च नतिसंयुक्तमनेन तं प्रपूजयेत् ।

विष्णु का ध्यान और उनका मन्त्र—इसके पश्चात् बाह्य दशकोण वाले सर्वार्थसाधक चक्र में विष्णु का ध्यान करना चाहिये । भगवान् विष्णु, अत्यन्त मनोहारी मणिमय महारत्न से निर्मित कमल वाला जो पीठ है उस पर सौ विद्युत् के समान कान्तिमय तप्त स्वर्ण के समान रंग वाले वैनतेय अर्थात् गरुड के उन्नत एवं पुष्ट कन्धों पर बैठे हुए हैं । उनका वर्ण विद्रुम के समान है । अपनी बाँयीं जाँघ पर बैठी हुई पद्मा का वे आलिङ्गन किये हुए हैं । उनकी आँखें लाल हैं । उन्होंने पीत वस्त्र धारण कर रखा है । मन्द मुस्कान के साथ वे सुन्दर आभूषण भी धारण किये हैं । चारों भुजाओं में सदा शङ्ख चक्र गदा और कमल लिये रहते हैं । हे महेशानि! इस प्रकार जगदीश्वर का ध्यान कर उनका उनकी

कलाओं के साथ पूजन करना चाहिये । अब मैं इनका चतुर्वर्गप्रदायक मन्त्र बतला रहा हूँ । कामबीज (= क्लीं) का उच्चारण कर 'हृषीकेश' को नति के साथ कहना चाहिये । (= क्लीं हृषीकेशाय नमः) । (विष्णु की कलाओं का पूजन क्रम इस प्रकार है—

१. ओं ह्रीं श्रीं ईं टं जरायै नमः । २. ओं ह्रीं श्रीं ईं ठं पालिन्यै नमः ।

३. ओं ह्रीं श्रीं ईं डं शान्त्यै नमः । ४. ओं ह्रीं श्रीं ईं घं पं मरीच्यै नमः।

५. ओं ह्रीं श्रीं ईं णं रत्यै नमः । ६. ओं ह्रीं श्रीं ईं तं कामिकायै नमः।

७. ओं ह्रीं श्रीं ईं थं वरदायै नमः । ८. ओं ह्रीं श्रीं ईं दं ह्लादिन्यै नमः ।

९. ओं ह्रीं श्रीं ईं धं प्रीत्यै नमः । १०. ओं ह्रीं श्रीं ईं नं दीर्घान्यै नमः ।

इसके बाद ॐ प्रतद् विष्णुस्तवते वीर्याय मृगो न भीमो कुचरो गिरिष्ठाः यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा क्लीं हृषीकेषाय नमः से विष्णु का पूजन करना चाहिये) ॥ ४९-५४- ॥

चक्रनायिकापूजनम्

कुलकौलः प्रपूज्यैव पूजयेच्चक्रनायिकाम् ॥ ५५ ॥
सर्वोन्मादकरीं मुद्रां दर्शयेद्बीजपूर्विकाम् ।
ससर्गो भृगुरेतस्या बीजमेतदुदाहृतम् ॥ ५६ ॥
सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे ।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ॥ ५७ ॥
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम्ना क्लेदिनी सर्वयोषिताम् ॥ ५८ ॥

चक्रनायिका पूजन—इस प्रकार विष्णु का पूजन कर कौलामार्गी चक्रनायिका का पूजन करना चाहिए । इस क्रम में पहले बीज का उच्चारण कर उसके बाद सर्वोन्मादकरी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । विसर्ग के सहित भृगु (= सः) इसे उन्मादिनी मुद्रा का बीज कहा गया है । दोनों हाथों को सामने कर कनिष्ठायें मध्यमा के मध्य में हों, अनामिकायें सीधी खड़ी हो । दोनों तर्जनियाँ उसके बाहर हों । इसके बाद दोनों अङ्गूठे दण्डाकार होकर मध्यमा के नख के पास हों तो यह मुद्रा उन्मादिनी नाम से जानी जाती है । यह समस्त स्त्रियों को रोमाञ्चित कर द्रवित करने वाली होती है ॥ ५५-५८ ॥

त्रैलोक्यमोहनविष्णोर्ध्यानतन्मन्त्रश्च

सर्वरक्षाकरे चक्रे तथान्तर्दशकोणके ।
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं ध्यायेद्बन्धूकसन्निभम् ॥ ५९ ॥
ज(वा?पा)कुसुमसङ्काशं दाडिमीकुसुमप्रभम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं रत्नसिंहासनेऽम्बुजे ॥ ६० ॥
पद्मासनसमासीनं भुजैश्चतुर्भिरायतैः ।
पाशाङ्कुशौ च दधतं पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम् ॥ ६१ ॥
अरुणायतलोलाक्षियुगलं मदघूर्णितम् ।
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यं किरीटाङ्गदभूषितम् ॥ ६२ ॥
रक्तमालाम्बरधरं रक्तगन्धानुलेपिनम् ।

त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान और उनका मन्त्र—भीतर दश कोण वाले सर्वरक्षाकर चक्र में त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान करना चाहिये । उनका वर्ण बन्धूक, जवाकुसुम, दाडिमी पुष्प या उगते हुए सूर्य के समान है । रत्नजटित सिंहासन के ऊपर कमल पर वे पद्मासन लगाकर बैठे हुए हैं । लम्बी चार भुजाओं से पाश, अङ्कुश, पुष्पबाण और ईख का धनुष धारण किये हुए हैं । दोनों आँखें लाल तथा चञ्चल हैं । मद के कारण वे घूर रहे हैं । समस्त श्रृङ्गार के वेष से सुशोभित हैं । मुकुट और अङ्गद नामक आभूषण पहने हुये हैं । रक्तवर्ण की माला और रक्तवस्त्र धारण किये हुए हैं । रक्त गन्ध और रक्त अनुलेप लगाये हुए हैं ॥ ५९-६२- ॥

स्ववामोरुगतां शक्तिं श्लिष्यन्तीं दक्षपाणिना ॥ ६३ ॥
वामेन पाणिना पद्मं धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।
रुचिराङ्गदभूषाढ्यां शुद्धक्षौमविराजिताम् ॥ ६४ ॥
मदनोत्तप्तहृदयां क्लिद्यद्योनिं परमेश्वरीम् ।
कलाकलितम(ा)धु(रां?र्या)तरुणीं यौवनान्विताम् ॥ ६५ ॥
सकार्मुकभुजेनैव श्लिष्यन्तं सुदृढं तथा ।
त(र्ज?ज्ज)नितपरानन्दनन्दितं परमेश्वरम् ॥ ६६ ॥
नागगन्धर्वदेवानामङ्ग(ला?ना)भिः समावृतम् ।
मदनोल्ललिताङ्गाभिर्भूषिताभिर्विभूषणैः ॥ ६७ ॥
आत्म(ा)भेदेन यो ध्यायेद् देवदेवं जगद्गुरुम् ।
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं त्रैलोक्यमोहनो भवेत् ॥ ६८ ॥

शक्ति को अपनी बाँयीं जाँघ पर बैठाये हुए हैं । वह शक्ति दाँयें हाथ से

उनको आलिङ्गित कर रखी है । मन्द मुस्कान वाली वह बाँयें हाथ से कमल ली हुई है । वह शक्ति अर्थात् लक्ष्मी भी रमणीय अङ्गद नामक भूषण से समृद्ध है । शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण करने के कारण विशेष रूप से शोभायमान हो रही है । वह परमेश्वरी काम से उत्तप्त हृदय वाली है तथा कामोत्तप्त होने से उसकी योनि द्रवित हो रही है । कला के चलते अत्यन्त मधुर वह शक्ति तारुण्य और यौवन से युक्त है । कार्मुक लिये हाथ से विष्णु भी उस शक्ति का दृढ़ आलिङ्गन कर रहे हैं । उस आलिङ्गन से जन्य परम आनन्द से वे आनन्दित हैं । नागों गन्धर्वों और देवताओं की स्त्रियों से वे आवृत हैं। वे स्त्रियाँ काम के कारण उल्लसित तथा आभूषणों से अलङ्कृत अङ्गों वाली हैं। ऐसे देवाधिदेव जगद्गुरु त्रैलोक्यमोहनविष्णु का जो अपने से अभिन्न रूप से ध्यान करता है वह त्रैलोक्यमोहन हो जाता है ॥ ६३-६८ ॥

बीजमस्य प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।
ब्रह्मा पुरन्दरः पश्चान्मायास्वरमतः परम् ॥ ६९ ॥
श्रुतिषु मथितसारंदेवताकण्ट(हारकं?कारिं)
त्रिभुवनवशकारं श्री धनाद्यर्थकारम् ।
शमनभयविनाशं सर्वशङ्काप्रपाशं
भवजलधिविशोषं मानसां(न्ध?न्ध्य)प्रकाशम्॥ ७० ॥

अब मैं उनका नारायणात्मक बीज बतलाऊँगा । ब्रह्मा = क, पुरन्दर = ल, उसके बाद मायास्वर = ईं को नाद आदि से विभूषित कर विष्णुबीज होता है । यह है—क्लीं । इस बीज का उच्चारण कर निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिये—'श्रुतिषु मथितसारं............प्रकाशम् । (वेदों को मथकर उसका सार ग्रहण करने वाले, देवताओं के काँटों के शत्रु, त्रिभुवन को वश में करने वाले, लक्ष्मी और धन ऐश्वर्य देने वाले, शत्रुओं के भय को नष्ट करने वाले, समस्त शङ्काओं के विनाशक, संसाररूपी सागर को सोखने वाले तथा मनोगत अन्धकार को दूर कर प्रकाश देने वाले विष्णु का ध्यान करना चाहिये) ॥ ६९-७० ॥

निगर्भयोगिनीपूजनम्

अनेन तं समभ्यर्च्य निग(र्व?र्भ)योगि(नीं?नीः)यजेत् ।
नायिकां तत्र सम्पूज्य मुद्रां सन्दर्शयेत् तथा ।
त(स्माद?स्यास्त्व)नामिकायुग्ममधःकृत्वाङ्कुशाकृति ॥ ७१ ॥
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इयं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिका ॥ ७२ ॥
कामदेवोऽग्निमारूढो बिन्दुनादकलान्वितः ।

त्रयोदशस्वरोपेतो मुद्राबीजमितीरितम् ॥ ७३ ॥

निगर्भ योगिनी पूजन—उपर्युक्त मन्त्र से त्रैलोक्यमोहन विष्णु का पूजन कर निगर्भयोगिनियों की पूजा करनी चाहिये । वहाँ चक्रनायिका का पूजन कर महाङ्कुशा मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । महाङ्कुशा मुद्रा का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—दोनों अनामिकाओं को नीचे अङ्कुश के आकार का बनाना चाहिये । उसी क्रम से दोनों तर्जनियों को भी लगाना चाहिये । यह महाङ्कुशा मुद्रा होती है जो समस्त कार्यों की साधिका कही गयी है । इसका बीज इस प्रकार बतलाया गया है—कामदेव = क अग्नि पर आरूढ हो और बिन्दु नाद कला से युक्त हो तथा त्रयोदश स्वर = ओं से विभूषित हो तो वह = 'क्रों' उक्त मुद्रा का बीज होता है ॥ ७१-७३ ॥

रहस्ययोगिनीपूजनम् (क)

अष्टकोणे महेशानि रहस्ययोगिनीर्यजेत् ।
वशिनीप्रमुखाः सर्वाः पूर्ववद्बीजसंयुताः ॥ ७४ ॥
पादुकां पूजयामीति न्यासादेव विशेषतः ।
चक्रेश्वरीं यजेच्छक्तिं(भ? भु)क्तिसिद्धिं च वामतः ॥ ७५ ॥
त(दङ्के? द्दक्षे) खेचरीमुद्रां तां च संदर्शयेत् ततः ।
सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं वामदेशतः ॥ ७६ ॥
बाहुं कृत्वा महेशानि हस्तौ सम्परिवर्त्य च ।
कनिष्ठानामिके देवि यु(क्ता? क्त्वा) तेन क्रमेण तु ॥ ७७ ॥
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ।
अङ्गुष्ठौ च महेशानि कारयेत् सरलाविह ॥ ७८ ॥
इयं सा खेचरी मुद्रा नाम्ना सर्वोत्तमा प्रिये ।
रचितेयं महामुद्रा सर्वतेजोपहारिणी ॥ ७९ ॥
शिवं चन्द्रं तथा कान्तं पान्तं वह्निसमन्वितम् ।
एकादशस्वरोपेतं बीजं तस्याः प्रकीर्तितम् ॥ ८० ॥

रहस्य योगिनी पूजन (क)—हे परमेशानि! अष्टकोण वाले चक्र में रहस्ययोगिनियों का अर्चन करना चाहिये । समस्त वशिनी आदि को पूर्व की भाँति बीज से संयुक्त कर बाद में 'पादुकां पूजयामि' से पूजा करनी चाहिये । न्यास करने के बाद चक्रेश्वरी शक्ति को बाँयें और भुक्तिसिद्धि को दाँये पूजित करना चाहिये । फिर उसे खेचरी मुद्रा दिखानी चाहिये । खेचरी मुद्रा का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—बाँयें हाथ को दाँये और दाँयें हाथ को बाँयें कर

हे महेशानि! हाथों को उल्टा रखना चाहिये । उसी क्रम से कनिष्ठा और अनामिका को जोड़कर दोनों तर्जनियों से उसे दबाना चाहिये । दोनों मध्यमाओं और अङ्गूठों को सबसे ऊपर सीधा रखना चाहिये । हे प्रिये! इस प्रकार यह खेचरी नामक मुद्रा बतलायी गयी है । यह सर्वतेजोपहारिणी महामुद्रा है । इसका बीज इस प्रकार कहा गया है—शिव = ह, चन्द्र = स, कान्त = ख, पान्त = फ को अग्नि = र से युक्त करें । ग्यारहवें स्वर को जोड़ने पर ह्स्ख्फ्रें यह बीज बनता है ॥ ७४-८० ॥

रहस्ययोगिनीपूजन (ख)

मध्यत्रिकोणचक्रे च अग्रदक्षोत्तरे शिवे ।
ता एव पूजयेद्देवि विन्यासोक्तविधानतः ॥ ८१ ॥
पादुकां पूजयामीति विशेषोऽत्र प्रकाशितः ।
त्रिपुरा(पां?म्बां)तु चक्रेशी मिच्छासिद्धिं च वामतः ॥ ८२ ॥
परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत् ततः ॥ ८३ ॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥ ८४ ॥
बीजमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका ।
सदाशिवस्य बीजाढ्या दर्शयित्वा विधानतः ॥ ८५ ॥

रहस्य योगिनीपूजन (ख)—हे शिवे! हे देवि! मध्य त्रिकोण चक्र में आगे और दाँयें उन्हीं की न्यासोक्त विधान के अनुसार 'श्रीपादुकां पूजयामि' कहकर पूजा करनी चाहिये । त्रिपुराम्बा चक्रेश्वरी तथा इच्छासिद्धि की सामने बाँयें ओर पूजा करनी चाहिये । यहाँ बीज मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । उसका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—हे प्रिये! दोनों हाथों को परिवर्त्तित कर तर्जनी और अङ्गूठा को एक साथ अर्धचन्द्र की आकृति का बनाना चाहिये । दोनों मध्यमाओं को नीचे कनिष्ठाओं से बाँध देना चाहिये । दोनों अनामिकाओं को उसी प्रकार टेढ़ी कर सबसे नीचे लगानी चाहिये । यह बीज मुद्रा सर्वोत्कृष्ट और तीनों लोकों की माता है । इसको दिखाने के पहले सदाशिव बीज = ह्सौः का उच्चारण करना चाहिये ॥ ८१-८५ ॥

चक्रेश्वरीपूजनम्

सर्वानन्दमये चक्रे ब्रह्मविष्णवीशरूपिणीम् ।
पूजयित्वा विधानेन चक्रेशीमपि भैरवीम् ॥ ८६ ॥

ज्ञानेच्छादिक्रियारूपां मोक्षसिद्धिं च वामतः ।
सिंहं च पुरतो देव्या जगदाधारमर्चितम् ॥ ८७ ॥
पूजयेत् सततं भक्त्या पश्यन्तमम्बिकामुखम् ।
वाग्बीजं पूर्वमुद्धृत्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ८८ ॥
अनामिकायुगं देवि परिवर्तनयोगतः ।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां तर्जनीभ्यां तु धारयेत् ॥ ८९ ॥
मध्यमे कुरु तन्मध्ये कनिष्ठिके तथाविधे ।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ कनिष्ठोपरिसंस्थितौ ॥ ९० ॥
योनिमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका ।

चक्रेश्वरी का पूजन—सर्वानन्दचक्र में ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपिणी, चक्रेश्वरी, भैरवी की विधिपूर्वक पूजा सम्पादित कर इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूपा मोक्षसिद्धि की बाँयीं ओर पूजा सम्पन्न करनी चाहिये । देवी के सामने पूज्य जगदाधार सिंह जो कि निरन्तर देवी का मुँह देख रहा है, की भक्ति के साथ पूजा करनी चाहिये । पहले वाग्बीज 'ऐं' को उद्धृत कर योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । योनिमुद्रा का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—हे देवि! दोनों अनामिकाओं को परिवर्त्तन के साथ अङ्कुशाकार तर्जनियों से पकड़ना चाहिये । मध्यमाओं और कनिष्ठिकाओं को उनके मध्य में लगाना चाहिये । दोनों अङ्गूठे कनिष्ठाओं के ऊपर दण्ड के आकार में सीधे रखे हों । यह योनिमुद्रा परात्रैलोक्यमातृका कही गयी है ॥ ८६-९०- ॥

अत्रपदं समाभाष्य सर्वानन्दमयात् ततः ॥ ९१ ॥
चक्रराजपदस्यान्ते ब्रह्मस्वरूपमालिखेत् ।
संवि(देत्य?न्मय)पदं ब्रूयाद्बिन्दुचक्रे ततः परम् ॥ ९२ ॥
एषा परापरशब्दाद्रहस्ययोगिनी ततः ।
ब्रह्मस्वरूपिणी पश्चान्महात्रिपुरसुन्दरी ॥ ९३ ॥
समुद्रा सायुधा चैव सवाहना तथैव च ।
तथा सपरिवारान्ते सर्वोपचारकैस्तथा ॥ ९४ ॥
पूजितास्तु तथा देवी तर्पितास्त्विति पूर्ववत् ।
पुष्पाञ्जलिभिरभ्यर्च्य तर्पयेद्विधिना ततः ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रम-निरूपणं नाम सप्तदशः पटलः सम्पूर्णः ॥ १७ ॥

* * *

हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर पहले 'अत्र' पद फिर 'सर्वानन्दमय' के बाद 'चक्रराज' पद के पश्चात् 'ब्रह्मस्वरूप' कहना चाहिये । 'संविन्मय' पद कहकर फिर 'बिन्दुचक्रे' उसके बाद 'एषा परापर' शब्द के पश्चात् 'रहस्ययोगिनी' उसके बाद 'ब्रह्मस्वरूपिणी' पश्चात् 'महात्रिपुरसुन्दरी समुद्रा सायुधा सवाहना' तथा 'सपरिवारा' के अन्त में 'सर्वोपचारकै' के बाद 'पूजिताऽस्तु देवी तर्पिताऽतु (नमः)' कहकर पुष्पाञ्जलि से पूजा कर विधिपूर्वक तर्पण करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप इस प्रकार है—अत्र सर्वानन्दमयचक्रराजब्रह्मस्वरूपसंविन्मयबिन्दुचक्रे एषा परापररहस्ययोगिनी ब्रह्मस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी समुद्रा सायुधा सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारकैः पूजिताऽस्तु तर्पिताऽस्तु नमः) ॥ ९१-९५ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रम-निरूपण नामक सप्तदश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

* * *

अष्टादशः पटलः

जपादिविधिनिरूपणम्

जपस्य माहात्म्यादिकम्

ईश्वर उवाच—

प्रसादसुमुखीं देवीं भाववान् प्रजपेन्मनुम् ।
सर्वयज्ञेषु सर्वत्र जपयज्ञः प्रशस्यते ॥ १ ॥
जपात्तुष्यन्ति देवाश्च जपात् सिध्यन्ति साधकाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जपनिष्ठापरो भवेत् ॥ २ ॥
जपः स्यादक्षरावृत्तिरद्रुतं न विलम्बितम् ।
पूजा ध्यानं जपो होम इति धर्मचतुष्टयम् ॥ ३ ॥
प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति।
जपस्यान्ते शिवं ध्यायेद् ध्यानस्यान्ते पुनर्जपेत् ॥ ४ ॥
जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति मन्त्रवित् ।
जपरूपा सदा शक्तिर्ध्यानरूपः सदा शिवः ॥ ५ ॥
तयोर्योगाद्भवेत् सिद्धिर्नान्यथा खलु पार्वति ।
संयुक्तं संयुतं कृत्वा यदयुक्तं न योजयेत् ॥ ६ ॥
यथासिद्धिस्तथा माला मालाङ्गं जपकर्मणि ।
मालया जपतो नित्यं सिद्धिरेव न संशयः ॥ ७ ॥

जप का माहात्म्य आदि—ईश्वर ने कहा—कृपा एवं प्रसन्नता से सुन्दर मुखवाली देवी के प्रति भक्तिभाव से पूर्ण होकर साधक को उसके मन्त्र का जप करना चाहिये । सारे यज्ञों में जप यज्ञ की सर्वत्र प्रशंसा की जाती है । जप से देवता सन्तुष्ट होते हैं । जप से साधकों को सिद्धि मिलती है । इसलिये सब प्रकार का प्रयास कर जप के प्रति निष्ठावान् होना चाहिये । अक्षरों को बार-बार आवृत्त करना जप कहलाता है । इसे न तो बहुत जल्दी-जल्दी और न बहुत धीमे-धीमे करना चाहिये । यदि साधक सिद्धि चाहता है तो उसे पूजा ध्यान जप

और होम इन चारों धर्मों को नित्य स्वयं करना चाहिये । मन्त्रवेत्ता को चाहिये कि वह जप के अन्त में शिव का ध्यान करे और ध्यान के अन्त में पुनः जप करे । इस प्रकार जप और ध्यान में लगा हुआ वह शीघ्र सिद्धि को प्राप्त करता है । शक्ति सदा जपरूपा है । शिव सदा ध्यान रूप हैं । उन दोनों अर्थात् शक्ति और शिव अथवा जप और ध्यान के योग से ही हे पार्वति! सिद्धि मिलती है अन्य उपायों से नहीं । जो युक्तियुक्त अर्थात् समीचीन है उसे जप में जोड़ना चाहिये, जो अयुक्त है उसको नहीं जोड़ना चाहिये । जिस प्रकार की इष्टसिद्धि करनी हो उस प्रकार की माला होनी चाहिये । जप कर्म में माला मुख्य अङ्ग होता है । माला से जप करने वाले को सदा सिद्धि मिलती है इसमें सन्देह नहीं ॥ १-७ ॥

मालास्वरूपवर्णनम्

आशुसिद्धिकरी माला वर्णमयी समीरिता ।
अनुलोमविलोमार्णैर्मातृकाद्यैः सबिन्दुकैः ॥ ८ ॥
(सु?स)मेरुकैः सदा कार्या माला सर्वसमृद्धि(जसः?दा) ।
अष्टाधि(के?का)ष्टवर्गैस्तु पुनरेव समापयेत् ॥ ९ ॥
वर्णेनान्तरितमस्त्रं कृत्वा ज(प्येत?पेत्तु)साधकः ।
मालाभावे ततः स्वासु अङ्गुलीषु जपेद्बुधः ॥ १० ॥
नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।
आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षि(णे?ण्ये)न वै क्रमात् ॥ ११ ॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेन्नवसु पर्वसु ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये जो जपेत् (तन्त्र?मति)मान्नरः ॥ १२ ॥
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ।
अनामामध्यपर्वं तु मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत् ॥ १३ ॥
मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन्नानामामूलपर्वतः ।
अङ्गुलीर्नापर्वभिर्मन्त्रं जपन् रेखां न संस्पृशेत् ॥ १४ ॥
अङ्गुलीर्नापयुञ्जीत किंचिदाकुञ्चिता (ः)तले ।
अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेण (श्र?स्त्र)वते जपः ॥ १५ ॥
स्फटिकादिभिरप्यत्र माला जपसमृद्धिदा ।

माला का स्वरूप—वर्णमयी अर्थात् आदि क्षान्त माला शीघ्र सिद्धि प्रदान करती है । बिन्दुसहित मातृकाओं को अनुलोम[1] विलोम[2] क्रम से सुमेरु के साथ

---

[1] अं से लेकर क्षं तक अनुलोम क्रम होता है ।
[2] क्षं से लेकर अं तक विलोम क्रम होता है ।

माला बनानी चाहिये । ऐसी माला सब प्रकार की समृद्धि देती है । आठों वर्गों[१] के आठ अक्षरों को अधिक जोड़ कर माला को समाप्त करना चाहिये । साधक वर्ण से अस्त्र (= फट्) को सम्पुटित कर जप करे । विद्वान् साधक माला के अभाव में अपनी अङ्गुलियों पर जप करे । कराङ्गुलियों पर नित्य जप ही करना चाहिये, काम्य जप को अंगुलियों पर कभी नहीं करना चाहिये । करमाला जप का स्वरूप बतलाते हैं—अनामिका के मध्य से आरम्भ कर प्रदिक्षण क्रम से तर्जनी के मूलपर्यन्त दश पर्वों पर जप करना चाहिये । जो बुद्धिमान् मनुष्य तर्जनी के अग्रभाग तथा मध्य में जप करता है उसके आयु विद्या यश और बल ये चारों नष्ट हो जाते हैं । अनामिका के मध्यपर्व को सुमेरु मानकर उसका लङ्घन नहीं करना चाहिये । सुमेरु की प्रदक्षिणा करते हुए अनामिका के मूलपर्व से अङ्गुलियों के पर्वों से मन्त्र का जप करता हुआ जापक अङ्गुलियों की रेखाओं का स्पर्श न करे । अङ्गुलियों को कुछ मोड़ तक तल से जोड़े रहना चाहिये । यदि अङ्गुलियाँ अलग-अलग हो जाँयगी तो छिद्र के माध्यम से जप नीचे चला जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है । स्फटिक आदि की माला भी जप की समृद्धि को बढ़ाती है ॥ ८-१५- ॥

मालायाःपूजनादिकम्

निधाय पुरतो मालां सव्यहस्तगतां च वा ॥ १६ ॥
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ।
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥
ऐं मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ १८ ॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीरोचनागुरुकुङ्कुमैः ।
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षपाणिना ॥ १९ ॥

माला की पूजा इत्यादि—जप करने से पहले माला को किसी आसन पर अपने सामने या बाँयें हाथ में रखकर प्रयत्नपूर्वक जल से प्रोक्षण करे । माला का प्रोक्षण इष्ट मन्त्र से करने का विधान है ।

माला की प्रार्थना—ऐं मां.......................................भव ॥ (हे माले! हे महामाये! हे सर्वशक्तिस्वरूपिणी! चारों वर्ग तुम्हारे अन्दर निहित है । इस कारण आप मुझे सिद्धि देने वाली हो जाओ) । इस मन्त्र से प्रार्थना कर कपूर चन्दन कस्तूरी गोरोचन अगर कुङ्कुम से माला की पूजा कर उसे दाँयें हाथ में लेना चाहिये ॥ १६-१९ ॥

---

[१] अवर्ग कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग पवर्ग यवर्ग और शवर्ग ये आठ वर्ग होते हैं ।

बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन तु ॥ २० ॥
यथा हस्तान्न च्यवते जपतः (श्र?स्र)क् तथाचरेत् ।
हस्ताच्च्युतायां विघ्नं स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत् ॥ २१ ॥
यत्नात् सङ्गोपयेदेनां भ्रमयेन्न वि(धा?धू)नयेत् ।
गुरुं प्रकाशयेन्नैव यन्त्रं मन्त्रं कदाचन ॥ २२ ॥
अक्षमालां च मुद्रां च गुरवेऽपि न दर्शयेत् ।
भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ २३ ॥
हरन्ति प्रकटं यस्मात् तस्माद्गुप्तं जपेत् सदा ।
मालां स्वहृदयासन्नां दक्षिणस्य करस्य च ॥ २४ ॥
मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वा तु तर्जनीम् ।
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभागतः ॥ २५ ॥
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ।
प्रत्येकं बीजमादाय कुर्याद्वामेन न स्पृशेत् ॥ २६ ॥

पहले गणपति के बीज = गं का उच्चारण कर उसके बाद 'अविघ्नं कुरु माले त्वं' कहकर दाँयें हाथ में माला लेनी चाहिये । माला हाथ से छूटकर कभी गिरे नहीं ऐसी सावधानी वर्त्तनी चाहिये । हाथ से माला के गिरने पर विघ्न और जप करते समय टूट जाने पर मृत्यु होती है अतः यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये । न तो इसे घुमाना चाहिये और न हिलाना डुलाना चाहिये । यन्त्र और मन्त्र गुरु को भी नहीं बतलाना चाहिये । अक्षमाला और मुद्रा गुरु को भी नहीं दिखलानी चाहिये । माला के खुली रहने पर भूत राक्षस बेताल सिद्ध गन्धर्व चारण आदि जप का हरण कर लेते हैं इसलिये जप को गोपनीय ढङ्ग से करना चाहिये । माला को दाँयें हाथ में लेकर हृदय के पास रखना चाहिये । तर्जनी को छोड़ मध्यमा के मध्य भाग में अनामिका कनिष्ठा को संयुक्त रखकर अनामिका कनिष्ठा को झुकाकर अङ्गूठे के अग्रभाग से माला के प्रत्येक दाने को घुमाना चाहिये । बाँयें हाथ से माला का कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिये ॥ २०-२६॥

प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं न चालयेत् ।
तर्जन्या न स्पृशेन्मालां मुक्तितो गणनाक्रमः ॥ २७ ॥
अङ्गुष्ठपर्वमध्यस्थापरिवर्त्तं समाचरेत् ।
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं भवति निष्फलम् ॥ २८ ॥
अङ्गुष्ठेन(?ष्ठं) मोक्षदं देवि तर्जनी शत्रुनाशिनी ।
मध्यमा धनसिद्धौ स्याच्छान्तिकर्मण्यनामिका ॥ २९ ॥

कनिष्ठाकर्षणे ज्ञेया जपकर्मणि सिद्धिदा ।
मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ॥ ३० ॥
पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजं तु संस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन भवेत्त(स्य?त्र) निष्फलस्तस्य तज्जपः ॥ ३१ ॥
किटिशब्दान्विता माला च्छिन्नभिन्नापि वा भवेत् ।

प्रत्येक बार मन्त्र का मन में धीरे-धीरे उच्चारण करना चाहिये । आठों को नहीं हिलाना चाहिये । तर्जनी से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिये । माला के पूरी होने से गणना होती है । अङ्गूठे के पर्व के मध्य में रखकर माला को घुमाना चाहिये । कोई भी जपकर्म अङ्गूठे के बिना किये जाने पर निष्फल होता है । हे देवि! अङ्गूठा मोक्षप्रद है और तर्जनी शत्रुनाशिनी है । मध्यमा धन की सिद्धि देती है । शान्ति कर्म में अनामिका का प्रयोग विहित है । आकर्षण में कनिष्ठा के प्रयोग को जानना चाहिये । इस प्रकार जप कर्म में तत्तत् अङ्गुलियाँ भिन्न-भिन्न सिद्धि देती हैं । माला के दानों पर जप करना चाहिये । परस्पर स्पर्श नहीं करना चाहिये । पहले बीज पर जप करता हुआ जो मनुष्य दूसरे बीज का भी अङ्गूठे से स्पर्श कर लेता है उसका वह जप वहाँ निष्फल हो जाता है । यदि जपते समय माला से किट-किट शब्द होता है या माला छिन्न-भिन्न होती है तो भी जप निष्फल हो जाता है ॥ २७-३१- ॥

जपप्रक्रियावर्णनम्

वामोरौ दक्षपादं च विन्यस्य परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
बद्धवीरासनो मन्त्री दिशश्चानवलोकयन् ।
गुरुदैवतमन्त्राणा(मेकं?मैक्यं) सम्भावयन् धिया॥ ३३ ॥
अथवा चिन्तयेन्मूर्ध्नि गुरुं वर्णादिभेदतः ।
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा चिन्तयन् हृदि देवताम् ॥ ३४ ॥
निगदेनोपांशुना वा(?थ) मानसेनाथवा प्रिये ।
जपारम्भं सुधीः कुर्याद् देवताभावतत्परः ॥ ३५ ॥
निःशङ्कः परमेशानि स्पष्टवाचा निगद्यते ।
अव्यक्तः प्रस्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्तितः ॥ ३६ ॥
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम् ।
उच्चरेदनुसंस्मृत्य स(भ?प्रो)क्तो मानसो जपः ॥ ३७ ॥

जप की प्रक्रिया—हे परमेश्वरि! बाँयीं जाँघ पर दाहिने पैर को रखकर मन्त्रजापक वीरासन पर बैठे । दिशाओं को न देखे । मन में गुरु मन्त्रदेवता एवं

मन्त्र की एकता का ध्यान करता हुआ जप करे । अथवा गुरु का मस्तक के ऊपर ध्यान करे । मन्त्र का अलग-अलग वर्णों के साथ कण्ठ में ध्यान करे । देवता का हृदय में चिन्तन करे । हे प्रिये! विद्वान् देवताभाव में तत्पर होकर मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण अथवा अस्पष्ट उच्चारण करे अथवा मन में जप करे । हे परमेशानि! स्पष्ट वाणी से होने वाला जप निःशङ्क कहलाता है । जो अव्यक्त हो केवल मुँह से फुसफुसा कर किया जाय वह उपांशु कहा जाता है । वर्ण स्वर पद वाली अक्षरश्रेणी का स्मरण कर मन में जो उच्चारण होता है वह मानस जप कहा गया है ॥ ३२-३७ ॥

सौषुम्नाध्वन्युच्चरितं ध्वनिमात्रं विभावयेत् ।
मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि च विभावयन्॥ ३८ ॥
तामेव परमे व्योम्नि परमामृतबृंहितः ।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ॥ ३९ ॥
मनः संहृत्य विषयान्म(द्र?न्त्रा)र्थगतमानसः ।
न द्रुतं न विलम्बं च जपेन्मौक्तिकपङ्क्तिवत् ॥ ४० ॥
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने ।
उपांशूच्चारणेनैव तुल्यं भवति शैलजे ॥ ४१ ॥
उपांशुलक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे ।
मानसोच्चारणात्तुल्यमेकेन वरवर्णिनि ॥ ४२ ॥

मन्त्र के विषय में भावना करनी चाहिये कि वह सुषुम्ना मार्ग में केवल ध्वनि के रूप में उच्चरित हो रहा है । मन्त्र के अक्षर चित्शक्ति में विलीन हो गये हैं । उस चित्शक्ति को परमव्योमन् में विलीन हुई ध्यान कर साधक परम अमृत से आप्लावित होकर पूजा होम आदि के विना भी चित्शक्ति के साथ तादात्म्य की भावना करता है । मन को विषयों से दूर हटाकर मन्त्र के अर्थ की भावना करता हुआ साधक न शीघ्र और न विलम्बित गति से मोती के दाने के समान जप करे । हे वरानने! स्पष्ट बोलकर जो जप किया जाता है उसकी एक लाख संख्या हे शीलजे! उपांशु उच्चारण के एक (माला) जप के तुल्य होती है । हे कमलेक्षणे! उपांशु जप का एक लाख हे वरवर्णिनि! मानस जप के एक (माला) के तुल्य होता है ॥ ३८-४२ ॥

विशेषात् त्रिपुरातन्त्रे प्रशस्तो मानसो जपः ।
मनसा च स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा जपेन्मनुम् ॥ ४३ ॥
उभयं निष्फलं तस्य भिन्नभाण्डोदकं यथा ।
उत्तमो दशसाहस्रः सहस्रो मध्यमः स्मृतः ॥ ४४ ॥

अधमस्तु विजानीयादष्टोत्तरशतं शिवे ।
इतो न्यूनं महेशानि न शस्तं जपकर्मणि ॥ ४५ ॥
यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः ।
असंख्यातं च(स?य)ज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ४६ ॥
गृह्णन्ति राक्षसा (ये?ते)न गणयेत् सर्वथा बुधः ।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा ॥ ४७ ॥

त्रिपुरा तन्त्र में मानस जप की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है । यदि कोई मन से स्तोत्र का स्मरण करता है अथवा वाणी के द्वारा जप करता है । उसका यह दोनों कार्य उसी प्रकार निष्फल होता है जैसे फूटे घड़े में पानी डालना । किसी भी मन्त्र का प्रतिदिन दश हजार जप उत्तम माना जाता है । एक हजार जप मध्यम कोटि का होता है । हे शिवे! मन्त्र का एक-सौ आठ बार जप अधम होता है । हे महेशानि! इससे कम जप की प्रशंसा नहीं की गयी है । साधक को चाहिये कि वह अपने सामर्थ्य के अनुसार गणना कर जप करे । जो जप बिना गणना के होता है वह निष्फल होता है । उस अगणित जप को राक्षस ले लेते हैं, इसलिये विद्वान् को चाहिये कि वह जप की गणना अवश्य करे । एक वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिये ॥ ४३-४७ ॥

अप्रावृतको वापि शिरसा प्रावृतोऽपि वा ।
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो वापि त्वरान्वितः ॥ ४८ ॥
निर्बोधोऽप्रीतचित्तो न न रुग्णो न क्षुधान्वितः ।
तथा चान्यन्मना भूत्वा प्रलपन्न जपेन्मनुम् ॥ ४९ ॥
अनासीनः शयानो वा गच्छन् भुञ्जान एव च ।
यथाविधि जपं कृत्वा मन्त्रेणार्घ्योदकेन च ॥ ५० ॥
जपं तं च महादेव्या वामहस्ते समर्पयेत् ।
तेजोरूपं जपफलं शिवया स्वीकृतं स्मरेत् ॥ ५१ ॥
श्रीबीजेनैव पाणिभ्यामवता(रार्ण?र्य स्व-)शीर्षतः ।
सारस्वतेन बीजेन हस्ताभ्यां स्थापयेत् ततः ॥ ५२ ॥
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरियं प्रिये ।
एवं यः कुरुते मालां जाप्यं च साधकः प्रिये ॥ ५३ ॥
स प्राप्नोतीप्सितं देवि हीनस्यायुर्विपर्ययः ।

शरीर को बिना ढँके अर्थात् नग्न होकर अथवा शिर को ढँक कर जप नहीं करना चाहिये । चिन्ता से व्याकुल चित्त वाला, क्रुद्ध अथवा जल्दबाजी में जप नहीं करना चाहिये । अवबोधशून्य, दुःखी मन वाला, रोगी और भूखा रह कर

जप नहीं करना चाहिये । अन्यमनस्क होकर, बीच-बीच में बात करते हुए, विना बैठे, सोते हुए, चलते और खाते हुए जप नहीं करना चाहिये । विधि के अनुसार जप करने के बाद उसी मन्त्र से विशेषार्घ्य के जल से उस किये गये जप का महादेवी के बाँयें हाथ में समर्पण करना चाहिये । जप का तेजोरूप फल शिवा ने स्वीकार कर लिया; साधक को ऐसा ध्यान करना चाहिये । जप करने के बाद और देवी को समर्पण करने से पहले माला को गले में डाल लेना चाहिये । समर्पण के बाद श्रीबीज (= श्रीं) से माला को शिर से उतार कर सारस्वत बीज (= ऐं) का उच्चारण करते हुए माला को दोनों हाथों से उचित स्थान में रख देना चाहिये । हे प्रिये! जपकर्म में माला के विषय में यह ज्ञान की बात है । जो साधक इस प्रकार की माला से उक्त विधि के साथ जप करता है वह अभीष्ट फल को प्राप्त करता है । जो उक्त विधि से हीन होता है उसकी आयु क्षीण होती है ॥ ४८-५३- ॥

ओंकारसहितजपविधानम्

निःसेतुं च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति ॥ ५४ ॥
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति(नं? म)न्त्रिणाम्।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु सर्वे वर्णा द्विजादयः ॥ ५५ ॥
पार्श्वयोः सेतुमाद(ध्यात्? ध्युः) जपकर्मणि साधकाः।
अकारं चाप्युकारं च मकार च प्रजापतिः ॥ ५६ ॥
वेदत्रयात् समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा ।
जपादौ जपकर्मान्ते प्रणवं सेतुरूपकम् ॥ ५७ ॥
नियोजयेन्महेशानि सर्वकार्यार्थसिद्धये ।

ओंकार सहित मन्त्र के जप का विधान—जिस प्रकार बाँध न रहने पर पानी एक क्षण में नीचे चला जाता है । उसी प्रकार मन्त्रियों का मन्त्र भी बिना सेतु के एक क्षण में क्षीण हो जाता है । इस कारण द्विज आदि सभी वर्णों के साधक जप कर्म में दोनों पार्श्व में सेतु का आधान करें । प्राचीन काल में प्रजापति ने तीनों वेदों से अकार उकार और मकार को उद्धृत कर प्रणव का निर्माण किया । हे महेशानि! इसलिये जापक को चाहिये कि वह सर्वकार्य की सिद्धि के लिये जप के आदि और अन्त में प्रणव को जोड़े ॥ ५४-५७- ॥

होमस्यवश्यकरणीयता

जपान्ते जुहुयादग्निं दशांशं जपमानतः ॥ ५८ ॥
तत्तु देव्याः पुरोभागे साधकः परमेश्वरीम् ।

होमयेत् संस्कृते वह्नौ तत्र देवीं धिया स्मरन् ॥ ५९ ॥
इदं तस्यै समाभाष्य मूलमन्त्रेण सुन्दरि ।
स्वाहान्तेन च होतव्यं पायसैर्मधुराप्लुतैः ॥ ६० ॥
व्यस्ताव्यस्तं ततो हुत्वा सम्भवे चान्यदेवताः ।
षडाहुतीः षडङ्गेन नित्यहोमोऽयमीरितः ॥ ६१ ॥
एकतः सर्वकर्माणि चैकतो जपहो(नधे?मकम्) ।
सर्वाधिकं होमकर्म होमात् किंवा न साध्यते ॥ ६२ ॥
अनया दीक्षितो मन्त्रो यदि होमविवर्जितः ।
त्रिविधं दुखमाप्नोति नित्यहोमपरो भवेत् ॥ ६३ ॥

होम को अवश्य करना चाहिये—जप के अन्त में साधक जप के परिमाण के दशांश से हवन करे । यह होम देवी के विग्रह के सामने उनका ध्यान करते हुए संस्कारसम्पन्न अग्नि में करना चाहिये । हे सुन्दरि! मूलमन्त्र का उच्चारण कर 'इदं पायसं तस्यै स्वाहा' कहकर हवन करना चाहिये । इस होम का द्रव्य शर्करा मधु आदि मधुर से मिश्रित खीर होनी चाहिये । मुख्य होम के बाद अन्य देवतायें यदि वहाँ हों तो उनके लिये अलग-अलग या एक तन्त्रेण षडङ्ग से आहुतियाँ देनी चाहिये । इसे नित्य होम कहा जाता है । एक ओर सारे कर्म और दूसरी ओर जप का होम; दोनों की तुलना में होम अधिक महत्त्व का होता है । होम से क्या सिद्ध नहीं होता अर्थात् सब कुछ मिल जाता है । त्रिपुरसुन्दरी के द्वारा दीक्षित, मन्त्र यदि होम से रहित है अर्थात् त्रिपुरा देवी की दीक्षा में प्रदत्त मन्त्र का जप करने के बाद यदि होम नहीं किया गया तो ऐसा करने वाला जापक द्रैहिक दैविक और भौतिक तीनों प्रकार का दुःख प्राप्त करता है । इसलिये होम कार्य को नित्य करना चाहिये ॥ ५८-६३ ॥

अकुर्वतामग्निहोत्रमग्निर्भूत्वा महेश्वरी ।
धनानि शीघ्रं ग्रसति गृहक्षेत्रपशूनपि ॥ ६४ ॥
बहुदुःखेनार्जितानि संचितान्यचिरेण तु ।
आत्मप्राणाधिकान्याशु भू(ताग्नि?त्वाग्निः)ग्रसतीश्वरी ॥ ६५ ॥
अग्निहोत्रं सदा कुर्यात् (त?य)स्मादग्निमयीश्वरी ।
अग्निहोत्रविधानेन सम्पदां भाजनं भवेत् ॥ ६६ ॥
अग्निहोत्रपरस्येह वह्निर्भवति शीतलः ।
गृहक्षेत्रादिवित्तेषु वर्धते जाठरः परः ॥ ६७ ॥
अग्निरेव मुखं देव्यास्तस्मादग्नौ हुनेत् सदा ।
पक्षतो मासतो वापि वर्षतो वा यथाविधि ॥ ६८ ॥

जो लोग होम नहीं करते परमेश्वरि त्रिपुरसुन्दरी ऐसे लोगों के लिये अग्नि बनकर बहुत कष्ट उठाकर इकट्ठा किये गये उनके धन गृह खेत पशु को शीघ्र जला देती है । अपने प्राणों से भी अधिक धन धान्य को ईश्वरी अग्नि बनकर ग्रस लेती है । साधक अग्नि होम कर्म कर सम्पत्तियों का स्वामी हो जाता है । जो व्यक्ति अग्निहोत्र करता है उसके लिये अग्नि शीतल हो जाता है । जो पर है अर्थात् अग्निहोत्र नहीं करता उसके गृह खेत धन को जलाने के लिये अग्नि वृद्धि को प्राप्त करता है । अग्नि ही देवी का मुख है इसलिये अग्नि में सदा हवन करना चाहिये । यह हवन पक्ष मास अथवा वर्ष में एक बार अवश्यक विधिवत् करना चाहिये ॥ ६४-६८ ॥

होमानन्तरकरणीयकृत्यवर्णनम्

होमाशक्तौ जपेद्विद्यां होमद्विगुणसंख्यया ।
स्तुवन्नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणमेत् सप्रदक्षिणम् ॥ ६९ ॥
एवं नानाविधैर्देवीं सन्तोष्य साधकोत्तमः ।
भक्तिप्रवणचित्तेन निवेद्यानि निवेदयेत् ॥ ७० ॥
अनुलेपं च सिन्दूरं नेत्राञ्जनमनुत्तमम् ।
धूपामोदं प्रदीपांश्च दर्पणं व्यजनं तथा ॥ ७१ ॥
छत्रं च चामरं चैव घण्टानादमनुत्तमम् ।
वाद्यं गीतं तथा नृत्यं क्रीडाकौतुकमङ्गले ॥ ७२ ॥
निर्मञ्छनं च सिद्ध्यर्थैर्दीपावलिभिरेव च ।
दूर्वार्पणं शिरोदेशे साक्षतं च शनैः शनैः ॥ ७३ ॥
भक्तिप्रवणचित्तं च दास्यमात्मनिवेदनम् ।
एवं निवेदयेद् देव्यै निवेद्यानि तथा बुधः ॥ ७४ ॥
स धन्यः सर्वलोकानां नान्यः पूज्यश्च भूतले ।
देवतानामृषीणां च दैत्यानामथ रक्षसाम् ॥ ७५ ॥
गन्धर्वाणामशेषाणां नागादीनां महात्मनाम् ।
अस्माकं चापि सर्वेषां माननीयः सुरासुरैः ॥ ७६ ॥
सार्वभौमपदं लब्ध्वा कैवल्यं लभते ततः ।

होम के बाद करणीय कृत्य—यदि जापक होम करने में असमर्थ हो तो वह होम की संख्या का दो गुना अधिक जप करे । इसके बाद अनेक स्तोत्रों से देवी की स्तुति कर प्रदक्षिणा करे; फिर प्रणाम करे । इस प्रकार उत्तम साधक अनेक प्रकार से देवी को सन्तुष्ट कर भक्तिभावपूर्ण मन से देवी के लिये नैवेद्य अर्पित करे । उसके अनन्तर अनुलेप सिन्दूर नेत्राञ्जन धूप सुगन्ध दीप दर्पण व्यजन छत्र

चामर अर्पित कर घण्टानाद करे । वाद्य गीत नृत्य खेलकूट नाटक और अन्य माङ्गलिक कृत्य करना चाहिये । सिद्धि देने वाली दीपावली से निर्मञ्छन (नीराजन या शुभयाचना) करनी चाहिये । धीरे-धीरे शिरोदेश में अक्षतसहित दूर्वा का अर्पण करना चाहिये । भक्तिभाव से पूर्ण चित्त से अपने को देवी का दास समझते हुए आत्मसमर्पण करना चाहिये । विद्वान् इस प्रकार देवी के लिये नैवेद्य अर्पित करे । ऐसा साधक सब लोगों में धन्य होता है । उससे बढ़कर इस भूतल पर कोई पूज्य नहीं होता । वह देवताओं ऋषियों दैत्यों राक्षसों सारे गन्धर्वों नागों महात्माओं का हमारा तथा सुरासुरों का माननीय होता है । वह सार्वभौम राजा का पद प्राप्त कर अन्त में कैवल्य प्राप्त करता है ॥ ६९-७६- ॥

उपचारसमर्पणफलम्

अनुलिप्य महादेवीं वासयेज्जगतीमिमाम् ॥ ७७ ॥
सिन्दूरैस्तिलकं देव्यै वश्याः सर्वाश्च योषितः ।
दिव्यज्ञानं भवेत्तस्य(देहा?दत्त्वा)ञ्जनमनुत्तमम् ॥ ७८ ॥
माल्यादीनां प्रदानेन महालक्ष्मीः स्थिरा गृहे ।
ताम्बूलस्य प्रदानेन पानीयस्यापि शोभने ॥ ७९ ॥
सदानन्दमयो भूयात्स(म?दा) दुःखविवर्जितः ।
धूपैः प्रधूपिता देवी दीपैश्चापि निराजिता ॥ ८० ॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च धरां भूतिमरोगिताम् ।
धान्यं चाप्यखिलान् कामान्मतिं धर्मे तथा शुभाम् ॥ ८१ ॥

उपचार समर्पण का फल—साधक महादेवी त्रिपुरसुन्दरी के विग्रह में सुगन्धित लेप लगाकर इस जगत् को उपलिप्त कर देता है । जब वह सिन्दूर से देवी को तिलक लगाता है तो सारी स्त्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं । नेत्रों में उत्तमोत्तम अञ्जन समर्पित करने से साधक को दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है । माला आदि के चढ़ाने से घर में लक्ष्मी स्थिर रहती है । हे शोभने! ताम्बूल और आचमनीय जल देने से वह सदा आनन्दमय और दुःखरहित होता है । धूप से धूपित तथा दीप से नीराजन की गयी देवी साधक को धन पुत्र भूमि ऐश्वर्य और आरोग्य प्रदान करती है । वह धान्य के साथ-साथ समस्त कामनाओं की पूर्त्ति तथा धर्म के विषय में सद्बुद्धि देती है ॥ ७७-८१ ॥

दर्पणं दर्शयित्वैव सारूप्यं लभते विभोः ।
व्यजनैश्चामरैर्वापि व्यजयित्वा महेश्वरीम् ॥ ८२ ॥
तं व्यजयेन्महालक्ष्मीश्चामरद्वयधारिणी ।
निमेषार्धं महादेव्याश्छत्रं चोपरि धारयेत् ॥ ८३ ॥

तस्योपरि महच्छत्रं परिपूर्णेन्दुसोदरम् ।
लोकपालैः सहागत्य धारयेत् त्रिदशेश्वरः ॥ ८४ ॥
घण्टाशङ्खनिनादेन तोषयेद्यो महेश्वरीम् ।
भेरीदुन्दुभिवाद्यैश्च मरुत्वांस्तमनुव्रजेत् ॥ ८५ ॥
(अपा?योऽपि)नो वादयेद् घण्टां शङ्खं वा स्वयमेव हि ।
स निर्लज्जः कथं ब्रूते पूजयामि महेश्वरीम् ॥ ८६ ॥

साधक देवी को दर्पण दिखाकर सारूप्य मुक्ति प्राप्त करता है । यदि वह व्यजन और चामर से परमेश्वरी को वीजित करता है अर्थात् पङ्खा झलता है तो दो चामर धारण करने वाली लक्ष्मी उसको चामर झलती है । थोड़ी देर के लिये यदि साधक देवी के ऊपर छत्र चढ़ाता है तो इन्द्र लोकपालों के साथ आकर उसके ऊपर पूर्णचन्द्र के समान महाछत्र पहनाते हैं । जो मनुष्य घण्टा और शङ्ख की ध्वनि से देवी को सन्तुष्ट करता है, वायुदेव भेरी दुन्दुभि के साथ उसका अनुगमन करते हैं जो व्यक्ति स्वयं शङ्ख या घण्टा नहीं बजाता वह निर्लज्ज कैसे कहता है कि वह महेश्वरी की पूजा कर रहा है ॥ ८२-८६ ॥

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चान्ये सर्वे शङ्खादिवादिनः ।
शङ्खघण्टादिकांस्तस्माद् वादयेद्देवसन्निधौ ॥ ८७ ॥
वाद्यं यः कारयेद्देव्यै गीतं नृत्यं तथैव च ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव हाहा हूहूस्तथैव च ॥ ८८ ॥
प्रसादयन्ति तं नित्यं विद्याधरा?र्योऽप्सरादयः ।

ब्रह्मा विष्णु शिव तथा अन्य देव समस्त लोग शङ्ख आदि को बजाते हैं । इसलिये साधक को चाहिये कि वह देवता के समीप शङ्ख घण्टा आदि बजाये । जो देवी के लिये गीत वादित्र और नृत्य का प्रबन्ध करता है, तुम्बुरु नारद हाहा हूहू गन्धर्व विद्याधर तथा अप्सरा आदि उसको नित्य प्रसन्न रखते हैं ॥८७-८८-॥

सुवासिन्यो मदप्रौढा वेशयित्वा यथाविधि ॥ ८९ ॥
वेश्यास्त्वलंकृताः सर्वाः क्रीडयेयुरलं यदि ।
देवीमुद्दिश्य पुरतस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ९० ॥
उर्वशीप्रमुखास्तं च क्रीडयेयुरलं मुदा ।
कौतुकं कारयेद्देव्यै हास्यानन्दाय यद्भवेत् ॥ ९१ ॥
तेन प्रमुदितो नित्यं देवीलोके महीयते ।
मङ्गलानि महादेव्यै कारयित्वा यथाविधि ॥ ९२ ॥
विमानवरमारुह्य ब्रह्मविष्णुपुरःसरम् ।

सर्वकामसुखं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ ९३ ॥
अनुव्र(जं?जि)तमिन्द्राद्यैःसपत्नीकैः सवाहनैः ।
देवीलोके समायान्तं समागत्य सुराङ्गनाः ॥ ९४ ॥
अरुन्धत्यथ सावित्री तमहल्या शची तथा ।
अनुसूयादितिश्चैव मातरश्च सहानुगाः ॥ ९५ ॥
निर्मञ्छ्य मौक्तिकैर्दिव्यै रत्नदीपैर्निवेद्य च ।
अक्षयं मङ्गलं शीर्षे तर्पयन्ति मुदान्विताः ॥ ९६ ॥

सुगन्ध से सुवासित अत्यन्त मदविह्वल प्रौढ़ायें तथा वेश्यायें अपनी शक्ति और विधि के अनुसार शृङ्गार कर आभूषण पहन कर देवी के उद्देश्य से उस भक्त के सामने यदि नृत्य क्रीडा करती हैं तो उस पुण्य का फल सुनो । उर्वशी आदि दिव्य अप्सरायें आनन्द के सहित उस भक्त के साथ क्रीडा करती हैं । अभिनय लीला आदि को देवी के हास्य और आनन्द लिये करना या कराना चाहिये । उससे साधक प्रमोदयुक्त होकर देवीलोक में पूजित होता है । जो मनुष्य देवी के लिये विधिवत् मङ्गल कराता है वह श्रेष्ठ विमान पर आरूढ होकर देवीलोक को जाता है । ब्रह्मा विष्णु उसके आगे-आगे चलते हैं । इन्द्र आदि अपनी-अपनी पत्नियों और वाहनों के साथ उसके पीछे-पीछे चलते हैं । देवीलोक में उसे आया हुआ देखकर देवाङ्गनायें अरुन्धती सावित्री अहल्या शची अनसूया अदिति के पीछे-पीछे चलने वाली मातायें उसको दिव्य मोतियों रत्नदीपों से उसका निर्मञ्छन कर प्रसन्नता के साथ उसके शिर पर अक्षय मङ्गल देकर उसे तृप्त करती हैं ॥ ८९-९६ ॥

देवीभक्तेःफलम्

गोशृङ्गोपरि यत्कालं तिष्ठेत्सर्षपमर्पितम् ।
तावच्चित्ते महादेव्यै भक्तिं कृत्वा नरः प्रिये ॥ ९७ ॥
(पुनाति?पूयते)सर्वपापेभ्यः पापात्मा पापकृद्यदि ।
पितृमातृकुलैः सार्धं स्वर्गलोके महीयते ॥ ९८ ॥
ततः पुनरिहागत्य चिरेण भक्तिमान् प्रभुः ।
सार्वभौमपदं लब्ध्वा कैवल्यमाप्नुयात् ततः ॥ ९९ ॥
प्राचुर्यादय भक्तेस्तु जगन्मा(तः?तुः) पदं प्रति ।
अनुमेयमनेनैव बहुना वचसा च किम् ॥ १०० ॥
भक्तिः पुनर्महेशानि यदिहानन्यचित्तता ।
भजनं सर्वभावेन सेव्यसेवकवर्त्मना ॥ १०१ ॥
जगन्मातुर्महादेव्या दासोऽहमिति भाषते ।

सकृद्यस्तस्य भूयास्ते पुरन्दरमुखाः सुराः ॥ १०२ ॥

देवी की भक्ति का फल—हे प्रिये! गाय की सींग पर सरसों जितनी देर तक टिकती है उतनी देर तक भी यदि मनुष्य अपने मन में देवी की भक्ति करे तो पितृकुल एवं मातृकुल के साथ वह देवीलोक में पूजित होता है । इसके बाद पुनः इस लोक में आकर भक्तिमान् सार्वभौम राजा होकर बहुत दिनों तक राज्यशासन कर अन्त में कैवल्य प्राप्त करता है । उक्त उदाहरण से यह अनुमान कर लेना चाहिये कि जगन्माता की भक्ति की प्रचुरता से उसका पद कितने काल तक हस्तगत रहता है । हे महेशानि! भक्ति क्या है? इसका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिये । देवी के अतिरिक्त अन्य किसी में चित्त को न लगाना । सेव्य-सेवक भाव से देवी का सर्वतोभावेन भजन अर्थात् सेवा । जो व्यक्ति एक बार भी 'मै महादेवी का भक्त हूँ'—ऐसा कहता है, इन्द्र आदि देवता उसके भृत्य हो जाते हैं ॥ ९७-१०२ ॥

पितृमातृमुखान् विप्रान् गाश्च भृत्याननेकशः ।
हत्वा निवेदयेद्यस्तु आत्मानं तत्पदाम्बुजे ॥ १०३ ॥
शुद्धो गुणमयं देहं परं ब्रह्माधिगच्छति ।
अहं पुनरिदं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा सह ॥ १०४ ॥
भित्त्वा छित्त्वा तथा लोकान् सन्तोष्य परमेश्वरीम्।
तस्यै निवेद्य चात्मानं यास्यामि ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १०५ ॥
तस्माद्यत् क्रियते कर्म ममेति च यदा भवेत् ।
आत्मानं तत्पदाम्भोजे महामन्त्रेण चार्पयेत् ॥ १०६ ॥
तर्पणानि पुनर्दत्त्वा नवमुद्राः प्रदर्शयेत् ।

पिता, माता, ब्राह्मणों, गायों, नौकरों की अनेक बार हत्या करके भी जो मनुष्य अपने को देवी के चरणाम्बुज में समर्पित कर देता है वह शुद्ध सत्त्वगुणमय शरीर को प्राप्त कर परब्रह्म को प्राप्त होता है (अथवा माता की भक्ति से शुद्ध हुआ वह सगुण देह वाले परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है अर्थात् देह रहते हुए भी वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है) मैं स्वयं ब्रह्मा के साथ इस विश्व-ब्रह्माण्ड का भेदन कर लोकों का छेदन कर परमेश्वरी को सन्तुष्ट करने के बाद अपने स्वयं को परमेश्वरी के चरणों में अर्पित कर शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करूँगा । इसलिये जो भी कर्म किया जाय और जब 'मेरा यह कार्य है'—ऐसी भावना हो तो महामन्त्र का जप करते हुए अपने को देवी के चरणाम्बुज में अर्पित कर देना चाहिये । पुनः तर्पण कर देवी के सामने वक्ष्यमाण नवमुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये ॥ १०३-१०६- ॥

मुद्राप्रदर्शनफलम्

मुदं रान्ति च ता यस्मात् तेन मुद्राःप्रकीर्त्तिताः॥ १०७ ॥
कामं मोक्षं तथा धर्ममर्थ मुद्रान्विता स्वयम् ।
ददाति साधकायाशु देवी गन्तुं समुत्सुका ॥ १०८ ॥
सङ्क्षोभद्राविण्याकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्मृताः क्रमात्॥ १०९ ॥
दर्शितास्वासु मुद्रासु भवेत् पूजासमापनम् ।
स्वस्वबीजेन मुद्राया बन्धनं परिकीर्त्तितम् ॥ ११० ॥
दर्शनं मूलमन्त्रेण त्यागः क्रोधोद्भवेन च ।
मुद्रानुष्ठानमज्ञात्वा यो मुद्रां धारयेद्बुधः ॥ १११ ॥
विफलं तस्य तत्सर्वं जीवहीनं वपुर्यथा ।
पूजादौ दर्शितास्वासु देव्यास्तु सन्निधिर्भवेत् ॥ ११२ ॥

मुद्रा प्रदर्शन का फल—जिस कारण वे मुद्रायें मुद् = आनन्द देती हैं इसलिये वे मुद्रा कही गयी हैं । देवी साधक के पास जाने के लिये उत्सुक होकर उसे शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देती है । १. सङ्क्षोभिणी, २. द्राविणी, ३. आकर्षिणी, ४. वशीकरणी, ५. उन्मादकरणी, ६. महाङ्कुशा, ७. खेचरी, ८. बीज और ९. योनि—ये नव मुद्रायें क्रम से दर्शनीय मानी गयी हैं । इन मुद्राओं का प्रदर्शन करने के बाद पूजा की समाप्ति होती है । मुद्राओं का बन्धन उनके अपने-अपने बीजों का पूर्व-पूर्व में कथन के बाद कहा गया है । इन मुद्राओं का प्रदर्शन मूलमन्त्र से तथा त्याग क्रोध बीज (हूम्) से करना चाहिये । जो विद्वान् साधक मुद्रा का अनुष्ठान जाने बिना मुद्राबन्धन करता है उसका वह सब उसी प्रकार व्यर्थ हो जाता है जैसे जीवरहित शरीर । पूजा के पहले इन उपर्युक्त नव मुद्राओं को दिखाने पर साधक को देवी की सन्निधि अर्थात् निकटता प्राप्त होती है ॥ १०७-११२ ॥

देवीसन्निधिकारकाणि

भक्तेः प्राचुर्यमत्रैव श्रद्धयाभ्यर्चनं तथा ।
निर्जनश्चात्मशुद्धिश्च दोषराहित्यता तथा ॥ ११३ ॥
पूजोपकरणस्येह बाहुल्यं च पवित्रता ।
सौरभेणातिसौरभ्याच्चमत्कारकृतिस्तथा ॥ ११४ ॥
संस्थानं पौरुषेणैव मनोहारित्वमात्मनः ।
सौ(मकस्य?मुख्यं च)सुवेशश्च यष्टुः काकूक्तिरेव च॥ ११५ ॥

पूजाविधिषु दाक्ष्यं च तथैवानन्यचित्तता ।
स्तुतिर्नतिर्जपश्चैव बलिः पेयं तथैव च ॥ ११६ ॥
हेतुरत्र समाख्यातो देवीसांनिध्यकारकः ।
मद्य (श्रा?स्रा)व्यं तु सिन्दूरे स्वाङ्गरागेषु कुंकुमम् ॥ ११७ ॥
इति यो यत्र सम्प्रोक्तो विशेषस्त्रिपुरार्चने ।
एभिर्विशेषैः सहितं त्रिपुरातन्त्रगोचरम् ॥ ११८ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे जपादिविधिनिरूपणं नामाष्टादशः पटलः सम्पूर्णः ॥ १८ ॥

* * *

देवी की सन्निधि के हेतु—ऐसा करने पर साधक की भक्ति बढ़ जाती है और पूजा श्रद्धा के साथ होने लगती है । साधक एकान्तवासी होने लगता है । उसकी आत्मा शुद्ध होने लगती है । वह दोषरहित होता जाता है । पूजा सामग्री अधिक से अधिक एकत्रित करता है । सर्वत्र पवित्रता होने लगती है । उसके शरीर से सुगन्ध निकलती है । वह चमत्कार करने लगता है । उसके शरीर के अवयवसंस्थान पौरुषयुक्त और पुष्ट होने लगते हैं । वह स्वयं मनोहारी हो जाता है। उसका मुख सुन्दर और वेशभूषा रमणीय होती है । उस अर्चक के वचन काकु अर्थात् रहस्यमय होते हैं । देवी की पूजा विधि में कुशलता, अनन्यचित्तता, स्तुति प्रणाम होने लगते हैं । बलि और मनोनुकूल पेय—ये सब देवी के सान्निध्य को प्राप्त कराता है । सिन्दूर में मद्य मिलाना चाहिये । अङ्गरागों में कुङ्कुम का प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार जहाँ जो वैशिष्ट्य बतलाया गया त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में वही करना चाहिये । त्रिपुरातन्त्र का विषय इन विशेषों के साथ होता है ॥ ११३-११८ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में जपादिविधिनिरूपण नामक अष्टादश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

* * *

एकोनविंशः पटलः

बटुकादिबलिविधिनिरूपणम्

बटुकादिविध्यनुष्ठानम्

ईश्वर उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानिं वटुकादिविधिं शृणु ।
येनानुष्ठितमात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १ ॥
बलिभिस्तर्पिता ह्येते पूजिता यस्य सुव्रते ।
सिद्धयः सकलास्तस्य करस्था नात्र संशयः ॥ २ ॥
अन्यथा रुषितैस्तैर्हि स विघ्नैः परिभूयते ।
तस्मात् तेभ्यः प्रयत्नेन बलिं कुर्वीत हेतुना ॥ ३ ॥
मांसेन साधितं भक्तं खण्डं दधि सपिष्टकम् ।
मांसानि विविधान्यत्र सुदुग्धं(?दग्धं)मीनमेव च ॥ ४ ॥
श्रीचक्रमभितो देवि मण्डलानां चतुष्टयम् ।
ईशान-वह्नि-नैर्ऋत्यवायुकोणेषु पार्वति ॥ ५ ॥

वटुक आदि विधि का वर्णन—ईश्वर ने कहा—हे महेशानि! अब मैं वटुकादि विधि का वर्णन करूँगा । उसे तुम सुनो । इसके अनुष्ठान से साधक सिद्धि को प्राप्त करता है । हे सुव्रते! जिसके यहाँ ये वटुक आदि तर्पित और पूजित होते हैं, सारी सिद्धियाँ उसके हाथों में होती हैं इसमें सन्देह नहीं । विपरीत स्थिति में वे रुष्ट होकर साधक को विघ्नों से पराभूत कर देते हैं । इस कारण साधक उनके लिये प्रयत्नपूर्वक उपचारों से बलि दे । मांस से युक्त भात, खांड, दही, पीठी की बलि देनी चाहिये । यहाँ अनेक प्रकार के मांस देने का विधान है । भली-भाँति भुना हुआ मत्स्य देना चाहिये । हे देवि! श्रीचक्र के चारों ओर चार मण्डल बनाना चाहिए । हे पार्वति! ये मण्डल ईशान अग्नि नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में बनाये जाते हैं ॥ १-५ ॥

वटुकध्यानं तन्मन्त्रोद्धारश्च

ध्येयो देव्यास्तदा विष्णुः पुत्रोऽयं वटुरूपधृक् ।
वटुकः कमलाक्षस्तु स्वर्णगौरश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥
गदां शङ्खं च पद्मं च चक्रं चापि दधत्करैः ।
विद्रुतः पुरतो देव्याः(गजे?खगे)न्द्रासनसंस्थितः ॥ ७ ॥
वारुणं शक्रयुक्तं च चतुर्दशस्वरान्वितम् ।
सहितं चन्द्रबिन्दुभ्यां वटुकाय नमोऽन्ततः ॥ ८ ॥
अनेन मनुना देवि गन्धाद्यैः पूजयेत्ततः ।

वटुक का ध्यान और उसके मन्त्र का उद्धार—इसके बाद देवी के पुत्र विष्णु का वटुक के रूप में ध्यान करना चाहिये । वटुक की आँखें कमलसदृश हैं । वह सोने के समान गौर और चार भुजाओं वाले हैं । हाथों में शङ्ख चक्र गदा और कमल धारण किये हुए हैं । देवी के सामने गरुड के ऊपर बैठे हुए हैं । वटुक का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—वारुण = क, शक्र = ल से युक्त चतुर्दश स्वर = औ से विभूषित चन्द्रबिन्दु के सहित कहने के बाद 'वटुकाय नमः' (= क्लौं वटुकाय नमः) । हे देवि! इस मन्त्र से वटुक की गन्ध आदि से पूजा करनी चाहिये ॥ ६-८- ॥

बलिप्रदानविधि:

तदग्रे परमेशानि पात्रं चान्नोदकान्वितम् ॥ ९ ॥
कृत्वा च विधिवत्तत्र बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।
एह्येहि देवीपुत्रान्ते वटुकान्तेऽथ नाथ च ॥ १० ॥
कपिलान्ते जटाभारभास्वरान्ते त्रिनेत्र च ।
ज्वालामु(ख्यं?ख)च सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय॥ ११ ॥
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्णद्विधापदम् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो वटुकस्य उदाहृतः ॥ १२ ॥
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बलिं तस्मै निवेदयेत् ।
अस्यैवाराधनं कृत्वा मन्दभाग्योऽपि सुव्रते ॥ १३ ॥
सर्वबाधाविनिर्मुक्तः सम्पदां भाजनं भवेत् ।
यजनं चास्य देवस्य साङ्गेन कथितं पुरा ॥ १४ ॥
बलिप्रदानमात्रं तु प्रसङ्गात्कथितं शिवे ।
डाकिनीप्रमुखाः पश्चाद्बलिना तर्पयेत् ततः ॥ १५ ॥

बलिदान विधि—हे परमेशानि! उसके पश्चात् पात्र को अन्न-जल से युक्तकर

विधिवत् वहाँ मन्त्र के द्वारा बलि देनी चाहिये । बलि का मन्त्र इस प्रकार है— 'एह्येहि देवीपुत्र' के अन्त में 'वटुक' उसके अन्त में 'नाथ कपिल' के अन्त में 'जटाभार भास्कर' के अन्त में 'त्रिनेत्र ज्वालामुख' सबके अन्त में 'विघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं' के बाद 'गृह्ण' पद को दो बार और अन्त में वह्निजाया—यह वटुक का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख विघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा) ।

बाँयें अङ्गुष्ठ और अनामिका से उस वटुक के लिये बलि देनी चाहिये । इस प्रकार वटुक की आराधना कर हे सुव्रते! मन्दभाग्य व्यक्ति भी समस्त विघ्नबाधाओं से रहित होकर सम्पत्तियों का स्वामी हो जाता है । इस वटुक देव की साङ्गोपाङ्ग पूजा पहले ही बतला दी गयी है । हे शिवे! प्रसङ्गवश केवल बलि का वर्णन यहाँ किया गया । इसके बाद डाकिनी आदि को बलि से तृप्त करना चाहिये ॥ ९-१५ ॥

योगिनीध्यानादिकम्

तथैव वामतो देव्या मण्डले योगिनीः स्मरेत् ।
अथवा चिन्तयेदेता योगिन्यः सर्वसिद्धिदाः ॥ १६ ॥
योगिन्यः कामरूपाश्च तप्तकाञ्चनभास्वराः ।
मत्ताः कङ्कालमालाढ्याः कटीतटभरानताः ॥ १७ ॥
गलद्रुधिरगन्धाढ्या रक्तवस्त्रोत्तरीयकाः ।
लिङ्गं पाशं कपालं च बिभ्रत्यश्च(शृ?सृ)णिं करैः ॥ १८ ॥
स्वभक्तानामभिमतं संददाना मुदान्विताः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥ १९ ॥

योगिनियों का ध्यान और उनके बलिमन्त्र का उद्धार—इसी प्रकार देवी के बाँयें मण्डल में योगिनीगण का ध्यान करना चाहिये । इन योगिनियों का सर्वसिद्धिदात्री के रूप में ध्यान करना चाहिये । ये योगिनियाँ यथेच्छ रूप धारण करने वाली, तप्तकाञ्चन के समान दीप्यमान, मत्त, कङ्कालमाला से विभूषित, कटिभार से कुछ झुकी हुई, च्युत होते हुए रक्त की गन्ध से युक्त, लाल रंग का वस्त्र और उत्तरीय धारण की हुई हाथों में लिङ्ग अर्थात् शिवलिङ्ग अथवा विशिष्ट चिह्न पाश कपाल और सृणि धारण की हुई है । वे अपने भक्तों को अभिमत वस्तु देने वाली तथा प्रसन्नतापूर्ण हैं । गन्ध आदि से उनकी पूजा कर मन्त्रोच्चारपूर्वक उनके लिये बलि देनी चाहिये ॥ १६-१९ ॥

यामात्मकं समुच्चार्य योगिनीभ्यस्ततः परम् ।

भ्यसन्तं सर्ववर्णान्ते योगिनीपदमालिखेत् ॥ २० ॥
कवचं चास्त्रमालिख्य वह्निजायां पुनर्लिखेत् ।
अनेन मनुना वापि योगिनीनां बलिं हरेत् ॥ २१ ॥
अङ्गुष्ठमध्यमानामा योन्याकारेण योजयेत् ।
कृताञ्जलिस्ततो देवि संम्प्रार्थयेदनेन तु ॥ २२ ॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले वा भूतले निस्तले वा
पाताले(वानले)वा सलिलपवनयोर्यत्रकुत्र स्थिता वा ।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः॥ २३ ॥

बलि देने का मन्त्र इस प्रकार है—यामात्मक का उच्चारण कर उसके बाद 'योगिनीभ्यः' तत्पश्चात् 'सर्ववर्णा' को न्यसन्त कहना चाहिये । फिर 'योगिनी' पद कहकर कवच अस्त्र और वह्निजाया का उल्लेख करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—यामात्मकयोगिनीभ्यः सर्ववर्णाभ्यः योगिनीभ्यः हूम् फट् स्वाहा)।

इस मन्त्र से योगिनियों के लिये बलि देनी चाहिये । अङ्गूठा मध्यमा और अनामिका को जोड़कर योनि का आकार बनाना चाहिये । इस मुद्रा को दिखाकर हाथ जोड़े । इसके पश्चात् देवी की निम्नलिखित मन्त्रपद्य से प्रार्थना करनी चाहिये—'ऊर्ध्व........वीरेन्द्रवन्द्याः ।' (ब्रह्माण्ड के ऊपर, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूतल, निस्तल, पाताल, अग्नि, जल, वायु में अथवा जहाँ कहीं भी स्थित हैं, क्षेत्र पीठ उपपीठ आदि में स्थान ग्रहण करने वाली, वीरेन्द्र के द्वारा वन्दनीय देवियाँ धूप दीप आदि तथा शुभ बलिदान के द्वारा प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करें) ॥ २०-२३ ॥

क्षेत्रपालस्य ध्यानादिकम्

क्षेत्रपालं महादेव्या वामतः परिचिन्तयेत् ।
अपराजितवल्लीभिर्वेष्टितस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
आरक्तवर्णैः सततं कुसुमैरुपशोभिते ।
तितिण्डीकल्पवृक्षस्य सच्छाये रत्नभूषिते ॥ २५ ॥
नीलाञ्ज(ल?न)चयप्रख्यं दधानं करपङ्कजैः ।
कृपाणं च कपालं च शूलं डमरुमेव च ॥ २६ ॥
ध्यायेच्च सममत्यर्थं दंष्ट्राभिन्नाधरं परम् ।
पूजयित्वा विधानेन बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥ २७ ॥
षड्दीर्घस्वरसंभिन्नं क्षकारं विलिखेत् प्रिये ।
ततः क्षेत्रपदं पाल धूपदीपादि वा लिखेत् ॥ २८ ॥

सहितं बलिमालिख्य गृह्ण गृह्ण ततो वदेत् ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः क्षेत्रपालस्य पार्वति ॥ २९ ॥
वाममुष्टिं विधायादौ तर्जनीं सरलां कुरु ।
अनया मुद्रया देवि बलिं तस्मै निवेदयेत् ॥ ३० ॥

क्षेत्रपाल का ध्यान उसकी बलि के मन्त्र का उद्धार—महादेवी के बाँयें (योगिनियों के बगल में) क्षेत्रपाल का ध्यान करना चाहिये । अपराजिता की लताओं से वेष्टित विशाल तितिण्डी कल्प वृक्ष की रक्तवर्ण कुसुमों से सुशोभित छाया के नीचे रत्नभूषित सिंहासन पर बैठे हुए क्षेत्रपाल नीलाञ्जन के समूह के समान कृष्ण वर्ण के हैं । करकमलों में कृपाण कृपाल शूल और डमरु लिये हुए हैं । दाँतों से ओष्ठाधर को दबाये हुए हैं । ऐसे क्षेत्रपाल की विधिपूर्वक पूजाकर निम्नलिखित मन्त्र से बलि देनी चाहिये । मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—हे प्रिये! क्षकार को छह दीर्घ स्वरों से जोड़ना चाहिये । इसके बाद 'क्षेत्र' और 'पाल' पद फ़िर 'धूपदीपादि' कहना चाहिये । 'सहितं बलिं' का उल्लेख कर फिर 'गृह्ण गृह्ण' कहना चाहिये । अन्त में वह्निजाया—यह क्षेत्रपाल का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।)

हे पार्वति! पहले बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधों और तर्जनी को सीधी रखो । इस मुद्रा से क्षेत्रपाल के लिए बलि देनी चाहिये ॥ २४-३० ॥

गणपतेर्ध्यानादिकम्

चतुर्थमण्डले देव्याः पुरतो दक्षभागतः ।
नवीननीरदश्यामं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ३१ ॥
तुन्दिलं गजवक्त्रं च चतुर्बाहुं दिगम्बरम् ।
वामदक्षोर्ध्वपाणिभ्यां पाशाङ्कुश(व?ध)रं विभुम्॥ ३२ ॥
दक्षिणाधःकरेणैव मधुपूर्णकपालकम् ।
सिन्दूरसदृशाकारामुद्दाममदविह्वलाम् ॥ ३३ ॥
धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशम् ।
आलिङ्ग्य वामहस्तेन तस्या मदनमन्दिरम् ॥ ३४ ॥
स्पृशन्तं परमेशानं ध्यात्वा तं परिपूजयेत् ।

गणपति का ध्यान और उसकी बलि के मन्त्र का उद्धार—चतुर्थमण्डल में देवी के सामने दाँयी ओर गणेश का ध्यान करना चाहिये । गणेश का स्वरूप नवीन जलधर के समान श्याम वर्ण का है । उनका शरीर सब प्रकार के

आभूषणों से भूषित हैं । वे बड़ी तोंद, हाथी का मुख, चार भुजाओं वाले तथा दिगम्बर अर्थात् नग्न हैं । बाँयें दाँयें ऊपरी हाथों में पाश अङ्कुश धारण किये हैं । दक्षिण नीचे के हाथ में मदिरा पूर्ण कपाल लिये हैं । अपनी गोद में सिन्दूर के समान रक्तवर्ण वाली मदविह्वला एक हाथ में रक्त कमल ली हुई और दूसरे हाथ में गणेश के लिङ्ग का स्पर्श करती हुई शक्ति का आलिङ्गन करते हुए और अपने बाँयें हाथ से उसकी योनि का स्पर्श करते हुए परमेश्वर गणेश का ध्यान कर उनका पूजन करना चाहिये ॥ ३१-३४- ॥

गाङ्गींगूंत्रयमालिख्य ङेन्तं गणपतिं ततः ॥ ३५ ॥
वरान्ते वरदान्ते च सर्वान्ते जनमालिखेत् ।
मे वशं चानय प्रोच्य बलिं गृह्ण द्विधापदम् ॥ ३६ ॥
वह्निजायान्वितो मन्त्रो गणपस्यउ(?ह्यु)दाहृतः ।
मुष्टिमध्यस्थितां देवि अङ्गुलीं दण्डवत् कुरु ॥ ३७ ॥
गजतुण्डा महामुद्रा गणपस्य सदा प्रिया ।

उनकी पूजा का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—गां गीं गूं इन तीन वर्णों का उल्लेख कर 'गणपति' का ङेऽन्त उच्चारण करना चाहिये । 'वर' के अन्त में 'वरद' उसके अन्त में 'सर्व' उसके अन्त में 'जनं' का कथन करना चाहिये । 'मे वशमानय' कहकर 'बलिं' के बाद 'गृह्ण' पद को दो बार कहना चाहिये । वह्निजाया से युक्त होने वाला यह गणपति का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—गां गीं गूं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा) ।

हे देवि! मुट्ठी के मध्य में स्थित मध्यमा अङ्गुली को दण्ड की भाँति सीधी करो । यह गजतुण्डा मुद्रा है जो सदा गणेश की प्रिय है ॥ ३५-३७- ॥

सर्वभूतबलिदानम्

एतदन्ते महेशानि सर्वभूतबलिं हरेत् ॥ ३८ ॥
सुरा नराश्च पितरो यक्षरक्षःपिशाचकाः ।
एते भूताः समुद्दिष्टा बलिभिस्तान् प्रतर्पयेत् ॥ ३९ ॥
बलिभिस्तर्पितास्त्वेते यान्ति यज्ञे सहायताम् ।
अतर्पिता यदा तस्मिंस्ते वै विघ्नस्वरूपिणः ॥ ४० ॥

सर्वभूत-बलिदान—हे महेशानि! इसके बाद सर्वभूतबलि देनी चाहिये । देवता, मनुष्य, पितृगण, यक्ष, राक्षस और पिशाच—इनको भूत कहा गया है । बलि प्रदान कर इनको तृप्त करना चाहिये । बलि से तृप्त होने पर ये यज्ञ की

सहायता करते हैं । यदि वे तृप्त नहीं किये गये तो उस यज्ञ में विघ्न उपस्थापित करते हैं ॥ ३८-४० ॥

सात्मसमर्पणं क्षमापनञ्च

आत्मानं च क्रियाः सर्वा महामन्त्रेण पार्वति ।
ततो ब्रह्मस्वरूपिण्यै विशेषेण समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
वारत्रयमितः पूर्वं प्राणबुद्धि ततः परम् ।
देहधर्माधिकारान्ते जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ ४२ ॥
मनसा च ततो वाचा कर्मणा च ततः परम् ।
हस्ताभ्यां च ततः पद्भ्यामुदरेण ततः परम् ॥ ४३ ॥
शिश्ना च यत् स्मृतं पश्चाद्यदुक्तं यत्कृतं भवेत् ।
मां मदीयं ततो देवि सकलं च ततः परम् ॥ ४४ ॥
तथैव त्वयि-शब्दान्ते ब्रह्मण्यर्पितमस्त्विवति ।
स्वाहान्तो मनुरित्युक्तो मन्त्रः स्वात्मसमर्पणे ॥ ४५ ॥
एतदन्ते महामन्त्रा (न?नि)यतः समुदीरयेत् ।

आत्मासहित सर्वक्रिया के लिये क्षमापन—हे पार्वति! इसके बाद अपने स्वयं को तथा अपने द्वारा की गयी सारी क्रियाओं को महामन्त्र का उच्चारण करते हुए ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती त्रिपुरसुन्दरी के लिये समर्पित कर देना चाहिये । स्वात्म-समर्पण का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—'इतः पूर्व प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकार' के अन्त में 'जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसु मनसा' फिर 'वाचा कर्मणा' उसके बाद 'हस्ताभ्याम्' उसके अनन्तर 'पद्भ्यामुदेरण' ततः परं 'शिश्ना यत् स्मृतं' के पश्चात् 'यदुक्तं यत्कृतं भवेत् मां मदीयं' उसके बाद हे देवि! 'सकलं' तत्पश्चात् 'त्वयि' शब्द के अन्त में 'ब्रह्मण्यर्पितमस्तु स्वाहा' यह मन्त्र आत्मसमर्पण के विषय में कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्-स्वप्नसुषुप्तिसु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं भवेत् मां मदीयं सकलं त्वयि ब्रह्मण्यर्पितमस्तु स्वाहा) । इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण होना चाहिये। इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये ॥ ४१-४५- ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ॥ ४६ ॥
पूजाभागं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ॥ ४७ ॥
कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चारेण भूतनामन्तस्त्वमेव संस्थिता ॥ ४८ ॥

यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
आवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥ ४९ ॥

'आवाहनं न.........त्वदाज्ञया ॥' (हे देवि! मैं न तुम्हारा आवाहन जानता हूँ और न विसर्जन । तुम्हारा पूजा-भाग मैं नहीं जानता । हे परमेश्वरि! तुम इस सब की तथा मेरी गति हो । यह बात सत्य है सत्य है पुनः सत्य है यह मैं भुजा उठा कर कह रहा हूँ । वाणी और मन से तुम्हारे अतिरिक्त मेरी कोई गति नहीं है । भूतों के अन्तश्चार अर्थात् प्राण के माध्यम से तुम्हीं प्राणियों में स्थित हो । पत्र पुष्प फल जल जो कुछ मैंने भक्ति के साथ दिया और जो नैवेद्य निवेदित किया कृपाकर उसका ग्रहण करो) ॥ ४६-४९ ॥

विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ॥ ५० ॥
अनङ्गव्यवधानादि अपराधशतानि च ।
क्षन्तुमर्हसि मे देवि त्वमेव शरणं यतः ॥ ५१ ॥
त्वयि मे हृदयं चास्तु त्वयि चित्तं मनस्त्वयि ।
त्वत्पूजायां महामाये संवर्धन्तां प्रयोजिताः ॥ ५२ ॥
ये पुनर्विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु त्वदाज्ञया ।

विधिहीन क्रियाहीन और भक्ति से रहित जो कुछ पूजा मेरे द्वारा की गयी, इस पूजाक्रम में जो अक्षर पद अशुद्ध और मात्रारहित उच्चरित हुए काम का व्यवधान आदि जो सैकड़ों अपराध हुए हे देवि! उन्हें आप क्षमा करें क्योंकि आप ही मेरी शरण हैं । मेरा हृदय तुम्हारे प्रति समर्पित हो । मेरा चित्त तुम में लगा रहे । हे महामाये! मेरे मन आदि प्रेरित होकर तुम्हारी पूजा में आगे बढ़ते रहें । जो इस पूजा में विघ्नकर्त्ता हैं वे तुम्हारी आज्ञा से नष्ट हो जायँ ॥ ५०-५२- ॥

मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्व(रं?यं)देवी प्रसीदति ॥ ५३ ॥
दातुं देवी चतुर्वर्गमित्येतन्नात्र संशयः ।
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशि स्तुत्वा नुत्वातिभक्तितः ॥ ५४ ॥
प्रधानदेवतामूर्तौ परिवारान् समर्पयेत् ।
तस्या एव महेशान्याः शरीरे सर्वदेवताः ॥ ५५ ॥
विलीनाः सन्तु मूलेन दे(वा?व्य)ङ्गे मीलिताः स्मरेत्।
अथ कामकलारूपमात्मानं परिचिन्तयेत् ॥ ५६ ॥

इन मन्त्रों के पढ़े जाने पर देवी चारों वर्ग देने के लिये स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं । हे देवशि! इस प्रकार प्रार्थना स्तुति करने के बाद

भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रधान देवता की मूर्त्ति में उसके परिवारों को समर्पित कर देना चाहिये कि उसी महेश्वरी के शरीर से सभी देवतायें विलीन हो जाँय । मूलमन्त्र का ध्यान करते हुए यह स्मरण करना चाहिये कि वे देवी के अङ्ग में मिल गयीं । इसके बाद अपना कामकलारूप में चिन्तन करना चाहिये ॥५३-५६॥

देवीविसर्जनम्

ततस्तां परमेशानीं विसृजेद् हृदयाम्बुजे ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे ॥ ५७ ॥
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मातः क्षमस्व मे ।
उद्वास्य परमेशानीं खेचर्यात्मनि योजयेत् ॥ ५८ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण ध्यायंस्तां स्थापयेद् हृदि ।
तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ॥ ५९ ॥
विसृज्यैवं महेशानीं ततः पूरकवायुना ।
संहारमुद्रयादाय समाघ्राय गुरूक्तया ॥ ६० ॥
तच्चैतन्यं (स?स्व)मूलेनमूल एव निवेशयेत् ।
प्राणायामैस्तु सन्तर्प्य यजेन्निर्माल्यधारिणीम् ॥ ६१ ॥
निर्माल्यं निक्षिपेद्भूमौ नीत्वा तां चित्कलां पुरा ।

देवी का विसर्जन—इसके बाद उस परमेश्वरी का हृदयकमल में विसर्जन करना चाहिये । उस समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—'ज्ञानतो.......... क्षमस्व मे ॥' (हे शिवे! ज्ञान अथवा अज्ञानपूर्वक जो मेरे द्वारा किया जाता है यह सब तुम्हारा ही कार्य है । इसलिये हे माता! उसे क्षमा करो) ।

परमेश्वरी को इस प्रकार उद्वासित कर खेचरी में जोड़ना चाहिये । फिर इसी मन्त्र से उनका ध्यान करते हुए अपने हृदय में उन्हें स्थापित करना चाहिये । उस समय 'तिष्ठ देवि............परमेश्वरि ।' (हे देवि! हे परमेश्वरि! अपने उत्तमोत्तम स्थान में बैठो) इस प्रकार महेश्वरी का विसर्जन कर पूरक वायु के द्वारा गुरुनिर्देशित संहार मुद्रा से सूँघकर उस चैतन्य को अपने मूल से मूलाधार में निवेशित कर देना चाहिए। प्राणायामों के द्वारा उन्हें तृप्त कर माला उतार कर उनकी पूजा करे । उतारी गयी माला को भूमि पर फेंक दे । उसके पहले उस चित्कला का ग्रहण करना चाहिये ॥ ५७-६१- ॥

अस्या जगन्मयी सैव सा चै(वाशो?व शे)षिका परा ॥ ६२ ॥
तत्परं नहि वस्त्वे(ह?व) तत्त्वज्ञानादहं प्रभुः ।
महापद्मवनान्तःस्थश्रृङ्गाटोदरसंस्थिताम् ॥ ६३ ॥

देवीं परां समालोक्य आत्मानं तु विचिन्तयेत् ।
उन्मन्यन्ते शिवो भूत्वा तिष्ठेदानन्दनिर्भरः ॥ ६४ ॥
शिवेनैक्यं समासाद्य यावदन्ते मनोलयः ।
निवर्तितसमाधिस्तु गुरुवे मूर्धवासिने ॥ ६५ ॥
आललाटं नमस्कुर्यान्निवेद्यार्घ्यं तदाज्ञया ।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा द्वारपद्मविवर्जितम् ॥ ६६ ॥
शेषिकां सुन्दरीं तत्र निर्माल्येन प्रपूजयेत् ।
लेह्यचोष्यान्नपानादि ताम्बूलमनुलेपनम् ॥ ६७ ॥
नैर्माल्यं भोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया ।
अनेन मनुना देव्या यजेन्निर्माल्यधारिणीम् ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे वटुकादिबलिविधिनिरूपणं नामैकोनविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ १९ ॥

* * *

वही जगन्मयी है वही परा शेषिका है । इस संसार में उससे परे कोई वस्तु नहीं है । तत्त्वज्ञान के कारण मैं वही प्रभु हूँ—ऐसा समझते हुए साधक को चाहिये कि वह महापद्मवन के भीतर स्थित मूलशृङ्गाटक के उदर में स्थित परा देवी का साक्षात्कार कर आत्मसाक्षात्कार करे । उन्मना का भेदन करने के बाद साधक स्वयं शिव होकर आनन्दपरिपूर्ण हुआ इस संसार में स्थित हो जाय । शिव के साथ ऐक्य को प्राप्त कर जब तक मन का लय न हो जाय अर्थात् समना को पार कर उन्मना में न पहुँच जाय तब तक सानन्द रहना चाहिये । समाधि से ऊपर जाकर सहस्रार में स्थित गुरु को ललाटपर्यन्त नमस्कार करे । उनकी आज्ञा से अर्घ्य निवेदित कर द्वारस्थ कमल को छोड़कर ईशान दिशा में मण्डल बनाये । उस मण्डल में शेषिका सुन्दरी की उच्छिष्ट माला से पूजा करे । पूजा का मन्त्र इस प्रकार है—'लेह्य चोष्य..........श्रीशिवाज्ञया ॥' (मैं शिव की आज्ञा से तुम्हें लेह्य चोष्य अन्न पान ताम्बूल अनुलेप नैर्माल्य भोजन दे रहा हूँ)। इस मन्त्र से निर्माल्यधारिणी शेषिका देवी की पूजा करनी चाहिये ॥ ६२-६८ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में वटुकादिबलिविधिनिरूपण-नामक उन्नीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १९ ॥

* * *

विंशः पटलः

शेषिकाविद्याप्रयोगक्रमनिरूपणम्

देव्युवाच—

कथं सा परमेशानी शेषिकापू(जि?ज्य)ते शिवे ।
कीदृशी सा महादेवी तदशेषं वद प्रभो ॥ १ ॥

देवी ने कहा—हे शिव! उस परमेश्वरी शेषिका की पूजा किस प्रकार सम्पन्न की जाती है? वह महादेवी किस प्रकार की है? आप यह सब पूर्णरूप से मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

उच्छिष्टमातङ्गीपूजावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

शेषिकां सुन्दरीं वक्ष्ये देवीं गुह्यतमां प्रिये ।
उच्छिष्टपूर्विकां देवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम् ॥ २ ॥
सर्वापत्तारिणीं विद्यां सर्वदोषविवर्जिताम् ।
यया विज्ञातया देवि क्षयं गच्छन्ति चापदः ॥ ३ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चाङ्गजं विषम् ।
विद्येयं नाशयेद् देवि स्वपराङ्गसमाश्रितम् ॥ ४ ॥
इयं विद्या महाविद्या सर्वपापापहारिणी ।
स्वर्गदा मोक्षदा चेयं राज्यसौभाग्यदा तथा ॥ ५ ॥
इयं देवी मया पूर्वं साधिता देवि निर्जने ।
सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्महत्याविनाशिनी ॥ ६ ॥
य उच्छिष्टमुखो भूत्वा स्मरेद् देवीं कदाचन ।
तदाचान्तो भवेद् देवि विनैवाचमने कृते ॥ ७ ॥
निर्धनो धनमाप्नोति मूर्खो विद्यामवाप्नुयात् ।

उच्छिष्टमातङ्गी की पूजा—हे प्रिये! मैं शेषिका सुन्दरी को बतलाऊँगा । यह गुह्यतमा अर्थात् अत्यन्त गोपनीय है । इस देवी को उच्छिष्ट के बाद मातङ्गी अर्थात् उच्छिष्टमातङ्गी कहा जाता है । यह सर्वसिद्धि देने वाली समस्त आपदाओं से पार ले जाने वाली तथा सर्वदोषरहित विद्या है । हे देवि! इसके जान लेने से आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । हे देवि! यह विद्या स्थावर, जङ्गम, कृत्रिम, अङ्गों में उत्पन्न होने वाले, अपने और दूसरे के अङ्गों में जन्म लेने वाले विष का नाश कर देती है । यह विद्या महाविद्या है जो सारे पापों का अपहरण कर लेती है । यह स्वर्ग देने वाली मोक्षदात्री एवं राज्य तथा सौभाग्य की प्रदात्री है । हे देवि! मैने पूर्वकाल में निर्जन स्थान में इसकी सिद्धि की थी । इस विद्या का एक बार उच्चारण करने पर यह ब्रह्महत्या तक का पाप नष्ट कर देती है । जो मनुष्य कभी जूठे मुँह वाला होकर इस देवी का स्मरण करता है वह विना आचमन किये आचान्त अर्थात् शुद्ध हो जाता है । इसकी आराधना से निर्धन धन को और मूर्ख विद्या को प्राप्त करता है ॥ २-७- ॥

उच्छिष्टमातङ्गीमन्त्रोद्धारः

मन्त्रं शृणु महादेव्या यथावत् कथयामि ते ॥ ८ ॥
उच्छिष्टशब्दमुच्चार्य तथा चण्डालिनीति च ।
सुमुखीति ततो देवि महापिशाचिनीति च ॥ ९ ॥
मायाबीजं ततः पश्चात् ठकारद्वितयं तथा ।
सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १० ॥

उच्छिष्टमातङ्गी मन्त्र का उद्धार—अब तुम इस महादेवी का मन्त्र सुनो । मैं तुमको यथावत् अर्थात् जैसा है वैसा बतला रहा हूँ । इस मन्त्र के अनेक प्रकार हैं । उनमें से प्रथम प्रकार है—१. 'उच्छिष्ट' शब्द का उच्चारण कर 'चाण्डालिनी' फिर 'सुमुखी' फिर हे देवि! 'महापिशाचिनी' के बाद मायाबीज तत्पश्चात् विसर्गसहित दो 'ठकार' ।

(मन्त्र-स्वरूप—उच्छिष्टचाण्डालिनी सुमुखी महापिशाचिनी ह्रीं ठः ठः) । यह सर्वसिद्धि प्रदायक मन्त्र है ॥ ८-१० ॥

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परमदुर्लभम् ।
वाङ्मायाकमलाबीजं नमो भगवतीति च ॥ ११ ॥
मातङ्गेश्वरि सर्वान्ते जनवशङ्करीति च ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ १२ ॥
नारिदोषोऽत्र देवेशि न विघ्नो नियमस्तथा ।

अङ्गन्यासकरन्यासौ नाङ्गी चैवास्य देवता ॥ १३ ॥
यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं स भवेत् सुरपादपः ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथावदखिलेश्वरि ॥ १४ ॥

अब मैं परम दुर्लभ दूसरा मन्त्र बतलाऊँगा—२. वाक् माया कमला बीजों के बाद 'नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्व' के बाद 'जनवशङ्करि' फिर वह्निजाया । यह मन्त्र सर्वसिद्धिप्रदायक है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा) ।

हे देवेशि! यह मन्त्र कभी भी अरिदोष से दूषित नहीं होता। इस मन्त्र के जपने में न किसी विघ्न की आशङ्का होती है न कोई नियम होता है । इसके जप के पूर्व न अङ्गन्यास न करन्यास और न इसकी कोई अङ्गी देवता है । जिसके पास यह मन्त्र होता है वह कल्पवृक्ष के समान सर्वकामसाधक होता है । हे अखिलेवरि! अब मैं इसका यथावत् ध्यान बतलाऊँगा ॥ ११-१४ ॥

उच्छिष्टमातङ्गीध्यानं पूजाविधिश्च

शवोपरि समासीना रक्ताम्बरपरिच्छदा ।
रक्तालङ्कारभूषाढ्या गुञ्जाहारविराजिता ॥ १५ ॥
नवयौवनसम्पन्ना पीनोन्नतपयोधरा ।
कपालकर्तृकाहस्ता परमज्योतीरूपिणी ॥ १६ ॥
विधानं चात्र वक्ष्यामि शृणु देवि मनोहरम् ।
भोजनानन्तरं देवि विनैवाचमने कृते ॥ १७ ॥
बलिं कृत्वा प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः ।
ततो मन्त्रं जपेद् ध्यात्वा जपेदयुतमानतः ॥ १८ ॥
उच्छिष्टेनैव कर्तव्यो जपोऽस्याःसिद्धिमिच्छता ।
अपरं च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि फलप्रदम् ॥ १९ ॥
होमसन्तर्पणं चैव सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं सबिन्दुकम् ॥ २० ॥
पूजयेन्मण्डलं देव्या मूलमन्त्रेण साधकः ।
तत्र देवीं समावाह्य वह्निरूपव्यवस्थिताम् ॥ २१ ॥

उच्छिष्ट मातङ्गी का ध्यान तथा पूजा विधि—यह देवी शव के ऊपर बैठी है । रक्त वस्त्र से आच्छन्न है । रक्त वर्ण के अलङ्कार से आभूषित है । गुञ्जा से

निर्मित हार से वह शोभायमान है । नवयौवनसम्पन्न वह पीन एवं उन्नत उरोजों वाली है । हाथ में कपाल एवं कैंची ली हुई है । उसका स्वरूप परम ज्योतिर्मय है । हे देवि! अब यहाँ मैं मनोहारी विधान बतलाऊँगा । हे देवि! भोजन के बाद बिना मुँह धोये साधक पहले देवी के लिये बलिदान करे । यह बलि मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए देनी चाहिये । इसके पश्चात् साधक इस देवी का ध्यान कर अयुत अर्थात् दश हजार की संख्या में जप करे । सिद्धि चाहने वाला मनुष्य उच्छिष्ट अर्थात् जूठे मुंह से ही इसका जप करे । हे देवि! अब दूसरा फलप्रद उपाय बतला रहा हूँ । साथ ही होम और तर्पण भी बतलाऊँगा । स्थण्डिल पर बिन्दुसहित चौकोर मण्डल बनाकर साधक देवी के मूलमन्त्र से मण्डल की पूजा करे । उसके बाद उस मण्डल पर वह्निरूप में स्थित देवी का आवाहन करना चाहिये ॥ १५-२१ ॥

होमविधिवर्णनम्

सम्पूज्यैव चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलैः ।
सहस्रैकविधानेन राजा भवति वश्यगः ॥ २२ ॥
मार्जारस्य तु मांसेन देव्यै होमं समाचरन् ।
स प्राप्नोति परां विद्यां शस्त्रशास्त्रवशीकृताम् ॥ २३ ॥
कुर्याच्छागस्य मांसेन होमं मधुघृतान्वितम् ।
सहस्रैकप्रमाणेन भवन्ति फलसिद्धयः ॥ २४ ॥
विद्याकामश्चरेद् होमं मधुना सह सर्पिषा ।
अयु(क्तै?तै)कप्रमाणेन सिद्धिरिष्टा भवेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥
सद्यो मार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह ।
चाण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणं महत् ॥ २६ ॥
शशकस्य तु मांसेन मधुनालोडितेन च ।
कृत्वा होममवाप्नोति विद्यावसुवरस्त्रियः ॥ २७ ॥

होमविधि—आवाहन के बाद पूजन कर दही, सफेद सरसों तथा चावल से होम करना चाहिये । एक हजार बार होम करने से साधक राजा हो जाता है । बिल्ली के मांस से देवी के लिये होम करने वाला साधक शस्त्र और शास्त्र को वश में करने वाली पराविद्या को प्राप्त करता है । बकरे के मांस में मधु और घृत मिलाकर एक हजार बार हवन करने से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती है । विद्या चाहने वाला साधक मधु मिश्रित घी से हवन करे । दश हजार हवन करने से निश्चित रूप से इष्टसिद्धि होती है । बिल्ली के ताजे मांस को मधु और घृत मिश्रित तथा चाण्डाल के बाल के साथ मूलमन्त्र से हवन करने पर महा

आकर्षण होता है । शशक का मांस यदि मधु से मिश्रित कर हवन करे तो साधक विद्या धन और सुन्दर स्त्री प्राप्त करता है ॥ २२-२७ ॥

धत्तूरकाष्ठयोगेन चितावह्नौ तु मन्त्रवित् ।
कोकिलाकाकपक्षैश्च होमैः शत्रून् विनाशयेत् ॥ २८ ॥
उच्चाटनाय शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने ॥ २९ ॥
उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमं निरन्तरम् ।
द्वेषयेद् द्विष्टमन्योन्यकलहाकुलसंकुलम् ॥ ३० ॥
उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत् स्त्रियाः ।
बिल्वपत्रैः सुमध्वक्तैर्मासमेकं निरन्तरम् ॥ ३१ ॥
सहस्रैकप्रमाणेन कृत्वा होमं समाहितः ।
अपि वन्ध्या लभेत् पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
बन्धूककुसुमं हुत्वा रक्तं मधुसितान्वितम् ।
दुर्भगा चैव या नारी सुभगा सा न संशयः ॥ ३३ ॥
(इडा?हठा)दागत्य कामार्ता बलादालिङ्गयन्ति तम्।

मन्त्रवेत्ता धतूर की लकड़ी से चिता की आग में कोयल और कौवे के पङ्ख से हवन करे तो शत्रु का नाश होता है । पूर्वोक्त विधान से चिता की लकड़ी तथा उसी की आग में हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है । उल्लू और कौवे के पङ्ख से निरन्तर होम करने से द्विष्ट को द्वेषयुक्त करता है । वे परस्पर एक दूसरे से कलह करने लगते हैं । उल्लू के पङ्ख से होम करने पर स्त्री का गर्भपात हो जाता है । मधुमिश्रित बिल्व के पत्र से एक महीने तक प्रतिदिन निरन्तर एक हजार होम करने से बन्ध्या स्त्री चिरञ्जीवी पुत्र प्राप्त करती है । लाल रंग का बन्धूक पुष्प मधु और मिश्री मिलाकर जो दुर्भगा नारी है वह सुभगा हो जाती है । ऐसा होम करने वाले के पास कामार्त्त स्त्रियाँ हठात् आकर उसका आलिङ्गन करती हैं ॥ २८-३३- ॥

इयं देवी महेशानी वामाचारफलप्रदा ॥ ३४ ॥
दक्षिणाचारयोगेन न भवेत् फलदायिनी ।
भोजनानन्तरं चास्या बलिं दद्याद् दिने दिने ॥ ३५ ॥
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं शिवे ।
उटजे वा श्मशाने वा शून्यागारे चतु(ष्टयं?ष्पथे)॥ ३६ ॥
बलिप्रदानतो देवी प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ।

अनयैवाभिसम्मन्त्र्य ओषध्यः सर्वसिद्धिदाः ॥ ३७ ॥

हे महेशानि! यह देवी वामाचार करने पर ही फल देती है। दक्षिणाचार करने से यह फलदायिनी नहीं होती। भोजन के बाद उसके लिये प्रतिदिन बलि देनी चाहिये। हे शिवे! जूठे मुंह से इसका एक-सौ आठ बार मन्त्र जपना चाहिये। कुटी श्मशान शून्यालय अथवा चौराहे पर बलि देने से देवी प्रत्यक्ष दर्शन देती है यह सत्य है। इसके मन्त्र से अभिमन्त्रित करने पर ओषधियाँ सर्वसिद्धिप्रद होती हैं ॥ ३४-३७ ॥

विविधसिद्धये विविधौषधप्रयोगः

चन्द्री चक्री तथा वज्री त्रिशूला मुद्गरी तथा ।
देहस्था समरे पुंसां सर्वायुधवि(धा?दा)रिणी ॥ ३८ ॥
गृहीतं पुष्यनक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम् ।
लेपमात्रेण धीराणां सर्वायुधनिवारणम् ॥ ३९ ॥
अर्जुनं च नारजं च(?चैव) चम्पकोन्मत्तकःकुहूः ।
लेपमात्राज्जयी युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ४० ॥
खर्जूरी मुखमध्यस्था कटीबद्धा च केतकी ।
भुजदण्डस्थितस्तालः सर्वायुधनिवारणः ॥ ४१ ॥
दक्षबाहुस्थितश्चार्को वामे तु हृदयेऽथवा ।
रुद्रः पुष्पगतो युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ४२ ॥

विविध सिद्धि के लिये विविध औषधि का प्रयोग—चन्द्री चक्री वज्री त्रिशूला तथा मुद्गरी ये देवियाँ यदि मनुष्य देह में स्थित हों तो सारे आयुधों को नष्ट करने वाली होती हैं। पुष्य नक्षत्र में अपामार्ग की जड़ लाकर शरीर में लेप करने से वीरों के सारे आयुध नष्ट हो जाते हैं। अर्जुन नारज चम्पा धतूर और कुहू के लेपन से मनुष्य वज्र शरीर वाला होकर युद्ध में विजय प्राप्त करता है। खजूर को मुख में रखने, केतकी को कटि में बाँधने, ताड़ को भुजा में बाँधने से समस्त अस्त्र शस्त्र का निवारण होता है। मदार को दाँयें हाथ में, रुद्र (= रुद्राक्ष) को बाँयें हाथ अथवा हृदय में, पुष्प के साथ रखने से मनुष्य युद्ध में वज्रदेही हो जाता है ॥ ३८-४२ ॥

त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा रसं वज्राभसंयुतम् ।
रणस्थस्य करस्थं च सर्वायुधनिवारणम् ॥ ४३ ॥
गिरिकर्णीं शमीं दूर्वां गुञ्जां वेतां समाहरेत् ।
चन्दनेनान्विताः सर्वास्तिलकाद्विजयी रणे ॥ ४४ ॥

अधःपुष्पा शिखी चैव श्वेता च गिरिकर्णिका ।
गोरोचनासमायुक्ता तिलकं शत्रुमोहनम् ॥ ४५ ॥
कनकार्को(?)वह्निरिन्द्रद्रुः पञ्चमस्तथा ।
करोति तिलकं यस्तु पश्येत्तं पञ्चधा रिपुः ॥ ४६ ॥
कृष्णसर्पकरालं तु रसं मृत्तिकयान्वितम् ।
सितगुञ्जां वपेत् तत्र तस्या मूलं समाहरेत् ॥ ४७ ॥
हरीतक्या समायुक्तं तिलकं शत्रुमोहनम् ।
कृततिलकं भटं दृष्ट्वा पश्येत् स्वं श्वावृतं रिपुः ॥ ४८ ॥
श्वगणैर्भ(क्ष?क्ष्य)माणस्तुपतत्येव ततो भुवि ।

रस अर्थात् पारद को त्रिलोह से वेष्टित कर यदि वज्राभ (= हीरा अथवा कुश) से संयुक्त किया जाय तो युद्ध क्षेत्र में स्थित मनुष्य के हाथ में रहने पर वह सारे अस्त्रों का निवारण करता है । गिरिकर्णी शमी दूर्वा गुञ्जा वेतस् को समान मात्रा में लाना चाहिये । इन सबको चन्दन के साथ पीस कर तिलक लगाने से मनुष्य युद्ध में विजयी होता है । उक्त द्रव्यों को गोरोचन से युक्तकर तिलक करने से शत्रु का सम्मोहन होता है । कनक = धतूर, अर्व्य = मदार, वह्नि = चिनक, इन्द्र = इन्द्रायण और द्रु = औषधि विशेष (?) इन पाँच वस्तुओं को मिलाकर जो तिलक करता है उसे शत्रुगण पाँच रूपों में देखते हैं । काले सर्प के समान विकराल रूप (= पारद) को मिट्टी में मिलाकर उसमें सफेद गुञ्जा बोये । बाद में उसकी जड़ को हरीतकी के साथ पीसकर तिलक करना शत्रु सम्मोहन करता है । जो इससे तिलक करता है उस योद्धा को देखकर शत्रु अपने को कुत्तों से घिरा हुआ देखने लगता है । कुत्तों के द्वारा अपने को भक्ष्यमाण देखकर वह भूमि पर गिर पड़ता है ॥ ४३-४८- ॥

छाया यस्य जले याति संग्राह्यः कासमर्द्दकः ॥ ४९ ॥
अनेन तिलकेनारिः कूपवापीं प्रपश्यति ।
ब्रह्मदण्डी च कौमारी ईश्वरी वैष्णवी तथा ॥ ५० ॥
वाराही वज्रिणी चान्द्री महालक्ष्मीस्तथैव च ।
एताश्चौषधयो दिव्यास्तथैता मातरः स्मृताः ॥ ५१ ॥
कृतताडी करे बद्धा सर्वशत्रुनिवारिणी ।
बहुना तु किमुक्तेन सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना ॥ ५२ ॥
षट्कर्मशालिनी विद्या प्रयोगात् सर्वसिद्धिदा ।
मूलविद्याप्रयोगेन सिद्धिहानिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
प्रयोगेच्छा स(?य)दा देवि तदैनांच प्रयोजयेत् ।

अनयाखिलकर्माणि साधयेत् साधकोत्तमः ।
प्रसङ्गात् कथितं देवि गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शेषिकाविद्याप्रयोगक्रमनिरूपणं नाम विंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २० ॥

◆

ऐसे कासमर्दक, जिसकी छाया जल में पड़ रही हो, का संग्रह करना चाहिये। इससे तिलक करने पर शत्रु तिलक करने वाले को कुँआं या तालाब के रूप में देखने लगता है और दूर भाग जाता है । ब्रह्मदण्डी घृतकुमारी, ईश्वरी (= सहदेवी) वैष्णवी (= विष्णुक्रान्ता) वाराहीकन्द, वज्रिणी (= वज्रवल्ली) चान्द्री (= वाकुची) और महालक्ष्मी—ये दिव्य औषधियाँ तथा मातायें भी हैं । ताली बजाकर हाथ में बाँधने पर ये समस्त शत्रु का निवारण करती हैं । अधिक कहने से क्या लाभ संक्षेप में मैं बतला रहा हूँ कि षट्कर्म वाली यह विद्या प्रयोग से सर्वसिद्धि देने वाली है । केवल मूलविद्या के प्रयोग से सिद्धि की निश्चित रूप से हानि होती है । हे देवि! जब किसी प्रयोग की इच्छा हो तो तभी इसका प्रयोग करना चाहिये । साधक इस विद्या के द्वारा समस्त कर्मों अर्थात् लक्ष्यों की सिद्धि कर सकता है । हे देवि! प्रसङ्गवश मैंने यह सब बतलाया । वैसे इसको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये ॥ ४९-५४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में शेषिकाविद्याप्रयोगक्रमनिरूपण नामक बीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २० ॥

◆

एकविंशः पटलः

पूजासम्पूरणाद्युपायविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

शङ्खजलप्रोक्षणं पादोदकग्रहणञ्च

ततो वै मूलमन्त्रेण महेशानीं धिया स्मरन् ।
अप्राश्य चैव निर्माल्यं पादोदकपुरः सरम् ॥ १ ॥
शिरसा धारयेद्यस्तु भूमौ बिन्दूंस्तु पातयेत् ।
ब्रह्महा स तु विज्ञेयो यद्भक्त्या चात्मसा(द्र?त्कृ)तम् ॥ २ ॥
शिवं गन्धं समादाय शङ्खतोये विलोकयेत् ।
सव्यहस्ते समादाय दक्षहस्तेन मन्त्रवित् ॥ ३ ॥
सप्तधा मन्त्रितं कृत्वा सर्वतीर्थमयं स्मरेत् ।
प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं मूलदेवीं हृदि स्मरन् ॥ ४ ॥
पादोदकं पिबेद् भक्त्या शेषं मूर्धनि योजयेत् ।
सर्वाङ्गलेपनं कृत्वा यन्त्रलेपादिकं च यत् ॥ ५ ॥
निर्मञ्छेत् कामबीजेन मूलमन्त्रेण चात्मनः ।
अनामिकाग्रपर्वेण(?र्वणा)ललाटमपि संस्पृशेत् ॥ ६ ॥
निर्माल्यं शिरसा धार्य सर्वाङ्गेष्वनुलेपनम् ।
मन्त्रेण भास्करायार्घ्यमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ॥ ७ ॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रमवधारयेत् ॥ ८ ॥

शङ्ख के जल से प्रोक्षण तथा पादोदक ग्रहण—इसके बाद मूलमन्त्र से महेश्वरी का मन से स्मरण करते हुए पादोदक के साथ निर्माल्य का प्राशन न कर उसे शिर पर चढ़ा लेना चाहिये । जो साधक उन बिन्दुओं को धरती पर गिराता है उसे ब्रह्महा समझा जाना चाहिये । भक्ति के साथ आत्मसात् की गयी

गन्ध को लेकर शङ्ख के जल में देखना चाहिये । इसके बाद मन्त्रवेत्ता उस शङ्खस्थ जल को बाँयें हाथ पर रखकर दाँयें हाथ से मूलमन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित कर वह जल सर्वतीर्थमय हो गया है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । इसके पश्चात् हृदय में मूल अर्थात् प्रधानदेवता का स्मरण करते हुए उस जल से अपना प्रोक्षण करना चाहिये । एतदनन्तर भक्तिभाव से चरणोदक को पीकर शेष जल को शिर पर लगा लेना चाहिये । भगवती के विग्रह का सर्वाङ्गलेपन तथा यन्त्र लेप आदि कर कामबीज और मूलमन्त्र से उसका निर्मञ्छन करना चाहिये । साथ ही अपनी अनामिका के अग्रपर्व से अपने ललाट का भी स्पर्श करना चाहिये । निर्माल्य को शिर से लगाना चाहिये । तथा अपने सारे अङ्गों में उसका लेप करना चाहिये । जो अर्चन आदि किया गया उसके अच्छिद्र होने के लिये मूलमन्त्र से सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये । तत्पश्चात् घुटनों के बल पृथिवी पर बैठकर वक्ष्यमाण मन्त्र का एकाग्रमन एवं वाणी से उच्चारण कर अच्छिद्र की अवधारणा करनी चाहिये ॥ १-८ ॥

अच्छिद्रनिवेदनं भास्करप्रणामश्च

यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु मार्तण्डस्य प्रसादतः ॥ ९ ॥
मार्तण्डभैरवं पश्चात् प्रणम्य च विलोकयेत् ।
आदावन्ते च देवस्य नमस्कारविलोकने ॥ १० ॥
कुर्याच्च सर्वदा भक्त्या धर्मकामार्थसिद्धये ।
यज्ञाधिकारिता चादौ पश्चात्सम्पूर्णता विधेः ॥ ११ ॥
विधेर्विपर्ययात् तस्य कृतं हरन्ति राक्षसाः ।
तमुद्यन्तं विलोक्यैव यजेदस्तमितं ततः ॥ १२ ॥

अच्छिद्र का निवेदन और सूर्य नमस्कार—अच्छिद्र मन्त्र यह है—'यज्ञच्छिद्रं. ....प्रसादतः ।' (जो यज्ञगत छिद्र अर्थात् न्यूनाधिक्य है जो तपगत छिद्र है अथवा मेरी पूजा में छिद्र है वह सब सूर्य की कृपा से अच्छिद्र अर्थात् छिद्ररहित हो जाय) । इसके बाद मार्तण्ड भैरव को प्रणाम कर उनका दर्शन करना चाहिये । साधक को चाहिये कि वह पूजन आदि के प्रारम्भ तथा अन्त में सूर्यदेव का नमस्कार और अवलोकन अवश्य करे । यह कार्य सदा भक्ति के साथ धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिये अवश्य करणीय होता है । नियम के विपरीत कार्य करने से आदि में यज्ञ की अधिकारिता और अन्त में अनुष्ठान की सम्पूर्णता दोनों का राक्षसगण हरण कर लेते हैं । इससे बचने के लिए उस भास्कर को उगता हुआ देखकर उसके बाद अस्त होते हुए उनका पूजन सम्पन्न करना चाहिये ॥ ९-१२ ॥

उभयोरेकतां मत्वा तमुद्यन्तं पुनस्ततः ।
स एवादौ स चान्तस्थः सोऽनन्तो ह्यन्त एव सः ॥ १३ ॥
आद्यमन्तं विदित्वैव सर्वकर्मफलं लभेत् ।
ततस्तु पुष्पनैवेद्यतोयपात्रादिकं च यत् ॥ १४ ॥
मायाबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ।
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यश्च कृतः पुरा ॥ १५ ॥
पात्रन्यासस्तस्य तस्य विसृष्टिरमुना भवेत् ।
तोयैरभ्युक्ष्य तत्स्थानं मार्जयेत् तदनन्तरम् ॥ १६ ॥
उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ।

दोनों अर्थात् भास्कर के उदय और उनके अस्त को सर्वथा एक मानकर और उनको उगता हुआ मान कर ध्यान करना चाहिये । वही आदि में हैं और वही अन्त में भी हैं और वह अनन्त होता हुआ भी सान्त है । बुद्धिमान् साधक आदि और अन्त को जानकर ही कर्म का सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है । इसके पश्चात् पुष्प, नैवेद्य, जल और पात्र आदि जो कुछ भी है साधक को उसका माया बीज (= ह्रीं) का उच्चारण करते हुए पुनः अवलोकन करना चाहिये । इस कृत्य से हाथ अथवा आँख से जहाँ-जहाँ जो पात्र-न्यास किया गया है उस सबका विसर्जन हो जाता है। विसर्जन के बाद उस स्थान का जल छिड़क कर शुद्धीकरण करना चाहिये । अन्त में उस निर्माल्य को जल अथवा किसी वृक्ष के मूल में गिरा देना चाहिये ॥ १३-१६- ॥

सशक्तिगुरवे नैवेद्यानिवेदनम्

नैवेद्यादीनि सर्वाणि गुरवे गुरुशक्तये ॥ १७ ॥
समर्प्योपायनं भक्त्या शिवाय गुरुरूपिणे ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणमेद् दण्डवत् प्रिये ॥ १८ ॥
आदाय गुरुणा दत्तं स्वीकुर्यात्तु विधानतः ।
तयोरभावतो दद्यात् कुमारीभ्यो यथाविधि ॥ १९ ॥

शक्तियुक्त गुरु के लिये नैवेद्य प्रदान—गुरु और गुरु की शक्ति के लिये नैवेद्य आदि सारे पदार्थों को समर्पित कर गुरुरूपी शिव के लिये उपहार देने के बाद हे प्रिये! घुठनों के बल पृथिवी पर बैठकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये और उनके द्वारा दिये गये पदार्थ को भक्ति एवं विधान के साथ स्वीकार करना चाहिए । गुरु और गुरुशक्ति के अभाव में कुमारियों के हाथों से विधिवत् प्रसाद लेना चाहिये ॥ १७-१९ ॥

मृतामृतभक्षणफलम्

अमृतं भक्षयेद् देवो भुक्त्वा देवत्वमालभेत् ।
अमृतं तद्विजानीयादुत्सृष्टं दैवतेन यत् ॥ २० ॥
परदैवतनैर्माल्यं विनान्यत् स्वीकृतं नहि ।
अनिवेद्य-शिवायैव यत्किंचित् स्वीकृतं प्रिये ॥ २१ ॥
(स?तत्)च पशुर्मृतं भुङ्क्ते लोकद्वययुतं प्रिये ।
पुरा सर्वे मनुष्याद्या भुक्त्वा मृतमि(ये?दं)नतु ॥ २२ ॥
देवत्वं(नोभवेत्?चालभन्)यस्मात्तन्नैव भक्षयेत् क्वचित् ।
दिव्यभावविशुद्धात्मा भक्षयेदमृतं यदि ॥ २३ ॥
नित्यमभ्यासयोगेन देवगामी भवेन्नरः ।

अमृतभक्षण का फल—न्यास आदि के द्वारा देवता बनकर अमृत (= सुरा आदि) का भक्षण करना चाहिये और इस भक्षण से फिर देवत्व प्राप्त करना चाहिये। अमृत उसे जानना चाहिये जो देवताओं को समर्पित करने के बाद अवशिष्ट हो। परादेवता के नैर्माल्य को छोड़कर अन्य प्रकार का अमृत स्वीकार्य नहीं होता। हे प्रिये! शिव को निवेदित किये बिना जो कुछ साधक के द्वारा स्वीकृत होता है वह साधकपशु दोनों लोकों में मृत खाता है अमृत नहीं। प्राचीन काल में मनुष्य लोग मृत का भक्षण कर देवत्व को प्राप्त नहीं किये (वे पशु ही रह गये) इस कारण कभी भी मृत अर्थात् परा देवता के लिये अनिवेदित, पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिये। यदि कोई साधक दिव्य भाव से विशुद्ध आत्मा वाला होकर नित्य अभ्यास के साथ अमृत का भक्षण करता है तो वह मनुष्य देवगामी हो जाता है ॥ २०-२३- ॥

अमृतोपस्तरं कृत्वपिधानमपि तेन वै ॥ २४ ॥
बलिशेषं समादाय जुहुयाच्चैव पूर्ववत् ।
हुत्वामृतं ततो भक्त्या प्राशयेद् भावशुद्धितः ॥ २५ ॥
भुक्त्वामृतं तदा देवि हस्तं मूर्धनि विन्यसेत् ।
त्रितत्त्वेन त्रिधाचम्य षडङ्गानिं प्रविन्यसेत् ॥ २६ ॥
शिवो दाता च(भ?भो)क्ता च शिवः सर्वमिदं जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ॥ २७ ॥
शक्तीरलंकृतवक्त्राः सुवेशाः सुमनोहराः ।
पश्येत्तु देवतादृष्ट्या ता एव देवता यतः ॥ २८ ॥
तथैव ब्रह्मणान् पश्येद्भूदेवाञ् शुद्धमानसान् ।

भक्त्या नत्वा प्रमुदितस्ततः स्वानवलोकयेत् ॥ २९ ॥
अनेन विधिना देवि सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
तत्कृपालब्धविज्ञानपूर्णोऽहमिव भूतले ।
भावनावशसम्पन्नो विहरेत् तु तदिच्छया ॥ ३० ॥

अमृत को नीचे तथा ऊपर रखकर बलि के शेषभाग का पूर्व की भाँति हवन सम्पन्न करे तथा हवन करने के बाद भावशुद्धि और भक्ति के साथ शेष अमृतद्रव्य का भक्षण करे । अमृत का भक्षण करने के उपरान्त हे देवि! साधक अपने हाथ को शिर पर रखे तथा त्रितत्त्व (= ?) से तीन बार आचमन कर षडङ्गन्यास करे । शिव दाता हैं; यह सम्पूर्ण जगत् भी शिव हैं; शिव ही सर्वत्र जयशील है । जो शिव है वही मैं हूँ—ऐसा ध्यान करना चाहिये । अलङ्कारों से अलंकृत सुन्दर वेश धारण की हुई सुमनोहर शक्तियों को देवता दृष्टि से देखना चाहिये क्योंकि वे भी देवतायें ही हैं । उसी प्रकार शुद्धचित्त वाले ब्राह्मणों को भी भूदेव के रूप में देखना चाहिये । भक्ति के साथ उनको प्रणाम करने के बाद अपने बन्धु बान्धवों को देखना चाहिये । हे देवि! इस विधि से परमेश्वरी ललिता की पूजाकर उसकी कृपा से साधक विज्ञान को प्राप्त कर पूर्ण हो जाता है और पृथिवी पर मेरी तरह देवी की भावना से पूर्ण होकर उसकी इच्छा से धरती पर विहार करता है ॥ २४-३० ॥

देव्युवाच—

क(स्य?थं)वा क्रियते पूजा(न?नु)गृह्णेतनिवेदिता ।
कथं वा प्रत्ययं चेतस्तदुपायं वद प्रभो ॥ ३१ ॥

देवी ने कहा—हे प्रभो! उसकी पूजा किस प्रकार की जाती है? किस प्रकार वह पूजा का स्वीकार करेगी । किस प्रकार मन में विश्वास होगा कि उसने अर्चना का स्वीकार कर लिया है? और उसका उपाय क्या है? यह बतलाइये ॥ ३१ ॥

परतत्त्वज्ञानविधिस्तन्माहात्म्यञ्च

ईश्वर उवाच—

साधु पृष्टं त्वया भद्रे स्मरणान्मुक्तिदायकम् ।
शिवरूपं परं ब्रह्म अनुत्तरपदं महत् ॥ ३२ ॥
तदन्तःस्थं परं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् ।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ३३ ॥
अभ्यसेद् बहुशस्तत्र श्रुतिदर्शितवर्त्मना ।
वर्णरूपं तु शब्दस्य तन्मय्यस्तत्क्रियास्तथा ॥ ३४ ॥

जप्त्वा कृत्वा भवेत् सिद्धिर्भोगमोक्षमयी ततः ।
यावन्मनो लयं याति तस्मिन् स्वात्मनि चिन्मये ॥ ३५ ॥
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समाचरेत् ।
अतः परं न किंचित् तु कृत्यम(सि?स्ति)तदात्मनः ॥ ३६ ॥

परतत्त्वज्ञान की विधि और उसका माहात्म्य—ईश्वर ने कहा—हे भद्रे! तुमने उचित प्रश्न किया । शिव का रूपस्मरण करने से ही मोक्ष देता है । वह परब्रह्म महत् और अनुत्तर है । वही अन्तःस्थ अर्थात् सर्वभूतान्तःस्थित सनातन ज्योतीरूप परब्रह्म है । आत्मस्वरूप वह उसी प्रकार स्वयं प्रकाशित होता है जैसे बादलों के छँट जाने पर सूर्य । साधक को चाहिये कि वह वेद में प्रदर्शित मार्ग के अनुसार अनेक बार प्रयास करे । वह शब्द में स्थित वर्णरूप है । उसकी जप आदि क्रियायें भी तन्मयी होती हैं । उसका जप और उसके लिये होम आदि कार्य कर भोग-मोक्ष दोनों की सिद्धि होती है । जब तक साधक का चित्त उस चिन्मय स्वात्मा में लीन न हो जाय तब तक मन्त्री इष्ट मन्त्र का जप और होम करता रहे । इसके बाद अर्थात् चित्त के आत्मलीन होने पर कोई भी कार्य करणीय नहीं रहता ॥ ३२-३६ ॥

विदिते परमे तत्त्वे समस्तैर्नियमैरलम् ।
तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते ॥ ३७ ॥
अवश्यं च भावि फलं तदाप्तौ तत्करोति यः ।
आस्तिकः स तु विज्ञेयः क्रमान्मोक्षे प्रतिष्ठितः ॥ ३८ ॥
प्राप्य न्यसेत्तदा तस्मिन् कृत्वा तद्रहितं न्यसेत् ।
उभयात्मकं तु विन्यस्य स संन्यासी मुनिर्मतः ॥ ३९ ॥
यन्त्रं शरीरमत्रोक्तं विदित्वा कमलेक्षणे ।
कृत्वा चाहंमतिं तत्र यजेद्भक्त्या समाहितः ॥ ४० ॥

परमतत्त्व का ज्ञान होने पर सारे नियम व्यर्थ हो जाते हैं । यदि मलय पवन का झोंका मिल रहा हो तो पङ्खा की क्या जरूरत । जप आदि का फल अवश्य मिलता है । उसकी प्राप्ति के लिये जो उस कार्य अर्थात् जप आदि को करता है उसे आस्तिक जानना चाहिये । वह क्रमशः मोक्ष को प्राप्त करता है ।

दोनों प्रकार का न्यास करने वाला ही संन्यासी और मुनि माना गया है । इस अर्चनाक्रम में शरीर को यन्त्र कहा गया मानकर हे कमलेक्षणे! इस शरीर में अहंभाव कर भक्ति के साथ समाहित होकर पूजन करना चाहिये ॥ ३७-४० ॥

यद्रूपं परमेशान्या नि(षा?ष्क)लं सक(लार्ण?लं च) वा ।

आत्म(I)भेदेन सम्पूज्य आत्मानं प्रियमीश्वरीम् ॥ ४१ ॥
तदानन्दमयं धाम याति पश्चान्न संशयः ।
एवं सा पञ्चमी प्रोक्ता पञ्चधा प्रथितविग्रहा ॥ ४२ ॥
पञ्चतत्त्वात्मके देहे प्रत्यक्षीक्रियते हि तैः ।
नान्यत्र वै भेवद् व्यक्ताविनात्मनि विचिन्तनम् ॥ ४३ ॥
अनुमानं महेशान्या आत्मन्येव नच क्वचित् ।
अनुमीयं परं चैवं सर्वमात्मवदाचरेत् ॥ ४४ ॥

परमेश्वरी का जो सकल-निष्कल रूप है साधक उस प्रिय ईश्वरी की आत्मा से अभिन्न रूप में पूजाकर बाद में आनन्दमय धाम को जाता है इसमें सन्देह नहीं । इस प्रकार वह पञ्चमी कही गयी है क्योंकि उसने अपने शरीर का पाँच प्रकार से अर्थात् पाँच तत्त्वों के रूप में विस्तार किया है । साधकों के द्वारा पञ्चतत्त्वात्मक देह में उसका प्रत्यक्ष किया जाता है। आत्मा में उसके स्वरूप के चिन्तन के विना अन्य उपायों से उसका प्रत्यक्ष नहीं होता । महेश्वरी का आत्मा में अनुमान कभी भी नहीं हो सकता । इस प्रकार परतत्त्व का अनुमान कर सबके विषय में आत्मवत् व्यवहार करना चाहिये ॥ ४१-४४ ॥

देवतादीनातुष्टिप्रकारि वर्णनम्

वस्तूनां गन्धमात्रेण सौरूप्यदर्शनात् तथा ।
तुष्यन्ति देवताः श्रेष्ठाः स्तुत्या लभ्याश्च पार्वति ॥ ४५ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः ।
उपभोगेन तुष्यन्ति मनुष्याद्याश्च जन्तवः ॥ ४६ ॥
गुरोः शरीरमास्थाय कुमारीणां विशेषतः ।
ब्राह्मणानां गवां चैव भुञ्जते देवताः पराः ॥ ४७ ॥
तस्मात्तांश्च प्रयत्नेन भोजयेत् तोषयेत् सदा ।
तुष्टेष्वेषु महादेवी परितुष्टा जगन्मयी ॥ ४८ ॥
ब्राह्मणानां शरीरस्था भुञ्जते पितरस्तथा ।
अनङ्गव्यवधानं स्यादङ्गहीनं तु यद्भवेत् ।
साङ्गं भवति तत् सर्वं मिष्टान्नैर्विप्रभोजनात् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पूजासम्पूरणाद्युपायविधिनिरूपणं नामैकविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २१ ॥

◆

देवता आदि की तुष्टि के प्रकार—वस्तुओं की गन्ध सूँघने से, सुन्दर रूप का दर्शन करने से श्रेष्ठ देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं । हे पार्वति! किन्तु उनकी प्राप्ति अर्थात् उनका प्रत्यक्ष स्तुति के द्वारा होता है । जहाँ तक भूत प्रेत पिशाच यक्ष राक्षस पन्नग और मनुष्य आदि जन्तुओं का प्रश्न है तो वे वस्तुओं के उपभोग से तृप्त होते हैं । उच्च कोटि की देवतायें गुरु और विशेषरूप से कुमारियाँ ब्राह्मणों, गायों के शरीर में आविष्ट होकर वस्तुओं का भोग करती हैं । इस कारण उन गुरु कुमारी आदि को प्रयत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये और नाना प्रकार के वस्तु-समर्पण से सन्तुष्ट करना चाहिये । हे महादेवि! इनके तुष्ट होने पर पराम्बा तुष्ट होती है । पितर लोग भी ब्राह्मणों के शरीर पर अवस्थान कर भोग करते हैं । जो अनुष्ठान अनङ्ग अर्थात् कामात्मकता के कारण व्यवहित हो जाता है अथवा अन्य किसी कारण से अङ्गरहित अथवा प्रमादवश अङ्गहीन हो जाता है वह सब ब्राह्मणों को मधुरान्न खिलाने से साङ्ग और सम्पूर्ण हो जाता है ॥ ४५-४९ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में पूजासम्पूरणाद्युपायविधि-निरूपण नामक एकविंश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

◆

द्वाविंशः पटलः

कुमारीपूजनविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

अन्तर्देवताप्रतीतेः सिद्धत्वम्

**हृदिस्थं परमात्मानं विहायान्यत् समीहते ।
अहो मूढो वरारोहे बहिर्यन्मृग्यतेऽन्धवत् ॥ १ ॥
विज्ञाय हृदयान्तःस्थं परं(य?प्र)कृतिगोचरम् ।
तन्निष्ठकर्मणा चैनमात्मन्येवं प्रतीयते ॥ २ ॥
तत्प्रतीतौ भवेत् सिद्धो नान्यथा खलु पार्वति ।
अहं विष्णुः स्वयम्भूश्चस्वायम्भवा इमे वयम् ॥ ३ ॥
तदनुभूय देहेऽस्मिंस्तदेव समुपास्महे ।
तदन्तःस्थं समाहूय तदेवं तु यजामहे ॥ ४ ॥
उद्वास्य च तदात्मानं स्थापयित्वा निजे हृदि ।
निवेदितं तु तत्प्रीत्यै तस्मिन्नेव निवेदयेत् ॥ ५ ॥
विनामृतं न चान्यत् तु काङ्क्षन्ते देवतागणाः ।
अमृतेनैव तत्पूजा अमृतं तु निवेदयेत् ॥ ६ ॥
अमृतत्वं लभेद्वीरः स्वीकृत्यात्मनिवेदितम् ।
इति ते कथितं देवि शेषिका(मतृ?मृत)मुत्तमम् ॥ ७ ॥
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन ज्ञायते कृपया गुरोः ।**

अन्तर्देवता की प्रतीति से सिद्धि—ईश्वर ने कहा—हृदयस्थ परमात्मा को छोड़कर जो अन्य किसी की इच्छा करता है, हे वरारोहे! आश्चर्य है कि वह मूर्ख अन्धे कें समान लक्ष्य को बाहर खो जाता है । प्रकृति के गोचर अर्थात् विषयभूत हृदयान्तःस्थ परमात्मा को जानकर उसके प्रति समर्पित कर्म करने से

साधक इस परतत्त्व को अपने अन्दर ही देखता है । हे पार्वति! उसका अनुभव होने पर वह साधक सिद्ध हो जाता है अन्यथा नहीं । 'मैं विष्णु और ब्रह्मा हूँ' । 'हम सब स्वयभू की सन्तान हैं' । इस देह में ऐसा अनुभव कर इसी की उपासना हम कर रहे हैं । अन्तःस्थ उसी का आवाहन कर उसी का यजन कर रहे हैं । उस आत्मदेव का उद्वासन कर अपने हृदय में स्थापना करने के बाद जो कुछ उनको प्रसन्न करने के लिये निवेदित किया गया यह उस हृदय में ही निवेदित करना चाहिये । देवता लोग अमृत को छोड़कर दूसरा कुछ नहीं चाहते । अमृत से ही उनकी पूजा करनी चाहिये और अमृत का ही भोग लगाना चाहिये । इस प्रकार आत्मनिवेदन कर वीराचारी साधक अमृतत्त्व को प्राप्त करता है । हे देवि! इस प्रकार तुमको शेषिकामृत बतलाया गया । गुरु की कृपा से इसको स्थूल सूक्ष्म भेद से जाना जा सकता है ॥ १-७- ॥

कर्मणस्त्रैविद्ध्यवर्णनम्

नित्यं नैमित्तिकं(कर्म?काम्यं)चेति तेषां पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
त्रिविधं त्रैपुरं कर्म क्रमतस्तत् समाचरेत् ।
यदुक्तं तामसं त्यक्त्वा तत् सर्वं यत्नतश्चरेत् ॥ ९ ॥
दैनन्दिनमतो नित्यं पातकमविधानतः ।
मासिकं तिथिकृत्यं च वार्षिकं फलदायकम् ॥ १० ॥
लङ्घनान्निरयो यस्य नित्यं श्रद्धावि(धान?घात)तः ।
नैमित्तिकं विजानीयाच्छ्रद्धया तत्समाचरेत् ॥ ११ ॥

कर्म के तीन भेद—नित्य नैमित्तिक और काम्य ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं । त्रिपुरसुन्दरी के इन तीनों कर्मों को अलग-अलग करना चाहिये । जो तामस कर्म कहा गया है उसको छोड़कर शेष सब को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये । जो प्रतिदिन किया जाता है वह नित्य कर्म होता है । उसका विधान न होने पर मनुष्य को पाप लगता है । मासिक, तिथियों पर किया जाने वाला और वार्षिक कर्म फलदायक होता है । जिसके उल्लङ्घन से नरक मिलता हो और जो नित्य श्रद्धा-विघात से भी नरक को ले जाय उसे नैमित्तिक कर्म जानना चाहिये । ऐसे कर्म को श्रद्धा के साथ करना चाहिये ॥ ८-११ ॥

फलमात्रश्रुतिर्यस्य श्रुतिस्मृतिप्रचोदिता ।
काम्यं तत्तु विजानीयात् पूजितं तत्र गोचरे ॥ १२ ॥
विदध्यात् तत्प्रयत्नेन यत् पुनर्लोकपूजितम् ।
धर्ममपि त्यजेत् साधु यत् पुनर्लोकगर्हितम् ॥ १३ ॥
नित्यं सात्त्विकमेवात्र नैमित्तिकं तु राजसम् ।

तामसं काम्यमेवात्र कुर्यात् फलवितृष्णया ॥ १४ ॥

जिसके केवल फल की श्रुति मिलती है और यह श्रुति वेदों और स्मृतियों में वर्णित है उसे काम्य कर्म समझना चाहिये । जो काम्य कर्म लोक में आदर प्राप्त है उसे करना चाहिये और जो लोक में निन्दित है वह धर्म कार्य हो तो भी उसे नहीं करना चाहिये । नित्य कर्म सात्त्विक हो नैमित्तिक राजस हो तथा काम्य तामस हो तो उसे फल की इच्छा न करते हुए करना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

तृष्णां तां दूरतस्त्यक्त्वा मनः पूर्णं विचिन्तयेत् ।
पूर्णे मन(सि?स्य)तृष्णे च पूर्णं सर्वमिदं जगत् ॥ १५ ॥
उपानद्गूढपादस्य ननु चार्मवृतैव भूः ।
फलविरहितं काम्यं नित्यं नैमित्तिकं तथा ॥ १६ ॥
क्रियते त्रिपुराप्रीत्यै कृत्वा त(स्मै?स्यै)निवेदनम् ।
सात्त्विकं तद्विजानीयाद् भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ १७ ॥
यस्य यद्विहितं कर्म त्रिविधं तत्र गोचरे ।
श्रुतिस्मृत्युदितं चापि मनसापि न हारयेत् ॥ १८ ॥
कर्मलोपादधोयोनौ जायते साधकाधमः ।

उस तृष्णा को दूर से ही छोड़कर मन को सर्वथा परिपूर्ण समझना चाहिये । जब मन पूर्ण और तृष्णारहित हो जाता है तो यह सम्पूर्ण संसार पूर्ण प्रतीत होता है । जिसके पैर में जूता लगा हो उसके लिये सारी पृथिवी चमड़े से आवृत प्रतीत होती है । नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्मों को फल की इच्छा से न कर त्रिपुरसुन्दरी की प्रसन्नता के लिये करके उसके दाँयें हाथ में कर्म को समर्पित कर देना चाहिये । ऐसा कर्म सात्त्विक होता है जो भोग और मोक्ष दोनों देता है । जिस मनुष्य के लिये जो कर्म विहित है तीन प्रकार का वह कर्म श्रुति और स्मृति में वर्णित हो तो उसे न करने की बात मन से भी नहीं सोचनी चाहिये । कर्म का लोप होने पर साधकाधम नरक योनि में जाता है ॥ १५-१८- ॥

शिवशक्तिरूपेण मातापित्रोः पूजनफलम्

शिवशक्तिमयं विश्वं विदित्वा सद्गुरोः प्रिये ॥ १९ ॥
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन पितृमातृस्वरूपतः ।
कर्मभिस्तोषयेत् तौ तु तद्भावमाश्रितः सदा ॥ २० ॥
उभयात्मा भवेत् सिद्ध्यै नैकात्माज्ञानवर्जितः ।
ज्ञानचक्षुस्तयोरैक्यं विदित्वा श्रीगुरोः क्रमात् ॥ २१ ॥
अनुभूय तदानन्दं तदात्मा तत्र संविशेत् ।

माता-पिता का शिव शक्ति के रूप में पूजन—हे प्रिये! विश्व को शिवशक्तिमय जानकर स्थूल सूक्ष्म भेद से पिता-माता के स्वरूप से अर्थात् स्थूल रूप में जो पिता-माता हैं सूक्ष्म रूप में वही शिवशक्ति हैं—ऐसा समझ कर अपने विनीत कर्मों से सदा शिव शक्ति भावयुक्त होकर उन दोनों अर्थात् पिता-माता को सन्तुष्ट करना चाहिये । यदि दोनों को उभय स्वरूप अर्थात् शिव शक्ति रूप माना जाय तो यह धारणा सिद्धि के लिये होती है । यदि दोनों को अनेकात्मा अर्थात् भिन्न-भिन्न माना जाय तो ऐसा मानने वाला ज्ञानरहित होता है । श्रीगुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान-चक्षु से उन दोनों को एक जानकर और इस ऐक्य के आनन्द का अनुभव कर तदात्मा अर्थात् शिवशक्त्यात्मा होकर उसमें अर्थात् शिव तत्त्व में प्रवेश करना चाहिये ॥ १९-२१- ॥

मातुः पितुर्यथा बालो व्युत्पत्तिं लभते क्रमात् ॥ २२ ॥
तयोः समत्वसंधानाद् व्युत्पन्नो ज्ञानमालभेत् ।
देवताः शक्तिरित्याहुः पितरः शिव एव च ॥ २३ ॥
एतावुभौ तांस्तु सर्वान् सुहृदः पूर्वसूचितान् ।
बलिभिस्तर्पयेत् तांस्तु सुहृद्भिश्च हतोऽन्यथा ॥ २४ ॥
तेषां बलिं पुरस्कृत्य तावुभौ परितोषयेत् ।
पश्चात् तेभ्यो निवेद्यैव सुहृद्भिर्विहरेन्मुदा ॥ २५ ॥

जिस प्रकार बालक माता एवं पिता से क्रमशः ज्ञान प्राप्त करता है इसी प्रकार उन दोनों के ऐक्य का सन्धान कर व्युत्पन्न मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है । देवताओं को शक्ति और पितरों को शिव कहा गया है । इन दोनों को तथा उन सब पूर्वसूचित मित्रों को बलियों से तृप्त करना चाहिये और उन देवों तथा पितरों को सुहृदों से तृप्त करना चाहिये अन्यथा साधक हत हो जाता है अर्थात् उसका अनुष्ठान निष्फल हो जाता है । उनको बलि देकर उन दोनों अर्थात् माता-पिता को सब प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिये । इसके पश्चात् उन सबको नैवेद्य प्रदान कर मित्रों बन्धु बान्धवों के साथ विहार करना चाहिये ॥ २२-२५ ॥

स्वाहान्तेन च देवेभ्यो मनुष्ये हन्तकारतः ।
स्वधान्तेन पितृभ्यस्तु तेभ्यो लभ्यन्तगेन(?भ्यसन्तेन)तु ॥ २६ ॥
निराशाः पितरस्तस्य यास्यन्ति खलु पार्वति ।
सुहृदो ज्ञातयश्चापि वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ २७ ॥
सुहृदो वर्ष्म खादन्ति ज्ञातयः कर्म संचितम् ।

देवताओं को मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' कहकर मनुष्यों को 'अहंन्ते' से पितरों को 'स्वधा' कहकर उन सबके लिये शब्द के बाद 'भ्यस्' चतुर्थी बहुवचन

का प्रयोग कर तृप्त करना चाहिये । जो मनुष्य भ्यसन्त एवं स्वधा प्रयोग नहीं करता उसके पितृगण हे पार्वति! निराश होकर लौट जाते हैं । जिसके सुहृद् और भाई बन्धु वाणी से भी पूजित नहीं होते मित्र लोग उसके शरीर को और भाई बन्धु उसके सञ्चित पुण्यकर्म को खा जाते हैं ॥ २६-२७- ॥

ऐहिकं स्वपिता हन्ति स्वमातापारलौकिकम् ॥ २८ ॥
लोकद्वयविहीनस्तु नैव सिद्धिं प्रविन्दते ।
अयष्ट्वा पितरं यज्ञे यजेन्मातरमम्बिकाम् ॥ २९ ॥
विधिशतैरपि यज्ञं नानुगृह्णाति शाश्वती ।
आदावन्ते पितुस्तस्मात् कुर्यात् तर्पणमादरात् ॥ ३० ॥
आदत्तं नोपतिष्ठेत दद्यात् तस्मादतः परम् ।

अतृप्त पिता मनुष्य के इस लोक को नष्ट कर देता है । माता पारलौकिक अदृष्ट को नष्ट कर देती है । दोनों लोकों से विहीन मनुष्य सिद्धि को नहीं प्राप्त करता । जो याजक यज्ञ में पिता की पूजा न कर मा अम्बिका की पूजा करता है सैकड़ों उपाय करने पर भी नित्या माता उस याजक के ऊपर अनुग्रह नहीं करती । इसलिये पूजा अथवा यज्ञ के आदि तथा अन्त में पिता का आदर के साथ तर्पण करना चाहिये । जो उन्होंने ले लिया उसको फिर से नहीं देना चाहिये । उससे भिन्न वस्तु को देना चाहिये ॥ २८-३०- ॥

अन्येभ्यो दानं योगक्षेमकरणं च

गोभूहिरण्यवस्त्रादि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ॥ ३१ ॥
वासिनीभ्यो द्विजेभ्यश्च दीनान्धकृपणाय च ।
त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म लौकिकंभावत्परः ॥ ३२ ॥
योगक्षेमे हितं यत्तु कुर्यात् तदनुशासनात् ।
समर्थो जीवयेत् स्नेहात् स्वकीयाननुजीविनः ॥ ३३ ॥

अन्य लोगों के लिये दान योग-क्षेम का कारण बनता है—गाय भूमि सुवर्ण वस्त्र आदि और जो भक्ष्य भोज्य पदार्थ हैं इनको ग्रामवासिनी स्त्रियों ब्राह्मणादिकों अन्धों दीन कृपणों के लिये दानकर साधक भक्तिभाव से तत्पर होकर आवश्यक लौकिक कर्म करे । जो कर्म योग-क्षेम करने वाला तथा हितकारी हो साधक आचार्य की आज्ञा से उस कर्म को करे । समर्थ साधक अपने अनुजीवियों को प्रेम के साथ सजीव रखे ॥ ३१-३३ ॥

दुष्टेभ्यो दुष्टचित्तेभ्यो हिंस्रसाहसिकात् तथा ।
बलिभ्यो धनमत्तेभ्यः कायस्थेभ्यो विशेषतः ॥ ३४ ॥

रक्षयेत् पालयेत् साधुः पुत्रानिव (नि?पि)तौरसान् ।
लोकांश्च त्रिविधान्मत्वा लालयेत् पालयेत् सदा ॥ ३५ ॥
वध्यान् वध्यात्तथा दण्ड्यान् दण्डयेच्छास्त्रदर्शनात्।
अवध्यस्य वधे यावांस्तथादण्ड्यस्य दण्डने ॥ ३६ ॥
दण्ड्यस्यादण्डने पापस्तावान् वध्यस्य रक्षणे ।
इति विज्ञाय योगात्मा योगक्षेमं समाचरेत् ॥ ३७ ॥

वह सज्जन अपने अनुजीवियों की दुष्टों, दूषित चित्त वालों, हिंसक जन्तुओं, चोरों बलवान् धनमत्त और विशेष रूप से कायस्थों से उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार पिता अपने आत्मजों की रक्षा करता है । जनता को तीन प्रकार का मानकर सदा उसका लालन-पालन करे । वध्यों का वध करे; दण्डनीयों को शास्त्रीय नियमों के अनुसार दण्डित करे । अवध्य के वध तथा अदण्डनीय को दण्ड देने पर जितना पाप लगता है, वध्य का वध न करने; दण्ड्य को दण्ड न देने पर भी उतना ही पाप लगता है—ऐसा समझ कर योगात्मा योगक्षेम का आचरण करे ॥ ३४-३७ ॥

विभूतिदर्शनं देव्यै च तन्निवेदनम्

विभूतीरात्मनः पश्येत् तत्प्राप्त्या तन्निवेदयेत् ।
विभूतीरात्मनो यस्तु महादेव्यै निवेदयेत् ॥ ३८ ॥
ताभिरेव युतो भूयादणिमादिविभूतिभिः ।

विभूति का दर्शन और देवी को उसका समर्पण—साधक अपनी विभूतियों का दर्शन करे और उसका महादेवी के लिए निवेदन करे । जो अपनी विभूतियों है उनको महादेवी के लिये प्रदर्शित करे । इसके परिणामस्वरूप वह उन अणिमादि विभूतियों अर्थात् सिद्धियों से युक्त हो जाता है ॥ ३८- ॥

योगिनश्चतुष्कालिकोपासनाप्रकारः

मुहूर्त्तत्रयमात्रं तु कुर्यात् तनुविचिन्त(येत्?नम्) ॥ ३९ ॥
चिन्तयेत् परमं ब्रह्म मध्याह्ने समुपागते ।
मुहूर्तत्रयमात्रं तु निद्रया समुपासयेत् ॥ ४० ॥
ततो बुद्ध्वा यथाकाले तामेव समुपासयेत् ।
ललितानि च नृत्यानि गीतानि मधुराणि च ॥ ४१ ॥
दर्शयेच्छ्रावयेद् देव्यै भावात्मा तद्विलोकयेत् ।
नृत्येषु गीतनियता देव्यः स्रक्चन्दनार्चिताः ॥ ४२ ॥

भूषिताश्चारुभूषाभिर्वि(दुवे?हरे)त् ताभिरेव च ।
ततो मध्ये स्वयं देवः कामेश्वर इवापरः ॥ ४३ ॥
कामेश्वरीयुतो भूत्वा यजेत् कामेश्वरीं ततः ।

योगियों की चतुष्कालिक उपासना—केवल तीन मुहूर्त्त तक अपने शरीर का ध्यान करना चाहिये । मध्याह्न होने पर परम ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये । इसके बाद तीन मुहूर्त्त तक निद्रा के द्वारा अपने देह की उपासना करनी चाहिये । इसके अनन्तर उचित समय में जागकर पुनः उसी देवी की उपासना करनी चाहिये। मनोहारी नृत्यों तथा मधुर गीतों को देवी को दिखाना तथा सुनाना चाहिये । भक्तिभाव से पूर्ण आत्मा वाला होकर देवी का तथा नृत्य आदि का अवलोकन करना चाहिये । नृत्य के समय देवियाँ अर्थात् स्त्रियाँ माला चन्दन से सुसज्जित होकर सुन्दर अलङ्कारों से अलंकृत होकर रहें तथा गान करती रहें । साधक को चाहिये कि ऐसी स्त्रियों के साथ विहार करे । इसके पश्चात् उन स्त्रियों के मध्य साधक दूसरे कामदेवी के समान कामेश्वरी अर्थात् प्रधान साधिका से युक्त होकर कामेश्वरी की पूजा करे ॥ ३९-४३- ॥

ब्रह्मचिन्तापरामोदमुदितो राज्यचिन्तकः ॥ ४४ ॥
मुहूर्तत्रयमात्रं तु निद्रया समुपासयेत् ।
दिवा दद्यात् पितृभ्यस्तु मातृभ्यो निशि तत्परः ॥ ४५ ॥
माता रात्रिः समाख्याता पिता दिवस एव च ।
उभयोरेकतां मत्वा सिद्धो भवति नान्यथा ॥ ४६ ॥
सोमः शक्तिः शिवः सूर्यो निशा शक्तिर्दिवा शिवः ।
यदा स भगवान् देवो महात्रिपुरभैरवः ॥ ४७ ॥
परापरायणोऽनन्तः परमानन्दनिर्भरः ।
परापररहस्याख्यां योगिनीं ब्रह्मरूपिणीम् ॥ ४८ ॥
शिवानन्दानन्दमयीं महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
आकृष्योर्ध्वं यदा तिष्ठेत् तदहः परिकी(र्त?र्त्य)ते ॥ ४९ ॥

ब्रह्मध्यान के कारण परम आनन्द से आनन्दित तथा राज्य की चिन्ता करने वाला साधक तीन मुहूर्त्त तक निद्रा के द्वारा उपासना करे । दिन में पितरों के लिये और रात्रि में माताओं के लिये यजन करना चाहिये । माता को रात्रि एवं पिता को दिन कहा गया है । साधक दोनों को एक मानकर ही सिद्ध होता है अन्यथा नहीं । सोम शक्ति है, सूर्य शिव हैं, रात्रि शक्ति है, दिन शिव है । भगवान् महात्रिपुर भैरव जब पराशक्ति में आसक्त होकर अपने विराट् स्वरूप में स्थित तथा परमानन्द निर्भर हो जाते हैं और उसके परिणाम स्वरूप परापररहस्या

नामक योगिनी ब्रह्मरूपिणी शिवानन्द आनन्दमयी है उस महात्रिपुरसुन्दरी को ऊपर आकृष्ट कर विराजते हैं तो यह योगियों का दिन होता है ॥ ४४-४९ ॥

शक्तिभैरवसंयोगादानन्दानन्दनिर्भ(या?रा)त् ।
भैरवानन्द(नम्रा?मग्ना)न्तर्लीला सा परमा कला ॥ ५० ॥
मध्याह्नं तद्विजानीयान्मुहूर्तत्रयलक्षितम् ।
तौ तदा समभागेन तिष्ठेतां शक्तिभैरवौ ॥ ५१ ॥
पूर्वापरौ तदा ज्ञेयावेतद् द्विगुणलक्षितौ ।
परस्पराद्वैतेप्सन्तौ प्राप्ताद्वैतौ तु मध्यतः ॥ ५२ ॥
अभिजिन्नाम जानीयात् तत्कालं सुरवन्दिते ।
तत्तत्तेजोभिराकीर्णं तयोरैक्यं तदा भवेत् ॥ ५३ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोट्ययुतप्रभम् ।

जब शक्ति और भैरव के संयोग से जो कि महाआनन्द से परिपूर्ण है, वह परमाकला भैरवीय आनन्द में मग्न होकर अपने ही अन्दर लीला करने लगती है तो वह मध्याह्न कहा जाता है । वह तीन मुहूर्त्त वाला होता है । उस समय भैरव और भैरवी समभाग में रहते हैं । उस समय उनको पूर्वापर और सामान्य की अपेक्षा दो गुना अधिक जानना चाहिये । उस समय शक्ति और भैरव दोनों परस्पर अद्वैत होना चाहते हैं और मध्य में अद्वैत हो भी जाते हैं । हे सुरवन्दिते! उस काल को अभिजित जानना चाहिये । उस समय उन दोनों का ऐक्य तत्तत् तेजों से आपूरित हो जाता है । वह तेज करोड़ों सूर्य तथा करोड़ों चन्द्रमा के समान देदीप्यमान तथा शीतल होता है ॥ ५०-५३- ॥

देवीसहितदेवार्चनम्

तदा दशभुजो देवः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥ ५४ ॥
शुक्लाम्बरधरः शुक्लः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
तस्योत्सङ्गे महादेवी चन्द्रकोट्यतुलप्रभा ॥ ५५ ॥
प्रहसन्ती विशालाक्षी परमानन्दनन्दिता ।
तद्रूपतामभीप्सन्ती तद्रूपेक्षणलालसा ॥ ५६ ॥
शुक्लवेशं विना देवि नान्यत् तत्प्रीतये तदा ।
तत्रान्यद्रूपमापन्ने साधके दैवचोदिते ॥ ५७ ॥
क्रुब्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम् ।
सर्वैः शुक्लमयैर्द्रव्यैः शुक्लवेशैर्यजेत् तदा ॥ ५८ ॥
दिवि देवी भवेद् दृश्या शरच्चन्द्रनिभानना ।

तत्र पूजा सदा कार्या विशेषेण वरानने ॥ ५९ ॥
पेयं चो(षं?ष्यं)तथा लेह्यं चर्व्यं भक्ष्यं च तर्पणैः ।
निवेदयेत् सदा भक्त्या यत्पुनः सुमनोहरम् ॥ ६० ॥

देवी के सहित देव का अर्चन—इसके अनन्तर दश भुजाओं पाँच मुखों एवं तीन नेत्रों वाले, शुक्ल वस्त्रधारी, गौर वर्ण वाले, श्वेत माला एवं श्वेत अनुलेप धारण किये हुए परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये साथ ही उनकी गोद में करोड़ों चन्द्र के समान आभावाली, विशालनेत्रों वाली, हासयुक्त, परम आनन्द से आनन्दित, उनसे एकरूप होने की इच्छा वाली, उनके रूप को देखने की इच्छा वाली महादेवी का ध्यान करना चाहिये । हे देवि! शुक्ल वेश को छोड़कर अन्य प्रकार का वेश देवी को प्रसन्न नहीं करता । दुर्भाग्य से प्रेरित होकर साधक यदि शुक्ल वस्त्र के अतिरिक्त अन्य वस्त्र का धारण करता है तो भगवती क्रुद्ध होकर उसे अत्यन्त दारुण शाप देती है । देवी की पूजा सदा समस्त शुक्ल द्रव्यों एवं शुक्ल वेशों से करनी चाहिये । ऐसी पूजा करने वाले साधक को शरत्चन्द्र की कान्तिवाली देवी अन्तरिक्ष में दिखायी पड़ती है । हे वरानने! ऐसा होने पर देवी की अन्तरिक्ष में विशेष पूजा करनी चाहिये । उसके लिये पेय चोष्य चर्व्य लेह्य तथा भक्ष्य नैवेद्यों तथा तर्पण से देवी की पूजा करनी चाहिये तथा जो कुछ मनोहारी नैवेद्य हो उसे देवी के लिये निवेदित करना चाहिये ॥ ५४-६० ॥

प्रातरादिकालिकयजनविधिः

उपचारैर्यजेत् प्रातर्मध्ये रस्यान्नपानकैः ।
गीतनृत्यादिना साकं रात्रौ यागपुरःसरम् ॥ ६१ ॥
प्राङ्मुखो हि यजेत् प्रातर्मध्याह्ने दक्षिणामुखः ।
सायं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा रा(हु?त्रा)वुदङ्मुखः सदा॥ ६२ ॥
तत्र शाम्भवभेदेन जपेद्विद्यामनन्यधीः ।
वर्जयेच्छक्तिभेदं तु यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
अरुणकिरणाच्छन्नं यत्पूर्व भैरवोदयात् ॥ ६३ ॥
अर्धनारीश्वरं ज्ञेयं तत्र पूजा(च?क्रि)याः समाः ।
उपचारैस्तदा कुर्यात् सपर्यां विधिना तथा ॥ ६४ ॥
वरिवस्यां गृही, समभागेन संस्थितौ यदि ।
आनन्दपारमिच्छन्तौ सदानन्दविवर्धिनौ ॥ ६५ ॥
पूर्वापरौ महापुण्यौ यदा तौ समरूपिणौ ।
चिन्तयेत् सततं भक्त्या तौ तत्कालविधानतः ॥ ६६ ॥

शक्तिशाम्भवभेदेन जपेद्विद्यामनन्यधीः ।
शुक्लाम्बरो भवेत् तत्र शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ ६७ ॥

प्रातः आदि समयों में पूजा विधि—प्रातः एवं मध्याह्न काल में सरस अन्नपान वाले उपचारों से देवी का यजन करना चाहिये । साथ में गीत नृत्य आदि भी करना चाहिये । सायङ्कालीन पूजा में यज्ञ भी करना चाहिये । देवी की पूजा प्रातःकाल में पूर्वाभिमुख होकर मध्याह्न में दक्षिणाभिमुख सायङ्काल में पश्चिमाभिमुख तथा रात्रि में उत्तराभिमुख होकर करनी चाहिये । साधक एकाग्रचित्त होकर शाम्भव भेद अर्थात् (........?) मन्त्र का जप करे । यदि वह अपना कल्याण चाहता है तो शक्तिभेद अर्थात् (........?) का त्याग करे । अरुण किरणों से आच्छन्न जो भैरवोदय के पूर्व की स्थिति है (?) को अर्धनारीश्वर जानना चाहिये । उनके विषय में पूजा का अनुष्ठान समान होता है । विविध उपचारों से विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये । यदि वे शिव और शक्ति समान भाग में स्थित हैं, आनन्द की पराकाष्ठा के इच्छुक हैं सदा आनन्द की अभिवृद्धि करने वाले हैं, पूर्वापर रूप में स्थित तथा महापुण्य स्वरूप हैं और वे दोनों समरूप में स्थित हैं उस समय उन दोनों का भक्ति के साथ समरूप में ध्यान करना चाहिये । उस समय साधक एकाग्रचित्त होकर शक्ति शाम्भव भेद से मन्त्र का जप करे । ऐसी स्थिति में उसे शुक्ल वस्त्र शुक्ल माला एवं शुक्ल चन्दन आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ ६१-६७ ॥

सायंसन्ध्याकालनिर्णयः

रक्ताम्बरधराः पश्येद् रक्तमाल्यानुलेपनाः ।
दिशश्च विदिशश्चैव रक्ता दृश्या मनीषिभिः ।
लाक्षारुणमयं विश्वं स्वयं च तत्र तद्भवेत् ॥ ६८ ॥
पद्मरागप्रतीकाशः कोटिसूर्यसमद्युतिः ।
नाथः कामेश्वरस्तत्र ह्येकवक्त्रश्चतुर्भजः ॥ ६९ ॥
रक्तपद्मनिभा देवी बालार्ककिरणारुणा ।
इच्छंस्तद्रूपतां प्राप्तुं तद्रूपा तं विशन्त्यतः ॥ ७० ॥
अनुभूय तदाबन्धं भैरवानन्दसंकुलम् ।
विपरीतमभीप्सन्ती तदाक्रमणलालसा ॥ ७१ ॥
तदा स(रो?मो)भवेत् कालः सायंसंध्येति गीयते।
शोणितैश्च समाक्रान्तां प्रतीचीमवलोकयन् ॥ ७२ ॥
पूजयेत् साधको भक्त्या चोपचारैर्यथाविधि ।

सायं सन्ध्या काल का निर्णय—साधक जब दिशाओं विदिशाओं को रक्तवस्त्र रक्तमाल्य रक्त अनुलेप धारण की हुई देखता है विद्वान् साधकगण सबको रक्तवर्ण वाली देखता है सारा संसार उसे लाक्षारस के समान अरुण दिखलायी देता है तथा वह स्वयं रक्त वर्ण वाला हो जाता है । एकवक्त्र चतुर्भुज कामेश्वर भी उसे पद्मराग के समान रक्तवर्ण वाले तथा करोड़ों सूर्य के समान रक्तप्रभामय दिखायी देते हैं । साथ ही देवी कामेश्वरी भी रक्त पद्म के समान प्रातःकालीन सूर्य के समान रक्तवर्ण वाली दृष्ट होती है । वह देवी तद्रूपता अर्थात् कामेश्वर के रूप वाली होना चाहती है और इसलिये भैरवानन्द से परिपूर्ण उनके आवन्ध का अनुभव कर उनके अन्दर प्रविष्ट हो रही है । उनको आक्रान्त करने की इच्छा वाली वह देवी विपरीत रति की कामना कर रही है—ऐसा ध्यान जब होता है तब वह समकाल हो जाता है । इसे सायंसन्ध्या कहा जाता है । साधक पश्चिम दिशा को रक्तवर्ण से परिपूर्ण देखता हुआ भक्ति के साथ यथोपलब्ध उपचारों के द्वारा विधिवत् उस देवी की पूजा करे ॥ ६८-७२- ॥

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ॥ ७३ ॥
अधः कृत्वा तु पुरुषं(वर्ण?रन्तु)मिच्छा भवेद्यदा ।
तदाक्रम्य स्वयं देवी भैरवोपरिसंस्थिता ॥ ७४ ॥
सहजानन्दसंदोहैर्निजानन्दप्रवर्धिनी ।
तदां नैजं भवेद्विश्वं तत्र पूजा महोदया ॥ ७५ ॥
तत्तद्दृ(ष्टु?ष्टि)मयैर्दीपै(र्भा?र्भो)गैश्च विविधैः सदा।
लाक्षारुणमयं सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ॥ ७६ ॥
शक्तिभेदात्मिकां विद्यां हंसबीजपुटीकृताम् ।
प्रणवान्तरितां शुद्धां नादलीलां तदात्मिकाम् ॥ ७७ ॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तां विषतन्तुतनीयसीम् ।
अधराम्बुरुहहंसीं सुस्थिरामिव चञ्चलाम् ॥ ७८ ॥
सं(श्न?स्न)वन्तीं सुधाधारां शुद्धलाक्षारसोपमाम् ।
आवाह्य पूजयित्वा स्वयं कमलाङ्कपुरान्तरे ॥ ७९ ॥
विनिर्जि(त?त्ये)न्द्रियमनो जपेदानन्दरूपिणीम् ।

जब वह परमा शक्ति कामेश्वरी स्वेच्छापूर्वक विश्वरूपा होकर पुरुष अर्थात् कामेश्वर को नीचे कर रमण करने की इच्छा करती है और आक्रान्त कर स्वयं भैरव के ऊपर स्थित होकर सहजानन्द सन्दोह से परिपूर्ण होकर निजानन्द को बढ़ाती है उस समय सम्पूर्ण विश्व रात्रिमय हो जाता है । उस काल में की जाने वाली पूजा महाफल देने वाली होती है । यह पूजा तत्तद् प्रकार की दृष्टि अर्थात् भावना और अनेक प्रकार के भोगों से की जाती है । उस समय सारा विश्व, सारे

उपचार और यहाँ तक कि साधक स्वयं अपने आप को लाक्षारस के आरुण्यमय देखता है अर्थात् अनुभव करता है । साधक को चाहिये कि वह उस समय शक्तिभेद वाली विद्या (=?) से सम्पुटित कर प्रणव से अन्तरित कर शुद्धनादस्वरूपा, मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक फैली हुई, विषतन्तु के समान सूक्ष्म, नीचे के कमल पर हंसयुक्त, स्थिर जैसी किन्तु चञ्चल, अमृतधारा का स्राव करती हुई, शुद्ध लाक्षारस के समान अरुण देवी का आवाहन कर अपने हृदय कमल में उसकी पूजा करने के बाद इन्द्रिय एवं मन को वश में कर आनन्दरूपिणी उसका जप करे ॥ ७३-७९- ॥

चतु:सन्ध्याकालयोर्वर्णनम्

मध्यं मुखं विजानीयात् पूर्वापरौ स्तनद्व(यौ?यम)॥ ८० ॥
अर्धमात्रां परं रूपं निशामध्यं तयोरध: ।
अनन्तफलदं पुण्यं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ ८१ ॥
संध्याचतुष्टयं भद्रे कथितं भुवि दुर्लभम् ।
चतुर्भुजं महादेव्या ज्ञेयं कालचतुष्टयम् ॥ ८२ ॥
आत्मा सा परमेशानी परमेश्वर एव च ।
यदङ्गं तु विहीयेत तदङ्गच्छेदनं तयो: ॥ ८३ ॥

चार प्रकार की सन्ध्यायें और उनके काल—देवी के मुख को मध्याह्न सन्ध्या, दोनों स्तनों को प्रात: एवं सायं सन्ध्या और दोनों स्तनों के अधोभाग को अर्धरात्रि की सन्ध्या जाननी चाहिये । अर्धमात्रा उस सन्ध्या का उत्कृष्टतम रूप है। यह अनन्तफलदायी पुण्यतम तथा भोग और मोक्ष दोनों को देने वाला है । हे भद्रे! इस प्रकार पृथिवी पर दुर्लभ चार सन्ध्याओं का वर्णन किया गया । इन उपर्युक्त कालों को देवी की चार भुजायें समझनी चाहिये । वह परमेश्वरी और परमेश्वर दोनों आत्मा हैं । (काल उनका शरीर है) सन्ध्यारूपी जिस अङ्ग का त्याग कर दिया जाता है वह उन दोनों कामेश्वर कामेश्वरी के अङ्गों के छेदन के समान होता है ॥ ८०-८३ ॥

सन्ध्याकालयोर्विहितनिषिद्धकर्मणो: फलवर्णनम्

तत्र यत् क्रियते कर्म मङ्गल्यं मङ्गलं परम् ।
ध्यानं पूजा जपश्चैव होमो न्यासश्च तर्पणम् ॥ ८४ ॥
अत्र वै पूजिता देवी पूरयेत् तन्मनोरथान् ।
अत्र यत् पुण्यमनघे भक्तिश्रद्धासमन्विते ॥ ८५ ॥
विधिना विहिते यज्ञे परमानन्दसंकुले ।

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु ह्यनन्तो वक्तुमक्षमः ॥ ८६ ॥
अमृताञ्जलिरप्यत्र (सुधाब्धितुलनोपमः) ।
अत्र यो नार्चयेद् देवीं जलेनापीह पार्वति ॥ ८७ ॥
न नमेद्वा गुरून् भक्त्या ब्रह्महा स निगद्यते ।
अत्र निद्रापरा यान्ति महाकालपुरं प्रिये ॥ ८८ ॥

सन्ध्या काल में विहित एवं निषिद्ध कर्म करने का फल—इस काल में ध्यान पूजा जप होम न्यास और तर्पण आदि जो माङ्गलिक कृत्य किया जाता है वह परम मङ्गलकारी होता है । इस काल में पूजित देवी पूजक के मनोरथों को पूरा करती है । हे अनघे! भक्ति और श्रद्धा से युक्त परम आनन्द से परिपूर्ण यज्ञ को इस काल में करने पर जो पुण्य होता है भगवान् अनन्त करोड़ों मुखों से उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं । इस समय अमृताञ्जलि (= मदिरा से पूर्ण अञ्जलि) का दान अमृत के समुद्र के दान के तुल्य होता है । हे पार्वति! इस काल में जो साधक केवल जल से भी देवी की पूजा नहीं करता तथा भक्तिपूर्वक गुरु को प्रणाम नहीं करता वह ब्रह्मघाती कहा जाता है । हे प्रिये! इस काल में निद्रा लेने वाले यमपुर को चले जाते हैं ॥ ८४-८८ ॥

दम्भं मोहं तथा निद्रामालस्यं बाह्यचिन्तनम् ।
कामं क्रोधं तथा लोभं हिंसां मात्सर्यमेव च ॥ ८९ ॥
वर्जयित्वा प्रयत्नेन विद्यामेव समभ्यसेत् ।
दुर्वासनां परित्यज्य कोटिजन्मसमुद्भवाम् ॥ ९० ॥
एकेन जन्मना मुक्तिं याति भोगी न संशयः ।
शक्तेर्मुखं विना नान्यत् पश्येद्वै कर्हिचित्तदा ॥ ९१ ॥
पशवो दूरतस्त्याज्याः पुरुषाश्चान्यपूजकाः ।
अत्रान्यच्चिन्तनाद्यान्ति म्लेच्छयोनिं पतन्त्यधः ॥ ९२ ॥
यान्ति चोर्ध्वं परं धाम चिन्तनाद् ब्रह्म शाश्वतम् ।

साधक को चाहिये कि वह दम्भ, मोह, निद्रा, आलस्य, बाह्य विषयों का चिन्तन, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा और मात्सर्य को छोड़कर प्रयत्नपूर्वक विद्या का नियमित अभ्यास करे । ऐसा करने से वह साधक करोड़ों जन्म में उत्पन्न दुर्वासना को छोड़ कर एक ही जन्म में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है । साधक अपनी शक्ति के मुख को छोड़कर कभी भी दूसरे मुख को न देखे। पशुओं अर्थात् नास्तिक. धर्मकर्मरहित जनों का दूर से ही परित्याग कर दे । अन्य देवी देवताओं की पूजा करने वाले पुरुषों को दूर से छोड़ दे । शक्ति की उपासना के क्रम में जो साधक अन्य आराध्य की चिन्ता करते हैं वे

निम्नकोटि की म्लेच्छयोनि को प्राप्त करते हैं। जो इस कामेश्वर-कामेश्वरी स्वरूप त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करते हैं वे ऊर्ध्ववर्त्ती परमधाम रूप शाश्वत् ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ॥ ८९-९२- ॥

नास्ति पुरस्क्रिया तेषां कायक्लेशपुरस्सरा ॥ ९३ ॥
नित्यं पुरस्क्रियायुक्तास्त एव परिकीर्तिताः ।
तं तु देवा नमस्यन्ति किंपुनर्न(व?र)मर्कटाः ॥ ९४ ॥
दैवीकला भवेत्तत्र सर्वलोकवशङ्करी ।
अमर्त्या अ(र्पि?पि)तं म(न्य?र्त्य)-
मीहन्ते कुलवल्लभम् ॥ ९५ ॥
दृष्ट्वा युवतयः सर्वाः क्लि-
(द्यान्मा?द्यद्यो)न्यो मुदान्विताः ।
शरदिन्दुप्रभं देवं पूर्णेन्दुप्रतिमाननम् ॥ ९६ ॥
नानावैदग्ध्यचातुर्यस्निग्धपीयूषभाषिणम् ।
अपि चेत्तत्समा नारी तत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ॥ ९७ ॥
नरेन्द्रं नरशार्दूलं दृष्ट्वा क्षुब्धमना भवेत् ।

उन्हें शरीर की कष्टकारक अन्य प्रकार की पुरस्क्रिया अर्थात् पुरश्चरण नहीं करना पड़ता। उन्हें नित्य पुरस्क्रियायुक्त कहा गया है अर्थात् उनकी भोजन पान आसन आदि समस्य क्रियायें पुरश्चरण के समान महत्त्वपूर्ण होती हैं। यहाँ तक कि देवता लोग भी उसे प्रणाम करते हैं फिर नर वानरों की क्या बात? ऐसे साधक भक्त के अन्दर सर्वलोकवशङ्करी दैवी कला का प्रादुर्भाव हो जाता है। अमर्त्य अर्थात् देवगण भी उस मर्त्य को कुलवल्लभ मानते हैं। शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्तिवाले दीप्यमान पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुखमण्डल वाले तथा अनेक प्रकार के वैदग्ध्य एवं चातुर्य से युक्त मधुर तथा अमृत के समान वचन बोलने वाले उसको देखकर समस्त युवतियाँ मदनानन्द से भर जाती हैं तथा उनकी योनि से कामजल द्रुत होने लगता है।[१] यदि कोई स्त्री उसके समान सुन्दरी हो या कोई पुरुष भी उसके समान सुन्दर तथा सर्वगुण सम्पन्न हो तो भी उस नरशार्दूल को देखकर उसका मन क्षुब्ध हो जाता है ॥ ९३-९७- ॥

पूर्वे यद् दीयते वस्तु परे तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ ९८ ॥

---

[१] तुलनीय—नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गालोके चकितमनुधावान्ति शतशः ।
गलद्वेणीबन्धाः प्रशिथिलकुचग्रन्थिसिचया
हठात् त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥ (कपूर्रस्तव)

नानाविधोपहाराणि महादेव्यै निवेदयेत् ।
राजोपचारं दत्त्वान्ते स्तुत्वा नुत्वा विसर्जयेत् ॥ ९९ ॥
कालत्रयेऽप्यशक्तश्चेच्चतुर्थे सर्वथा प्रिये ।
अनश्नन् पूजयेद्रात्रौ भयनिद्रापराङ्मुखः ॥ १०० ॥
प्रातर्होमं प्रकुर्वीत तथा मध्यन्दिनेऽथवा ।

अनुष्ठान के प्रारम्भ में अर्थात् पूर्वसन्ध्या काल में देवी के लिये जो वस्तु दी जाती है अन्तिम काल में उसका चार गुना देवी के लिये अर्पण करना चाहिये । महादेवी के लिये अनेक प्रकार के उपहार देने चाहिये । राजोपचार देने के बाद अन्त में स्तुति एवं प्रणाम करने के बाद उनका विसर्जन करना चाहिये । हे प्रिये! यदि तीन काल में देवी पूजा का सामर्थ्य न हो तो केवल चतुर्थ काल[1] अर्थात् मध्यरात्रि में भोजन न करते हुए भय और निद्रा से रहित होकर देवी पूजा करनी चाहिये । प्रातःकाल में होम करना चाहिये । मध्याह्न काल में भी होम करना चाहिये । यदि प्रातःकाल में होम न हो सके तो मध्याह्नकाल में करना चाहिये ॥ ९८-१००- ॥

देव्यानिद्राकालवर्णनम्

निद्राकालं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय च ॥ १०१ ॥
दिवानिशोर्महादेवि नव मुहूर्तास्ततः परम् ।
मुहूर्तत्रयमानं तु निद्रा देव्याः समीरिता ॥ १०२ ॥
अत्र निद्रापरां देवीं निद्रया समुपासयेत् ।

देवी का निद्राकाल—अब मैं साधकों के हित के लिये निद्राकाल का वर्णन करूँगा । हे महादेवि! दिन और रात्रि दोनों को मिलाकर नव मुहूर्त्त होते हैं । इसके बाद तीन मुहूर्त्त देवी की निद्रा का काल होता है । इस काल में निद्रारत देवी की निद्रा के द्वारा उपासना करनी चाहिये ॥ १०१-१०२- ॥

निद्राकाले जपादीनां निषिद्धत्वम्

निद्राकाले जपेद्यस्तु पूजयेद्वा विमोहितः ॥ १०३ ॥
स्वापकालं विना देवि स्व(पे?प्या)दन्यत्र योऽबुधः ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १०४ ॥

निद्राकाल में जप आदि का निषेध—हे देवि! जो साधक मोहवश निद्राकाल में देवी के मन्त्र का जप अथवा उनकी पूजा करता है अथवा जो मूर्ख निद्राकाल

---

[1] अर्धरात्रि के बाद प्रातः सूर्योदय के पहले का काल ।

न रहने पर भी सोता है उसके आयु, विद्या, यश और बल—ये चार नष्ट हो जाते हैं ॥ १०३-१०४ ॥

बोधकाले जपादीनां विहितत्त्वम्

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बोधकाले प्रबोधयेत् ।
दर्शनं चावलोकं च सम्भाषं चान्यलोकनम् ॥ १०५ ॥
स्वयमावेशनं चैव मन्त्राणां पञ्चलक्षणम् ।
विदित्वा प्रजपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥ १०६ ॥
वेदसंध्यं त्रिसंध्यं वा द्विसंध्यं वाथ सुव्रते ।
योगात्मा योगविज्ञानी योगमुद्रासमन्वितः ॥ १०७ ॥
अब्दमेकं जपेद्यस्तु ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
सहस्रं प्रजपेदादावन्तेऽपि च सहस्रकम् ॥ १०८ ॥
मध्ययोः प्रजपेद्विद्यां शेषं य(च्छ?त्स)मभागतः ।
लक्षमेकं भवेद् देवि त्रिंश अब्दान्तरे तथा ॥ १०९ ॥

बोधकाल में जप आदि का विधान—इसलिये सब प्रकार का प्रयास कर बोधकाल में देवी का प्रबोधन करना चाहिये । दर्शन अवलोकन सम्भाषण अन्यलोकन और स्वयं आवेशन मन्त्रों के ये पाँच लक्षण हैं । साधक इनको जानकर यदि मन्त्र का जप करे तो सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त करता है । हे सुव्रते! योगात्मा योगविज्ञानी योगमुद्रा धारण कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए एक वर्ष तक चारों तीनों अथवा दो सन्ध्याओं में जप करे । प्रारम्भ तथा अन्त की सन्ध्याओं में एक-एक हजार जप करना चाहिये । मध्य दो सन्ध्याओं में अवशिष्ट का समभाग में जप करना चाहिये । इस प्रकार हे देवि! एक वर्ष के अन्दर एक लाख बीस हजार जप होता है । (वह इस प्रकार आदि अन्त की सन्ध्यायों में एक-एक हजार, बीच की दो सन्ध्याओं में भी एक-एक हजार इस प्रकार एक दिन-रात में ४००० जप होगा । तो तीस दिन-रात में ४००० × ३ = १२००० जप होगा । एक वर्ष में १२०००० × १२ = १४४०००० जप होगा) ॥ १०५-१०९ ॥

अस्तब्धाकुञ्चितं कार्यं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
अक्षराक्षरसञ्चारिध्वनिमात्रं विभावयेत् ॥ ११० ॥
मयाप्येतद् व्रतस्थेन जप्यतेऽद्यापि सुन्दरि ।
त्रिसंध्यं जप्यते ब्रह्म तत्पदप्राप्तिसिद्धये ॥ १११ ॥
एवं क्रमाद्भवेत् सिद्धो भोगी भोगपरायणः ।

एवं मासमृतु चैव वत्सरं युगमेव च ॥ ११२ ॥
गमयेत् परमेशानि यद्वाम(न्ना?न्व)न्तरादिकम्।
एतद्रहस्यं परमं न प्रकाश्यं कदाचन।
समयाचारसङ्केतं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ ११३ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे समयाचारसङ्केतवर्णन-
नामको द्वाविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २२ ॥

* * *

जप को न तो रोककर न सङ्कुचित कर, न जल्दी-जल्दी और न विलम्ब से करना चाहिये । एक-एक अक्षर में सञ्चरित होने वाली ध्वनि की ही प्रतीति होनी चाहिये । हे सुन्दरि! मैं भी व्रत धारण कर आज भी इसका जप करता हूँ । तत्तत् पद की प्राप्ति के लिये मैं तीनों सन्ध्याओं में जप करता हूँ । इस प्रकार क्रमिक जप से भोग में आसक्त भोगी भी सिद्ध हो जाता है । हे देवि! इस प्रकार जप करते हुए मास ऋतु वत्सर युग अथवा मन्वन्तर तक चलते रहना चाहिये । इस परम रहस्य को किसी को नहीं बतलाना चाहिये । यह समयाचार का सङ्केत भोग-मोक्ष फलप्रद है ॥ ११०-११३ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में समयाचारसङ्केतवर्णन
नामक बाईसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २२ ॥

* * *

त्रयोविंशः पटलः

कुमारीपूजावर्णनम्

कुमारीपूजामाहात्म्यम्

ईश्वर उवाच—

होमादिकं तु विफलं कुमारीपूजनं विना ।
कुमारी पूजिता येन त्रैलोक्यं तेन पूजितम् ॥ १ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ऋषयो वासवस्तथा ।
पितरश्चैव दिक्पाला गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः ॥ २ ॥
देवपत्न्यस्तथा नागा मातरः सिद्धचारणाः ।
विश्वेदेवाः सयक्षाश्च राक्षसाश्चैव देवताः ॥ ३ ॥
स्थावरा जङ्गमाश्चैव सर्वभूतानि जन्तवः ।
सर्वे ते तृप्तिमायान्ति कुमार्यो यत्र पूजिताः ॥ ४ ॥

कुमारी पूजा का माहात्म्य—ईश्वर ने कहा—कुमारी पूजन के विना होम आदि सारी क्रियायें विफल होती हैं । जिसने कुमारी पूजन कर लिया उसने तीनों लोकों की पूजा कर ली । जहाँ जिस काल में कुमारियों की पूजा सम्पन्न होती हैं वहाँ उस समय ब्रह्मा विष्णु रुद्र ऋषिगण इन्द्र पितृगण दिक्पाल गन्धर्व अप्सरायें असुर देवपत्नियाँ नागमातायें सिद्ध चारण विश्वेदेव यक्ष राक्षस देवतायें स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी और जीव जन्तु सब के सब तृप्त हो जाते हैं ॥ १-४ ॥

कुमारीपूजाविधिः

बह्वीनामप्यलाभे तु एकैव वरवर्णिनी ।
प्रमदा यौवनोन्मत्ता सा भवेत् सुन्दरी परा ॥ ५ ॥
अष्टाब्दावधि पञ्चाब्दात् पूजितव्या विधानतः ।
कुमार्यै यज्जलं दत्तं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ६ ॥

यदन्नं दीयते तस्यै कुलाचलसमं प्रिये ।
कुमारीपूजनं देवी कुमारीमनुना भवेत् ॥ ७ ॥
यथा वा पूज्यते देवी पूजितव्यास्तथा तथा ।
हेतुना भोजितव्यास्ताः पायसैर्मधुरान्वितैः ॥ ८ ॥
बालप्रियैश्च नैवेद्यैस्त्रिपुरसुन्दरीधिया ।
स्तुत्या नत्वाथ सन्तोष्य स्वाभीष्टं प्रार्थयेत्ततः ॥ ९ ॥

कुमारी-पूजा की विधि—यदि बहुत कुमारियाँ न मिलें तो एक ही सुन्दर रूप वाली प्रमदा यौवनोन्मत्त सुन्दरी परम पूजनीय होती है । आठ वर्ष से लेकर पाँच वर्षों अर्थात् तेरह वर्षों तक की कुमारी का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये । कुमारी के लिये जो जल दिया जाता है वह समुद्र के समान असीम फलप्रद होता है । हे प्रिये! उसके लिये जो अन्न दिया जाता है वह कुलाचल[1] के समान होता है । हे देवि! कुमारी का पूजन कुमारी मन्त्र से किया जाता है । अथवा जिस प्रकार जिस मन्त्र से देवी की पूजा की जाती है उस प्रकार उस मन्त्र से कुमारियों की पूजा करनी चाहिये । मधुर भोज्य पदार्थों से युक्त पायस (= खीर) का उनको भोजन कराना चाहिये । जो नैवेद्य बच्चों को प्रिय होते हैं उन नैवेद्यों को कुमारी को त्रिपुरसुन्दरी समझते हुए खिलाना चाहिये । उनकी स्तुति कर उनको प्रणाम कर तथा भोजन आदि से सन्तुष्ट कर उनसे अपनी इष्टसिद्धि के लिये प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ५-९ ॥

पूजितायाश्च तुष्टाया हस्ताद्भक्तियुतो नरः ।
शिरसा प्रतिगृह्णीयादाशीर्वादयुताक्षतान् ॥ १० ॥
यद्यद्वदति सन्तुष्टा तत्तद्भवति निश्चितम् ।
इति ते कथितं देवि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ११ ॥
विना तेन महेशानि न पूजाफलभाग्भवेत् ।
नित्यार्चायां च दीक्षायां पुरश्चर्यादिकेषु च ॥ १२ ॥
आदौ पूर्णे च मध्ये च लक्षे पूर्णे विशेषतः ।
कुमार्यः पूजितव्याश्च कुमारीर्नार्चयेद्यदि ॥ १३ ॥
तस्य पूजाफलं सर्वं नीयते यक्षराक्षसैः ।
न पूजयति चेत् कन्यास्तदा विघ्नैः प्रभूयते ॥ १४ ॥
पूर्वार्जितफलं नश्येत् का कथा परजन्मनि ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ १५ ॥

---

[1] हिमालय सुमेरु विन्ध्य आदि सात कुलपर्वत हैं ।

पूजितव्या महाभागाः कुमार्यः परमेश्वरि ।

पूजा करने के बाद सन्तुष्ट हुई उस कुमारी के हाथ से आशीर्वादयुक्त अक्षतों को लेना चाहिये । कुमारी सन्तुष्ट होकर जो-जो कह देती है वह-वह निश्चित रूप से घटित होता है । हे देवि! इस प्रकार तुमको परम आश्चर्यकारी रहस्य बतलाया गया । हे महेशानि! विना उस कुमारी पूजन के अर्चक पूजा के फल को नहीं प्राप्त करता। नित्य पूजा, दीक्षा तथा पुरश्चरण आदि में, अनुष्ठान के प्रारम्भ मध्य तथा अन्त में एवं एक लाख जप के पूर्ण होने पर कुमारी की विशेष पूजा सम्पन्न करनी चाहिये । यदि कुमारी की पूजा नहीं की जाय तो उस अर्चक के समस्त पूजाफल को यक्ष और राक्षस ले लेते हैं । साधक यदि कुमारियों का पूजन नहीं करता तो उसके अनुष्ठान में बहुत सारे विघ्न पड़ते हैं । उसका पूर्वार्जित फल नष्ट हो जाता है फिर आगे वाले जन्म की क्या बात उसमें किये गये अनुष्ठान का फल तो नहीं ही मिलता । इसलिये हे परमेश्वरि! साधक यदि अपना हित चाहता है तो उसे महाभाग्यवती कुमारियों की सब प्रयत्न से पूजा करनी चाहिये ॥ १०-१५- ॥

प्रातरुत्थाय पूजायां स्नानकालेऽथवा पुनः ॥ १६ ॥
संस्कृतासंस्कृता वापि हीनजात्युद्भवास्तथा ।
नमस्याः साधकेन्द्राणां कुलीनानां परार्चने ॥ १७ ॥
ब्रह्मण्यर्पितचित्तानां नास्तीह भिन्नता क्वचित् ।
कुलपूजां विना देवि कुलदेवी पराङ्मुखी ॥ १८ ॥
परयोषा यदा भद्रे स्वयं तासां गुरुर्भवेत् ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ॥ १९ ॥
वेश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा ।
नानावैदग्ध्यकुशलाः कलारूपगुणान्विताः ॥ २० ॥
तासां रूपं च भावं च विलोक्यामर्षचेष्टितम् ।
ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतशब्दिताः ॥ २१ ॥

कुलीन साधकेन्द्रों को चाहिये कि वे प्रातःकाल उठकर पूजा के समय अथवा मध्याह्न स्नान के समय पराम्बा के अर्चन के समय कुमारी पूजन करें । वह कुमारी संस्कारयुक्त असंस्कृत हीन जाति में उत्पन्न हो कोई भी हो सब की सब पूजनीय होती हैं । जिनके चित्त ब्रह्म को समर्पित हैं उनके लिये कुमारियों में कोई भेद नहीं होता । हे देवि! कुलपूजा के विना कुलदेवी साधक के विमुख हो जाती हैं । हे भद्रे! यदि दूसरी स्त्रियों की कुमारी के रूप में पूजा करनी है तो साधक स्वयं उनका गुरु हो जाता है । ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा जो कि कुलाङ्गना एवं

कुल की अलङ्कार-स्वरूपा हैं वे, वेश्या नाइन धोबिन, योगिनी अथवा नर्त्तकी, ये सब अनेक प्रकार के वैदग्ध्य में कुशल हों, कला रूप और गुण में सम्पन्न हों तो साधक उनके रूप भाव और चेष्टाओं को देखकर उनको ब्रह्माणी, वैष्णवी आदि आठ शक्तियों के नाम से पुकारे ॥ १६-२१ ॥

कुमारीपूजनोपचारक्रमः

आसनं प्रथमं ताभ्यः स्वागतं च पुनः पुनः ।
अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्काचमनीयकम् ॥ २२ ॥
स्नपयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमेव च ।
धूपयित्वा तथा केशान्कौशेयं च निवेदयेत् ॥ २३ ॥
ततः स्थानान्तरे नीत्वा पीठमास्तीर्य भक्तितः ।
संवेशयेद्विधानेन पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ २४ ॥
नानालङ्कारभूषाद्यैर्भूषयित्वानुलेपनैः ।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ॥ २५ ॥
दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ।
नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गकमुत्तमम् ॥ २६ ॥
पिष्टकं पायसं चैव नानारससमन्वितम् ।
दत्त्वा सम्पूज्य विधिवत् स्तुतिभिस्तोषयेत्ततः ॥ २७ ॥

कुमारी पूजा का उपचार-क्रम—सबसे पहले उनके लिये आसन देना चाहिये । फिर बार-बार 'स्वागतम्' कहना चाहिये । फिर अर्घ्य पाद्य पानीय मधुपर्क आचमनीय देकर स्नान कराना चाहिये । गन्ध पुष्प आदि के द्वारा केश का संस्कार करने के बाद केशों को धूप दिखाकर रेशमी वस्त्र अर्पण करना चाहिये । इसके अनन्तर कुमारियों को दूसरे स्थान पर ले जाकर पीठ रखकर भक्तिपूर्वक उन्को पीठ पर विधिपूर्वक पूर्व आदि के क्रम से बैठाना चाहिये । इसके पश्चात् अनेक प्रकार के अलङ्कारों अनुलेपनों से उनको अलंकृत कर गन्धपुष्प धूप दीप और नैवेद्य का अर्पण करना चाहिये । दूध दही घी मट्ठा शर्करामिश्रित मक्खन नारियल कैथ नारंगी पीठी तथा अनेक रस से युक्त पायस देकर उनकी विधिवत् पूजा करने के बाद स्तुतियों के द्वारा उन्हें तुष्ट करना चाहिये ॥२२-२७॥

कुमारीस्तुतिः

मातर्देवि नमस्तुभ्यं ब्रह्मरूपधरेऽनघे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ २८ ॥
माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणी ।

कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ २९ ॥
कौमारि सर्वविद्येशि कुमारक्रीडने परे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३० ॥
वैष्णवि विष्णुरूपासि सर्वविघ्नविनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३१ ॥
वाराहि वरदे देवि परमानन्दरूपिणी ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३२ ॥
इन्द्राणि वरदे देवि गजस्कन्धस्थिता ह्यसि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३३ ॥
चामुण्डे मुण्डमालास्रक्चर्चिते भयनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३४ ॥
महालक्ष्मि महामोहक्षोभसन्तानहारिणि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ३५ ॥
मितिमातृमयि देवि मितिमातृबहि(स्?ष्)कृते ।
एके बहुतरे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥
एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः ।
विदग्धाश्च समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते ॥ ३७ ॥

कुमारी-स्तुति—हे माता ! हे देवि ! हे ब्रह्मरूप धारण करने वाली ! हे अनघे ! कृपा कर मेरे विघ्न को दूर करो । मुझे मन्त्रसिद्धि दो । हे माहेशि ! वरदे देवि परमानन्दरूपिणि कृपा कर मेरे विघ्न को दूर करो और मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो । हे कौमारि ! सर्वविद्येशि कुमारक्रीडनपरे ! कृपा कर मेरा विघ्न दूर करो और मुझे मन्त्रसिद्धि दो । हे वैष्णवि ! तुम विष्णुरूपा हो । हे सर्वविघ्नविनाशिनि ! कृपा कर मेरे विघ्न का हरण करो और मुझको मन्त्रसिद्धि दो । हे वाराहिवरदे देवि ! तुम परमानन्द-रूपिणी हो । कृपा कर मेरा विघ्न हरण करो और मुझे मन्त्रसिद्धि दो । हे इन्द्राणि वरदे देवि ! तुम ऐरावत हाथी की पीठ पर स्थित हो । कृपा कर मेरा विघ्न दूर करो और मन्त्रसिद्धि दो । हे मुण्डमाला एवं रक्त से चर्चित मदनाशिनि ! कृपा कर मेरा विघ्न दूर करो और मुझे मन्त्रसिद्धि दो । महामोहक्षोभ के विस्तार को दूर करने वाली हे महालक्ष्मि ! कृपा कर मेरे विघ्न को दूर करो और मुझे मन्त्रसिद्धि दो । हे प्रमाण एवं प्रमातृरुपे ! हे प्रमाण एवं प्रमातृ की सीमा से परे देवि ! हे एकरुपे ! हे बहुरुपे ! हे विश्वरुपे देवि ! आपको नमस्कार है । जो साधक कुमारीपूजन रूप कर्म के आरम्भ में इस स्तोत्र को पढ़ता है तथा विदग्ध कुमारियों का दर्शन करता है, उसको अपने अनुष्ठान में विघ्न नहीं उत्पन्न होता ॥ २८-३७ ॥

भोजनोत्तरकृत्यम्

आचम्य मुखवासेन ताम्बूलं च निवेदयेत् ।
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनपङ्किलम् ॥ ३८ ॥
यदि क्रीडापरास्तास्तु भवन्ति भाग्ययोगतः ।
क्री(डाय?डये)त् क्रीडनैः सर्वाः क्रीडारसपरायणः ॥ ३९ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षितव्याः सदा प्रिये ।
यथा तु नमिताः प्राज्ञे भक्तिभावपरायणैः ॥ ४० ॥

कुमारी भोजन के बाद का कृत्य—स्तुति के बाद साधक कुमारियों को मुखवास से आचमन कराकर उनको ताम्बूल अर्पित करे । तत्पश्चात् पुनः गन्ध चन्दन से उपलिप्त माला प्रदान करे । यदि साधक के सौभाग्य से वे क्रीडा करने लगें तो साधक क्रीडारस से परिपूर्ण होकर उनके साथ क्रीडा करे । हे प्रिये! इस रीति से सब प्रकार का प्रयत्न करना चाहिये जिससे कि हे प्राज्ञे! वे भक्तिभावपरायणों के द्वारा नमित अर्थात् करुणार्द्र हो जाँय ॥ ३८-४० ॥

रजोवत्या रजःसार्द्धं मद्यादिभिस्त्रिपुरापूजनम्

स्वेच्छाऋतुमती या स्याद्गृहीत्वा रक्तमुत्तमम् ।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरकस्तूर्यगुरुसंयुतम् ॥ ४१ ॥
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं फलं वा दिव्यमेव च ।
गृहीत्वा पूजयेद् देवीं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ४२ ॥
कुण्डगोलोद्भवं वापि नान्यत्र कुसुमं भवेत् ।
मद्यं मांसं मुद्रा शक्तिः स्वयम्भूकुसुमं तथा ॥ ४३ ॥
एभिरेव महेशानि प्रत्यक्षीक्रियते परा ।
द्रव्यसंशोधनं कृत्वा शक्तिशोधनसम्भवैः ॥ ४४ ॥
सम्पूज्य त्रिपुरां देवीमसाध्यमपि साधयेत् ।

रजस्वला स्त्री रज के सहित मद्य आदि से पूजन करे—जो स्त्री स्वेच्छा से ऋतुमती हो वह अपने उत्तमरज रक्त को लेकर उसमें गोरोचन, कपूर, केसर, कस्तूरी और अगुरु मिलाये । उसके साथ स्वयम्भू उत्तम पुष्प और स्वयम्भू उत्तम फल लेकर देवी महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा सम्पन्न करे । यह पुष्प कुण्ड (= रज) और गोल (= वीर्य) से उत्पन्न होता है । अन्य कुसुम यहाँ गृहीत नहीं होते । मद्य, मांस, मुद्रा (= तला हुआ या भुना हुआ पदार्थ) शक्ति (= स्त्री) और स्वयम्भू कुसुम (= रज) तथा स्वयम्भू फल (= वीर्य), हे महेशानि! इन्हीं द्रव्यों से परादेवी को प्रत्यक्ष किया जाता है । द्रव्य का संशोधन कर शक्तिशोधन से उत्पन्न

उपचारों के द्वारा त्रिपुरा देवी की पूजा कर साधक असाध्य की भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ४१-४४- ॥

अन्या यदि न गच्छन्ति निजकन्यानुजात्मनः ॥ ४५ ॥
अग्रजा मातुलानी तु माता वा तत्सपत्निका ।
वयसा जातितो वापि हीना रक्ष्याः स्वसा यथा ॥ ४६ ॥
पूज्याः कुलवरैः सर्वैर्निजाहङ्कारवर्जितैः ।
स्वयमक्षोभितो भूत्वा मूलयोगं न चाचरेत् ॥ ४७ ॥
मूलयोगकृतामायुःसिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम् ।

यदि अन्य स्त्रियाँ न मिलें तो अपनी कन्या, अपनी छोटी बहन, अपनी बड़ी बहन, मामी, माता या उसकी बहन (का भी प्रयोग किया जा सकता है ?) वय अथवा जाति से हीन स्त्रियों की भी शक्ति के रूप में उसी प्रकार रक्षा करनी चाहिये जैसे कि अपनी बहन । स्वयं अहङ्कार से रहित होकर समस्त कौलमार्गी उनकी पूजा करें । साधक को स्वयं क्षुब्ध न होकर मूलयोग (= मैथुन?) नहीं करना चाहिये । सिद्ध होने पर भी उपर्युक्त स्त्रियों के साथ मूलयोग करने वालों की आयु निश्चित रूप से नष्ट हो जाती है ॥ ४५-४७- ॥

सर्वाभावे ह्येकतरा पूजनीया प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
संस्कृतासंस्कृता वापि बन्धकी वाथ निष्पतिः ।
पूर्वाभावे परा ज्ञेया तदंशा योषितो यतः ॥ ४९ ॥
एका चेत् कुलशास्त्रज्ञा लभ्या कुलविशारदैः ।
पूर्जाहा सा त(रा?दा)देवि भोगमोक्षप्रसाधिका॥ ५० ॥
एका च युवती यत्र पूजिता चावलोकिता ।
तदा देव्यश्च सर्वाश्च पूजितं सर्वदैवम् ।
इति ते कथितं देवि न प्रकाश्यं कदाचन ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुमारीपूजनविधाननिरूपण नामकस्त्रयोविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २३ ॥

* * *

यदि सब प्रकार की शक्तियाँ न मिलें तो एक की ही पूजा करनी चाहिये । चाहे वह संस्कार सम्पन्न हो या असंस्कृत, बन्ध्या हो या विधवा उसका ग्रहण किया जा सकता है । पूर्व-पूर्व के न मिलने पर-पर का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सारी स्त्रियाँ उस परा त्रिपुरसुन्दरी के अंश है । यदि कौलविशारद के द्वारा

कुलशास्त्र की ज्ञाता एक भी स्त्री मिल जाय तो हे देवि! वह भी पूजा के योग्य होती है तथा भोग और मोक्ष दोनों देती है । जिस काल में एक ही युवती पूजित और अवलोकित होती है । उस समय सारी देवियाँ और सारे देव पूजित हो जाते हैं । हे देवि! इस प्रकार तुमको कुमारी पूजा का विधान बतलाया गया । इसे किसी को नहीं बतलाना चाहिये ॥ ४८-५१ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में कुमारीपूजनविधान-निरूपण नामक तेईसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

* * *

चतुर्विंशः पटलः

कुमारीपूजामहिमप्रयोगादिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

त्रिपुरसुन्दरीपूजाफलवर्णनम्

एवं यः कुरुते पूजां नित्यं भक्तियुतो बुधः ।
कन्दर्पसदृशः स्त्रीषु गौरीपतिरिवापरः ॥ १ ॥
स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणम् ।
धन्या च जननी तस्य धन्यस्तस्य पिता खलु ॥ २ ॥
दैवी कला भवेत् तत्र मम तुल्यो महामतिः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते नात्र संशयः ॥ ३ ॥
वह्निरिव रिपोर्हन्ता इन्दुरिव सुखप्रदः ।
पितृदेवसमः शास्ता शुचौ शुचिसमः खलु ॥ ४ ॥

त्रिपुरसुन्दरी की पूजा का फल—ईश्वर ने कहा—जो विद्वान् इस प्रकार नित्य भक्ति से युक्त होकर त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करता है वह स्त्रियों के बीच कामदेव के समान तथा दूसरे शिवसदृश होता है । इस संसार में वही एकमात्र पुण्यवान् है । वही कुलभूषण है । उसकी माता धन्य है; उसके पिता धन्य हैं । उस उपासक के अन्दर दैवीकला होती है । वह मेरी भाँति अत्यन्त बुद्धिमान् होता है । वह अणिमा आदि आठ सिद्धियों का स्वामी होता है—इसमें सन्देह नहीं । वह अग्नि के समान शत्रु का घातक तथा चन्द्रमा के समान शीतल एवं सुखप्रद होता है । वह पितृदेव अर्थात् ब्रह्मा के समान उपदेष्टा तथा पवित्रता में शुचि अर्थात् अग्नि के समान होता है ॥ १-४ ॥

बृहस्पतिसमो वक्ता धरणीसदृशः क्षमी ।
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे ॥ ५ ॥
तीर्थानि तस्य देहे वै न च तस्य पुनर्भवः ।

धनेन धननाथः स्यात् तेजसा भास्करोपमः ॥ ६ ॥
बलेन पवनो ह्येष दानेन वासवोपमः ।
गानेन तुम्बुरुः साक्षान्नित्यं येन समर्चिता ॥ ७ ॥
एकाहमपि देवेशि महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
न पूजयेत्तथा(नस्यात्? तस्मात्)प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ८ ॥

वह अर्चक बृहस्पति के समान वक्ता और पृथिवी के तुल्य क्षमावान् होता है। उसकी वाणी में सरस्वती तथा उसके घर में लक्ष्मी सदा निवास करती है। उसके शरीर में समस्त तीर्थ रहते हैं और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। धन के सन्दर्भ में वह धननाथ अर्थात् कुबेर तथा तेज में सूर्य के समान होता है। बल में पवन और दान में इन्द्र के तुल्य होता है। जो मनुष्य देवी त्रिपुरसुन्दरी की नित्य पूजा करता है वह गीतविद्या में तुम्बुरु के समान होता है। हे देवेशि! यदि त्रिपुरसुन्दरी की पूजा एक भी दिन न की जाय तो उसके लिये साधक को प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ५-८ ॥

त्रिपुरापूजायाः पश्चात्कृत्यम्

उपोष्यैव चाधिवासं कृत्वा पूजां परेऽहनि ।
गुरुं सम्पूज्य विधिवत् तदा पूजां समापयेत् ॥ ९ ॥
कुमार्यै भोजनं दत्त्वा विप्रानपि च भोजयेत् ।
अत ऊर्ध्वं पुनर्दीक्षां लक्षजापं समाचरेत् ॥ १० ॥

त्रिपुरा की पूजा के पश्चात् करणीय कृत्य—उपवास अधिवास और त्रिपुरा देवता आदि की पूजा करने के बाद दूसरे दिन गुरु की विधिवत् पूजा करने के बाद त्रिपुरसुन्दरी की पूजा का समापन करना चाहिये। कुमारीभोजन कराने के बाद ब्राह्मणों को भी भोजन कराना चाहिये। इसके बाद पुनः दीक्षाग्रहण और मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये ॥ ९-१० ॥

त्रिपुरसुन्दरीपूजाया अकरणे फलवर्णनम्

महात्रिपुरसुन्दर्या योगिनीनां तथैव च ।
द्व्यहं वाथ त्र्यहं वापि पूजाशून्यं करोति यः ॥ ११ ॥
सिद्धिहानिर्भवेत् तस्य योगिनीशापमालभेत् ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२ ॥
तस्य मांसं च शुक्रं च रूपशोणितमेव च ।
अभीष्टानपि कामांश्च हिंसन्ति योगिनीगणाः ॥ १३ ॥
बन्धुभिः कलहो घोरः कलत्रैश्च विशेषतः ।

सस्यशून्या भवेदुर्वी विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ १४ ॥
सत्यं सत्यं भवेद्रोगी दरिद्रश्चोपजायते ।
इहैव दुःखमाप्नोति त्रिविधं लोमहर्षणम् ॥ १५ ॥
परे स्वर्गात् परिभ्रष्टः(क्षितौ)क्षितिप(ला?ना)यकः ।
अतुलां भक्तिमासाद्य कैवल्यं लभते ततः ॥ १६ ॥
ब्रह्मचिन्ताप्रवृत्तो यः सोऽपहाय च दैवतम् ।
विना(ल?न)या प्रवर्तेत ब्रह्मघाती स एव तु ॥ १७ ॥

त्रिपुरसुन्दरी पूजा न करने का फल—पूजा प्रारम्भ होने के बाद जो अर्चक महात्रिपुरसुन्दरी और योगिनियों की दो दिन अथवा तीन दिन तक पूजा नहीं करता उसको सिद्धि तो नहीं ही मिलती उल्टे वह योगिनियों के शाप का भागी बनता है । उसके आयु, विद्या, यश और बल—ये चार नष्ट हो जाते हैं । योगिनियाँ उसके मांस शुक्र रूप रक्त और अभीष्ट कामों को नष्ट कर देती है । उसका अपनों परायों तथा विशेष रूप से अपनी पत्नी से कलह होता है । उसकी धरती धान्य से शून्य हो जाती है तथा पग-पग पर विघ्न का सामना करना पड़ता है । वह रोगी और दरिद्र हो जाता है । इसी जन्म में वह दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार का रोमाञ्चकारी दुःख प्राप्त करता है । वह सज्जन राजा त्रिपुरसुन्दरी की अतुल भक्ति को प्राप्त कर कैवल्य लाभ करता है । इस षोडशी देवता को छोड़कर जो ब्रह्म की चिन्ता करता है, इसके विना वह ब्रह्मघाती हो जाता है ॥ ११-१७ ॥

स्वसामर्थ्याभावे गुरोर्नियोज्यत्वम्

जपध्यानपरो मन्त्री योगक्षेमपरायणः ।
स्वयं यदि भवेन्मूढो गुरुं तत्र नियोजयेत् ॥ १८ ॥
ज्ञानकर्मपरः शुद्धः सर्वदेवमयः प्रभुः ।
सिद्धयः सकलास्तस्य गुरुर्यस्य हिते रतः ॥ १९ ॥
मासतो वर्षतो वापि स्वयं पुण्याहयोगतः ।
कुर्याद्वै महतीं पूजां सम्पन्नाङ्गविभूषिताम् ॥ २० ॥
उपहारैर्बहुविधैरलंकृतसुविग्रहाम् ।

अपना सामर्थ्य न होने पर गुरु को नियुक्त करना चाहिये—योगक्षेम चाहने वाला तथा जप ध्यान में लगा हुआ मन्त्री यदि स्वयं पूजा करने में अक्षम हो तो उसे इस कार्य में गुरु को लगाना चाहिये । ज्ञान एवं कर्म में तत्पर शुद्ध सर्वदेवमय तथा सामर्थ्यवान् गुरु जिसके हित में लगा हुआ हो सारी सिद्धियाँ उसके हस्तगत होती हैं । साधक को चाहिये कि वह एक-एक महीने पर या वर्ष

में एक बाद किसी शुभ दिन में महापूजा करे। इस क्रम में वह अनेक प्रकार के आभूषणों तथा उपहारों से देवी के अङ्गों तथा विग्रह को विभूषित करे। (विशेष हवन, कुमारी-ब्राह्मण-भोजन, नृत्य-गीत आदि करना चाहिये) ॥ १८-२०- ॥

नित्याद्यर्चनविधिवर्णनम्

नित्यमेवार्चनं देव्या नित्यमेव समाचरेत् ॥ २१ ॥
नित्याचारपरो मन्त्री नैमित्तिकवि(धं?धिं)चरेत्।
नित्यनैमित्तिकपरः साधुः काम्यं विचिन्तयेत् ॥ २२ ॥
काम्यान्नैमित्तिकं नित्यं नित्यं नैमित्तिकात् परम्।
नित्याचारविलोपी यः काम्यं नैमित्तिकं च वा ॥ २३ ॥
करोति स च दुर्मेधा नाप्नोति तस्य तत्फलम्।
नित्याचारमनादृत्य यदन्यत्तु समीहते ॥ २४ ॥
निष्फलं तस्य तत्कर्म वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा।
अपि पुष्पफलैर्वापि पूजयेच्चक्रदेवताः ॥ २५ ॥

नित्य आदि पूजा विधियाँ—देवी की नित्य पूजा नित्य करनी चाहिये। नित्य पूजा करने वाले साधक को नैमित्तिक पूजा करनी चाहिये। जो भक्त नित्य नैमित्तिक दोनों विधियाँ करता है उसे काम्यविधि भी करनी चाहिये। काम्य की अपेक्षा नैमित्तिक नित्य अर्थात् अवश्यकरणीय होता है। नैमित्तिक की अपेक्षा नित्य विधि श्रेष्ठ मानी गयी है। जो नित्य कर्म को छोड़कर काम्य अथवा नैमित्तिक कर्म करता है वह दुर्बुद्धि उस काम्य अथवा नैमित्तिक कृत्य की फलप्राप्ति नहीं करता। उसका वह कर्म उसी प्रकार निष्फल होता है जैसे बन्ध्या स्त्री के साथ मैथुन करना। चक्रदेवताओं की पूजा पुष्पों और फलों से भी करनी चाहिये ॥ २१-२५ ॥

साङ्गयज्ञकरणे सर्वसिद्धिः

अङ्गहीनं तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको भवेत्।
अङ्गहीना तथा पूजा न सम्यक्फलदायिनी ॥ २६ ॥
ध्यानं पूजा जपो होम इति हस्तचतुष्टयम्।
शरीरं न्यासजालं तु आत्मा तज्ज्ञानमेव च ॥ २७ ॥
भक्तिं शिरोऽत्र हृच्छ्रद्धा कौशलं नेत्रमीरितम्।
एवं यज्ञशरीरं तु मत्वा साधकसत्तमः ॥ २८ ॥
यज्ञं समापयेन्नित्यं साङ्गमेव खलु प्रिये।
अङ्गहीने महान् दोषस्ततोऽङ्गं नावधीरयेत् ॥ २९ ॥

यज्ञ को अङ्गसहित करने पर समस्त सिद्धियाँ मिलती हैं—अङ्गरहित यज्ञ करने वाला मनुष्य पूर्ण याज्ञिक नहीं होता । इसी प्रकार अङ्गहीन पूजा सम्यक् फल नहीं देती । यज्ञ देवता के अङ्गों को इस प्रकार समझना चाहियें—ध्यान पूजा जप और होम ये उनके चार हाथ हैं । न्याससमूह उनका शरीर है । यज्ञ का ज्ञान उनकी आत्मा है । भक्ति शिर, श्रद्धा हृदय और यज्ञकौशल को नेत्र माना गया है । हे प्रिये! उत्तम साधक इस प्रकार यज्ञशरीर समझकर यज्ञ का प्रतिदिन समापन करें । यज्ञ को अङ्गहीन सम्पन्न करने में महान् दोष होता है । इसलिये अङ्ग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ॥ २६-२९ ॥

सर्वाङ्गपूर्णपुरुषो यज्ञाख्यः सर्वसिद्धिदः ।
तत्तदीहापरा शक्तिः सिद्धिः संयोगतस्तयो ॥ ३० ॥
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याः पूर्णे यज्ञशरीरके ।
अङ्गबाधे यथा दोषो नान्यस्य हि तथा भवेत् ॥ ३१ ॥
स्वविभवा(न्न?नु)रूपा वै पूजा कार्या विभूतये ।
व्यतिक्रमात् तु हीनः स्याद् ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
नाधिकं नैव च न्यूनमुभयं पापदायकम् ।

यज्ञनायक पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण होने पर समस्त सिद्धि देता है । तत्तत् इच्छा पूर्ण शक्ति एवं यज्ञ इन दोनों के संयोग से सिद्धि प्राप्त होती है । श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी के पूर्ण यज्ञशरीर में अङ्गहीनता होने पर जैसा दोष होता है वैसा अन्य के हीन होने पर नहीं होता । धन-सम्पत्ति के लिये साधक को अपने धनसामर्थ्य के अनुरूप पूजा करनी चाहिये । व्यतिक्रम होने पर अर्थात् प्रचुर धन होने पर भी निकृष्ट पूजा करने पर साधक हीन कोटि का हो जाता है और ब्रह्महत्या का भागी होता है । इसलिये न बहुत अधिक और न बहुत कम कोटि की पूजा करनी चाहिये क्योंकि दोनों पापदायक होती है ॥ ३०-३२- ॥

पूजायां विहिततिथ्यादयः

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पूर्णायां मासमध्यतः ॥ ३३ ॥
महाभूतदिने वापि यजेद् विभवविस्तरम् ।
कृष्णयाथ चतुर्दश्या युक्तं कुजदिनं यदा ॥ ३४ ॥
महाभूतदिनं तत्तु सर्वभूतवशङ्करम् ।
यदि पुष्यो भवेत् तत्र तदानन्तफलप्रदम् ॥ ३५ ॥

पूजा में विहित तिथि आदि—चतुर्दशी अष्टमी मास के मध्य की पूर्णिमा अथवा महाभूतदिन में देवी की पूजा करनी चाहिये । यदि मङ्गलवार को कृष्ण चतुर्दशी हो तो वह महाभूत दिन होता है जो कि समस्त प्राणियों का वशीकारक

होता है । यदि कृष्ण चतुर्दशीयुक्त मङ्गलवार को पुष्य नक्षत्र हो तो वह मुहूर्त्त अनन्त शुभफल देता है ॥ ३३-३५ ॥

पूजास्थलवर्णनम्

मन्त्रं यदि श्मशाने तु शवोपरि यथाविधि ।
अथवा प्रजपेद् देवीं मातृकां नीलरूपिणीम् ॥ ३६ ॥
कृत्वा जप्त्वा तदा कुर्याद् भूतप्रेतपिशाचकान् ।
तान् वशीकृत्य तल्लोके तथेह तैः सहा(स?ग)तः ॥ ३७ ॥
वशीकृत्य श्रिया युक्तो मोदते पुत्रपौत्रकैः ।
यथा तथा गृहे बाह्ये कृत्वा जप्त्वा नरो बुधः ॥ ३८ ॥
राक्षसान् किंनरान् कृत्वा तल्लोके च तथेह च ।
तैश्च प्रमुदितो भोगी भोगान् भुङ्क्ते यथेच्छया ॥ ३९ ॥

पूजा के लिये उपयुक्त स्थल—

(क) श्मशान—मन्त्र को यदि श्मशान में शव के ऊपर बैठकर विधिवत् जपा जाय अथवा नीलरूपिणी मातृका देवी का जप किया जाय तो जप कर साधक भूत प्रेत पिशाच के लोक में जाकर उनको वश में कर उनके साथ यहाँ आता है और ऐश्वर्ययुक्त होकर पुत्र पौत्र के साथ आनन्द उठाता है । उसी प्रकार घर में तथा उसके बाहर भी विद्वान् मनुष्य अनुष्ठान तथा जप कर राक्षसों किन्नरों को उनके लोक में जाकर वश में करने के बाद उनके साथ इस लोक में आनन्दित होकर भोगी बनकर इच्छानुसार भोगों को भोगता है ॥ ३६-३९ ॥

१. निजगृहम्

निजगृहे सदा यस्तु पवित्रे सुमनोहरे ।
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो यक्षान् सर्वान् वशं नयेत्॥ ४० ॥
भुक्त्वा च मुदितो लोके धनी धनविशारदः ।
धनप्राणो धनात्मा च सुखं तदनुचिन्तनात् ॥ ४१ ॥
अनुभूय तदानन्दं तदिहापि विराजते ।

(ख) अपना घर—जो बुद्धिमान मनुष्य अपने सुन्दर पवित्र घर में पूजा करता एवं मन्त्र का जप करता है वह सारे यक्षों को वश में कर लेता है । इस लोक में धनार्जन में विशारद वह धनी प्रसन्न होकर भोगों को भोगता है । धनप्राण धनात्मा वह धन की चिन्ता कर धन के आनन्द का अनुभव कर यहाँ भी विहरण करता है ॥ ४०-४१- ॥

२. नदीनदसमीपम्

नदीनदसमीपे तु पितृपीठेऽथवा प्रिये ॥ ४२ ॥
कृत्वा जप्त्वा च तल्लोके तथेह तैः प्रमोदितः ।
कामात्मा कामरूपी च कामी काममनोहरः ॥ ४३ ॥
कामयित्वाखिलान् कामान् कामराज इवापरः ।
राजते सततं राजा राजभिश्चैव वाजिभिः ॥ ४४ ॥

(ग) नदी-नदतीर श्मशान—हे प्रिये! साधक नदी-नद के समीप तथा वहाँ स्थित श्मशान में पूजा एवं जप कर उन यक्ष यदि आदि के लोक में तथा इस लोक में भी आनन्दयुक्त होकर कामात्मा कामरूपी कामी काम के समान सुन्दर होकर सारी कामनाओं को पूर्णकर दूसरे कामदेव के समान शोभायमान होता है । वह राजा बनकर राजाओं और घोड़ों (अथवा अश्वमेध करने वालों अथवा अन्नसमूह) के साथ धरती पर विराजमान रहता है ॥ ४२-४४ ॥

३. पुण्यक्षेत्रादिकम्

पुण्यक्षेत्रे महापीठे पुण्यवृक्षसमीपके ।
कृत्वा जप्त्वा नरो मानी मान्योऽयं यमलोकराट् ॥ ४५ ॥
सर्वदा(युञ्जते? यं जयौ)लोके राजते सिद्धिभूमिषु ।
मानुषत्वं विना सिद्धिः पुनः परमदुर्ल(भं? भा) ॥ ४६ ॥
यस्मात् तत् सर्वलोकानां भोगप्रत्यक्षदायकम् ।

(घ) पुण्यक्षेत्र आदि—पुण्यक्षेत्र (= काशी आदि) महापीठे (= कामरूप आदि) में तथा पुण्यवृक्ष (= पीपल आदि) के समीप अर्चन एवं जप कर मनुष्य मानी सर्वसमाज में आदरणीय एवं यमलोक का राजा हो जाता है । यह लोक में सर्वदा विजयी होते हुए सिद्धिभूमियों में विराजमान होता है । मनुष्यत्व के विना सिद्धि परम दुर्लभ है क्योंकि यह मनुष्य शरीर समस्त लोकों को प्रत्यक्ष भोग देता है ॥ ४५-४६- ॥

४. उद्यानम्

प्रफुल्लकुसुमाकीर्णे उद्यानेऽतिमनोहरे ॥ ४७ ॥
प्रफुल्लकुन्दसम्मोदप्रपूरितदिगन्तरे ।

(ङ) उद्यान—खिले हुए फूलों से व्याप्त उद्यान जो कि अत्यन्त मनोहारी है तथा उसके फूलों की सुगन्ध सर्वत्र दिशाओं में फैल रही हों वहाँ भी पूजन आदि इष्टप्रद होता है ॥ ४७- ॥

५. वृक्षमूलम्

वृक्षमूलेऽथवा जप्त्वा कृत्वा हस्तं स्वमस्तके ॥ ४८ ॥
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा गीतनृत्यविशारदः ।
गन्धर्वान् किंनरान् कृत्वा तल्लोके च तथेह तैः ॥ ४९ ॥
आनन्दं परमं लब्ध्वा गीतनृत्यादिगोचरम् ।
तदानन्दमये रम्ये मोदते तत्प्रसादतः ॥ ५० ॥

(च) वृक्षमूल—वृक्ष के मूल में अपना हाथ मस्तक पर रखकर अर्चन एवं जप कर साधक गन्धर्व के सदृश रूपवान् हो जाता है । वह गीत एवं नृत्य में विशारद होकर गन्धर्वों और किन्नरों को उनके लोक में वशकर यहाँ भी उनके साथ गीत नृत्य आदि के साथ परम आनन्द का अनुभव करता है । उस षोडशी की कृपा से वह आनन्दमय रमणीय गन्धर्वलोक में रमण करता है ॥ ४८-५० ॥

६. नागलोकसन्धिभूम्यादि

नागलोकसंधिभूमौ वने गिरिगुहासु च ।
कृत्वा जप्त्वा सदा देवीं नागान् सर्वान् वशं नयेत् ॥ ५१ ॥
तैः सह मुदितः प्राज्ञस्तल्लोके च तथेह च ।
भुङ्क्ते बहुविधान् भोगान् नागलोकप्रतिष्ठितान् ॥ ५२ ॥
परकीये यदा यत्र पश्यन्नच्छविलोकिते(?) ।
कृत्वा जप्त्वा नरो धर्मादाक्षरं लोकमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
तानेव वशगान् कृत्वा तल्लोके च तथेह च ।
मोदते सततं वीरः सुरासुरविचेष्टितैः ॥ ५४ ॥

(छ) नागलोक की सन्धिभूमि आदि—नागलोक की सन्धिभूमि वन एवं पर्वत- कन्दराओं में देवी की पूजा एवं उसके मन्त्र का जपकर साधक समस्त नागों को वश में कर लेता है । वह विद्वान् उसके साथ उनके लोक और इस लोक में आनन्दयुक्त होकर नागलोक में वर्त्तमान् अनेक प्रकार के भोगों को भोगता है । परकीय पुण्य क्षेत्र उपवन वृक्षमूल आदि में पूजन एवं जप कर मनुष्य धर्म के कारण अक्षरधाम को प्राप्त होता है । वहाँ रहने वाले जीवों को वश में कर उस अक्षरलोक तथा इस लोक में भी वह वीराचारी साधक सुरों एवं असुरों की विशिष्ट चेष्टाओं के साथ आनन्द उठाता है ॥ ५१-५४ ॥

७. महापीठम्

यत्र कुत्र महापीठे सौरे सूर्यविलोकने ।
कृत्वा जप्त्वा महातेजा भवरोगतमोपहः ॥ ५५ ॥

उदेति सविता सूर्यः सूर्यलोके तथेह च ।
वने सर्वान् वशे कृत्वा वशी वशंजयेज्जगत् ॥ ५६ ॥

(ज) महापीठ—जिस किसी महापीठ में सूर्यग्रहण के समान सूर्य को देखते हुए अर्चन जप करने वाला महातेजस्वी और संसार अर्थात् पुनर्जन्म रोगरूपी अन्धकार से मुक्त हो जाता है । वह सूर्य के समान प्रसिद्ध होता है । वह साधक सूर्यलोक में तथा इस लोक में समस्त मनुष्य तथा जङ्गली जीवों को वश में कर सारे संसार को वश में कर लेता है ॥ ५५-५६ ॥

८. पुण्यनद्या जलान्तम्

पुण्यनद्या जलान्ते यस्तदन्तर्वा निरन्तरम् ।
सदा पुण्यज(न?ल)स्नायी तत्पायी तद्विहारवान् ॥ ५७ ॥
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो ब्रह्मर्षिलोकसंज्ञके ।
ब्रह्मर्षिभिर्मुदा तत्र तथेह तत्प्रसादतः ॥ ५८ ॥
भोगान् भुङ्क्ते स विप्रर्षिर्ब्रह्मघोषपुरःसरान् ।
महत्या च (प्रि?श्रि)या युक्तो ब्राह्म्या चैवातिशुद्धया॥ ५९ ॥
राजते सततं राजा (रा?वा)जिराजविहारवान् ।

(झ) पवित्र नदी के जल में—पवित्र नदी (= गङ्गा आदि) के तट पर जल के भीतर खड़ा होकर जप करने वाला, सदा उस पवित्र जल में स्नान करने वाला, उस जल को पीने वाला, उसमें विहार करने वाला साधक पूजन एवं जप कर ब्रह्मर्षि लोक में ब्रह्मर्षियों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । इस लोक में उसकी कृपा से विप्रर्षियों के द्वारा वेदोच्चारपूर्वक भोगों को भोगता है । अत्यन्त शुद्ध ब्राह्मी महाश्री से युक्त होकर वह राजाओं की पंक्ति में विहार करता हुआ विराजमान रहता है ॥ ५७-५९- ॥

९. देवतायतनम्

देवतायतने (ध?पु)ण्ये नित्यपूजागृहे तथा ॥ ६० ॥
देवताः प्रतिगृह्णन्ति देवतायतने कृ(ता?ताम्) ।
उद्याने स्वस(मां?मी)पस्थे गृहे चातिमनोहरे ॥ ६१ ॥
नित्यमावाहयेत् तत्र मधुपर्कादिभिर्यजेत् ।
देवांस्तत्र विजानीयात् तेषां सांनिध्ययोगतः ॥ ६२ ॥
देवताभवनैस्तुल्ये शोभिते देवशोभया ।
निर्जने चातिशुद्धे च गन्धधूपोत्करे शुभे ॥ ६३ ॥
दीपदर्पणघण्टादिकुसुमोत्करभूषिते ।

देवपीठे महापुण्ये मह(दु?त्यु)च्चगृहे तथा ॥ ६४ ॥
कृत्वा जप्त्वा नरो देवि कारयेद्वशगान् सदा ।
भावनावशसम्पन्नो नरो दि(व्यो?वि)तथेह च ॥ ६५ ॥
दीव्यते देववद् देवो देवभोगविहारवान् ।
दिव्यदर्शी दिव्यरूपी दिव्यभोगविहारवान् ॥ ६६ ॥
देवैः सम्मानितो मानी देववद्विहरेत् क्षितौ ।
विमानगामिभियनिर्गजवाजिपुरःसरैः ॥ ६७ ॥

(ञ) देवालय—पवित्र देवालय, नित्य पूजा गृह में किये गये जप आदि को देवता लोग स्वीकार करते हैं । यदि पूजा अपने घर के पास स्थित उद्यान या अतिसुन्दर घर में की जाती है तो वहाँ देवता का प्रतिदिन आवाहन करना चाहिये तथा मधुपर्क आदि से नित्यपूजा करनी चाहिये । ऐसे स्थानों में देवताओं को उपस्थित समझना चाहिये । देवताओं के सान्निध्य से वह स्थान भी देवता के भवन के तुल्य हो जाता है । वह देवशोभा से सुशोभित होता है । निर्जन अत्यन्त शुद्ध गन्ध, धूप, दीप आदि से परिपूर्ण स्वच्छ दीप, दर्पण, घण्टा आदि तथा पुष्पसमूह से भूषित स्थान अथवा देवपीठ में महापवित्र ऊँचे घर में हे देवि! मनुष्य पूजा एवं जप सम्पन्न कर सबको वश में कर लेता है । षोडशी की भक्तिभावना से सम्पन्न साधक स्वर्गलोक तथा मृत्युलोक में देवता की भाँति देदीप्यमान होता है । वह देव होकर देवताओं के भोग को भोगता है । दिव्यदर्शी दिव्यरूपी दिव्यभोगों का भोग करने वाला वह हाथी घोड़ों वाले विमानगामी यानों वाले देवताओं के द्वारा सम्मानित होकर पृथिवी पर देवता के समान विहार करता है ॥ ६०-६७ ॥

१०. शिवालयादिकम्

शिवालये शिवक्षेत्रे शिवलिङ्गसमीपके ।
कृत्वा जप्त्वा शिवामोदी शिवलोके तथेह च ॥ ६८ ॥
मोदते सततं योगी युक्तः शिवदकिङ्करैः ।

(ट) शिवालय आदि—शिव मन्दिर, शिवक्षेत्र (= वाराणसी, उज्जैन आदि), शिवलिङ्ग के समीप अर्चन एवं जप करने वाला योगी शिवसदृश आनन्दपूर्ण होकर शिवलोक तथा इस लोक में सदा कल्याणकारी किङ्करों से युक्त होकर आनन्द उठाता है ॥ ६८- ॥

११. विष्णुक्षेत्रम्

विष्णुक्षेत्रे महापुण्ये विष्णुगेहे तदन्तिके ॥ ६९ ॥

वैष्णवं भावमाश्रित्य कृत्वा जप्त्वाथ साधकः ।
वैष्णवान् वशगान् कृत्वा विष्णुलोके तथेह च ॥ ७० ॥
मोदते सततं शुद्धः स्वयं विष्णुरिवापरः ।
विष्णुपीठे परा सिद्धिः सद्यो देवत्वदायिनी ॥ ७१ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुमारीपूजामहिमप्रयोगादिमाहात्म्यनिरूपणनामकश्चतुर्विंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २४ ॥

◆

(ठ) विष्णुक्षेत्र—महापवित्र विष्णु क्षेत्र (= अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन आदि) विष्णु के मन्दिर तथा उसके आसपास वैष्णव भाव से पूर्ण होकर देवी त्रिपुरसुन्दरी का अर्चन एवं उसके मन्त्र का जप करने वाला विष्णुलोक तथा इस लोक में वैष्णव भक्तों दूतों को वश में कर निरन्तर शुद्ध हुआ, दूसरे विष्णु के समान आनन्दित होता है । इस प्रकार विष्णुपीठ में जप आदि करने से सद्यो देवत्वदायिनी परम सिद्धि मिलती है ॥ ६९-७१ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में कुमारीपूजा की महिमा के
प्रयोग आदि का माहात्म्यनिरूपण नामक चौबीसवें पटल की
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक
हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

◆

पञ्चविंशः पटलः

पुण्यपीठआपत्कालादिपूजावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

पुण्यक्षेत्रवर्णनम्

पुण्यक्षेत्राणि वक्ष्यन्ते श्रृणु प्राधान्यतो मम ।
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम् ॥ १ ॥
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम् ।
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः ॥ २ ॥
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम् ।
अश्वत्थामलकीमूलं गोशाला जलमध्यतः ॥ ३ ॥
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् ।
गुरूणां सन्निधानं च चित्तैकाग्र्यस्थलं तथा ॥ ४ ॥
सर्वेषामुत्तमं प्रोक्तं निर्जनं पशुवर्जितम् ।
यत्र तत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते तु यः ॥ ५ ॥
तस्यै दत्ते शुभं देवि पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
श्रद्धाभ(क्ता?क्त्यो)श्च बाहुल्यात् पूजाद्रव्यस्य विस्तरात् ॥ ६ ॥

पुण्यक्षेत्रों का वर्णन—अब मैं पुण्यक्षेत्रों का वर्णन करूँगा । उनको मुझसे सुनो । नदीतीर, पर्वत की गुफा, पर्वत की चोटी, तीर्थ स्थान, नदियों का सङ्गम, पवित्र वन, एकान्त स्थान में स्थित उपवन, वेल के वृक्ष का मूल, पर्वत के समीप की भूमि, तुलसी वन, वृषरहित शिवालय, पीपल एवं आँवला के नीचे की भूमि, गोशाला, जल के मध्य की भूमि, देवमन्दिर, समुद्र का किनारा, अपना घर, गुरु का सान्निध्य, वह भूमि जहाँ चित्त एकाग्र होता हो तथा निर्जन एवं पशुरहित हो, इनमें अन्तिम सर्वोत्तम माना गया है । जो मनुष्य ऐसे निर्जन स्थान में पूजा करता है तथा हे देवि! उस त्रिपुरसुन्दरी के लिये वह जो पत्र पुष्प फल

जल देता है । श्रद्धा और भक्ति की अधिकता तथा पूजाद्रव्य के अत्यधिक विस्तृत होने से वह सब उसके लिये शुभ होता है । निर्जन स्थान में पूजा करने से वहाँ देवी का सान्निध्य रहता है ॥ १-६ ॥

पुण्यक्षेत्रेषु पूजागुणितत्त्वम्

देव्याः सन्निधिरत्र स्यान्निर्जने पूजनात् तथा ।
वाराणस्यां सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी ॥ ७ ॥
ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः ॥ ८ ॥
सर्वक्षेत्रेषु पीठेषु पूजा द्वारवतीसमा ।
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा ॥ ९ ॥
आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ।
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयागे पुष्करे तथा ॥ १० ॥
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोयानदीजले ।
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च पार्वति ॥ ११ ॥
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पीशेश्वरसन्निधौ ।
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा मता ॥ १२ ॥

पुण्य क्षेत्रों में पूजा का गुणितत्त्व—वाराणसी में की गयी पूजा सम्पूर्ण फल को देती है । पुरुषोत्तम (= जगन्नाथपुरी) अर्थात् विष्णु के समीप की गयी पूजा उससे दो गुनी महत्त्व की कही गयी है । द्वारिका में की गयी पूजा उससे भी दो गुना फल देती है । समस्त क्षेत्रों[१] और पीठों[२] में की गयी पूजा द्वारिका में विहित पूजा के तुल्य होती है । विन्ध्यक्षेत्र में पूजा सौ गुनी फलदायिनी होती है । गङ्गा में भी उतना ही फल मिलता है । आर्यावर्त्त, मध्य प्रदेश और ब्रह्मावर्त्त में प्रयाग और पुष्कर में की गयी पूजा विन्ध्यवत् फल देती है । करतोया नदी के जल में की गयी पूजा उसका चार गुना फल देती है । हे पार्वति! नन्दीकुण्ड में की गयी पूजा उससे भी चार गुना अधिक फल देती है । जल्पीशेश्वर (जल्पेश्वर) के समीप की गयी पूजा उससे चार गुना फल देती है । वहाँ भी सिद्धेश्वरी योनि में विहित पूजा उसका दो गुना फल देती है ॥ ७-१२ ॥

ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ।

---

[१] वह स्थान जहाँ स्वर्ग तथा मोक्ष शीघ्र मिलता है तथा ऐहलौकिक अभ्युदय में विलम्ब होता है ।

[२] वह स्थान जहाँ सांसारिक अभ्युदय मिलता है और मोक्ष की सम्भावना विलम्ब से होती है ।

तत्समा कामरूपे च सर्वत्रैव जले स्थले ॥ १३ ॥
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ।
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ॥ १४ ॥
देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽन्यन्न तत्समम् ।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ॥ १५ ॥
ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हारके शिवलिङ्गके ॥ १६ ॥
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता दाक्षायण्याः स्वयोनिषु।
ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ॥ १७ ॥

शोणभद्र के जल में की गयी पूजा उसका चार गुना फल देती है । कामरूप में जल और स्थल में सर्वत्र की गयी पूजा उतना ही फल देती है । जिस प्रकार देवों में विष्णु और देवियों में लक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ हैं उसी प्रकार कामरूप में की गयी पूजा सर्वश्रेष्ठ कही गयी है । कामरूप देवी का क्षेत्र है । कोई दूसरा क्षेत्र उसके समान नहीं बतलाया गया है । अन्य स्थानों में देवी कहीं-कहीं रहती हैं पर कामरूप में प्रत्येक घर में उनका निवास होता है । नीलगिरि की चोटी पर की गई पूजा पूर्वोक्त पूजा की अपेक्षा सौ गुना अधिक महत्त्व रखती है । हारक शिवलिङ्ग में की गई पूजा उसकी अपेक्षा दो गुना फल देती है । दाक्षायणी की अपने योनि में की गई पूजा उससे भी दो गुना अधिक महत्त्व की बतलाई गयी है । कामाख्या योनिमण्डल में सम्पन्न की गयी पूजा पूर्वोक्त की अपेक्षा सौ गुना महत्त्व वाली कही गयी है ॥ १३-१७ ॥

कामाख्यायां महादेवीपूजां यः कृतवान् सकृत् ।
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपता(म्) ॥ १८ ॥
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति रिपुस्तस्य न विद्यते।
वाञ्छितं समवाप्नोति चिरायुरभिजायते ॥ १९ ॥
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ।
संग्रामे शास्त्रवादे च दुर्जयः स हि जायते ॥ २० ॥
मूलमूर्तिर्महादेव्या योनिरूपा निगद्यते ।
तत्र सम्पूज्य तां देवीं पुनर्जन्म न विद्यते ।
पुण्यक्षेत्रमिति प्रोक्तं न प्रकाश्यं कदाचन ॥ २१ ॥

जिसने कामाख्या में एक बार भी देवी की पूजा की वह इस लोक में इच्छाओं की पूर्त्ति प्राप्त कर परलोक में शिवरूपता को प्राप्त कर लेता है । उसके समान कोई दूसरा पुरुष नहीं होता । उसका कोई शत्रु नहीं होता । वह

अपना वाञ्छित प्राप्त करता है और चिरायु होता है । उसकी गति वायु के समान सर्वत्र निर्बाध होती है । संग्राम और शास्त्रीय वाद-विवाद में वह अजेय होता है । महादेवी की मूलमूर्त्ति योनिरूप कही जाती है । कामाख्या पीठ की योनिमूर्त्ति में उस देवी की पूजा करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता । इस प्रकार मैने इस पुण्य क्षेत्र को बतलाया । इसका किसी को प्रकाशन मत करना ॥ १८-२१ ॥

देव्युवाच—

संग्रामे सूतके चैव रोगभीतौ तथापदि ।
तदा किं स्यान्महादेव तदिह कथयस्व मे ॥ २२ ॥

देवी ने कहा—हे महादेव! युद्धक्षेत्र, जननाशौच एवं मरणाशौच, रोगभय तथा आपत्तिकाल में क्या होना चाहिये? आप मुझको वह बतलायें ॥ २२ ॥

अशौचादौ कर्त्तव्यविधिः

ईश्वर उवाच—

अशौचं साधकेन्द्राणां नास्ति रोगभयं तथा ।
शुचीनां धर्मचर्याणामापदामुद्भवः कुतः ॥ २३ ॥
यदि विघ्नो भवेद् देवि पूर्वकर्मनिबन्धनात् ।
तदैवं परमेशानि विधिं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २४ ॥
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
एतैर्हीना तु या पूजा न सा कल्याणदायिनी ॥ २५ ॥
पुष्पाञ्जलिं विधायाथ पूजयेच्चक्रदेवताः ।
अष्टकोणं त्रिकोणं वा बैन्दवं परिपूजयेत् ॥ २६ ॥
एवं कृत्वा जपेद्विद्यां समर्प्य च विसर्जयेत् ।
कुमार्यै भोजनं दत्त्वा सम्पूर्णफलभाग् भवेत् ॥ २७ ॥

अशौच आदि में करणीय विधि—ईश्वर ने कहा—साधकेन्द्रों को अशौच नहीं लगता वे सदा शुद्ध रहते हैं । उनको रोग का भी भय नहीं रहता । जो पवित्र और धर्माचारपरायण हैं उनके पास आपत्तियाँ कहाँ से और कैसे आ सकती हैं? हे देवि! यदि पूर्वजन्म के कर्मफलस्वरूप विघ्न उपस्थित होते हैं तो हे परमेशानि! विद्वान् निम्नलिखित उपाय करे । जो पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, और नैवेद्य अर्थात् पञ्चोपचार से रहित होती है वह कल्याणकारिणी नहीं होती । इस क्रम में पुष्पाञ्जलि देकर चक्रदेवताओं की पूजा करनी चाहिये । अष्टकोण त्रिकोण या बिन्दु की पूजा करनी चाहिये । ऐसा करने के बाद विद्या अर्थात् मूलमन्त्र का जप कर उसे देवी के हाथ में समर्पित कर उसका विसर्जन करना

चाहिये । कुमारीभोजन कराने के बाद साधक अनुष्ठान के सम्पूर्ण फल का भागी होता है ॥ २३-२७ ॥

अशौचादौ वैकल्पिकेतिकर्त्तव्यता

अथवाद्वैतभावेन आत्मानं तन्मयं स्मरेत् ।
अद्वैतभावसम्पन्नस्त्रिपुरीकृतविग्रहः ॥ २८ ॥
आत्मन्येव यजेद् देवीमुपचारैर्यथाविधि ।
निजदेहाख्ययन्त्रं तु सर्वयन्त्रात् परं शिवम् ॥ २९ ॥
आनन्दहृदयं कृत्वा स(दोन्ना?दा न्या)सेन मानवः ।
गुरून् नुत्वा विधानेन जपेद्विद्यामनन्यधीः ॥ ३० ॥

अशौच आदि में वैकल्पिक इतिकर्त्तव्यता—यदि बाह्यपूजा सम्भव न हो तो अद्वैत भाव से अपने को देवीमय समझना चाहिये । जब साधक अद्वैत भाव से सम्पन्न होकर अपने शरीर को त्रिपुरसुन्दरी समझने लगे तब अपने अन्दर ही उपचारों के द्वारा देवी की विधिवत् पूजा करे । अपना शरीररूपी यन्त्र समस्त बाह्य यन्त्रों से उत्कृष्ट एवं कल्याणकारी होता है । मनुष्य हृदय में आनन्द से परिपूर्ण होकर न्यासयुक्त होने के बाद गुरु की स्तुति कर विधिपूर्वक एकाग्रचित्त होकर विद्या का जप करे ॥ २८-३० ॥

सुगन्धिपुष्पमालाभिः स्वर्णालङ्कारभूषणैः ।
स्निग्धं सुमधुरं यन्त्रं कामरूपं मनोहरम् ॥ ३१ ॥
कृत्वा सुमङ्गलं देहे मृदुभाषणसस्मितम् ।
अहिंसावृत्तिमाश्रित्य सर्वप्राणिहिते रतः ॥ ३२ ॥
निजभावे सदा तिष्ठेद् देववद्विहरेत् क्षितौ ।
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥ ३३ ॥
वीतरागभयक्रोधो मनोऽहङ्कारवर्जितः ।
योषिदन्ते पुरश्चर्या कार्या रात्रौ न चान्यथा ॥ ३४ ॥

सुगन्धित पुष्प मालाओं स्वर्णभूषणों से अपने को अलंकृत कर शरीर को स्निग्ध मधुर कामरूप मनोहारी एवं मङ्गलकारी यन्त्र बनाकर मृदुभाषण एवं मन्द स्मित वाला बनाना चाहिये । अहिंसा वृत्ति को अपना कर समस्त प्राणियों का हित चिन्तन करना चाहिये । ऐसे साधक को चाहिये कि वह सर्वदा निजभाव अर्थात् 'मैं त्रिपुरसुन्दरी हूँ' ऐसा सोचते हुए कालयापन करे तथा पृथिवी पर देवता के समान विहार करे । दुःख में अनुद्विग्न और सुख के लिये अनिच्छुक वह राग भय क्रोध से रहित होकर मन में अहङ्कार का त्याग कर दे । यदि पुरश्चरण करना हो तो रात्रि में स्त्री के पास रहकर करे अन्यथा नहीं ॥ ३१-३४ ॥

मानसपूजावसरवर्णनम्

मनस्तुष्टौ समुत्पा(न्ने?ते) सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
परसैन्यागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ॥ ३५ ॥
कारागारनिबन्धे वा पूजाद्रव्यविहीनकः ।
इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययनं महत् ॥ ३६ ॥
मन्त्रवेदमयं शुद्धं पूजाक्रममनुत्तमम् ।
गोपयेद् यत्नतो दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३७ ॥
ज्ञानदं कामदं श्रेष्ठं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नास्तिकाय कदाचन ॥ ३८ ॥
एतज्ज्ञानात् परं ज्ञानी सद्यो भवति तत्क्षणात् ।

मानस पूजा का अवसर—इस प्रकार मन के सन्तुष्ट होने पर यदि उत्पात उपस्थित हो अथवा साधक सिंह व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं से घिर जाय । दूसरों अर्थात् शत्रुओं की सेना के आने पर, कारागार में होने पर यदि पूजा द्रव्यों की उपलब्धि न हो तो उसे देवी की मानसिक पूजा करनी चाहिये । यह परम रहस्य की बात है । ऐसा करना परम कल्याणकारी होता है । यह पूजाक्रम वेदमन्त्रमय शुद्ध और सर्वोत्तम है । सर्वसिद्धिप्रदायक इस दिव्य पूजन को प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये । ज्ञानदायक कामप्रद श्रेष्ठ तथा तत्काल विश्वासकारक इस पूजन को नास्तिक अथवा ऐसे-वैसे साधारण व्यक्ति को नहीं देना चाहिये । इसके ज्ञान से साधक एक क्षण में परम ज्ञानी हो जाता है ॥ ३५-३८- ॥

देव्युवाच—

कथं तन्मानुषे लोके लोकानां दर्शनं भवेत् ॥ ३९ ॥
तत्कथय महादेव लोकदेशविभेदतः ।

देवी ने कहा—हे महादेव! मनुष्य लोक में मनुष्यों को उसका दर्शन कैसे होगा । लोक और देश के भेद से उसे मुझको बतलाइये ॥ ३९- ॥

लोकदर्शनविचारः

ईश्वर उवाच—

मानुषे भारतं श्रेष्ठं तत्र च पुण्यदेशकम् ॥ ४० ॥
लोकाः पुण्यपराः श्रेष्ठास्तेषां ज्ञानी विशिष्यते।
ज्ञानपुण्यविहीनास्तु पिशाचा भोगतत्पराः ॥ ४१ ॥
पशुप्रायजना म्लेच्छाः प्रेतलोकनिवासिनः ।
तदस्तीति प्रमाणेन जानाति न समीहते ॥ ४२ ॥

भुङ्क्ते बहुविधान् भोगान् भूतलोकप्रमाणकः ।
भक्ष्याभक्ष्यं न जानन्ति कार्याकार्यमथापि वा॥ ४३ ॥
वर्तन्तेऽविधिना यज्ञे भोगैर्मधुपुरस्कृतैः ।
ते पुनरिह देवेशि निशाचरप्रमाणकाः ॥ ४४ ॥

लोकदर्शन विचार—ईश्वर ने कहा—मनुष्य लोक में भारत वर्ष श्रेष्ठ है । वहाँ अनेक पवित्र स्थल हैं । वहाँ के लोग पुण्यकार्य करने वाले तथा श्रेष्ठ हैं । उन पुण्यवानों में ज्ञानी सर्वोत्तम होता है । जो लोग ज्ञान एवं पुण्य से रहित हैं वे भोग तत्पर पिशाच के समान हैं । पशुतुल्य वे म्लेच्छ हैं तथा प्रेतलोक के निवासी सदृश होते हैं । किसी वस्तु की सत्ता वे प्रत्यक्ष प्रमाण से ही जानते हैं। अन्य प्रमाणों शास्त्र आदि को वे नहीं मानते । इस स्थूललोक को प्रमाण मानकर वे अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हैं । भक्ष्य-अभक्ष्य कार्य-अकार्य का उन्हें ज्ञान नहीं होता । यज्ञ विधि को वे नहीं मानते । मधुर अर्थात् इन्द्रियप्रीतिकारक भोगों को भोगते हैं । हे देवेशि! वे राक्षसों की बात को उचित एवं प्रमाणिक मानते हैं ॥ ४०-४४ ॥

जीवनं धनमेवात्र धनचिन्तापरायणः ।
धनसञ्चयकारी च दानभोगबहिष्कृतः ॥ ४५ ॥
शिश्नोदरसुखे यस्तु केवलं वर्तते जनः ।
यक्षलोकप्रमाणश्च यक्षलोके महीयते ॥ ४६ ॥
सदाचारमये देशे सदाचारविहारवान् ।
अरोगो रूपवान् भोगी पितृलोके महीयते ॥ ४७ ॥
मध्यदेशे महापुण्ये देवनदीसमन्विते ।
पूज्यपूजकभावेन यज्ञायज्ञविशारदः ॥ ४८ ॥
शुद्धान्तःकरणो विज्ञो मानुषलोकसूचकः ।
भोगमोक्षप्रदे शुद्धे कृषमृगविचेष्टिते ॥ ४९ ॥
कर्तव्यमिति सर्वाणि श्रुतिस्मृतिमयानि च ।
कुरुते सततं भोगी दानभोगपरायणः ॥ ५० ॥
देववद् विहरेल्लोके देवलोकप्रमाणकः ।

उनके लिये धन ही जीवन है । वे निरन्तर धन की चिन्ता में लगे रहते हैं। वे धन का केवल सञ्चय करते हैं न तो उसका दान और न भोग करते । जो मनुष्य केवल शिश्न (= लिङ्ग अर्थात् मैथुन) और उदर (= पेट भरने) में लगा रहता है । वह यक्षलोक को प्रमाण मानने वाला होता है तथा देवी की पूजा करने के बाद भी वह यक्षलोक में ही पूजित होता है । सदाचारमय देश में

सदाचारपूर्वक रहने वाला नीरोग रूपवान् होता हुआ भोग भोगने के बाद मरने पर पितृलोक में पूजित होता है । देवनदी से समन्वित महापवित्र मध्यप्रदेश में पूज्यपूजक भाव से रहकर यज्ञ और अयज्ञ का ज्ञाता शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर विद्वान् और मनुष्यलोक का सूचक अर्थात् आदर्श पुरुष बन जाता है । जहाँ कृष्णमृग विचरण करता है वह भी भोग मोक्षप्रद एवं शुद्ध देश है । वहाँ पर श्रुति स्मृति विहित सारे कर्म करने चाहिये—ऐसा समझकर भोगी दान एवं भोग में निरत होकर निरन्तर कर्म करता है । इसके परिणामस्वरूप वह देवलोक की भाँति इस लोक में भी विहार करता है ॥ ४५-५०- ॥

अथ त्रिगुणरूपिण्याः पीठे त्रैगुण्यहारिणि ॥ ५१ ॥
महादेव्या महापुण्ये गुह्ये वा प्रकटेऽपि च ।
निरानन्दैरथानन्दैर्दक्षिणोत्तररूपकैः ॥ ५२ ॥
अतदात्मा तदात्मा च योगी वा भोगसंयुतः ।
निस्त्रैगुण्यो भवेद् देवि महादेवीप्रसादतः ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पुण्यपीठ-आपत्कालपूजादिविधि-निरूपण नामकः पञ्चविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २५ ॥

* * *

इसके अतिरिक्त त्रिगुणात्मिका महादेवी के त्रैगुण्यहारी पीठ, जो कि महापवित्र होने के साथ प्रकट भी है और गुह्य भी, में दक्षिण एवं उत्तर रूपी निरानन्द और सानन्द रूप से अतदात्मा अर्थात् आनन्दमयी महादेवी के साथ अभेदरहित अथवा तदात्मा अर्थात् उस देवी के साथ तादात्म्य भाव से स्थित व्यक्ति योगी अथवा भोगी होतां हुआ भी हे देवि! महादेवी की कृपा से निस्त्रैगुण्य हो जाता है । तात्पर्य यह है कि साधक योग भोग वाली किसी भी अवस्था में हो वह देवी के साथ अभेद-भावना रखता हो या उपास्य-उपासक भाव रखता हो प्रसन्नता के साथ उनकी अर्चना और जप करता हो या दुःखी मन से, सब अवस्थाओं में वह अन्तिम स्थिति में उसकी कृपा प्राप्त करता ही है और कृपा के फलस्वरूप निस्त्रैगुण्य अर्थात् सुख-दुःख उचित-अनुचित धर्म-अधर्म पाप-पुण्य आदि समस्त द्वैत-भावों से रहित हो जाता है ॥ ५१-५३ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में पुण्यपीठ-आपत्कालपूजा आदि विधिनिरूपण नामक पचीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

* * *

षड्विंशः पटलः

गुर्वादिलक्षणदीक्षानिरूपणम्

देव्युवाच—

कीदृशो वा भवेच्छिष्यः कीदृशो वा भवेद्गुरुः।
कीदृशी वा भवेद् दीक्षा कथं कुर्याद्वद प्रभो ॥ १ ॥

देवी ने कहा—हे प्रभो! शिष्य को और गुरु को किस प्रकार का होना चाहिये? दीक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये और इसे किस प्रकार करना चाहिये? यह बतलाइये ॥ १ ॥

दीक्षानिर्वचनम्

ईश्वर उवाच—

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि मन्त्रिणां हितकाम्यया ।
विनानया न चैव स्यात् सर्वमन्त्रफलं यतः ॥ २ ॥
ज्ञानं दिव्यं यतो दद्यात् कुर्यात् पापक्षयं यतः।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता गुरुशिष्यौ वदामि ते ॥ ३ ॥

दीक्षा का निर्वचन—ईश्वर ने कहा—अब मैं मन्त्र साधकों के हित की इच्छा से दीक्षा का वर्णन करूँगा क्योंकि विना इसके मन्त्रजप का सम्पूर्ण फल नहीं मिलता । चूँकि यह दिव्यज्ञान देती है तथा पाप का क्षय करती है इसलिये इसे दी = दान और क्षा = क्षपण अर्थात् नाश, कहा जाता है । अब मैं तुमको गुरु और शिष्य के विषय में बतला रहा हूँ ॥ २-३ ॥

दिव्यगुरुशिष्यवर्णनम्

आदौ विद्यावतारोऽयं दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।
गुरुर्भूत्वैव भगवान् महाविद्यां ददाति वै ॥ ४ ॥
दिव्यो गुरुर्ऋषिः सोऽथ दिव्यां विद्यां प्रकाश्य च ।

दिव्यौघानकरोच्छिष्यान् वक्ष्येऽथ शृणु पार्वति ।
प्रकाशोऽथ विमर्षो(र्शो)ऽन्यस्त्वानन्दोऽपर इत्यपि ॥ ५ ॥
नामभेदादहं लोकेऽकल्पयं दिव्यरूपतः ।
त्रयस्तेभ्यः समुत्पन्नाः सिद्धाश्च त्रय एव ते ॥ ६ ॥
ज्ञानं सत्यं पूर्ण इति श्रीमुखास्ते समीरिताः ।
दिव्या मदन्तिके नित्यं सिद्धा भूमाविहापि च ॥ ७ ॥

दिव्य गुरु शिष्य का वर्णन—सबसे पहले विद्यावतार अनादि अनन्त भगवान् दक्षिणामूर्त्ति गुरु के रूप में महाविद्या का उपदेश देते हैं । इस दिव्य गुरु ऋषि ने दिव्य विद्या का प्रकाशन कर दिव्यौघ शिष्यों को बनाया । हे पार्वति! उनको बतलाऊँगा । सुनो—प्रकाश विमर्श और आनन्द नामक तीन दिव्य तत्त्वों की मैनें नामभेद से कल्पना की । प्रकाश विमर्श और आनन्द दिव्यौघ कहे जाते हैं । ये दिव्यौघ सदा मेरे पास रहते हैं । उन तीन तत्त्वों से तीन सिद्ध उत्पन्न हुए—ज्ञान, सत्य और पूर्ण । इनको श्रीमुख कहा गया अर्थात् श्री ज्ञान श्रीसत्य और श्रीपूर्ण नाम से ये प्रसिद्ध हुए । इन्हें सिद्धौघ कहा जाता है । सिद्धौघ मेरे पास तथा पृथिवी लोक दोनों जगह रहते हैं ॥ ४-७ ॥

निवसन्ति ततस्तेभ्यः समभूवंस्त्रयस्तथा ।
स्वभावः प्रतिभस्तद्वत् सुभगश्चेति नामतः ॥ ८ ॥
ते भूमावेव सततं निवसन्ति मदात्मकाः ।
प्रसन्नवदनाः सर्वे वराभयकरान्विताः ॥ ९ ॥
द्विनेत्रा द्विभुजा एते ललिताकारसंयुताः ।
मायालक्ष्म्यादिकास्तद्वदाख्या आनन्दनाथगाः ॥ १० ॥
नवानां नवनामानि नवार्णानि पृथक् पृथक् ।
तानि सप्ताक्षरीयोगात् प्रत्येकं षोडशाक्षरम् ॥ ११ ॥
नित्याषोडशरूपाणि तानि ज्ञेयान्यनुक्रमात् ।
विमला जयिनी मध्ये पूज्या एवं वरानने ॥ १२ ॥
नाम पर्यायतः प्राप्तं कालावाप्तमिति द्वयम् ।
प्रसिद्धं बाह्यतोऽन्यच्च त्रीणिनामानि साधके ॥ १३ ॥
मनुष्यरूपसम्प्राप्तः सर्वतन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
मन्त्रतन्त्रावता(वोथ?राय)विचराम्यहमेव सः ॥ १४ ॥

उनसे फिर तीन शिष्य पैदा हुए—१. स्वभाव, २. प्रतिभा और ३. सुभग । मुझसे अभिन्न होते हुए भी वे सदा पृथिवी पर ही रहते हैं (इन्हें मानवौघ कहा जाता है) । ये सदा प्रसन्न वदन तथा हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा लिये रहते

हैं । ये सब दो नेत्र, दो भुजाओं वाले तथा मनोहारी आकार से युक्त होते हैं । इस प्रकार इनकी संख्या नव होती है—१. प्रकाश, २. विमर्श, ३. आनन्द, ४. ज्ञान, ५. सत्य, ६. पूर्ण, ७. स्वभाव, ८. प्रतिभ और ९. सुभग । इनके नाम के आगे माया लक्ष्मी आदि तथा अन्त में आनन्दनाथ कहना चाहिये । इस प्रकार इनके नाम—ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं विमर्शानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं ज्ञानानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं सत्यानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं पूर्णानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं स्वभावानन्दनाथ, ह्रीं श्रीं प्रतिभानन्दनाथ तथा ह्रीं श्रीं सुभगानन्दनाथ होते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त नव सिद्धों के नव नाम पृथक-पृथक् नव वर्णों वाले होते हैं । सप्ताक्षरी (= ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः स्हौः) के योग से प्रत्येक नाम सोलह अक्षरों वाले हो जाते हैं । उनको क्रमशः सोलह नित्या[1] रूप जानना चाहिये । हे वरानने ! इनकी पूजा श्रीचक्र में विमला और जपिनी के बीच की जानी चाहिये । काल और अवाप्त में दो नाम पर्याय अर्थात् अपरवाचक होने से प्राप्त हैं ऐसा प्रसिद्ध है । सर्वतन्त्रार्थतत्त्ववेत्ता मैं स्वयं मनुष्य रूप धारण कर मन्त्र तन्त्र के अवतार के लिये मैं ही उस गुरु के रूप में अवतार लेता हूँ ॥ ८-१४ ॥

सद्गुरुलक्षणम्

गुरुः शाक्तो भवेद् ऋद्ध्यै तदन्यो विपरीतदः ।
गुरुः सर्वगुणोपेतो दोषैरस्पृष्टमानसः ॥ १५ ॥
अरोगी नातिवृद्धश्च(स?सु)वचा मि(ख?ष्ट)भाषणः ।
सुन्दरः सुमुखः स्वच्छ(?च्छा)लोभी (?च)बहुमन्त्रवित् ॥ १६ ॥
असंशयः संशयच्छिन्निग्रहानुग्रहे प्रभुः ।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारः सत्यवादी दृढव्रतः ॥ १७ ॥
आश्रम्याश्रमधर्मज्ञो मात्सर्यरहितः शुचिः ।
अबहुमन्त्रदो वाग्मी जपपूजापरायणः ॥ १८ ॥
सर्वतन्त्रार्थवेत्ता च दयावान् न च हिंसकः ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टः शान्तो नियमवानृजुः ॥ १९ ॥
स्मेरपूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजि(क्ष?ह्म)वृत्तिता ।
सन्तोषित्वमगर्वित्वमलोभित्वमनिन्दिता ॥ २० ॥

---

[1] सोलह नित्याओं के नाम ये हैं—१. महात्रिपुरसुन्दरी, २. कामेश्वरी, ३. भगमालिनी, ४. नित्यक्लिन्ना, ५. भेरुण्डा, ६. वह्निवासिनी, ७. महाविद्येश्वरी, ८. दूती, ९. त्वरिता, १०. कुलसुन्दरी, ११. नित्या, १२. नीलपताका, १३. विजया, १४. सर्वमङ्गला, १५. ज्वालामालिनी और १६. चित्रा ।

अपक्षत्वमवितेच्छा गुरुत्वं हितवादिता ।
एवंविधो गुरुर्ज्ञेयस्त्वितरः शिष्यदुःखदः ॥ २१ ॥

सद्गुरु का लक्षण—जो गुरु शक्ति का उपासक होता है वह समृद्धि देता है । उससे भिन्न उपासक गुरु दरिद्रता का कारण होता है । गुरु को सर्वगुणोपेत और यहाँ तक कि मन में दोषरहित होना चाहिये । रोगरहित, बहुत वृद्ध नहीं होना चाहिये । सुन्दर और अनुकूल वाणी बोलने वाला होना चाहिये । सुन्दर शरीर, सुन्दर मुख वाला, स्वच्छ, अलोभी अनेक मन्त्रों का वेत्ता, संशयरहित, शिष्य के संशय को दूर करने वाला, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ, द्वन्द्व अर्थात् कलह से रहित, निरहङ्कार, सत्यवादी, दृढव्रती, गृहस्थाश्रम या वानप्रस्थ में रहने वाला, आश्रम के धर्मों को जानने वाला, मात्सर्यरहित, पवित्र, बहुतों को मन्त्र न देने वाला, मितभाषी, जपपूजा में निरन्तर निरत, सारे तन्त्रों के तत्त्व का ज्ञाता, दयावान्, अहिंसक, यथालाभ से सन्तुष्ट, शान्त, नियमवान् एवं सरल होना चाहिये । मन्दस्मित के साथ बात करना, स्वच्छता, कुटिलता का न होना, सन्तोष, गर्वहीनता, लोभ और निन्दा का न होना, पक्षपात तथा वित्तेच्छा का न होना, गुरुता एवं हितकथन जिसके अन्दर हो ऐसा ही गुरु होना चाहिये । इसके विपरीत स्वभाव वाला व्यक्ति शिष्य के लिये कष्टप्रद होता है ॥ १५-२१ ॥

सच्छिष्यलक्षणम्

यथायोग्यगुणैः पूर्वैर्युक्तश्चातिप्रियंवदः ।
विशुद्धदेहवदनः शुद्धाम्बरधरः शुचिः ॥ २२ ॥
विमुखः परनिन्दासु देवतादर्शनेषु च ।
परान्नवनिताभूमिपीडासु विगतस्पृहः ॥ २३ ॥
दयान्वितः सर्वजने प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः ।
आस्तिको गुरुभक्तश्च शुद्धि(वा?मा)न् सुस्थिराशयः॥ २४ ॥
अलुब्धः स्थिरमैत्रश्च गुरुवाक्यप्रमाणकः ।
सर्वदा दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते ॥ २५ ॥
एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो दुःखकृद्गुरोः ।

सत् शिष्य का लक्षण—सत् शिष्य को पूर्वोक्त योग्य गुणों से युक्त होना चाहिये । उसे अत्यन्त मधुरभाषी शुद्ध शरीर एवं मुखवाला, शुद्धवस्त्रधारी, पवित्र, परनिन्दा एवं त्रिपुरसुन्दरी के अतिरिक्त अन्य देवता के प्रति विमुख होना चाहिये । परान्न, परस्त्री, परभूमि एवं परपीडा में इच्छा नहीं रखने वाला होना चाहिये । सब लोगों के प्रति दया का भाव, सोच विचार कर कार्य करने वाला, जितेन्द्रिय, आस्तिक, गुरुभक्त, शुद्धि वाला, स्थिर विचार वाला, लोभरहित, स्थिर मित्रता

वाला, गुरु के वाक्य में विश्वास एवं श्रद्धा रखने वाला, गुरु मन्त्र एवं देवता में दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिये । इस प्रकार का शिष्य उत्तम होता है अन्य प्रकार का शिष्य गुरु के लिये दुःखदायी होता है ॥ २२-२५- ॥

शिष्यकर्त्तव्यवर्णनम्

दीक्षाकालं विनिश्चित्य मुहूर्ते दोषवर्जिते ॥ २६ ॥
गुरुं समाश्रयेच्छिष्यः प्रसादाय समाहितः ।
प्रसीद नाथ देवेति तथेति च कृतादरः ॥ २७ ॥
प्रणम्योपविशेत् पार्श्वे तथा गच्छेदनुज्ञया ।
मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात् ॥ २८ ॥
असत्यं न वदेदग्रे न बहु प्रलपेदपि ।
कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम् ॥ २९ ॥
चापलानि च जि(क्षा?ह्मा)नि कार्याणि परिदेवनम्।
ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ॥ ३० ॥
न कुर्याद् गुरुणा सार्धं शिष्योऽपि च कदाचन ।

शिष्य का कर्त्तव्य—दोषरहित मुहूर्त्त में दीक्षाकाल निश्चित कर शिष्य समाहित चित्त होकर गुरु को प्रसन्न करने के लिये उनके पास जाय । हे प्रभो! हे देव! प्रसन्न होइये इस प्रकार आदर देकर उनको प्रणाम कर उनके पास बैठ जाय। यदि अन्यत्र कहीं जाना हो तो उनकी आज्ञा लेकर जाय । उसे गुरु के मुख को देखते हुए उनकी सेवा करनी चाहिये तथा उनकी आज्ञा का आदरपूर्वक पालन करना चाहिये । उनके आगे असत्यभाषण कदापि नहीं करना चाहिये तथा बहुत अधिक बोलना भी नहीं चाहिये । शिष्य को गुरु के साथ काम, क्रोध, लोभ, मान, हँसी-मजाक, आत्मप्रशंसा, चञ्चलता, कुटिल कृत्य, रोना, गुरु को ऋण देना तथा उनसे लेना, वस्तुओं का उनके साथ क्रय-विक्रय कभी नहीं करना चाहिये ॥ २६-३०- ॥

यतो गुरुः शिवः साक्षात्तं स्तुवन् प्रणमन्(त्य?भ)जेत् ॥ ३१ ॥
यथा देवे तथा मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा चात्मन्येवं भक्तिक्रमः प्रिये ॥ ३२ ॥
अवमन्य गुरोर्वाक्यं स्वबुद्ध्या कुरुते तु यः ।
न कदाचिद्भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्देवप्रपूजनैः ॥ ३३ ॥
मन्त्रेण तस्य नियतं पूजां कुर्याद्यथोदितम् ।
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा ॥ ३४ ॥

छायां कलत्रमन्यच्च यद् गुरोस्तत् प्रपूजयेत् ।
गु(रु?रोः)शय्यासनं पीठमुपानच्छत्रपादुकाम् ॥ ३५ ॥
स्नानोदकं तथा छायां लङ्घयेन्न कदाचन ।
गुरुं दृष्ट्वा भवेद् हृष्टः परमानन्दनिर्भरः ॥ ३६ ॥

चूँकि गुरु साक्षात् शिव स्वरूप होते हैं इसलिये उनकी स्तुति एवं उनको प्रणाम करते हुए उनकी सेवा करनी चाहिये । हे प्रिये! जिस प्रकार देवता उसी प्रकार मन्त्र में, जैसी मन्त्र में वैसी ही गुरु में, जैसी गुरु में वैसी ही अपने आत्मा के विषय में भक्ति रखनी चाहिये । यही भक्ति का क्रम बतलाया गया है । जो व्यक्ति गुरु के वाक्य की अवमानना अर्थात् उपेक्षा कर अपनी बुद्धि से कार्य करता है, मन्त्र एवं देवतापूजन से उसे सिद्धि नहीं मिलती । मन्त्र का उच्चारण करते हुए नियमपूर्वक उनकी उचित पूजा करनी चाहिये । आसन, शय्या, वस्त्र, आभूषण, चरणपादुका, उनकी छाया, गुरुपत्नी और जो कुछ गुरु से सम्बद्ध वस्तुयें हैं उनकी भी पूजा अर्थात् आदर करना चाहिये । गुरु की शय्या, उनका आसन, पीठ, उपानह, छाता, खडाऊँ, स्नान के लिये जल तथा उनकी छाया को नहीं लाँघना चाहिये । गुरु को देखकर प्रसन्न और परम आनन्दित होना चाहिये ॥ ३१-३६ ॥

भीतभीतः पदाम्भोजं पश्येच्चकितलोचनः ।
(उो?उ)पदीकृत्य सर्वस्वं तदादिष्टं मुदान्वितः ॥ ३७ ॥
कुर्यात् सर्वप्रयत्नेन यथा तुष्टो भवेत् तु सः ।
सकृत् प्रणम्य दण्डवदिष्टदेवधिया गुरुम् ॥ ३८ ॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः पूजाकोटिफलं लभेत् ।
यद्यत् प्रियतमं वस्तु भक्त्या तस्मै निवेदयेत् ॥ ३९ ॥
अदत्त्वा गुरवे वस्तु यत्किंचिदिह भूतले ।
आत्मसात् कुरुते यस्तु स भवेद्योगिनीप(तिः?शुः) ॥ ४० ॥
यदेव लभ्यते वस्तु भिक्षया वान्यचेष्टया ।
तन्निवेद्य तदादिष्टं स्वयं भुञ्जीत सादरम् ॥ ४१ ॥

गुरु के चरण को भययुक्त एवं चकितलोचन होकर देखना चाहिये । अपना सर्वस्व गुरु को अर्पित कर उनके आदेशानुसार प्रसन्न होकर रहना चाहिये । जिस प्रकार गुरु प्रसन्न हों सब प्रकार से वैसा प्रयत्न करना चाहिये । गुरु को इष्टदेव समझकर एक बार दण्डवत् प्रणाम कर यदि साधक रोमाञ्चित हो जाता है तो उसे इष्टदेव की एक करोड़ पूजा का फल मिलता है । गुरु को जो-जो वस्तु प्रिय हो वह उनको देनी चाहिये । इस भूतल पर जो कुछ है उसे गुरु को समर्पित किये

बिना जो शिष्य उनका उपभोग करता है वह योगिनियों का पशु हो जाता है। भिक्षा अथवा अन्य उपायों से जो मिले उसको गुरु को निवेदित कर उनके आदेशानुसार सादर उस वस्तु का भोजन करे ॥ ३७-४१ ॥

इदमेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतिः ।
येन विशुद्धभावेन सर्वथात्मार्पणं गुरौ ॥ ४२ ॥
गुरुता शिष्यता चैव तयोर्वत्सरकालतः ।
दापयेत् स्वकृतं दोषं पत्नी पापं स्वभर्तरि ॥ ४३ ॥
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुमाप्नोति निश्चितम् ।

यही सत् शिष्य का कर्त्तव्य है। यही गुरु की निष्कृति अर्थात् प्रत्युपकार है कि गुरु के प्रति शिष्य का सर्वथा अर्पण भाव हो। शिष्य और गुरु की इस प्रकार की गुरुता और शिष्यता एक साल तक रहती है। जिस प्रकार पत्नी अपना पाप अपने पति को दे देती है उसी प्रकार शिष्य के द्वारा किया गया पाप गुरु को लगता है। इसलिए शिष्य को कभी भी कोई पापकर्म नहीं करना चाहिए ॥ ४२-४३- ॥

दीक्षाकालविचारः

सद्गुरुः स्वाश्रमे शिष्यं वर्षमेकं परीक्ष्य वै ॥ ४४ ॥
दीक्षाकालं ततः प्राज्ञो भावयेत् सुसमाहितः ।
शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा ॥ ४५ ॥
फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठे दीक्षा च मध्यमा ।
आषाढो माघमासश्च कनिष्ठौ सद्भिरादृतौ ॥ ४६ ॥
निन्दितः श्रावणश्चैत्रः पौषो भाद्रपदस्तथा ।
निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा ॥ ४७ ॥
विषुवायनयोर्द्वन्द्वे आषाढे मदनोत्सवे ।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा दिनं तत्फलपदं भवेत् ॥ ४८ ॥

दीक्षा काल का विचार—विद्वान् सद्गुरु अपने आश्रम में शिष्य की एक वर्ष तक परीक्षा करने के बाद समाहित चित्त होकर दीक्षाकाल का विचार करे। शरत्काल अर्थात् आश्विन शुक्लपक्ष से कार्तिक शुक्लपक्ष तक, तथा वैशाख मास में दीक्षा उत्तम मानी गयी है। फाल्गुन मार्गशीर्ष और ज्येष्ठ मास में दीक्षा मध्यम श्रेणी की कही गयी है। आषाढ़ और माघ को सन्तों ने दीक्षा के लिये अधम माना है। श्रावण पौष और भाद्रपद मास दीक्षा के लिये निन्दित हैं। इन निन्दित मासों में भी यदि ग्रहणकाल हो तो उस समय की गयी दीक्षा शुभ होती

है । उत्तरायण और दक्षिणायन के दोनों सन्धिकालों, आषाढ़ में, मदनोत्सव के समय, सूर्य अथवा चन्द्रमा के ग्रहण का दिन फलदायक होता है ॥ ४४-४८ ॥

मन्त्रारम्भं सुधीः कुर्याच्छुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।
रवौ गुरौ सिते सोमे कर्तव्यं बुधवासरे ॥ ४९ ॥
पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ ५० ॥
पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे स्वोदये राशितारयोः ।
गुरुशुक्रोदये शुद्धे लग्ने द्वादशशोभिते ॥ ५१ ॥
चन्द्रतारानुकूले च स्थिरे दीक्षा शुभा प्रिये ।

विद्वान को मन्त्र का आरम्भ शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में करना चाहिये । रवि, बृहस्पति, शुक्र, सोम एवं बुधवार को दीक्षा देनी चाहिये । पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी तिथियाँ उत्तम एवं सर्वकामप्रदा मानी गयी हैं । हे प्रिये! जो दिन पञ्चाङ्ग के अनुसार शुद्ध हो, राशि और तारा अपनी उदय स्थिति में हों, गुरु एवं शुक्र उदित हों, लग्न शुद्ध हो तथा राशीश द्वादश भाव में हो, चन्द्र एवं तारा अनुकूल हों तथा लग्न स्थिर हो, ऐसे समय में दीक्षा शुभ मानी जाती है ॥ ४९-५१- ॥

दीक्षाभेदवर्णनम्

त्रिविधा सा भवेद् दीक्षा मान्त्री शाक्ती च शाम्भवी॥ ५२ ॥
मन्त्रार्चनासनस्थानध्यानयोगादिभिः कृता ।
मान्त्री दीक्षा च सा प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी ॥ ५३ ॥
सिद्धैः स्वशक्तिमालोक्य तया केवलया शिशोः ।
निरुपायकृता दीक्षा शा(क्तेयो? क्तीयं)परिकीर्तिता ॥ ५४ ॥
अभिसन्धिं विनाचार्यशिष्ययोरुभयोरपि ।
देशिकानुग्रहेणैव शिवताव्यक्तिकारिणी ॥ ५५ ॥
शिष्टा तु शाम्भवी दीक्षा शिवावेशनकारिणी ।

दीक्षा भेद—वह दीक्षा तीन प्रकार की होती है—१. मान्त्री, २. शाक्ती, ३. शाम्भवी । यह मन्त्र अर्चन, आसन, स्थान, ध्यान, योग आदि के द्वारा की जाती है ।

१. मान्त्री दीक्षा—मान्त्री दीक्षा उसे कहा गया है जो शास्त्र में उक्त होती है अर्थात् इसमें शास्त्रोक्त मन्त्र का गुरु के द्वारा शिष्य को उपदेश दिया जाता है ।

२. शाक्ती दीक्षा—सिद्ध पुरुष अपनी शक्ति को ध्यान में रखकर तथा शिशु अर्थात् शिष्य को शक्ति के साथ जोड़ देता है । इसमें कोई अन्य उपाय करने की आवश्यकता नहीं होती । यह शाक्ती दीक्षा कही गयी है ।

३. शाम्भवी दीक्षा—आचार्य एवं शिष्य की अभिसन्धि के विना देशिक के अनुग्रह से शिष्य के अन्दर शिवत्व की अभिव्यक्ति करने वाली तथा शिष्य को शैवीभावना से समाविष्ट करने वाली दीक्षा शाम्भवी कहलाती है ॥ ५२-५५- ॥

मन्त्रपदनिरुक्तिः

अज्ञानाद् विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात् ॥ ५६ ॥
यतः करोति संसिद्ध्यै मन्त्र इत्युच्यते तदा ।

मन्त्रपद की निरुक्ति—जो मन्त्र अज्ञान तथा संसार बन्धन से त्राण करे तथा सम्पूर्ण विज्ञान वाला हो और साथ ही सिद्धि भी प्रदान करे वह मन्त्र कहा जाता है ॥ ५६- ॥

अधिवासविधिः

भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यथोक्तं ते मया पुरा ॥ ५७ ॥
शल्यादिशोधनं कुर्याद् याज्ञे विधिविधानतः ।
विप्राशि(रा?षा) वेदघोषैर्मङ्गलाचारपूर्वकम् ॥ ५८ ॥
वास्तोर्बलिं प्रकुर्वीत मण्डलं रचयेत् तथा ।
सर्वमङ्गलसम्पत्त्यै विदध्यादङ्कुरार्पणम् ॥ ५९ ॥
गुरुः कालं विनिश्चित्य प्रागेव सप्त वासरान् ।
शिष्यानुकूलमन्त्रेण पूजयेत् परदेवताम् ॥ ६० ॥
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च रात्रौ रात्रीशनामभिः ।

अधिवासन विधि—जैसा मैनें तुमको पहले बताया उस प्रकार भूमि का अधिग्रहण करना चाहिये । उस यज्ञीयस्थल में विधिविधान के साथ शल्य आदि का शोधन करना चाहिये । ब्राह्मणों के आशीर्वाद, वेद मन्त्रों के पाठ एवं अन्य माङ्गलिक कृत्यों को करने के बाद वास्तुबलि करनी चाहिये । फिर मण्डल की रचना करनी चाहिये । सम्पूर्ण मङ्गल की प्राप्ति के लिये अङ्कुर का आरोपण करना चाहिये । गुरु शुभ मुहूर्त्त का निश्चय कर सात दिन पहले शिष्य के लिये अनुकूल मन्त्र से परदेवता की पूजा करे । पूजा के लिये सबसे पहले प्रणव अन्त में 'नमः' और बीच में रात्रि में रात्रीश अर्थात् चन्द्रमा के नामों से पूजा करनी चाहिये ॥ ५७-६०- ॥

दिक्पालबलिः

प्रो(क्त?क्तान्)बलींस्तु तेषां वै वितरेद्विधिना गुरुः ॥ ६१ ॥
पूजां रात्रौ प्रकुर्वीत दिक्पालानपि पूजयेत् ।
तत्तद् ध्वजमधिष्ठाय तत्तद्वर्णविराजितम् ॥ ६२ ॥
पायसान्नैर्बलिं तेभ्यो दत्त्वा तान् प्रार्थयेद् गुरुः ।
धारायुक्तं वारिपात्रं तत्तन्मन्त्रानुमन्त्रितम् ॥ ६३ ॥
शिरस्याधाय देवेशि प्रदक्षिणमनुव्रजेत् ।
यज्ञं संरक्षयेद् दिव्यमादौ गुरुरनन्यधीः ॥ ६४ ॥
शक्रादिसहिता देवाः पूजितास्तर्पितास्तथा ।
म(थं?खं)रक्षन्तु सन्तुष्टा लोकपाला नमोऽस्तु वः ॥ ६५ ॥
म(थे?ख)ग्रहणपूर्वेद्युः सायमेव निवासनम् ।
गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वकम् ॥ ६६ ॥

दिक्पाल बलि—गुरु विधिपूर्वक उनके लिये पूर्वोक्त बलिप्रदान करे । रात्रि में पूजा करनी चाहिये तथा भिन्न-भिन्न विशिष्ट रंग वाले तत्तत् ध्वज को लेकर पायसान्न से उन दिक्पालों को बलि देकर गुरु उनसे प्रार्थना करे । तत्पश्चात् तत्तत् मन्त्र से अभिमन्त्रित धारायुक्त जलपात्र को शिर पर रखकर हे देवेशि! गुरु एकाग्रचित्त होकर प्रदक्षिणा करे तथा दिव्य यज्ञ की रक्षा कराये । रक्षा के लिये निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—'शक्रादि सहिता.........नमोऽस्तु वः ।' (इन्द्र आदि के सहित समस्त देवगण तथा लोकपाल पूजित तर्पित और सन्तुष्ट होकर यज्ञ की रक्षा करें ।) यज्ञ-आरम्भ के एक दिन पहले सायङ्काल में अधिवास करना चाहिये । यह अधिवास रात्रि के समय गुरु आदि के सहित नियमपूर्वक होता है ॥ ६१-६६ ॥

मण्डपनिर्माणम्

विधिवन्मण्डपं चारुवेदिकामध्यशोभितम् ।
पताकाध्वजसङ्कीर्णं वितानादिविभूषितम् ॥ ६७ ॥
निर्धूमशान्तसम्बुद्धदीपावलिभिरञ्चिम् ।
पुपाक्षतफलैः कुम्भैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ॥ ६८ ॥
तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ।
संवृतं कदलीस्तम्भैः पूगोपेतैरलंकृतम् ॥ ६९ ॥

मण्डप-निर्माण—मण्डप का विधिवत् निर्माण करना चाहिये । उसके बीच में सुन्दर वेदी बनी रहनी चाहिये । उसे ध्वज एवं पताका से व्याप्त, वितान आदि

से भूषित, धूमरहित, शान्त, जलती हुई दीपमाला से सुशोभित होना चाहिये। पुष्प, अक्षत, फल, सजलकुम्भ एवं लावा से संयुक्त रहना चाहिये। वृक्षों के पल्लवों से सर्वतः अलंकृत, केले के खम्भों तथा पूगफलों से भरापूरा रहना चाहिये ॥ ६७-६९ ॥

पञ्चगव्येन मण्डपादिशोधनम्

पञ्चगव्येन तद्गेहं चक्रराजं शिशुं तथा।
शोधयेन्मूलमन्त्रेण मन्त्रितेन वरानने ॥ ७० ॥
समानं पञ्चगव्यानां कृत्वा भागं विशोधयेत्।
मूलमन्त्रेण सम्मन्त्र्य कुशाग्रेणैव शोधयेत् ॥ ७१ ॥
तेन सर्वविशुद्धिः स्यात् सर्वपापनिकृन्तनम्।
महापातकजातानि कृत्वा गव्यं पिबेद्यदि ॥ ७२ ॥
नाशयेत् पानमात्रेण इत्याहुर्वेदवेदिनः।
सुस्नातं शुद्धवेशं च शिष्यं सुस्थिरमानसम् ॥ ७३ ॥
आरात् (स्थोऽ?संस्थाप्य)विधिवद् यजेदनुदिनं गुरुः।
होमयेत् संस्कृते वह्नौ पायसैर्मधुराप्लुतैः ॥ ७४ ॥

पञ्चगव्य से मण्डप आदि का शोधन—हे वरानने! यज्ञगृह चक्रराज तथा दीक्षित शिशु का पञ्चगव्य से शुद्धीकरण करना चाहिये। यह शोधन मूलमन्त्र से किया जाता है। इसके लिये पञ्चगव्य (= गाय का दूध दही घी मूत्र और गोमय) को समान भाग में लेकर शोधन करना चाहिये। मूलमन्त्र से पञ्चगव्य को अभिमन्त्रित कर फिर कुशाग्र से उसे यागगृह आदि के ऊपर छिड़कना चाहिये। इससे शिष्य के समस्त पापों का नाश तथा सबकी शुद्धि होती है। पञ्चगव्य बनाकर यदि उसका पान किया जाय तो उसके पीने मात्र से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—ऐसा वेदज्ञ लोग कहते हैं। भलीभाँति स्नान किये हुए, शुद्ध वेष वाले स्थिरचित्त शिष्य को पास में बैठाकर गुरु प्रतिदिन याग करे। संस्कार की गयी अग्नि में मधुरमिश्रित खीर से हवन करना चाहिये ॥ ७०-७४ ॥

होमविधिः

आचार्यः कुण्डे विधिवत्सम्पूज्य परदेवताम्।
मूलेनैव शिखां बद्ध्वा ततः शय्यागतं शिशुम् ॥ ७५ ॥

होमविधि—आचार्य कुण्ड में परदेवता की विधिवत् पूजा कर मूलमन्त्र से शिष्य की शिखा को बाँधकर शिशु को शय्या पर बैठाये ॥ ७५ ॥

स्वप्नमानवमन्त्रः

स्वप्नमानवमाश्रित्य (स्वाद?स्वाप)येत् पूर्वमस्तकम् ।
तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्वि(ज?ठ) ईरतिः(?रितः)॥ ७६ ॥
स्वप्नमानवमन्त्रोऽयं शयने परिकीर्तितः ।
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ॥ ७७ ॥
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ॥ ७८ ॥
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
मन्त्रेण स्वापकाले तु देवं प्रार्थ्य ततः स्वपेत् ॥ ७९ ॥

स्वप्नमानव मन्त्र—स्वप्नमानव मन्त्र का उच्चारण करते हुए गुरु शिष्य को पूर्व की दिशा में शिर रखकर सुलाये । मन्त्र—तार दो 'हिलि' 'शूलपाणये' के बाद दो 'ठः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ हिलि हिलि ठः ठः)

शयन के विषय में यह स्वप्नमानव मन्त्र कहा गया है । उक्त मन्त्र का उच्चारण करने के बाद 'नमोऽजाय.......महेश्वर ।' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । (मन्त्र—अजन्मा त्रिनेत्र पिङ्गल महात्मा विश्वरूप स्वप्नाधिपति राम को नमस्कार है । हे देव! समस्त कार्यों के विषय में सारे तथ्य मुझे स्वप्न में बतलाइये । हे महेश्वर! आपकी कृपा से कर्म की सिद्धि करूँगा ।) इस मन्त्र से स्वप्न काल में प्रार्थना कर फिर शयन करना चाहिये ॥ ७६-७९ ॥

स्वप्नशुभाशुभवर्णनम्

स्वप्ने शुभाशुभं दृष्टं पृच्छेत् प्रातः शिशुं गुरुः ।
गुरुणा वार्चनं कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः ॥ ८० ॥
दर्भशय्यागतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्नं निवेदयेत् ।
कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं (मङ्ग?कम)लं नदीम् ॥ ८१ ॥
कु(कुमं कृषयं?ञ्जरं वृषभं)माल्यं स्वर्णं च फलिनं द्रुमम् ।
पर्वतं च हयं मेध्यमाममांसं सुरासवम् ॥ ८२ ॥
एवमादीनि सर्वाणि (स्पृ?दृ)ष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
चाण्डालं गर्दभं काकं गर्तं शून्यममङ्गलम् ॥ ८३ ॥
तैलाभ्यक्तं नरं नग्नं शुष्कवृक्षं सकण्टकम् ।
प्रासादम(ङ्ग?त)लं दृष्ट्वा नरो रोगमवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥

दृष्ट्वा दुःस्वप्नकं चैवं होमात् सिद्धिमवाप्नुयात् ।
शुभे शुभं वदेत् तस्य जुहुयादशुभे(शुभं?शतम्) ।
अस्त्रेणेति क्रमात् प्रोक्तो विधिः शिष्याधिवास(र?ने) ॥ ८५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे गुर्वादिलक्षणदीक्षानिरूपणनामकः
षड्विंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २६ ॥

* * *

स्वप्न के शुभ-अशुभ का वर्णन—गुरु स्वप्न में शुभ-अशुभ देखने वाले शिष्य से पूछे । गुरु के द्वारा पूछे जाने पर शिष्य उपवास कर जितेन्द्रिय होकर गुरु की पूजा कर रात्रि में देखे गये स्वप्न को गुरु को बतलाये । कन्या, छत्र, रथ, दीपक, प्रासाद, कमल, नदी, कुङ्कुम, हाथी, बैल, माला, स्वर्ण, फलदार वृक्ष, पर्वत, घोड़ा, पवित्र वस्तु, कच्चा मांस, सुरा, आसव इत्यादि स्वप्न में देखने से शिशु सिद्धि प्राप्त करता है । चाण्डाल, गधा, कौवा, गड्ढा, शून्य, तैल लगाया आदमी, नङ्गा आदमी, काँटेदार शुष्क वृक्ष, भूमि से ऊपर प्रासाद, देखकर मनुष्य रोगी होता है । दुःस्वप्न देखकर होम करने से साधक सिद्धि प्राप्त करता है । शुभ स्वप्न देखने पर गुरु शिष्य को शुभ बतलाये और अशुभ देखने पर अग्नि में अस्त्रमन्त्र से सौ आहुति दे । शिष्य के अधिवासन में यह विधि बतलायी गयी ॥ ८०-८५ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में गुरु आदि लक्षण एवं दीक्षा
का निरूपण नामक छब्बीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी
कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २६ ॥

* * *

सप्तविंशः पटलः

दीक्षाविधाननिरूपणम्

ईश्वर उवाच—

मण्डपप्रवेशविधिः

अथ पूर्वानुसारेण नित्यं प्रातः समाप्य च ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ १ ॥
आचार्यं वृणुयाद् भक्त्या ब्राह्मणानपि तोषयेत् ।
शिष्यः(सा?स्व)लंकृतो मौनी पुष्पचन्दनभूषितः ॥ २ ॥
नानामङ्गलवाद्यैश्च ब्रह्मघोषपुरःसरम् ।
नारीणां मङ्गलाशीर्भिर्ब्राह्मणानां तथैव च ॥ ३ ॥
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैः सन्तुष्टः शुद्धमानसः ।
दीपमालावलीरम्यं नानाधूपप्रधूपितम् ॥ ४ ॥
मण्डपं विधिवद् देवि पूर्ववत् प्रविशेद् गुरुः ।
पूर्ववदपरं कृत्वासने समुपविश्य च ॥ ५ ॥

मण्डपप्रवेश की विधि—ईश्वर ने कहा—इसके पश्चात् शिष्य पूर्ववर्णित क्रम के अनुसार प्रातःकालीन नित्य कृत्य समाप्त कर देवता तथा पितृगण का अर्चन एवं तर्पण कर वस्त्र, अलङ्कार और आभूषण से आचार्य का वरण करे । भक्ति के साथ अन्य ब्राह्मणों को भी सन्तुष्ट करे । तत्पश्चात् वह अलंकृत मौनी एवं पुष्प तथा चन्दन से भूषित होकर मङ्गलकारी अनेक वाद्य तथा वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ मण्डप में प्रवेश करे । उस समय 'जय' शब्द से युक्त स्तोत्रों के द्वारा स्त्रियाँ तथा ब्राह्मण उसको आर्शीवाद देते रहें । मण्डप में दीपादि जलते रहने चाहिये तथा धूप से मण्डप सुगन्धित रहना चाहिये । प्रवेश क्रम में पहले पूर्व दिशा की ओर से गुरु को प्रवेश करना चाहिए । प्रवेश के बाद पूर्ववत् अन्य कार्य कर आसन पर बैठ जाय ॥ १-५ ॥

तथापरं च निर्वर्त्य कुङ्कुमेन वरानने ।
वेदिकायां वरारोहे सिन्दूरराजसाथवा ॥ ६ ॥
चक्रराजे तु लिखिते तन्मध्ये दर्भविस्तृते ।
सौवर्णं राजतं ताम्रं मणिकं च सुलक्षणम् ॥ ७ ॥
द्वात्रिंशदङ्गुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम् ।
क्षालयित्वास्त्र(तं?म)न्त्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि॥ ८ ॥
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमैरपि ।
दिव्यैर्द्रव्यैःसुसम्पूर्णं वासोयुग्मेन वेष्टितम् ॥ ९ ॥
नूतनं नेत्ररम्यं च पुष्पमालाद्यलंकृतम् ।
दधिचन्दनसंलिप्तं क्षि(प्ता?प्त्वा)न्तर्नवरत्नकम् ॥ १० ॥
मदयन्तीं सहदेवीं दूर्वां भस्म तथैव च ।
मृत्तिकाः सप्त विन्यस्तं पल्लवैः पञ्चभिर्युतम् ॥ ११ ॥
परितो वेष्टितं सूत्रै रक्तैश्चातिमनोहरैः ।
यवानास्तीर्य पुष्पाणि (स?सु)रद्रुमधिया गुरुः ॥ १२ ॥
मूलमन्त्रेण संस्थाप्य यजेदाधारपूर्वकम् ।
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ॥ १३ ॥
तथा सूर्यमयं कुम्भं कलाभिस्तत्र पूजयेत् ।
जलं सोममयं तद्वत् कलाभिश्च समर्चयेत् ॥ १४ ॥
तेजस्त्रयमिदं प्रोक्तं ज्वलत्तदात्मकं स्मृतम् ।

कलश स्थापन—हे वरानने! एक दूसरा आसन कुङ्कुम से बनाना चाहिये । हे वरारोहे! यह आसन वेदी के ऊपर कुङ्कुम अथवा सिन्दूर राजस अर्थात् पीला सिन्दूर से बनता है । चक्र-निर्माण के बाद उसके बीच कुश बिछा दे । कुश के ऊपर एक कलश रखे । यह कलश सुन्दर आकार वाला, सोना चाँदी ताँबा माणिक्य का तथा बत्तीस अङ्गुल चौड़ा और ऊँचा होना चाहिये । हे सुरेश्वरि! इसको अस्त्रमन्त्र से भलीभाँति धुलकर चन्दन, अगुरु, कपूर, गोरोचन, कुङ्कुम तथा बहुमूल्य द्रव्यों से भरकर दो वस्त्रों से वेष्टित कर देना चाहिये । यह नीवन घट जो देखने में सुन्दर लगता हो उसे पुष्प एवं पुष्प माला आदि से सुसज्जित करना चाहिये । दधि एवं चन्दन से उपलिप्त कर उसके अन्दर नवरत्न[1] डाल

---

[1] माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमञ्च गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ।
गोमेदवैडूर्यमणिं तथैव रत्नानि प्राहुर्नवसंख्यकानि ॥
गारुड = पन्ना । पुष्प = पुष्पराज । वज्र = हीरा ।

देना चाहिये । मदयन्ती (= एक प्रकार की चमेली) सहदेवी दूर्वा भस्म सप्तमृत्तिका[1] और पञ्चपल्लव[2] भी डालना चाहिये । उसे चारों ओर रक्त सूत्र से परिवेष्टित करना चाहिये । गुरु यव और पुष्पों को कल्पवृक्ष के पुष्पों का ध्यान कर वहाँ बिखेर दे । मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए आधार के बाद कलश की स्थापना कर वह्निमण्डलरूपी उस कलश की उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । उसी प्रकार सूर्यमय कुम्भ की उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । उसी प्रकार जल को सोममय समझ कर उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । ये तीनों जलते हुए तेज तत्तदात्मक अर्थात् वह्नि सूर्य और चन्द्रात्मक माने गये हैं ॥ ६-१४- ॥

पुष्पपाततत्फलवर्णनम्

पुष्पैर(ञ्जाल?ञ्जलि)मापूर्यतस्मिन्नेव प्रदापयेत् ॥ १५ ॥
पश्चिमोत्तररुद्रेन्द्रे पुष्पपातः शुभोऽशुभे ।
अष्टोत्तरशतं शान्त्यै जुहुयादस्त्रमन्त्रतः ॥ १६ ॥
अथ प्रागुक्तविधिना यथाक्रममनुत्तमम् ।
कृत्वा सम्पूज्य विधिवदिष्ट्वा देवधिया गुरुः ॥ १७ ॥

चरुहोमः

अङ्गावृतीः समभ्यर्च्य श्रपयित्वा चरुं ततः ।
भागमेकं महादेव्यै शेषमग्नौ हुनेत्ततः ॥ १८ ॥
अष्टोत्तरशतं साज्यं मधुरत्रितयान्वितम् ।
समिद्धेऽग्नौ महादेवीं ध्यात्वा सम्यक् प्रधानतः ॥ १९ ॥
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नावसमिद्धे च मानवः ।
स मन्दाग्निः सामयो वा अल्पायुश्चोपजायते ॥ २० ॥
तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथंचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं तथा ॥ २१ ॥
तथाबुधः सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने ।
यजमानो भवेदन्धः सपुत्रश्च विनश्यति ॥ २२ ॥

---

[1] हाथीशाला, गोशाला, तीर्थ अथवा नदीसङ्गम, राजद्वार, वल्मीक अर्थात् चींटी की विल, घुड़साल और तालाव ।
अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकाच्च ह्रदस्तथा ।
गोस्थानाद्राजद्वाराच्च सङ्गमाच्च मृदा हरेत् ॥

[2] आम, पीपल, पाकड़, गूलर और बरगद ।

अ(थ?प्र)दीप्ते न होतव्यं मध्यमे नाप्यनेधिते ।
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ होतव्यं कर्मसिद्धये ॥ २३ ॥
हुत्वा सा(ज्ञा?ङ्गां) महेशानीं समाप्य तदनन्तरम् ।
कर्म पूर्वोक्तमा(चा?च)र्य्य तरुणोल्लासवान् गुरुः ॥ २४ ॥

पुष्पपात और उसका फल—इसके अनन्तर गुरु शिष्य की अञ्जलि को पुष्पों से भरकर उसे आँख बन्द कर उस मण्डप में फेंकने को कहे । यदि वह पुष्प पश्चिम, उत्तर, ईशान एवं पूर्व दिशा में गिरता है तो शुभ है; शेष दिशाओं में गिरने पर अशुभ होता है । अशुभ सूचक होने पर शान्ति के लिये अस्त्रमन्त्र से एक-सौ आठ आहुति देनी चाहिये । इसके बाद पूर्वोक्त विधि से क्रमानुसार अनुत्तम कृत्य कर उसकी विधिवत् पूजाकर गुरु अङ्गावरणों को देवता समझ कर उनकी पूजा करे ॥ १५-१६ ॥

चरुहोम—चरु को गरमकर उसका एक भाग महादेवी त्रिपुरसुन्दरी को दे तथा शेष की अग्नि में आहुति दे दे । इस क्रम में चरु को त्रिमधु (= मधु शक्कर दूध) के साथ घी मिलाकर पूर्ण प्रज्वलित अग्नि में मुख्यरूप से महादेवी का ध्यान कर एक-सौ आठ बार आहुति देनी चाहिये । जो मनुष्य विना पूर्ण प्रज्वलित अथवा ज्वालारहित अग्नि में हवन करता है उसे अग्निमान्द्य अथवा अन्य रोग होता है और वह अल्पायु हो जाता है । इसलिये समिद्ध अग्नि में हवन करना चाहिये असमिद्ध अग्नि में कभी नहीं । इसलिये जो मनुष्य आरोग्य दीर्घायु और अत्यधिक लक्ष्मी चाहता है वह समिद्ध अग्नि में ही होम करे । जो मूर्ख यजमान सधूम अग्नि में हवन करता है वह अन्धा हो जाता तथा सपुत्र नष्ट हो जाता है । अप्रदीप्त मन्द प्रदीप्त तथा ईधनरहित अग्नि में हवन नहीं करना चाहिये । कर्म की सिद्धि के लिये प्रदीप्त लेलिहान अग्नि में हवन करना चाहिये । अङ्गों के सहित महेशानी के लिये हवन कर पूर्वोक्त कर्म समाप्त करने के बाद तरुण उल्लासयुक्त गुरु शिष्य को बुलाये ॥ १५-२४ ॥

शिष्यमुखछादनं प्रार्थनं च

शिष्यमाहूय यत्नेन वाससाच्छाद्य तन्मुखम् ।
विशे(ष्या?षा)र्घ्योदकेनैव तमवीक्ष्य विधानतः ॥ २५ ॥
कारुण्या(विनये?म्बुनिधे)देवि सर्वसम्पत्तिसंश्रये ।
शरण्ये वत्स(लो?ले)मातः कृपामस्मिञ्शिशौ कुरु ॥ २६ ॥
(अशि?आण)वप्रमुखैः पाशैः पाशितस्य सुरेश्वरि ।
दीनस्यास्य दयाधारे कुरु कारुण्यमीश्वरि ॥ २७ ॥
ऐहिकामुष्मिकैर्भोगैरभिसं (बुं?ब)द्ध्यतामसौ ।

स्वभक्तिः सकला चास्मै दीयतां निष्कलाश्रये ॥ २८ ॥

शिष्य के मुख को ढँकना और प्रार्थना करना—बुलाने के बाद गुरु शिष्य के मुख को प्रयत्नपूर्वक ढँक कर विशेषार्घ्य के जल से उसका विधिपूर्वक प्रोक्षण करे । साथ में निम्नलिखित श्लोकों को पढ़ता जाय । पठनीय श्लोक—'कारुण्याम्बुनिधे.................निष्कलाश्रये ।' (हे करुणा की सागर ! हे समस्त सम्पत्ति देने वाली ! शरणागत की रक्षा करने वाली ! वत्स के समान प्रेम प्रदान करने वाली माँ ! इस शिशु के ऊपर कृपा करो । हे ईश्वरि! हे दया की आधार! हे सुरेश्वरि! आणव प्रमुख (= मायीय और कार्म) पाशों से बद्ध इस दीन के ऊपर दया करो । इसे ऐहलौकिक तथा पारलौकिक भोगों से सम्बद्ध करो । इस निष्कल व्यक्ति को अपनी कलापूर्ण भक्ति दो) ॥ २५-२८ ॥

सिद्धान्तश्रावणम्

एवं प्रार्थ्य महादेवीमु(द्रा?द्वा)स्य हृदयाम्बुजे ।
शिष्याय श्रावयेद् दिव्यः शिवोऽहमिति भावयन् ॥ २९ ॥
अन्तस्तमोपहं दिव्यं सिद्धान्तं श्रावयेद् गुरुः ।
(यत्?षट्)त्रिंशत्तत्त्वभ(वि?रि)तंविश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ३० ॥
शरीरं चापि त(त्रो?त्त्वो)त्थंतस्मिन्नेवद्विधा शिवः ।
कञ्चुकितः शिवो जीवो निष्कञ्चुकः परः शिवा ॥ ३१ ॥
आत्मज्ञानमात्मविद्भिः पुरुषार्थः समीरितः ।
वर्णात्मकं(?का) महेशानि नित्याःशब्दाः प्रकीर्तिता॥ ३२ ॥
अचिन्त्यस्त्विह मन्त्राणां प्रभावः समुदाहृतः ।
सम्प्रदायपरिज्ञानं गुरुणां सिद्धिदायकम् ॥ ३३ ॥
विश्वासाद्गुरुवाक्यानां सर्वसिद्धिरितीरिता ।
प्रामाण्यं चात्र स्वनिष्ठं विश्वासः समुदाहृतः ॥ ३४ ॥

शिष्य को सिद्धान्त सुनाना—इस प्रकार महादेवी से प्रार्थना कर और उसे हृदय कमल में बैठाने के बाद 'मैं दिव्य हूँ मैं शिव हूँ' ऐसी भावना करता हुआ गुरु शिष्य को उपदेश दे । गुरु शिष्य को हृदय के अन्धकार को दूर करने वाला दिव्य सिद्धान्त सुनाये । वह इस प्रकार—यह स्थावर जङ्गमात्मक विश्व छत्तीस तत्त्वों से पूर्ण है । तुम्हारा शरीर भी उसी से उत्पन्न हुआ है । इस शरीर में दो प्रकार के शिव रहते हैं—१. कञ्चुकित शिव अर्थात् जीव । २. निष्कञ्चुकित शिव अर्थात् ईश्वर । आत्मवेत्ताओं ने आत्मज्ञान को परमपुरुषार्थ कहा है । हे महेशानि! शब्द वर्णात्मक होते अर्थात् वर्णों से बने होते हैं । वर्ण नित्य हैं अतः शब्द भी नित्य कहे गये हैं । वर्णों अथवा शब्दों से बने मन्त्रों का प्रभाव अचिन्तनीय है

अर्थात् उनके प्रभाव का ज्ञान करना असम्भव है । गुरुओं के सम्प्रदाय का सम्यक् ज्ञान सिद्धि प्रदान करता है । गुरु के वाक्यों में विश्वास करने से समस्त सिद्धियों की प्राप्ति कही गयी है । यहाँ गुरु वाक्यों की प्रामाणिकता स्वयं अपने में रहने वाली होती है और इसी को विश्वास कहा गया है ॥ २९-३४ ॥

अन्तरालपरिज्ञाननिरूपणम्

गुरूणां चैव मन्त्राणां देवानामपि पार्वति ।
मनःपवनयोश्चैवमेकत्वेन विभावनात् ॥ ३५ ॥
अन्तरात्मपरिज्ञानमिति जानीहि पार्वति ।

अन्तरात्मा का परिज्ञान—हे पार्वति! गुरु, उनके द्वारा प्रदत्त मन्त्र, मन्त्र की देवता, जापक का मन और प्राण इनकी एकता की भावना करने से अन्तरात्मा का ज्ञान होता है ऐसा समझो ॥ -३५- ॥

पञ्चमकाराणां ब्रह्माभिव्यञ्जकत्वम्

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे विभावयेत् ॥ ३६ ॥
तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्च मकाराद्याः प्रकीर्तिताः ।
तैरेव यजनं तस्य गुप्त्या सिद्धिर्नचान्यथा ॥ ३७ ॥
प्राकट्याच्च(य?भ)यं यस्माद् गोययेन्मातृजारवत् ।
अभेदभावनादार्ढ्यादाज्ञासिद्धिः समीरिता ॥ ३८ ॥

पञ्चमकार ब्रह्म का अभिव्यञ्जक—आनन्द ब्रह्म का रूप है । उसकी अपने शरीर में भावना करनी चाहिये । पञ्चमकार उस आनन्द के अभिव्यञ्जक कहे गये हैं । उन्हीं पञ्चमकारों के द्वारा उस ब्रह्म या आत्मा का अर्चन करना चाहिये । इसे गोपनीय रखने से सिद्धि मिलती है अन्यथा नहीं । चूँकि इस पञ्चमकार-साधना को प्रकट करने से भय रहता है इसलिये इसे माता के गोपनीय उपपति के समान प्रच्छन्न रखना चाहिये । उपर्युक्त गुरु आदि पाँच की अभेद भावना से आज्ञाचक्र की सिद्धि कही गयी है ॥ ३६-३८ ॥

निषिद्धकर्मवर्णनम्

न निन्देद् दक्षिणं वामं न निन्देद् दर्शनानि च ।
निन्दाद्रोहादिकर्तॄणां गणनां नैव कारयेत् ॥ ३९ ॥
रहस्यकथनं देवि सच्छिष्य एव नापरे ।
सदा विद्यानुसंधानं शिवभावेन तत्परः ॥ ४० ॥
कामं क्रोधं तथा लोभं मदमोहौ तथैव च ।

हिंसां स्तेयं च मात्सर्यं यल्लोकेषु विगर्हितम् ॥ ४१ ॥
स्त्रीविद्वेषादिकं चैव वर्जयेन्ममितान् सदा ।
एक एव गुरुर्देवस्तस्यैवोपासनं सदा ॥ ४२ ॥
असंशयस्तु सर्वत्र निष्परिग्रहता मता ।
फलविरहितं कर्म त्यजेदनित्यमेव तत् ॥ ४३ ॥
पञ्चानामप्यलाभे तु नित्यं क्रमविम(र्ष?र्श)नम् ।
निर्भयत्वं च सर्वस्माज्ज्ञेयं सर्वं ह(रि?विः)प्रिये ॥ ४४ ॥
स्वयमेव हि होतात्र आत्मा शिवस्तु पावकः ।

निषिद्ध कर्म—दक्षिण मार्ग एवं वाममार्ग की निन्दा नहीं करनी चाहिये । चार्वाक, बौद्ध आदि दर्शनों की भी निन्दा नहीं क़रनी चाहिये । जो निन्दा अथवा द्रोह आदि करने वाले हैं उनकी गणना नहीं करनी चाहिये । हे देवि! रहस्यार्चन आदि का कथन सदाचारी शिष्य से ही करना चाहिये अन्य से नहीं । साधक को सर्वदा विद्या अर्थात् स्त्री जातीय मन्त्रों का अनुसन्धान करना चाहिये । इस अनुसन्धान को शिवानुसन्धान समझ कर निरन्तर उसमें लगा रहना चाहिये । काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, हिंसा, चोरी, मात्सर्य और भी स्त्रीविद्वेष आदि जो कुछ लोक में निन्द्य है विद्वान साधक को चाहिये कि वह उसका परित्याग कर दे । गुरु ही एकमात्र देवता है—ऐसा समझ कर सदा उन्हीं की उपासना करनी चाहिये । सर्वत्र निर्भय होने के भाव को हवि, स्वयं आत्मा को होता और शिव को अग्नि समझना चाहिये अर्थात् अपने समस्त भय को शिव को समर्पित कर देना चाहिये ॥ ३९-४४- ॥

आत्मविद्यायाः सर्वोत्कृष्टत्वम्

आत्मलाभात्परं नास्ति फलं क्वापिच सुव्रते ॥ ४५ ॥
सैषाज्ञा परमा शैवी कथिता तव पार्वति ।
वेदादिसकला विद्या वेश्या इव प्रकाशिताः ॥ ४६ ॥
सर्वेषु दर्शनेष्वेव विद्येयं खलु गोपिता ।
धीमांस्तत्रैव दीक्षेत सर्वथात्मविभूतये ॥ ४७ ॥

आत्मविद्या सर्वोत्कृष्ट है—हे सुव्रते! आत्मविद्या के द्वारा आत्म साक्षात्कार से बढ़कर कोई और फल नहीं है । हे पार्वति! यह शिव ही परम आज्ञा है । वेद आदि समस्त विद्यायें वेश्या के समान सबको सुलभ हैं सबके सामने प्रकाश्य हैं किन्तु सारे दर्शनों में यह विद्या परम गोप्य है । आत्मकल्याण के लिये विद्वान् को चाहिये कि वह उसी में दीक्षित हो ॥ ४५-४७ ॥

शिष्यपाशदहनम्

अथ शिष्यशिरोदेशे (वरु?चर)णं रक्तशुक्लयोः ।
भावयित्वा वपुस्तस्य क्षालितं मांसबृंहितम् ॥ ४८ ॥
तदमृतैः(श्र?स्र)वद्भिश्च कुर्याद् गुरुरुदारधीः ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ज्वलन्तीं ज्वलनच्छविम् ॥ ४९ ॥
प्रतीशष(?ष्टक)हरींकोटिसूर्यप्रकाशिनींपराम्।
चन्द्रकोटिप्रभां शुद्धामज्ञानेन्धनदाहिकाम् ॥ ५० ॥
तत्तद्रश्मिभिरेवास्य पापपाशांस्तु संदहेत् ।
शिवोऽहमिति निश्चित्यवीक्षेत् करुणया दृशा ॥ ५१ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तं सर्वदोषविवर्जितम् ।

शिष्य के पाश का दहन—इसके बाद शिष्य के शिर के ऊपर रक्त शुक्ल अर्थात् पार्वती एवं शिव के चरणों की भावना कर उदार घी गुरु यह भावना करे कि उसका मांसल शरीर शिवशिवा के चरणों से गिरने वाले अमृत से प्रक्षालित हो गया है—ऐसी भावना करे । अग्नि के समान सुन्दरता वाली तथा मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक देदीप्यमान, प्रतिकूलता को दूर करने वाली कोटिसूर्य के समान प्रकाश करने वाली कोटिचन्द्र के समान कान्तिवाली, शुद्ध, अज्ञानरूपी इन्धन को जलाने वाली परादेवी का ध्यान कर उसकी तत्तत् रश्मियों से इस शिष्य के पापरूपी पाश को जला देना चाहिये । 'मैं शिव हूँ' ऐसा निश्चित कर करुणापूर्ण नेत्रों से शिष्य को देखना चाहिये कि वह समस्त पापों और समस्त दोषों से रहित हो गया है ॥ ४८-५१- ॥

शिवहस्तविधिः शिष्यदेहप्रवेशश्च

पुनः स्वयं शिवो भूत्वा असंदिग्धमना गुरुः ॥ ५२ ॥
शिवहस्तेन शिष्यस्य मन्त्रं शिरसि संस्पृशेत् ।
जपोक्तक्रमतो योगी शिष्यदेहं प्रविश्य तु ॥ ५३ ॥
गृहीत्वा तस्य चात्मानमात्मना योजयेद् गुरुः ।
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा संक्रामेन्मन(सा)ऽऽदरात् ॥ ५४ ॥

शिवहस्तविधि और शिष्यदेह में प्रवेश—इसके पश्चात् गुरु सन्देहरहित चित्त वाला होकर अपने को शिव हुआ मानकर शिवहस्त से मन्त्र का मनन करता हुआ शिष्य के शिर पर स्पर्श करे । जप करते हुए वह योगी गुरु शिष्य के देह में प्रवेश कर उसकी आत्मा को अपनी आत्मा से जोड़ दे और स्वयं मन्त्रमय शरीर वाला होकर उसके मन से आदरपूर्वक निकल आये ॥ ५२-५४ ॥

शिष्यस्य स्नपनादिकम्

हसौःवर्णकर्णिके शि(क्ष्य?ष्यं)स्वरद्वन्द्वाष्टकेसरे ।
दिगष्टकस्थितंवंठंवर्गाष्टयुक्तदिग्दले ॥ ५५ ॥
चतुरस्रासने शुद्धे मातृकायन्त्रराजके ।
निवेश्य सादरं देवि कलशामृधारया ॥ ५६ ॥
स्नपयेन्मूलविद्याभिस्त्रि(भङ्गो?रङ्गैः) देशिकोत्तमः ।
परिधाप्य दुकूले च चन्दनाद्यैर्विलेपयेत् ॥ ५७ ॥
अलंकृत्य यथालाभं समानं शिष्यपुत्रकम् ।
प्रसन्नं शान्तचित्तं च पार्श्वे निवेश्य देशिकः ॥ ५८ ॥
तदङ्गे मातृकां न्यस्य विद्याङ्गन्यासमाचरेत् ।
विमुक्तमुखवस्त्रस्य हस्ते तस्य गुरुः स्वयम् ॥ ५९ ॥
यथाधिकारमालोच्य द्रव्यभेदान् प्रकाशयेत् ।
अन्यथा सर्वहानिः स्यादयोग्येषु प्रकाशनात् ॥ ६० ॥
भोजनं तत्त्वमन्त्रैस्तु कारयेद् ग्रा(म?स)मुद्रया ।

शिष्य का स्नान आदि—इसके बाद आचार्य शिष्य को मातृकानिर्मित यन्त्रराज वाले शुद्ध चौकोर आसन पर बैठाये । इस अक्षरात्मक आसन में 'ह्सौः' कर्णिका हैं । 'अ' से लेकर 'अः' तक दो-दो स्वरों को मिलाकर आठ केसर हैं । आठ दिशाओं में वं ठं से युक्त आठ वर्ग वाले आठ दल हैं । वे आठ वर्ग हैं—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शर्व तथा वं ठं(?) । हे देवि! इस प्रकार के आसन पर शिष्य को बिठाकर मूलविद्या का उच्चारण करते हुए तीन अङ्गों (= शिर, शिर से नाभि और सम्पूर्ण शरीर) में स्नान कराना चाहिये । इसके पश्चात् दो वस्त्र पहनाकर शिष्य को चन्दन आदि से उपलिप्त करना चाहिये । इसके बाद आचार्य यथोपलब्ध अलङ्कारों से अलंकृत कर उस पुत्रकल्प शिष्य को जो कि प्रसन्न और शान्तचित्त है, पास में बैठाये । फिर उसके अङ्ग में मातृकाओं का न्यास कर विद्याङ्गन्यास करे । मुख का वस्त्र हटाकर गुरु उसके हाथ में उचित अधिकार का विवेचन कर द्रव्यभेदों का प्रकाशन करे । अयोग्य शिष्य में द्रव्यभेद का प्रकाशन करने से सब प्रकार की क्षति होती है । तत्पश्चात् ग्रासमुद्रा के द्वारा तत्त्वमन्त्र से उसे भोजन कराये ॥ ५५-६०- ॥

गुरुणा पादुकाविनिवेदनम्

अथ गुरुः प्रसन्नात्मा पूर्वोक्तामात्मनः पराम् ॥ ६१ ॥
बालान्वितां विधायादौ पादुकां विनिवेदयेत् ।
दक्षकर्णे दिशेद्बालां पश्चादिष्टं निवेदयेत् ॥ ६२ ॥

स्वकीयचरणं मूर्ध्नि शिशोर्निक्षिप्य पार्वति ।
सर्वान् मन्त्रान् सकृद्वापि क्रमेणैव यथाविधि ॥ ६३ ॥
यथाधिकारमावर्त्य स्वाङ्गेषु च शिशोः करम् ।
स्पर्शयित्वा किमप्यङ्गं तदङ्गमातृकादिकम् ॥ ६४ ॥
द्व्यक्षरं त्र्यक्षरं वापि चतुरक्षरमेव वा ।
आनन्दनाथशब्दान्तं नाम कुर्याद्गुरुः पिता ॥ ६५ ॥

गुरु के द्वारा पादुका निवेदन—इसके बाद गुरु प्रसन्न होकर पूर्वोक्त अपनी पर देवता को बाला बीज (= हसौः) से युक्त कर शिष्य को पादुका दे दे । उसके दाँयें कान में बाला मन्त्र का उपदेश देकर बाद में इष्ट मन्त्र बतलाये । हे पार्वति! तत्पश्चात् शिष्य के शिर पर अपना पैर रखकर समस्त मन्त्रों को एक बार अथवा अधिकारपूर्वक अनेक बार क्रम से विधिपूर्वक शिष्य के कान में सुनाये । इसके पश्चात् गुरु शिशु के हाथ से अपने किसी अङ्ग का स्पर्श कराये । पुनः गुरु पिता की भाँति स्पर्श कराये गये उस अङ्ग के प्रथम दो तीन चार अक्षरों को लेकर अन्त में 'आनन्दनाथ' जोड़कर उसका नामकरण करे । उदाहरण के लिये नेत्रानन्दनाथ हृदयानन्दनाथ आदि ॥ ६१-६५ ॥

आचाराननुशिष्याथ हृच्चैतन्यं परामृ(ष?शे)त् ।
त्रिभिः कूटैस्तदङ्गं च त्रिः प्रमृज्य गुरुः स्वयम्॥ ६६ ॥
परिरभ्य तथा मूर्ध्नि समुपा(ग्रा?घ्रा)य सादरम् ।
आत्मरूपं ततः कृत्वा शिष्यं पूर्णं विभावयेत् ॥ ६७ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं स्वशक्तिहान्यनवाप्तये ।
प्रसन्नात्मा जपेद्विद्यां ततो गुरुरुदारधीः ॥ ६८ ॥

पुनः देशिक शिष्य को आचारों का उपदेश देकर उसके हृदयचैतन्य का स्पर्श करे । गुरु स्वयं तीन कूटों से उसके अङ्ग को तीन बार मल कर उसका आलिङ्गन कर उसके शिर को सूँघे तथा आदर के साथ उसे आत्मरूप बनाकर शिष्य पूर्ण हो गया ऐसी भावना करे । इसके बाद अपने शक्तिक्षय को प्राप्त करने के लिये उदारचेता गुरु प्रसन्नचित्त होकर एक हजार आठ बार मूलमन्त्र का जप करे ॥ ६६-६८ ॥

शिष्यद्वारा गुरोः सन्तोषणम्

कृतार्थः कृतकृत्यस्तु यथाविभवविस्तरैः ।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य दम्भमोहौ च जि(म्भ?ह्य)ताम् ॥ ६९ ॥
हस्त्यश्वरथयानाद्यैर्दासदासीभिरेव च ।

गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः ॥ ७० ॥
कुम्भादिकर्णे यद् द्रव्यं सर्वमण्डप एव च ।
अर्थं प्राणाञ् शरीरं च सर्वं तस्मै निवेद्य च ॥ ७१ ॥
पतित्वा पादयोर्मूले दण्डवद् भुवि मानवः ।

शिष्य के द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करना—इसके बाद शिष्य कृतकत्य होकर वित्तशाठ्य अर्थात् कृपणता, दम्भ मोह कुटिलता को छोड़कर अपने धन तथा सम्पत्ति के अनुसार गुरु को सन्तुष्ट करे। इस क्रम में वह उन्हें हाथी घोड़ा रथ शिविका अन्य प्रकार के यान दास दासी गो भूमि स्वर्ण वस्त्र आदि से सन्तुष्ट करे। कलश आदि के स्थापन में जो द्रव्य हैं उनको तथा सम्पूर्ण मण्डप के सहित धन प्राण शरीर सब कुछ गुरु को देकर मनुष्य अर्थात् शिष्य दण्ड के समान गुरु के पैरों पर गिरकर स्तुति करे ॥ ६९-७१- ॥

गुरोः स्तुतिस्तेषां चाशिषः

नमस्ते भगवन्नाथ शिवाय गुरुरूपिणे ॥ ७२ ॥
प्रसीद करुणाधाम(न्)मयि दीनत्वतापिते ।
कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ॥ ७३ ॥
प्रसन्नास्तु परा देवी भोगमोक्षविधायिनी ।
तन्मना भव हे पुत्र(त्वा?ता)मेव त्वं सदा स्मर ॥ ७४ ॥
द्वैतभावं च ते मास्तु पूर्णानन्दमयो भव ।
(वक्त्रैः?उक्त्वो)त्तिष्ठेति पीयूषवचोभिरभि(व?न)न्द्य तम्॥७५॥
हस्ताभ्यां च तमुत्थाप्य प्रसन्नोऽहं सदा प्रिये ।
सिद्धयः सकलास्तूर्णं सन्तु ते मत्प्रसादतः ॥ ७६ ॥

गुरु की स्तुति और उनका आशीर्वचन—हे भगवन्! हे नाथ! आपको नमस्कार है। गुरु रूपी शिव को नमस्कार है। हे करुणा के धाम! दीनता से तपित मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो जाइये। शरीर वाणी और मन से मेरे लिये आपके अतिरिक्त दूसरी गति अर्थात् शरणदाता नहीं है। इसके बाद गुरु शिष्य को कहते हैं—हे पुत्र! परादेवी भोगमोक्षविधायिनी त्रिपुरसुन्दरी तुम पर प्रसन्न हैं। तुम तन्मना हो जाओ। सदा उनका स्मरण करो। तुम्हारे अन्दर द्वैत भाव अर्थात् मैं भिन्न हूँ त्रिपुरादेवी भिन्न है गुरु भी मुझसे पृथक् हैं—ऐसी भावना न आये। तुम पूर्ण आनन्दमय हो जाओ। ऐसा कहकर गुरु कहे कि 'उठो'। इस अमृतवाणी को सुनकर गुरु उसका अभिनन्दन कर हाथों से उसे उठाये और कहे कि हे प्रिय! मैं तुम पर सदा प्रसन्न हूँ। मेरी कृपा से तुम्हें समस्त सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्त हों ॥ ७२-७६ ॥

कुमारिकादिभोजनादिकम्

प्रसन्नात्मा तथा शिष्यो विदिताखिलवेद्यकः ।
भक्तिश्रद्धासमायुक्तो भोजयेद् वै(द्धमावि?कुमारि)काः ॥ ७७ ॥
ब्राह्मणान् परितोष्याथ दीनान्धकृपणानपि ।
पक्वान्नैरतिमिष्टैश्च ज्ञातीनपि च भोजयेत् ॥ ७८ ॥
गन्धैर्नानाविधैः पुष्पैर्माल्यैरपि च तोषयेत् ।
तेभ्य आशिष आदाय समर्थीया जयावहाः ॥ ७९ ॥
सद्गुरोराहितदीक्षो महाविद्याक्षरो महान् ।
सर्वमन्त्राधिकारी स्यात् सर्वज्ञो भुवि जायते ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे दीक्षाविधाननिरूपणनामकः सप्तविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २७ ॥

* * *

कुमारी आदि को भोजन कराना—उसके पश्चात् विदितवेदितव्य शिष्य प्रसन्नचित्त एवं भक्ति-श्रद्धा से युक्त होकर कुमारियों को भोजन कराये । ब्राह्मण दीन अन्धे कृपण तथा भाई बन्धुओं को पक्वान्न एवं मधुरान्न का भोजन कराये । गन्ध अनेक प्रकार की मालाओं से भी उन्हें सन्तुष्ट करे । उनसे आशीर्वाद लेकर जय की याचना करे । सद्गुरु से दीक्षा लेने के बाद महाविद्या का अधिकारी वह महान् शिष्य इस पृथिवी पर सब मन्त्रों को देने का अधिकारी तथा सर्वज्ञ हो जाता है ॥ ७७-८० ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में दीक्षाविधान नामक सत्ताईसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २७ ॥

* * *

अष्टाविंशः पटलः

[redacted]

पुरश्चर्याविधिनिरूपणम्

पुरश्चर्याविधिवर्णनोपक्रमः

देव्युवाच—

पुरश्चर्याविधिं ब्रूहि विद्यासिद्धिर्भवेद्यथा ।

पुरश्चरणविधि वर्णन का उपक्रम—देवी ने कहा—हे देव! पुरश्चरण विधि का वर्णन कीजिये जिससे कि मन्त्रसिद्धि हो सके ॥

ईश्वर उवाच—

अथ वक्ष्ये विधानानि पौरश्चरणके विधौ ॥ १ ॥
विना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि ।
यथाविधि गुरोर्दीक्षां गृहीत्वा साधकोत्तमः ॥ २ ॥
तथैव तु यजेद् देवीं नित्यं प्रातरनन्यधीः ।
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ३ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा लक्षार्धं यावदेव हि ।
तावदेव मनुं जप्त्वा पुरश्चर्यां समाचरेत् ॥ ४ ॥
न्यूनातिरिक्तदोषाणां शान्तावष्टाधिकं जपेत् ।
गुरोराज्ञां समादाय शुद्धान्तःकरणो नरः ॥ ५ ॥
यत्नात् पुरस्क्रियां कुर्यात् स्वविद्यासिद्धिकाङ्क्षया।

ईश्वर ने कहा—अब मैं पुरश्चरणविधि से सम्बद्ध विधानों को बतलाऊँगा । इस पुरश्चरणविधि के विना सैकड़ों वर्षों में भी मन्त्र सिद्ध नहीं होते । उत्तम साधक गुरु से यथाविधि दीक्षा लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल एकाग्रचित्त होकर देवी की पूजा करे । पूजाकाल में वह भक्ति और श्रद्धा से युक्त हो अपने को तन्मय अर्थात् देवीमय समझे । इस क्रम में वह एक हजार आठ या एक लाख का

आधा अर्थात् इक्यावन हजार बार मन्त्र का जप कर पुरश्चरण क्रिया का प्रारम्भ करे । निर्धारित संख्या से न्यून या अधिक जप करने से दोष होता है । उसके निराकरण के लिये आठ बार अधिक जप करना चाहिये । मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर गुरु की आज्ञा लेने के बाद अपने मन्त्र की सिद्धि की इच्छा से प्रयत्नपूर्वक पुरश्चरण करे ॥ १-५- ॥

मन्त्रसिद्धिकरणतत्प्रतिबन्धकयोवर्णनम्

सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां चैव पार्वति ॥ ६ ॥
गुरोराज्ञैव मूलं स्यात् सिद्धिर्यस्मात् तदाज्ञया ।
अश्रद्धा चैव नास्तिक्यं पूर्वजन्मकृताशुभम् ॥ ७ ॥
प्रतिबन्धत्रयं देवि मन्त्रसिद्धौ निगद्यते ।
यत्नात् पुरश्चरेन्मन्त्री प्रतिबन्धविनाशने ॥ ८ ॥
लक्ष्मीमदादनादृत्य मन्त्रं भोगपरायणः ।
नैवार्चां कुरुते मन्त्री तथा नैव पुरस्क्रियाम् ॥ ९ ॥
स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो भजनं तस्य शान्तये ।
जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ १० ॥
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।
तत् कुर्यात् सर्वथा मन्त्री गुरुं वा कारयेद्बुधः ॥ ११ ॥
गुरोरभावे विप्रोऽस्य सर्वप्राणिहिते रतः ।
शुद्धान्तःकरणः स्निग्धो वासोभिश्च विशेषतः ॥ १२ ॥
कुलज्ञः कुलशास्त्रज्ञः पुनर्गुरुः पुरस्क्रियाम् ।
कारयित्वा पुनर्विद्यां लब्ध्वा तु विनियोजयेत् ॥ १३ ॥

मन्त्रसिद्धि का कारण और उसका प्रतिबन्धक—हे पार्वति! सारे मन्त्रों और सारी विद्याओं का मूल गुरु की आज्ञा ही है क्योंकि उनकी आज्ञा से ही सिद्धि प्राप्त होती है । हे देवि! मन्त्र की सिद्धि में तीन प्रतिबन्धक बताये जाते हैं—१. मन्त्र एवं गुरु के प्रति अश्रद्धा, २. नास्तिकता अर्थात् मन्त्र एवं गुरुवाक्य में अविश्वास और ३. पूर्वजन्म में किये गये अशुभ कर्म । इन विघ्नों के विनाश के लिये मन्त्रसाधक को पुरश्चरण करना चाहिये । लक्ष्मी के मद के कारण भोग में आसक्त जो मन्त्री मन्त्र का अनादर कर न तो देवी का पूजन करता है और न पुरश्चरण उसे मन्त्र का ऋणी समझना चाहिये । देवी की आराधना एवं मन्त्र की पुरस्क्रिया उसकी शान्ति के लिये होती है । जिस प्रकार जीवरहित शरीर समस्त कर्मों को करने में सक्षम नहीं होता उसी प्रकार पुरश्चरणहीन मन्त्र भी अपना प्रभाव प्रकाशित करने में अक्षम होता है—ऐसा कहा गया है । इसलिये मन्त्री को

चाहिये कि वह या तो पुरश्चरण स्वयं करे अथवा गुरु से कराये । गुरु के न करने पर ब्राह्मण के द्वारा पुरश्चरण कराना चाहिये । ब्राह्मण की विशेषता बतलाते हुए कह रहे हैं कि ब्राह्मण वह होना चाहिये जो समस्त प्राणियों के हित में लगा हो, शुद्ध अन्तःकरण वाला हो, विशेष रूप से स्निग्ध वस्त्र धारण करने वाला तथा मधुर भाषी हो । वह कौलमार्ग एवं कौलशास्त्र का ज्ञाता हो । गुरु को चाहिये कि वह पुरश्चरण कराकर पुनः मन्त्र का उपदेश कर शिष्य को साधना में लगा दे ॥ ६-१३ ॥

पुरश्चरणस्थानकालयोर्वर्णनम्

आदौ पुरस्क्रियां कर्तुं पुण्यक्षेत्रं समाश्रयेत् ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्याममावस्यामुहूर्तके ॥ १४ ॥
देव्याः पुरस्क्रियारम्भः कर्तव्यः साधकोत्तमैः ।
अथ पूर्वमुपोष्याथ कृत नित्यक्रियः शुचिः ॥ १५ ॥
द्विजान् देवान् गुरून् भक्त्या सम्पूज्य परमेश्वरि ।
गणेशं मातृकाश्चैव पितृंश्चैव प्रपूजयेत् ॥ १६ ॥
ग्रामे वा नगरे देशे पुरे वा पत्तने तथा ।
क्षेत्राधिपस्य नाम्ना तु दीपस्थानं विचिन्तयेत् ॥ १७ ॥
शक्तिक्षेत्रे शिवक्षेत्रे दीपस्थानं विचिन्तयेत् ।

पुरश्चरण के लिये स्थान और काल—पुरश्चरण करने के लिये सबसे पहले पवित्र स्थान का चयन करना चाहिये । चतुर्दशी अष्टमी अथवा अमावास्या मुहूर्त में उत्तम साधक को पुरश्चरण का आरम्भ करना चाहिये । हे परमेश्वरि! इसके लिये एक दिन पहले उपवास करना चाहिये । दूसरे दिन नित्यकर्म सन्ध्यावन्दन आदि कर पवित्र हुआ साधक ब्राह्मणों देवताओं एवं गुरु की भक्तिपूर्वक पूजाकर गणेश मातृकाओं एवं पितरों की पूजा करे । गाँव नगर देश पुर शहर में उस क्षेत्र के स्वामी के नाम से दीपस्थान अर्थात् जिस स्थान में चित्त प्रसन्न एवं शुद्ध सत्त्व सम्पन्न हो उस स्थान का विचार करना चाहिये । यह दीपस्थान शक्तिक्षेत्र अथवा शिवक्षेत्र में होना चाहिये ॥ १४-१७- ॥

कूर्मचक्रम्

वर्तुलं रचयेद् देवि कूर्माकृति सुलोचने ॥ १८ ॥
तन्मध्ये नव कोष्ठानि कृत्वा वर्णान् समालिखेत् ।
स्वरान् युग्मक्रमेणैव दिक्षु चाष्टदलेषु च ॥ १९ ॥
अवर्गः कथितो देवि कवर्गादिकसप्तकम् ।

पूर्वादिक्रमतो देवि कुबेरान्तं लिखेत्ततः ॥ २० ॥
लक्षवर्णं शम्भुकोणे विलिखेत् कूर्मसंज्ञके ।
यस्मिन् कोष्ठे क्षेत्रनाम तन्मुखं विद्धि पार्वति ॥ २१ ॥
अङ्गेषु पार्श्वयोः पाणियुग्मं जानीहि सुन्दरि ।
ततः पार्श्वद्वयं देवि कुक्षिस्थानं निगद्यते ॥ २२ ॥
ततः पादद्वयं देवि चान्ते पुच्छं प्रकीर्तितम् ।
मुखे कार्याणि सिध्यन्ति मनोरथशतानि च ॥ २३ ॥
कण्ठस्थाने महेशानि सर्वकार्यविनाशकृत् ।
उदरे दुःखदारिद्र्यं पादयोर्हानिरुच्यते ॥ २४ ॥
पुच्छे तु धनहानिः स्यादित्येवं कथितं मया ।
दीपस्थानं समाश्रित्य जपपूजां समाचरेत् ॥ २५ ॥
पूर्वोक्तविधिसम्पन्नं गुरुं नत्वा विधानतः ।

कूर्मचक्र-रचना—हे सुलोचने! कछुये के आकार का एक गोला बनाना चाहिये । उसके बीच में नव कोष्ठक बनाकर वर्णों को लिखना चाहिये । स्वरों को दो-दो की संख्या में आठों दिशाओं के आठ दलों पर लिखना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार अवर्ग का कथन किया गया । कवर्ग आदि सात को पूर्व आदि के क्रम से कुबेर अर्थात् उत्तर दिशा तक लिखना चाहिये । ळ एवं क्ष वर्णों को कूर्मसंज्ञक यन्त्र में ईशान कोण में लिखना चाहिये । हे पार्वति! जिस कोष्ठ में क्षेत्र का नाम हो उसे कूर्म का मुख समझना चाहिये । इसी प्रकार हे सुन्दरि! जहाँ तक अङ्गों का प्रश्न है दोनों पार्श्वों को दोनो हाथ जानना चाहिये । इसके बाद हे देवि! दोनों पार्श्वों को कुक्षिस्थान जानना चाहिये । हे देवि! इसके बाद दो पैर और अन्त में पूँछ कही गयी है । मुख में साधक के बैठने पर सैकड़ों मनोरथ और कार्य सिद्ध होते हैं । हे महेशानि! कण्ठ स्थान में बैठना सारे कार्यों को नष्ट करना है । उदर में दुःख और दारिद्र्य तथा पैरों में हानि कही जाती है । पूँछ में बैठने पर धन हानि होती है—यह मैने बतलाया । दीपस्थान में जाकर जप-पूजा का प्रारम्भ करना चाहिये । सबसे पहले गुरु को विधिवत् प्रणाम कर फिर पूजा का प्रारम्भ करना चाहिये ॥ १८-२५- ॥

मालाप्रकारः

अक्षमालां समाश्रित्य मातृकां वर्णरूपिणीम् ॥ २६ ॥
मन्त्रसिद्धिप्रदां शुद्धां सर्वपापौघनाशिनीम् ।
प्रणवो मातृका देवी माया चैवामृतत्रयम् ॥ २७ ॥
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।

अथ मुक्ताफलमयी वाङ्मोक्षफलदायिनी ॥ २८ ॥
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वलोकवशङ्करी ।
यथा मुक्ताफलमयी स्फाटिकी च तथा भवेत् ॥ २९ ॥
रुद्राक्षमालिका भोगमोक्षानन्तफलप्रदा ।
प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका ॥ ३० ॥
(मलिना?माणिक्य)रचिता माला साम्राज्यफलदायिनी ।
पुत्रजीवोद्भवा माला पुत्रपौत्रप्रदायिनी ॥ ३१ ॥
पद्माक्षमालया लक्ष्मीर्जायते महती यशः ।
रक्तचन्दनमाला तु वश्ये सर्वसमृद्धिदा ॥ ३२ ॥
महाशङ्खमयी माला मारणोच्चाटनादिषु ।
वीराणां शस्यते सा हि शेषयोर्न शुभप्रदा ॥ ३३ ॥

माला का प्रकार—यह पूजा माला को आधार बनाकर की जाती है । सबसे उत्तम अक्षमाला होती है जो अकार से लेकर क्षकार तक वर्णरूपिणी मातृकारूपा होती है । यह मन्त्रसिद्धिप्रदा शुद्ध और सब पापों को नष्ट करने वाली होती है । प्रणव अर्थात् ओंकार माया अर्थात् ह्रीं तथा मातृका अर्थात् अ-क्ष ये तीन अमृतत्रय कहे जाते हैं । इन तीनों के संयोग से दुष्ट मन्त्र भी सिद्धि प्रदान करता है । मोतियों की माला वाक्सिद्धि तथा मोक्ष देती है । यह सर्वसिद्धिप्रदा तथा सर्वलोकवशङ्करी होती है । जैसी मोती की माला वैसी ही स्फटिक की माला भी फलदायिनी होती है । वशीकरण में मूँगे की माला समस्त कार्यों को सिद्ध करती है । माणिक्य से बनायी गयी माला साम्राज्य देती है । पुत्रजीवा की माला पुत्रपौत्र की अभिवृद्धि करती है । कमल के बीज की माला से महाधन का आगमन होता है तथा यश मिलता है । लाल चन्दन की माला वशीकरण के लिये होती है तथा सब प्रकार की समृद्धि देती है । मारण उच्चारण विद्वेषण आदि में महाशङ्ख (= आदमी की खोपड़ी) की माला काम में लायी जाती है । यह वीराचारी साधकों के लिये हितावह है अन्य दो अर्थात् शुभेच्छु तथा पुरश्चरणकर्त्ता के लिये शुभप्रद नहीं होती ॥ २६-३३ ॥

पञ्चाशद्भिः शतैः कुर्यादष्टाविंशति(रेव?भिश्च) वा ।
न न्यूनैर्नाधिकैः कार्या बीजाद्यैर्न विभूतये ॥ ३४ ॥
एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः ।
आद्यं स्थूलं ततो न्यूनं न्यूनं न्यूनतरं ततः ॥ ३५ ॥
विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा(वि?प्य)नायता ।
ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं तथास्थितम् ॥ ३६ ॥

अन्यथा विफला मालाऽसंस्कृता जपकर्मणि ।

यह माला पचास, सौ अथवा अट्ठाईस दानों से बनानी चाहिये । उक्त संख्या से न तो कम और न अधिक मणियों से बनानी चाहिये । बीज आदि से बनी माला विभूति अर्थात् कल्याण के लिये प्रशस्त नहीं होती । उस माला में एक सुमेरु अवश्य लगाना चाहिये जो अन्य मणियों की अपेक्षा आकार में थोड़ा बड़ा होता है । उसके बाद माला गूँथते समय पहला दाना स्थूल आकार का फिर उससे छोटा फिर उससे छोटा । इस प्रकार क्रमशः न्यून करते-करते वह सर्पाकार की सी हो जाती है । प्रत्येक बीज के बाद ब्रह्मग्रन्थि भी रहनी चाहिये । यदि ब्रह्मग्रन्थि नहीं लगाई गई हो तो वह माला असंस्कृत तथा जपकर्म के लिये विफल होती है ॥ ३४-३६- ॥

रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा ॥ ३७ ॥
नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं तु यत् ।
यदान्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि ॥ ३८ ॥
मिश्रीभावं तदा याति चण्डालैः पापकर्मभिः ।
एकजातीयबीजेन यः कुर्यान्मालिकां सदा ॥ ३९ ॥
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः ।
पूर्वोक्तेन विधानेन गृहीत्वा दिव्यमालिकाम् ॥ ४० ॥
जपं समारभेत् पश्चात् प्रोक्तयोगसमन्वितः ।
तत्र स्थित्वा जपेद्विद्यां लक्षमात्रं सदा शुचिः ॥ ४१ ॥

जपक्रिया यदि रुद्राक्ष या इन्द्राक्ष (= एक फल जो रुद्राक्ष जैसा होता है?) अथवा स्फटिक की माला से की जाय तो बीच में अन्य प्रकार की पुत्रजीव आदि की माला से जप नहीं करना चाहिये । साधक यदि जप कर्म में अन्य माला का प्रयोग करता है तो वह जप मिश्र हो जाता है और जापक पापकर्म से युक्त चाण्डाल हो जाता है । जो एक जाति के बीज से बनी हुई माला से जप करता है वह अग्रिम जन्म में वेदवेदाङ्ग का पारंगत होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त विधान से दिव्य माला लेकर पूर्वोक्त योग से समन्वित होकर साधक जप का प्रारम्भ करे। वहाँ अर्थात् दीपस्थान में बैठकर पवित्र हुआ साधक एक लाख की संख्या में जप सम्पन्न करे ॥ ३७-४१ ॥

प्रशस्त हविष्यवर्णनम्

दधि क्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम् ।
तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः ॥ ४२ ॥

नारिकेलफलं चैव कदली लव(णी?ली)तथा ।
आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥ ४३ ॥
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधैः ।

प्रशस्त हविष्य वर्णन—गाय का दूध, घी, गुड को छोड़कर ईख का रस, टुकड़ा, तिल, मिश्री, मूँग, केमुक को छोड़कर बाकी कन्द, नारियल, केला, लवली, आम, आँवला, कटहल और हर्रे—इनको विद्वान् लोग व्रत के अन्तर्गत सेवनीय प्रशस्त हवि मानते हैं ॥ ४२-४३- ॥

त्याज्यहविष्यवर्णनम्

अवैष्णवमलभ्यं च यदशस्तं व्रतान्तरे ॥ ४४ ॥
त्याज्यमेव तु तत् सर्वं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
क्षारं च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम् ॥ ४५ ॥
माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि ।
ताम्बूलं च द्विभक्तं च दुःसंवादं प्रमत्तताम् ॥ ४६ ॥
श्रुतिस्मृतिविरुद्धं च जपं रात्रौ विवर्जयेत् ।

त्याज्य हविष्य आदि का वर्णन—जो विष्णु के लिये समर्प्य न हो, जो सुलभ न हो और व्रत के लिये जो ग्राह्य न बतलाया गया हो; आत्मसिद्धि चाहने वाले साधक को उन सबका त्याग कर देना चाहिये । क्षार, नमक, मांस, गाजर, काँसे के पात्र में भोजन, उड़द, आढकी (= मटर), मसूर, कोदव, चना, ताम्बूल, दिन में दो बार भोजन, दुःसंवाद अर्थात् झगड़ा, गाली-गलौच, नशा और रात्रि में श्रुति स्मृति विरुद्ध जप का त्याग करना चाहिये ॥ ४४-४६- ॥

जपे कर्त्तव्याकर्त्तव्यवर्णनम्

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनं चाप्यनसूयता ॥ ४७ ॥
नित्यं त्रिषवणस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम् ।
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्तनम् ॥ ४८ ॥
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः ॥ ४९ ॥
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्य(पतितो?नास्तिको)च्छिष्टभाषणम् ।
असत्यभाषणं जि(क्ष?ह्म)भाषणं परिवर्जयेत् ॥ ५० ॥
स(त्यै?भ्यै)रपि न भाषेत जपमोहार्चनादिषु ।
अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ॥ ५१ ॥

जप के समय कर्त्तव्याकर्त्तव्य—भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, मौन, निन्दा न करना, नित्य तीन बार स्नान, क्षुद्रकर्म का त्याग, नित्यपूजा, नित्यदान, देवस्तुति, नैमित्तिक पूजा, गुरु और देवता में विश्वास और जप के प्रति निष्ठा इन बारह धर्मों का पालन मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है । स्त्री शूद्र पतित चाण्डाल नास्तिक के साथ तथा जूठे मुँह बातचीत, असत्य भाषण, कपटवार्त्ता का त्याग करना चाहिये । जप होम और पूजन के समय सज्जन के भी साथ बात नहीं करनी चाहिये । ऐसा न करने पर सारा अनुष्ठान व्यर्थ जो जाता है ॥ ४७-५१ ॥

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं निःस्पृहावान् भवेत् सदा ।
वर्जयेद् गीत(नृत्या?वाद्या)दिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ॥ ५२ ॥
माल्यं च गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च ।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत् ॥ ५३ ॥
कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम् ।
प्राणिहिंसां न कुर्वीत पुरश्चरणकृन्नरः ॥ ५४ ॥
अस्नातांश्च द्विजाञ् शूद्रान् स्त्रियो नैव स्पृशेत्तथा ।
असङ्कल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम् ॥ ५५ ॥
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम् ।
शिवाङ्गं पञ्चगव्येन क्षालयेद् बहिरन्तरम् ॥ ५६ ॥

अनुष्ठाता को चाहिये कि वह मनसा वाचा कर्मणा सदा निःस्पृह रहे । गीत वाद्य आदि का श्रवण तथा नृत्यदर्शन न करे । माला पहनना, गन्ध का लेप, पुष्पधारण, मैथुन, मैथुन से सम्बद्ध बातचीत तथा सभा को छोड़ देना चाहिये । कुटिलता, क्षौरकर्म, शरीर में तेल इत्यादि लगाना, विना बुलाये भोजन का त्याग करना चाहिये । पुरश्चरण करने वाला मनुष्य प्राणी की हिंसा न करे । बिना स्नान किये हुए ब्राह्मण शूद्र और स्त्रियों का स्पर्श न करे । असङ्कल्पित कार्य मर्दन आदि नहीं करना चाहिये । गरम जल से स्नान, सुगन्ध आमलक का त्याग करना चाहिये । शिवाङ्ग (= अपने लिङ्ग) को अन्दर और बाहर दोनों जगह धोना चाहिये ॥ ५२-५६ ॥

स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा ।
अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा ॥ ५७ ॥
निरासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा ।
रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत् तिमिरालये ॥ ५८ ॥
प्रलपन् वा जपेद् यावत् तावन्निष्फलमुच्यते ।
सकृदुच्चारिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ॥ ५९ ॥

प्रोक्ते पामरशब्दे तु प्राणायामं सकृच्चरेत् ।
बहुप्रलापे चाचम्य न्यस्याङ्गानि ततो जपेत् ॥ ६० ॥

पञ्चगव्य या केवल आँवले से स्नान करना चाहिये । अशुद्ध हाथ वाला, नङ्गा होकर, शिर पर कपड़ा लपेट कर, आसनरहित, सोते हुए, चलते हुए, खड़े-खड़े, गली में, अपवित्र स्थान, अन्धकार वाले घर में अथवा बीच-बीच में बात करते हुए जप करने से वह जप निष्फल हो जाता है । जप के बीच यदि एक बार भी अन्य शब्द का उच्चारण हो जाय तो प्रणव का उच्चारण कर पुनः जप का प्रारम्भ करना चाहिये । यदि गन्दे शब्द का उच्चारण हो तो एक बार प्राणायाम कर जप करना चाहिये । बहुत अधिक बात की जाय तो उसके बाद आचमन अङ्गन्यास और प्राणायाम कर जप करना चाहिये ॥ ५७-६० ॥

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते ।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥ ६१ ॥
कृत्वाचम्य जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ।
शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा ॥ ६२ ॥
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत् ।
एवमादींश्च नियमान् पुरश्चरणकृच्चरेत् ॥ ६३ ॥

पतितों, अन्त्यजों का दर्शन होने, उनके साथ भाषण करने या उनकी बात सुनने, छींक होने, अधोवायु का निर्गमन होने, जम्भाई के समय जप छोड़ देना चाहिये । उसके बाद आचमन कर या सूर्यदर्शन कर फिर जप का प्रारम्भ करना चाहिये । कुश की शय्या पर शयन, पवित्र वस्त्र का धारण करना चाहिये । प्रतिदिन शय्या को धोना चाहिये तथा अकेले निर्भय होकर सोना चाहिये । इस प्रकार पुरश्चरणकर्त्ता उपर्युक्त सब नियमों का पालन करे ॥ ६१-६३ ॥

जपे मन्त्रसंख्यानियमः

एवमुक्तविधानेन विलम्बत्वरितं विना ।
उक्तसंख्याजपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये ॥ ६४ ॥
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ।
जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यंदिनावधि ॥ ६५ ॥
यत्सं(ख्यामा?ख्यया)समारब्धं तच्च कुर्य्याद्दिने दिने ।
यदि न्यूनाधिकं कुर्यात् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥ ६६ ॥
नैरर्न्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत् ।
दिवसातिक्रमात् (तेषां?पुंसः) सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ ६७ ॥

जप में मन्त्रसंख्या का नियम—इस प्रकार पुरश्चरण सिद्धि के लिये उक्त विधान के अनुसार न बहुत विलम्ब और न बहुत शीघ्र पूर्वोक्त संख्या का जप करना चाहिये । मन में देवता गुरु और मन्त्र की एकता की भावना करते हुए एकाग्रचित्त होकर प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न काल तक जप करना चाहिये । पहले दिन जितनी संख्या में जप किया गया प्रतिदिन उतनी ही संख्या में जप करना चाहिये । जापक यदि न्यूनाधिक्य करता है तो वह व्रतभ्रष्ट हो जाता है । निरन्तर जप करना चाहिये । दिन का लङ्घन नहीं करना चाहिये अर्थात् किसी दिन जप न करना किसी दिन करना—ऐसा नहीं करना चाहिये । दिन का अतिक्रमण करने से पुरुष को सिद्धि नहीं मिलती ॥ ६४-६७ ॥

जपान्तकरणीयकृत्यम्

मन्त्रं जप्त्वाम्बुपानीयैः सुलोचनमभोजनम् (?मपोऽञ्जनम्)।
कुर्याद्यथोक्तविधिना त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत् ॥ ६८ ॥
एकसंध्यं द्विसंध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत् ।
एकग्रामे स्थितो गत्वा वन्देत केवलं गुरुम् ॥ ६९ ॥
प्रणामोऽष्टाङ्ग एवात्र देवतावन्दनं तथा ।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात् सङ्गं च साधुभिः सह॥ ७० ॥
शक्तौ त्रिषवणस्नानं द्वे सकृद्वा तथा चरेत् ।
परकीयतरे तोये स्नानं पूर्वं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

जप के अन्त में करणीय कृत्य—मन्त्र का जप करने के बाद आसन के नीचे जल गिराना चाहिये तथा उसी पानी से अपने नेत्रों में जलाञ्जन करना चाहिये । तीनों सन्ध्याओं में यथोक्त विधि से देवता की पूजा करनी चाहिये । दिन में कम से कम एक या दो सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये । विना सन्ध्या के केवल मन्त्र का जप नहीं करना चाहिये । एक ग्राम में रहकर भी केवल गुरु को ही प्रणाम करना चाहिये अन्य को नहीं । गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये । देवताओं को भी साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये । नित्य नैमित्तिक कृत्य करना चाहिये । साधुओं के साथ सत्सङ्ग करना चाहिये । सामर्थ्य रहने पर तीनों काल स्नान करना चाहिये । अन्यथा दिन में दो बार अथवा एक बार स्नान अवश्य करना चाहिये । सबसे पहले दूसरे के जलाशय में बाद में अपने जल से स्नान करना चाहिये ॥ ६८-७१ ॥

जपान्ते होमादिकर्त्तव्यतावर्णनम्

संख्यापूर्तौ निजैर्द्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः ।
यथोक्तविहिते कुण्डे जुहुयात् संस्कृतेऽनले ॥ ७२ ॥

अथवा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः ।
तथा होमदशांशं तु जले सम्पूज्य देवताम् ॥ ७३ ॥
तर्पयामीति मन्त्रान्ते प्रोक्ताद्भिर्मूर्ध्नि तर्पयेत् ।
जपो होमस्तर्पणं च(पू?मृ)जाब्राह्मणभोजनम् ॥ ७४ ॥
पूर्वपूर्वदशांशेन कुर्यात् पञ्चाङ्गसंयुतम् ।
स्वाभिषेकाघमर्षौ च सूर्यार्घ्यं जलपानकम् ॥ ७५ ॥
प्राणायामं ततः कुर्यात् पूर्वपूर्वदशांशतः ।
दशाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते ॥ ७६ ॥

जप के अन्त में होम आदि कार्य—जप की संख्या पूर्ण हो जाने पर अपने द्रव्यों से जपसंख्या का दशांश हवन करना चाहिये । यह हवन शास्त्र के अनुसार बनाये गये कुण्ड में (अथवा स्थण्डिल पर) संस्कृत अग्नि में सम्पादित करना चाहिये । दूसरा विकल्प यह बतलाया गया है कि जप करने के बाद प्रतिदिन उसका दशांश हवन नियमित करना चाहिये । होम का दशांश तर्पण करना चाहिये । इसके लिये पहले देवता की पूजा सम्पन्न कर बाद में जल में 'तर्पयामि' कहकर तर्पण करना चाहिये । तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये । मार्जन के लिये साधक को अपने शिर पर जल छिड़कना चाहिये । जप, होम, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजन—इनको पूर्व-पूर्व का दशांश करना चाहिये; जैसे एक हजार जप करने के पश्चात् एक सौ बार तर्पण, दश बार मार्जन और एक ब्राह्मण-भोजन । यही क्रम अपनाना चाहिये । इस सबको पञ्चाङ्ग के साथ करना चाहिये । वह पञ्चाङ्ग है—अपना अभिषेक, अघमर्षण, सूर्य को अर्घ्य देना, जलपान और प्राणायाम । इसमें प्राणायाम पूर्व का दशांश करना चाहिये । इस प्रकार दश अङ्ग अर्थात् जप, होम, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन, अभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ्य, जलपानं अर्थात् आचमन और प्राणायाम को करना पुरश्चरण कहलाता है ॥ ७२-७६ ॥

तत्पुरश्चरणं नाम मन्त्रसिद्ध्यर्थमात्मनः ।
यथोक्तं नियमं कृत्वा स्वकल्पोक्तजपस्य हि ॥ ७७ ॥
करणं विजयान्तं तत्प्रोक्तं देशिकसत्तमैः ।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७८ ॥
गुरुं सन्तोषयेदेवं मन्त्राः सिध्यन्ति मन्त्रिणः ।

वह पुरश्चरण अपने मन्त्र की सिद्धि के लिये किया जाता है । इसके लिये स्वकल्पोक्त नियम का पालन करते हुए अपने कल्प के वचन के अनुसार जप करना होता है । आचार्य लोग इसे विजयान्त कहते हैं अर्थात् इसके अन्त में

महापूजा करनी चाहिये और यह है ब्राह्मण भोजन और गुरु को सन्तुष्ट करना। इस सब से मन्त्रसाधक के मन्त्र सिद्ध होते हैं ॥ ७७-७८- ॥

होमाशक्तौ कर्त्तव्यतावर्णनम्

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः ॥ ७९ ॥
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः ।
एकमङ्गं विहीयेत ततो नेष्टमवाप्नुयात् ॥ ८० ॥
अङ्गहीनं भवेद्यद्यत् तत्तन्नेष्टार्थसाधनम् ।

ब्राह्मणभोजनस्यावश्यकरणीयता

सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये ॥ ८१ ॥
विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्यतः ।
न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान् ॥ ८२ ॥
तान्येवं पूर्णतां यान्ति समस्तानि भवन्ति चेत् ।
अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु ॥ ८३ ॥
नियतान्यपि कर्माणि हीनानि द्विजभोजनैः ।
निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगाणि च ॥ ८४ ॥

ब्राह्मणभोजन की अवश्यकरणीयता—इस किये गये अनुष्ठान की साङ्गता अर्थात् पूर्णता की सिद्धि के लिये ब्राह्मणों को भोजन अवश्य कराना चाहिये क्योंकि ब्राह्मणों के आराधन अर्थात् भोजन आदि से अङ्गहीन भी अनुष्ठान साङ्ग हो जाता है। न्यून अथवा अतिरिक्त कर्म फल नहीं देते। यदि वे सम्पूर्ण होते हैं तभी फल देते हैं। नियत कर्म भी यदि ब्राह्मणभोजन से हीन हैं तो वे ऊसर में बोये गये बीज की भाँति निरर्थक ही होते हैं ॥ ७९-८४ ॥

पुरश्चर्याया अन्यप्रकारः

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः ॥ ८५ ॥
नद्याः समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः ।
ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ ८६ ॥
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत् ।
होमस्य तु दशांशेन तर्पणं समुपाचरेत् ॥ ८७ ॥
अभिषेकदशांशेन कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात् साधकसत्तमः ॥ ८८ ॥

गुरवे दक्षिणां दद्याद्भक्त्या विप्रान् प्रतर्पयेत् ।
ततश्च मन्त्रसिद्धिः स्याद् देवता च प्रसीदति ॥ ८९ ॥
ततस्तु मन्त्रसिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत् ।
अथवा देवतारूपं गुरुं भक्त्या प्रतोषयेत् ।
पुरश्चरणहीनोऽपि मन्त्रसिद्धिरसंशयः ॥ ९० ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पुरश्चर्याविधिनिरूपण-नामकोऽष्टाविंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २८ ॥

* * *

पुरश्चरण का अन्य प्रकार—अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण कहा जाता है । साधक सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण के एक दिन पहले उपवास कर उस दिन पवित्र होकर समुद्रगामिनी नदी में नाभि तक गहरेजल में खड़ा होकर ग्रहण के प्रारम्भ से मोक्षपर्यन्त समाहित चित्त होकर मन्त्र का जप करे । मोक्ष के बाद दशांश होम करे । होम का दशांश तर्पण करे और तर्पण का दशांश मार्जन तथा उसका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये । उसके बाद उत्तम साधक गुरु की महापूजा कर भक्तिपूर्वक उन्हें दक्षिणा देने के बाद भक्ति के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराये । इससे मन्त्र की सिद्धि होती है तथा देवता भी प्रसन्न होते हैं । उसके बाद मन्त्र की सिद्धि के लिये गुरु की पूजा कर उन्हें सन्तुष्ट करे । इस प्रकार के अनुष्ठान से पुरश्चरणरहित मन्त्र भी सिद्ध हो जाता है ॥ ८५-९० ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में पुरश्चर्याविधिनिरूपण नामक अट्ठाईसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २८ ॥

* * *

एकोनत्रिंशः पटलः

विद्यासाधननिर्णयवर्णनम्

कौलिकजपविधिः

ईश्वर उवाच—

पूर्वोक्तविधिना देवि लक्षार्धं प्रजपेत् तथा ।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यस्तथैवोक्तविधानतः ॥ १ ॥
कामरूपं वपुः कृत्वा कामिन्येव महानिशि ।
कुलयुक्तो जपेल्लक्षं निशाया मध्यभागतः ॥ २ ॥
अत्र यत् क्रियते कर्म तदनन्तफलप्रदम् ।

कौलिकजप विधि—ईश्वर ने कहा—हे देवि! साधक रात्रि में मुख में ताम्बूल रखकर यथोक्तविधि के साथ पचास हजार जप करे अथवा साधक कामिनी की भाँति अपने शरीर को कामदेव जैसा सुन्दर बना कर रात्रि के मध्य भाग से आगे कुलयुक्त अर्थात् शक्ति के साथ एक लाख जप करे । इस काल में जो कर्म किया जाता है वह अनन्त फल देता है ॥ १-२- ॥

जपस्य स्थाननयम्

मूलाधारे महादेवि लिङ्गं स्वयम्भूवाचकम् ॥ ३ ॥
ज्योतीरूपं तु योनिस्थं तत्रैव मनसा जपेत् ।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं तद्विद्याक्षररूपिणीम् ॥ ४ ॥
हृदि त्रिकोणमध्ये च बाणलिङ्गे च तेजसि ।
तत्र संचिन्त्य मनसा जपेल्लक्षं समाहितः ॥ ५ ॥
मूर्ध्नि त्रिकोणमध्ये तु इतरं पश्चिमामुखम् ।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं यत्र कुत्र समाहितः ॥ ६ ॥
एवं लक्षत्रये सिद्धे यद्भावस्तूपजायते ।

तमुपाश्रित्य भावेन यथा देवस्तथा(रवे? भवेत्) ॥ ७ ॥

जप के तीन स्थान—हे महादेवि! मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग[1] है । वह ज्योति रूप है तथा योनि में स्थित है । वहाँ पर मन से एक लाख जप करना चाहिये । हे देवि! वहाँ तद्विद्या अर्थात् कुण्डलिनी मन्त्र के अक्षर रूप वाली कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । हृदय के त्रिकोण में बाणलिङ्ग है । वह अत्यन्त तेजोमय है । वहाँ उस लिङ्ग का मन से ध्यान कर समाहितचित्त होकर एक लाख जप करना चाहिये । शिर में त्रिकोण के मध्य एक अन्य लिङ्ग है जिसे इतर लिङ्ग कहते हैं । यह पश्चिमाभिमुख रहता है । यहाँ स्थित हो कहीं भी एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये । इस प्रकार तीन लाख जप के हो जाने पर मन में जो भाव उत्पन्न होता है उसका आश्रयण कर भावना के द्वारा साधक जैसा देव वैसा हो जाता है ॥ ३-७ ॥

नवलक्षं जपेद्विद्यामिह भोगसमृद्धये ।
न ध्यानं न च विन्यासो न पूजा न पुरस्क्रिया ॥ ८ ॥
केवलं जपमात्रेण सिद्धयःसिद्धिकाङ्क्षिणाम् ।
कोटिजापे तु सम्पूर्णे मनो मन्त्रात्मकं भवेत् ॥ ९ ॥
यावत्तावद्धि जप्तव्यं मनसैव न चान्यथा ।
मन्त्रमात्रस्वरूपे च सिद्धे मनसि पार्वति ॥ १० ॥
ध्यानमात्रं मनः कृत्वा ध्यानं ब्रह्मणि चार्पयेत् ।
विदिते ब्रह्मणः क्षेत्रे विदितः सर्ववित् प्रभुः ॥ ११ ॥

इस संसार में भोग की वृद्धि के लिये उक्त स्थानों में ३-३ लाख अर्थात् कुल मिलाकर नव लाख जप करना चाहिये । इस जप के क्रम में न ध्यान न न्यास न पूजा और न पुरश्चरण की आवश्यकता होती है । केवल जप मात्र से सिद्धि चाहने वाले को सिद्धि मिलती है । जब एक करोड़ जप पूरा हो जाता है तो मन मन्त्रमय हो जाता है । जब तक ऐसा न हो तब तक मन से जप करते

---

[1] जब पराशक्ति आत्मगर्भस्थ विश्व को देखने के लिये उन्मुख होती है तब शक्ति और शिव एक अर्थात् समभाव में वर्तमान होकर बिन्दुरूप में परिणत होते हैं । इस बिन्दु में परम चैतन्य प्रतिफलित होता है । यह चैतन्ययुक्त बिन्दु ज्योतिर्लिङ्ग रूप में प्रकट होता है । यह बिन्दु तान्त्रिक परिभाषा में 'पीठ' कहा जाता है और इसमें अभिव्यक्त चैतन्य स्वयम्भूलिङ्ग के नाम से जाना जाता है । पीठ चार हैं— १. कामरूप, २. पूर्णगिरि, ३. जालन्धर और ४. ओड्यान । स्वयम्भूलिङ्ग कामरूप में, बाणलिङ्ग पूर्णगिरि में, इतरलिङ्ग जालन्धर पीठ में और परलिङ्ग ओड्यान पीठ में अभिव्यक्त होता है।

रहना चाहिये। हे पार्वति! जब मन मन्त्रमय हो जाय तब मन को ध्यान रूप बनाकर ध्यान को ब्रह्म में अर्पित कर देना चाहिये। ब्रह्मक्षेत्र का ज्ञान होने पर साधक विदित-वेदितव्य सर्ववेत्ता और सर्वसमर्थ हो जाता है ॥ ८-११ ॥

नव जपस्थानानि

नव स्थानानि कथ्यन्ते शृणु सावहिता प्रिये।
ज्योतीरूपं तदाधारे मेढ्रस्थाने शिखाप्रभम् ॥ १२ ॥
नाभिस्थं सूर्यबिम्बाभं तरुणादित्यवर्च्चसम्।
हृदि ज्योतिःशिखाकारं कण्ठे दीपशिखाप्रभम् ॥ १३ ॥
भ्रूमध्ये रत्नसङ्काशं तदूर्ध्वे भास्करप्रभम्।
लम्बिके चन्द्रबिम्बाभं ततो वैदूर्यसन्निभम् ॥ १४ ॥
नवमे विश्वतेजा हि घण्टावैदूर्य्यसन्निभः।
लिङ्गरूपी ह्यहं देवि नव लिङ्गानि यानि च ॥ १५ ॥
नव स्थानानि मन्त्रेण क्रमात् संभिद्य कुण्डलीम्।
विसंज्ञाममृतं पीत्वा पुनराधारमानयेत् ॥ १६ ॥
मूलस्थानगतं मन्त्रं स्मरेदेवं क्रमेण तु।

जप के नव स्थान—हे प्रिये! जप के नव स्थान बतलाये जा रहे हैं सावधान होकर सुनो। १. मूलाधार में ज्योतीरूप, २. मेढ्रस्थान में अग्नि शिखा के समान, ३. नाभि में सूर्यविम्बवत् दोपहर के सूर्य के समान तेजोमय स्थान हैं। ४. हृदय में ज्योति की शिखा के आकार वाला, ५. कण्ठ में दीपशिखा के समान, ६. भ्रूमध्य में रत्न के समान, ७. उसके ऊपर गुरुचक्र में सूर्य के समान चमक वाला, ८. लम्बिका में चन्द्रबिम्ब और ९. उसके बाद वैदूर्य अर्थात् घण्टावैदूर्य के समान मैं ही लिङ्गरूप में विराजमान हूँ और जो नवलिङ्ग है वे भी मैं ही हूँ। साधक नीचे से ऊपर तक मन्त्र के द्वारा नव स्थानों अर्थात् चक्रों का क्रमशः भेदन कर ऊर्ध्व संज्ञारहित कुण्डली का भी भेदन कर वहाँ अमृतपान करने के बाद पुनः मूलाधार में आ जाय और क्रमशः पुनः मूलाधारगत मन्त्र का स्मरण करे। (इस प्रकार बार-बार ऊपर जाकर अमृतपान करने वाला साधक अमर हो जाता है) ॥ १२-१६- ॥

नवलक्षजपफलम्

नवलक्षप्रमाणं तु जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ १७ ॥
विधिवज्जायते देवि रुद्रमूर्तिरिवापरः।
मन्त्राणां नव लक्षाणि कृत्वा लिङ्गानि वै नव ॥ १८ ॥

नवैव परिजप्याथ नवलक्षफलं लभेत् ।

नव लाख जप का फल—हे देवि! त्रिपुरसुन्दरी का शास्त्रोक्त विधि से नव लाख जप कर साधक दूसरा रुद्र हो जाता है । मन्त्रों का नव लाख जप कर उपर्युक्त नवलिङ्गों का साक्षात्कार कर नव जप कर साधक नव लाख फल प्राप्त करता है ॥ १७-१८- ॥

मन्त्रसूतकवर्णनम्

जातसूतकमादौ स्यात् मृत्ते च मृतसूतकम् ॥ १९ ॥
सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्र स न सिध्यति ।
स्वयं तद्रहितं कृत्वा मन्त्रं यावज्जपेद्धिया ॥ २० ॥
सूतकद्वयनिर्मुक्तः स मन्त्रः सर्वसिद्धिदः ।

मन्त्रसूतक का वर्णन—जप के प्रारम्भ में मन्त्र के ऊपर जनना शौच लगता है तथा जप समाप्त होने पर मरणाशौच । इस प्रकार जो मन्त्र दो सूतकों से युक्त होता है वह कदापि सिद्ध नहीं होता । इसलिये मन्त्र को सूतक से रहित कर जप करना चाहिये । जो मन्त्र दोनों सूतकों से रहित होता है वह सर्वसिद्धिप्रद होता है ॥ १९-२०- ॥

सत्कुलस्थानजातीनां शुचीनां श्रीमतां सताम् ॥ २१ ॥
नियतमग्निहोतृणां भिक्षाशिनो(शना) ग्रजन्मनाम् ।
एषां मध्ये तु यः कश्चिद्गुरुर्वा शिष्य एव वा ॥ २२ ॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति च ।
कथितं सूतकं तस्य जपात् सिद्धिर्न जायते ॥ २३ ॥

जो लोग उत्तम कुल में पैदा हुए; उत्तम स्थान में रहते हैं; उत्तम जाति के हैं; पवित्र धनवान् तथा सज्जन हैं; नित्य अग्निहोत्र करने वाले भिक्षा माँगकर खाने वाले ब्राह्मण हैं इनके भी मध्य में जो कोई गुरु अथवा शिष्य होता है वह यदि मन्त्र का अर्थ, मन्त्र-चैतन्य और योनिमुद्रा को नहीं जानता तो उसे सूतक लगता है । फलतः मन्त्र का जप करने पर उसे सिद्धि नहीं मिलती ॥ २१-३२॥

गुप्तवी(जा?र्या)श्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये ।
मन्त्राश्चैतन्यसंयुक्ताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः ॥ २४ ॥
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम् ।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिजपादपि ॥ २५ ॥
मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् स्वरूपं प्रथमं भवेत् ।
शते सहस्रे लक्षे वा कोटिजापे न तत्फलम् ॥ २६ ॥

हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्वावयववर्धनः ।

हे प्रिये! जो मन्त्र गुप्तवीर्य वाले हैं वे फल नहीं देते । जो मन्त्र चैतन्यसंयुक्त है वे सर्वसिद्धिकर माने गये हैं । चैतन्यरहित मन्त्रों को केवल वर्णसमूह कहा गया है । ऐसे मन्त्र लाख करोड़ जपे जाने पर भी फल नहीं देते । मन्त्र का उच्चारण करने पर जैसा प्रथम रूप होता है अर्थात् चैतन्यरहित केवल वर्णसमूह मात्र होता है ऐसे मन्त्र का सौ हजार लाख करोड़ जप करने पर भी फल नहीं मिलता । मन्त्र का अर्थावबोधपूर्वक जप हृदय में मांयाग्रन्थि का भेदन कर देता है और सर्वावयव का वर्द्धक होता है ॥ २४-२६- ॥

मन्त्रार्थकथनम्

मन्त्रार्थः कथ्यते देवि शृणु तत्प्रथमं प्रिये ॥ २७॥
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निग(र्वा?र्भा)ख्यश्च कौलिकः ।
तथा सर्वरहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च ॥ २८ ॥

क-भावार्थस्वरूपम्

अ(त्यन्ता?क्षरा)र्थो हि भावार्थः केवलं परमेश्वरि ।
शिवशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः ॥ २९ ॥
तन्मयीं परमानन्दनन्दितां मन्त्ररूपिणीम् ।
नि(संज्ञ?सर्ग) सुन्दरीं देवीं ज्ञात्वा स्वैरमुपासते ॥ ३० ॥
शिवशक्त्यात्मसं(यन्त्र?घट्ट)रूपिणी ब्रह्मरूपिणी ।
तत्प्रथाप्रसराश्लेषभुवि त्विन्द्रोपलक्षिते ॥ ३१ ॥
ज्ञातुर्ज्ञानमयाकारकरणान्मन्त्ररूपिणी ।
मध्यबिन्दुवि(सर्गान्तः)समास्थानमये परे ॥ ३२ ॥
कुटिलारूपके तस्याः प्रतिरूपे वियत्कले ।
मध्यप्राणप्रथारूपस्पन्दव्योम्नि स्थिता पुनः ॥ ३३ ॥
मध्यमे मन्त्रपिण्डे तु तृतीये पिण्डके पुनः ।
(बाह्य?राहु)कूटद्वयस्फूर्जच्च(रूद्ध?लत्ता)संस्थितस्य तु ॥ ३४ ॥
धर्माधर्मस्य वाच्यस्य (वीरा?विषा)मृतमयस्य च ।
वाचकाक्षरसंयुक्तेः प्रथिता 'विश्वरूपिणी ॥ ३५ ॥
तेषां समस्तरूपेण पराशक्तिस्तु मातृका ।
कूटत्रयात्मिका देवी समष्टिव्यष्टिरूपिणी ॥ ३६ ॥
कूटत्रये तु ह्रींकारं देव्या नेत्रत्रयं शुभम् ।
हकारस्त्वग्निरू(ढ?प)त्वात् संहरेद् भेदसन्ततिम् ॥ ३७ ॥

रेफः कालाग्निरूपत्वात् पापौघक्षयकारकः ।
तयोर्विमर्श ईकारो बिन्दुना त्रिगुणात्मना ॥ ३८ ॥
अमृतत्वं करोतीन्दुः कामः कामानशेषतः ।

मन्त्रार्थ का वर्णन—हे देवि! मन्त्रों का अर्थ बतलाया जा रहा है । उरुको पहले सुनो । अर्थ अनेक प्रकार के होते हैं—१. भावार्थ, २. सम्प्रदायार्थ, ३. निगर्भार्थ, ४. कौलकार्थ, ५. सर्वरहस्यार्थ और ६. महातत्त्वार्थ ।

१. भावार्थ—हे परमेश्वरि! केवल अक्षरों का अर्थ भावार्थ होता है । शिव और शक्ति के संयोग से मन्त्र बनता है । उस मन्त्रमयी परमानन्दनन्दित मन्त्ररूपिणी स्वभाव सुन्दरी देवी को जानकर साधक अपनी इच्छानुसार उसकी उपासना करता है । शिवशक्ति के परस्पर सङ्घट्टरूपिणी शक्ति ब्रह्मशक्ति है । इसका प्रसार हसकलह्रीं रूप में होता है । दूसरा प्रसार ज्ञाता का ज्ञानमय आकार है । यह वाग्भव कूट है । इसका स्वरूप है—कएईलह्रीं । तीसरा पिण्ड हसकहलह्रीं है । यह विष्णु की शक्ति है । इस प्रकार यह देवी तीन कूटों वाली है (?)। यह समष्टि व्यष्टि रूपा है । उपर्युक्त तीनों कूटों में ह्रींकार देवी के तीन नेत्र के वाचक हैं । हरई क्रमशः अग्नि सूर्य और चन्द्रमा के सङ्केतक हैं । इनमें ईकार शिवशक्ति के विमर्श का वाचक है । यह अमृत का क्षरण करता है । कामबीज समस्त कामों की पूर्त्ति करता है (?)॥ २७-३८- ॥

ख-सम्प्रदायार्थस्वरूपम्

सम्प्रदायो महाबोधरूपो गुरुमुखे स्थितः ॥ ३९ ॥
विश्वाकारप्रथायास्तु महत्त्वं च (स?य)दाश्रयम् ।
शिवशक्त्याद्यया मूलविद्यया परमेश्वरि ॥ ४० ॥
जगत्कृत्स्नं तया व्याप्तं श्रृणुष्वावहिता प्रिये ।
पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सनातनी ॥ ४१ ॥
तन्मयी मूलविद्या च तथापि कथयामि ते ।
हकाराद्व्योम सम्भूतं (ह?क)कारात्तु प्रभञ्जनः ॥ ४२ ॥
रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः ।
लकारात् पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा ॥ ४३ ॥

२. सम्प्रदायार्थ—सम्प्रदाय का अर्थ है—महाबोध । वह महाबोध गुरु के मुख में स्थित रहता है । विश्वाकार प्रथा अर्थात् विश्व के रूप में उस शैवीशक्ति का जो विस्तार है और उसके अन्दर जो महत्त्व है वही महाबोध है । हे परमेश्वरि! शिवशक्ति की आद्या मूलविद्या के द्वारा समस्त जगत् व्याप्त है । हे

प्रिये! इसे ध्यान से सुनो । यह विश्व पञ्चभूतात्मक है । वह सनातनी तन्मयी अर्थात् पञ्चभूतमयी है । मूलविद्या तन्मयी अर्थात् सनातनी वाली है । यद्यपि वह नित्य एवं अवर्ण्य है तो भी मैं तुम्हें उसको बतला रहा हूँ । हादिविद्या अर्थात् हसकहलह्रीं ही मूलविद्या है । उनमें से हकार से व्योम उत्पन्न हुआ । इसलिये हकार व्योम का बीज अर्थात् वाचक है । ककार से वायु उत्पन्न हुआ । रेफ से अग्नि और सकार से जल तत्त्व का आविर्भाव हुआ । लकार से पृथिवी की उत्पत्ति हुई । इसलिये वह अर्थात् मूलविद्या विश्वमयी है ॥ ३९-४३ ॥

गुणाः पञ्चदश प्रोक्ता भूतानां तन्मयी शुभा ।
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता ॥ ४४ ॥
सैव सर्वेश्वरी देवी स च सर्वो महेश्वरः ।
व्याप्त्या पञ्चदशार्णैः सा पञ्चभृत(स्तृ?गु)णात्मिका ॥ ४५ ॥
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः ।
स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी ॥ ४६ ॥
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ।
तत्त्वातीतस्वभावा च विद्येयं भाव्यते सदा ॥ ४७ ॥
पृथिव्यादिषु भूतेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम् ।
भूतं(लं सस्तलं?त्वधस्तनं)व्याप्यं तद्गुणा व्यापकाश्रयाः ॥ ४८ ॥
व्याप्येष्ववस्थिता देवि स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।
तस्माद्व्योमगुणः शब्दो वाय्वादीन् व्यात्य संस्थितः ॥ ४९ ॥
व्योमबीजैस्तु विद्या(द्यै?स्थै)र्लक्षये(तु च?च्छब्द)पञ्चकम् ।
तेषां कारणरूपेण स्थितं व्योममयं परम् ॥ ५० ॥

भूतों के पन्द्रह गुण[१] कहे गये हैं । यह पृथिवी उन गुणों वाली है । जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति कही गयी है (जैसे पृथिवी की शक्ति गन्ध और कठिनता, जल की मधुरता एवं द्रुतता आदि) वह शक्ति स्वयं सर्वेश्वरी शिवा है और वह पदार्थ शिव है । वह पृथिवी पन्द्रह गुणों से व्याप्त है और पाँचों भूतों के गुणों वाली है । पाँच, छह और चार अक्षरों अर्थात् पन्द्रह अक्षरों, स्वर स्वञ्जन भेद से यह सैंतीस भेदों वाली बतलाई गई है । सैंतीस के भेद से वह छत्तीस तत्त्वरूपिणी है। किन्तु इस विद्या का तत्वातीत स्वभाव वाली के रूप में

---

[१] आकाश का एक गुण—शब्द; वायु का दो गुण—शब्द, स्पर्श; तेज का तीन गुण—शब्द, स्पर्श, रूप; जल का चार गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पृथिवी का पाँच गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये मिलाकर पन्द्रह होते हैं ।

ध्यान किया जाता है । पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर भूत व्यापक है नीचे-नीचे वाले भूत व्याप्य हैं । उनके गुण भी व्यापक के अधीन हैं । हे देवि! वे गुण व्याप्यों में स्थूल-सूक्ष्म भेद से व्याप्त हैं । इस प्रकार व्योम का गुण शब्द वायु आदि में व्याप्त होकर स्थित है । विद्या में स्थित व्योमबीजों से पाँच शब्दों को समझना चाहिये । यह परमाकाश उनके कारण के रूप में स्थित है ॥ ४४-५० ॥

भवे (ज्ज्वलु?ह्रुण)वतां बीजं गुणानामपि वाचकम् ।
कार्यकारणभावेन तयोरैक्यविवक्षया ॥ ५१ ॥
महामायात्रयेणापि कारणेन च बिन्दुना ।
वाय्वग्निजलभूमीनां स्पर्शानां च चतुष्टयम् ॥ ५२ ॥
उत्पन्नं भावयेद् देवि स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।
रूपाणां त्रितयं त(त्त्वं?द्वत्)त्रिभी रेफैर्विभावितम् ॥ ५३ ॥
प्रधानं तेजसो रूपं तद्बीजेन हि जन्यते ।
विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु स्थूलः सूक्ष्मो रसः स्मृतः ॥ ५४ ॥
सम्बन्धो विदितो लोके रसस्याप्यमृतस्य च ।
वसुन्धरागुणो गन्धस्त (द्विब्धि?ल्लिपिः)गन्धवाचिका ॥ ५५ ॥

पृथिवी आदि गुणवानों के बीज (= ल आदि) उनके गुणों के वाचक होते हैं क्योंकि कार्यकारण सम्बन्ध से उन दोनों गुण-गुणी में ऐक्य माना जाता है । तीन महामाया (= ई) और उसके कारण भूत बिन्दु से वायु अग्नि जल भूमि और उनके स्पर्श आदि (= रूप रस गन्ध) चार गुणों को तीन रेफों से उत्पन्न मानना चाहिये । तेज का प्रधान गुण रूप तेज के बीज 'र' से उत्पन्न होता है । विद्या अर्थात् मूलमन्त्र में स्थित चन्द्र बीज 'स' से स्थूल और सूक्ष्म रस को उत्पन्न माना जाता है । अमृत और रस का सम्बन्ध लोक में विदित है । पृथिवी का गुण गन्ध है और उसकी लिपि (= लं) गन्ध की वाचिका है ॥ ५१-५५ ॥

भुवनत्रयसं(बुद्ध्या?बन्धात्) त्रिधात्वं तु महेश्वरि ।
अशुद्ध (स्तत्त्व?शुद्ध) मिश्राणां प्रमातॄणां परं वपुः ॥ ५६ ॥
क्रोधीशत्रितयेनाथ विद्यास्थेन प्रकाश्यते ।
श्रीक(श्च?ण्ठ) दशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम् ॥ ५७ ॥
प्राणरूपस्थितो देवि त (त्त्वमे?द्वदे)कादशः(पुनः?परः) ।
एकः सन्नेव पुरुषो बहुधा जायते हि सः ॥ ५८ ॥
रुद्रेश्वरसदेशाख्या देवता मितविग्रहाः ।
बिन्दु(क्रमे?त्रये)ण कथिता, अमितामितविग्रहाः ॥ ५९ ॥

शान्तिः शक्तिश्च शम्भुश्च नादत्रियबोधनाः ।
वा(ग्भवो?गुरा) मूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः ॥ ६० ॥
तथा मन्त्राः समस्ताश्च विद्याया(य?म)त्र संस्थिताः ।
गुरुक्रमेण सम्प्राप्तः सम्प्रदायार्थ ईरितः ॥ ६१ ॥

हे महेश्वरि! तीन भुवनों के साथ सम्बन्ध होने से प्रमाताओं का शरीर तीन प्रकार का होता है—१. अशुद्ध, २. शुद्ध और ३. मिश्र । यह शरीर विद्यास्थ तीन क्रोधीश (= क) से प्रकाशित होता है । उसी प्रकार दशवाँ श्रीकण्ठ (= ह?) अव्यक्त का वाचक है । हे देवि! उसी प्रकार ग्यारहवाँ वर्ण (= ह्रीं) पर प्राणरूप में स्थित है । वह पुरुष एक होता हुआ भी अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है । (यह अमित विग्रह वाला है) रुद्र ईश्वर और सदाशिव ये तीन देवतायें परिच्छिन्न शरीर वाली हैं । तीन बिन्दु अमित और मित विग्रह वाली है । शान्ति शक्ति शिव ये तीन नाद के बोधक हैं । वक्रशरीर वाल सूत्र आदि मूलवलय (= मूलविद्या) में समाहित रहते हैं तथा सारे मन्त्र इस मूलविद्या में स्थित हैं । इस प्रकार गुरु क्रम से प्राप्त सम्प्रदायार्थ बतलाया गया है ॥ ५६-६१ ॥

ग-निगर्भार्थस्वरूपम्

निग(र्वों?र्भो)ऽपि च देवेशि शिवगुर्वा(थ?त्म)गोचरः ।
तत्प्रकारं च देवेशि दिङ्मात्रेण वदामि ते ॥ ६२ ॥
शिवगुर्वामनामैक्यानुसंधानात् तदात्मकम् ।
निष्कलत्वं शिवे बुद्ध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि ।
तन्निरीक्षणसामर्थ्यादात्मनश्च शिवात्मताम् ॥ ६३ ॥
भावयेद्भक्तिनम्रस्तु शङ्कोन्मेषाकलङ्कितः ।

३. **निगर्भार्थ**—हे देवेशि! निगर्भार्थ भी शिव गुरु और आत्म विषयक होता है । हे देवेशि! मैं अब तुमको संक्षेप में उसका स्वरूप बतला रहा हूँ । साधक शिव गुरु और आत्मा की एकता का अनुसन्धान कर इनको निष्कल शिवरूप समझे । गुरु को भी निष्कल शिवरूप जाने । ऐसी भावना के प्रबल हो जाने पर अपने को भी शिव समझे । इस क्रम में भक्तिपूर्वक नम्रता का होना आवश्यक है साथ ही शिवा अथवा उक्त ऐक्य के विषय में लेशमात्र भी शङ्का नहीं होनी चाहिये ॥ ६२-६३- ॥

घ-कौलिकार्थःस्वरूपम्

कौलिकं कथयिष्यामि चक्र(मे?दे)वतयोरपि ॥ ६४ ॥
विद्यागुर्वात्मनामैक्यं तत्प्रकारः प्रदश्यते ।

तथा मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परं वपुः ॥ ६५ ॥
एकादशाधिकशतदेवतात्मतया स्थितम् ।
लकारैश्चतुरस्राणि, वृत्तत्रितयसंयुतम् ॥ ६६ ॥
सरोरुहद्वयं(शक्तो?शाक्तै)रग्नी(सो?षो)मात्मकं प्रिये।
हृल्लेखात्रयसम्भू(त्यै?तै) रक्षरैर्नवसंख्यकैः ॥ ६७ ॥
बिन्दुत्रययुतैर्जातं नवयोन्यात्मकं प्रिये ।
मण्डलत्रयसंयुक्तं चक्रं शक्त्यनलात्मकम् ॥ ६८ ॥
व्योमबीजत्रयेणापि प्रमातृत्रितयात्मकम् ।
इच्छा(दिना?ज्ञान)क्रियारूपमादनत्रयसंयुतम् ॥ ६९ ॥
सर्ववर्णात्मकं बिन्दुचक्रं सद्यः शिवात्मकम् ।

४. कौलिकार्थ—अब कौलिकार्थ का वर्णन करूँगा । साधक को चाहिये कि वह श्रीचक्र देवता अर्थात् श्रीचक्र तथा मन्त्र अर्थात् श्रीविद्या गुरु की और स्वयं अपनी इन तीनों की एकता की भावना करे । उसकी प्रक्रिया बतलायी जा रही है । मन्त्रात्मक चक्र देवता का उत्कृष्ट शरीर होता है । उसमें एक सौ ग्यारह देवतायें रहती हैं । चक्र की रचना 'स' से इस प्रकार होती है—लकारों से चार चतुष्कोण अर्थात् चौकोर मण्डल या भूपुर बनाते हैं । उसके बाद तीन वृत्त बनाये जाते हैं । हे प्रिये! उसके बाद शाक्तों अर्थात् स के द्वारा अग्नि सोमात्मक दो कमल बनते हैं । इनमे सोमात्मक कमल षोडशदल तथा अग्न्यात्मक कमल अष्टदल होता है । नव अक्षरों वाले तीन-तीन त्रिकोण बनते हैं । वे अक्षर हृल्लेखा (= ह्रीं) होते हैं । इसे इस प्रकार समझना चाहिये—हृल्लेखा अर्थात् ह्रीं में तीन अक्षर है—ह् र् ई । ये तीन क्रमशः व्योम अग्नि और कामकला के प्रतीक हैं । इनसे नव अक्षरात्मक योनि का आविर्भाव होता है । वे इस प्रकार हैं—१. बिन्दु, २. अर्धचन्द्र, ३. रोधिनी, ४. नाद, ५. नादान्त, ६. शक्ति, ७. व्यापिनी, ८. समना और ९. उन्मना । यह नवयोनि वाला चक्र माना जाता है । इस प्रकार तीन मण्डल—भूपुर, वृत्तत्रय, पद्मद्वय से युक्त चक्र शक्ति और अग्नि स्वरूप होता है । हे प्रिये! यह तीन बिन्दुओं से युक्त नव योनि वाला होता है । यह तीन मण्डलों से युक्त शक्ति अग्नि रूप होता है । इच्छा ज्ञान क्रिया रूप तीन मादन (= क/क्लीं) से युक्त होता है । यह सर्ववर्णात्मक बिन्दुचक्र शिवात्मक होता है ॥ ६४-६९- ॥

गणेशत्वं महादेव्याः ससोमरविपावकैः ॥ ७० ॥
इच्छाज्ञानक्रियाभिश्च गुणत्रययुतैः पुनः ।
ग्रहरूपा परा देवी, ज्ञानकर्मेन्द्रियैरपि ॥ ७१ ॥
त(दुत्थै?दर्थै)रेव देवेशि करणैरान्तरैः पुनः ।

प्रकृत्या च गुणेनापि पुंस्त्वबन्धेन चात्मना ॥ ७२ ॥
नक्षत्रविग्रहा जाता, ...

महादेवी का गणेशत्व सोम, रवि एवं पावक से युक्त होता है । पुनः वह इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप से तीन गुणों से युक्त होता है । परा देवी ग्रह रूप वाली होती है । वह ज्ञान, कर्म एवं इन्द्रियों से युक्त भी होती है । हे देवेशि! उसी के लिए पुनः वह करणान्तरों से युक्त होती है । वह देवी प्रकृति एवं गुणों से अपने को पुंरूप से अनबन्धित कर देती है और नक्षत्र के विग्रह वाली हो जाती है ॥ ७०-७२- ॥

.... योगिनीनामथोच्यते ।
त्वगादिधातुनाथाभिर्डाकिन्यादिभिरप्यसौ ॥ ७३ ॥
वर्गाष्टकनिविष्टाभिर्योगिनी(भ्य?भि)स्तु संयुता ।
योगिनीरूपमास्थाय क्रीडते विश्वरूपिणी ॥ ७४ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च व्यानोदानौ तथा पुनः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ७५ ॥
जीवात्मा परमात्मा च तैरेव(बलि?राशि)रूपिणी ।

अब ६४ योगिनियों को कहते हैं जो चक्रगत होती हैं । त्वक् आदि सप्त धातु तथा डाकिनियों से युक्त होकर वर्गाष्टक में निविष्ट योगिनियों का वास कहा गया है । यह देवी योगिनी रूप में प्रतिष्ठित होकर विश्व में क्रीड़ा करती है । १. प्राण, २. अपान, ३. समान, ४. व्यान, ५. उदान, ६. नाग, ७. कूर्म, ८. कृकर, ९. देवदत्त एवं १०. धनञ्जय रूप से प्राणवायु जीवात्मा एवं परमात्मा रूप द्वादश राशि में विश्व में व्याप्त रहती है ॥ ७३-७५- ॥

अकथादित्रिपंक्त्यात्मतार्तीयादिक्रमेण सा ॥ ७६ ॥
(जनना?गणेशोऽ)भून्महाविद्या परावागादिवाङ्मयी ।
बीजबिन्दुध्वनीनां च त्रिकूटेषु ग्रहात्मिका ॥ ७७ ॥
हल्लेखात्रयसम्भूतैस्तिथिसंख्यैरथाक्षरैः ।
अन्यैर्द्वादशभि(र्व्यक्तै?र्वर्णै)रेषा नक्षत्ररूपिणी ॥ ७८ ॥
विद्यान्तर्भूतशक्त्याद्यैः शाक्तैः षड्भिरथाक्षरैः ।
योगिनी(?त्व च वर्ण)विद्याया राशित्वं चान्त्यवर्जितैः ॥ ७९ ॥
एवं विश्वप्रथाकारचक्ररूपा महेश्व(रि?री) ।
देवीदेहो यथा देवि गुरुदेहस्तथैव च ॥ ८० ॥
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते ।

सहस्रदलमध्ये तु त्रिकोणं परिचिन्तयेत् ॥ ८१ ॥
तत्रैव मादनं बीजं बिन्दुमाश्रित्य दीपयेत् ।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं चिदानन्दमयं परम् ॥ ८२ ॥
अनुत्तरपदं गुह्यं ललाटोर्ध्वे व्यवस्थितम् ।
भगमाधारसंस्थानं त्रिकोणपुरमाश्रितम् ॥ ८३ ॥
मृणालतन्तुरूपा हि विश्वोत्पत्तेश्च कारणम् ।

अकथादि त्रि पङ्क्त्यात्मक तार्तीय क्रम से वह देवी परा वाक् आदि वाङ्मयी रूप से महाविद्या हुई । बीज, बिन्दु एवं ध्वनियों में और त्रिकूटों में वह ग्रहात्मिका रूप से स्थित है । हल्लेखा त्रय से सम्भूत वह पन्द्रह अक्षरों से युक्त महाविद्या है । इन पन्द्रह में अन्य १२ और वर्ण मिलाने से यह कुल २७ नक्षत्र रूप वाली विद्या हो जाती है । विद्या के अन्तर्भूत शक्ति आदि और शाक्र आदि छह अक्षरों से युक्त योगिनी वर्ण विद्या और अन्त्य अक्षर से रहित राशित्व रूप से चक्ररूपा महेश्वरी समस्त विश्व में व्याप्त है । हे देवि! जिस प्रकार देवी का (वर्णात्मक) शरीर है वैसे ही गुरु का भी शरीर समझना चाहिए । उन्हीं गुरु के प्रसाद से उनका प्रतिरूप शिष्य भी प्रकाशित होता है । अत: सहस्रदल मध्य में त्रिकोण का ध्यान करे । वहीं पर मादन (क्लीं) बीज का उद्दीपन करे । वह क्लीं बीज करोड़ों चन्द्रमा की चाँदनी के समान प्रकाशमान है और चिदानन्दमय तथा श्रेष्ठ स्थान है । ललाट के ऊर्ध्व में रहस्यमय अनुत्तरपद व्यवस्थित है । त्रिकोण एवं भूपुर में आश्रित योनि पद का स्थान है । यह मृणालतन्तु के समान सूक्ष्म है जो समस्त विश्व की उत्पत्ति का कारण है ॥ ७६-८३- ॥

इच्छाज्ञानक्रियारूपा चतुर्थी हृदये स्थिता ॥ ८४ ॥
शक्रं ललाटमध्ये तु दीपाभं परिचिन्तयेत् ।
विद्युत्कोटिप्रतीकाशं पञ्चमं नेत्रनासिके ॥ ८५ ॥
शिवो नादाख्यसंयुक्तस्त्रिषु शून्येषु संस्थितः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशो महापद्मोपरिस्थितः ॥ ८६ ॥
सकारं मुखमध्ये तु बालार्कसदृशं परम् ।
मादनं जठरे देवि वराभं परिचिन्तयेत् ॥ ८७ ॥
हकारं प्राणवायौ च हंसा(भि? भं) परिचिन्तयेत् ।
कलाषोडशपत्रे च इन्द्रमोंकाररूपकम् ॥ ८८ ॥
ह्रींकारं हृदये पद्मे कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
बिन्दुद्वये कुचयुग्मे यवाभे चार्धचन्द्रकम् ॥ ८९ ॥

नादबिन्दुस्तदग्रे तु शिवशक्तिसमन्विते ।
कामराजं महेशानि आकर्षणकरं परम् ॥ ९० ॥
नाभिपद्मे त्रिकोणे च दाडिमाभं सकारकम् ।
पादद्वये महेशानि मादनं दीपसन्निभम् ॥ ९१ ॥
पृष्ठोपरिस्थितं देवि इन्द्रं तेजःस्वरूपिणम् ।
चतुर्थं योनिमध्ये तु दीपाभं परिचिन्तयेत् ॥ ९२ ॥
शिवेन लिङ्गरूपेण तद्बिन्दुयुगलेन च ।
विद्याबीजत्रयं देवि योनित्वे परिचिन्तयेत् ॥ ९३ ॥
लिङ्गं योनिं च सत्त्वं च चतुर्थं कथितं मया ।

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप से चतुर्थी हृदय में स्थित होती है । अत: शक्र (ल) का ध्यान ललाट के मध्य में प्रदीप्त रूप से करना चाहिए । पञ्चम वर्ण का ध्यान नेत्र एवं नासिका में करोड़ों विद्युत के प्रकाश के रूप में होता है । नादाख्य से संयुक्त शिव (ह) तीनों बिन्दुओं में विद्यमान होता है । महापद्म (कुण्डलिनी) के ऊपर करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित होकर यह स्थित है । बाल सूर्य के सदृश श्रेष्ठ सकार मुख के मध्य में स्थित है । हे देवि! मादन (क्लीं) का ध्यान श्रेष्ठ आभा से युक्त रूप से पेट (= जठर) में करना चाहिए । हकार का ध्यान श्वास एवं प्रस्वाश रूप प्राणवायु में 'हंस' रूप से करना चाहिए । साधक षोडश दल कमल में सोलह कलाओं का ध्यान करे । इन्द्र (ल) ओङ्कार रूप है । (ह स क ल ह्रीं में से) ह्रीं का ध्यान करोड़ों सूर्य की प्रभा रूप से हृदय कमल में करे । बिन्दु द्वय का ध्यान अर्धचन्द्र के रूप में यव की आभा से युक्त कुच युग्म में करना चाहिए । उस कुच युग्म के अग्रभाग में शिव एवं शक्ति से युक्त नाद एवं बिन्दु का ध्यान करना चाहिए । हे महेशानि! कामराज बीज (क्लीं) आकर्षण करने वाला श्रेष्ठ कहा गया है । सकार का ध्यान नाभि पद्म में त्रिकोण रूप से करना चाहिए जो अनार की आभा वाला (लाल) है । हे महेशानि! दोनों पैरों में दीप के सदृश मादन (क्लीं) दीप्ति युक्त है । हे देवि! ल (इन्द्र) तेजस्वरूप पृष्ठ के ऊपर स्थित है । चौथा अक्षर (ह्रीं) योनि के मध्य में अत्यन्त दीप्तिमान रूप से स्थित है । लिङ्ग रूप शिव के द्वारा वह बिन्दु द्वय से युक्त है । हे देवि! विद्या बीज त्रय (ह स क ल ह्रीं आदि) का योनि रूप से ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार यहाँ लिङ्ग, योनि एवं सत्व तथा चतुर्थ का मेरे द्वारा ध्यान कहा गया ॥ ८४-९३- ॥

ङ-सर्वरहस्यार्थस्वरूपम्

(५)अथ सर्वरहस्यार्थं कथयामि तवानघे ॥ ९४ ॥

मूलाधारे ज्वलद्रूपे वाग्भवाकार(तद्धि?तां) गते ।
अष्टात्रिंशत्कलायुक्तपञ्चाशद्वर्णविग्रहा ॥ ९५ ॥
विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी ।
तडित्कोटिप्रभाप्रख्या विषतन्तुनिभाकृतिः ॥ ९६ ॥
व्योमेन्दुमण्डलासक्ता(स्व?सु)धास्रोतःस्वरूपिणी।
सदाव्याप्तजगत्कृत्स्ना सदानन्दस्वरूपिणी ॥ ९७ ॥
एषा स्वात्मेति बुद्धिस्तु रहस्यार्थो महेश्वरि ।

५. **सर्वरहस्यार्थ**—हे अनघे! अब तुमको सर्वरहस्यार्थ बतला रहा हूँ । अत्यन्त देदीप्यमान मूलाधारचक्र जब वाग्भव बीज (= ऐं) के आकार का हो जाता है तो उसमें अड़तीस कलाओं से युक्त आदि क्षान्त पचास वर्णों वाली कुण्डलिनीरूपा विद्या का ध्यान करना चाहिये । यह तीन मण्डल (= अग्नि, सोम और सूर्य मण्डलों) का भेदन करने वाली है । करोड़ों विद्युत् के समान आभा वाली यह विसतन्तु के समान आकृति वाली है । व्योमस्थ चन्द्र मण्डल में आसक्त यह अमृतधारारूपा है । इसने सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर रखा है । यह सर्वदा आनन्दरूपा है और यह आत्मस्वरूपा है—ऐसी बुद्धि रखनी चाहिये । हे महेश्वरि! यह सर्वरहस्यार्थ है ॥ ९४-९७- ॥

च-महातत्त्वार्थस्वरूपम्

(६)महातत्त्वार्थ इति यत्तच्च देवि ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥
निष्कले परमे सूक्ष्मे निर्लिप्ते भाववर्जिते ।
व्योमातीते परे तत्त्वे प्रकाशानन्दविग्रहे ॥ ९९ ॥
विश्वोत्तीर्णे विश्वमये तत्त्वे स्वात्मनियोज(येत्?नम्) ।
तदा प्रकाशमानत्वात् तेजसां तमसामपि ॥ १०० ॥
अविनाभावरूपत्वं तस्माद्विश्वस्य सर्वतः ।
प्रकाशते महातत्त्वं दिव्यक्रीडारसोज्ज्वले ॥ १०१ ॥
निरस्तसर्वसङ्कल्पविकल्पस्थितिपूर्वकः ।
रहस्यार्थो मया प्रोक्तः सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ १०२ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे विद्यासाधननिर्णय नामक
एकोनत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ २९ ॥

◆

६. महातत्त्वार्थ—हे देवि ! जो महातत्त्वार्थ है मैं वह तुमको बतला रहा हूँ ।

निष्कल, परमसूक्ष्म, निर्लिप्त, भावशून्य, व्योमातीत, प्रकाश-आनन्दरूप, विश्वोत्तीर्ण साथ ही विश्वमय पर तत्त्व से आत्मा को जोड़ना चाहिये । नित्य प्रकाशमान अत एव नित्योदित होने के कारण तेजस् एवं तमस् साथ-साथ रहते हैं । उससे विश्व सर्वत: प्रकाशित होता रहता है । यही महातत्त्व बतलाया गया है । दिव्यक्रीडा रस से उल्लासपूर्ण इस तत्त्व में, समस्त सङ्कल्प विकल्प का त्याग कर स्थित होना ही महातत्त्वार्थ कहा गया है । सद्यः परम ज्ञान देने वाला यह रहस्यार्थ मेरे द्वारा कहा गया ॥ ९८-१०२ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में विद्यासाधननिर्णय नामक उन्तीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २९ ॥

* * *

त्रिंशः पटलः

विद्याकूटत्रयसाधननिरूपणम्

अजपाविद्यास्वरूपम्

ईश्वर उवाच—

अकथ्यमपि देवेशि तव स्नेहाद्वदाम्यहम् ।
त्रिकूटान्ते हंसबीजं बिन्दुनादविभूषितम् ॥ १ ॥
विपरीतेन वा देवि दुर्लभं पापचेतसाम् ।
हकारः प्राणरूपस्तु सकारो जीव उच्यते ॥ २ ॥
उभौ जीवेति विख्यातौ त्रैलोक्ये सचराचरे ।
हकारं शुक्लवर्णाढ्यं कोटिसूर्यसमभम् ॥ ३ ॥
सकारं रक्तवर्णाढ्यं कोटिसूर्यसमभम् ।
भावनं त्वस्य मन्त्रस्य जपमात्रं न विद्यते ॥ ४ ॥
अजपा तेन विख्याता शिवशक्तिसमन्विता ।
न्यासमन्त्रस्य विद्याया हकारः प्राण उच्यते ॥ ५ ॥
सकारो जीव आख्यातो जीवः कामेन मण्डितः ।

अजपा विद्या (= मन्त्र) का स्वरूप—ईश्वर ने कहा—हे देवेशि! यद्यपि यह तथ्य कथनीय नहीं है तथापि तुम्हारे प्रेम के कारण मैं इसे बतला रहा हूँ । त्रिकूट अर्थत् वाग्भव कूट, कामराजकूट तथा शक्तिकूट के अन्त में हंस बीज अर्थात् हकार को बिन्दुनाद से विभूषित करना चाहिये । (इसका स्वरूप होगा—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हं) इसको विपरीत करके भी कहा जा सकता है । (हं सकलह्रीं हसकहलह्रीं कएईलह्रीं) । हे देवि! यह पापियों के लिये दुर्लभ है । हकार प्राणरूप और सकार जीवरूप कहा गया है । चराचरात्मक त्रैलोक्य में दोनों जीव नाम से प्रसिद्ध हैं । हकार का वर्ण शुक्ल है और यह करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाला है । सकार रक्तवर्ण का और करोड़ों सूर्य के समान आभा

वाला है । इस मन्त्र की भावना केवल जप नहीं होती कुछ और भी होती है । इसलिये शिव-शक्ति से समन्वित यह अजपा के नाम से प्रसिद्ध है । हकार इस विद्या का प्राण कहा जाता है तथा सकार को जीव कहा गया है । जीव काम से मण्डित है ॥ १-५- ॥

मादनं प्राणरूपं तु वि(मर्ष?कासः) शिव उच्यते ॥ ६ ॥
सकारस्थः परो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपवान् ।
सङ्कोचः परमा शक्तिर्वि(मर्षः?कासः)परमःशिवः ॥ ७ ॥
सङ्कोचश्च विकासश्च हस इत्यक्षरद्वयम् ।
तयोरस्वररूपेण (क?ह)वर्णो बिल्व(न्दु)मालिनी ॥ ८ ॥
प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्तः साहचर्याद्वरानने ।
सपूर्वमुदितं मन्त्रं शम्भुशक्त्यैक्यवाचकम् ॥ ९ ॥
जीवशक्त्यैक्यसिद्ध्यर्थं गदितं सुरपूजिते ।
अस्मिन्मन्त्रे वरारोहे कालकर्मान्तवर्त्मनि ॥ १० ॥
वर्तते यस्तु युक्तात्मा असाध्यमपि साधयेत् ।
त्वं च जीवैक्यसिद्ध्यर्थमुदितं मन्त्रनायकम् ॥ ११ ॥
तथ्यं मद्वाक्यतो(देवि?विद्धि) फलाफलस्पृहां त्यज ।
अस्मिन्मन्त्रे महाभागे समे जप्ते वदाम्यहम् ॥ १२ ॥

मादन प्राणरूप है, विकास को शिव कहा जाता है । सकार पर का रूप है और सङ्कोच शक्तिरूपवान है । सङ्कोच परमा शक्ति है, विकास परम शिव है । सङ्कोच और विकास के वाचक स और ह ये दो अक्षर हैं । उन दोनों को स्वर रहित करने पर 'स्ह्' रूप होता है । इनमें ह वर्ण बिन्दु होता है । हे वरानने! साहचर्य के कारण प्राण को बिन्दु कहा गया है । यह ह मन्त्र यदि स को पहले जोड़कर कहा जाय (= स्ह्) तो यह शिव-शक्ति की एकता का वाचक होता है । हे सुरपूजिते! जीव और शक्ति की एकता के लिये यह कहा गया । हे वरारोहे! जो युक्तात्मा काल कर्म के अन्तपथ से वर्त्तमान रहता है वह असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है । जीव और शक्ति की एकता के लिये मैने इस मन्त्रराज को तुम्हें बतलाया । मेरे वाक्य से तथ्य को जानो और मन्त्र के फल या अफल की इच्छा छोड़ दो । हे महाभागे! इस मन्त्र को सम जपने से क्या फल होता है यह मैं बतला रहा हूँ ॥ ६-१२ ॥

मन्त्रेषु चैतन्यविजृम्भणम्

सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति जीवन्ति च पुनन्ति च ।
प्राणन्ति च महाभागे सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १३ ॥

सोऽहंभावेन भावेन भावनं भावनं मतम् ।
सोऽहंभावेन भावं तु उक्तलक्षणल(क्ष्यते?क्षितम्) ॥ १४ ॥
कृत्वाहंभावमुत्सृज्य सोऽहंभावे स्थिरीभवेत् ।
शम्भुभावे स्थिरीभूते बिन्दुं शम्भौ विभावयेत् ॥ १५ ॥
सच्चित्सुखमयः शम्भुस्त्रिरूपः सर्वकर्मणि ।
सर्वदा भा(ष?व्य)ते यस्मात्तन्मयं त्वखिलं ततः ॥ १६ ॥
सत्सन्निधिसमज्ञेषु शम्भुश्चैव प्रकाशते ।
कामः कामयते भेदमेति तद्रूपतां मतिः ॥ १७ ॥
यत्र चित्सत्तयोर्व्याप्तिस्तत्रानन्दोऽभिजायते ।
यत्रानन्दो भवेद्भावे तत्र चित्सत्तयोः स्थितिः ॥ १८ ॥
या चित्सत्तैव सा प्रोक्ता या सत्ता सा चिदुच्यते ।
एवं चित्सत्तयोरैक्ये स्थिरीभूते वरानने ॥ १९ ॥
आनन्देन समावेशोऽसुचिरादेव जायते ।
तदानन्दमयं विश्वं स्वात्माभेदं प्रकाशते ॥ २० ॥

मन्त्रों में चैतन्य का जागरण—हे महाभागे! समस्त मन्त्र सिद्ध होते हैं, उनमें चैतन्य का जागरण होता है और वे पवित्र करते और प्राणनक्रिया करते हैं—यह मैं सत्य कह रहा हूँ। 'सोऽहम्' (= मैं वह हूँ/वह मैं है) इस भावना से ध्यान करना चाहिये। यही भाव सोऽहं भाव का लक्ष्य है। ऐसी भावना कर अहंभाव को छोड़कर साधक को सोऽहं भाव अर्थात् अपने इष्ट के साथ अभिन्न रूप में स्थित होना चाहिये। अपने अन्दर शिवभाव के स्थिर होने पर बिन्दु की शिव में भावना करनी चाहिये। शिव स्वयं सत् चित् आनन्दस्वरूप है तथा समस्त कर्मों में त्रिरूप अर्थात् सच्चिदानन्द रूप हैं। चूँकि ऐसी भावना सर्वदा की जाती है इसलिये समस्त संसार तन्मय अर्थात् शिवमय अथवा सच्चिदानन्दमय है। सत् सनिधि समज्ञ में शिव प्रकाशित होते हैं। काम भेद की कामना करता है। मति तद्रूपता अर्थात् शिवरूपता को प्राप्त करती है। जहाँ सत् और चित् रहते हैं वहाँ आनन्द भी उत्पन्न होता है। जिस पदार्थ में आनन्द रहता है वहाँ चित् और सत्ता भी रहते हैं। जो चित् है वही सत्ता कही गयी है। जो सत्ता है वही चित् कहा जाता है। हे वरानने! इस प्रकार चित् और सत् के ऐक्य के स्थित होने पर आनन्द का समावेश शीघ्र हो जाता है और तब आनन्दमय विश्व और आत्मा में अभेद भासित होता है ॥ १३-२० ॥

एवं शम्भुमये भावे सर्वतः प्रभवे शिवे ।
सर्वशक्त्युपभोगे तु जीवन्मुक्तो महीं वसेत् ॥ २१ ॥

भावद्या? वस्तुभूताया हसौ .... ।
प्राणाः स्वराः समाख्याता बिन्दुस(ङ्गौ?गौ)च चेतना ॥ २२ ॥
अन्यान्यवयवानि स्युरन्यानि परमेश्वरि ।
तेन तद्युक्तितो मन्त्राः प्रसीदन्ति न चान्यथा ॥ २३ ॥
बिन्दुसर्गौ हसौ तुर्यस्वरश्चेति च पञ्चमम् ।
भवत्या मातृकादेहे विद्धि चैतन्यजृम्भणम् ॥ २४ ॥
तेन तैर्हीनरूपास्तु मन्त्रा विद्यास्तथा परे ।
निष्प्राणदेहवत्कार्यकरणेष्वक्षमाः स्मृताः ॥ २५ ॥

इस प्रकार भाव के शिवमय होने तथा सर्वतः शिव के व्याप्त होने पर समस्त शक्तियों का उपभोग करने पर भी साधक जीवन्मुक्त होकर पृथिवी पर विचरण करता है । (?) स्वरों को प्राण कहा गया है । अनुस्वार और विसर्ग चेतना है । हे परमेश्वरि! अन्य-अन्य अवयव अन्य अर्थात् परस्पर भिन्न होते हैं । इसलिये इस भिन्नता की युक्ति अर्थात् बुद्धि से मन्त्र प्रसन्न होते हैं अन्यथा नहीं । बिन्दु और विसर्ग ह और स तथा चतुर्थ स्वर (= ई) ये सब आपकी मातृकादेह में चैतन्य के विजृम्भण रूप होते हैं । इस कारण उनसे हीन मन्त्र तथा विद्यायें निष्प्राण देह के समान कार्य करने में अक्षम कहे गये हैं ॥ २१-२५ ॥

बोधिनीविद्यास्वरूपम्

रमां मायां हंसबीजं वाग्भ(वत्वे?वाद्ये) नियोजयेत् ।
शक्त्यन्ते परमेशानि सोऽहं मायां रमां तथा ॥ २६ ॥
कामराजाह्वये देवि क्रोधीशं शक्रसंयुतम् ।
मायाबिन्दुसमायुक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ २७ ॥
स्फुरत् त्रिकोणमध्यस्थं किरणानेकसंवृतम् ।
एतत्प्राणं महाभागे गुप्तं ग्रन्थे प्रकाशितम् ॥ २८ ॥
बोधिन्या बोधयेद्विद्यां संदीपन्या च दीपयेत् ।

बोधिनी विद्या का स्वरूप—रमा माया 'हस' बीज तथा वाग्भव बीज को पहले जोड़ना चाहिये । हे परमेशानि! शक्ति के अन्त में 'सोऽहं' माया रमा लिखना चाहिये । हे देवि! कामराज के बाद क्रोधीश शक्र माया को बिन्दु से युक्त करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—श्रीं ह्रीं हंसः ऐं ईं सोऽहं ह्रीं श्रीं क्लीं कं लं ह्रीं अं)

कोटिसूर्य के समान कान्ति वाला, देदीप्यमान, त्रिकोण के मध्य में स्थित, अनेक किरणों से संवृत यह मन्त्र ग्रन्थ में अत्यन्त गुप्त है । जो यहाँ तुमको

बतलाया गया। बोधिनी मन्त्र से मन्त्र का उद्बोधन एवं सन्दीपनी से सन्दीपन करना चाहिये ॥ २६-२८- ॥

सन्दीपनीविद्यास्वरूपम्

तारमायारमायोगो म(नो?नु)र्दीपनमुच्यते ॥ २९ ॥

सन्दीपनी मन्त्र का स्वरूप—तार माया रमा का योग दीपन मन्त्र कहा जाता है । (मन्त्र-स्वरूप—ॐ ह्रीं श्रीं) ॥ २९ ॥

जीवनीविद्यास्वरूपम्

जीवन्या जीवयेद्विद्याममृतैरमृतं चरेत् ।
पृथग्विधं तु तस्यापि साधनं श्रृणु पार्वति ॥ ३० ॥
वाग्भवबीजरूपां तु दीपाभां तन्तुरूपिणीम् ।
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु ॥ ३१ ॥
विशेदच्छामृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं द्रवत् ।
पीत्वाकुलामृतं देवि पुनरेव विशेत् कुलम् ॥ ३२ ॥
पुनरेवाकुलं गच्छेद् द्वादशान्ते वरानने ।
सहस्रारे महापद्मे वाग्भवं पूर्णचन्द्रकम् ॥ ३३ ॥
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा सप्तषष्ट्याख्यधारया? ।
नासिकारन्ध्रमार्गेण त्वात्ममूलं प्रवेशयेत् ॥ ३४ ॥
जिह्वामापूर्य भो देवि मातृकावर्णरूपिणीम् ।
बहिर्गतां तु वाग्रूपां जिह्वाग्रे दीपरूपिणीम् ॥ ३५ ॥
आमूलाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं तस्माज्जिह्वावधि प्रिये ।
वाग्भवबीजरूपां तां दीपशिखां विभावयेत् ॥ ३६ ॥

जीवनी मन्त्र का स्वरूप—जीवनी मन्त्र से विद्या का सञ्जीवन करना चाहिये। अमृत मन्त्र से अमृत बनाना चाहिये । हे पार्वति! उसकी भी सिद्धि अलग प्रकार की है, अब उसे सुनो—वह वाग्भव बीज रूप है । दीप के समान वह आभायुक्त है । विसतन्तु के समान वह अत्यन्त क्षीण है । स्वयम्भू आदि लिङ्गों का भेदन करती हुई वह ब्रह्ममार्ग अर्थात् सुषुम्ना से ऊपर की ओर जा रही है—ऐसा ध्यान साधक को करना चाहिये । दुग्ध धारा के समान बूँद-बूँद कर गिरते हुए स्वच्छ अमृत में प्रवेश कर जाना चाहिये । हे देवि! सहस्रार में जाकर अकुल अमृत का पान कर पुनः कुल अर्थात् मूलाधारस्थ कुलकुण्डलिनी में आना चाहिये । हे वरानने! पुनः ऊर्ध्वद्वादशान्त में स्थित अकुल में जाना चाहिये । वहाँ सहस्रार महापद्म में वाग्भव पूर्णचन्द्र का साक्षात्कार कर ब्रह्मग्रन्थि का भेदन करना

चाहिये । यह भेदन सड़सठ धारा वाली सप्तषष्ठि धारा के द्वारा होता है । भेदन के बाद नासिकारन्ध्र के मार्ग से आत्ममूल में प्रवेश करना चाहिये । हे देवि! जिह्वा को पूरित कर मातृकावर्णरूपिणी वाग् जो कि बाहर है उसे जिह्वा के अग्रभाग में दीपशिखा के रूप में ध्यान करना चाहिये । उस वाग्भवबीज रूपा दीपशिखा का यह ध्यान मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक और ब्रह्मरन्ध्र से जिह्वाग्र तक करना चाहिये ॥ ३०-३६ ॥

वाग्भवबीजजपफलम्

लक्षमेकमिदं जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत् ।
अव्याहतमतिः शास्त्रे विजयी वाक्पतेरपि ॥ ३७ ॥
वादे सदसि वाक्यस्य स्तम्भकः प्रतिवादिनः ।
सत्पण्डितघटाटोप(जात?जेता)ऽप्रतिहतप्र(भुः?भः) ॥ ३८ ॥
पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता स(त्रा?जा)यते शिवे ।
इति ते कथितं देवि वाग्भवस्यापि साधनम् ॥ ३९ ॥

वाग्भवबीज के जप का फल—इस वाग्भव बीज का एक लाख जप कर जापक समस्त पापों से रहित हो जाता है । शास्त्र में उसकी अनिरुद्ध गति होती है और वह बृहस्पति को भी जीत लेता है । सभा में विवाद होने पर वह प्रतिवादी की वाणी को स्तम्भित कर देता है । उच्चकोटि की पण्डितसभा का जेता वह अप्रतिहत प्रभा वाला बन जाता हैं । हे शिवे! पदों की सङ्घटना के द्वारा वह महाकवि बन जाता है । हे देवि! इस प्रकार तुम्हें वाग्भव मन्त्र की सिद्धि बतलायी गयी ॥ ३७-३९ ॥

कामकलाबीजस्वरूपम्

अथ कामकलाबीजस्वरूपां चिन्तयेत् पराम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशां स्फुरद्दीपशिखानिभाम् ॥ ४० ॥
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण ब्रह्मरन्ध्रावधि प्रिये ।
प्रपतद्बिन्दुधाराभिः शुद्धलाक्षारसोपमाम् ॥ ४१ ॥
समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीवनाम् ।
महा(त्म?स्व)महिमाक्रान्तिध्वस्ताहंकृतिभूमिकाम् ॥ ४२ ॥
चिन्तयित्वा महेशानि वशयेज्जगतीमिमाम् ।
चिन्तयेद्योषितां योनौ चल(ज्ज्वा?ज्ज)लेन्दुसन्निभाम् ॥ ४३ ॥
तद्दृष्टिपथगा नारी दैवी वाप्यथवासुरी ।
निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा देवि जायते ॥ ४४ ॥

कामकला बीज का स्वरूप—इसके बाद साधक को उस परादेवी का कामकला बीज के रूप में ध्यान करना चाहिये । हे प्रिये! उगते हुए सूर्य के समान, चमकती हुई दीपशिखा के समान वह सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक जा रही है । गिरती हुई बिन्दुधाराओं से शुद्ध होकर लाक्षारस के समान वह समस्त भुवनविस्तार के जीवन को निगल लिया है । अपनी महामहिमा के आक्रमण से अहङ्कार को विनष्ट कर दिया है । हे महेशानि! ऐसी कामकला का ध्यान कर ध्याता इस पूरे संसार को अपने वश में कर लेता है । जो व्यक्ति, योनि में चञ्चल जलचन्द्र के सदृश स्त्री का निरन्तर ध्यान करता है उस साधक के सामने चाहे दैवी या आसुरी कोई भी स्त्री हो, आत्मसमर्पण कर उसके वश में हो जाती है ॥ ४०-४४ ॥

शक्तिकूटसाधनम्

अथ वक्ष्ये महेशानि शक्तिकूटस्य साधनम् ।
आधाराद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं विद्युदग्निसमप्रभम् ॥ ४५ ॥
स्रवत्सुधामयं देवि शक्तिकूटं विचिन्तयेत् ।
देहिनाममृतानन्दवर्षधाराररसोपमम् ॥ ४६ ॥
सर्पाणां दर्शनादेव (उडी?जडी)करणकारकः ।
स्थिरजङ्गमशङ्काख्यविषघातविनाशकः ॥ ४७ ॥
महारोगपीडितानां शरच्चन्द्रकरोपमः ।

शक्तिकूट की सिद्धि—हे महेशानि! अब मैं शक्तिकूट की सिद्धि बतलाऊँगा। हे देवि! मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक विद्युत् एवं अग्नि के समान सुधा का स्रवण करने वाले तथा शरीरधारियों के लिये अमृतानन्द की वर्षा वाले धारारस के समान शक्तिकूट का ध्यान करना चाहिये । ऐसा व्यक्ति सर्पों को देखकर उन्हें जड़ बना देता है । स्थावर, जङ्गम तथा शङ्का नामक विष के आघात को दूर कर देता है । महारोग से पीड़ित जनों के लिये शरत्चन्द्र की किरणों के समान शीतलता प्रदान करने वाला होता है ॥ ४५-४७- ॥

देव्युवाच—

कथं कामकला देव सूचिता न प्रकाशिता ॥ ४८ ॥
यस्याः स्मरणमात्रेण सायुज्यं लभते नरः ।

देवी ने कहा—हे देव! जिसके स्मरणमात्र से ही मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त करता है आपने उस कामकला की चर्चा तो अवश्य की पर उसे बतलाया क्यों नहीं? ॥ ४८- ॥

कामकलाभेदवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

तत्त्रैविध्यं शृणु प्राज्ञे सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ ४९ ॥
स्थूलं समं तथा नाम सूक्ष्मं मन्त्रतनुं तथा ।

कामकला के भेद—ईश्वर ने कहा—हे प्राज्ञे! समस्त तन्त्रों में गोपित अब उसके तीन प्रकारों को सुनो । उसका मन्त्र स्थूल सम और सूक्ष्म भेद से तीन प्रकार का है ॥ ४९- ॥

कामकलाया बाह्यध्यानम्

नभोमहाबिन्दुमुखी चन्द्रसूर्यस्तनद्वया ॥ ५० ॥
सुमेरुहार्धकलया शोभमाना मही यदा ।
पातालतलविन्यस्ता त्रिलोकीयं कलात्मिका ॥ ५१ ॥
ललितायास्त्रिभिर्बीजैः प्रकाशार्थो य ईर्यते ।
तस्यविम(र्ष?र्श)ईकारो बिन्दुना तत्त्रिधा गतम् ॥ ५२ ॥
तत्तुरीयस्वरूपार्णं बिन्दुत्रितयवदीरितम् ।
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ ॥ ५३ ॥
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्धकला भवेत्तु ।
तदात्मक(स्तु?त्व)देव्यास्तु साधकस्य च तद्भवेत् ॥ ५४ ॥
तदुद्भवं शृणु प्राज्ञे महोदयकरं परम् ।
ऊर्ध्वबिन्द्वात्मकं वक्त्रमधोबिन्दुद्वयात्मकम् ॥ ५५ ॥
कुचद्वयं तु तच्छेषैः शेषाङ्गानि विभावयेत् ।
इति ते कथिता कामकलाया बाह्यभावना ॥ ५६ ॥

कामकला का बाह्य ध्यान—महाशून्य आकाश उसका मुख है । चन्द्रमा और सूर्य उसके दो स्तन हैं । पृथिवी और सुमेरु हार्धकला है । पाताल तक फैली यह त्रिलोकी अर्थात् तीनों लोक उसकी कला है । ललिता के तीन बीजों (= ऐं क्लीं सौः?) के द्वारा जिस प्रकाश की चर्चा होती है उस प्रकाश का विमर्श ईकार है । बिन्दु से वह तीन प्रकार का होता है । वह वर्ण चतुर्थ रूप है। उसमें तीन बिन्दु हैं । ईकार के ऊपर स्थित बिन्दु जो सूर्य सदृश है वह मुख है । नीचे के दो बिन्दु सूर्य और चन्द्र हैं वे दो स्तन है । ह की अर्धकला योनि है । देवी तदात्मक अर्थात् कामकलात्मक है । साधक भी वैसा ही होता है । हे प्राज्ञे! परम महोदयकारक उसको सुनो । ऊर्ध्व बिन्दु वक्त्र है । नीचे के दो बिन्दु दोनों स्तन है । शेष बिन्दुओं से शेष अङ्गों की भावना करनी चाहिये । इस प्रकार तुमको कामकला का बाह्य ध्यान बतलाया गया ॥ ५०-५६ ॥

कामकलाया आन्तरध्यानम्

तामेव त्वां पुनर्वक्ष्ये भावनामान्तरात्मिकाम् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्फुरद्विद्युल्लताकृतिम् ॥ ५७ ॥
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवितद्विद्यास्वररूपिणीम् ।
षट्चक्रभेदिनीं देवीं बिन्दुत्रयात्मिकां पराम् ॥ ५८ ॥
तां च हार्धकलारूपां चिन्तयेत्पद्ममध्यगाम् ।
एवं कामकलारूपा जागर्ति सचराचरे ॥ ५९ ॥
सा च त्रयीमयी प्रोक्ता नास्ति किंचित्तया विना ।
साम्ना मुखं समाख्यातमृग्यजुर्भ्यां स्तनद्वयम् ॥ ६० ॥
अथर्वणा समाख्याता हार्धरूपा परा कला ।
तुरीयं परमेशानि साक्षाद्ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६१ ॥
एतत्कामकलारूपं ध्यानं गुह्यतमं परम् ।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥ ६२ ॥

कामकला का आन्तरध्यान—पुन: तुमको अन्तर्ध्यानरूपा उसे बतला रहा हूँ । हे देवि! मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त चमकती हुई विद्युत् के समान कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । वह कामकलाविद्या स्वरूपा है । षट्चक्र का भेदन करने वाली वह परादेवी तीन बिन्दुओं वाली है । कमल के मध्य में उसका हार्धकला रूप में ध्यान करना चाहिये । कामकला इस रूप में चराचर में सदा जाग्रत रहती है । वह त्रयीमयी अर्थात् तीनों वेदों के रूप वाली कही गयी है । हे परमेशानि! चतुर्थ रूप केवल ब्रह्म है । कामकला का यह ध्यान अत्यन्त गुह्य है । जो शिष्य न हो तथा भक्त भी न हो उसे इसका उपदेश कदापि नहीं करना चाहिये ॥ ५७-६२ ॥

अपात्रे कामकलारूपप्रकाशने हानिः

एतत्प्रकाशनं यच्च आयुःक्षयकरं स्मृतम् ।
साधकस्य विनाशस्तु तस्मान्नैतत् प्रकाशयेत् ॥ ६३ ॥
लोभान्मोहाच्च गर्वाच्च विद्वेषाद्वा प्रकाशयेत् ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति शस्त्रघातविषादिभिः ॥ ६४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे विद्याकूटत्रयसाधननिरूपणनामकस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३० ॥

◆

अपात्र को कामकला उपदेश से हानि—अपात्र को इसका उपदेश उपदेष्टा की आयु को क्षीण करता है साथ ही साधक का भी नाश हो जाता है । इसलिये अपात्र को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये । यदि कोई लोभ मोह गर्व अथवा विद्वेश वश इसका प्रकाशन करता है तो शस्त्रघात विष आदि के द्वारा वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ६३-६४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में विद्याकूटत्रयसाधन
नामक तीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३० ॥

* * *

एकत्रिंशः पटलः

होमतद्द्रव्यविधिनिरूपणम्

देव्युवाच—

होमवर्णनोपक्रमः

होमस्य कथयेशान विधानं पूर्वसूचितम् ।

होम के वर्णन का उपक्रम—देवी ने कहा—हे ईशान! पहले जिसकी सूचना हो चुकी है उस होम का विधान बतलाइये ।

होमद्रव्यादिवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

किंशुकैर्हवनं देव्याः कुसुम्भकुसुमैरपि ॥ १ ॥
नागकेसरपुष्पैर्वा मधूकै रक्तपद्मकैः ।
करवीरै(र्यवा?र्जपा)पुष्पैर्मधुरत्रयमिश्रितैः ॥ २ ॥
सर्वसिद्धिप्रदं कुण्डं चतुरस्त्रं वरानने ।
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा होमयेत् संस्कृतेऽनले ॥ ३ ॥
अथवा परमेशानि स्थण्डिलं रचयेद्बुधः ।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यान्न काम्यं स्थण्डिले चरेत् ॥ ४ ॥
हस्तमात्रं चतुरस्त्रं गोमयेनोपलेपितम् ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं तथा ॥ ५ ॥
तत्रापि ले(ख?प)नं कृत्वा तत्र होमः फलप्रदः ।
यवानां तण्डुलैरेवमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ॥ ६ ॥
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलैः ।
एतत्प्रमाणहस्तैस्तु कुण्डादिकं समाचरेत् ॥ ७ ॥
त्रिपुराप्रीतिदो होमः कुण्डे त्रिकोणसंज्ञके ।

होम के द्रव्य आदि—ईश्वर ने कहा—पलाश के फूल, कुसुम्भ के फूल, नाग केसर के पुष्प, महुआ, लाल कमल, कनेर, गुडहल के फूल, त्रिमधु (= शक्कर, घी, मधु) के द्वारा किया गया हवन सर्वसिद्धिप्रद होता है । हे वरानने! सुलक्षण चौकोर कुण्ड बनाकर संस्कारसम्पन्न अग्नि में हवन करना चाहिये अथवा हे परमेशानि! स्थण्डिल (= चबूतरा) बनाना चाहिये । इस स्थण्डिल पर नित्य एवं नैमित्तिक होम करना चाहिये किन्तु काम्य नहीं । एक हाथ लम्बा चौड़ा अङ्गूठे के पर्व जितना ऊँचा बालू का मण्डल बनाना चाहिये । उस पर लेप करना चाहिये । ऐसे स्थण्डिल पर होम करना फलप्रद होता है । बालुकामण्डल पर यव अथवा चावल का आठ अङ्गुल लेप होना चाहिये । चौबीस अङ्गुल वाले हाथ से अधिक परिमाण वाला नहीं वरन् उक्त परिमाण वाले हाथों से ही कुण्ड आदि बनाना चाहिये । त्रिकोण- संज्ञक कुण्ड में होम त्रिपुरसुन्दरी को प्रसन्न करता है ॥ १-७- ॥

कुण्डनिर्माणविधिः

पश्चिमात् पूर्वाग्रास्तिस्रो रेखाः प्रादेशमात्रकाः ॥ ८ ॥
विलिख्य च मुकुन्देन्दुपुरन्दरस्वरूपकाः ।
दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै विलिख्य तदनन्तरम् ॥ ९ ॥
रेखाश्च स्युर्वैवस्वतब्रह्मानन्तस्वरूपकाः ।
त्रिकोणं मध्यतो देवि कृत्वा बाह्ये ततः परम् ॥ १० ॥
षट्कोणं विधिना चैव कारयेदतिसुन्दरम् ।
अष्टपत्रं च तद्बाह्ये वृत्तेन कर्णिका शुभा ॥ ११ ॥

कुण्डनिर्माण की विधि—पश्चिम से पूर्व की ओर प्रादेश मात्र लम्बी तीन रेखायें खींचनी चाहिये । वे मुकुन्द (= विष्णु) चन्द्र और इन्द्र रूपा मानी जाती है । फिर दक्षिण से उत्तर तीन रेखायें खींची जाती हैं । वे सूर्य ब्रह्मा और अनन्तरूपी मानी जाती है । हे देवि! उनके मध्य में त्रिकोण बनाना चाहिये । उनके बाहर अतिसुन्दर षट्कोण बनाना चाहिये । उसके बाहर अष्टदल कमल वृत्त और सुन्दर कर्णिका बनानी चाहिये ॥ ८-११ ॥

कुशकण्डिकावर्णनम्

चतुरस्रं चतुर्द्वारं मण्डलं विरच्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य स्रुवादिकमासादयेत् । स्रुव आज्यं दधि दूर्वा समिधः आज्यस्थालीं प्रणीता प्रोक्षणीं च वामतोऽस्मै परिकल्प्याम्भसा प्रोक्षणीमापूर्य वारत्रयमुत्पूय, तानि प्रोक्षण्यभिमुख्यानि कृत्वा बालयाभिमन्त्र्य तयैव दूर्वाभिर्मूलादग्रं पुनरग्रान्मूलं त्रिः परिमृज्य दूर्वाभिः पूर्वाग्रमुत्तराग्रं परिस्तीर्य (?) मूलविद्यां समुच्चरन् 'स्थण्डिलाय नमः' इति सम्पूज्य, त्रिकोणमध्ये

कामेश्वरीकामेश्वरौ यष्ट्वा तयोर्मिथुनीभावं ध्यात्वा तावभ्यर्च्य तस्या गर्भे, 'वैश्वानर जातवेद इहाव लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति मूलोद्गतं संविदग्निं ललाटनेत्रद्वारा निर्गतं बाह्याग्नियुक्तं पातयेत् । 'ओं उत्तिष्ठ पुरुष हरिपिङ्गल लोहिताक्ष सर्वकर्माणि देहि मे दापय स्वाहा' इति वह्निमुत्थाप्य, 'ओं चित्पिङ्गलं हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इति कामेश्वरीगर्भे धृतं ध्यात्वा, मूलमुच्चरन् वौषट्' इति वह्निं विलोक्यास्त्रेण संरक्ष्य ज्वलदग्निमादाय स्थण्डिलं दक्षिणावर्तेन त्रिः परिभ्राम्य ज्वलदिन्धनमेकं 'हूंफट्' इत्यनेन क्रव्यादग्निं नैर्ऋत्यां त्यजेत् ।

कुण्डकण्डिका—साधक चौकोर चार द्वारों वाला मण्डल बनाकर उसके मध्य में पुष्पाञ्जलि फेंक कर स्रुवा आदि ले आये । स्रुवा घी दही दूर्वा समिधा अर्थात् होम की लकड़ी घृतपात्र प्रणीता प्रोक्षणी को क्रमशः बायें रखकर प्रोक्षणी को पानी से पूरित कर तीन बार उत्पवन करे अर्थात् पानी को ऊपर उठाये । उन प्रणीता आदि को प्रोक्षणी के सामने रखकर बाला बीज से अभिमन्त्रित कर उसी मन्त्र से दूर्वा के द्वारा मूल से अग्रभाग तथा अग्रभाग से मूल का तीन बार परिमार्जन कर दूर्वा को पूर्वाग्र और उत्तराग्र फैलाये । उसके बाद मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'स्थण्डिलाय नमः' कहकर स्थण्डिल की पूजा करे । त्रिकोण के बीच कामेश्वर-कामेश्वरी का पूजन कर उनके मिथुनीभाव का ध्यान कर उनकी पुनः पूजा करे । उसके बाद 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्मणि साधय स्वाहा' इस मन्त्र से मूलमन्त्र से उद्गत संविदग्नि को ललाटस्थ नेत्र के द्वारा निर्गत बाह्य अग्नि से संयुक्त कर उस (कामेश्वरी) के गर्भ में गिराये । 'ॐ उत्तिष्ठ पुरुष हरि पिङ्गल लोहिताक्ष सर्वकर्माणि देहि मे दापय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि को उठाकर 'ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इस मन्त्र से कामेश्वरी के गर्भ में रखी गयी अग्नि का ध्यान कर मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए 'वौषट्' कह कर अग्नि को देखने के बाद अस्त्र मन्त्र से उसकी रक्षा कर जलती हुई अग्नि को लेकर स्थण्डिल के चारों ओर दक्षिणावर्त्त क्रम से तीन बार घुमाये । इसके बाद एक जलते हुए ईधन को लेकर 'हूं फट्' कह कर क्रव्याद अग्नि[१] को नैर्ऋत्य कोण में फेंक दे ।

अग्निसंस्कारः

जानुभ्यामवनीं स्पृष्ट्वा वह्निं मध्ये संस्थाप्य 'क्लीं महात्रिपुरसुन्दरीवह्निमूर्त्तये नमः' इति देवीं सम्पूज्य नाभिमण्डलाद्दहन्नासापुटेन तदग्निना बाह्याग्निमेकीकृत्य

---

[१] इसका विनियोग और मन्त्र निम्नलिखित है—ॐ क्रव्यादमग्निमितिमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता अग्निसंस्कारे विनियोगः । मन्त्र—ॐ क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छ तुरिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ।

यजेत्। मूलं 'ऐंक्लींसौःआं सोऽहं वह्निचैतन्याय नमः' इति कामेश्वरीगर्भे वह्निं संचिन्त्य तद्देहे षडङ्गानि—सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् धूमव्यापिने कवचाय हुम्, सप्तजिह्वाय नेत्रेभ्यो वौषट्, धनुर्धरायास्त्राय फट्' इति यष्ट्वा तप्तजाम्बूनदप्रभं शक्तिस्वस्तिकधरं वरदाभयशोभितकरपङ्कजं दिव्यालङ्कारभूषितकरविग्रहसम्भोजसंस्थं शुक्लाम्बरधरं त्रिनयनं बद्धमौलि ध्यात्वा, चक्रे सप्तजिह्वाश्च ईशाने यूँ लोहितां, पूर्वे रूँ रक्तां, आग्नेये नूँ नीलां, नैर्ऋते वूँ कृष्णां, पश्चिमे शूँ शुभ्रां, दक्षे करालीं, उत्तरे बहुरूपां जप्त्वा 'कामेशीगर्भोद्भववह्नेः सर्वभावेभ्यो नमः'—इति मन्त्रैर्गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचूडोपनयनकर्म निर्वर्त्य, अमुकाग्नेरमुककर्म कल्पयामि इति विधाय परिषिच्य परिस्तीर्य परिधाय पुनर्ध्यात्वा अग्निमन्त्रेणाग्निं त्रिकोणे पूजयित्वा होमं कुर्यात् ।

अग्निसंस्कार—दोनों घुटनो से पृथिवी का स्पर्श कर अग्नि को घुटनों के बीच रखकर 'क्लीं महात्रिपुरसुन्दरीवह्निमूर्त्तये नमः' इससे देवी की पूजा करने के बाद नाभिमण्डल से लाकर नासापुट से आभ्यन्तर अग्नि को बाहर ले आकर बाह्य अग्नि में मिलाकर उनकी पूजा करनी चाहिये । 'ऐं क्लीं सौः आं सोऽहं वह्निचैतन्याय नमः' इस मन्त्र से कामेश्वरी के गर्भ में अग्नि का ध्यान कर उस अग्नि के देह में षडङ्गन्यास करना चाहिये । न्यासक्रम—

१. ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः । २. ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा।
३. ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् । ४. ॐ धूमव्यापिने कवचार हुम् ।
५. ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रेभ्यो वौषट् । ६. ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट् ।

इस प्रकार यजन कर अग्नि का ध्यान करना चाहिये । ध्यान—वे तप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाले, शक्ति स्वस्तिक धारण किये हुए, हाथ में वरद अभय मुद्रा धारण किये, हाथ एवं शरीर में दिव्य अलङ्कार से विभूषित, कमल पर आसीन, शुक्लवस्त्र धारण किये हुए, त्रिनेत्र, जटाजूट बाँधे हुए हैं । इसके पश्चात् चक्रपर सप्त जिह्वा का ध्यान करना चाहिये । वह इस प्रकार—१. ईशान में यूं लोहित, २. पूर्व में रुं रक्त, ३. अग्निकोण में नूं नील, ४. नैर्ऋत्य में बूं कृष्ण, ५. पश्चिम में शूं शुभ्र, ६. दक्षिण में करांली, और ७. उत्तर में बहुरूपा का ध्यान कर 'कामेशी गर्भोद्भववह्नेः सर्वभावेभ्यो नमः'—इस मन्त्र से गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण अन्नप्राशन चूडाकरण उपनयन संस्कारो को करने के बाद 'अमुकाग्नेः अमुककर्म कल्पयामि' ऐसा कहकर परिषेचन करना चाहिये । परिस्तरण परिधान देकर पुनः ध्यान करने के बाद त्रिकोण में अग्निमन्त्र[1] से अग्नि का पूजन करने के बाद हवन करना चाहिये ।

---

[1] अग्निमन्त्र—ॐ पावकाग्नये नमः ।

होमः

सप्तजिह्वासु सप्ताहुतीर्हुत्वा वैश्वानर-उत्तिष्ठ-चित्पिङ्गलैस्त्रिधाहुतिं विधाय षडङ्गानि षट्कोणेषु अष्टदलेषु 'अग्नये जातवेदसे सप्तजिह्वाय हव्यवाहनाय अश्वोदरजाय वैश्वानराय कौमारतेजसे विश्वमुखाय देवमुखाय नमः' इति, लोकपालांश्च भूगृहे, वह्नेर्दक्षिणतो ब्रह्माणमाराध्य आज्यस्थालीं पुरतो निधाय बहुरूपायां जिह्वायां श्रीचक्रराजं तदन्तःस्थां चित्कलामशेषरश्मिमण्डितामालोच्य यष्ट्वा नित्यं हुत्वा कुण्डं मण्डपधूपैरापूर्य दीपैरुज्ज्वाल्य समिधं हुत्वा जुहुयात्; इष्टमेव च बलीन्प्रदाय 'ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ओं स्वरादित्याय दिवे च महते च स्वाहा, ओं भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च स्वाहा'—इति चतुर्भिर्मन्त्रैर्व्याहृतिहोमं कृवा ब्रह्मार्पणम् अतः परं समिधं हुत्वा देवीमभ्यर्च्य विसृजेदिति ।

होम—अग्नि की सात जिह्वाओं (= लोहिता रक्ता नीला आदि) में सात आहुतियाँ देकर 'वैश्वानर उत्तिष्ठ चित्पिङ्गल........' से तीन बार आहुति देने के बाद षडङ्गन्यास करना चाहिये । छह कोणों तथा आठ दलों में 'अग्नये जातवेदसे सप्तजिह्वाय हव्यवाहनाय अश्वोदरजाय वैश्वानराय कौमारतेजसे विश्वमुखाय देवमुखाय नमः कहकर पूजन करना चाहिये । भूपुर में लोकपालों की तथा अग्नि के दक्षिण भाग में ब्रह्मा की पूजाकर आज्यस्थाली को सामने रखकर बहुरूपा जिह्वा में श्रीचक्रराज की पूजा करनी चाहिये । चक्रराज के अन्दर स्थित समस्त रश्मियों से अलंकृत चित्कला की पूजा कर नित्य होम करना चाहिये । कुण्ड को मण्डपधूप से आपूरित कर दीपों को जलाकर समिधाओं का हवन करे । उसके बाद इष्टबलि देनी चाहिये । इसके पश्चात् निम्नलिखित चार मन्त्रों से हवन करना चाहिये—१. ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा । २. ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा । ३. ओं स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा । ४. ओं भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च स्वाहा । इसके पश्चात् ब्रह्मा को पूर्णपात्र का दान करना चाहिये । अतः परं समिधा का हवन कर देवी की पूजा करने के बाद उनका विसर्जन करना चाहिये ।

काम्यहोमः

नित्यहोमो मया प्रोक्तः काम्यहोममतः शृणु ।
मल्लिका-मालतीजातीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः ॥ १२ ॥
घृतपूर्णै (कु?फ)लैर्वापि वागीशत्वं प्रजायते ।
(यवा?जपा) पुष्पैराज्ययुतैः करवीरैस्तथाविधैः ॥ १३ ॥
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः ।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥

कमलै(र्व?र)रुणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिदायकः ।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं नीलैर्दुष्टान्वशं नयेत् ॥ १५ ॥
(स्त्रो?श्वे)तोत्पलैः श्रियं राज्यं लभते हवनात्प्रिये ।
कल्हारहवनैर्लक्ष्मीं सर्वसौभाग्यमेव च ॥ १६ ॥

काम्य होम—ईश्वर ने कहा—मैंने नित्य होम की चर्चा की । अब इसके बाद काम्य होम को सुनो । जूही मालती चम्पा के फूलों को मधु में मिलाकर तथा फलों को घी में लपेट कर हवन करने से वाणी का स्वामित्व अर्थात् सत्यवक्तृता उत्तम वाग्मित्व मिलता है । घी से उपलिप्त अड़हुल या कनेर के पुष्पों का हवन करने से मन्त्री तीनों लोक में रहने वालों को सम्मोहित कर लेता है । चम्पा और पाटल से हवन कर होता अत्यन्त उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है । रक्त कमल से किया गया होम सम्यक् सम्पत्ति देता है । रक्त कमल के होम से साधक समस्त संसार को वश में कर लेता है । नीलकमल के होम से साधक दुष्टों को वश में लेता है । हे प्रिये! श्वेत कमल से हवन करने पर होता श्री और राज्य प्राप्त कर लेता है । कह्लार (= रक्तकमल) के हवन से लक्ष्मी और सर्वसौभाग्य मिलता है ॥ १२-१६ ॥

बन्धूककुसुमैर्होमे सर्वसत्त्वान् वशं नयेत् ।
क्षीरं दधि मधु त्वाज्यं पृथग्हुत्वा वरानने ॥ १७ ॥
आयुर्बलमथारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ।
रुधिराक्तेन च्छागस्य मांसेन निशि होमतः ॥ १८ ॥
मधुरत्रययोगेन गुरुणोक्तविधानतः ।
परराष्ट्रं वशं नीत्वा कामभोगी भवेन्नरः ॥ १९ ॥
द्राक्षाभिर्लक्षहोमेन सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
कदलीफलहोमेन नारिकेलफलैस्तथा ॥ २० ॥
राजानो वशमायान्ति समृद्धिरतुला तथा ।
जम्बूफलैः स्त्रियः सर्वा वश्या भवन्ति निश्चितम्॥ २१ ॥

बन्धूक पुष्पों से होम करने पर समस्त प्राणी वश में होते हैं । हे वरानने! दूध दही घी मधु का पृथक्-पृथक् हवन करने से मनुष्यों को आयु बल आरोग्य और समृद्धि मिलती है । रात्रि के समय गुरु के द्वारा बताये गये नियम के अनुसार रुधिरलिप्त बकरे के मांस और त्रिमधु को मिलाकर हवन करने से शत्रु के देश को अपने अधीन कर मनुष्य कामभोगी हो जाता है । द्राक्षा अर्थात् अङ्गूर से एक लाख आहुति देने पर होता को अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । केला तथा नारियल के फल से होम करने पर राजा लोग वश में होते हैं तथा अतुल

समृद्धि प्राप्त होती है । जामुन के फल से हवन करने पर सारी स्त्रियाँ निश्चित रूप से वश में होती है ॥ १७-२१ ॥

श्रीफलैरतुला लक्ष्मीः पत्रैश्चापि तथा भवेत् ।
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसैर्वशगा नृपाः ॥ २२ ॥
तिलाज्यहोमतो देवि सर्वकार्याणि साधयेत् ।
घृतपायसहोमेन सिताज्यमधुना सह ॥ २३ ॥
त्रैलोक्यं वशमायाति धनधान्यमवाप्नुयात् ।
सोपस्कारैश्च वटकैरुपसर्गान्विनाशयेत् ॥ २४ ॥
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वशे जायते नृणाम् ।
कुङ्कुमैर्होमतो देवि सर्वदुःखानि नाशयेत् ॥ २५ ॥
कस्तूरीहोमतो देवा वशगा नात्र संशयः ।
चन्दनागुरुहोमेन सर्वांल्लोकान् वशं नयेत् ॥ २६ ॥

बेल के फल तथा पत्तों से हवन करने पर अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है । ईख के टुकड़ों से सुख की प्राप्ति तथा उसके रस से राजा वश में होते है । हे देवि! तिल और घी के होम से साधक समस्त कार्य सिद्ध कर लेता है । घी एवं खीर में मिश्री एवं मधु मिलाकर हवन करने से तीनों लोक वश में होते हैं तथा होता धनधान्य प्राप्त करता है । उपस्कार (अर्थात् सहायक द्रव्य जैसे दही चीनी आदि) के साथ बड़ा का हवन करने से साधक उपसर्ग (= रोग/सङ्कट/अपशकुन) को नष्ट करता है । कपूर के होम से मनुष्य होता की वाणी के वश में होते हैं । हे देवि! कुङ्कुम के होम से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं । कस्तूरी के होम से देवतायें वश में होती हैं । इसमें सन्देह नहीं । चन्दन और अगर के होम से मनुष्य सारे लोकों को वश में कर लेता है ॥ २२-२६ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धये ।
पुष्पं समग्रं जुहुयाच्छतसंख्यांस्तिलांस्तथा ॥ २७ ॥
लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं कर्षप्रमाणकम् ।
चुल्लुकार्धं मधु क्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ॥ २८ ॥
समग्रैश्च सखण्डैश्च फलानां च यथेच्छया ।
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि ॥ २९ ॥
नारिकेलस्य खण्डं तु स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम् ।
प(र?र्व) स्थाने चेक्षुदण्डं मनःसन्तोषकारकम् ॥ ३० ॥

हे देवि! अब हवन की सिद्धि के लिये परिमाण बतला रहा हूँ । पुष्प को पूरा का पूरा हवन करना चाहिये टुकड़ा-टुकड़ा नहीं । तिलों को कम से कम

एक-सौ की संख्या में एक आहुति देनी चाहिये । लावा एक मुट्ठी, घी एक कर्ष के बराबर हवन करना चाहिये । मधु आधा चुल्लू दूध आधा चुल्लू और अन्न एक ग्रास होना चाहिये । फल पूरे के पूरे अथवा टुकड़े-टुकड़े जैसी इच्छा हो यदि छोटा हो तो पूरे का पूरा होम करना चाहिये । नारियल के फल का मनोवाञ्छित किन्तु स्थूल टुकड़ा होना चाहिये । ईख को पोर-पोर से इच्छानुसार काटना चाहिये ॥ २७-३० ॥

द्राक्षाफलं समग्रं स्याद् गुञ्जामानं ततो भवेत् ।
कर्पूरकौ(षि?शि)कादीनां मनःसन्तोषकारकम् ॥ ३१ ॥
एतदाहुतिमानं च कथितं सर्वसिद्धिकृत् ।
किंशुकैः पापसङ्घातनाशकैरथवा प्रिये ॥ ३२ ॥
नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैः संगृहीतैर्वरानने ।
यथाशक्त्या तु मिलितैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ।
सर्वविघ्नसमूहं तन्नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे होमतद्द्रव्यविधिनिरूपणं
नामैकत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३१ ॥

* * *

अङ्गूर पूरे का पूरा, कपूर और कस्तूरी तथा केसर का गुञ्जा के परिमाण में हवन करना चाहिये । यह मैंने सर्वसिद्धिप्रद आहुति-मान बतलाया । अथवा हे प्रिये! पाप-समूह के नाशक पलाशपुष्प अथवा अलग-अलग अनेक द्रव्यों को विद्वान् यथाशक्ति मिलाकर हवन करे । इससे वह सारे विघ्नों को नष्ट कर देता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१-३३ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में होम तदद्रव्यविधिनिरूपण
नामक इकतीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३१ ॥

* * *

द्वात्रिंशः पटलः

देव्युवाच—

वह्नीन्द्वर्कमयी मुद्रा प्रतिष्ठा च कथं भवेत् ।

देवी ने कहा—हे देव! अग्नि चन्द्र और सूर्यमयी मुद्रा (= अङ्गूठी) क्या है और उसकी प्रतिष्ठा कैसे होती है?

रक्षामुद्रावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

सोमसूर्याग्निरूपाः स्युर्वर्णा लो(क?ह)त्रयं तथा ॥ १ ॥
स्वराः षोडश सौम्यास्ते सौराः स्युः कादयोऽपरे ।
आग्नेयास्ते समुद्दिष्टा यादयो दश चापरे ॥ २ ॥
रौप्यमिन्दुस्तथा हेम सूर्यस्ताम्रं हुताशनः ।
लोहभागाः समुद्दिष्टा स्वराद्यक्षरसंख्यया ॥ ३ ॥
तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रामसङ्कलितसङ्गताम् ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षालयित्वा शुभेऽहनि ॥ ४ ॥
भानुवारे शुभे लग्ने पूर्वोक्तमातृकाम्बुजे ।
मध्यादि स्थापयेत्तेषु पत्रेषु कलशानपि ॥ ५ ॥

ईश्वर ने कहा—(आदि सान्त) वर्ण और तीन लोह (= सोना चाँदी ताँबा) ये सोम सूर्य और अग्निरूप होते हैं । (अकारादि) सोलह स्वर चन्द्रसम्बन्धी होते हैं। क आदि अर्थात् क से लेकर म तक सूर्य सम्बन्धी वर्ण हैं । य आदि दश (= य र ल व श ष स ह ळ और क्ष) ये आग्नेय वर्ण हैं । चाँदी चन्द्रमा सोना सूर्य तथा ताँबा अग्नि है । स्वर आदि की अक्षर संख्या से लोह कहे गये अर्थात् सोलह चन्द्र पचीस सूर्य और दश अग्नि वर्ण त्रिलोह के तीन भाग हैं । इन लोहों से अलग-अलग मुद्रा बनानी चाहिये । स्पष्टार्थ यह है कि चाँदी के पत्र पर स्वर, स्वर्ण पत्र पर कादिमान्त व्यञ्जन और ताम्रपत्र पर यादि क्षान्त वर्णों को

उत्कीर्ण कर मुद्रा बनानी चाहिये । शुभ दिन में उन मुद्राओं को पञ्चामृत एवं पञ्चगव्य से धोकर रविवार को शुभ लग्न में पूर्वोक्त मातृकाकमल के ऊपर मध्य आदि में उन्हें स्थापित करना चाहिये । उन पत्रों पर कलशों की भी स्थापना करनी चाहिये ॥ १-५ ॥

तन्तुभिर्वेष्टिताञ् शुद्धान् बहिश्चन्दनचर्चितान् ।
सुधूपवासितान्देवि दूर्वाक्षतसमन्वितान् ॥ ६ ॥
क्वाथेन पूरयेद्देवि यथावदक्षरौषधैः ।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघुकस्तूरिकायुतैः ॥ ७ ॥
आपूर्य गन्धतोयैस्तान्वेष्टयेदंशुकैः शुभैः ।
मुक्तामाणिक्यवैदूर्यगोमेदवज्रविद्रुमान् ॥ ८ ॥
पुष्परागं मरकतं नीलं चेति यथाक्रमम् ।
विन्यसेत्तेषु कुम्भेषु रत्नाङ्कितफलानि च ॥ ९ ॥
स्थापयेत् कुम्भवक्त्रेषुकोमलांश्चूतपल्लवान् ।
मध्यकुम्भे च मुद्रां तां विन्यस्य बहुमङ्गलैः ॥ १० ॥
बीजत्रयं त्रिधा कृत्वा मातृकां च त्रिधा तथा ।
विभज्य पूजयेद्देवि सोमसूर्यहुताशनान् ॥ ११ ॥

उन शुद्ध कलशों को रक्षासूत्रों से वेष्टित कर बाहर से चन्दन इत्यादि से अलंकृत करना चाहिये । हे देवि! उनको धूप से धूपित कर दूर्वा अक्षत से युक्त कर अक्षर औषधि अर्थात् इक्यावन औषधियों के क्वाथ से उस कलश को पूरित कर देना चाहिये । गोरोचन, कपूर, केसर, लघु कस्तूरी से युक्त सुगन्धित जल उसमें डालकर स्वच्छ शुभ वस्त्रों से उन्हें वेष्टित कर देना चाहिये । उन तीनों कलशों में क्रमशः तीन-तीन रत्न डालने चाहिये । चाँदी पत्र के ऊपर रखे कमल में मुक्ता, माणिक्य, वैदूर्य और स्वर्ण वाले पात्र में गोमेद, हीरा एवं मूँगा और ताम्रस्थ कलश में पुष्पराग मरकत और नीलम डालने चाहिये । रत्नों से अङ्कित फल भी डालना चाहिये । कलश के मुखों पर आम के कोमल पल्लव रखने चाहिये । घट के मध्य में मुद्रा और अनेक मङ्गलकारी द्रव्य छोड़ने चाहिये । साधक को तीन बीज (= ऐं क्लीं सौः) को तीन प्रकार कर तथा मातृका को तीन भागों में बाँटकर हे देवि! सोम, सूर्य और अग्नि की पूजा सम्पादित करनी चाहिये ॥ ६-११ ॥

परामातृकापूजनादिवर्णनम्

तत्रावाह्य यजेद्देवीं सम्मोहनीं परां ततः ।
प्राणानायम्य विधिवत् पूर्ववन्मातृकां न्यसेत् ॥ १२ ॥

(वि?त्रि)नेत्रां तरुणेन्द्वाभां बालार्ककिरणारुणाम् ।
अक्षमालाङ्कुशवरान् पाशं पद्मद्वयं तथा ॥ १३ ॥
आबिभ्रतीं कराम्भोजैः पुण्ड्रेक्षुचापपुस्तकम् ।
मायाश्रीकामबीजाद्यां नित्यां वर्णमयीं भजेत् ॥ १४ ॥

परामातृका की पूजा आदि—उन कलशों में तथा पत्रों पर सम्मोहनी परादेवी का आवाहन कर उसकी पूजा करनी चाहिये । इस क्रम में प्राणायाम कर पूर्व की भाँति मातृकान्यास करना चाहिये । सम्मोहनी परादेवी का ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—वह तीन नेत्रों वाली, पूर्णचन्द्र की आभावाली, बाल सूर्य की किरणों के समान अरुण है । हाथों में अक्षमाला, अङ्कुश, वरद मुद्रा, पाश, दो कमल, श्वेत कमल, पुण्ड्र (= एक प्रकार की लाल रंग की ईख) ईख का धनुष और पुस्तक धारण की हुई है । माया = ह्रीं, श्री = श्रीं, और काम = क्लीं बीजों को पहले रखकर शेष इक्यावन वर्णों के स्वरूप वाली उस परादेवी का ध्यान करना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

नानाविधैस्तु कुसुमैर्धूपर्दीपैर्मनोहरैः ।
उच्चावचैरुपहारैः पूजयित्वा यथाविधि ॥ १५ ॥
शर्कराघृतसंयुक्तं पायसं च निवेदयेत् ।
पूजयेद्दिक्षु कुम्भेषु व्यापिन्यादीन्यथाक्रमम् ॥ १६ ॥
व्यापिनी पालिनी पश्चात् प्लाविनी क्लेदिनी तथा ।
धरिणी मालिनी चैव हर्षिणी शान्तिनी तथा ॥ १७ ॥
व्यापिन्यश्चाष्टसंख्या वैः एताः पर्वतनन्दिनि ।
साग्रं सहस्रं सञ्जप्य स्पृष्ट्वा तां मुद्रिकां ततः ॥ १८ ॥

अनेक प्रकार के पुष्पों, मनोहारी धूप दीपों तथा बड़े छोटे उपहारों से देवी की विधिवत् पूजा कर शक्कर-घृत मिश्रित खीर का नैवेद्य देना चाहिये । अष्ट दिशाओं में रखे गये कलशों में व्यापिनी आदि की क्रम से पूजा करनी चाहिये । व्यापिनी आदि ये हैं—१. व्यापिनी, २. पालिनी, ३. प्लाविनी, ४. क्लेदिनी, ५. धारिणी, ६. मालिनी, ७. हर्षिणी और ८. शान्तिनी । हे पर्वतनन्दिनि! ये व्यापिनी आदि आठ की संख्या वाली हैं । एक हजार जप कर उस मुद्रिका का स्पर्श करना चाहिये ॥ १५-१८ ॥

होमयेत्संस्कृते वह्नौ सहस्रं हविषा तथा ।
तस्यां सम्पातयेद्देवि विधिनाहुतिशेषकम् ॥ १९ ॥
सम्मोहनीं समुद्दिश्य गृहीत्वाज्यं स्रुवेण तु ।
बीजत्रययुतां देवि मातृकां बिन्दुसंयुताम् ॥ २० ॥

वह्निभार्यान्वितां पश्चात् कृत्वा वै होमयेत्ततः ।
मण्डले मातृकादेव्याः शिष्यं निवेश्य सादरम् ॥ २१ ॥
सुरास्त्वामिति मन्त्रैस्तु नवभिःकलशैः शुभैः ।
अभिषिच्य विनीताय दद्यात्तां मुद्रिकां गुरुः ॥ २२ ॥

इसके पश्चात् संस्कृत अग्नि में हवि से एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिये । हे देवि! उस अग्नि में विधिवत् शेष आहुति डालनी चाहिये । सम्मोहनी के लिये स्रुवा में घी लेकर तीन बीज (= ऐं ह्रीं श्रीं) से युक्त मातृकाओं को बिन्दुयुक्त कर वह्निभार्या (= स्वाहा) से युक्तकर होम करना चाहिये । तत्पश्चात् मातृका देवी के मण्डल में शिष्य को आदर के साथ प्रविष्ट कराकर नव कलशों से 'सुरास्त्वामभिसिञ्चन्तु............'[१] मन्त्रों से अभिषेक करने के बाद गुरु विनीत शिष्य को वह मुद्रिका दे ॥ १९-२२ ॥

रक्षामुद्राधारणफलम्

इयं रक्षाकरी मुद्रा विषरोगविनाशिनी ।
व्यालचौरमृगादिभ्यो रक्षां कुर्याद्विशेषतः ॥ २३ ॥
सर्ववश्यकरी शुद्धा शुद्धिदाशुद्धिहारिणी ।
तर्जन्यां धारयेदेनां विधिना मनुजेश्वरः ॥ २४ ॥
युद्धे विजयमाप्नोति श्रिया परमया युतः ।
विभजेन्मातृकां देवि नववर्गास्तथोदितान् ॥ २५ ॥
नववर्गसमुत्पन्ना नवरत्नेश्वरा ग्रहाः ।
अर्केन्दुवक्रज्ञगुरुभृगुमन्दाहिकेतवः ॥ २६ ॥
नवरत्नैर्महेशानि मुद्रां कुर्याद्यथेच्छया ।
तद्रत्नेषु ग्रहान्सर्वान् पूजयित्वा विधानतः ॥ २७ ॥

रक्षामुद्राधारण का फल—यह रक्षाकरी मुद्रा विष एवं रोग का नाश करती है । विशेष रूप से यह साँप, चोर एवं हिंस्र जङ्गली जानवरों से रक्षा करती है । इसके अतिरिक्त यह सबको वश में करने वाली, शुद्धि देने वाली तथा अशुद्धि को दूर करने वाली कही गई है । राजा इसे तर्जनी में विधिपूर्वक धारण करे । ऐसा करने से वह परम श्री से युक्त होकर युद्ध में विजय प्राप्त करता है । हे देवि! मातृका का पूर्वोक्त नव वर्ग (= अ क च ट त प य श तथा स वर्ग) में विभाजन करे । नव रत्नों के स्वामी नवग्रह नववर्ग से उत्पन्न हैं । इनके नाम हैं—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु । हे महेशानि!

---

[१] सुरास्त्वामभि......................सर्वकामार्थसिद्धये । गायत्रीमहा. पृ. २८०-२८१ ।

अपनी इच्छानुसार मुद्रा को नवरत्नों से जटित करें। तत्तत् रत्नों में ग्रहों की विधिपूर्वक पूजा करे ॥ २३-२७ ॥

आवाह्य पूजयेद्देवीं सम्मोहनीं परां तथा।
जपहोमादिकं सर्वं कुर्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ॥ २८ ॥
यो मुद्रां धारयेदेनां तस्य स्युर्वशगा ग्रहाः।
वर्धते तस्य सौभाग्यं लक्ष्मीरव्याहता भवेत् ॥ २९ ॥
द्रोहिणस्तस्य नश्यन्ति नश्यन्ति सकलापदः।
रक्षोभूतपिशाचाद्या ने(क्ष्य?क्ष)न्ते तं भयातुराः॥ ३० ॥
उपर्युपरि वर्धन्ते धनरत्नानि सम्पदः।
विना प्रतिष्ठया मुद्रां धारयित्वा पतत्यधः।
नाप्नोति च फलं तस्माद्धारयेद्विधिना प्रिये ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे मुद्राधारणविधिनिरूपणनामको द्वात्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३२ ॥

◆

इसके अनन्तर सम्मोहनी परादेवी का आवाहन कर पूजन करे। पूर्वोक्त रीति से जप होम आदि समस्त कार्य करने चाहिये। जो व्यक्ति इस मुद्रा का धारण करता है, सारे ग्रह उसके वशवर्त्ती होते हैं। उसका सौभाग्य बढ़ता है और लक्ष्मी का अबाध आगमन होता है। उसके शत्रु तथा समस्त विपदायें नष्ट हो जाती हैं। राक्षस भूत पिशाच भयाक्रान्त होकर उसे नहीं देखते। धन रत्न और सम्पत्तियाँ दिनोदिन बढ़ती हैं। विना प्रतिष्ठा के मुद्रा का धारण करने वाला अध:पतित हो जाता है एवं मुद्रा धारण का फल प्राप्त नहीं करता। इसलिय हे प्रिये! इसका धारण विधिपूर्वक करना चाहिये ॥ २८-३१ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में मुद्राधारणविधिनिरूपण नामक बत्तीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३२ ॥

* * *

त्रयस्त्रिंशः पटलः

चक्रराजप्राणप्रतिष्ठानिरूपणम्

चक्रराजप्रतिष्ठावर्णनोपक्रमः

देव्युवाच—

चक्रराजस्त्वया प्रोक्तः प्रतिष्ठा न प्रकाशिता ।

चक्रराज की प्रतिष्ठा—देवी ने कहा—हे देव! आपने चक्रराज का वर्णन किया किन्तु उसकी प्रतिष्ठा को प्रकाशित नहीं किया ।

ईश्वर उवाच—

चक्रे मूर्तौ तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते ॥ १ ॥
प्रतिष्ठितस्तथा शिष्यो दीक्षया खलु पार्वति ।
अर्चां रत्नमयीं कृत्वा हैमीं वा राजतीं प्रिये ॥ २ ॥
प्रतिष्ठां विधिवत् कुर्यात् संस्थाप्य च गृहे शुभे ।
मासि मासि चरेद्यात्रां महाविभवविस्तरात् ॥ ३ ॥
चतुःषष्ट्युपचारैस्तु पूजां कुर्याद्दिने दिने ।
दीक्षोक्तविधिना पूर्वमधिवासादिकं चरेत् ॥ ४ ॥
वासोभूषणगन्धाद्यैः कार्यतत्त्वार्थविद्गुरुः ।
उक्तेन विधिना पूर्वं कृत्यं निर्वर्त्य देशिकः ॥ ५ ॥
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षालयेच्चक्रराजकम् ।
तथाविधे गृहे वेद्यां पूजयित्वा यथाविधि ॥ ६ ॥
नानाकुसुमसौरभ्यवासितेऽतिमनोहरे , ।
सुषुम्नाव(र्तिनि?र्त्मना) चक्रं पर्यङ्केऽथ निवेशयेत् ॥ ७ ॥

ईश्वर ने कहा—चक्र में, मूर्त्ति में तथा शिष्य में इस प्रकार प्रतिष्ठा तीन प्रकार की कही जाती है । हे पार्वति! शिष्य की प्रतिष्ठा दीक्षा से होती है । हे

प्रिये! रत्न सोना अथवा चाँदी की अर्चा अर्थात् मूर्त्ति बनाकर शुभ गृह में स्थापित कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। एक-एक महीने पर धन सम्पत्ति के अनुसार अत्यन्त विस्तार के साथ यात्रा अर्थात् पूजा करनी चाहिये। प्रतिदिन चौंसठ उपचारों से पूजा की जानी चाहिये। कार्य के यथार्थ को जानने वाला गुरु वस्त्र आभूषण गन्ध आदि से दीक्षा प्रकरण में उक्त विधि के अनुसार अधिवास आदि करे। उक्त विधि से पूर्वकृत्य का सम्पादन कर पञ्चामृत एवं पञ्चगव्य से चक्रराज का प्रक्षालन करे। पञ्चगव्य आदि से पवित्रित घर में वेदी के ऊपर विधिवत् पूजा कर अनेक प्रकार के पुष्पों से वासित मनोहर पर्यङ्क पर सुषुम्ना के रास्ते चक्र को रख दे ॥ १-७ ॥

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरैरथ चन्दनैः।
विलिप्य विविधैर्गन्धैः कुङ्कुमैरपि योजयेत् ॥ ८ ॥
दिव्येन वाससाच्छाद्य कर्पूरैरधिवासयेत्।
धूपैः सुधूपितं कृत्वा दीपैरुज्ज्वाल्य पार्वति ॥ ९ ॥
कर्पूरवासितैस्तोयैः पूरितान् कलशाञ् शिवे।
एकाशीतिपदे तत्र स्थापयेद्वस्त्रवेष्टितान् ॥ १० ॥
हेमगर्भान्समाञ्छुद्धान् पुष्पमालाद्यलंकृतान्।
एकाशीतिपदोपेतं चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥ ११ ॥
ब्रह्मचारी गुरुस्तत्र सशिष्यश्चापि संविशेत्।
प्रातरेव तु तत्सर्वं विनिर्वर्त्य विधानतः ॥ १२ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेन्मण्डपे गुरुः।

कुङ्कुम अगुरु कस्तूरी कपूर चन्दन से उपलिप्त कर अनेक प्रकार के गन्ध तथा कुङ्कुम उस पर लगाना चाहिये। दिव्य वस्त्र से चक्रराज को ढँककर कपूर से अधिवासित करना चाहिये। हे पार्वति! धूप से धूपित कर दीपक जलाकर कपूर वासित जल से कलशों को भर देना चाहिये। उन कलशों को वस्त्र से वेष्टित इक्यासी पदों अर्थात् कोष्ठक वाले मण्डल पर रख देना चाहिये। उन कलशों के अन्दर स्वर्णखण्ड डालना चाहिये। वे कलश समान आकार वाले, शुद्ध तथा पुष्प माला आदि से अलंकृत होने चाहिए। इक्यासी कोष्ठकों वाला मण्डल चौकोर होना चाहिये। ब्रह्मचारी गुरु शिष्य के साथ उस मण्डल पर बैठे। वहाँ पर विधिपूर्वक समस्त प्रातःकृत्य सम्पन्न कर गुरु पूर्वोक्त विधान से मण्डप में प्रवेश करे ॥ ८-१२- ॥

पूर्ववदपरं कृत्वा आसनमुपविश्य च ॥ १३ ॥
तथासनं च निर्वर्त्य चक्रमुत्थापयेत् ततः।

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षालयित्वा विधानतः ॥ १४ ॥
निधाय भद्रपीठे च तत्र देवीं विभावयेत् ।
क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं नारिकेलाम्भसा ततः ॥ १५ ॥
इक्षुरसैस्तथा तोयैरभिषिच्य समन्त्रकम् ।
तैरेव कलशैः सम्यगभिषिञ्चेद्यथाविधि ॥ १६ ॥
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन भृङ्गारेणाभिषिच्य वै ।
चक्रं कराभ्यामुद्धृत्य स्थापयेद्धेमपीठके ॥ १७ ॥
ततो देवीं हृदि ध्यात्वा यथोक्तध्यानयोगतः ।
आवाह्य चक्रमध्ये च तथैवैकाग्रचित्तवान् ॥ १८ ॥
निर्वर्त्य विधिना देवि चक्रं स्पृष्ट्वा करेण च।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीरोचनाचन्दनेन्दुभिः ॥ १९ ॥
विलिप्याथ पुनश्चक्रं सुवर्णस्य शलाकया ।
रेखोन्मीलनमापाद्य यजेदाधारपूर्वकम् ॥ २० ॥

गुरु पूर्व की भाँति एक दूसरा कृत्य कर आसन पर बैठकर चक्र के लिये आसन बनाये । इसके पश्चात् चक्र को उठाकर पञ्चामृत एवं पञ्चगव्य से धोकर विधिपूर्वक उसे भद्रपीठ पर रखे एवं उसमें देवी की भावना करे । पहले मधु घी और दूध से उसके पश्चात् नारियल के जल से उसके पश्चात् ईख के रस तथा जल से उसका मन्त्रोच्चार के साथ अभिषेक करे । उपर्युक्त द्रव्यों से ही कलश का भी विधिवत् अभिषेक करना चाहिये । सकलतीर्थों के जल से पूरित पात्र से अभिषेक करने के बाद चक्र को दोनों हाथों से उठाकर स्वर्णपीठ पर रखना चाहिए । इसके अनन्तर देवी का हृदय में ध्यान कर यथोक्त ध्यान से चक्र के मध्य देवी का आवाहन करना चाहिए । हे देवि! साधक एकाग्रचित्त होकर समस्त कार्य विधिपूर्वक पूरा कर चक्र का हाथ से स्पर्श करे । पुनः कुङ्कुम अगुरु कस्तूरी गोरोचन चन्दन कपूर से चक्र को उपलिप्त कर सोने की शलाका से रेखा खींचकर आधार के साथ उसका पूजन करे ॥ १३-२० ॥

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोद्धारः

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र निवेशयेत् ।
क्षीरोदधिः सनादेन बिन्दुना परिमण्डितः ॥ २१ ॥
नकुलीशोऽग्निमारुढो मायानादेन्दुलाञ्छितः ।
कामदेवोऽग्निमारूढः सद्योजातेन भूषितः ॥ २२ ॥
नादबिन्दुकलायुक्तः सर्वप्राणप्रदायकः ।
बीजत्रयमिदं देवि शिवबीजं सचन्द्रकम् ॥ २३ ॥

तदन्ते परमेशानि (स्व?स)र्गवान् भृगुरव्ययः ।
ततो भू(यात्तु?यस्तु)षष्ठ्यन्ता महात्रिपुरसुन्दरी ॥ २४ ॥
क्रमात्प्राणा इह प्राणास्तथा जीव इह स्थितः ।
अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्याश्च पार्वति ॥ २५ ॥
वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणास्तथैव च ।
पश्चादिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्त्वग्निप्रिया ॥ २६ ॥
अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः ।
अनेन मनुना देव्याः प्राणांस्तत्र निवेश्य च ॥ २७ ॥

प्राणप्रतिष्ठा-मन्त्र का उद्धार—उस चक्र में प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्राणों को सन्निविष्ट कराना चाहिये । मन्त्र का उद्धार इस प्रकार बतलाया गया है—नाद बिन्दु से परिमण्डित क्षीरसागर = आँ, अग्नि पर आरुढ नकुलीश = ह, माया नाद इन्दु से लाञ्छित =ह्रीं, कामदेव = क, अग्नि = र पर आरूढ, सद्योजात = ओ तथा नाद बिन्दु कला से विभूषित क्रों । हे देवि! ये तीन बीज = आँ ह्रीं क्रों तथा शिवबीज = ह, चन्द्र के साथ = हं होता है । हे परमेशानि! उसके बाद विसर्गवान् अव्यय भृगु = सः । इसके पश्चात् 'महात्रिपुरसुन्दरी' को षष्ठ्यन्त कहना चाहिये । फिर क्रम से 'प्राणा इह प्राणाः के बाद पुनः आं ह्रीं........ सुन्दर्या जीव इह स्थितः । उसके बाद आं ह्रीं........ इसके (= सुन्दर्याः) सर्वेन्द्रियाणि फिर आं ह्रीं...............इसके (= सुन्दर्या) वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणाः' के बाद 'इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु' पुनः अग्निप्रिया कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्याः प्राणा इह प्राणा, आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्या जीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्या सर्वेन्द्रियाणि, आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्या वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा) । यह प्राण-मन्त्र सर्वजीवप्रदायक कहा गया है । इस मन्त्र से देवी का प्राण उस चक्र में निविष्ट करा कर उसका पूजन करना चाहिये ॥ २१-२७ ॥

श्रीचक्रपूजादिवर्णनम्

स्पृशञ्जपेत् कराग्रेण श्रीचक्रं पूजयेत्ततः ।
उपचारैस्तथा प्रोक्तैस्त्रिसंध्यं त्रिदिनं यजेत् ॥ २८ ॥
तत्र तत्र महादेवीं होमयेद्विधिना तथा ।
अष्टोत्तरशतं देवि पायसैर्मधुराप्लुतैः ॥ २९ ॥
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि नृत्यगीतपुरःसरैः ।
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैर्महोत्सवमुदान्वितः ॥ ३० ॥

कृत्वाथ गुरुवे दद्याद्दक्षिणां पूर्वसूचिताम् ।
प्रमदाः परितोष्याथ ब्राह्मणानपि तोषयेत् ॥ ३१ ॥
एवं देवि प्रतिष्ठायां देवीसांनिध्यकारकः ।
यन्त्रे यन्त्रे कुले चैव कुलालङ्करणे तथा ॥ ३२ ॥
त्रैपुरे चास्त्रशस्त्रे च पूजयेद्वा तथात्मनि ।
प्रतिमायां तथा वह्नौ शिवलिङ्गे तथा गुरौ ॥ ३३ ॥
पूजाधाराणि देवेशि कथितानि मयानघे ।
नान्यत्र पूजयेद्देवीं यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे चक्रराजप्रतिष्ठानिरूपण-नामकस्त्रयस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३३ ॥

◆

श्रीचक्र की पूजा आदि—उसके बाद कराग्र से श्रीचक्र का स्पर्श करते हुए मूलमन्त्र का जप करने के बाद पूर्वोक्त उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । तीन दिनों तक महादेवी की तीनों काल पूजा करनी चाहिये । इसके अनन्तर हे देवि! त्रिमधुर मिश्रित खीर से हवन करना चाहिये । तत्पश्चात् अनेक प्रकार के मधुर गीत नृत्य वाद्य तथा 'जय' शब्द के द्वारा स्तुतियों से महोत्सव कर गुरु को पूर्वसूचित दक्षिणा देनी चाहिये । सुन्दरी युवतयों को सन्तुष्ट कर ब्राह्मणों को भी सन्तुष्ट करना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार जो (देवी की) प्रतिष्ठा है वह देवी का सान्निध्य प्राप्त कराती है । यन्त्र यन्त्र कुल कुलालङ्करण त्रिपुरमूर्त्ति तथा अस्त्र शस्त्र में देवी की पूजा करनी चाहिये अथवा देवी की प्रतिष्ठा स्वात्मा, अग्नि, शिवलिङ्ग तथा गुरु में कर वहाँ भी पूजा की जा सकती है । हे देवेशि! हे अनघे! मैंने पूजा के आधार बतलाये । साधक यदि अपना हित चाहता है तो वह अन्यत्र पूजा न करे ॥ २८-३४ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में चक्रराजप्राणप्रतिष्ठा-निरूपण नामक तैंतीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३३ ॥

◆

चतुस्त्रिंशः पटलः

कुलाचारवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

कुलाचारं श्रृणु प्राज्ञे प्रकीर्णं कथ्यते मया ।
(अमा?विना मान्)दक्षिणं वामं नोपोष्य परमां यजेत्॥ १ ॥
प्राणिहिंसां न कुर्वीत न चात्मानं प्रपीडयेत् ।

कुलाचार वर्णन—हे प्राज्ञे! प्रकीर्ण अर्थात् इधर उधर बिखरे हुए कुलाचार को सुनो । मैं बतला रहा हूँ । दक्षिण वाम के ध्यान के बिना तथा उपवास कर परम सुन्दरी की पूजा नहीं करनी चाहिये । प्राणियों की हिंसा और आत्मपीडा नहीं करनी चाहिये ॥ १- ॥

यजने आवश्यकभोजनव्यवस्था

हेतुद्रव्यमनास्वाद्य न स्मरेत्सुन्दरीं शिवे ॥ २ ॥
विना मद्येन मांसेन परस्त्रीरमणं विना ।
यजनं तु महादेव्या अगव्यं भोजनं यथा ॥ ३ ॥
अनैक्षवमगव्यं च भोजनं मृतभोजनम् ।
उपवासव्रतं नैव कुर्यादिह कदाचन ॥ ४ ॥
दुर्गन्धिवदनो वापि विरागवदनोऽपि च ।
अकौलभूषणो वापि रक्तपुष्पविवर्जितः ॥ ५ ॥

यजन में आवश्यक भोजन—हे शिवे! हेतु द्रव्य अर्थात् कारण द्रव्य अर्थात् मद्य का आस्वादन किये बिना त्रिपुरसुन्दरी का स्मरण नहीं करना चाहिये । मद्य मांस परस्त्री रमण के विना महादेवी की पूजा वैसी ही होती है जैसे दूध दही घी के विना भोजन । ऐक्षव अर्थात् चीनी या गुड से बनी वस्तु और गव्य से रहित भोजन मृत भोजन होता है । इस पूजाक्रम में कभी भी उपवास अथवा व्रत नहीं करना चाहिये । मुँह से दुर्गन्ध आ रही हो तथा उसमें कोई राग न लगा हो,

अलङ्कार न धारण किया हो, रक्त पुष्प से अलंकृत न हो—ऐसा होकर पूजा करनी चाहिये ॥ २-५ ॥

निषिद्धकर्मभोजनयोर्वर्णनम्

अविश्वासहृदा युक्तः शिवस्य पत्रधारकः ।
तथा नान्यमना भूत्वा सुन्दरीं समुपासयेत् ॥ ६ ॥
अतो न तुलसीपुष्पैस्तत्पत्रैर्न यजेत्पराम् ।
कन्यायोनिं न वीक्षेत बीभत्सुं न विलोकयेत् ॥ ७ ॥
न नग्नां नान्ययोषां च न वीक्षेत्प्रकटस्तनीम् ।
क्रीडाकुलकुमारीणां दर्शनाद्वन्दनं शिवे ॥ ८ ॥
न दुष्यति मनो येन नारीणां तत्समाचरेत् ।
नारीणां विप्रियं कृत्वा सिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम्॥ ९ ॥

निषिद्ध कर्म और निषिद्ध भोजन—अविश्वस्त हृदय वाला, शिवलिङ्ग का धारण करने वाला तथा अन्य चित्त होकर त्रिपुरसुन्दरी की उपासना नहीं करनी चाहिये । तुलसी के पुष्प पत्र से परादेवी का यजन नहीं करना चाहिये । कन्या की योनि नहीं देखनी चाहिये । विभत्स अर्थात् घृणास्पद कन्या को नहीं देखना चाहिये । नग्न हुई स्त्री, दूसरे की पत्नी तथा खुले स्तनों वाली स्त्री को कदापि नहीं देखना चाहिये । हे शिवे! क्रीडा में आसक्त कुमारियों को प्रणाम कर लेना चाहिये । जिससे उनका मन दूषित न हो स्त्रियों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये । स्त्रियों की इच्छा के विपरीत कार्य करने वाला सिद्ध पुरुष भी शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ६-९ ॥

भोजननियमः

नैकवारं समश्नीया(न्नहृत्यं?न्नाहार्य)पूतिगन्धयुक्।
स्वयं हृद्यं स्थिरं स्वादु प्रशस्तं मधुरं तथा ॥ १० ॥
आहा(रं?र्य)साधकेन्द्राणामल्पमल्पतरं शिवम् ।
कट्वम्ललवणानां च नातिप्रियतरं भवेत् ॥ ११ ॥
यद्भुङ्क्ते जीर्यते शीघ्रं तदश्नीयान्न चाधिकम् ।
यदिच्छा जायते भोक्तुं तदश्नीयादपूर्णकम् ॥ १२ ॥
एकदाच्छादिते वह्नौ नैव वृद्धिं प्रयाति सः ।
तस्मात्सावहितो वह्निं व(न्ध?र्ध)येद्भुक्तमा(ज्ञ?त्र)तः ॥ १३ ॥
समाने तु स्थिते वह्नौ शरीरं स्यान्निरामयम् ।
निरामये शरीरे तु सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ १४ ॥

भोजन का नियम—अनेक बार भोजन नहीं करना चाहिये । अग्राह्य एवं दुर्गन्ध- युक्त भोजन नहीं करना चाहिये । जो अपने को रुचिकर हो स्थिर स्वादिष्ट उत्तम और मधुर हो, साधकों को खाने योग्य हो ऐसा अल्पं अल्पतर भोजन ही कल्याणकर होता है । कटु अम्ल नमकीन भोजन प्रिय नहीं होता । जो भोजन खाने पर शीघ्र पच जाय उसे ही खाना चाहिये । अधिक भोजन नहीं करना चाहिये । भोजन की जितनी इच्छा हो उससे कम खाना चाहिये । एक बार जठराग्नि को भोजन से ढँक देने पर वह भोजन को पचाने में सशक्त नहीं होती इसलिये सावधान होकर उतना ही भोजन करना चाहिए जिससे अग्नि दीपित हो । शरीर में अग्नि जब समान स्थिति में रहता है अर्थात् भोजन पचाने में समर्थ रहता है तब शरीर नीरोग रहता है । जब शरीर रोगरहित रहता है तो साधक सारे कार्यों को सिद्ध करता है ॥ १०-१४ ॥

विषमस्थो यदा वह्निः शरीरं स्यान्निरर्थकम् ।
शरीरं तु मनुष्याणां पुरुषार्थैकसाधकम् ॥ १५ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन (शु?शो)धयेत्तन्निरामयम् ।
देवा अपि यजन्त्यत्र किं पुनर्मानवादयः ॥ १६ ॥
भवाब्धेस्तरणोपायं तरणी वर्ष्म चोच्यते ।
निर्गदेन शरीरेण सुखं तरति दुस्तरम् ॥ १७ ॥
सरुजा व(र्त्म?र्ष्म)णा देवि जीवनं विफलं शिवे ।
धूमागारे चान्धकारे चाज्ञाते पूजनं शिवे ॥ १८ ॥
नरकाय महादेव्याः पूजनं विद्धि पार्वति ।
सत्ये चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसगा मताः ॥ १९ ॥
द्वापरे त्वग्गताः प्राणाः कलावन्नगता मताः ।
निराहारव्रतं देवि कलौ तेन विवर्जितम् ॥ २० ॥

जब शरीर में अग्नि विषम अवस्था में रहता है तो वह शरीर किसी काम लायक नहीं रहता । इसलिये पूरा प्रयास कर शरीर को शुद्ध तथा नीरोग रखना चाहिये । देवता भी शरीर के शुद्ध अनामय रहने पर ही असुरों पर विजय पाते हैं फिर मनुष्यों की क्या बात? यह शरीर संसारसागर को पार करने में नौका के समान है । नीरोग शरीर से मनुष्य दुस्तर संसार को सुखपूर्वक पार कर लेता है । हे देवि! हे शिवे! रोगी शरीर से जीवन व्यर्थ हो जाता है । हे शिवे! धुयें से भरे अन्धकारयुक्त अज्ञात स्थान में महादेवी की पूजा से नरक मिलता है—ऐसा समझो । सत्ययुग में प्राण हड्डियों में, त्रेता युग में मांस में, द्वापर में चर्म में तथा कलियुग में अन्न में रहते हैं इसलिये हे देवि! कलियुग में निराहार व्रत वर्जित है ॥ १५-२० ॥

बलिदानविधिः

बलिदानं विना हिंसां कलौ नैवात्र कारयेत् ।
न स्वयं छेदयेद्देवि बलिं साधकसत्तमः ॥ २१ ॥
बलिदानं विना देव्याः प्रीतिर्नान्यैस्तथा भवेत् ।
प्रोक्षणे तु परो मन्त्रः सोऽयमेव प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नापरस्त्वं शिवोऽसि हि ।
शिवोत्कृत्यमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां व्रज ॥ २३ ॥
बहवो नैव हन्तव्या यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
बहवो यत्र हन्यन्ते तत्र कृत्या क्षयङ्करी ॥ २४ ॥
भवत्येवाचिरेणैव बन्धनोच्चाटनं शिवे ।
आत्मप्राणसमा देवि परेषामपि सा कथा ॥ २५ ॥
परहिंसाभवोऽधर्मः क्रमात् सर्वं हरिष्यति ।

बलिदान विधि—कलियुग में विना हिंसा के बलि नहीं देनी चाहिये । हे देवि! उत्तम साधक बलि को स्वयं न काटे । बलिदान के विना अन्य उपायों से देवी प्रसन्न नहीं होती । बल्य पशु के प्रोक्षण एवं हिंसन में यह उत्तम मन्त्र कहा गया है—'उद्बुध्यस्व...शिवोऽसि हि ।' (हे पशो! सावधान हो जाओ । तुम अन्य नहीं शिव ही हो । तुम्हारा यह शरीर शिव के लिये हन्तव्य है । इसलिये तुम शिवत्व को प्राप्त हो जाओ) । साधक यदि अपना हित चाहता है तो वह बहुत से पशुओं की बलि न दे । जिस अनुष्ठान में बहुत से पशु मारे जाते हैं वहाँ कृत्या सर्वनाश कर देती है । हे शिवे! वहाँ साधक का शीघ्र बन्धन और उच्चाटन हो जाता है । हे देवि! दूसरों के प्राण भी अपने प्राण के समान होते हैं । परहिंसा से उत्पन्न अधर्म क्रमशः सबका हरण कर लेता है ॥ २१-२५- ॥

य इहात्मकृते देवि परान्निष्पीड्य जीवति ॥ २६ ॥
नेहापि लभते सिद्धिं परत्रापि कदाचन ।
यो वा विधिमनादृत्य जन्तून् हत्वा शिवां यजेत् ॥ २७ ॥
भवन्त्येव महोत्पाता (य?स्त)त्र तस्य न संशयः ।
यज्ञादिषु महेशानि हिंसया दारुणाज्ञया ॥ २८ ॥
परहिंसाभवोऽधर्मः परिणामेऽतिदुःखदः ।
तथैव प्रतिजानेऽहं मोहात्किं वा न दृश्यते ॥ २९ ॥
कियत्कालसुखावाप्तिकाम्यया कामुकाञ् शिवे ।
हन्तीह परमो मोहः परमोहः सुदारुणः ॥ ३० ॥

हे देवि! जो अपने लिये दूसरों को पीड़ा पहुँचा कर जीवित रहता है वह यहाँ तो सिद्धि नहीं ही प्राप्त करता, स्वर्ग में भी उसे कभी सिद्धि नहीं मिलती और जो व्यक्ति शास्त्रविधि का अनादर कर जीवों को मारकर शिवा की पूजा करता है उसके घर में नि:सन्देह बड़े-बड़े उत्पात होते हैं । हे महेशानि! यज्ञ आदि में दारुण आज्ञा के द्वारा होने वाली हिंसा के कारण परहिंसा से उत्पन्न होने वाला अधर्म परिणाम में अत्यन्त दु:खद होता है । मैं भी वैसी ही प्रतिज्ञा करता हूँ । मोह से क्या नहीं दिखलायी पड़ता? अर्थात् सारे कष्ट ही तो दिखलायी पड़ते हैं । हे शिवे! थोड़े समय तक रहने वाले सुख को प्राप्त करने की इच्छा से कामुक पशुओं[१] को यजमान मारता है यह परममोह है और परममोह बड़ा भयङ्कर होता है ॥ २६-३० ॥

ममत्वसमता देहे प्रिये चातिसुदुर्लभे ।
तस्मादेषु महद्दुखं नान्यत्र खलु पार्वति ॥ ३१ ॥
देहत्यागे शुनो य(स्मा?द्व)त्तथेन्द्रचन्द्रयोरपि ।
आवयोर्जायते प्रीतिः कामदा कामुकस्य च ॥ ३२ ॥
न शस्तं मारणं कर्म ब्रह्माप्तौ ब्रह्मसाधके ।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मैव परिपश्यति ॥ ३३ ॥
सर्वभूतमिवात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
शक्तिर्महेश्वरो ब्रह्म त्रयस्तुल्यार्थवाचकाः ॥ ३४ ॥
स्त्रीपुंनपुंसको भेदः शब्दतो न परार्थतः ।
अन्ते सिद्धिर्भवेत्पुंसां वशगा भोगमोक्षदा ॥ ३५ ॥
स्त्रीणामपीह पुंरूपो वशगः सर्वसिद्धिदः ।
नपुंसकात्मकं तत्तु स्वयमेव प्रकाशते ॥ ३६ ॥
द्वयोरेकतराद्वैतयोगान्मतैकभावना ।

हे प्रिये! अत्यन्त दुर्लभ शरीर में सबका ममत्व समान होता है । इसलिये हे पार्वति! इनके मारने में महादु:ख होता है । देहत्याग में जितना दु:ख कुत्ते को होता है इन्द्र और चन्द्रमा को भी देहत्याग में उतना ही दु:ख होता है । हम दोनों की भी प्रीति कामदा और कामुक की है । ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ब्रह्मसाधक के द्वारा किये जाने वाले मारण कर्म की कभी भी प्रशंसा नहीं की गयी । जब मनुष्य समस्त प्राणियों को आत्मस्वरूप में देखता है और अपने को सम्पूर्ण प्राणियों के रूप में देखता है तब उसे ब्रह्मप्राप्ति होती है । शक्ति महेश्वर

---

[१] अश्वमेध आदि यज्ञ में अश्व के सामने अश्वी को खड़ी किया जाता है और जब अश्व कामुक हो जाता है तब उसका वध करते हैं ।

और ब्रह्म ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है । स्त्री, पुरुष और नपुंसक का भेद शाब्दिक है पारमार्थिक नहीं । अन्त में भोग और मोक्ष देने वाली सिद्धि पुरुषों के वश में होती है । स्त्रियों को भी सब सिद्धिदायक पुरुष रूप वश में होता है और नपुंसक रूप में वह स्वयं प्रकाशित होता है । पुरुष-स्त्री या शक्ति-महेश्वर उन दोनों में से एक के साथ अद्वैत होने से सर्वत्र एकत्व की भावना मानी गयी है ॥ ३१-३६- ॥

पूजामध्ये कर्त्तव्याकर्त्तव्यवर्णनम्

निष्ठीवनरवं छिक्कानधोवायुविसर्जनम् ॥ ३७ ॥
पूजामध्ये तु यः कुर्यात् स भवेद्योगिनीपशुः ।
देशानां व्यवहारा(णि?दि)विज्ञाय मतिमान् सदा ॥ ३८ ॥
पञ्चमादिपराम(र्ष?र्श)स्वतन्त्रो न भवेत् क्वचित् ।
यत्र देशे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः ॥ ३९ ॥
अविरोधः सर्वभूतैः परिपन्थिषु निग्रहः ।
अनुग्रहः संश्रितेषु देववत् पुरुषेऽपि च ॥ ४० ॥
गुरुपुत्रकलत्रादि गुरुवदेव संश्रयेत् ।

पूजा के मध्य कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य—जो साधक पूजा के समय थूकना, ध्वनि करना, छींकना और अधोवायु का निस्सारण करता है वह योगिनी का पशु होता है । बुद्धिमान को चाहिये कि वह देशकाल में व्यवहार आदि को जानकर पञ्चमादि अर्थात् मांस मद्य मत्स्य मैथुन और मुद्रा नामक पाँच मकरादि के व्यवहार से कभी स्वतन्त्र न हो प्रत्युत शास्त्रोक्त मर्यादा में रहकर उनका सेवन करे । जिस देश में जो आचार होता है वहाँ वैसा ही धर्म होता है । समस्त प्राणियों में मैत्री भाव, परिपन्थियों (= विरोधियों) में निग्रह अर्थात् शमनभाव, आश्रितों के ऊपर कृपा, पुरुषों में भी देवबुद्धि रखनी चाहिये । गुरुपुत्र गुरुपत्नी आदि में गुरुवत् बुद्धि रखनी चाहिये ॥ ३७-४०- ॥

पर्वसु च विशेषार्चा कुलवृक्षान्नपल्लवैः ॥ ४१ ॥
अनिच्छा मिथ्यावचने परदारधनेषु च ।
स्वस्तुतौ परनि(न्देच?न्दायां)आनन्दं चापि न स्पृशेत् ॥ ४२ ॥
सम्भाष्याभिमुखीं शक्तिं नासम्भाष्य व्रजेत् क्वचित् ।
स्त्रीणां समूहमालोक्य प्रणमेद्भावतत्परः ॥ ४३ ॥
पुण्ड्रेक्षुदण्डजातानि भक्षयेन्न कदाचन ।
प्राज्ञेनैव सदा कार्या पूजा सर्वसमृद्धिदा ॥ ४४ ॥

आगमोक्तविधौ दृष्ट्वा त्यजेद्दोषं तु पञ्चमे ।
स्नायात् सुगन्धिसलिलैः स्याद्देहो निर्मलो यथा ॥ ४५ ॥

पर्वों पर कुलवृक्ष, कुलअन्न और कुलपल्लवों से विशेष पूजा करनी चाहिये । मिथ्यावचन, परदार, परकीय धन में इच्छा नहीं रखनी चाहिये । अपनी प्रशंसा, दूसरों की निन्दा और आनन्द का स्पर्श भी नहीं करना चाहिये । सामने खड़ी शक्ति से बात कर कहीं जाना चाहिये; बिना बात किये नहीं । स्त्रियों के समूह को देखकर देवीभाव से पूर्ण होकर आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिये । पुण्ड्र और ईख का दण्ड कभी भी नहीं खाना चाहिए । सर्वसमृद्धि को देने वाली पूजा विद्वान् से ही करानी चाहिये । आगमोक्त विधि में देखकर पञ्चम अर्थात् मैथुन में दोष का त्याग करना चाहिये । सुगन्ध पूर्ण जल से स्नान करना चाहिये ताकि देह निर्मल रहे ॥ ४१-४५ ॥

निर्मलं धारयेद्वासः सर्वदा निर्मलः शुचिः ।
सुस्निग्धदेहवदनो न रूक्षः स्यात् कदाचन ॥ ४६ ॥
कृत्वा सुमङ्गलं देहं मृदुभाषणतत्परः ।
न बहु प्रलेपद्वीरो नैव रूक्षं कदाचन ॥ ४७ ॥
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा वीणावादनतत्परः ।
मदिराघूर्णनयनो मदिराक्षीसमन्वितः ॥ ४८ ॥
सर्वदा देवताभावः सङ्गीतरसपारगः ।

साधक को स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये । सदा निर्मल और पवित्र रहना चाहिये । सदा चिक्कण देह और चिक्कण मुख वाला रहना चाहिये । कभी भी रुक्ष वदन नहीं रहना चाहिये । शरीर को माङ्गलिक बनाये रखना चाहिये । सदा मधुर बोलना चाहिये । बहु प्रलाप और कटु भाषण नहीं करना चाहिये । गन्धर्व जैसा रूप बनाकर वीणा बजाते रहना चाहिये । मदिरा के सेवन से धूर्णित नेत्र वाला होकर मदिराक्षी के साथ रहना चाहिये । सर्वदा देवभाव वाला तथा सङ्गीत रस में पारंगत रहना चाहिये ॥ ४६-४८- ॥

श्रेष्ठसाधकवर्णनम्

यतिर्वा भूपतिर्वापि प्रशस्तः साधकोत्तमः ॥ ४९ ॥
भूपतिर्व्यस्तसम्भारैर्यतिरिन्द्रियनिग्रहैः ।
चतुराश्रमिणां मध्ये ह्यवधूताश्रमो महान् ॥ ५० ॥
खादन् मांसं पिबन् मद्यं विषयी विषयान्(यु?जु)षन् ।
रामारामो रमणीभिर्भूषिताभिर्विभूषितः ॥ ५१ ॥

तत्तदानन्दसंदोहैरानन्दितान्तरात्मवान् ।
निस्पन्देन्द्रियवान् यस्तु सोऽवधूतो यतिर्महान् ॥ ५२ ॥

श्रेष्ठ साधक का लक्षण—चाहे यति अर्थात् संन्यासी हो या राजा यदि वह साधक है तो प्रशंसा के योग्य होता है । भूपति अत्यधिक पूजासामग्री तथा संन्यासी इन्द्रियनिग्रह के कारण प्रशस्य होता है । ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों में अवधूताश्रम महान् है । मांस खाते हुए मद्य पीते हुए विषयी बनकर विषयों का सेवन करते हुए, स्त्री प्रसङ्ग करते हुए, भूषित रमणीजनों से विभूषित तत्तत् आनन्दसमूह से आनन्दित अन्तरात्मा वाला होता हुआ भी जो निःस्पन्द इन्द्रियों वाला है वही अवधूत यति महान् होता है ॥ ४९-५२ ॥

यतेराचारवर्णनम्

स्रक् चन्दनं च वस्त्रादि भूषणं यद्विलेपनम् ।
यदृच्छयोपपन्नं यत् तदप्यन्यैर्निवेदितम् ॥ ५३ ॥
अगृध्नुरुपयुञ्जीत न चासक्तमना भवेत् ।
एकान्तविजने रम्ये सदा योगं समभ्यसेत् ॥ ५४ ॥
इन्द्रियाणि यदा भिक्षोश्चञ्चलानि महात्मनः ।
तदा पर्यटनं कार्यं तीर्थादिषु प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥
विभूतिभूषणो भिक्षां कुर्वन्नैकत्र संवसेत् ।
त्वं मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पयाम्यहम् ॥ ५६ ॥
विभूतिमतुलां प्राप्य न मत्तो नैव मत्सरी ।
सम्पत्तौ च निरानन्दः समरूपगुणान्वितः ॥ ५७ ॥

यति का आचार-वर्णन—माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण, अवलेप यह सब अपने इच्छा से प्राप्त हो या दूसरे के द्वारा लाया गया हो इन सबका निर्लिप्त भाव से उपयोग करना चाहिये । इनके प्रति आसक्तचित्त वाला नहीं होना चाहिये । एकान्त निर्जन रमणीय स्थान में योग का सदा अभ्यास करना चाहिये । जब महात्मा संन्यासी की इन्द्रियाँ चञ्चल होने लगें तो उसे तीर्थ आदि में पर्यटन करना चाहिये । शरीर में भस्म लगाये रखना चाहिये । भिक्षाटन करते हुए एक स्थान में नहीं रहना चाहिये । 'हे माता तुम मुझे भिक्षा दो । मैं कुण्डली अर्थात् क्षुधाग्नि को तृप्त करूँगा ।' ऐसा कहना चाहिये । अतुल धनसम्पत्ति प्राप्त कर भी न मदमत्त होना चाहिये न मत्सरी अर्थात् द्वेष करने वाला होना चाहिए । सम्पत्ति आने पर भी आनन्दित नहीं होना चाहिये । रूप और गुण में समान रहना चाहिये ॥ ५३-५७ ॥

सर्वदानन्दहृदयो दानभोगपरायणः ।
प्रासादे चोत्तमे रम्ये लाक्षारुणसमप्रभे ॥ ५८ ॥
दिव्योपकरणैर्युक्ते मणिकाञ्चनभूषिते ।
परार्ध्यास्तरणे रम्ये रत्नसिंहासने शुभे ॥ ५९ ॥
नानाकुसुमसौरभ्यसुरभीकृतदिङ्मुखे ।
चन्दनागुरुकर्पूरधूपैः सम्मोदितान्तरे ॥ ६० ॥
कर्पूरज्वलितैर्दीपैरुज्ज्वले रत्नसंज्वले ।
शरच्चन्द्रनिभं छत्रं मुक्तामाणिक्यमण्डितम् ॥ ६१ ॥
हेमदण्डशिखालम्बि श्वेतचामरभूषितम् ।
निधायोर्ध्वे विशेत् तत्र कृतासनपरिग्रहः ॥ ६२ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरमृगनाभिविलेपितः ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यो रत्नभूषाविभूषितः ॥ ६३ ॥

अवधूत यति को सर्वदा आनन्दपूर्ण हृदय वाला तथा दान एवं भोग में लगा रहना चाहिये । लाक्षारूप के समान कान्ति वाले उत्तम रमणीय प्रासाद में, दिव्य उपकरणों से सुसज्जित, मणिकाञ्चन से भूषित, बहुमूल्य स्तर से आच्छादित रमणीय सुन्दर रत्नजटित सिंहासन पर बैठना चाहिये । चारों दिशायें अनेक प्रकार के फूलों की सुरभि से सुरभित रहनी चाहिये । चन्दन अगुरु कपूर धूप से कोने-कोने सुगन्धित रहें । रत्नों की चमक कपूर और जलते हुए दीपों से और अधिक बढ़ जाती हो । शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान छत्र मुक्तामाणिक्य से जटित हो । उसमें सोने का दण्ड लगा हो । श्वेत चामर से भूषित हो । इस प्रकार के छत्र चामर को ऊपर रखकर रम्य आसन पर बैठ जाय । वह अपने शरीर में चन्दन अगर कपूर और कस्तूरी का लेप लगाया हो । सम्पूर्ण शृङ्गारयुक्त वेष धारण किया हो । रत्नों के अलङ्करण से अलंकृत हो ॥ ५८-६३ ॥

स्रग्भिर्विचित्रभूषाभिर्भूषितोऽतिमनोहरः ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननः ॥ ६४ ॥
निर्वृत्ताखिलचिद्वृत्तिर्मदिराघूर्णलोचनः ।
विधाय पुरतः शक्तिं सुवेशां सुमनोहराम् ॥ ६५ ॥
दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानारत्नैर्विराजिताम् ।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं त्रिपुरामयम् ॥ ६६ ॥
आत्माभेदेन संचिन्त्य याति तन्मयतां नरः ।
भोगेन मोक्षमाप्नोति स्वयं त्रिपुरभैरवः ॥ ६७ ॥
तत एव समुत्पन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

तदेवैते न संदेहस्तस्माद्भिन्नं न भावयेत् ॥ ६८ ॥

उसे माला एवं विचित्र आभूषणों से विभूषित तथा अत्यन्त मनोहारी होना चाहिये । उसके मुख में कपूर के खण्ड से युक्त ताम्बूल रहना चाहिये । सम्पूर्ण चित्त वृत्ति शान्त रहनी चाहिये । मदिरा से आँखें धूरती रहनी चाहिये । सामने सुन्दर वेश वाली सुमनोहर शक्ति (= स्त्री) को बैठाना चाहिये । वह रेशमी वस्त्र तथा अनेक आभूषण धारण की हो । ऐसा मनुष्य अपने को निर्लेप निर्गुण शुद्ध एवं त्रिपुरसुन्दरीमय समझकर तन्मय हो जाता है । ऐसा व्यक्ति भोग से मोक्ष प्राप्त करता है और स्वयं त्रिपुरभैरव हो जाता है । उस त्रिपुरभैरव से ब्रह्मा विष्णु महेश्वर उत्पन्न हुये हैं । ये सब वह अर्थात् साधक ही है; इसमें सन्देह नहीं । इसलिये अपने को उनसे अथवा त्रिपुरसुन्दरी से भिन्न नहीं समझना चाहिये ॥ ६४-६८ ॥

भेदावभाषिणो मूढाः पतन्त्येव वरानने ।
सर्वदा सर्वदाः सर्वास्तोषयेद्भूषयेत् स्त्रियः ॥ ६९ ॥
वासोभूषणगन्धाद्यैः पेयैर्भक्षैर्मुदान्वितः ।
प्रथमे राजसो भूत्वा द्वितीये तामसो भवेत् ॥ ७० ॥
तृतीये सात्त्विको धर्मी तुर्ये पञ्चपरायणः ।
पूजाहोमजपान्तेऽस्या बलिभिः शत्रुनिग्रहैः ॥ ७१ ॥
दानभोगैस्तृतीये च चतुर्थे समतात्मनः ।
तच्चित्तस्तद्गतप्राणो मदिरामदविह्वलः ॥ ७२ ॥
सात्त्विको दिव्यभावस्तु स्थिराय जायते पुनः ।
नाशाय (सै?चै) व भावस्तु तामसः खलु मानुषे॥ ७३ ॥

हे वरानने! भेद की चर्चा करने वाले मूर्ख अपने लक्ष्य से च्युत हो जाते हैं। सब कुछ देने वाली स्त्रियों को प्रसन्न होकर वस्त्र आभूषण गन्ध आदि तथा पेय भक्ष्य आदि से सर्वदा सन्तुष्ट एवं भूषित करना चाहिये । प्रथम अर्थात् बाल्य या ब्रह्मचर्य अवस्था में राजस, द्वितीय अर्थात् यौवनावस्था या गृहस्थाश्रम में तामस तृतीय अर्थात् वृद्धावस्था अथवा वानप्रस्थ में सात्त्विक धर्मात्मा और चतुर्थ अर्थात् संन्यास अवधूत अवस्था में पञ्चपरायण अर्थात् पञ्चमकारयुक्त होना चाहिये। इस देवी की पूजा होम जप के अन्त में बलि यह प्रथम दो अवस्थाओं में करने चाहिये । तीसरी अवस्था में दान और भोग तथा चतुर्थ अवस्था में अपनी और त्रिपुरसुन्दरी की समता अर्थात् ऐक्य की भावना करनी चाहिये । समत्वभाव के लिये उसी में अपना चित्त उसी में अपना प्राण लगाना चाहिये । साधक को इस अवस्था में मदिरा के मद से विह्वल रहना चाहिये । मनुष्य के अन्दर सात्त्विक दिव्य भाव स्थिरता ले आता है जबकि तामस भाव विनाशकारी होता है ॥ ६९-७३ ॥

विपर्ययाद्भवेन्मृत्युरकालसम्भवः शिवे ।
विषशस्त्रजनैश्चोरैर्दस्युभिर्वा वरानने ॥ ७४ ॥
विनाशं तस्य दुर्बुद्धेः समूलं विद्धि पार्वति ।
पुत्रमित्रकलत्रादिसुहृद्भृत्यादयोऽपरे ॥ ७५ ॥
विप्रा भ्रात्रादयो यस्य वि(सी?षी)दन्ति सुदुःखिताः ।
दुश्चरित्राः स्त्रियो यस्य भवन्त्यन्तःपुरे शिवे ॥ ७६ ॥
मृगयाभिरतिर्यस्य दुरोदरप्रियस्य च ।
अद्भुतानि च जायन्ते हाहाकारयुताः प्रजाः ॥ ७७ ॥
पीडिताः क्लेशविक्लिन्ना विपत् तस्य पदे पदे ।
यस्यैते चातिसन्तुष्टाः सुस्था मङ्गलशंसिनः ॥ ७८ ॥
तस्यायुर्वर्धते नित्यं महालक्ष्मीः स्थिरा गृहे ।

हे शिवे! समत्व भाव के विपरीत होने से अकाल मृत्यु होती है । हे वरानने! यह मृत्यु विष, शस्त्र, जन, चोरों अथवा डाकुओं के द्वारा हो सकती है । हे पार्वति! उस दुर्बुद्धि का समूल विनाश समझना चाहिये । जिस राजा के पुत्र मित्र स्त्री आदि मित्र दास दासी ब्राह्मण भाई-बधु सदा दुःखी रहते हैं, हे शिवे! जिसके अन्तःपुर में स्त्रियाँ दुश्चरित्र होती हैं । जो शिकार करने में रुचि रखता है तथा जुआ खेलता है उसके राज्य में अद्‌भुत घटनायें होती हैं । प्रजाओं में हाहाकार मचा रहता है । प्रजायें पीड़ित और दुःख से दुःखी रहती हैं । उसको पग-पग पर विपत्ति घेरती रहती है । इसके विपरीत जिस राजा के राज्य में प्रजायें विप्र आदि अत्यन्त सन्तुष्ट स्वस्थ तथा मङ्गलकामी होते हैं उस राजा की आयु बढ़ती है और उसके घर में लक्ष्मी स्थायी रूप से निवास करती है ॥ ७४-७८- ॥

कोटिहोमस्यावश्यकत्वम्

कलहो यस्य देवेशि विना कारणमापतेत् ॥ ७९ ॥
नार्योऽमङ्गल (संशि?शंसि)न्यस्तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ।
एतेषामपि चान्येषां दोषाणां ग्रहसङ्कटे ॥ ८० ॥
आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोमं चरेन्नृपः ।
कोटिहोमात् परं नास्ति कर्म रिष्टिविनाशने ॥ ८१ ॥
न तत्तुल्यं तथा राज्ञां महोत्पातविनाशनम् ।
पुरश्चर्यां प्रकुर्वीत सन्ध्यासु जपतत्परः ॥ ८२ ॥
वर्षैकेन हि तत् सिद्ध्येत् सर्वविघ्नविनाशनम् ।

कोटि होम की आवश्यकता—हे देवेशि! जिसका बिना कारण किसी से

झगड़ा हो जाय, स्त्रियाँ अमङ्गल बोलने लगें उसको उसकी हानि का सङ्केत करना चाहिये । उपर्युक्त परिस्थिति में, अन्य प्रकार के दोष आने पर तथा ग्रहों का सङ्कट उपस्थित होने पर आयुष्ट्व की वृद्धि तथा अनिष्ट की शान्ति के लिये राजा को कोटि होम करना चाहिये । अरिष्ट को नष्ट करने में कोटि होम से बढ़कर कोई उपाय नहीं है । राजाओं के लिये उसके समान उत्पात-विनाशक कोई दूसरा नहीं है । राजा को पुरश्चरण भी करना चाहिये । उसे नित्य सन्ध्या में तत्पर रहना चाहिये । ऐसा करने पर एक वर्ष के अन्दर उसके समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है ॥ ७९-८२- ॥

मद्यपानविकाराः

ज्ञानलोपो भवेद्यस्य मद्यपानात् सुलोचने ॥ ८३ ॥
विकारं जनयेद्वापि स पुनर्यात्यधोगतिम् ।
प्रलापो भ्रंशनं हास्यं क्रोधोन्मादभयानकाः ॥ ८४ ॥
आलस्यं वातिचिन्ता च परानिष्टप्रवर्तनम् ।
हिंसासूया तथेर्ष्या च दम्भमोहौ प्रमादता ॥ ८५ ॥
आवेशो मरणं मूर्छा विकाराः समुदीरिताः ।

मद्यपान के विकार—हे सुलोचने! मद्यपान से जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है अथवा मन विकृत हो जाता है वह व्यक्ति अपनी अधोगति को प्राप्त कर जाता है । अनाप-शनाप बोलना, गिरना, अप्रासङ्गिक हंसी, क्रोध, उन्माद, भयानक कार्य, आलस्य, चिन्ता, दूसरे का अनिष्ट करना, हिंसा, निन्दा, ईर्ष्या, दम्भ, मोह, प्रमाद, आवेश, मरण और मूर्छा—ये सब मद्यपान के विकार कहे गये हैं ॥ ८३-८५- ॥

अमृतगुणवर्णनम्

समता सर्वभूतेषु मानापमानयोः समः ॥ ८६ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ।
ब्रह्मचिन्तोद्भवानन्दनिवृत्तबाह्यचित्तता ॥ ८७ ॥
सर्वकालेसु सर्वत्र समत्वं निर्विकारता ।
चक्षुषोरनिमेषत्वं मधुरस्मितभाषणम् ॥ ८८ ॥
अमृतस्य गुणा एते कथिता भुवि दुर्लभाः ।

अमृत पुरुष के गुणों का वर्णन—समस्त प्राणियों में समभाव रखना, मान एवं अपमान में एक भाव रखना, शत्रुमित्र के प्रति समता रखना, मिट्टी के ढेले पत्थर और सोने में समदृष्टि रखना, ब्रह्मध्यान से उत्पन्न आनन्द के कारण बाह्य

विषयों में चित्त का न लगना, सब समय सर्वत्र विकाररहित होना, पलकों का न गिरना, मधुर मुस्कान के साथ बात करना, ये अमृत पुरुष के गुण कहे गये हैं जो पृथिवी पर दुर्लभ हैं ॥ ८६-८८- ॥

सिद्धेर्लक्षणम्

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता ॥ ८९ ॥
अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ।
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सर्वज्ञादिगुणोदयः ॥ ९० ॥
इयादिगुणसम्पत्तिः सिद्धेर्लक्षणमुच्यते ।
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ॥ ९१ ॥
नृपाणामङ्गनानां च राजत्वं लोकवश्यता ।
महैश्वर्यं धनित्वं च पुत्रदारादिसम्पदः ॥ ९२ ॥
अधमाः सिद्धय प्रोक्ता मन्त्रिणां प्रथमस्त्विह ।

सिद्धि का लक्षण—वैराग्य, मोक्ष की इच्छा, त्याग, सब का वश में होना, अष्टाङ्गयोग का अभ्यास, भोग की इच्छा न होना, समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव, सर्वज्ञता आदि गुण[1] का उदय इत्यादि गुणों का आना सिद्धि का लक्षण कहा जाता है । ख्याति अर्थात् प्रसिद्धि, वाहन आभूषण आदि का लाभ, दीर्घजीवन, राजाओं और स्त्रियों का राजत्व, लोक का वश में होना, महाऐश्वर्य, धनी होना, पुत्र एवं स्त्री आदि की प्राप्ति होना—ये मन्त्र साधकों की अधम सिद्धि कही गयी है ॥ ८९-९२- ॥

सिद्धयस्तु सुराः साक्षान्मानवानामसंशयः ॥ ९३ ॥
यत्कृते परमेशानि निःश्वसन्ति कुलाङ्गनाः ।
सास्रुपातं विना पञ्च गद्गदं भृशदुःखिताः ॥ ९४ ॥
तस्य स्युर्विफलाः सर्वाः क्रियाः सर्वत्र चोदिताः ।
कान्तासन्तापजो वह्निर्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ९५ ॥
कान्ताः सन्तोषयेत् तस्माद्विप्रियं न मनाक् स्पृशेत् ।
संसिद्धेः कारणं कान्ता मूलं संसारवर्त्मसु ॥ ९६ ॥

मनुष्यों के लिये सिद्धियाँ निःसन्देह साक्षात् देवता होती है । हे परमेशानि! जिसके लिये कुलाङ्गनायें दुःख भरी साँसे लेती हैं । पाँच वस्तुओं के विना आँसू बहाती है और गदगद होकर अत्यन्त दुःखित रहती हैं उसके द्वारा सर्वत्र की गयी

---

[1] सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा आहुः षडङ्गानि महेश्वरस्य ॥ (वायुपुराण)

सारी क्रियायें निष्फल होती हैं । स्त्री के सन्ताप से जनित अग्नि सात कुलों का नाश करती हैं । इसलिये स्त्रियों को सन्तुष्ट रखना चाहिये ताकि अप्रिय विचार उनका रञ्चमात्र भी स्पर्श न कर सके । स्त्री सिद्धि का कारण होती है और संसार के पथ का मूल है ॥ ९३-९६ ॥

जायालक्षणम्

जाया मुख्यतमा प्रोक्ता यादौ पाणिप्रपीडिता ।
जायते स्वयमेवास्यां जाया तेन निगद्यते ॥ ९७ ॥
एका पतिव्रता भार्या साध्वी चेत्सहचारिणी ।
किमन्याभिर्महेशानि यथैवाहं त्वया प्रभुः ॥ ९८ ॥
श्रिया विष्णुः सरस्वत्या ब्रह्मा शच्या पुरन्दरः ।
एकया चेप्सितं(कृत्वा?कार्य) मनसाकृष्य पूरुषम्॥ ९९ ॥
त(स्याप्ये?स्मादे)कां समासाद्य नाप्यन्यां मनसा स्मरेत् ।
जाया चेत् कुलटा गेहे स्वयं कुलोपचारकः ॥ १०० ॥
मूषिकोपहतं कोषं तथा तस्य तदीरितम् ।
प्रयत्नेन विना देवि या स्वयमभिकाङ्क्षति ॥ १०१ ॥
यदा तदा तु सा तस्य परकीया न चोच्यते ।

जाया का लक्षण—स्त्रियों मे जाया, जिसका सबसे पहले पाणिग्रहण किया गया, मुख्यतम कही गयी है । पुरुष सन्तान के रूप में इसमें स्वयं जन्म लेता है इसलिये उसे जाया (जायते पतिरस्यां पुत्ररूपेण इति जाया) कहा जाता है । हे महेशानि! यदि एक पतिव्रता साध्वी भार्या सहचारिणी है तो अन्य स्त्रियों से क्या करना? जैसे कि मैं तुम्हारे द्वारा स्वामी मान लिया गया हूँ । लक्ष्मी ने विष्णु को, सरस्वती ने ब्रह्मा को, शची ने इन्द्र को माना है । एक ही स्त्री के द्वारा मन से पुरुष को आकृष्ट कर ईप्सित कार्य करा लिया जाता है इसलिये एक पतिव्रता स्त्री को प्राप्तकर अन्य स्त्री की बात मन में भी नहीं लानी चाहिये । यदि घर में पति कुल का उपचारक अर्थात् प्रतिष्ठा का निर्वाहक हो और पत्नी कुलटा हो तो उसका कोष मूषक के द्वारा उपहत समझना चाहिये । हे देवि! जो स्त्री विना किसी प्रयत्न के स्वयं पुरुष को चाहती है तो वह उस पुरुष के लिये परकीया नहीं कही जाती है ॥ ९७-१०१- ॥

अकामागमनेऽधमत्वप्राप्तिः

हठादाकर्षते यस्तु प्रलोभ्य च धनादिभिः । १०२ ॥
परकान्तां महेशानि स याति चाधमां गतिम् ।

स्वकान्ता परकान्ता वा कामविरहिता शिवे ॥ १०३ ॥
या नेच्छन्तीप्सयाश्रद्धां तां गत्वा च तथा भवेत्।

अकामा के साथ गमन से अधमत्व—जो व्यक्ति धन आदि के द्वारा प्रलोभित कर किसी परायी स्त्री को हठात् आकृष्ट करता है हे महेशानि! वह अधम गति को प्राप्त होता है । हे प्रिये! चाहे अपनी पत्नी को या दूसरे की स्त्री यदि वह काम-रहित है जो प्रेम के साथ समागम की इच्छुक नहीं है श्रद्धारहित उस स्त्री के साथ समागम कर मनुष्य वैसा अर्थात् पतित हो जाता है ॥ १०२-१०३- ॥

दुःशीलादियुक्तनार्यास्त्यागः

दुःशीला तु यदा नारी त्यजेत् तां नैव ताडयेत् ॥ १०४ ॥
अतिदुष्टां स्त्रियं देवि नीचपुरुषगामिनीम् ।
राजद्वारि च दिग्वस्त्रां त्यजेत् तां नैव संश्रयेत् ॥ १०५ ॥
कुलशास्त्रं कुलाचारान् कामयागमनुत्तमम् ।
अयोग्येषु प्रकाश्यैव सिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम् ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुलाचारवर्णन-
नामकश्चतुस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३४ ॥

◆

दुःशील आदि स्त्री का त्याग—यदि अपनी नारी दुःशील अर्थात् कुलटा आदि हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये किन्तु उसका ताड़न नहीं करना चाहिये । हे देवि! जो स्त्री अत्यन्त दुष्ट अथवा नीच हो, नीच पुरुष के साथ समागम करती हो, राजद्वार पर नग्न रहती हो उसका त्याग कर देना चाहिये; उसे अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहिये । इस कौलशास्त्र, कौलाचार तथा सर्वोत्तम कामयाग का अपात्र को उपदेश कर सिद्धपुरुष भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है ॥ १०४-१०६ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में कुलाचारवर्णन नामक
चौतीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥

◆

पञ्चत्रिंशः पटलः

काम्यपूजाविधिनिरूपणम्

देव्युवाच—

साधका गुप्तरूपाश्च तेषां साध्यं कथं भवेत् ।
साध्यं च कीदृशं देव काम्यं वा कीदृशं भवेत् ॥ १ ॥
पूजा च कीदृशी कार्या तन्मे वद सुविस्तरात् ।

देवी ने कहा—हे देव! साधक तो गुप्त होते हैं फिर उनकी साधना तथा साध्य कैसे होते हैं? साध्य किस प्रकार का होता है? काम्य प्रयोग कैसा होता है और पूजा किस प्रकार सम्पन्न करनी चाहिये? आप इसे मुझको विस्तार के साथ बतलाइये ॥ १-१- ॥

काम्यार्चावर्णनम्

ईश्वर उवाच—

अत्यन्तगुप्तरूपेण काम्यं कृत्वार्चयेन्नरः ॥ २ ॥
तदा तत्काममाप्नो(ति म?त्यान)न्दभाक् शक्तिपूजनात् ।
पूजाफलेन दौर्भाग्यं दुःखदारिद्र्यसंकुलम् ॥ ३ ॥
सर्वं प्रशमनं याति चेश्वरो जायते भुवि ।
अतिगुप्ततरं यस्मात् तस्माद्रात्रौ विधीयते ॥ ४ ॥
प्रकटे कार्यहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति सुन्दरी ।
गुरुभक्तिविहीनस्य विफलं साधनं प्रिये ॥ ५ ॥
अहं गुरुप्रसादेन सर्वगः सर्ववित् प्रभुः ।

काम्य पूजा—ईश्वर ने कहा—मनुष्य जब अत्यन्त गुप्तरूप से काम्य कर्म कर देवी की पूजा करता है तब शक्ति की पूजा से वह कामना की पूर्त्ति कर आनन्द का भागी बनता है । पूजा के फलस्वरूप उसका दुःख दारिद्र्य से व्याप्त सम्पूर्ण दुर्भाग्य शान्त हो जाता है और वह पृथिवी पर ईश्वर हो जाता है । चूँकि

यह काम्य कर्म अत्यन्त गोपनीय है इसलिये इसे रात्रि में किया जाता है । सर्वविदित होने पर कार्य की हानि होती है और परमेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी क्रुद्ध हो जाती है । हे प्रिये! जो व्यक्ति गुरुभक्ति से रहित है उनकी साधना व्यर्थ हो जाती है । मैं गुरु की कृपा से ही सर्वव्यापी सर्ववेत्ता और प्रभु हूँ ॥ २-५- ॥

शक्तेः पूजा सदा कार्या प्रसन्ना येन सा भवेत् ॥ ६ ॥

शक्तिपूजाया आवश्यकत्वं तत्र घृणाद्यकरणीयत्वं च

विफला शक्तिरहिता पूजाऽऽसवप्रसारिणी ।
ध्यानमानन्दरहितं यथा निष्फलमद्रिजे ॥ ७ ॥
शक्तौ दर्पं घृणां लज्जां वर्जयेत् क्रोधमत्सरम् ।
कदाचिद्दर्परूपेण पुष्पेणापि न ताडयेत् ॥ ८ ॥
शक्तौ न विस्मयः कार्यो यस्मात्सा तत्स्वरूपिणी ।
विस्मिता विलयं यान्ति पशवःशास्त्रमोहिताः ॥ ९ ॥
सुभक्त्या प्रणमेद्यस्तु शक्तिमेकाग्रचेतसा ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यादन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥
निश्चयं मुक्तिमाप्नोति सहस्रशक्तिपूजनात् ।

शक्तिपूजा की आवश्यकता और वहाँ घृणा आदि का निषेध—शक्ति की सदा पूजा करनी चाहिये जिससे वह अर्थात् शक्ति प्रसन्न रहे । हे अद्रिजे! जिस प्रकार आनन्दरहित ध्यान निष्फल होता है उसी प्रकार शक्तिरहित पूजा व्यर्थ केवल मद्य का प्रसार करने वाली होती है । शक्ति के विषय में घमण्ड लज्जा क्रोध और मात्सर्य का त्याग करना चाहिये । उसे कभी भी दर्परूपी पुष्प से भी नहीं मारना चाहिये । शक्ति के विषय में आश्चर्य भी नहीं करना चाहिये क्योंकि वह तत्स्वरूपिणी अर्थात् त्रिपुरसुन्दरीरूपा है । जो उसके सन्दर्भ में आश्चर्य करते है वे नष्ट हो जाते हैं तथा शास्त्रमोहित पशुतुल्य होते हैं । जो एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक उसे प्रणाम करता है उसके समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं तथा देहान्त होने पर वह मोक्ष प्राप्त करता है । एक सहस्र शक्तियों की पूजा से (अथवा शक्ति की एक सहस्र बार पूजा करने से) अर्चक निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ६-१०- ॥

शक्तिपूजासु विमुखः पामरः पुरुषाधमः ॥ ११ ॥
स निर्लज्जः कथं ब्रूते पूजयामि महेश्वरीम् ।
पूजाहोमं विना चेह नाधिकारः कथंचन ॥ १२ ॥
विना होमं महेशानि शक्तियागमकारणम् ।
शक्तियागं विना होमो निष्फलो नात्र संशयः ॥ १३ ॥

तस्माद्भावविशुद्धात्मा सर्वतन्त्रार्थकोविदः ।
साधकोऽपि च तत्त्वज्ञो नित्यं शक्तिं समाश्रयेत् ॥ १४ ॥
मदिरायां न वा शक्तौ जातिवृत्तिं विचारयेत् ।
नानाजातिषु सम्भृतां व्रजेत्सम्प्राप्य न त्यजेत् ॥ १५ ॥
सर्वशङ्काविनिर्मुक्तः सर्वज्ञः साधकोत्तमः ।
शक्तियागविधिं कृत्वा भवेद्भूमौ पुरन्दरः ॥ १६ ॥

जो साधक शक्तिपूजा से विमुख होता है वह पामर और नीच कोटि का पुरुष होता है । वह निर्लज्ज कैसे कहता है कि वह परमेश्वरी की पूजा कर रहा है । पूजा एवं होम के विना इस काम्य कर्म अर्थात् शक्तियाग में किसी भी प्रकार अधिकार नहीं बनता । हे महेशानि! विना होम के शक्तियाग अकारण और विना शक्तियाग के होम निष्फल होता है इसमें सन्देह नहीं । इसलिये सर्वतन्त्र का वेत्ता भावविशुद्ध हृदय वाला तत्त्वज्ञ साधक भी शक्ति का नित्य आश्रयण करे । मदिरा और शक्ति के विषय में जाति का विचार नहीं करना चाहिये । अनेक जातियों में पली बढ़ी शक्ति के साथ समाश्रयण करना चाहिये । एक बार प्राप्त करने के बाद उसका कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये । जो साधकोत्तम सर्वज्ञ होता हुआ सर्वशङ्का से रहित होकर शक्तियाग विधि करता है वह इस पृथिवी पर इन्द्र हो जाता है ॥ ११-१६ ॥

शक्तिपूजाविधिः

पूजयेदर्धरात्रे च निर्जने पशुवर्जिते ।
सर्वालङ्कारसुभगो गन्धचन्दनभूषितः ॥ १७ ॥
आकृष्य विमलां शक्तिं रमणीं वामलोचनाम् ।
हारालङ्कारसुभगां घृणालज्जाविवर्जिताम् ॥ १८ ॥
परार्ध्यास्तरणे रम्ये स्थापयेत् तूलिकोपरि ।
स्थापयेत् सुरया पूर्णं कुम्भं वामे सुवासितम् ॥ १९ ॥
आनन्दहृदयं कृत्वा सद्यः प्रसन्नमानसः ।
गुरुं नत्वा विधानेन ह्यमृतं तद्विचिन्तयेत् ॥ २० ॥
मांसं मत्स्यं तथा मुद्रां निधाय पुरतः शिवे ।
अर्घ्यपात्रं तदा वह्निसूर्यसोमामृतं स्मरेत् ॥ २१ ॥
सिन्दूरेण ललाटेऽस्याः कृत्वा तिलकमद्रिजे ।
साध्यं च विलिखेत्तत्रमूलविद्याविद(?ग)र्भितम् ॥ २२ ॥

शक्तिपूजा की विधि—शक्ति पूजा आधी रात को पशुरहित निर्जन स्थान में

करनी चाहिये । सारे अलङ्कार कर सुन्दर बनकर गन्ध चन्दन से विभूषित होकर साधक हार अलङ्कार से सुन्दर, घृणा लज्जा आदि से रहित सुलोचना रमणीय शक्ति को ले जाकर मूल्यवान् रमणीय कपास वाले विस्तर पर बैठाये । उसकी बाँयीं ओर मदिरा से पूर्ण सुवासित घट रखे । अपने हृदय में आनन्द का अनुभव कर तत्काल प्रसन्नचित्त होकर विधिपूर्वक गुरु को प्रणाम करने के बाद उस सुरा की अमृत के रूप में भावना करे । हे शिवे! उसके सामने मांस मत्स्य तथा मुद्रा को रखकर फिर अर्घ्यपात्र का अग्नि सूर्य सोम और अमृतरूप में स्मरण करे । हे पार्वति! सिन्दूर से उस शक्ति के ललाट पर तिलक लगाकर मूलविद्या से युक्त साध्य का उल्लेख करे ॥ १७-२२ ॥

गन्धैः पुष्पैस्तथा माल्यैर्भूषयित्वा तु तां पुनः ।
कृत्वा धूपेन सौगन्ध्यंदीपानुज्ज्वाल्य पार्वति ॥ २३ ॥
नाभेश्चरणपर्यन्तं वाग्भवं कूटमुत्तमम् ।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामबीजं प्रविन्यसेत् ॥ २४ ॥
शिरसो हृत्प्रदेशान्तं तदीयं परिभावयेत् ।
सर्वदेवमयं देहं सर्वमन्त्रमयं वपुः ॥ २५ ॥
चिन्तयेत्साधकः शक्तिं साक्षात् कामेश्वरीं पुरः ।
हृदि हस्तं समादाय जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ २६ ॥
आत्मानं चिन्तयेत्कामं शक्तिं कामेश्वरीं पराम् ।
मुहुर्मुहुः पिबेन्मद्यं शक्तिजिह्वाविलोडितम् ॥ २७ ॥
मन्त्रशुद्धं पिबेन्मद्यं निःशब्दं हास्यवर्जितः ।

पुनः उस शक्ति को गन्ध पुष्प माला आदि से भूषित कर धूप से सुगन्धित कर दीपक जलाने के बाद हे पार्वति! शक्ति की नाभि से चरण तक उत्तम वाग्भव कूट (= क ए ई ल ह्रीं) लिखे । हृदय से लेकर नाभि तक कामबीज (= ह स क ह ल ह्रीं) को न्यस्त करे । शिर से लेकर हृदय पर्यन्त उसका अर्थात् शक्ति का बीज (= स क ल ह्रीं) लिखे । इस प्रकार उसका शरीर सर्वदेवमय तथा सर्वमन्त्रमय हो जाता है । इसके अनन्तर साधक उस शक्ति को साक्षात् कामेश्वरी समझे । उसके हृदय पर हाथ रखकर मूलमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे । अपने को कामेश्वर और शक्ति को परा कामेश्वरी समझे । बार-बार शक्ति की जिह्वा से विलोडित मद्य का बार-बार पान करे । मन्त्र से शुद्ध मद्य का शब्दरहित और हास्यवर्जित होकर पान करना चाहिये ॥ २३-२७- ॥

भोजनान्ते विषं पानं पानान्ते भोजनं विषम् ॥ २८ ॥
अमृतं तद्विजानीयाद् यदन्नं सुरया सह ।

विष्णुना च पुरा पीता शङ्करेण ततः परम् ॥ २९ ॥
शक्रेण च पुरा पीता पुष्पदन्तेन चैव हि ।
शुक्रेण च तथा पीता दत्तात्रेयेण सेविता ॥ ३० ॥
श्रीमता बलरामेण समानीताथ भूतले ।
तस्मादिमां सुरां पुण्यां भक्त्या तां च पिबाम्यहम् ॥ ३१ ॥
पशुपाशविनाशाय दिव्यज्ञानोपलब्धये ।
इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभेषजम् ॥ ३२ ॥
मद्यं मांसं तथान्यत्तु यत्किंचित् कुलभूषणम् ।
शक्त्यै दत्त्वा पुनः शेषमात्मन्येव नियोजयेत् ॥ ३३ ॥

भोजन के अन्त में मदिरा पान विषतुल्य होता है मदिरापान के बाद भोजन करना भी विष है । जो अन्न सुरा के साथ-साथ लिया जाता है उसे अमृत समझना चाहिये । 'प्राचीन काल में विष्णु और शिव ने इसका पान किया । शक्र अर्थात् इन्द्र और पुष्पदन्त गन्धर्व ने भी इसे पीया । शुक्राचार्य और दत्तात्रेय ने भी इसका सेवन किया । श्रीमान् बलराम इसे भूतल पर ले आये (इसके पहले वह स्वर्ग में थी) इसलिये इस पवित्र सुरा का मैं भक्ति के साथ पान कर रहा हूँ । पशुपाश के नाश एवं दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये उस पवित्र भवभेषज अमृत का पान कर रहा हूँ ।' इतना कथन करने के बाद मद्य मांस अथवा जो कुछ कुलभूषण अर्थात् कौलसाधना में ग्राह्य है पहले शक्ति को देकर शेष अपने ऊपर लगाना चाहिये ॥ २८-३३ ॥

पाययित्वा पुनः पानं तन्मुखादमृतं पिबेत् ।
ततश्च शोधयेद्दीपं दीपो भवति नान्यथा ॥ ३४ ॥
आनन्दोदयपर्यन्तं साधकश्च पिबेन्मधु ।
कर्पूर(स?श)कलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननः ॥ ३५ ॥
मदिराघूर्णनयनो दिग्वासाः कुलभूषणः ।
वदेत् सविनयं वाक्यं सिद्धिदे परमेश्वरि ॥ ३६ ॥
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धदा भव ।

उसको पिलाकर पुनः पीना चाहिये । इस अमृत को उसके मुख से पीना चाहिये । इसके पश्चात् दीप का शोधन करना चाहिये । अन्यथा दीप नहीं होता । साधक आनन्द के आने तक मदिरापान करता रहे । उसके पश्चात् कपूरयुक्त ताम्बूल को मुँह में लेकर, मदिरा से घूर्णित नेत्र वाला साधक नग्न होकर इस वाक्य को नम्रता के साथ कहे—'हे सिद्धिदायिनि ! परमेश्वरि ! तुम्हारे अन्दर चतुर्वर्ग निहित है इसलिये मेरे लिये सिद्धिदात्री बनो' ॥ ३४-३६- ॥

कौलिकपूजाप्रक्रिया

इति प्रसादमासाद्य कारयेत्तां दिगम्बराम् ॥ ३७ ॥
त्रिकोणवद्भगं ज्ञात्वा सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
कूटत्रयात्मकं स्मृत्वा सर्वानन्दमयं स्मरेत् ॥ ३८ ॥
आत्मानं देवतारूपमद्वैतं परिचिन्तयन् ।
पूर्णचन्द्रनिभं वक्त्रं(पोंशीं?पूर्णाद्रिं)चुम्बनैर्यजेत् ॥ ३९ ॥
जालन्धरं महापीठं स्तनद्वयमुदीरितम् ।
अपानमूरुयुगलं कामरूपमतः परम् ॥ ४० ॥
यत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम् ।
यतो देवाश्च देव्यश्च मुनयश्चैव भावजाः ॥ ४१ ॥
सर्वेऽप्याविर्भवन्त्येते तेन गुप्तं महीतले ।

कौलिक पूजा की प्रकिया—इस प्रकार उसको प्रसन्न कर जब वह स्वीकृति दे दे तब उसे नग्न करे । उसके पश्चात् उसके भग को शाक्त त्रिकोण के समान समझकर उसे सर्वसिद्धिप्रदायक, तीन कूटों वाला तथा सर्वानन्दमय मानना चाहिये । साधक स्वयं अपने को देवतारूप अद्वैत ध्यान करता हुआ उसके पूर्णचन्द्र सदृश वक्त्र को पूर्णगिरि पीठ समझ कर उसकी चुम्बन के द्वारा पूजा करे । शक्ति के दोनों स्तनों को जालन्धर पीठ कहा गया है । दोनों जाँघें कामरूप पीठ मानी गयी है । जो पीठ ब्रह्म का मुख है गुप्त और सम्पूर्ण सुख देने वाला है, जिससे देव देवियाँ मुनिगण तथा अन्य मनुष्य सब के सब प्रकट होते हैं (उसे ओड्यान पीठ कहना चाहिय) । वह पीठ पृथिवी तल पर गुप्त है ॥ ३७-४१- ॥

द्विविधं चैव तत्पीठं गुप्तं व्यक्तं महेश्वरि ॥ ४२ ॥
व्यक्ताद्गुप्तं महापुण्यं दुरापं पशुभिः प्रिये ।
गुप्तं सर्वत्र देवेशि लभ्यते कुलपूजकैः ॥ ४३ ॥
यत्र तत्र यजेद्देवीमुपचारैस्तथाविधैः ।
लिङ्गेनाकर्षयेद्योनिं मुखे जिह्वामृतं पिबेत् ॥ ४४ ॥
नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विहितानि च ।
आलिङ्गनं तु कस्तूरीकर्पूरागुरुचन्दनम् ॥ ४५ ॥
चुम्बनं स्तवनं देवि मथनं ह(र?व)नं शिवे ।
त्रिभिः कूटैस्त्रिघातं स्यात् त्रिघातैर्जपमेकतः ॥ ४६ ॥
एवं कृत्वा महेशानि स च कामेश्वरो भवेत् ।

हे महेश्वरि! वह पीठ दो प्रकार का है—१. गुप्त और २. व्यक्त । हे प्रिये!

व्यक्त पीठ की अपेक्षा गुप्त पीठ महापवित्र है । वह पशुओं के लिये दुर्लभ है । हे देवेशि! गुप्त पीठ कौलपूजकों के द्वारा प्राप्त किया जाता है । यह गुप्त पीठ जहाँ हैं वहाँ उसी प्रकार के उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । साधक को चाहिये कि वह लिङ्ग के द्वारा योनि को आकृष्ट करे । शक्ति के मुख में वर्त्तमान जिह्वा के अमृत का पान करे । इस शक्ति पूजा में नखक्षत दन्तक्षत आदि पुष्प माने गये हैं । शक्ति का आलिङ्गन कस्तूरी अगुरु चन्दन माना गया है । हे देवि! चुम्बन उसकी स्तुति और (लिङ्ग के द्वारा योनि का) मन्थन हवन समझा गया है । तीन कूटों से त्रिघात होता है और त्रिघात से एक जप होता है; इस प्रकार एक-सौ आठ जप करना चाहिए । हे महेशानि! ऐसा कर साधक कामेश्वर हो जाता है ॥ ४३-४६- ॥

मद्यं मांसं विना देवि कुलपूजां यथा चरेत् ॥ ४७ ॥
जन्मान्तरसहस्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ।
निवृत्तिकाले च पुनर्भावपूर्णामृतैर्निजम् ॥ ४८ ॥
मुखं बिन्दुवदाकारं तदधःकु(ल?च)युग्मकम् ।
सर्वविद्यामृतैः पूर्णं सर्ववाग्विभवप्रदम् ॥ ४९ ॥
सर्वार्थसाधकं देवि सर्वरञ्जनकारणम् ।
तदधः परमेशानि स्वदेहं परिचिन्तयेत् ॥ ५० ॥
सर्वज्ञानसुसम्पन्नं सर्ववश्यप्रदायकम् ।

हे देवि! जो साधक मद्य मांस के विना कुल पूजा करता है उसके पूर्ववर्त्ती हजार जन्मों का पुण्य क्षीण हो जाता है । हे देवि! मैथुन की निवृत्ति के समय साधक अपने मुख को भावपूर्ण अमृत से युक्त बिन्दु के समान देखे । उसके पश्चात् अपने दोनों कुचों को सर्वविद्यामृत से पूर्ण और सर्ववाग्वैभव का दाता, सर्वार्थसाधक तथा सबका मनोरंजन करने वाला समझे । उसके बाद हे परमेशानि! अपने शरीर को सर्वज्ञानसम्पन्न और सबका वशीकरण समझे ॥ ४७-५०- ॥

कुलपूजाफलम्

ध्यात्वा यष्ट्वाथवा देवि भवेत्कामकलान्वितः ॥ ५१ ॥
कुलस्य विविधं रूपं ज्ञात्वा तत्परिचिन्त्य च ।
कुलीनो जायते यस्मात्कथं तत्तु प्रकाशयेत् ॥ ५२ ॥
एवमभ्यासयोगेन सिद्धो भवति नान्यथा ।
मासेनाकर्षणी सिद्धिस्त्रिमासैर्वाक्पतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥
एवं चतुष्टये मासि भवेद्दिक्पालगोचरः ।
पञ्चमे पञ्चकामः स्यात् षष्ठे रुद्रो न संशयः ॥ ५४ ॥

चिन्तनं योषिता सार्धं पूजनं च तयैव हि ।
तया विरहितो मन्त्री न सिध्यति कदाचन ॥ ५५ ॥
भावयेद्योषिता सार्धं जुहुयाच्च तयैव हि ।
तया विरहितो मन्त्री न सिध्यति कदाचन ॥ ५६ ॥

कुलपूजा का फल—हे देवि! साधक अर्थात् कुलपूजक मनुष्य योनि का ध्यान एवं अर्चन कर कामकला से युक्त हो जाता है । चूंकि कुल के विविध रूप को जानकर उसका ध्यान कर साधक कुलीन हो जाता है इसलिये उसका प्रकाशन क्यों करे । इस प्रकार के अभ्यास के योग से मनुष्य सिद्ध हो जाता है अन्यथा नहीं । एक महीने तक ऐसा अभ्यास करने से आकर्षण, तीन मास तक के अभ्यास से वाक्‌सिद्धि हो जाती है । इसी प्रकार चौथे मास में उसे दिक्‌पालों का दर्शन होता है । पञ्चम मास में पञ्चकाम अर्थात् कामदेव और छठें में नि:सन्देह रुद्र हो जाता है । ध्यान और पूजन दोनों शक्ति के साथ करना चाहिये । उससे रहित मन्त्री को कभी भी सिद्धि नहीं मिलती । योषित के साथ भावना करनी चाहिये । उसी के साथ हवन करना चाहिये । उससे रहित मन्त्री कभी सिद्ध नहीं होता ॥ ५१-५६ ॥

स्त्रियो देवा: स्त्रिय:प्राणा: स्त्रिय एव हि भूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियम् अपि ॥ ५७ ॥
रात्रौ पर्यटनं कार्यं रात्रौ च शक्तिपूजनम् ।
रात्रौ कुलकथालापं रात्रौ चान्यत् समापयेत् ॥ ५८ ॥
प्रात: स्नानं ततो देवि देवान्पितॄनृषींस्तथा ।
तर्पयित्वा यजेद्देवीमुपचारैर्यथाविधि ॥ ५९ ॥
पूर्वाह्णविहितां पूजां गृह्णाति परदेवता ।
मध्याह्नविहितां देवि गृह्णन्ति योगिनीगणा: ॥ ६० ॥
अपराह्णकृता पूजा नीयते यक्षराक्षसै: ।
पूर्वाह्णे दीयते यत्तदमृतं समुदीरितम् ॥ ६१ ॥
मध्याह्ने तत्तु देवेशि शोणितं च परं स्मृतम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बाह्यपूजां महेश्वरि ॥
प्रातरेव सदा कुर्याद्‌गृहस्थो गृहिणीयुत: ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे काम्यपूजादिविधिनिरूपणनामक:
पञ्चत्रिंश: पटल: सम्पूर्ण: ॥ ३५ ॥

❖

स्त्रियाँ देव हैं, स्त्रियाँ प्राण हैं, स्त्रियाँ ही आभूषण हैं । इसलिये सदा स्त्री के साथ रहना चाहिये । यदि परस्त्री न मिले तो अपनी स्त्री के साथ रहना चाहिये । रात्रि में पर्यटन करना चाहिये । रात्रि में शक्तिपूजन करना चाहिये । कुलकथा बातचीत सब रात में और समस्त कार्य रात में ही करना चाहिये । हे देवि! रात बीत जाने के बाद प्रातःकाल स्नान, देवता-ऋषि-पितरों का तर्पण कर देवी की उपचारों से विधिवत् पूजा करनी चाहिये । पूर्वाह्न में की गयी पूजा को परा देवी स्वीकार करती है । मध्याह्न पूजा का योगिनीसमूह ग्रहण करता है । अपराह्न की पूजा यक्ष राक्षस ले लेते हैं । पूर्वाह्न में जो दिया जाता है वह अमृतोपम कहा गया है । हे देवेशि! मध्याह्न में भी वही अर्थात् अमृत होता है किन्तु अपराह्न में दिया गया नैवेद्य शोणित-सदृश होता है । इसलिये हे महेश्वरि! गृहस्थ को चाहिए कि वह गृहिणी के साथ बाह्यपूजा को सदा प्रातःकाल में करे ॥ ५७-६२ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में काम्यपूजादिविधि निरूपण
नामक पैंतीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३५ ॥

◆

षट्त्रिंशः पटलः

शक्त्यानयनपूजातत्त्वादिनिरूपणम्

स्वशक्त्या परशक्तेरानयनफलम्

ईश्वर उवाच—

शक्त्यन्तरं प्रवक्ष्यामि सविकल्पस्य सुन्दरि ।
स्वशक्त्या परशक्तिं च यथानयति साधकः ॥ १ ॥
अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् सिद्धिहानिर्भवेच्छिवे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेन्निजकौलिनीम् ॥ २ ॥
गुरुसेवैकमात्रेण यथा सिद्धिर्भवेन् नृणाम् ।
महापद्मवनध्यानाद् यथा सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ३ ॥
त्रिपुराध्यानमात्रेण जीवन्मुक्तो यथा भवेत् ।
गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते यथा ॥ ४ ॥
योषित्स्मरणमात्रेण तथेयं वरदायिनी ।
न स्नानं न तथा पूजा न ध्यानं न्यास एव वा ॥ ५ ॥
मन्त्रस्मरणमात्रेण योषितां वरदायिनी ।

अपनी शक्ति के साथ पराशक्ति का आनयन-फल—ईश्वर ने कहा—हे सुन्दरि! सविकल्प की दूसरी शक्ति को बतलाऊँगा । यदि साधक अपनी शक्ति के साथ दूसरी शक्ति को भी ले आता है तो हे शिवे! कौलमार्ग में अदीक्षित शक्ति के साथ संसर्ग करने से सिद्धि की हानि होती है इसलिये सब प्रकार के प्रयास से अपनी कौलिकी को दीक्षित करना चाहिये । उसके साथ गुरु की सेवा मात्र से लोगों को सिद्धि मिलती है । महापद्मवन (= योनि) के ध्यान से साधक सिद्धियों का स्वामी बन जाता है । त्रिपुरा के ध्यान मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है । जिस प्रकार गङ्गा के स्मरण मात्र से मनुष्य निष्पाप हो जाता है उसी प्रकार कुलस्त्री के स्मरण मात्र से यह त्रिपुरसुन्दरी उस मनुष्य को वर देती हैं । इस

सन्दर्भ में स्नान पूजा ध्यान न्यास की कोई आवश्यकता नहीं होती । केवल मूलमन्त्र के स्मरण से यह देवी वर प्रदान करती है ॥ १-५- ॥

गुरुद्वारा कौलिनीदीक्षावर्णनम्

निजकान्तां समानीय सुशीलां सुयशस्विनीम् ॥ ६ ॥
कुलभक्तं गुरुं प्राप्य दीक्षयेत् कुलविद्यया ।
दीक्षयित्वा गुरुस्तां तु निजपुत्रीवदाचरेत् ॥ ७ ॥
अद्य प्रभृति पुत्रि त्वं कुलपूजारता भव ।
यथोपदिष्टविधिना स्वामिनं वश्यमानय ॥ ८ ॥
हररूपस्य त्वत्पत्युर्न चान्यं मनसा स्मर ।
इत्याज्ञां च गुरोर्लब्ध्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥ ९ ॥
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां मूर्ध्नि देहि यशोधन ।
दीक्षिता न च योषा चेत् कथं स्यात्कुलपूजनम् ॥ १० ॥
कुलपूजा न चेद्देवि कुलविद्या पराङ्मुखी ।

गुरु के द्वारा कौलिकी दीक्षा का वर्णन—अपनी सुशील यशस्विनी कान्ता को ले आकर साधक कौलमार्ग में श्रद्धा रखने वाले गुरु के पास ले जाकर उसे कुलमन्त्र से दीक्षित कराये । दीक्षा देने के बाद गुरु उस कान्ता के साथ अपनी पुत्री के समान व्यवहार करे । गुरु उसे निम्नलिखित उपदेश दे—'हे पुत्रि! आज से तुम कुलपूजा में लग जाओ । उपदिष्ट विधि के अनुसार अपने पति को वश में करो । तुम्हारा पति शिवरूप है । मन से भी अन्य पुरुष का स्मरण करना ।' इस प्रकार गुरु की आज्ञा लेकर वह कान्ता गुरु को प्रणाम करने के बाद पति को पृथिवी पर दण्डवत् प्रणाम करे और कहे—हे यशोधन! आप अपने चरणकमल से मेरे शिर पर छाया करें । यदि स्त्री दीक्षित नहीं होगी तो कुलपूजा कैसे सम्पन्न होगी ।' (ईश्वर ने कहा कि) हे देवि! यदि कुलपूजा नहीं की जाय तो कुलदेवी पराङ्मुखी हो जाती है ॥ ६-१०- ॥

षट्चक्रे प्रतिमालेखनम्

दिवसं प्राप्य भौमं च निर्जने पशुवर्जिते ॥ ११ ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
आनीय यत्नतः शुद्धं सिन्दूरं च मनोहरम् ॥ १२ ॥
तेन चक्रं समालिख्य सुरेखं परमोज्ज्वलम् ।
षट्कोणं पद्मगर्भस्थं शरावे दाहवर्जिते ॥ १३ ॥
तन्मध्ये प्रतिमां देवि सिन्दूरेण समालिखेत् ।

कपोले साध्यमालिख्यमूलमन्त्रविद(?ग)र्भितम् ॥ १४ ॥
कामबीजं ततो देवि लिखेत् सर्वाङ्गसंधिषु ।
पुष्पासवं मुखे दत्त्वा वसन्तसुन्दरीं जपेत् ॥ १५ ॥

षट्चक्र पर प्रतिमा बनाना—भूतदिवस (= मङ्गलवार) के दिन पशुरहित निर्जन स्थान में दोनों पक्षों में से किसी एकपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को मनोहर सिन्दूर ले आना चाहिये । लाये गये उस सिन्दूर से कच्चे शराव पर अष्टकोण कमल बनाये । उसके अन्दर षट्कोण चक्र बनाकर हे देवि! चक्र के अन्दर उसी सिन्दूर से प्रतिमा बनाये । प्रतिमा के कपोल पर साध्य का नाम मूलमन्त्र के साथ लिखे । हे देवि! उसके बाद सारे अङ्गों की सन्धियों में कामबीज लिखना चाहिये । तत्पश्चात् उस प्रतिमा के मुख में पुष्प का रस देकर वसन्तसुन्दरी मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ ११-१५ ॥

वसन्तसुन्दरीमन्त्रोद्धारः

काममिन्द्रं तुरीयं च बिन्दुनादसमन्वितम् ।
बीजं तद्भुवनेशान्या द्वादशस्वरबिन्दुकम् ॥ १६ ॥
ततस्तु नीलसुभगे हिलि हिलि ततः परम् ।
विच्चे स्वाहापदं दद्याद्विद्या वसन्तसुन्दरी ॥ १७ ॥
ध्यानं कृत्वा तु सुन्दर्या जीवन्यासं च कारयेत् ।
संविदानन्दहृदयः साधकः स्थिरमानसः ॥ १८ ॥
संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी ।

वसन्तसुन्दरी मन्त्र का उद्धार—कामबीज (= क) इन्द्र (= ल) तुरीय स्वर (= ई) को नाद बिन्दु से युक्त करे । फिर भुवनेश्वरी का बीज (= ह्रीं), बिन्दु सहित द्वादश स्वर (= ऐं) इसके बाद 'नीलसुभगे' फिर 'हिलि हिलि विच्चे स्वाहा' पद देना चाहिये । यह वसन्तसुन्दरी मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्लीं ह्रीं ऐं नीलसुभगे हिलि हिलि विच्चे स्वाहा) ।

त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान कर साधक स्थिरचित्त तथा संविदानन्दपूर्णहृदय होकर जीवन्यास करे क्योंकि संविद् और आसव इन दोनों में संविद् अधिक महत्त्वपूर्ण है ॥ १६-१८- ॥

संविद्योगः स्वकुलासादनोत्तरं जपश्च

संवि(द्यां?दं)योजयेद्देवि स्वयं चापि कुलेषु च ॥ १९ ॥
ताम्बूलपूरितमुखो रक्ताभरणभूषितः ।

रक्तासनोपविष्टस्तु स्वकुलं तूलिकोपरि ॥ २० ॥
वामभागे समासीनं रक्तवस्त्रविभूषितम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यं स्फुरच्चकितलोचनम् ॥ २१ ॥
जितामितकुचद्वन्द्वविशालकरिकुम्भकम् ।
तत्स्कन्धे बाहुमाधाय भङ्ग्या धृतकुचाञ्चले ॥ २२ ॥
प्रतिमायां ततो देवि पूर्ववन्न्यासमाचरेत् ।
पूर्वोक्तविधिना पूजा कर्तव्या वीरवन्दिते ॥ २३ ॥
ताम्बूलपूरितमुखं कुलं तदभिसं(श्लि?हि)तम् ।
ध्यानयोगेन मनसा लक्षमेकं तदा जपेत् ॥ २४ ॥

संविद् का योग और स्वकुलासादन के बाद जप—हे देवि! साधक को चाहिये कि वह अपने तथा कुल दोनों में संविद् को संयुक्त करे । साधक मुख में ताम्बूल लेकर लाल रंग के वस्त्र एवं आभूषण से भूषित होकर, लाल रंग के आसन पर बैठ जाय । रक्त वस्त्र से सुसज्जित समस्त शृङ्गार और वेषभूषा से सम्पन्न, चञ्चल चकित नेत्रों वाली तथा बड़े-बड़े दो स्तनों से हाथी के मस्तक को तिरस्कृत करने वाली उस कुल (= शक्ति) को अपने वाम भाग में गद्दे के ऊपर बैठाये । उसके कन्धे पर अपनी भुजा इस प्रकार रखे कि वह भुजा उसके स्तन का स्पर्श कर रही हो । हे देवि! ऐसा करने के बाद पूर्व की भाँति प्रतिमा के ऊपर न्यास करे । हे वीरवन्दिते! पूर्वोक्त विधि से पूजा करनी चाहिये । शक्ति को ताम्बूल खिलाकर उससे संसक्त होकर मन में त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करते हुए मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये ॥ १९-२४ ॥

परकुलानयनम्

शतयोजनसंस्थानां नदीपर्वतमध्यगाम् ।
द्वीपान्तरसहस्रेषु रक्षितां निगडादिभिः ॥ २५ ॥
पयोधरभारक्षुब्धगमनां श्यामलोचनाम् ।
नितम्बबिम्बविध्वस्तगुरुजघनमण्डनाम् ॥ २६ ॥
साधकाक्षि(त?प्त)हृदयां विवरान्तःप्रसर्पिणीम् ।
कवाटलौहसम्बद्धप्राकारविविधान्तरे ॥ २७ ॥
कुलाकुलजपं कृत्वा समानयति साधकः ।

दूसरे कुल का आनयन—कुलाकुल का जप करने वाला साधक एक सौ योजन दूर स्थित, नदी अथवा पर्वत के बीच स्थित, हजारों द्वीपों के मध्य कैद कर रखी गयी, बड़े-बड़े स्तनों के कारण क्षुब्ध गमन करने वाली, कृष्णाक्षी, नितम्ब के भार से झुके जघनों वाली, साधक के द्वारा आक्षिप्त हृदय वाली,

गुफा के अन्दर रेंगने वाली, लोहे के फाटकों वाली चार दीवारी में वन्द शक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥ २५-२७- ॥

होमान्तरवर्णनोपक्रमः

होमान्तरं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्ममयो भवेत् ॥ २८ ॥
शिवशक्तिमयं विद्धि चेतनाचेतनं जगत् ।
मम ज्ञानप्रभावेन दृष्टं यत् कथयामि ते ॥ २९ ॥
निर्जने शुद्धदेशे च शुद्धनाडीगणः शिवे ।
सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ ३० ॥
पद्मासनसमासीनः साधकः शुद्धचेतनः ।
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ३१ ॥

अतिरिक्त होम का वर्णन—अब मैं दूसरा होम बतलाऊँगा जिसके करने से साधक ब्रह्ममय हो जाता है । इस चेतनाचेतन संसार को शिवशक्तिमय जानो । मैंने अपने ज्ञान के प्रभाव से जो देखा वह तुम्हें बतला रहा हूँ । हे शिवे! निर्जन शुद्ध स्थान में, अपनी नाड़ियों को शुद्ध कर साधक समतल आसन पर बैठे । शरीर को सीधा रखे । सुखासन से बैठे । साधक पद्मासन लगाकर बैठे । मन को शुद्ध रखे । फिर पूरक कुम्भक और रेचक प्राणायामों से प्राणमार्ग को शुद्ध करे ॥ २८-३१ ॥

सुन्दरीमुद्रावर्णनम्

हस्तावाच्छाद्य आधारयोगदण्डावलम्बिनौ ।
नयने नासिकाप्रान्ते निमेषोन्मेषवर्जिते ॥ ३२ ॥
भ्रुवोर्मध्ये स्थितश्चात्मा दन्तैर्दन्तांस्तु संस्पृशेत् ।
ओष्ठेन चाधरं चैव जिह्वया चाथ तालुकम् ॥ ३३ ॥
एषा तु सुन्दरीमुद्रा सुन्दरीमोददायिनी ।

सुन्दरी मुद्रा—आधारयोग दण्ड तक लटकने वाले दोनों हाथों को परस्पर ढँक कर, दोनों आँखों को नाक के ऊपर निमेषउन्मेष से रहित कर रखे । अपना चित्त भौंहों के मध्य स्थिर करे । ऊपरी दाँतों से नीचे वाले दाँतों का स्पर्श किये रहे । ओष्ठ से अधर औ जिह्वा से तालु का स्पर्श करना—सुन्दरी मुद्रा कहलाती है । यह सुन्दरी को प्रसन्न करती है ॥ ३२-३३- ॥

देव्याःसान्निध्यं पूजा च

सहस्रारे परे पद्म आधारोत्थेन वायुना ॥ ३४ ॥

कुलदीपशिखाकारंसङ्क्षोभ्यामृतमण्ड(नं?लम्) ।
सुधाधारां स्मरेद् भूयः पतितां मूलपङ्कजे ॥ ३५ ॥
एवं स सप्तधा कुर्याद्देवीसांनिध्यहेतवे ।
मूलेन ध्यानयोगेन स्मृत्वा ब्रह्ममयीं पराम् ॥ ३६ ॥
हृदये पद्ममध्ये तु बाणलिङ्गे तु तेजसि ।
तत्राद्यां पूजयेद्देवीं हृदये कामरूपिणीम् ॥ ३७ ॥
पूरकेन समावाह्य संस्थाप्य कुम्भकेन तु ।
देहचक्रं समापाद्य दद्यात् पाद्यादिकं मुदा ॥ ३८ ॥
कुण्डलीपात्रसंस्थेन परमामृतवारिणा ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् पुनश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥
सहस्रदलभृङ्गा(या?र्याः)लुलितालुलिताच्च्युतम् ।
परमामृतपानीयं दद्यादाचमनं मुखे ॥ ४० ॥

देवी का सान्निध्य और पूजा—साधक मूलाधार से उठे प्राणवायु को सहस्रार पद्म में ले जाये । वहाँ उस वायु से कुलदीपशिखा के आकार वाले अमृतमण्डल को क्षुब्ध कर अमृत धारा को मूलाधार पद्म में गिरती हुई इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार सात बार करना चाहिये । इससे देवी का सान्निध्य प्राप्त होता है । मूलमन्त्र के जप तथा ध्यान के द्वारा ब्रह्ममयी परात्रिपुरसुन्दरी का स्मरण कर हृदयकमल के बीच स्थित तेजोमय बाणलिङ्ग में कामरूपिणी आद्यादेवी कामेश्वरी की पूजा करनी चाहिये । इस क्रम में पूरक के द्वारा आवाहन, कुम्भक के द्वारा स्थापन कर देहचक्र में आनन्द के साथ पाद्य आदि देना चाहिये । कुण्डली पात्र में स्थित परम अमृत जल से देवी के चरणों में पाद्य देकर तत्पश्चात् अर्घ्य देना चाहिये । सहस्रदल पात्र में गिरने वाले पानी को मुख में आचमन के रूप में देना चाहिये ॥ ३४-४० ॥

गन्धभावपुष्पादीनां वर्णनम्

षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं तु गन्धं दद्याद्विचक्षणः ।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमस्तेयमेव च ॥ ४१ ॥
दया पुष्पं क्षमा पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ।
अमोहं चाप्यमात्सर्यमविद्वेषं तथैव च ॥ ४२ ॥
अरागं च तथा सत्यं पुष्पाण्येवं विदुर्बुधाः ।
एतानि भावपुष्पाणि सदैव विनिवेदयेत् ॥ ४३ ॥
वायुं च धूपकं दद्यात्तेजो दीपं निवेदयेत् ।

सुराम्बुधिं तथा दद्याद्द्याच्च मांसपर्वतम् ॥ ४४ ॥
सूर्यं च दर्पणं दद्याच्चन्द्रं च च्छत्रमुत्तमम् ।
आनन्दाभरणं दद्यादम्बरं चामरं तथा ॥ ४५ ॥
अनाहतध्वनिमयीं घण्टामेतां निवेदयेत् ।
ततश्च साधकश्रेष्ठःऋ(?शृ)ङ्गारादिरसोद्भवैः ॥ ४६ ॥
नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत्परमेश्वरीम् ।

गन्ध भाव पुष्प आदि—विद्वान् साधक छत्तीस तत्त्वों का गन्ध के रूप में दे। अहिंसा और अस्तेय उत्तम पुष्प और दया क्षया इन्द्रिय निग्रह भी पुष्प हैं। साथ ही अमोह अमात्सर्य अविद्वेष अराग तथा सत्य को भी विद्वान् लोग पुष्प कहते हैं। इस भावपुष्पों को सदा देवी को समर्पित करना चाहिये। वायु को धूप तथा तेज को दीप के रूप में देना चाहिये। समुद्र को मद्य तथा पर्वत को मांस के रूप में देना चाहिये। सूर्य को दर्पण और चन्द्र को छत्र के रूप में समर्पित करना चाहिये। आनन्द आभरण और आकाश का चामर देना चाहिये। अनाहत ध्वनि को घण्टा के रूप में निवेदित करना चाहिये। इसके बाद श्रेष्ठ साधक शृङ्गार (=) आदि के रस से उत्पन्न नृत्य गीत वाद्य तथा शब्द की ध्वनि से देवी को सन्तुष्ट करे ॥ ४१-४६- ॥

सुन्दरीध्यानम्

ध्वनिना शब्दभेदेन तेज आकाशसंकुले ॥ ४७ ॥
सहस्त्रदलमध्ये तु चिन्तयेत्सुन्दरीं पराम् ।
भैरवानन्दलिङ्गं तु तन्मध्ये योनिसंयुतम् ॥ ४८ ॥
एकी(कायं? भावं)तयोः कृत्वा अमृतं(श्रा?स्रा)वयेत्ततः ।
जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं सदा ॥ ४९ ॥
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपौष्टिकम् ।

सुन्दरी ध्यान—तेज और आकाश से व्याप्त सहस्त्रदल कमल के मध्य परादेवी त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये। उस कमल के मध्य योनिसंयुक्त भैरवानन्द लिङ्ग का ध्यान करना चाहिये। उन दोनों अर्थात् योनि और लिङ्ग का ऐक्य कर उनसे अमृत की बूँदें गिरनी चाहिये। उस अमृत को जिह्वा से गले को संयुक्त कर पान करना चाहिये। योगी लोक उसी मद्य का पान करते हैं न कि गुड और पिष्टी के द्वारा तैयार किये गये मद्य का ॥ ४७-४९- ॥

पृथिव्यन्तर्गता आपस्तदन्तः शून्यमद्रिजे ॥ ५० ॥
शून्यमध्ये वसेद्वायुर्वाय्वन्तर्ध्वनिरीश्वरि ।

तदन्तर्नाद एवासौ नादान्तर्बिन्दुरीश्वरः ॥ ५१ ॥
तन्मध्ये तु परं ज्योतिः शिखा सूक्ष्मा परात्परा ।
विद्यु(च्चान?द्योत)नसङ्काशा सहस्रादित्यभास्वरा ॥ ५२ ॥
सुनयनातिसूक्ष्मा च निराकारा निरालया ।
परानन्दमयी पूर्णा सा भवेत् सुन्दरी परा ॥ ५३ ॥

हे अद्रिजे! पृथिवी के अन्दर जल और उसके अन्दर शून्य है । शून्य के मध्य वायु और वायु के अन्दर ध्वनि रहती है । उसके अन्दर नाद और नाद के भीतर बिन्दुरूपी ईश्वर रहते हैं । उस ईश्वररूपी बिन्दु के बीच त्रिपुरसुन्दरी रहती है जो परात्पर परमज्योतिः शिखासदृश, सूक्ष्म, विद्युत् की चमक के समान, सहस्रों सूर्य के समान आभा वाली, सुनयना अतिसूक्ष्म और पूर्ण है—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ ५०-५३ ॥

पार्थिवादीनां पार्थिवादौ लये पुण्यपापराहित्यम्

पार्थिवे पार्थिवानां च लयः कार्यःसमाधिना ।
अप्सु चापां लयः कार्यः शून्ये शून्यस्य वै तथा॥ ५४ ॥
लयो वायौ च वायूनां ध्वनौ ध्वनिं समर्पयेत् ।
ज्योतिषां च लयस्तत्र ब्रह्मण्येवं मनोलयः ॥ ५५ ॥
मनः करोति पापानि मनः पापेषु लिप्यते ।
मनसि चोन्मनीभूते न धर्मो न च पातकम् ॥ ५६ ॥
एवं भावनया हृष्टः परमानन्दनिर्भरः ।
संसारसागरं धीरो गोष्पदीकुरुते शिवे ॥ ५७ ॥
भुक्तिमुक्ती करे तस्य मम तुल्यो भवेद् भुवि ।

पार्थिव आदि का पार्थिव आदि में लय होने से पुण्य-पाप-राहित्य—साधक को चाहिये कि वह समाधि के द्वारा पार्थिव पदार्थों का पार्थिव अर्थात् पृथिवी में लय कर दे । इसी प्रकार जल का जल में लय, शून्य का शून्य में लय, वायु का वायु में लय और ध्वनि का ध्वनि में लय करना चाहिए । ज्योति का ज्योति में और मन का ब्रह्म में लय कर देना चाहिये । मन ही पाप करता है और मन ही पापों से लिप्त होता है । किन्तु जब मन उन्मना हो जाता है तब न धर्म है न पाप । हे शिवे! इस प्रकार की भावना से हर्षित तथा परमानन्दनिर्भर धीर पुरुष संसारसागर को गोष्पदी कर देता है अर्थात् गाय के द्वारा पार करने योग्य बना देता है । भोग और मोक्ष उसके हाथ में रहते हैं । पृथिवी पर वह मेरे सदृश हो जाता है ॥ ५४-५७- ॥

कुण्डहविषोः स्वरूपम्

पूजा ज्ञानमयी प्रोक्ता नतु होमस्तु तादृशः ॥ ५८ ॥
तद्रूपं विद्धि कुण्डस्य बिन्दुत्रिवलयात्मकम् ।
आनन्दमेखलारम्यं मात्रायोनिविभूषितम् ॥ ५९ ॥
तद्ब्रह्म परमं ध्यात्वा सर्वज्ञानविजृम्भिते ।
दीपितेऽग्नौ हुनेद्देवि प्रपञ्चहविरुत्तमम् ॥ ६० ॥
शब्दाख्या मातृका रूपमक्षरं तु विराजितम् ।
अक्षरं च हुतं चात्र निःशब्दं ब्रह्म जायते ॥ ६१ ॥
पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हविः शिवे ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हविस्तथा ॥ ६२ ॥
धर्माधर्महविर्दीप्ते आमाग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥ ६३ ॥

कुण्ड और हविष्य का स्वरूप—पूजा ज्ञानमयी कही गयी है किन्तु होम उस प्रकार का नहीं होता । कुण्ड के उस रूप को बिन्दु और त्रिवलय रूप जानो । आनन्द की मेखला से वह रमणीय तथा मात्रायोनि से विभूषित है । उस कुण्डरूप परब्रह्म का ध्यान कर साधक सर्वज्ञान से प्रज्वलित तथा दीप्त अग्नि में प्रपञ्चरूपी उत्तम हवि का हवन करना चाहिये । मातृका उसका शब्द है, अक्षर रूप है । इस अग्नि में अक्षर का होम करने पर ब्रह्म निःशब्द हो जाता है । हे शिवे! पुण्य और पाप कृत्य-अकृत्य सङ्कल्प-विकल्प धर्म अधर्म ये सब हवि हैं । धर्म-अधर्म रूप हवि से दीप्त आत्मारूपी अग्नि में मन रूपी स्रुक् से सुषुम्ना के रास्ते प्रतिदिन इन्द्रियों की वृत्ति का हवन करता हूँ ॥ ५८-६३ ॥

पूर्णहोमस्तत् फलवर्णनम्

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामव(लोक्यो?लम्ब्यो)न्मनास्रुचम् ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहम् ॥ ६४ ॥
वह्निजायान्वितं प्रान्ते मन्त्राभ्यां होमयेच्छिवे ।
निष्प्रपञ्चो यदा देवि जायते मन्त्रवित्तमः ।
तदा स चिन्मयः साक्षात्केवलं ब्रह्म साधकः ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शक्त्यानयनपूजातत्त्वादिनिरूपण-नामकः षट्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३६ ॥

◆

पूर्णा होम और उसका फल—प्रकाश और आकाश रूपी दो हाथों से उन्मना स्रुक् को पकड़कर धर्माधर्म की कलारूपी स्नेह की पूर्णहुति आत्माग्नि में डाल रहा हूँ । हे शिवे! अन्त में 'स्वाहा' युक्त दो मन्त्रों से आहुति देनी चाहिये । हे देवि! इस प्रकार होम करने से जब मन्त्रवेत्ता निष्प्रपञ्च हो जाता है तब वह साधक चिन्मय होकर साक्षात् ब्रह्म हो जाता है ॥ ६४-६५ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में शक्त्यानयनपूजातत्त्व-निरूपण नामक छत्तीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३६ ॥

◆

सप्तत्रिंशः पटलः

शक्तिमाहात्म्यदेहसिद्धिनिरूपणम्

शक्त्यासङ्गे मोक्षालाभशङ्का

देव्युवाच—

परदारपरिष्वङ्गात् तथा नीचाभिसङ्गमात् ।
प्रतिलोमाभिसङ्गाच्च पातकी जायते नरः ॥ १ ॥
शक्त्यासक्तः कथं देव मुक्तः स्यात्परमेश्वर ।
वेदशास्त्रपुराणेषु सैव मुक्तिविरोधिनी ॥ २ ॥
शक्तिर्हि जगतो मूलं सैव जगत्स्वरूपिणी ।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ३ ॥
सर्वा सर्वत्र देवेश गर्हिता सर्वकर्मसु ।
कथं तदुपयोग्यं स्यादिति वेदविदां स्थितिः ॥ ४ ॥

शक्ति के प्रति आसक्ति से मोक्ष का अलाभ—परस्त्रीगमन, नीच स्त्री का समागम और विलोम स्त्री के साथ सहवास से मनुष्य पातकी हो जाता है । हे देव! हे परमेश्वर! शक्ति में अतिरिक्त रखने वाला कैसे मुक्त होता है? क्योंकि वेद शास्त्र पुराण में वही मुक्ति की विरोधिनी बतलायी गयी है । शक्ति जगत् का मूलकारण है, वह जगत्स्वरूपिणी है । जिसने स्त्री का त्याग किया उसके द्वारा संसार का त्याग कर दिये जाने से वह सुखी हो जाता है । हे देवेश! सारी की सारी स्त्रियाँ सारे कर्मों में सर्वत्र निन्दित है । इसलिये उसका उपयोग कैसे होगा? ऐसा वेद पण्डितों का मानना है ॥ १-४ ॥

धर्मस्य गतेर्गूढत्वम्

ईश्वर उवाच—

इदं पुनर्महेशानि पुरैव प्रतिपादितम् ।
सूक्ष्मा गतिस्तु धर्मस्य मूढैस्तन्नावबुध्यते ॥ ५ ॥

ज्ञानाद्धि निर्मलं विश्वमज्ञानात् समलं प्रिये ।
वह्निरयं महादेवि सर्वगः सर्वभोजनः ॥ ६ ॥
स कथं देवतायज्ञे देवविद्भिर्निदेशितः ।
जलं चापि तथा प्रोक्तं तत् पूतं कथमद्रिजे ॥ ७ ॥
भृङ्गोपभुक्तपुष्पाणि मक्षिकोच्छिष्टकं मधुः ।
दूषणीयं सुरापानं कथं यज्ञे निदेशितम् ॥ ८ ॥
गोरसं च गवां सारं(म?तै)लं च बीजसम्भवम्।
कथं तद्विहितं दैवे पित्र्ये कर्मणि पार्वति ॥ ९ ॥
बीजनाशादनेकस्य विनाशं विद्धि सुव्रते ।
जायासु चैव सर्वासु तथा जातो जनिष्यते ॥ १० ॥
स सकृद्वैदिकैर्मन्त्रैः पूतो भवति पावकः ।
वैदिकैस्तान्त्रिकैः शुद्धा पवित्रेयं तथा सुरा ॥ ११ ॥
दूषणं नास्ति देवेशि महाविद्याप्रसाधने ।
यस्मिन् यत्र य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः ॥ १२ ॥
अत्र भ्रमो महान् दोषस्तस्माद्भ्रान्तिं त्यज प्रिये ।

धर्म की गति गूढ है—ईश्वर ने कहा—हे महेशानि! यह बात पहले ही बतला दी गयी है कि धर्म की गति अत्यन्त गूढ़ है । मूर्ख लोग उसको नहीं जानते । हे प्रिये! ज्ञान के कारण विश्व निर्मल (प्रतीत होता) है और अज्ञान के कारण समल । हे महादेवि! यह अग्नि सर्वगामी और सर्वभोजी है अर्थात् अशुद्ध पदार्थों पर भी रहता है गन्दे पदार्थों को भी जलाता है इसलिये वह स्वयं गन्दा है फिर वेदवेत्ता लोग देवता यज्ञ में उसका क्यों प्रयोग करते हैं? हे अद्रिजे! जल भी वैसा ही (अर्थात् शुद्धाशुद्धगामी है) उसे कैसे पवित्र माना जाता है? भृङ्ग के द्वारा उपयुक्त पुष्प, मधुमक्खी के द्वारा उच्छिष्ट मधु, दूषणीय सुरापान इसका यज्ञ में उपयोग क्यों विहित है? गोरस गायों का सार है (अर्थात् दूध गाय भैंस आदि पशुओं के रक्त का परिणाम है) तैल बीज से उत्पन्न होता है, हे पार्वति! फिर वह दैव पितृ कार्यों में कैसे विहित है । हे सुव्रते! बीज के नाश से अनेक का विनाश जानो । उसी प्रकार स्त्री में उत्पन्न पुरुष एक बार फिर स्त्री में (पुत्र-पुत्री के रूप में) उत्पन्न होता है । अग्नि (सर्वभक्षी है फिर भी) वह एक बार वैदिक मन्त्र का उच्चारण करने से पवित्र हो जाता है । उसी प्रकार यह अपवित्र सुरा वैदिकों एवं तान्त्रिकों के द्वारा पवित्र की जाती है । (इसलिये हे देवि! निष्कर्ष यह है कि) महाविद्या की सिद्धि करने में जहाँ जो आचार है वहाँ उस विषय में वही धर्म होता है । इसमें सन्देह करना ही महान् दोष है । अतः हे प्रिये! सन्देह को छोड़ दो ॥ ५-१२- ॥

द्वैतभावनाफलम्

अद्वैतभावरहितो द्वन्द्वचित्तोऽथ कामुकः ॥ १३ ॥
देवताभावरहितो लौल्यभावेन वा पुनः ।
परशक्तिं समागच्छेत् स भवेद्गुरुतल्पगः ॥ १४ ॥
संसाराम्बुनिधेः पारं करोति विधिना च सा ।
नरकाम्बुनिधौ शक्तिः क्षिपत्यविधिना शिवे ॥ १५ ॥
विना शक्तिं विना मद्यमद्वैतभावनां विना ।
महाविद्याक्रमो यद्वद्यज्ञो घृतविवर्जितः ॥ १६ ॥

द्वैत-भावना का फल—जो साधक अद्वैत भाव से रहित, सन्दिग्ध चित्त वाला, कामुक, स्त्री में देवता भाव से रहित होकर इन्द्रियचपलता के कारण परायी स्त्री के साथ समागम करता है वह मनुष्य गुरुस्त्रीगमन के पाप का भागी होता है । विधिपूर्वक अर्थात् शास्त्रोक्त विधि के अनुसार प्रयुक्त होने पर वह शक्ति संसार-सागर से पार ले जाती है । हे शिवे! शास्त्रविधि को छोड़कर स्वेच्छा से प्रयुक्त होने पर वह नरक में ढकेल देती है । विना शक्ति के, विना मद्य के और विना अद्वैतभावना के महाविद्या की साधना वैसी ही निष्फल होती है जैसे घृतरहित यज्ञ ॥ १३-१६ ॥

अद्वैतभावनाफलम्

द्वैतभावे महेशानि वर्णजातिविकल्पना ।
अद्वैतभावमापन्ने लीने मनसि ब्रह्मणि ॥ १७ ॥
कः कामः को भवेदिन्द्रः को ब्रह्मा को जनार्दनः ।
को देवः कोऽसुरो यक्षः पिशाचः कोऽमरः शिवे॥ १८ ॥
को द्विजः कोऽथवा शूद्रः को म्लेच्छः कोऽधमः शिवे ।
किं रूपं किं विरूपं वा को रोगी कोऽप्यनामयः ॥ १९ ॥
किं च मेध्यममेध्यं वा किं वा वस्त्वप्यवस्तु च ।
किं मित्रं किममित्रं च को वध्योऽवध्य एव वा ॥ २० ॥
किं च भक्ष्यमभक्ष्यं वा किं वा तव ममेति च ।
अविद्याकल्पितं चैतद्विद्यया च्छिन्दि संशयम् ॥ २१ ॥

अद्वैत भावना का फल—हे महेशानि! द्वैतभाव रहने पर ही वर्ण जाति की कल्पना होती है । जब मन अद्वैत भाव को प्राप्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है तो कौन काम और कौन इन्द्र है? कौन ब्रह्मा और कौन विष्णु? कौन देव कौन असुर? हे शिवे! कौन यक्ष पिशाच और अमर? कौन द्विज कौन शूद्र,

कौन म्लेच्छ और कौन अधम? हे शिवे! क्या सुरूप क्या विरूप कौन रोगी कौन नीरोग? क्या पवित्र और क्या अपवित्र? क्या वस्तु और क्या अवस्तु? क्या मित्र क्या अमित्र? क्या वध्य और क्या अवध्य? क्या भक्ष्य और क्या अभक्ष्य? क्या तुम्हारा क्या मेरा? यह सब भेद अविद्या के कारण कल्पित है। विद्या के द्वारा इस संशय को काट दो ॥ १७-२१ ॥

शक्तौ पराविद्या भावना

स्त्रियं मम परां विद्यामिति जानीहि पार्वति।
एकस्या बहुधा कृत्यमेकस्या बहुविग्रहम् ॥ २२ ॥
बहुरूपाणि देहांश्च (?ह्ये)कस्याएव निश्चितम्।
अद्वैतानन्दसंदोहो विद्ययैव प्रकाश्यते ॥ २३ ॥
शक्तियागेषु यन्मांसं तन्मांसममृतोपमम्।
पशुघातस्तदर्थं तु तद्विना ब्रह्महा भवेत् ॥ २४ ॥
द्वैतान् पशून्विजानीयादद्वैतान् ब्राह्मणान्विदुः।
अतज्ज्ञः स्तेयपापेन भुनक्ति बहुकिल्विषम् ॥ २५ ॥
मद्यपानं तु यज्ञेषु तद्विना पातकी भवेत्।
पवित्रं सकलं भद्रे वासना यद्यकुत्सिता ॥ २६ ॥

शक्ति के विषय में परा विद्या की भावना—हे पार्वति! स्त्री मेरी पराविद्या है—ऐसा जानना चाहिये। एक ही पराशक्ति के अनेक कार्य हैं; एक ही पराविद्या के अनेक शरीर हैं। बहुत से रूप और देह निश्चित रूप से एक के ही हैं। अद्वैत आनन्द का समूह विद्या के ही द्वारा प्रकाशित होता है। शक्तियाग में जिस मांस का प्रयोग किया जाता है वह मांस अमृत जैसा होता है। पशु का वध उसी के लिये किया जाता है। उसके विना साधक ब्रह्मघाती होता है। द्वैत भावापन्नों को पशु जानना चाहिये। अद्वैत भाव से युक्त मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानी समझना चाहिये। जो इस तथ्य को नहीं जानता वह चोरी के पाप से बहुत सारे पापफलों को भोगता है। शक्तियज्ञों में मद्यपान विहित है। उसके विना मद्यपान करने वाला याजक पातकी होता है। हे भद्रे! यदि मन की वासना मलिन नहीं है तो सब कुछ पवित्र है ॥ २२-२६ ॥

प्रकृतिपुरुषभावनया सर्वशुद्धिः

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
शरीरं दृश्यते यद्यत्तत्कर्म प्राकृतं शिवे ॥ २७ ॥
प्रकृत्या क्रियते कर्म साक्षी पुरुष उच्यते।

तन्मायामोहितः सोऽथ कर्ताहमिति मन्यते ॥ २८ ॥
न कर्ता पुरुषो देवी कर्त्री प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषे करणं नास्ति निर्गुणत्वात् सदा प्रिये ॥ २९ ॥
तथा करणकर्तृत्वं सगुणायां प्रतिष्ठितम् ।

प्रकृति-पुरुष की भावना से सबकी शुद्धि—हे शिवे! ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त स्थावर जङ्गम जो भी जगत् है इसमें जो-जो शरीर दिखलायी पड़ता है वह सब प्रकृति से उत्पन्न होता है । सारा कर्म प्रकृति करती है । पुरुष केवल द्रष्टा मात्र कहा जाता है । उस प्रकृति की माया (अर्थात् अज्ञानात्मिका बुद्धि) से मोहित पुरुष 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा मान लेता है । जबकि हे देवि! पुरुष कर्त्ता नहीं है बल्कि प्रकृति कर्त्री कही जाती है । हे प्रिये! सर्वदा निर्गुण होने के कारण पुरुष में करणत्व नहीं है । इस प्रकार करणत्व और कर्त्तृत्व सगुण प्रकृति में प्रतिष्ठित हैं ॥ २७-२९- ॥

यदिदं पुरुषे देवि कर्तृत्वमुपलक्ष्यते ॥ ३० ॥
स्फटिके निर्मले देवि(यवा?जपा)-रागमिवानघे ।
अहमाकाशवत्सर्वं बहिरन्तर्गतोऽच्युतः ॥ ३१ ॥
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः ।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परब्रह्माहमेव तत् ॥ ३२ ॥
ब्रह्मण्याधाय चित्तं तु कुर्वन् कर्म न लिप्यते ।
उभाभ्यामपि शक्यं स्यात्तर्तुं भवपयोनिधिम् ॥ ३३ ॥

हे देवि! पुरुष में जो यह कर्तृत्व उपलक्षित होता है वह स्वच्छ शुभ्र स्फटिक में जपा कुसुम के राग की भाँति (औपाधिक) है । आकाश की भाँति मैं सब कुछ हूँ । बाहर भीतर सर्वत्र मैं ही नित्य रूप से विद्यमान हूँ । मैं सदा सर्वसम शुद्ध असङ्ग निर्मल और अचल हूँ । जो सत्य ज्ञान अनन्त परब्रह्म है वह मैं ही हूँ—ऐसा चिन्तन करने वाला तथा अपने चित्त को ब्रह्म में लगा कर कर्म करने वाला कर्म-फल से उपलिप्त नहीं होता । संसाररूपी सागर को (ब्रह्मनिष्ठा तथा शक्तियाग) दोनों से पार किया जा सकता है ॥ ३०-३३ ॥

कौलेन संसारार्णवतारणम्

दक्षिणेनापि कौलेन दुःखेनापि सुखेन च ।
कुम्भसंस्तरणैस्तर्तुं पोतवर्येण वाम्बुधिम् ॥ ३४ ॥
तस्मा(दिमं न?दयं व)रः कौलो दक्षिणादपि सुव्रते ।
कुलज्ञानं विना देवि नैव मुक्तिः कदाचन ॥ ३५ ॥

कौलमार्ग से संसारार्णव का सन्तरण—दक्षिण मार्ग कौलमार्ग से दुःख-सुख के साथ कुम्भ संस्तरण रूपी पोत से संसार सागर को पार किया जा सकता है । इसलिये हे सुव्रते! कौलमार्ग दक्षिण मार्ग की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।[1] हे देवि! कुल ज्ञान के विना मुक्ति सम्भव नहीं है ॥ ३४-३५ ॥

शक्तेर्नानाभिधात्वम्

माया बलवती ह्येषा शक्तिर्गुणमयी तु या ।
प्रकृतिर्गीयते सा तु सांख्ययोगविशारदैः ॥ ३६ ॥
विद्याविद्येति सा प्रोक्ता वेदतत्त्वार्थदर्शिभिः ।
महाविद्येति सा कैश्चिन्महामायेति चापरैः ॥ ३७ ॥
शक्तिः सा सर्वभूतानामिति कैश्चिदुपास्यते ।
समुपासते सर्वे तां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३८ ॥
तस्या एव न मे भेदो विष्णोर्ब्रह्मण एव वा ।

शक्ति के अनेक नाम—(उपनिषदों में यह) बलवती माया कही गयी है । इसे गुणमयी शक्ति भी कहा गया है । सांख्ययोग वाले विद्वान् इसे प्रकृति कहते हैं । वेदतत्त्व को जानने वाले इसे विद्या-अविद्या कहते हैं । कुछ लोग इसे महाविद्या कहते हैं । अन्य लोग इसे महामाया कहते हैं । कुछ लोग समस्त प्राणियों की शक्ति के रूप में इसकी उपासना करते हैं । ब्रह्मा विष्णु शिव सब के सब उसकी उपासना करते हैं । मेरा विष्णु और ब्रह्मा का उससे कोई भेद नहीं है ॥ ३६-३८- ॥

शक्तेस्तोषणादेव मुक्तिर्नान्यथा

योगभोगतपःक्लेशैरानम्रैरभिनन्दिता ॥ ३९ ॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।
परितोष्य विधानेन येन तेनैव साधकः ॥ ४० ॥
संसारनिगडैर्बद्धः पुमान् विमुच्यते तया ।
तस्यास्तोषं विना देवि विमुक्तिर्नैव विद्यते ॥ ४१ ॥

शक्ति के सन्तुष्ट होने से ही मुक्ति, अन्यथा नहीं—योग भोग तपस्या, क्लेश तथा आनम्र अर्थात् भक्ति से आराधित एकमात्र वही मनुष्यों को भोग-स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है । साधक जिस विधान से उसे सन्तुष्ट करता है उसी से उसके

---

१. वेदाच्छैवं ततो वामं ततो दक्षं ततस्त्रिकम् ।
ततः परं कुलं प्रोक्तं कौलात् परतरं नहि ॥ (कुलार्णवतन्त्र)

द्वारा आबद्ध पुरुष संसारबन्धन से मुक्त होता है। हे देवि! उसकी तुष्टि के विना मुक्ति सम्भव नहीं है ॥ ३९-४१ ॥

शक्तिसमाश्रयणस्यावश्यकरणीयता तत्फलयोर्वर्णनम्

तन्निगृहीतचित्तानां पुंसां पुरुषपूजिते।
अतस्तां च प्रयत्नेन पुरुषा मुक्तिलिप्सव: ॥ ४२ ॥
समाश्रयन्ति योगाद्यैर्नित्यानन्दस्वरूपिणीम्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चाहमात्मवत्समुपास्महे ॥ ४३ ॥
तप:क्लेशैश्च तां देविपशुभावे स्थितो विधि:।
सन्तोष्य परया भक्त्या सावित्रीं वेदमातरम् ॥ ४४ ॥
इच्छाशक्तिं च वागीशीं लब्ध्वा सृष्टिमचीकरत्।
तनयां जगृहे मोहाद्ब्रह्मा पशुरुदारधी: ॥ ४५ ॥
तज्जुगुप्सितमन्याय्यमद्यापि न निवर्तते।
परशक्तिं पशुस्तस्मान्मनसापि न संस्मरेत् ॥ ४६ ॥

शक्ति-समाश्रयण की अवश्यकरणीयता और उसका फल—हे पुरुषपूजिते! उसके द्वारा आबद्ध चित्त वाले पुरुषों की मुक्ति विना उसकी कृपा के सम्भव नहीं है। अत: मुक्ति को चाहने वाले पुरुष नित्यानन्दस्वरूपिणी उस शक्ति का योग आदि उपायों के द्वारा आश्रय लेते हैं। ब्रह्मा विष्णु और मैं उसकी अपने से अभिन्न रूप में उपासना करते हैं। हे देवि! विधि अर्थात् ब्रह्मा ने पशुभाव में स्थित होकर तप क्लेश आदि से उसकी उपासना कर परा भक्ति के द्वारा उसे वेदमाता गायत्री को सन्तुष्ट कर इच्छाशक्तिरूपा वागीश्वरी को प्राप्त कर सृष्टि की। उदार चेता ब्रह्मा ने पशुभाव को प्राप्त कर मोहवश अपनी पुत्री का ग्रहण किया। वह घृणात्मक और अन्यायपूर्ण कृत्य आज भी उनसे दूर नहीं हो रहा अर्थात् ब्रह्मा आज भी उसे अपनी पत्नी बनाये हुए हैं। इसलिये पशुभाव में आबद्ध जीव को चाहिये कि वह मन से भी परायी स्त्री का स्मरण न करे ॥ ४२-४६ ॥

तद्भावमाश्रिता विप्रास्तामेव समुपासते।
मित्राणां सर्वभूतानां तेषां मद्यं घृतं पय: ॥ ४७ ॥
अपूपं पिष्टकं मांसं गृह्णीयु: शक्तिदापितम्।
अपि वा संविदासक्ता भवेयु: शक्तिमाश्रिता: ॥ ४८ ॥
दिव्यभावस्थितो विष्णुर्जगत्पालनरूपिणीम्।
मधुमैरेयभोगाद्यै: सन्तोष्यानन्दरूपिणीम् ॥ ४९ ॥
ज्ञानशक्तिमयीं लक्ष्मीं जगदाधाररूपिणीम्।

लब्ध्वा तु जगतः सोऽयं पालकोऽभून्निराकुलः ॥ ५० ॥
तद्भावमाश्रिता भूपास्तथैव तामुपासते ।

विप्रगण तद्भाव को प्राप्त कर उसी की उपासना करते हैं । समस्त प्राणियों के मित्र स्वरूप वे ब्राह्मण शक्ति के द्वारा दिये गये मद्य, घृत, दुग्ध, मालपुआ-हलुआ, पीठी, मांस को स्वीकार करें । अथवा संविद् में आसक्त होकर शक्ति के आश्रित हो जाँय । विष्णु भी दिव्यभाव को प्राप्त होकर जगत्पालनरूपिणी आनन्दस्वरूपा उस शक्ति को मधु मदिरा भोग आदि से सन्तुष्ट कर ज्ञानशक्तिमयी जगदाधाररूपिणी लक्ष्मी को प्राप्त कर निराकुल होकर संसार के पालक बन गये । राजा लोग भी उसी भाव को प्राप्त कर उसी प्रकार अर्थात् कौलविधि से उसकी उपासना करते हैं ॥ ४७-५०- ॥

दिव्यभावगोपने हेतुवर्णनम्

अथ देवाश्च दैत्याश्च मुनयो मानुषाः परे ॥ ५१ ॥
विष्णुमेव हि सततं भजन्ते भावसिद्धये ।
स च भावविशुद्धात्मा तद्भावं तु जुगोप ह ॥ ५२ ॥
ये(नि?न)न्दन्ति च तद्भावं गोपयन्ति च सर्वदा ।
ते वै प्रियतमाः सर्वे शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ५३ ॥
तद्भावादिमुखान् कर्तुं लोकांल्लोकेश्वरो हरिः ।
इदमादिष्टवान् देवि मामेव जगदीश्वरः ॥ ५४ ॥

दिव्यभाव के गोपन में हेतु—देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य लोग उस भाव अर्थात् दिव्यभाव की प्राप्ति के लिये निरन्तर भगवान् विष्णु की ही उपासना करते हैं और उन विष्णु ने दिव्यभाव के कारण विशुद्धहृदय होकर उस भाव को छिपा लिया । जो लोग उस दिव्य भाव की प्रशंसा करते हैं तथा उसे गुप्त रखते हैं वे सब शङ्खचक्रगदाधारी विष्णु के अत्यन्त प्रिय होते हैं । हे देवि! लोकेश्वर विष्णु ने लोगों को उस भाव से विमुख करने के लिये ही मुझे यह आदेश दिया ॥ ५१-५४ ॥

भगवानुवाच—

सर्वे दिव्या भविष्यन्ति मद्भावे हि प्रकाशिते ।
पशुभावं पुरस्कुर्वन् मद्भावं च(?मद्भावस्य)विनिन्दकः ॥ ५५ ॥
आगमैः कल्पितैर्देव मद्भावाद्विमुखान् कुरु ।

भगवान् ने कहा—मेरे भाव अर्थात् दिव्य भाव के प्रकाशित होने पर सब लोग दिव्य हो जायेंगे इसलिये हे देव! पशुभाव को सामने रखकर मेरे भाव अर्थात्

दिव्य भाव के निन्दक होकर आप, कल्पित आगमों के द्वारा लोगों को मद्भाव से विमुख करो ॥ ५५- ॥

वैष्णवदर्शने पशुभावपूजाहेतुवर्णनम्

ईश्वर उवाच—

तदाज्ञां शिरसि धृत्वा विष्णोरमिततेजसः ॥ ५६ ॥
तथैवाहं महेशानि कृतवांस्तन्त्रविस्तरम् ।
गोपयन्दिव्यभावं च पुरस्कुर्वन् पशोर्मतम् ॥ ५७ ॥
अत एव महेशानि वैष्णवे दर्शने खलु ।
पूजितः पशुभावश्च शक्तिनिन्दा च वि(स्मृ?स्तृ)ता ॥ ५८ ॥

वैष्णव-दर्शन में पशुभाव पूजा का हेतु—ईश्वर ने कहा—अमित तेजस्वी विष्णु की उस आज्ञा को शिर पर धारण कर हे महेशानि! उसी प्रकार मैंने तन्त्र का विस्तार किया । मैंने दिव्य भाव को छिपा दिया और पशुभाव को लोगों के सामने रखा । हे महेशानि! इसीलिये वैष्णव दर्शन में पशुभाव की प्रशंसा और शक्तियाग की निन्दा विस्तार से की गयी ॥ ५६-५८ ॥

शक्तेर्द्वैविध्यम्

या शक्तिः सर्वभूतानां द्विधा भवति सा पुनः ।
स्थूलरूपा च सा देवी सूक्ष्मरूपा च पार्वति ॥ ५९ ॥
स्थूलरूपेण सा देवी सर्वमेतज्जगत्त्रयम् ।
मोहयित्वा जनान्सर्वान् बहुरूपा सुखेच्छया ॥ ६० ॥
संस्थिता परमेशानि लीलाकलितविग्रहा ।
स्वभावतो न जानन्ति तन्मायामोहिता जनाः ॥ ६१ ॥
केचित्तां तु प्रहाराद्यैः कटूक्तिभाषणैस्तथा ।
ताडयन्ति च वै मूढा जना निरयगामिनः ॥ ६२ ॥
केचित्तां भूषणाच्छादैः सम्भोगैरपि सेवया ।
पूजयन्ति हि ते धीराश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः ॥ ६३ ॥
तेषां विप्रियकर्तारः पतिष्यन्ति सुनिश्चितम् ।

शक्ति के दो भेद—जो समस्त प्राणियों की शक्ति है वह पुनः दो प्रकार की है । हे पार्वति! वह देवी स्थूलरूपा और सूक्ष्मरूपा है । स्थूलरूप से वह देवी तीनों लोकरूपा है । अपनी आनन्दमयी इच्छा से वह सम्पूर्ण लोगों को सम्मोहित कर हे परमेशानि! लीलावश अनेक शरीर धारण की हुई है । उसकी माया से

मोहित मनुष्य लोग उसको स्वभावतः नहीं जानते । कुछ लोग जो कि मूर्ख और नरकगामी होते हैं दण्ड आदि तथा गाली आदि के द्वारा उसे प्रताडित करते हैं और कुछ लोग जो धीर और चतुर्वर्ग के साधक हैं; उसे आभूषण आदि पहनाकर उसके साथ सम्भोग के द्वारा उसे सेवा से प्रसन्न कर उसकी पूजा करते हैं । उनको कष्ट देने वाले निश्चित रूप से पतित होते हैं ॥ ५९-६३- ॥

सूक्ष्मरूपां च तां विद्धि सर्वेषा(न्तमद?मन्त)रस्थिताम् ॥ ६४ ॥
त्रैलोक्यजननीं देवीं मुख्येन ब्रह्मवर्त्मना ।
योजयित्वा परानन्दे परमानन्दरूपिणीम् ॥ ६५ ॥
तयोर्योगाद्यदमृतं तर्पयेत्तेन योगिनीम् ।
प्राणधारणया देवि शुद्धनाडीमनाः सुधीः ॥ ६६ ॥
प्राणान्प्रवेशयेन्नाड्या तन्मुखे चैव तान् हुनेत् ।
तद्वक्त्रे वायुना भिन्ने याति चोर्ध्वं परेश्वरी ॥ ६७ ॥
तस्मादाकृष्य तद्वायुं कुम्भयित्वा तु सञ्चयेत् ।

सूक्ष्मरूपा उसको सबके अन्दर स्थित जानो । हे परानन्दे! त्रैलोक्यजननी, परमानन्दरूपिणी उस देवी को मुख्य ब्रह्ममार्ग से परानन्द में जोड़ने पर उन दोनों के योग से जो अमृत टपकता है उस अमृत से योगिनी को तृप्त करना चाहिये । हे देवि! विद्वान् साधक शुद्ध नाडी और शुद्ध चित्त होकर प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना नाडी से प्राणों को प्रविष्ट कराकर उस योगिनी अर्थात् कुल कुण्डलिनी के मुख में उन प्राणों की आहुति दे । प्राणवायु के द्वारा उस कुण्डलिनी का मुख खुलने पर वह परमेश्वरी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ऊपर की ओर चढ़ती है । उससे उस वायु को खींचकर कुम्भक के द्वारा सञ्चित करे ॥ ६४-६७- ॥

संचितैर्वायुभिस्तां च कुलवर्त्मविहारिणीम् ॥ ६८ ॥
सहस्रारे महापद्मे सितदीधितिमण्डले ।
समुन्नीय परे हंसे तयोरैक्यं धिया स्मरेत् ॥ ६९ ॥
होमाद्यं विहितं तत्र चन्द्रसूर्यात्मकं तयोः ।
स्रुक्स्रुवौ च समादाय जुहुयादव्ययं हविः ॥ ७० ॥
मूलाधारे परे चक्रे शक्तिर्या कुण्डली शुभा ।
तद्भ्रमावर्ततोऽयं च बहिर्याति दिने दिने ॥ ७१ ॥
दिनेशाङ्गुलिमानेन तदर्धं चोपवासतः ।
द्विगुणं रतिकाले स्यात् त्रिगुणं भोजनाद्बहिः ॥ ७२ ॥
अत ऊर्ध्वं वहेद्देवि त्रिदिनं यदि मारुतः ।
न्यूनं वा तदधः- प्राणः शरीरं परिमुञ्चति ॥ ७३ ॥

उस सञ्चित वायु के माध्यम से कुलमार्ग में सञ्चरण करने वाली कुलकुण्डलिनी को श्वेत किरणों वाले सहस्रार नामक महाकमल में ले जाकर परमहंस में रखे तथा उन दोनों अर्थात् कुण्डलिनी या जीवचैतन्य और परमहंस अर्थात् शिवचैतन्य के ऐक्य का ध्यान करे । वहाँ होम आदि का विधान होता है। उन दोनों को स्रुक् और स्रुवा के रूप में ग्रहण अर्थात् समझ कर चन्द्र सूर्यात्मक अव्यय हवि का होम करना चाहिये । मूलाधार नामक परचक्र में जो शुभ कुण्डली है उसके भ्रमावर्त्त अर्थात् ऊपर नीचे गमनागमन से यह अर्थात् प्राण प्रतिदिन बाहर जाता है । इस समय इसकी गति दिनेशाङ्गुलिमान अर्थात् १२ अङ्गुल की होती है । उपवास करने से उसका यह आधा अर्थात् ६ अङ्गुल तक प्रसृत होता है । रतिकाल में दोगुना अर्थात् २४ अङ्गुल और भोजन के बाद तीन गुना अर्थात् ३६ अङ्गुल आवर्त्तन करता है । हे देवि! यदि प्राणवायु तीन दिनों तक इससे अधिक प्रवाहित हो अथवा कम अर्थात् छह अंगुल से कम या ३६ अंगुल से अधिक प्रवाहित होता है तो तीन दिन के अन्दर यह प्राण शरीर को छोड़ देता है ॥ ६८-७३ ॥

यावत्कालं वहेदेतद्वायुश्च जगदीश्वरः ।
तावच्चलति देहोऽयं तद्विना चाचलः स्मृतः ॥ ७४ ॥
निश्चलं पवनं कृत्वा योगी भवति साधकः ।
वायुना नीयते बाह्ये मनस्तु प्राणिना शिवे ॥ ७५ ॥
वायौ च सुस्थिरीभूते मनोऽपि स्थिरतां वहेत्।
तयोरद्वैतभावे तु निश्चलत्वं गते द्वयोः ॥ ७६ ॥
देहं निरामयं विद्धि यथाकामविलासिनम् ।
इह स्थित्वा यथाकामं संत्यज्य च कलेवरम् ॥ ७७ ॥
अद्वैतभावमापन्नो न स पुनरिहाव्रजेत् ।

जगत् का स्वामी यह प्राण जब तक शरीर में तथा बाहर प्रवाहित होता रहता है तब तक शरीर चलता अर्थात् जीवित रहता है । उसके बिना यह अचल अर्थात् मृत माना जाता है । इस प्राणवायु को निश्चल अर्थात् स्थिर बनाकर साधक योगी हो जाता है । हे शिवे! प्राणियों का मन वायु के द्वारा बाह्य विषयों की ओर जाता है । वायु के स्थिर होने पर मन भी स्थिरता को प्राप्त होता है । उन दोनों अर्थात् मन और प्राण के अद्वैत होने पर परिणामतः दोनों के निश्चल होने से देह को नीरोग तथा इच्छानुसार विलासी समझो । इस संसार में इच्छानुसार निवास करने के बाद शरीर छोड़ने पर अद्वैत भाव को प्राप्त वह अर्थात् योगी फिर इस संसार में नहीं आता ॥ ७४-७७- ॥

प्रसङ्गात् कथिता देवि देहसिद्धिरनुत्तमा ॥ ७८ ॥
येन तेन विधानेन परितुष्टा महेश्वरी ।
संसारनिगडैर्बद्धः पुमान्विमुच्यते तया ॥ ७९ ॥
तस्यास्तोषं विना देवि विमुक्तिर्नैव विद्यते ।
अनिगृहीतचित्तस्य पुरुषस्य महेश्वरि ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शक्तिमाहात्म्यदेहसिद्धिवर्णननामकः सप्तत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३७ ॥

◆

हे देवि! प्रसङ्गवश देह की सर्वोत्तम सिद्धि बतलायी गयी । जिस मनुष्य के द्वारा पूर्वोक्त विधान के अनुसार परमेश्वरी सन्तुष्ट हो जाती है, उस परमेश्वरी के द्वारा संसार-बन्धन में आबद्ध जीव मुक्त कर दिया जाता है । हे देवि! हे महेश्वरि! अनिगृहीतचित्त पुरुष की उसके सन्तोष के विना मुक्ति नहीं होती ॥ ७८-८० ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में शक्तिमाहात्म्य-देहसिद्धि नामक सैतीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

◆

अष्टात्रिंशः पटलः

शिवशक्तिप्राप्तिनिरूपणम्

भोगेनैव शक्तेस्तोषः प्रसन्नता च

ईश्वर उवाच—

बहुकालं पूजिता तु तुष्टा स्यांत्सूक्ष्मरूपिणी ।
यथा तुष्यति भोगेन तपोयोगैश्च न तथा ॥ १ ॥
अतो भोगेन तां तोष्य तया मुक्तो भवेत्सुखी ।
मया चापि पुरा देवि सेविता योगवर्त्मना ॥ २ ॥
परितुष्टा न मे देवी सूक्ष्मरूपान्तरस्थिता ।
शक्तिहीनं च मां वीक्ष्य वनिताविमुखं तथा ॥ ३ ॥
विषण्णवदनो ब्रह्मा हृदयेन विदयूता ।
चिन्तावशमुपाविष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥
मामासाद्य तथा विष्णुं ययौ क्षीरपयोनिधिम् ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे रत्नद्वीपे सुशोभिते ॥ ५ ॥
तत्र स्थित्वावयोर्मध्ये ब्रह्मा ध्यानपरोऽभवत् ।

भोग से ही शक्ति सन्तुष्ट और प्रसन्न होती है—ईश्वर ने कहा—बहुत समय तक पूजित होने पर वह सूक्ष्मरूपिणी शक्ति सन्तुष्ट होती हैं । वह शक्ति भोग से जैसी तुष्ट होती है तप और योग से वैसी नहीं । इसलिये साधक को चाहिये कि वह भोग के द्वारा उसे सन्तुष्ट कर उसकी कृपा से मुक्त हो जाय । हे देवि! मैंने भी पहले योगमार्ग से उसकी सेवा की किन्तु सूक्ष्मरूप में स्थित देवी सन्तुष्ट नहीं हुई । मुझे शक्तिहीन और स्त्रीविमुख देखकर ब्रह्मा खिन्न हो गये । हृदय में सन्तप्त होते हुए चिन्ता के वश में प्राप्त लोकपितामह ब्रह्मा मुझे लेकर क्षीरसागर में स्थित विष्णु के पास गये । क्षीरसागर के उत्तर में वर्तमान सुन्दर रत्नदीप में स्थित होकर हम दोनों में से ब्रह्मा ने ध्यान लगाया ॥ १-५- ॥

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थे देवीपादसरोरुहे ॥ ६ ॥
मनो निधाय योगात्मा देवीसूक्तं परं जगौ ।
व्यतीते बहुकालेऽथ देवी त्रिभुवनेश्वरी ॥ ७ ॥
शूलपाशधरा देवी किरीटादिविमण्डिता ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च बालार्ककिरणारुणा ॥ ८ ॥
दर्शयामास स्वं रूपं तस्य तुष्टा सदा शिवे ।
प्रसन्नां तां समालोक्य स्रष्टा सर्वजगद्गुरुः ॥ ९ ॥
भक्त्या विनम्रवदनस्तुष्टाव च ननाम च ।

हृदयकमल के मध्य बैठी देवी के चरणों में मन को लगा कर योगयुक्तात्मा ब्रह्मा ने देवीसूक्त का पाठ किया । बहुत समय व्यतीत होने पर देवी त्रिभुवनेश्वरी हाथ में त्रिशूल और पाश धारण की हुई, मुकुट आदि से अलंकृत, चार भुजाओं तथा तीन नेत्रों वाली, बाल रवि की किरणों के समान अरुण रूपा ने सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा को अपने रूप का दर्शन कराया । हे शिवे! तब उस देवी को प्रसन्न देखकर सर्वजगत् के गुरु ब्रह्मा ने भक्ति के साथ नम्रशिर होकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की ॥ ६-९- ॥

ब्रह्मकृता स्तुतिः

ब्रह्मोवाच—

त्वं सावित्री च वाग्देवीत्वं श्रीः सर्वजगत्प्रसूः ॥ १० ॥
स्वाहा त्वं देवयज्ञेषु पितृयज्ञेषु च स्वधा ।
सुधा त्वं देवलोकेषु हविस्त्वं खलु मानुषे ॥ ११ ॥
त्वं विद्याश्चैव मन्त्राश्च वेदास्त्वं हि(सु?स्व) रात्मिका ।
अर्धमात्रात्मिका त्वं वै यानुच्चार्या विशेषतः ॥ १२ ॥
त्वमेव परमा शक्तिर्जगत्कारणरूपिणी ।
विचार्याष्टाङ्गयोगेन लक्षणाद्यैर्मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥
यत् स्थिरीक्रियते देवि तत्ते रूपं सनातनम् ।
यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मनः ॥ १४ ॥
रूपं तवैव तत् सूक्ष्मं सकलं च जगन्मयम् ।
या सृष्टिशक्तिरस्माकं स्थितिशक्तिस्तथा हरेः ।
अन्तशक्तिस्तथेशस्य सा त्वं शक्तिः सनातनी ॥ १५ ॥

ब्रह्मा के द्वारा की गयी स्तुति—तुम सावित्री, वाग्देवता श्री और जगत्प्रसविनी हो । तुम देवयज्ञों में स्वाहा और पितृयज्ञों में स्वधा हो । देवलोक में

तुम सुधा और मनुष्यलोक में हविष् हो । तुम्ही विद्यायें तुम्हीं मन्त्र और तुम्ही स्वरात्मक वेद हो । तुम्हीं अर्धमात्रास्वरूप अतएव विशेष रूप से अनुच्चार्य हो । तुम्हीं जगत्कारणरूपिणी परमाशक्ति हो । हे देवि! अष्टाङ्गयोग के द्वारा लक्षण आदि से बार-बार ध्यान कर जो तुम्हारा रूप चित्त में स्थिर किया जाता है वही सनातन है । परमात्मा का जो अव्यक्त अनिर्देश्य निष्कल रूप है वही तुम्हारा सूक्ष्म और सकल विश्वमय रूप कहा गया है । हमारी जो सृष्टि करने की शक्ति, हरि की जो स्थितिशक्ति तथा ईश की जो संहार-शक्ति है वह सनातनी तुम्हीं हो ॥ १०-१५ ॥

त्वं जातवेदोगता शक्तिरुग्रा
त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः ।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकाया-
स्तां त्वामहं नौमि नमामि चाम्बिकाम् ॥ १६ ॥
योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम्।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः ॥ १७ ॥
यथा प्रकाश्यते ब्रह्म सा त्वं नित्या प्रसीद मे ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजा ॥ १८ ॥
अनन्तात्सर्वजगतस्त्वमेवैकान्तरूपिणी ।
एका त्वं त्रिविधा भूत्वा मो(क्ष?ह)संहारकारिणी ॥ १९ ॥
संसारसागरोत्तारतरणिः सुखमोक्षदे ।
त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचरमोहिनी ॥ २० ॥
नमस्ते जगतां मातः सृष्टिरूपे सनातनि ।
स्थितिरूपे नमस्तुभ्यं नमः संहाररूपिणि ॥ २१ ॥
एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना ।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ २२ ॥

अग्नि में निहित उग्र शक्ति तुम्हीं हो, सूर्य की किरणों की दाहिका शक्ति तुम्हीं हो, चन्द्रिका की आह्लादिका शक्ति भी तुम हो, मैं उस अम्बिका के सामने प्रणत हूँ और उसे प्रणाम करता हूँ । तुम कान्ताप्रियों की कान्ता, ब्रह्मचारियों की विद्या, समस्त जगत् की इच्छा तथा विष्णु की माया हो । जिसके द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होता है वह नित्या तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ । तुम अनादि होती हुई विश्व की आदि हो । अयोनिजा होती हुई भी विश्व की योनि हो, अनन्त सम्पूर्ण संसार की तुम एकान्त अर्थात् अन्तिम स्थिति हो । एक ही तुम तीन प्रकार की होकर मोह का संहार करती हो । हे सुख और मोक्ष देने वाली! तुम संसारसागर

से पार ले जाने वाली नौका हो । तुम नित्य भी हो और अनित्य भी । तुम चर-अचर दोनों को मोह में डालने वाली हो । हे संसार की माता! हे सृष्टिरूपे! हे सनातनि! तुम्हें नमस्कार है । हे स्थितिरूपे! तुम्हें नमस्कार है । हे संहाररूपिणि! तुमको नमस्कार है । ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार स्तुति की गयी वह देवी ब्रह्मा के सामने प्रत्यक्ष प्रकट हो गयी ॥ १६-२२ ॥

देवीद्वारा ब्रह्मणे वरप्रदानम्

देव्युवाच—

परितुष्टास्मि लोकेश स्तोत्रेणानेन ते विभो ।
वरं वृणीष्व भद्रं मे यत्ते मनसि वर्तते ॥ २३ ॥

देवी ने कहा—हे प्रभो! हे लोकेश! तुम्हारी इस स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ । जो तुम्हारे मन में है उस कल्याणकृत वर को मुझसे माँगों ॥ २३ ॥

ब्रह्मणा वरयाञ्चा

ईश्वर उवाच—

मां समीक्ष्य वरं वव्रे जगत्संहारकारकम् ।
सृष्टिशक्तिं मयि त्वं च विष्णौ पालनरूपिणीम् ॥ २४ ॥
संहारशक्तिमीशाने देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।
एकश्चरति भूतेशो न द्वितीयां समीहते ॥ २५ ॥
तथा मोहय सर्वेशं, दारान् स्वयं जिघृक्षति ।

ब्रह्मा के द्वारा वरयाचना—ईश्वर ने कहा—जगत् के संहारकारक मुझे देखकर उन्होंने वर माँगा । हे माता! मुझमें सृष्टिशक्ति, विष्णु में पालन शक्ति तथा ईशान में संहार शक्ति दो । आपको नमस्कार है । यह भूतेश शिव अकेले विचरण करते रहते हैं दूसरी स्त्री की इच्छा नहीं करते । इन सर्वेश को ऐसा मोह में डालो कि ये स्वयं दारपरिग्रहण की इच्छा करने लगें ॥ २४-२५- ॥

देव्या ब्रह्मणे वरदानम्

देव्युवाच—

यदुक्तं भवता ब्रह्मंस्तच्च सत्यं न चान्यथा ॥ २६ ॥
मोहयित्वाहमीशानं सतीरूपेण शङ्करम् ।
संहरिष्यामि लोकेश जगदेतच्चराचरम् ॥ २७ ॥
तत्रापि तां तनुं त्यक्त्वासम्भविष्यामि पार्वति ।
इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणे परमेश्वरी ॥ २८ ॥

वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्ट्रा तत्रैवान्तरधीयत ।

देवी के द्वारा ब्रह्मा को वरदान—देवी ने कहा—हे ब्रह्मन्! जो आपने कहा वह सत्य हो जाय अन्यथा न हो । हे लोकेश! मैं सती रूप से ईशान शिव को मोहित कर इस चराचर जगत् का संहार करूँगी । उसके पश्चात् इस शरीर को भी त्याग कर पार्वती होऊँगी । परमेश्वरी ने इस प्रकार ब्रह्मा से कहकर ब्रह्मा के देखते-देखते अन्तर्हित हो गयी ॥ २६-२८- ॥

विष्णुना महादेवाय वीरभावनिर्देशः

तस्यामन्तर्हितायां च ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २९ ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुमाह प्रजापतिः ।
संहारकरणे योग्यं वीरभावं च यद्भवेत् ॥ ३० ॥
तन्निवेशय महादेवे विष्णो लोकेषु दुर्लभम् ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ३१ ॥
आदिष्टवान् मयि भद्रे वीरभावं सुदुर्लभम् ।
वीरभावे स्थितः सोऽहं मातस्त्वां समुपास्महे ॥ ३२ ॥

विष्णु के द्वारा महादेवी को वीरभाव का निर्देश—उनके अन्तर्हित होने पर लोकपितामह प्रजापति ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर विष्णु से कहा—हे विष्णो! जो वीरभाव संहार करने में सक्षम होता है लोक में दुर्लभ उस भाव का महादेव में निवेश करें । हे भद्रे! भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के ऐसे वचन को सुनकर सुदुर्लभ वीर भाव को मेरे अन्दर आविष्ट कर दिया । हे माता! वीरभाव में स्थित वह मैं तुम्हारी उपासना करता हूँ ॥ २९-३२ ॥

ईश्वरकृता देवीप्रार्थना

अद्यापि परमेशानि मातस्तुभ्यं नमो नमः ।
प्रकृतिः सर्वभूतानां त्वं हि सर्वजगत्प्रसूः ॥ ३३ ॥
या(मुक्तिः?मूर्तिः)मम देवेशि क्षितिरूपा तु गीयते ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः ॥ ३४ ॥
या मे मूर्तिर्द्वितीया च जलमयीति कथ्यते ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः ॥ ३५ ॥
आग्नेयी या तृतीया मे जगत्क्षोभणकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः ॥ ३६ ॥
चतुर्थी वायवी मूर्तिः सृष्टिसंहारकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः ॥ ३७ ॥

ईश्वरकृत देवी-प्रार्थना—हे परमेशानि! हे माता! तुमको नमस्कार है। तुम समस्त प्राणियों की प्रकृति और सारे संसार की प्रसविनी हो। हे देवेशि! जो मेरी मूर्त्ति पृथिवीरूपा कही जाती है वह तुम्हीं हो। वह मेरी मूर्त्ति नहीं है और न मैं वह अर्थात् क्षिति हूँ। हे माता! यह सत्य है। आपको बार-बार नमस्कार है। जो मेरी दूसरी जलमयी मूर्त्ति कही जाती है वह तुम्हीं हो। वह जलमयी मूर्त्ति मेरी नहीं है। न मैं वह मूर्त्ति हूँ। हे माँ! यह सत्य है। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो जगत् को क्षुब्ध करने वाली अग्नि नामक तीसरी मेरी मूर्त्ति है वह तुम्हीं हो। वह मेरी मूर्त्ति नहीं है और न मैं वह हूँ। हे माता! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। चौथी जो वायु की मूर्त्ति है सृष्टिसंहार करने वाली है वह तुम्हीं हो। वह मेरी मूर्त्ति नहीं है न मैं वह हूँ। हे माता! यह सत्य है। आपको नमस्कार नमस्कार है॥ ३३-३७॥

पञ्चमी या च सर्वेषां परिणामस्वरूपिणी।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः॥ ३८॥
षष्ठी या सर्वदेवानामाप्यायनीति गीयते।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः॥ ३९॥
सप्तमी मम मूर्त्तिर्या जगदाह्लादकारिणी।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः॥ ४०॥
अष्टमी मम मूर्त्तिर्या स्थितिसंहारकारिणी।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः॥ ४१॥
न चैवाहं न मे किंचिद्यदिह जगतीतले।
त्वयैवेदं जगद्व्याप्तं जगत् सर्वं त्वमेव हि॥ ४२॥

पाँचवी जो सबकी परिणामस्वरूपा है वह तुम्हीं हो। वह मेरी मूर्त्ति नहीं है मैं भी वह नहीं हूँ। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। छठीं मूर्त्ति जो देवों की आप्यायनी अर्थात् तृप्तिकर्त्री कही जाती है वह तुम्हीं हो। वह मेरी मूर्त्ति नहीं है और न मैं वह हूँ। हे मातः! यह सत्य है। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। जगत् का आह्लादन करने वाली जो मेरी सातवीं मूर्त्ति है अर्थात् चन्द्रमा, वह तुम्हीं हो। वह मैं नहीं हूँ वह मेरी मूर्त्ति नहीं है। हे माता! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। इस धरती पर जो कुछ है वह मैं नहीं हूँ न मेरा कुछ है। तुम्हारे ही द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। तुम्हीं यह सम्पूर्ण संसार हो॥ ३८-४२॥

देव्या शम्भवे विश्वरूपदर्शनम्

देव्युवाच—

मया सर्वं जगद्व्याप्तं वत्स सत्यं प्रभाषसे।

ममैवैतेऽवताराश्च मत्स्यकूर्मादयोऽपरे ॥ ४३ ॥
त्वमेवाहं न चान्योऽसि ब्रह्माहं विष्णुरप्यहम् ।
अहमेव जगत् सर्वं नास्ति किंचिन्मया विना ॥ ४४ ॥
यत्तु पश्यसि हे वत्स यत् किंचिज्जगतीतले ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमहमेव न संशयः ॥ ४५ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
इत्युक्त्वा दर्शयामास शम्भवे जगदीश्वरी ॥ ४६ ॥
स्वशरीरे जगत्कृत्स्नं सम्प्रविष्टमनेकधा ।
दृष्ट्वा जगन्मयीं प्राह शम्भुर्मायाविमोहितः ।
मामुद्धर जगन्मातर्मोहसागरमध्यतः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवस्य शक्तिप्राप्तिनिरूपणनामकोऽष्टात्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३८ ॥

◆

देवी के द्वारा शिव को विश्वरूप-दर्शन—देवी ने कहा—हे वत्स! मेरे द्वारा समस्त जगद् व्याप्त है यह तुम सत्य कहते हो । मत्स्य कूर्म एवं अन्य अवतार मेरे ही हैं । तुम भी मैं ही हो । दूसरा नहीं । ब्रह्मा भी मैं हूँ विष्णु भी मैं ही हूँ । मैं ही सम्पूर्ण संसार हूँ । मेरे विना कुछ नहीं है । हे वत्स! जो तुम देख रहे हो या जो कुछ पृथिवीतल पर है ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त वह मैं ही हूँ । इसमें कोई सन्देह नहीं । आज मेरी इसी शरीर में सम्पूर्ण चर-अचर विश्व को एक स्थान पर स्थित देखो । ऐसा कहकर जगदीश्वरी ने शङ्कर को अपने शरीर में सम्पूर्ण जगत् को अनेक प्रकार से प्रविष्ट दिखलाया । जगन्मयी को देखकर माया से विमोहित होकर शम्भु ने कहा—हे जगन्मातः! मोहसागर के मध्य से मुझे उबारो ॥ ४३-४७ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में शिवशक्तिप्राप्ति-निरूपण नामक अँड़तीसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

◆

ऊनचत्वारिंशः पटलः

देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णनम्

देव्या महादेवाय ज्ञानोपदेशः

जगन्मय्युवाच—

मा विषीद महादेव सर्वथा त्वं स्थिरो भव ।
कुलज्ञानी कथं त्वं हि भावज्ञानी कथं पुनः ॥ १ ॥
इत्येवं त्वं मया पृष्टस्त्वमात्मानं न विस्मर ।
तदानन्दमयं धाम स्वविद्याभेदसङ्गतम् ॥ २ ॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव नित्यौ द्वौ समुपस्थितौ ।
सगुणाधिबला देवी निर्गुणो निर्गलः पुमान् ॥ ३ ॥
अविद्यानाद्यरूपा सा मदंशा भेदरूपिणी ।
सिसृक्षयापि नीचास्य सविधे समुपस्थिता ॥ ४ ॥
सिसृक्षया मया पूर्वं प्रार्थितः पुरुषः खलु ।
मामानन्दय सानन्दमित्युक्त्वा धर्षितः प्रभुः ॥ ५ ॥

देवी के द्वारा महादेव को ज्ञानोपदेश—जगन्मयी ने कहा—हे महादेव! आप दुःखी मत होइये । सर्वथा स्थिर चित्त हो जाइये । आप क्यों कुलज्ञानी और भावज्ञानी हो रहे हैं? इस प्रकार मेरे द्वारा पूछे जाने पर अपने को मत भूल जाओ । वह आनन्दमय धाम आत्मविद्या के अभेद से सङ्गत है अर्थात् आत्मज्ञान और आनन्द अभिन्न है । पुरुष और प्रकृति दो नित्य पदार्थ हैं । देवी अर्थात् प्रकृति सगुण होने से अधिक बलवती है । पुरुष निर्गुण है अतएव निर्बल है । जो अनादि अविद्या है भेदरूपिणी वह मेरा ही अंश है । सृष्टि करने की इच्छा से नीच भी यह इस पुरुष के पास उपस्थित हो गयी । मैंने सिसृक्षा के कारण इस पुरुष से प्रार्थना की थी कि मुझे आनन्द के साथ आनन्दित करो । ऐसा कहकर मैंने उन्हें प्रबल तथा प्रेरित किया ॥ १-५ ॥

मया धर्षितमात्रोऽसौ बभूव सगुणो विभुः ।
तत्तदानन्दसंदोहै(रा?:सा)नन्दाहं पुनः पुनः ॥ ६ ॥
जडत्वादुभयोर्देव शून्यभावमुपागतम् ।
अथानन्दात्मनोर्जाता शक्तिराद्या सनातनी ॥ ७ ॥
गुणत्रयमयी सा तु बिन्दुत्रयस्वरूपिणी ।
अधः कृत्वा तु पुरुषं हकारार्धस्वरूपिणी ॥ ८ ॥
विपरीतेन रमते वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणी ।
अशिरस्कहकारान्त्यमशेषाकारसंस्थितम् ॥ ९ ॥
अन्तश्चरमजस्त्रं तं स्वमात्मानमुपास्महे ।
बिन्दुत्रये महादेव सर्गमेतत् प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
पञ्चभूतमयं विद्धि चासत्यं सत्यवद्भ्रमः ॥ ११ ॥

मेरे द्वारा धर्षित होने पर वह विभु सगुण हो गये । तत्तत् आनन्दसमूहों के द्वारा मैं भी सानन्द की गयी । हे देव! (आनन्दातिशय के कारण) दोनों के जड होने से हम दोनों के अन्दर शून्यभाव आ गया । फिर आनन्दस्वरूप दोनों से सनातनी आद्याशक्ति उत्पन्न हुई । वह त्रिगुणमयी और बिन्दुत्रयस्वरूपिणी है । अर्धहकार-स्वरूपा वह पुरुष को नीचे कर अग्निइन्दुसूर्यरूपिणी बनकर विपरीत रति के क्रम से रमण करती है । शिर = अं अर्थात् अनुस्वार से रहित हकारान्त्य = अन्तिम ह तक, अशेष अकार में संस्थित है अर्थात् 'अ' से लेकर 'क्ष' तक की सम्पूर्ण मातृका अपने अन्दर अर्थात् आत्मा में निरन्तर सञ्चरण करती रहती है (?) अथवा अ से लेकर ह तक अहं-अहं भाव अपने अन्दर चलता रहता है (?) ऐसे अन्तश्चारी की मैं निरन्तर उपासना करता हूँ । हे महादेव! इन तीन बिन्दुओं में यह पूरी सृष्टि स्थित है । ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त इस स्थावर जङ्गम जगत् को पञ्चभूतमय जानो । यह असत्य है । सत्य जैसी प्रतीति भ्रम है ॥ ६-११ ॥

पृथिवीयं महादेव प्राकृती नतु(कस्तुरी?वास्तवी) ।
ब्राह्मणी नैव चाण्डाली नैव दैवी न मानुषी ॥ १२ ॥
रसमात्रं जलं विद्धि न द्विजं न च पुक्कसम् ।
रूपमात्रं तु यत्तेजस्तत्र किं जातिकल्पना ॥ १३ ॥
स्पर्शमात्रं तु यद्वायुर्नोत्तमो नाधमः खलु ।
शब्दमात्रं यदाकाशं विभोस्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

नीचतां कल्पते देवि मूढोऽज्ञानविजृम्भितः ।
एभिः पञ्चभिरारब्धं देहं स्थावरजङ्गमम् ॥ १५ ॥
पञ्चानां सन्निपातं यत् न ब्राह्मणं न पुक्कसम् ।
तदसत्यं विजानीयात् सत्यं ब्रह्म न तन्न तत् ॥ १६ ॥

हे महादेव! यह पृथिवी प्रकृति से उत्पन्न है, वास्तवी नहीं है । यह न ब्राह्मणी है न चाण्डाली, न दैवी और न मानुषी । जल को केवल रस समझो न ब्राह्मण न पुक्कस । जो तेज रूप मात्र है उसमें जाति की क्या कल्पना । वायु स्पर्शमात्र है । वह न उत्तम है न अधम । हे देवि! जो आकाश शब्दमात्र है उस व्यापक महात्मा के बारे में अज्ञानविजृम्भित मूर्ख ही नीचता की कल्पना करता है अर्थात् आकाश उच्च नीच नहीं है । स्थावर जङ्गम यह देह भी इन्हीं पाँच तत्त्वों से बना है । जो उक्त पाँच महाभूतों का सङ्घट्ट है वह न ब्राह्मण है न पुक्कस । इसे असत्य समझना चाहिये । केवल ब्रह्म ही सत्य है और यह शरीर ब्रह्म नहीं है । अतएव सत्य नहीं है ॥ १२-१६ ॥

देहाद्भिन्नः शिवो देही परमानन्दरूपवान् ।
तद्ब्रह्मेति च यो विद्यात् स एव ब्राह्मणो मतः ॥ १७ ॥
यदिदं लक्ष्यते देव पञ्चभूतात्मविग्रहे ।
वायुभिरिन्द्रियग्रामे प्रेरिते पञ्चभिः शिवम् ॥ १८ ॥
कर्तृत्वमात्मनो देव तदविद्याभ्रमो महान् ।
व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥ १९ ॥
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ।
आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ॥ २० ॥
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः ।
देहेन्द्रियगुणान् कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ॥ २१ ॥
अध्यास्यात्माविवेकेन गगने नीलतामिव ।

देह से भिन्न शिव देह वाला अर्थात् आत्मा है । यह परमआनन्दस्वरूप है । यह ब्रह्म है—ऐसा जो जानता है वही ब्राह्मण माना गया है । हे देव! जो यह पञ्चभूतात्मक शरीर में दिखायी देता है वह प्राण आदि पाँच वस्तुओं के द्वारा इन्द्रिय- समूह के प्रेरित होने पर ऐसा दिखता है । यह शिव ही है । हे देव! जो आत्मा को कर्त्ता माना जाता है वह अविद्या के कारण महान् भ्रम है । इन्द्रियों के व्यापारवान् होने पर यह आत्मा जो व्यापारवान् समझा जाता है यह अविवेकियों की समझ है । यह उसी प्रकार भ्रम है जैसे कि आकाश में बादलों के दौड़ने पर

चन्द्रमा दौड़ता हुआ दिखलायी पड़ता है । देह इन्द्रिय मन बुद्धि ये सब आत्मा के चैतन्य को आधार बनाकर अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त होते हैं जैसे कि सूर्य के प्रकाश के आधार पर मनुष्य । निर्मल सच्चिदानन्द रूप आत्मा में देह-इन्द्रिय के गुणों तथा कर्मों को आरोपित कर सारे कार्य होते हैं जैसे कि आकाश में नीलता ॥ १७-२१- ॥

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ॥ २२ ॥
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः ।
रागेच्छासुखदुःखादि (वृ?बु)द्धौ सत्यां प्रवर्तते ॥ २३ ॥
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशस्तस्माद् बुद्धेस्तु नात्मनः ।
प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ॥ २४ ॥
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः ।
आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृ(द्धि?त्ति)रिति द्वयम् ॥ २५ ॥
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ।
आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ॥ २६ ॥

अज्ञान के कारण मन के उपाधिभूत कर्त्तृत्व भोक्तृत्व आदि आत्मा में उसी प्रकार कल्पित होते हैं जैसे जलचन्द्र का बिम्ब पानी की चञ्चलता के कारण चञ्चल दिखलायी देता है । राग इच्छा सुख दुःख आदि बुद्धि के होने पर प्रवृत्त होते हैं । सुषुप्ति में ये इच्छा आदि नहीं रहते क्योंकि उस समय बुद्धि का नाश हो जाता है । इस कारण ये राग आदि बुद्धि के धर्म हैं आत्मा के नहीं । बुद्धि में प्रकाश अर्थात् ज्ञान नहीं होता । जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का शैत्य है और अग्नि का स्वभाव उष्णता है उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय होना नित्य निर्मल होना आत्मा का स्वभाव है । आत्मा का सच्चित् अंश और बुद्धि की वृत्ति अर्थात् सच्चिदाकार रूप में परिणाम, इन दोनों को अज्ञान के कारण मिला देने से 'मैं जानता हूँ' ऐसा मानकर मनुष्य प्रवृत्त होता है । आत्मा में कभी विकार नहीं होता और बुद्धि को कभी ज्ञान नहीं होता (क्योंकि ज्ञान या चैतन्य आत्मा का धर्म है) ॥ २२-२६ ॥

जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ।
रज्जुसर्पवदात्मानं ज्ञात्वा जीवो भयं वहेत् ॥ २७ ॥
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्च निर्भयो भवेत् ।
आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि हि ॥ २८ ॥
दीपो घटादिवत् स्वात्मजातैस्तैर्नावभास्यते ।

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपस्य चात्मनः ॥ २९ ॥
न दीपस्य तु दीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने ।
निषिध्य निखिलोपाधिं नेतिनेतीति वाक्यतः ॥ ३० ॥
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ।

जीव सारे मलों (= आणव मायीय और कार्म) को जानकर 'मैं कर्त्ता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ' इस धारणा से मोहित रहता है । यह जीव आत्मा को रज्जु में सर्प की भाँति (उसे अन्यथा जानकर) भयभीत रहता है । मैं जीवात्मा (= पाशबद्ध चैतन्य) नहीं हूँ वरन् परमात्मा (= नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध और नित्यमुक्त स्वभाव वाला) हूँ ऐसा ज्ञान होने से निर्भय हो जाता है । एक अकेला आत्मा बुद्धि आदि तथा इन्द्रिय आदि को प्रकाशित करता है । (वह बुद्धि इन्द्रिय आदि से अवभासित नहीं होता) जैसे कि दीप अपने जातीय दीप से उसी प्रकार प्रकाशित नहीं होता जैसे कि घट स्वजातीय मृत् से उत्पन्न घट आदि से भासित नहीं होता । बोध रूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा को अपना स्वरूप-ज्ञान होने पर अन्य के बोध अथवा अन्य के द्वारा बोध की इच्छा नहीं होती । जैसे कि दीप को अपने को प्रकाशित करने के लिये दीपान्तर की इच्छा नहीं होती । 'नेति नेति' (= ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और कुछ नहीं है) इस वाक्य से शरीर आदि समस्त उपाधियों को निषिद्ध कर महावाक्यों[१] के द्वारा जीवात्मा परमात्मा के ऐक्य को जानना चाहिये ॥ २७-३०- ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षणम् ॥ ३१ ॥
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ।
देहान्मम विभिन्नत्वान्न मे जन्मजरादयः ॥ ३२ ॥
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ।
अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ॥ ३३ ॥
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादिश्रुतिशासनात् ।
निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः ॥ ३४ ॥
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ।
नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् ॥ ३५ ॥
सत्यं ज्ञानमयं यत्तत् परं ब्रह्माहमेव तत् ।
एवं निरन्तरं कृत्वा ब्रह्मैवास्मीति वासना ।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥ ३६ ॥

---

[१] महावाक्य चार हैं—अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि ।

यह शरीर आदि अविद्यामूलक है। यह बुद्बुद् की भाँति एक क्षण के लिये दृश्य है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य के विषय ब्रह्म को इससे विलक्षण जानना चाहिये। मेरे अर्थात् आत्मा के देह से भिन्न होने के कारण मुझे जन्म जरा आदि नहीं है। मेरे निरिन्द्रिय होने से मेरा शब्द आदि विषयों से सम्बन्ध नहीं है। मेरा मन से भी कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिये मुझे सुख दुःख राग द्वेष भय आदि भी नहीं है (क्योंकि सुख आदि का अनुभव मन करता है) 'अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः' इत्यादि श्रुति-वचन से मैं निर्गुण निष्क्रिय नित्य निर्विकल्प निरञ्जन निर्विकार निराकार निर्मल और नित्य मुक्त हूँ। जो नित्यशुद्ध नित्यमुक्त एक अखण्ड आनन्द अद्वय है, जो सत्य ज्ञानमय परब्रह्म है, मैं वही हूँ। ऐसा निरन्तर सोचकर 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी वासना अविद्या के विक्षेपों को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे रसायन रोग को ॥ ३१-३६ ॥

शम्भुरुवाच—

देहाद्भिन्नः कथं ह्यात्मा कीदृशः कुत्र संस्थितः।
कथं वा ज्ञायते ब्रह्म तन्मे वद जगन्मयि ॥ ३७ ॥

शम्भु ने कहा—आत्मा देह से भिन्न कैसे है? वह कैसा है और कहाँ स्थित है? ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता है? हे जगन्मयि! यह सब मुझे बताओ ॥ ३७ ॥

जगन्मय्युवाच—

अवच्छिन्न इवाज्ञानात् तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ३८ ॥
अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ३९ ॥
संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्कुलः।
अबोधे सत्यवद्भाति सुबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ४० ॥
तावत् सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ४१ ॥
सच्चिदात्मन्यनुस्यूतानित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ४२ ॥
यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे त्वेकवद्भवेत् ॥ ४३ ॥

जगन्मयी ने कहा—अज्ञान के कारण यह सीमित अथवा आवृत जैसा रहता है। उस अवच्छेदक का नाश हो जाने पर यह आत्मा केवली हो जाता है और

बादलों के नष्ट होने पर सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित होता है । पौरुष अज्ञान से मलिन जीव को पौरुष ज्ञान के अभ्यास से निर्मल बनाकर यह पौरुष ज्ञान स्वयं उसी प्रकार से नष्ट हो जाता है जैसे पानी को स्वच्छ कर फिटकिरी का चूर्ण । संसार स्वप्न के समान है । आत्मज्ञान के न रहने पर यह राग-द्वेष आदि के कारण सत्य जैसा प्रतीत होता है, सुबोध होने पर यह असत्य हो जाता है । शुक्ति में जैसे रजत् वैसे ही जगत् (ब्रह्म में) तब तक सत्यवत् प्रतीत होता है जब तक सर्वाधार अद्वय ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता । सत् चित्स्वरूप नित्य विष्णु में अनुस्यूत अनेक प्रकार के व्यक्ति प्रकल्पित हैं (वास्तविक नहीं)। जैसे कि स्वर्ण में कटक कुण्डल आदि । जैसे हृषीक अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी व्यापक आकाश अनेक उपाधियों (= घट पट आदि) से अवच्छिन्न होकर उस उपाधि के भेद से भिन्न जैसा (= घटाकाश पटाकाश के रूप में) भिन्न प्रतीत होता है और उपाधि के नष्ट होने पर एक जैसा हो जाता है (वही स्थिति संसार और ब्रह्म की भी है) ॥ ३८-४३ ॥

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णविभेदवत् ॥ ४४ ॥
पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसंचितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ४५ ॥
पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥ ४६ ॥
अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यदात्मानमवधारय ॥ ४७ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानमहमेव तथात्मनि ।
सर्वभूतानि संचिन्त्य चिन्तयस्वैकमेव हि ॥ ४८ ॥
उत्पत्तिप्रलयाभ्यां च न सदिदं निशामय ।
मनः करोति पापानि मनः पापेन लिप्यते ।
मनस्युन्मननीभूते न धर्मो न च पातकम् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवस्य देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णन नामक ऊनचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ३९ ॥

◆

अनेक उपाधि के कारण जाति वर्ण आश्रम आदि आत्मा में आरोपित हैं । यह उसी प्रकार है जैसे जल में (मिश्री नमक आदि उपाधि के कारण मधुर

लवण रस अथवा लाल पीला रंग मिला देने से जल का अनेक रंग)। पञ्चीकृत महाभूत[१] से उत्पन्न कर्म के द्वारा सञ्चित यह शरीर सुख दुःख आदि भोगों का आयतन[२] अर्थात् आधार या घर कहा जाता है। पञ्चप्राण मन बुद्धि दश इन्द्रियाँ उस प्रकार सत्रह अवयवों से युक्त, अपञ्चीकृत भूतों से बना हुआ, सूक्ष्म अङ्गों वाला भोग का साधन ही शरीर है। अनादि अनिर्वाच्य अविद्या कारणोपाधि कही जाती है। आत्मा को तीनों उपाधियों[३] से भिन्न समझो। यह आत्मा समस्त भूतों में विराजमान है। मैं भी वैसा अर्थात् समस्त भूतों में विराजमान हूँ। आत्मा में समस्त भूत वर्त्तमान है। ऐसा सोचकर सब एक है यह समझो। यह संसार उत्पत्ति और प्रलय के कारण (नश्वर है) सत् नहीं यह सुनो अर्थात् जानो। मन ही पाप करता है। मन ही पाप से लिप्त होता है। मन जब उन्मनीभूत हो जाता है तब न पुण्य है और न पाप ॥ ४४-४९ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णन नामक ऊनतालीस पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३९ ॥

* * *

---

[१] तुलनीय—भोगायतनं शरीरम्। (न्यायसूत्र)

[२] आकाश = १/२ + वायु १/८ + तेज १/८ + जल १/८ + पृथिवी १/८—यह पञ्चीकृत आकाश है। इसी प्रकार अन्य वायु आदि भूतों को समझना चाहिये।

[३] मन-बुद्धि-अहङ्कार। सत्त्व-रजस-तमस्। इच्छा-ज्ञान-क्रिया। शरीर-इन्द्रिय-विषय। सत्-चित्-आनन्द।

चत्वारिंशः पटलः

शिवशक्तिमयज्ञानकुलमार्गनिरूपणम्

शम्भुरुवाच—

कथ्यतां देवदेवेशि व्यक्तीभूतावुभौ कथम् ।
शिवशक्तिमयं ज्ञानं कथं वा जायते तथा ॥ १ ॥

शिव ने कहा—हे देवदेवेशि! यह बतलाइये कि (शिव और शक्ति) दोनों व्यक्त कैसे हुए? शिवशक्ति का ज्ञान कैसे होता है ॥ १ ॥

शिवशक्त्योर्भेदेऽप्यभिन्नत्वम्

जगन्मय्युवाच—

पुंभावः शिव इत्याहुः स्त्रीभावः प्रकृतिः परा ।
शिवो ज्ञानमयो देहे शक्तिर्बुद्धिमयी परा ॥ २ ॥
शुक्रं शिवो महामेदः शक्तिः कुण्डलिनी त्विति ।
लिङ्गं शिवस्तथा शक्तिर्योनिर्जगति दृश्यते ॥ ३ ॥
इत्येवं त्रिपुरा शक्तिरित्येवं त्रिपुरः शिवः ।
नानयोर्विद्यते भेदो या शक्तिः स शिवो ध्रुवम् ॥ ४ ॥
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः ।
न तद्भूतस्तयोर्भेदश्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥ ५ ॥

शिवशक्ति भिन्न होकर भी अभिन्न है—शरीर में पुरुष भाव शिव है और स्त्री भाव परा प्रकृति है । शिव ज्ञान-स्वरूप है जबकि पराशक्ति बुद्धिमयी है । महामेदस् का परिणाम शुक्र शिव है, कुण्डलिनी शक्ति है । इस संसार में लिङ्ग शिव तथा योनि शक्ति दिखलायी पड़ती है । इसी प्रकार त्रिपुरसुन्दरी शक्ति है और त्रिपुरभैरव शिव हैं । इन दोनों में कोई भेद नहीं है । जो शक्ति है वह शिव है । शिव के बिना शक्ति नहीं और शक्ति शिव से रहित नहीं । चन्द्र और उसकी

चन्द्रिका के समान उन दोनों में कोई भेद नहीं है ॥ २-५ ॥

शिवशक्त्योर्जगदभिन्नत्वम्

एवं तौ सर्वभूतेषु द्विधाभूतौ व्यवस्थितौ ।
तस्मान्नास्ति तयोर्भिन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥
पिता माता सुतश्चेति भावोऽयं विविधो (मु?मृ)षा ।
स्वाविद्यासुदृढाभ्यासाद् दृढीभूतो हृदि स्थितः ॥ ७ ॥
गुरुवाक्येन तं विद्याद् दृढाभ्यासेन मानवः ।
जीवन्मुक्तः सर्वभूतमयो भवति वै ध्रुवम् ॥ ८ ॥
शरीरं विविधाङ्गं मे कथ्यते शृणु सादरम् ।
ब्रह्मैवाहं न चान्योऽस्मि शरीरमेतदेव हि ॥ ९ ॥

जगत् शिवशक्ति से भिन्न नहीं है—इस विधि से वे दोनों समस्त प्राणियों में दो रूप से स्थित हैं । इस कारण यह चराचर जगत् उन दोनों से भिन्न नहीं है । यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता हैं और यह मेरा पुत्र है इस प्रकार का विविध भाव व्यर्थ है । अपने अज्ञान के सुदृढ़ अभ्यास के कारण यह भाव दृढ़ रूप से हृदय में स्थित है । मनुष्य गुरुवाक्य के श्रवण तथा दृढ़ अभ्यास से जीवन्मुक्त हुआ निश्चित रूप से सर्वभूतमय हो जाता है । मैं अपने अनेक अङ्गों वाले शरीर का वर्णन कर रही हूँ । आदर के साथ सुनो । मैं ब्रह्म ही हूँ अन्य नहीं । यह शरीर भी वही है ॥ ६-९ ॥

चैतन्यस्य वर्णादिरूपेणाभिव्यक्तिः

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ।
वर्णरूपेण तद्व्यक्तं मन्त्रविद्यादिभेदतः ॥ १० ॥
कुङ्कुमागुरुकस्तूर्या रोचनाचन्दनेन्दुभिः ।
प्रकाश्य तव पीठे तु शक्त्यन्तःस्थं यथा भवेत् ॥ ११ ॥
तत्र पूजा सदा कार्या तत्तद्वर्त्मविधानतः ।

चैतन्य की वर्ण आदि के रूप में अभिव्यक्ति—समस्त प्राणियों में रहने वाला चैतन्य शब्दब्रह्मरूप है । मन्त्र विद्या आदि के भेद से वह वर्णरूप में अभिव्यक्त होता है । कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी, गोरोचन, चन्दन और इन्दु अर्थात् कपूर के द्वारा तुम्हारे पीठ पर उसे इस प्रकार लिखना चाहिये कि शक्ति उसके अन्दर स्थित हो । उस पीठ पर शास्त्रोक्त तत्तत् विधि के अनुसार सदा पूजा करनी चाहिये ॥ १०-११- ॥

देवानां नानाविधशरीरवर्णनम्

सर्वेषामेव देवानां मन्त्रमाद्यं शरीरकम् ॥ १२ ॥
पूजयेत्तद् गुरुमन्त्रदेवतात्मस्वरूपतः ।
द्वितीयं कथ्यते देव यत्पुनर्ध्यानगोचरम् ॥ १३ ॥
कृत्वा रत्नमयं रूपं शुद्धकाञ्चननिर्मितम् ।
प्रत्यहं पूजयेद्देवममुत्र मासि मासि च ॥ १४ ॥
वार्षिकं त्वथ वा कुर्यान्महोत्सवमनुत्तमम् ।
विमुखो दम्भमाश्रित्य द्रव्यनाशवशादुत ॥ १५ ॥
महोत्सवविधौ यो मे (स्व?स) स्याद्भग्नमनोरथः।
विमुखास्तस्य दुर्बुद्धे पितरः सामरा गणाः ॥ १६ ॥
तस्मात्परदिने प्राप्ते बोधयित्वा विधानतः ।
प्रत्यहं पूजयेद्भक्त्या पूर्णं तस्या महोत्सवम् ॥ १७ ॥

देवों के अनेक प्रकार के शरीर का वर्णन—मन्त्र समस्त देवताओं का प्रथम शरीर है । गुरु मन्त्र देवता एवं आत्मा के रूप में अर्थात् इनको एक समझकर पूजा करनी चाहिये । हे देव! दूसरा शरीर बतलाया जा रहा है । यह ध्यान का विषय है । रत्नजटित शुद्ध सोने की मूर्त्ति बनाकर प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये । अथवा महीने-महीने अथवा एक वर्ष में एक बार उत्तम महोत्सव के साथ पूजा करनी चाहिये । जो मनुष्य दम्भ के कारण अथवा द्रव्य खर्च होने के डर से मेरे उत्सव से विमुख होता है उसके मनोरथ पूर्ण नहीं होते । उस दुर्बुद्धि के पितृगण तथा देवगण आदि उससे विमुख हो जाते हैं । इसलिये पर अर्थात् शुभ दिन प्राप्त होने पर देवी का उद्‌बोधन कर प्रतिदिन भक्ति के साथ पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार उसका महोत्सव पूर्णता अर्थात् पूर्णा तिथि तक करनी चाहिये ॥ १२-१७ ॥

तृतीयं कथ्यते यन्त्रं रात्नं वा हेमनिर्मितम् ।
मदात्मरूपमात्रं तु विदित्वा सद्गुरोर्बुधः ॥ १८ ॥
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्मदात्मा मदभेदतः ।
चन्दनागुरुकस्तूर्या रोचनाचन्द्रकुङ्कुमैः ॥ १९ ॥
कुलपुष्पैश्च संलिख्य त्वदुक्तविधिना यजेत् ।
वाराहस्कन्धजैर्दर्भैरनुलेपं विघर्षयेत् ॥ २० ॥
वाराहदेहजैर्दर्भैः कुर्यान्मलविघर्षणम् ।
प्रीतिर्मे जायते तत्र पूर्णा द्वादशवार्षिकी ॥ २१ ॥
सुगन्धिस्पर्शसुखदैः कुसुमैररुणैरपि ।

अशून्यं सर्वदा कुर्याच्छून्ये विघ्नाद्यनेकशः ॥ २२ ॥
अत्यन्तसुखदैर्वस्त्रैराच्छाद्य भवनान्तरे ।
त्वल्लिङ्गेनातिशुद्धेन शुक्लेन चित्तहारिणा ॥ २३ ॥
स्थापयेत्पूजयेत्सार्धं यतो नाहं त्वया विना ।
नैव त्वमपि हे देव प्रभुर्देवो मया विना ॥ २४ ॥
तस्मादावां सदैवात्र स्थापयेत्सिद्धिमिच्छुकः ।

तीसरा शरीर स्वर्णपत्र पर अथवा वाराहीकन्द के रोम अथवा रत्न पर निर्मित यन्त्र होता है । विद्वान् उस यन्त्र को मेरा अपना रूप मानकर सद्गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से गन्ध पुष्प आदि से उसकी पूजा करे । विद्वान् पूजक यन्त्र को मेरी आत्मा और मुझसे अभिन्न समझे । हेमपत्र या रत्न पर चन्दन अगुरु कस्तूरी गोरोचन कपूर कुङ्कुम तथा कुलपुष्पों से यन्त्र बनाकर तुम्हारे द्वारा बतलायी गयी विधि से पूजा करे । सुअर के कन्धे एवं देह में उत्पन्न बालों अथवा वाराहीकन्द के रोम से अनुलेप करना चाहिये । इससे मुझे बारह वर्षों की तृप्ति होती है । सुगन्ध युक्त एवं सुखद स्पर्श वाले रक्त पुष्पों से उस शरीर को सदा युक्त रखना चाहिये । उससे शून्य रखने पर अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं । अत्यन्त सुखद रेशमी वस्त्रों से उस शरीर को ढँककर दूसरे भवन में अतिशुद्ध श्वेत वर्ण के तुम्हारे मनोहारी लिङ्ग के साथ मेरी स्थापना तथा पूजा करनी चाहिये क्योंकि तुम्हारे विना मेरी सत्ता नहीं है और हे देव! तुम भी मेरे विना जगत् के स्वामी एवं समर्थ नहीं हो सकते इसलिये सिद्धि को चाहने वाला सदैव हम दोनों को यहाँ स्थापित करे ॥ १८-२४- ॥

विद्रुममौक्तिकाभ्यां वा यो जपेन्मन्त्रमुत्तमम् ॥ २५ ॥
समयाचारयोगेन त्वयोक्तेनैव शङ्कर ।
पूजां यः कुरुते नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ २६ ॥
चतुर्धा कालरूपैश्च हस्तैरालिङ्ग्य तं शिवम् ।
मामक्या कलया युक्तं करोमि पुरनायकम् ॥ २७ ॥
तुरीयं मे परं रूपं गुप्तं यज्जगतीतले ।
तत्र पूजा सदा कार्या कुलयागविधानतः ॥ २८ ॥
सर्वापायेषु सर्वत्र कौलो धर्मः परो महान् ।

जो मनुष्य मूँगा अथवा मोती की माला से मेरे उत्तम मन्त्र का जप करता है। हे शङ्कर! तुम्हारे द्वारा निर्दिष्ट समयाचार के अनुसार नित्य भक्तिश्रद्धा से युक्त होकर चारों सन्ध्याओं में आपके उस शिवलिङ्ग को हाथों से स्पर्श कर पूजा करता है मैं उसे अपनी कला से युक्तकर पुरनायक बना देती हूँ । जो मेरा चौथा

शरीर है वह इस पृथिवी तल पर अत्यन्त गुप्त है । उसकी पूजा कौलमार्ग के अनुसार करनी चाहिये । समस्त धर्मों एवं उपायों के नष्ट हो जाने पर सर्वत्र कौलधर्म अत्यन्त महान् है ॥ २५-२८- ॥

कौलधर्मस्य दुर्गमत्वम्

सुगमा निगमाः सर्वे कौलो धर्मस्तु दुर्गमः ॥ २९ ॥
निसर्गदुर्गमः कौलः सुगम इव भात्यसौ ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रभवो यत्र कीर्तितः ॥ ३० ॥
तद्रूपं मे परं धाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
सद्गुरोः कृपया लब्धा तत्र पूजा महोदया ॥ ३१ ॥
ब्रह्मप्रकाशकं तत्तु तन्निष्ठं ब्रह्म चोच्यते ।
स्वयं प्रकाशते ब्रह्म यस्य दर्शनतः शिव ॥ ३२ ॥
स्पर्शनात्पूजयेद्यस्य ब्रह्मण्येव निमज्जति ।
आनन्दाब्धौ निमज्ज्येव भवाब्धिं स न पश्यति॥ ३३ ॥

कौलधर्म दुर्गम है—समस्त वैदिक धर्म सुगम अर्थात् सरलता से अनुष्ठेय है। कौल धर्म दुर्गम कहा गया है । स्वभावतः दुर्गम यह कौलधर्म सुगम जैसा प्रतीत होता है । जहाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि की उत्पत्ति बतलायी गयी है वह अव्यक्त अर्थात् नित्य ब्रह्मरूपिणी मेरा परमधाम है । सद्गुरु की कृपा से प्राप्त पूजा को वहाँ पर करने पर महान् उदय देती है । मेरा वह रूप ब्रह्म का प्रकाशक है । ब्रह्म की सत्ता उसी में कही जाती है । हे शिव! मेरे जिस रूप के दर्शन से ब्रह्म स्वयं प्रकाशित होता है, जिसके स्पर्श से स्वयं शिव पूजित होते हैं और जिस रूप की पूजा कर शिव ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं, जिसकी पूजा से आनन्दसागर में डूबकर मनुष्य इस संसारसागर को नहीं देखता (वह मेरा रूप महोदय है) ॥ २९-३३ ॥

कौलाचारानुत्सारेण यजनम्

कौलो धर्मस्त्वया प्रोक्तस्तमासाद्य कुलं यजेत्।
मद्रूपा परमा शक्तिर्लिङ्गरूपी भवान् प्रभुः ॥ ३४ ॥
शुक्रं शिवो रजः शक्तिरिति जानीहि शङ्कर ।
त्वया मया जगदिदं पूरिपूर्णं महेश्वर ॥ ३५ ॥
एकैवाहं परं ब्रह्म शिवशक्तीति भेदतः ।
सम्प्रभिन्नं जगदिदं भ्रम एवात्र कारणम् ॥ ३६ ॥
त्वमहं चेति यत्प्रोक्तं तदविद्या(श्र? भ्र)मो महान्।

तत्त्वमसि स एवाहं न त्वं नाहं तदेव यत् ॥ ३७ ॥
आवयोर्नहि भेदोऽस्ति युक्त्या बुध्यस्व शङ्कर ।
मदन्तस्त्वपि संलीने त्वमेवाहं भवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥

कौल आचार के अनुसार यजन—जिस कौलधर्म का तुमने वर्णन किया है साधक को चाहिये कि वह उसकी दीक्षा लेकर कुलपूजा करे । परमाशक्ति मेरे रूप (= योनि) वाली है आप लिङ्गरूपी परम प्रभु हैं । हे शङ्कर! शुक्र शिव है रज शक्ति है; ऐसा जानो । हे महेश्वर! यह संसार तुमसे और मुझसे परिपूर्ण है । एक ही मैं परमब्रह्म हूँ जो भेद के कारण शिव और शक्ति हो गये हैं । यह संसार भिन्न है (अथवा एक है मैं परब्रह्म हूँ शिव-शक्ति अर्थात् पुरुष स्त्री के भेद से यह संसार मुझसे भिन्न है) इसमें भ्रम ही कारण है । जो 'तुम और मैं' कहा गया यह भी अविद्याजनित महान् भ्रम है । वह तुम हो, वही मैं हूँ, न तुम हो न मैं, जो यत् है वह तत् है । हम दोनों में भेद नहीं है । हे शङ्कर! इसको युक्ति अर्थात् सर्त्तक से जानो मेरे अन्दर तुम्हारे लीन होने पर मैं तुम्हीं हूँ आप प्रभु हैं ॥ ३४-३८ ॥

आवयोः सरलाकारमभून्मिलितयोः शिव ।
तन्महामोक्षमाप्नोति भोगेनैव महेश्वर ॥ ३९ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
पूजनान्नहि मे प्रीतिर्यदिहान्यप्रकारतः ॥ ४० ॥
मांसभारैर्न मे प्रीतिर्न तथा मद्यसागरैः ।
यथा मे जायते प्रीतिर्भगलिङ्गामृतैः शिव ॥ ४१ ॥
अहमेव महादेव स्त्रियः सर्वा जगत्स्विह ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ४२ ॥
ये देवा मद्गतप्राणा मद्वासा मद्विभूषणाः ।
स्वधर्मानपरित्यज्य मामेव शरणं गताः ॥ ४३ ॥
ते पुनर्भोगिनो मुक्ता जीवन्तोऽपि महीतले ।
मदङ्गस्पर्शमात्रेण चात्मानं ज्ञातुमर्हसि ॥ ४४ ॥

हे शिव! हम दोनों के मिल जाने पर जो सरल आकार हो जाता है उस महामोक्ष को साधक भोग से ही प्राप्त करता है । हजारों करोड़ कल्प सैकड़ों कल्प तक पूजा करने से मैं उतनी प्रसन्न नहीं होती जैसे अन्य प्रकार अर्थात् मैथुनी क्रिया से होती हूँ । हे शिव! मांस के भारों तथा मद्य के सागरों से मुझे उतनी और वैसी प्रसन्नता नहीं होती जितनी और जैसी प्रसन्नता भगलिङ्ग के अमृत से होती है । हे महादेव! इस संसार में जितनी स्त्रियाँ है सब मैं ही हूँ

ऐसा मानकर विद्वान् लोग भावपूर्ण होकर मेरी उपासना करते हैं । जो देवता अर्थात् ब्राह्मण मद्‌गत प्राण हैं अर्थात् मेरा ध्यान स्मरण करते हुए सम्पूर्ण जीवन मुझे समर्पित कर दिये हैं, मेरे लिये वस्त्र धारण करते हैं मेरे लिये अलंकृत होते हैं तथा अपने धर्मों को छोड़कर मेरी ही शरण में आ गये हैं वे पृथिवी तल पर जीवित रहकर भोग करते हुए भी मुक्त अर्थत् जीवन्मुक्त हैं । मेरे अङ्गों के स्पर्श मात्र से तुम आत्म-साक्षात्कार कर सकते हो ॥ ३९-४४ ॥

मयि प्रविश विश्वेश मां भजस्व सनातनीम् ।
जहि शङ्कां महादेव त्वमात्मानं न विस्मर ॥ ४५ ॥
विष्णुः पिबत्यसौ वामं ब्रह्मा मे दक्षिणं स्तनम् ।
त्वं पिबस्व महादेव ममाधर(श्रु?स्नु)तामृतम् ॥ ४६ ॥
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन्पश्यंस्ताभिरेव विहारवान्।
ध्यानं पूजां जपं चैव कुर्यान्मे साधकोत्तमः ॥ ४७ ॥
शक्त्या युक्तः सदा मन्त्री न तया रहितो भवेत् ।
तया विरहितो देवः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ ४८ ॥
पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।
शक्तिहीनस्तथा मन्त्री तस्माच्छक्तियुतो भव ॥ ४९ ॥

हे विश्वेश! मेरे अन्दर प्रवेश करो । मुझ सनातनी का भजन करो । हे महादेव! मैं हूँ या नहीं, कुलमार्ग से मेरा यजन करने पर मुक्ति मिलेगी या नहीं इत्यादि शङ्का छोड़ो । तुम अपने को मत भूलो (कि तुम मुझसे अभिन्न हो)। विष्णु मेरा बायाँ स्तन पीते हैं, ब्रह्मा मेरा दाँया स्तन पीते हैं, तुम मेरे अधर से गिरने वाले अमृत का पान करो । स्त्री के पास जाने वाला, उसका स्पर्श करने वाला, उनके साथ रमण करने वाला उत्तम साधक मेरा ध्यान पूजा और जप करे । मन्त्र-साधक को चाहिये कि वह सदा शक्ति से युक्त रहे । कभी भी उससे रहित न रहे । उससे रहित देव किसी काम में समर्थ नहीं होता । जैसे पति से रहित नारी समस्त कर्मों को करने की अधिकारिणी नहीं होती उसी प्रकार शक्तिहीन मन्त्र-साधक भी कुलकर्म का अधिकारी नहीं होता । इसलिये शक्ति से युक्त बनो ॥ ४५-४९ ॥

एका चेद्वशगा साध्वी तस्याः कृष्टिर्भवाय च ।
दुष्टभार्या(कुला?करा)कृष्टिर्विनाशायैव केवलम् ॥ ५० ॥
कुलभेदी नदीतीरे कोषागारं यथा शिव ।
भगलिङ्गसमायोगाद्यदानन्दः प्रजायते ॥ ५१ ॥
ब्रह्मैव तद्विजानीयादनन्तं मोक्षसाधनम् ।

गुरुपूजा कराकृष्टिर्विघ्नोसारणकर्मकृत् ॥ ५२ ॥

यदि वश में रहने वाली एक ही साध्वी है तो उसके साथ कृष्टि अर्थात् कुलयाग(?)भव अर्थात् शिवत्व लाभ के लिये होता है । अनेक दुष्ट स्त्रियों के साथ कृष्टि केवल विनाश के लिये होती है । हे शिव! कौलरहस्य का भेदन करने वाला उसी प्रकार लक्ष्यच्युत होता है जैसे नदी के किनारे खजाना रखने वाला अर्थात् जैसे नदी तट पर स्थापित कोष को नदी का प्रवाह नष्ट कर देता है उसी प्रकार रहस्य भेदन कौल साधना को नष्ट कर देता है ।(?) भगलिङ्ग के संयोग से जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे ब्रह्मानन्द समझना चाहिये । वह अत्यन्त मोक्ष साधन है । गुरु की पूजा और कराकृष्टि (= साध्वी शक्ति के साथ कुलयाग) विघ्न का उत्सारण करती है ॥ ५०-५२ ॥

शक्तिपूजाविधिः

रहस्याख्यानकं कर्णे ह्यासनं गण्डचुम्बनम् ।
भूतशुद्धिः परीरम्भः सन्तोषेन्द्रियनिग्रहः ॥ ५३ ॥
प्राणायामः स्तनाकृष्टिर्न्यासमत्र समीरितम् ।
नखदन्तक्षतादीनि धूपदीपप्रदापनम् ॥ ५४ ॥
चाटुकानि रतान्ते च सुपुष्पाण्यङ्गसङ्गमम् ।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाराल्लिङ्गघर्षणम् ॥ ५५ ॥
अधरामृतपानं च स्वयमावेशनं तथा ।
विक्षेपोत्क्षेपणं चैव पतनोत्पतनं तथा ॥ ५६ ॥
तर्पणाद्युपचारं तु मथनं हवनं तथा ।
सीत्कारो मन्त्रजपनं ब्रह्मार्पणैकचित्तता ॥ ५७ ॥
कूजनं गायनं स्तोत्रं रेतः पातो विसर्जनम् ।
इत्थमेव महादेव पूजनं मे समीरितम् ॥ ५८ ॥

शक्तिपूजा की विधि—शक्ति के कान में गुप्त बात करना उसे आसन देना है । उसके कपोलप्रदेश का चुम्बन भूतशुद्धि है । उसका आलिङ्गन सन्तोष और इन्द्रियनिग्रह है । स्तनों का मर्दन प्राणायाम और न्यास है । नखक्षत दन्तक्षत आदि शक्ति के लिये धूप दीप देना है । रतिकाल में मीठी-मीठी बातें करना सुपुष्प है । अङ्गों से अङ्ग मिलाना, योनि का दर्शन स्पर्श, विकार अर्थात् उत्तेजना होने पर लिङ्ग का योनि में घर्षण, अधरपान, स्वयं रति के लिये उन्मत्त होना, विक्षेप अर्थात् शक्ति को नीचे ले जाना, उत्क्षेप अर्थात् उसे ऊपर ले जाना गिरना उठना यह सब तर्पण आदि उपचार है । लिङ्ग से मन्थन हवन है । सीत्कार मन्त्र का जप है । एकचित्तता ब्रह्मार्पण है । कूजन स्तोत्रगायन है । वीर्य

का स्खलन शक्ति का विसर्जन है । हे महादेव! मेरा पूजन इस प्रकार का कहा गया है ॥ ५३-५८ ॥

कुलयागेन मोक्षावाप्तिः

एकस्या बहुरूपिण्याः प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
जीवन्मुक्तः स्वयंदेवोऽप्यसाध्यमपि साधयेत् ॥ ५९ ॥
भोगैश्च मधुपर्काद्यैर्वामाभावे स्थितो यजेत् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म त्यजन् वाथ समाश्रयन् ॥ ६० ॥
तत्तत्कर्मपरित्यागाद्(ध्यानं?हीन)जातिषु जायते।

कुलयाग से मोक्षप्राप्ति—जो व्यक्ति एक होती हुयी अनेक रूपों वाली के साथ प्रतिदिन कुलयाग करता है वह देव स्वयं जीवन्मुक्त होता हुआ असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है । यदि वाम अर्थात् मद्य आदि नहीं है तो मधुपर्क आदि से शक्ति की पूजा करनी चाहिये । कुलयाग करने वाला मन्त्री श्रुति स्मृति पुराण में वर्णित कर्म का त्याग करे या अनुष्ठान करे वह उन कर्मों के परित्याग से देहान्त के बाद हीन जातियों में उत्पन्न होता है ॥ ५९-६०- ॥

ततो बहु सुखं भुक्त्वा परेषां च सुदुर्लभम् ॥ ६१ ॥
विद्याभ्यासप्रसादेन भोगेन मोक्षमाप्नुयात् ।
एवं बहुविधान् भोगी भोगान्वै सुमनोहरान् ॥ ६२ ॥
समासाद्य च तांस्तांस्तु वैराग्ये वनमाविशेत् ।
असारांश्च तथा सारान्निःसारांश्च तथा परान् ॥ ६३ ॥
नानाविधैर्विवेकाद्यैर्विविच्य साधकस्तथा ।
सारभूते परे तत्त्वे मन आधाय योगवित् ॥ ६४ ॥
निःसारमसदाद्यन्तं जगदेतच्चराचरम् ।

इसके बाद दूसरों के लिये दुर्लभ अनेक सुख को भोगकर विद्याभ्यास की कृपा से भोग के द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है । वह भोगी इस प्रकार से अनेक मनोहर भोगों को भोगकर वैराग्य हो जाने पर वन में चला जाये । साधक साररहित, सारयुक्त, पहले सारवान् बाद में नि:सार तथा अपने से भिन्न तत्त्वों का अनेक प्रकार के विवेक आदि के द्वारा विवेचन कर सारभूत परतत्त्व में मन को स्थिर करे । वह योगवेत्ता इस चराचर जगत् को नि:सार आदि और अन्त में असत् समझे ॥ ६१-६४- ॥

सत्यं किमपि तत्रैव वस्तु साक्षान्निरक्षरम् ॥ ६५ ॥
तदानन्दमयं ब्रह्म विदित्वात्मनि साधकः ।

एकान्तविजने रम्ये मृड(?दु)कोमल आसने ॥ ६६ ॥
आसीनश्चिन्तयेद्ब्रह्म परमानन्दनिर्भरः ।
ब्रह्मचिन्तापरामोदी भोगेषु विगतस्पृहः ॥ ६७ ॥
एकां भार्यां समादाय योगिनीं सहचारिणीम् ।
असाध्यं साधयेद्योगी योगिन्येव सहायिनी ॥ ६८ ॥
यथा त्वं मयका नाथ पार्वत्या परमेश्वर ।
मोहयित्वा पुनर्देवी शङ्करं प्राह पार्वती ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवशक्तमयज्ञान-कुलयागवर्णन-नामकश्चत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ४० ॥

* * *

इसी संसार में कोई अद्भुत वस्तु प्रत्यक्ष और अक्षर है वही आनन्दमय ब्रह्म है ऐसी अपने अन्दर भावना कर साधक एकान्त निर्जन रमणीय मृदु अर्थात् कोमल आसन पर बैठकर ब्रह्म का ध्यान करे । वह योगी परमआनन्द से परिपूर्ण, ब्रह्मचिन्तन के कारण परम आमोदयुक्त, भोगों के प्रति अनासक्त होकर योगिनी सहचारिणी एक भार्या को साथ में रखकर असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है । इसमें योगिनी ही सहायक होती है । हे परमेश्वर! यह उसी प्रकार है जैसे तुम मुझ पार्वती के साथ हो । पार्वती देवी ने पुनः शङ्कर को सम्मोहित कर पुनः कहा ॥ ६५-६९ ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वर संवाद में शिवशक्तिमय ज्ञानकुलमार्ग-वर्णन नामक चालिसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ४० ॥

* * *

एकचत्वारिंशः पटलः

अनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरूपणम्

अतुलैकरसानन्दं कैवल्यायतनं शिवम् ।
नत्वा शिष्येव सानन्दा तमुवाच परा शिवा ॥ १ ॥

अतुलनीय और सदा एक समान रहने वाले आनन्द से परिपूर्ण, कैवल्य के आयतन शिव को शिष्या की भाँति प्रणाम कर आनन्द के साथ पराशिवा ने उनसे कहा ॥ १ ॥

शाम्भवतत्त्वजिज्ञासोपक्रमः

पार्वत्युवाच—

प्रसीद परमानन्दमय संशान्तविग्रह ।
यद्यदेव परं तत्त्वं तत्त्वतो विदितं मया ॥ २ ॥
त्वया देव समाख्याताः सर्वे मन्त्राःक्रियाः पराः ।
योगाः समाधयो ज्ञानं तथा चान्ये मदीप्सिताः ॥ ३ ॥
तेषां हि कारणं तत्त्वं यदीश परतः परम् ।
वक्तुमर्हसि तत्त्वेन शाम्भवं चाप्यनुत्तरम् ॥ ४ ॥
वाच्यस्वरूपव्याप्तित्वं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
प्रकाशो विमर्शाधीन इति सत्यं यदि प्रभो ॥ ५ ॥
ममाधीनस्त्वमेवासि यथोक्तं वद शङ्कर ।

शाम्भव तत्त्व की जिज्ञासा का उपक्रम—पार्वती ने कहा—हे परमानन्दमय! हे पूर्णतया शान्तशरीर वाले देव प्रसन्न हो जाइये । जो-जो परमतत्त्व है उसे तत्त्वतः मैंने जान लिया है । हे देव! मन्त्र, परा क्रियायें, योग, समाधि, ज्ञान तथा अन्य जो कुछ मेरे द्वारा वाञ्छित था आपने सब कुछ की व्याख्या कर दी । हे ईश! इन उपर्युक्त तत्त्वों का जो परात्पर कारणतत्त्व है उस अनुत्तर शाम्भवतत्त्व

का प्रवचन कीजिये । मैं वाच्यस्वरूपव्याप्ति को तत्त्वत: जानना चाहती हूँ । हे प्रभो! यदि यह सत्य है कि प्रकाश विमर्श के अधीन है तो तुम मेरे अधीन हो इसलिये हे शङ्कर! जैसा मैंने कहा वह बतलाइये ॥ २-५- ॥

शाम्भवतत्त्वविवेचनम्

शम्भुरुवाच—

अतिगुह्यतमं सूक्ष्ममवाङ्मनसगोचरम् ॥ ६ ॥
मया यत्नेन गुप्तं तन्न तत्कस्यापि कथ्यते ।
अहमेव त्वमप्यस्मि खलूक्तेति च मे मतिः ॥ ७ ॥
त्वमप्येवं स्मरस्यस्मात् त्वयापि विदितं प्रिये ।
सच्चित्संयोगसंसिद्धिस्त्वद्वश्या मम सा यतः ॥ ८ ॥
तदेव चोत्तरं प्राहुः सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
तदेव चित्सदाद्यन्तावैक्येन संस्थितं यदा ॥ ९ ॥
तदा शाम्भवमित्याहुर्मुनयस्तत्त्ववित्तमाः ।
तदेवाहमिदंभावपूर्णानन्दो यदा भवेत् ॥ १० ॥
तदैव शम्भुभावः स्यादुक्तमेतत्पदत्रयम् ।
शक्तस्त्रिशूली सर्गोऽन्तं तैरेवालंकृता यदि ॥ ११ ॥
सैव हि श्रीपरेत्युच्चैर्मुनिभिः परिकीर्तिता ।
प्रकाशानन्दसंदोहकैवल्यमहमाश्रया ॥ १२ ॥
मत्परत्वान्महासिद्ध्यै सा परेति च कथ्यते ।
ये मन्त्राः परमेशानि तेनादावपि संयुताः ॥ १३ ॥
ते जीवन्ति च मन्त्रेभ्यो ह्यन्योन्यमिति मे मतिः ।
सप्तषष्टिप्रकृत्यर्णा जगत्सृष्ट्यादिकर्तृकाः ॥ १४ ॥
एतेषां जीवभूतत्त्वादनुत्तरमिदं जगत् ।

शाम्भव तत्त्व का विवेचन—शम्भु ने कहा—यह शाम्भव तत्त्व अत्यन्त गुह्य, सूक्ष्म, वाणी और मन की पहुँच के परे है । इसको मैंने प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखा है । इसलिये इसे किसी को भी नहीं बतलाया जाता । तुम भी मैं ही हूँ—ऐसा कही गयी हो । मेरा विचार भी यही है । तुम भी ऐसा ही मानती हो । हे प्रिये! इस कारण तुमने भी इसे जान लिया है । सत् एवं चित् के संयोग की सिद्धि तुम्हारे अधीन है क्योंकि वह मेरे अधीन भी है । इसी को विद्वान् उत्तर तत्त्व कहते हैं । यह मैंने सत्य कहा । वही चित् और सत् जब एक होकर रहते हैं तब वह शाम्भव तत्त्व होता है—ऐसा तत्त्ववेत्ता लोग कहते हैं । वही तत्त्व जब

'अहमिदं' भाव से पूर्ण आनन्दस्वरूप हो जाता है तभी शम्भु भाव होता है ये तीन पद = अहं, इदं, और आनन्द कहे गये हैं। शक्र = ल, त्रिशूली = ज और सर्ग = उकार और अन्त = म इस प्रकार 'ज्लुम्' यही उत्कृष्ट मुनि लोगों के द्वारा पराश्री कही गयी है। प्रकाश और आनन्द का समूह कैवल्य अहम् है। विमर्श रूपा शक्ति इसके अधीन है महासिद्धि के लिये मत्परक होने के कारण वह परा कही जाती है। हे परमेशानि! जो मन्त्र उससे पहले संयुक्त होते हैं वे मन्त्रों के लिये जीवित रहते हैं। इस प्रकार दोनों में अन्योऽन्याश्रय है—ऐसा मेरा विचार है। संड़सठ प्रधान वर्ण संसार की सृष्टि आदि के कारक हैं। इनका कारण होने से यह संसार अनुत्तर है ॥ ६-१४- ॥

पार्वत्युवाच—

सकला निष्कलाश्चैव मुक्तिमार्गप्रबोधकाः ॥ १५ ॥
मन्त्रास्तु बहवः सन्ति वद तेषामनुत्तरम् ।

पार्वती ने कहा—मुक्तिमार्ग को बतलाने वाले सकल निष्कल बहुत सारे मन्त्र हैं। उनमें जो अनुत्तर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है, उसे बतलाइये ॥ १५- ॥

अनुत्तरमन्त्रवर्णनम्

शम्भुरुवाच—

केषांचिदस्मदुक्तानामेतेऽप्यनर्थदार्णवा(?दार्णकाः) ॥ १६ ॥
आवयोर्देवदेवेशि मनूनां कारणं मनोः(नः) ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्राप्यावावां महेश्वरि ॥ १७ ॥
आवयोरपि तत्प्राप्यमनुत्तरमिति स्मृतम् ।
अप्येतदक्षरावृत्तेर्गम्यागम्यतया स्थितम् ॥ १८ ॥
अगम्यकारणत्वाच्च गम्यावावामिति प्रिये ।
इदन्तयाहन्तया वा सर्वेषामन्तरात्मनि ॥ १९ ॥
प्रतीयमानस्त्वर्थो यस्तदेव शिवनिर्णयम् ।
पूर्णाहन्तास्वभावेन कृत्रिमाहन्तया विना ॥ २० ॥
बहिरन्तरिदं विश्वं यः पश्यति स पश्यति ।
अहन्तायां महादेवि त्वमेव प्राणिनां प्रिया ॥ २१ ॥
अज्ञानामपि चात्मा त्वं सर्वे तेऽनुत्तरप्रियाः ।

अनुत्तर मन्त्र का वर्णन—शम्भु ने कहा—हमारे द्वारा कहे गये मन्त्रों के कुछ वर्ण भी अनर्थदायक हैं। हे देवदेवेशि! हम दोनों के मन्त्रों का कारण मन है (?) हे महेश्वरि! समस्त मन्त्रों के प्राप्य हम दोनों हैं और हम दोनों का प्राप्य वह

अनुत्तर माना गया है । अक्षरों की आवृत्ति के गम्य और अगम्य होने से यह स्थिति है । हे प्रिये! अनुत्तर के अगम्य होने से हम दोनों गम्य हैं । सब के अन्तरात्मा में इदं के रूप में अथवा अहं के रूप में जो अर्थ प्रतीत होता है वही शिव का निर्णय अर्थात् शिव का स्वरूप है । जो व्यक्ति कृत्रिम अहन्ता को छोड़कर पूर्ण अहन्ता स्वभाव से अपने बाहर और भीतर इस विश्व को देखता है वही वास्तविक द्रष्टा होता है । हे महादेवि! अहन्ता में तुम्हीं ज्ञानी प्राणियों की प्रिया हो । अज्ञानियों की भी तुम आत्मा हो और ज्ञानी और अज्ञानी सब अनुत्तर के प्रिय हैं (क्योंकि ज्ञान अज्ञान सब उस अनुत्तर की ही लीला का विलास कहा गया है) ॥ १६-२१- ॥

पार्वत्युवाच—

त्वया पूर्वोपदिष्टं यत्तत्त्वं श्रीमत्परामयम् ॥ २२ ॥
तदेव निर्वाणपदमिति प्रोक्तं त(?त्व)या मया ।
इदानीमतिगुह्यानां तदेवाद्यमनुत्तरम् ॥ २३ ॥
प्रशंससे परानन्दविमर्शाविष्टविग्रह ।
एतस्मिन्नेव कैवल्ये चेतःश्लेषो न मे विभो ॥ २४ ॥

पार्वती ने कहा—आपने जो श्रीपरामय तत्त्व का पहले उपदेश दिया वही निर्वाण पद है यह आपने ही कहा है । हे परानन्द के विमर्श से आविष्ट शरीर वाले! अब आप अत्यन्त गुह्यों के उस आद्य अनुत्तर तत्त्व की प्रशंसा कर रहे हैं तो हे विभो! इस कैवल्य के विषय में मेरा चित्त श्लिष्ट नहीं हो रहा है अर्थात् यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है ॥ २२-२४ ॥

पराविद्यया निर्वाणस्य प्राप्यत्वम्

शम्भुरुवाच—

सत्यमेव त्वयाख्यातमुभयं तव सुन्दरि ।
परया त्वपि तत्प्राप्यं पूर्वोदितमनुत्तमम् ॥ २५ ॥
यत् सम्मतं तथाप्येतत् तयोरप्यन्तरं महत् ।
परा तु सप्तविंशत्या अन्तर्बाह्यक्रियागुणैः ॥ २६ ॥
पूज्या चास्मत्कलांशेति केषांचिद्योगिनीमतम् ।
मानरूपक्रियोपाधिविहीनत्वान्महेश्वरि ॥ २७ ॥
पराया अपि तत्प्राप्यं पूर्वोदितमनुत्तरम् ।

पराविद्या के द्वारा निर्वाण प्राप्य है—शिव ने कहा—हे सुन्दरि! तुमने सत्य कहा । तुम्हारे लिये (पराविद्या और निर्वाण) दोनों प्रशस्य हैं । पराविद्या के द्वारा

भी वह पूर्वोक्त अनुत्तर प्राप्य है । यह जो मत है वह भी ठीक है तो भी उन दोनों में महान् अन्तर है । पराविद्या सत्ताईस अन्तर्बाह्य क्रियागुणों के द्वारा हमारी कला के रूप में पूज्य है—ऐसा कुछ लोगों का मत है और हे महेश्वरि! परिमाणरूप क्रियारूपी उपाधियों से रहित होने के कारण पूर्वोक्त अनुत्तर पराविद्या का भी प्राप्य है ॥ २५-२७- ॥

पार्वत्युवाच—

अस्य माहात्म्यमेवोक्तं त्वया मे बहुधा विभो ॥ २८ ॥
उपायेनामुना पश्ये यदुक्तं नैव जातुचित् ।
यदिष्टं सर्वमाख्यातं यदप्युक्तमनुत्तरम् ॥ २९ ॥
नैव शक्नोमि निर्णेतुं तत्त्वतः कथयस्व मे ।

पार्वती ने कहा—हे विभो! इस अनुत्तर की महिमा आपने मुझे अनेक प्रकार से बतलायी है । जिसकी कभी चर्चा नहीं की गयी उसको भी इस उपाय द्वारा अर्थात् पराविद्या के द्वारा देखती हूँ । जो इष्ट है वह सब कह दिया गया फिर भी उसे अनुत्तर कहा जाता है तो इसका निर्णय मैं नहीं कर पा रही हूँ कि वह अनुत्तर भी है और उपाय के द्वारा प्राप्य भी, तो यथार्थ रूप में कृपया मुझे बतलाइये ॥ २८-२९- ॥

शम्भुरुवाच—

अत्यन्ताभावो भेदादावयोः परमार्थतः ॥ ३० ॥
इदमीदृशमित्युक्तं पुरेवाहमुपाधितः ।
सम्प्राप्ता स्वंरदेवता नैव कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥
यद्यन्यभावस्थैर्येण प्राप्तव्यं गुणकार्यतः ।
तर्हि भूयोऽपि वक्ष्यामि मयोक्तार्थस्य निर्णयम् ॥ ३२ ॥

शिव ने कहा—परमार्थतः हम दोनों के बीच अत्यन्ताभाव अर्थात् ऐक्य के होने पर भी भेद के कारण 'यह ऐसा है' कहा गया । उपाधि के कारण मैं पहले स्वर देवता के रूप में प्राप्त हुआ । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । गुण और कार्य के द्वारा अन्यभाव की स्थिरता से जो प्राप्तव्य है तो पुनः मेरे द्वारा उक्त अर्थ का निर्णय बतलाऊँगा ॥ ३०-३२ ॥

अनुत्तरस्य भेदोपबृंहणम्

मनोवाग्विषयातीतं पूर्वोक्तं यदनुत्तरम् ।
तत्त्रिधा भेदमायाति बिन्दुनादाख्यबीजतः ॥ ३३ ॥
तान्येव सच्चिदानन्दभेदेन वैभवानि तु ।

मत्स्वरूपो हि यो बिन्दुस्तस्मान्नादस्तु भामिनि ॥ ३४ ॥
द्वयोः समरसीभावादुक्तं बीजाख्यमावयोः ।
ऐक्यज्ञानपथे चैनां देवि शाम्भववाचके ॥ ३५ ॥
वर्णक्रमेण सम्भाव्य कुर्यान्मिथुनभावनाम् ।
एवं क्रमे महेशानि तामनुत्तरतां व्रजेत् ॥ ३६ ॥
वह्निवत् काष्ठसम्बद्धे समुन्नद्धोऽवनिं तरेत् ।
व्यञ्जने मथनोद्भूते तां तु शक्तिपदात्मिकाम् ॥ ३७ ॥
व्रतहोमेन सम्भाव्य स्वभावं स्वयमाचरेत् ।

अनुत्तर का भेदोपबृंहण—मन वाणी के विषयों से परे जो अनुत्तर पहले कहा गया वह बिन्दु नाद और बीज के भेद से तीन प्रकार से भेद को प्राप्त करता है । वे ही तीन तत्त्व सत् चित् और आनन्द के भेद से विस्तार को प्राप्त करते हैं । बिन्दु जो कि मेरा स्वरूप है हे भामिनि! उससे नाद उत्पन्न होता है हम दोनों के समरसी भाव से बीज उत्पन्न होता है । हे देवि! शाम्भववाचक ऐक्यज्ञान के मार्ग में वर्ण के क्रम से हम दोनों की भावना कर मिथुनभावना करनी चाहिये । हे महेशानि! इस क्रम से साधक अनुत्तरता को प्राप्त करता है । जैसे अग्नि काष्ठ से सम्बद्ध होकर ही जलता है उसी प्रकार समुन्नद्ध अर्थात् शक्ति के साथ मिथुनभाव को प्राप्त कर ही साधक अवनि अर्थात् पार्थिव जगत् अर्थात् जन्ममृत्यु को पार कर जाता है । स्वरों के मन्थन से व्यञ्जन के उत्पन्न होने पर शक्तिपद वाली उस अनुत्तरता को व्रत होम से समाहृत कर साधक स्वयं स्वभाव को प्राप्त करता है ॥ ३३-३७- ॥

प्रकाशविमर्शस्वरूपतत्कारणयोश्च निरूपणम्

प्रकाशान्तर्विमर्शान्तस्तस्मादेवाप्रकाशकम् ॥ ३८ ॥
उत्तरोत्तरमेकैकं नयामि तत् क्रमोत्क्रमात् ।
सङ्कोचः सविकासश्च स्वरूपौ सूर्यसङ्गतौ ॥ ३९ ॥
तत्तु यागतया स्यातां प्रकाशानन्दमन्दिरौ ।
सच्चिन्मयौ क्रियासारावधूतात्मक्रियापरौ ॥ ४० ॥
एतयोरावयोर्यत्तत्कारणं स्यादनुत्तरम् ।
हृदयानलभार्यान्तं शिवदण्डीविलं फलम् ॥ ४१ ॥

प्रकाश विमर्श के स्वरूप और उनके कारण—प्रकाश के अन्दर विमर्श है इसीलिये विमर्श का प्रकाश नहीं होता । क्रमशः एक-एक को उत्तरोत्तर ले जाता है । सङ्कोच और विकास अपने ही रूप हैं । वे सूर्य से सम्बद्ध हैं । याग के रूप

में वे प्रकाश और आनन्द से आश्रय बन जाते हैं साथ ही वे दोनों सत् चिन्मय क्रियारूप एवं आत्मक्रिया को निरस्त करने वाले हो जाते हैं । हम दोनों इन्हीं दो रूपों (=प्रकाश-विमर्श) वाले हैं । हम दोनों का जो कारण है वह अनुत्तर है । हृदय अर्थात् 'नमः' से लेकर अनल भार्या अर्थात् 'स्वाहा' तक शिवदण्डीविल अर्थात् बिन्दु फल है ॥ ३८-४१ ॥

ब्रह्मसंज्ञस्यानुत्तरस्य भावनातत्फलयोर्वर्णनम्

अन्तः प्रतीयमानं तदमेयं सर्वतोमुखम् ।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं निस्तरङ्गाब्धिसन्निभम् ॥ ४२ ॥
सन्मात्रं चैव चिन्मात्रं तयोरैक्यरसावृतम् ।
तमःप्रकाशहीनं यदणोर्बहुतरं परम् ॥ ४३ ॥
महतां च महत्त्वाच्च ब्रह्मसंज्ञमनुत्तरम् ।
तदेवावहितेन त्वं स्वान्तेन परिभावय ॥ ४४ ॥
अनेन भाववानाशु मन्त्रस्तन्मयतां व्रजेत् ।
यदा तन्मयसिद्ध्यादि विश्वं त्वयि विभावयेत् ॥ ४५ ॥
तेन विश्रान्तभावेन तदैक्यानन्दमाप्स्यति ।

ब्रह्मसंज्ञक अनुत्तर की भावना और उसका फल—जो वह अनुत्तर है वह अन्दर अर्थात् हृदय गुहा में अनुभूत होता है । वह अप्रमेय है और सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापी या सर्वभक्षी है । वह आदि मध्य और अन्त से रहित, निस्तरङ्ग समुद्र के समान, केवल सत्, केवल चित् और सत् चित् दोनों की समरसता से आवृत है । वह तम और प्रकाश से हीन, अणु से भी अणुतर, महत् से भी महत्तर है । उसी का नाम ब्रह्म है, अनुत्तर है । सावधान मन से उसी को समझो । इस भावना से युक्त मन्त्र तन्मय अर्थात् अनुत्तरमय हो जाता है । जब साधक तन्मयसिद्धि आदि से युक्त विश्व की तुम्हारे अन्दर भावना करता है तो उस विश्रान्त भाव से उस ऐक्य अर्थात् विश्वात्मा का तुम्हारे साथ तादात्म्य के आनन्द को प्राप्त करता है ॥ ४२-४५- ॥

आकाशे निर्मले यद्वत्सहसा घनसंकुलम् ॥ ४६ ॥
उत्पत्य लीयते तद्वज्जगदात्मन्यनुत्तरे ।
इत्येवं प्रत्यभिज्ञानसिद्धिः स्यात्तव सुव्रते ॥ ४७ ॥
स्वसंवेद्यं सुखं पश्चान्नैव शक्नोमि वेदितुम् ।
परा त्वं परमर्द्धिः स्यान्नत्वस्य विहितं यतः ॥ ४८ ॥
इतः परं न जानामि त्वयाहं बहुधा शपे ।

एतच्छ्रुत्वा महादेव्या ह्येतदर्थविमर्शनम् ॥ ४९ ॥
प्रकाशितं तदेवाशु विस्मयाविष्टचेतसा ।
महदाश्चर्यमेतन्मे सम्पूर्णोऽयं यदास्थितः ॥ ५० ॥
इति संचिन्त्य देवस्य पादमाश्लिष्य सुन्दरी ।
त(व?दा) चान्योन्यमथनात्सान्द्रानन्दाभिनन्दिता ॥ ५१ ॥
यत्प्रकाशात्मकं सर्वं तत्त्वं केवलतां गतम् ।
विमर्शावनिसम्प्राप्तमित्येषा तात्त्विकी स्थितिः ॥ ५२ ॥
अवधानैकभावानां मतिः सा साक्षिरूपिणी ।

जिस प्रकार निर्मल आकाश में बादल सहसा उत्पन्न होकर लीन हो जाते हैं उसी प्रकार यह संसार अनुत्तर में उत्पन्न और लीन होता रहता है । हे सुव्रते! ऐसी ही प्रत्यभिज्ञा सिद्धि तुमको भी प्राप्त होगी । बाद में तुमको जो स्वसंवेद्य अर्थात् आत्मसाक्षात्कार का सुख प्राप्त होगा उसको मैं तुमको अभी नहीं बतला सकता । तुम परा हो परम ऋद्धि हो, इस स्वसंवेद्य सुख का कुछ भी विहित नहीं है अर्थात् इसके द्वारा कुछ भी प्राप्य नहीं होता ।(?) इससे आगे मैं नहीं जानता यह मैं अनेक बार तुम्हारी शपथ लेकर कह रहा हूँ । इस अर्थ-विमर्श को सुनकर महादेवी ने विस्मयपूर्ण मन से शीघ्र ही इसको प्रकाशित कर दिया और मुझे महाआश्चर्य है कि यह अपने सम्पूर्ण रूप में स्थित है—ऐसा सोचकर सुन्दरी ने भगवान् शिव के चरणों का आलिङ्गन किया फिर दोनों परस्पर मथन के कारण वह शिव के द्वारा आनन्द से अभिनिन्दित हो गये । इस प्रकार जो प्रकाशात्मक तत्त्व कैवल्यभाव को प्राप्त हुआ था वह विमर्श को प्राप्त हो गया । यही यथार्थ स्थिति बतलायी गयी है । इस विषय में सावधान चित्त वालों की बुद्धि प्रमाण होती है ॥ ४६-५२- ॥

चैतन्यस्य स्वप्रमाणकत्वम्

तत्प्रमाणैः वराकैः किं तैश्चिदेवाप्रमाणका ॥ ५३ ॥
नहि वैकर्तनं ज्योतिर्दीपालोकमपेक्षते ।

चैतन्य स्वतः प्रमाण है—उस चैतन्य के विषय में बेचारे अन्य प्रमाण किस काम के । उनके द्वारा चित् ही प्रमाणिक हो जायगी । विकर्त्तन अर्थात् सूर्य की ज्योति अपने प्रकाश के लिये दीपक की आवश्यकता नहीं रखती ॥ ५३- ॥

षट्त्रिंशत्तत्त्वनिरूपणम्

आदर्शे विमलाभोगे यथा सर्वं प्रकाशते ॥ ५४ ॥
इत्थं चिदात्मकं विश्वं षट्त्रिंशत्तत्त्वभेदनम् ।

आदौ शुद्धात्मकं तत्त्वं पञ्चधा तमसः परम् ॥ ५५ ॥
शिवः शक्तिश्च सादाख्य ईशो विद्येति भिद्यते ।
हक्षादिशान्तवर्णात्मा निरमायि यदा शिवे ॥ ५६ ॥
कला विद्या रागकालौ नियतिर्वर्म उच्यते ।
मायापूर्वो वकारादियकारान्ताक्षरात्मकम् ॥ ५७ ॥
प्रधानं पुम्मनो बुद्धिरहंकृन्मादिपञ्चकम् ।
श्रोत्रादिपञ्चकं तादि टादि वागादिपञ्चकम् ॥ ५८ ॥
तन्मात्रपञ्चकं चादि भूम्यादि कादिपञ्चकम् ।

छत्तीस तत्त्वों का निरूपण—जिस प्रकार सर्वतः स्वच्छ दर्पण में सब वस्तुयें पूर्ण एवं यथार्थ रूप में प्रकाशित होती हैं उसी प्रकार एक परम शिव से सबसे पहले शुद्ध सत्त्वात्मक तमोरहित पाँच तत्त्व प्रकाशित हुये । वे हैं—शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्धविद्या । हे शिवे! ह क्ष और शान्त अर्थात् श के बाद वाले वर्ण ष, स जब बनाये गये अर्थात् उपर्युक्त ह क्ष श ष स पाँच वर्ण बनाये गये तो वे कला विद्या राग काल और नियति नामक पाँच वर्म अर्थात् कञ्चुक कहे जाते हैं । इनके वाचक माया अर्थात् 'ह्रीं' के बाद वकार से यकार तब अर्थात् व ल र य, ये पाँच अक्षर हैं । म आदि पाँच = म भ ब फ और प, प्रधान अर्थात् प्रकृति पुरुष मन बुद्धि और अहङ्कार इन पाँच के वाचक होते हैं । त आदि पाँच अर्थात् त थ द ध न श्रोत्र आदि अर्थात् श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राणेन्द्रिय नासिका के तथा ट आदि = ट ठ ड ढ ण वाक् आदि पाँच अर्थात् वाक् पाणि पाद पायु और उपस्थ के वाचक है । च आदि पाँच पाँच तन्मात्राओं के तथा क आदि पाँच भूमि आदि के द्योतक है ॥ ५४-५८- ॥

सिसृक्षोः प्रथमः स्पन्दः शिवतत्त्वं प्रभोः स्मृतम् ॥ ५९ ॥
इच्छैवास्यापरिम्लाना शक्तितत्त्वमुदङ्कुशम् ।
स्वेच्छया सूचितं विश्वमाच्छाद्याहन्तया स्थितः ॥ ६० ॥
स एव तत्त्वं सादाख्यं सर्वानुग्रहणोन्मुखम् ।
स एवैश्वरतत्त्वं स्यात् पश्यन् विश्वमिदन्तया ॥ ६१ ॥
अहन्तेदन्तयोरैक्यं सा विद्येति निगद्यते ।
स्वाङ्गभूतेषु भावेषु मायातत्त्वं विभेदधीः ॥ ६२ ॥
मायागृहीतसङ्कोचः शिवः पुंस्तत्त्वमुच्यते ।
अयमेव हि संसारी जीवो भोक्तेति दृश्यते ॥ ६३ ॥
ज्ञात्वाकर्तृत्वपूर्णत्वनित्यत्वाद्याश्च शक्तयः ।

तत्सङ्कोचात्संकुचिताः कलाविद्यादिना स्थिताः ॥ ६४ ॥
मायात्मनः कला नाम किंचित्कर्तृत्वलक्षणम् ।
विद्या किंचिज्ज्ञताहेतू रागोऽभिष्वङ्गकारणम् ॥ ६५ ॥
कालः परिच्छेदको वा नियतिश्चेदमेव मे ।
कर्तव्यं नान्यदित्येषा व्यवस्थायन्त्रणाकृतिः ॥ ६६ ॥

सृष्टि के इच्छुक परमेश्वर का प्रथम स्पन्द[१] शिव तत्त्व माना गया है । इसकी शुद्ध स्वातन्त्र्यरूपी इच्छा निरङ्कुश शक्ति तत्त्व कही गयी है । अपनी इच्छा से सूचित विश्व को अपनी इच्छा से आवृत कर यह 'अहं' के रूप में स्थित है । वही समस्त जीवों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये उद्यत (तथा जगत् के आदि गुरु) सदाशिव तत्त्व है । जब वे विश्व को अपने से भिन्न 'इदम्' के रूप में देखते हैं तब वही ईश्वर तत्त्व कहे जाते हैं । अहन्ता और इदन्ता का ऐक्य अर्थात् समधृत तुला न्याय से समान रूप में होना शुद्धविद्या कही जाती है । अपने अङ्गभूत भावों के विषय में जब भेदबुद्धि उत्पन्न होती है तब यह माया तत्त्व कहा जाता है । शिव स्वयं माया के द्वारा जब अपने को सङ्कुचित कर लेता है तब वह पुरुष तत्त्व कहा जाता है । यही संसारी जीव और भोक्ता माना जाता है । उसकी सर्वज्ञत्व सर्वकर्त्तृत्व पूर्णत्व नित्यत्व आदि शक्तियाँ उस सङ्कोच के कारण सङ्कुचित होकर कला विद्या राग काल और नियति के रूप में स्थित होती हैं । माया का जो प्रथम कञ्चुक कला है उसका लक्षण है किञ्चित्कर्त्तृत्व (ईश्वर पूर्णकर्त्ता है । माया के कलाकञ्चुक के कारण वह अपने को किञ्चित् कर्त्ता समझता है) विद्या नामक कञ्चुक किञ्चिज् ज्ञत्व का कारण है । राग उसकी संसार के प्रति आसक्ति का कारण है । काल परिच्छेदक अर्थात् असीम को सीमित करता तथा नियति यही मेरा कर्त्तव्य है दूसरा नहीं इस प्रकार की व्यवस्था का नियन्त्रण करती है ॥ ५९-६६ ॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं स्यादहङ्कारादिजन्मभूः ।
अहंममेदमित्येतद्बुद्धिहेतुरहंकृतिः ॥ ६७ ॥
बुद्धिरध्यवसायस्य कारणं निश्चयात्मनः ।
सङ्कल्पस्य विकल्पस्य बीजं मन उदीर्यते ॥ ६८ ॥
वचनादेश्च शब्दादेर्वागादि श्रवणादिकम् ।
करणं श्रवणादीनां ग्राह्यं तन्मात्रपञ्चकम् ॥ ६९ ॥
आकाशाद्यवकाशादिकारणं भूतपञ्चकम् ।

---

[१] यदयमनुत्तरमूर्त्तिर्निजेच्छया विश्वमेषितुं स्रष्टुम् ।
पस्पन्दे सः स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः ॥

परापराशक्तिमये शुद्धे विद्यादिपञ्चकम् ॥ ७० ॥
तदन्यदपराशक्तिर्विद्यातत्त्वमुदीरितम् ।

तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है । वह अहङ्कार आदि की जननी है । 'यह मैं हूँ' 'यह मेरा है' इस प्रकार की अवधारणा का कारण अहङ्कार है । निश्चय रूप अध्यवसाय का कारण बुद्धि है । सङ्कल्प और विकल्प का कारण मन कहा जाता है । वचन आदि और शब्द आदि का कारण वाक् इन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय आदि होती है । श्रवण आदि क्रियाओं का कारण अर्थात् असाधारण कारण पञ्चतन्मात्र को समझना चाहिये । आकाश आदि अवकाश आदि के कारण हैं वे पञ्च महाभूत है । परापराशक्तिमय शुद्ध तत्त्व में विद्या आदि पाँच रहते हैं । उससे भिन्न अपरा शक्ति विद्या तत्त्व कहा गया है ॥ ६७-७०- ॥

शुद्धाशुद्धाध्वनोर्निरूपणम्

अथ देवी: पराशक्तिः शुद्धाशुद्धाध्वरूपिणी ॥ ७१ ॥

शुद्ध-अशुद्ध अध्वा—यह शुद्ध-अशुद्ध अध्वारूपिणी देवी पराशक्ति कही जाती है ॥ ७१ ॥

अकारादिस्वराणां तात्पर्यनिरूपणम्

पृथिव्यादीनि तत्त्वानि यदा लीनानि कारणे ।
तदा कारणमात्राणि शक्तिरुद्वमते बहिः ॥ ७२ ॥
अनुत्तरेच्छे उन्मेष आनन्देशनमूनता ।
क्रियेच्छाज्ञानशक्तीनां स्वराणां मूलता च षट् ॥ ७३ ॥
इच्छेशनां ततो रूढा स्फुटास्फुटजगन्मयी ।
चत्वारः षण्डवर्णा स्युः शुद्धात्मानः प्रचोदिताः ॥ ७४ ॥
अनुत्तरानन्दशक्ती इच्छाशक्तौ नियोजिते ।
त्रिकोणमथ षट्कोणमिच्छायां रूढिमागते ॥ ७५ ॥
अनुत्तरानन्दशक्ती त्रिकोणद्वययोगतः ।
तथैवोन्मेषयोगेन क्रियाशक्तेः स्फुटं वपुः ॥ ७६ ॥
उक्तत्रिशक्तिसङ्घट्टात् त्रिशूलं द्वैतघस्मरम् ।
परस्पराविरोधेन कार्येषु प्रविरोहति ॥ ७७ ॥
न कथंचिदुपाधेयमासां रूपमिदं भवेत् ।

अकार आदि स्वरों का तात्पर्य—पृथिवी आदि तत्त्व जब अपने कारण में लीन हो जाते हैं तब शक्ति कारणों को बाहर प्रकट करती है और वे हैं—अ =

अनुत्तर, इ = इच्छा, उ = उन्मेष, आ = आनन्द, ई = ईशन, ऊ = उनता। इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्तियों का मूल ये छह वर्ण हैं। जब इच्छा ईशना पर आरूढ होती है तो यह संसार स्फुट और अस्फुट दोनों रूपों में भासित होता है। इसके फलस्वरूप उनसे प्रेरित होकर ऋ ॠ ऌ और ॡ ये चार नपुंसक वर्ण शुद्धरूप में प्रकट होते हैं। अनुत्तर और आनन्द शक्तियाँ जब इच्छा शक्ति में नियोजित कर दी जाती हैं तब त्रिकोण बनता है। इसके बाद अनुत्तर और आनन्द ये दो शक्तियाँ जब इच्छा में रूढ हो जाते हैं तब (ईशन के साथ) षट्कोण बनता है। इसमें दो त्रिकोण होते हैं। उसी प्रकार उन्मेष के योग से क्रिया-शक्ति का शरीर स्फुट हो जाता है। उक्त इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्तियों के मिल जाने से त्रिशूल बनता है जो द्वैतभाव का भक्षण कर जाता है इनके कार्यों में परस्पर कोई विरोध नहीं होता (अर्थात् ऐसा नहीं है कि एक शक्ति सक्रिय है तो शेष उस दिशा में निष्क्रिय रहेंगी या दूसरी दिशा में सक्रिय रहेगी। परस्पर भिन्न होती हुई भी वे सम्पूर्ण कृत्य मिलकर करती है)। इनका 'ऐसा रूप है' इस तरह का पृथक्करण कभी नहीं करना चाहिये ॥ ७२-७७- ॥

बिन्दुर्वेद्यस्य संस्कारो विमर्शः सर्ग इत्यसौ ॥ ७८ ॥
कलाषोडशकाकारा शक्तिर्बीजायते परा।
तिथयः प्रतिपत्पूर्वाः पञ्चदश्यन्तिमा यथा ॥ ७९ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ स्वान्तश्चरन्तौ स्थितिहेतवे।
तथा विमर्शवपुषः सर्गस्याद्याः कलाः स्मृताः ॥ ८० ॥

बिन्दु वेद्य का संस्कारमात्र है। विमर्श सृष्टि है। सोलह कलाओं वाली पराशक्ति इनका बीज अर्थात् मूल कारण है। जैसे प्रतिपत् से लेकर पञ्चदशी तक अन्तिम तिथि होती है और सूर्य तथा चन्द्रमा अपने अन्दर इसकी स्थिति के लिये सञ्चरण करते रहते हैं उसी प्रकार विमर्श शरीर सृष्टि की कलायें प्रथम मानी गयी हैं ॥ ७८-८० ॥

मातृकाया सृष्टियोनित्वम्

द्विधेयं मातृका देवी बीजयोन्यात्मना स्थिता।
नित्यप्रवृत्तशृङ्गाटवपुर्विश्वस्य जन्मभूः ॥ ८१ ॥
हृदयं बीजमेतस्याः संविदो यत्परं महः।
वटबीजे यथा वृक्षस्तद्वत् सन्निहितं जगत् ॥ ८२ ॥
विचार्यमाणो(?णं) यो नैव(?यन्नैव) कारणादतिरिच्यते।
मृदादेः कलशादीनां तत्त्वं नान्यन्निरूपणे ॥ ८३ ॥

इत्याहुस्तत्त्ववादिन्यः श्रुतीनामन्तिमा गिरः ।
इदं सर्वं सदेवासीदग्र इति विनिश्चयात् ॥ ८४ ॥

मातृका सृष्टि की योनि है—यह मातृका बीज और योनि के रूप में दो प्रकार से स्थित है । नित्य प्रवृत्त मूलाधार जो कि सिङ्घाड़े या चौराहे की तरह है विश्व की जन्मभूमि है । इस संवित् का जो पर तेज है वह बीज है । जिस प्रकार वट-बीज में वृक्ष उस प्रकार यह संसार उस संविद् में निगूढ रहता है । विचार करने पर यह वृक्षरूपी जगत् अपने कारण बीज रूपी हृदय (= ह) से अतिरिक्त नहीं प्रतीत होता । विचार करने पर कलश आदि का तत्त्व मृत् आदि से अतिरिक्त नहीं है ऐसा तत्त्ववादिनी श्रुतियाँ कहती है। 'सदेवेदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्' यह सिद्धान्त वाक्य है ॥ ८१-८४ ॥

परसंविद महामन्त्रे लयः

सत्तावाचिनि बीजेऽस्मिन्क्ष्मादिमायान्तिमं जगत् ।
विलुप्तप्रत्ययाकारमेतत् स परिशिष्यते ॥ ८५ ॥
ततो ज्ञानक्रियासारा विद्येश्वरसदाशिवाः ।
शक्तौ त्रिशूले लीयन्ते चतुर्दशकलात्मनि ॥ ८६ ॥
ऊर्ध्वाधः सृष्टिवपुषि सर्वं लीनमतः परम् ।
इत्थं परस्यां संवित्तौ स विसर्गचितिः क्रमात् ॥ ८७ ॥
अथ वाङ्मनसातीते यत्र क्वापि निरञ्जने ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वलहरीकलहातीतगोचरे ॥ ८८ ॥
विश्वात्मनि महामन्त्रे स्वभावे सा विलीयते ।

परासंविद् का महामन्त्र में लय—सत्तावाची इस हृदय-बीज में पृथिवी से लेकर माया तक का यह जगत् विलुप्तप्रत्यय के आकार में रहता है । इसके पश्चात् ज्ञानक्रिया तत्त्व वाले शुद्ध विद्या ईश्वर और सदाशिव चतुर्दश कलारूप शक्तिरूपी त्रिशूल में लीन हो जाते हैं । इसके बाद इस सृष्टिरूपी शरीर में ऊर्ध्व अधः सब लीन हो जाता है । इस प्रकारा परासंवित् में वह विसर्ग-चैतन्य लीन हो जाता है । तत्पश्चात् वह परासंवित् वाङ्मनोऽतीत, निरञ्जन, छत्तीसतत्वों की लहर से परे विश्वात्मा महामन्त्र स्वभाव में लीन हो जाती है ॥ ८५-८८- ॥

संविदग्नौ सर्वहोमस्य फलम्

कुतश्चिन्मथिते धाम्नि दीप्ते केनापि हेतुना ॥ ८९ ॥
सर्वं हविरिदं जुह्वन्न दारिद्र्येण पीड्यते ।
पञ्चपञ्चात्मकं देवि पञ्चस्पन्दविजृम्भितम् ॥ ९० ॥

सङ्कोचयन् परामर्शी सामान्यस्पन्दकेवलम् ।
अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः ।
पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वभावमशिवापहम् ॥ ९१ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादेऽनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरूपण-
नामक एकचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ४१ ॥

* * *

संविद् अग्नि में सब कुछ के हवन का फल—किसी से मथित और किसी कारण से दीप्त इस संविद् रूपी अग्नि में समस्त जगत्रूपी इस हवि का हवन करने वाला कभी दरिद्रता से पीडित नहीं होता । हे देवि! पाँच स्पन्द से विजृम्भित पाँच पञ्च को सङ्कुचित करने वाला परामर्शी केवल सामान्य स्पन्द को 'इदम्' के प्रतियोगी 'अहम्' में लीन करने वाला पराक्रमी अशिव को नष्ट करने वाले स्वभाव का अनुभव करता है ॥ ८९-९१ ॥

**॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में अनुत्तरज्ञानप्रक्रिया-निरूपण
नामक इकतालिसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ४१ ॥**

* * *

द्विचत्वारिंशः पटलः

तत्त्वज्ञानोपदेशनिरूपणम्

वागादीनामुत्पत्त्यादिविषयकाः प्रश्नाः, तत्समाधानानि च

श्रीपार्वत्युवाच—

कथमुत्पद्यते वाणी कथं वा सा विलीयते ।
वाचो विनिर्णयं ब्रूहि पश्चात्तत्त्वमुदीरय ॥ १ ॥

वाक् आदि की उत्पत्ति आदि के विषय में प्रश्न—श्रीपार्वती ने कहा—वाणी की उत्पत्ति कैसे होती है? और वह कैसे विलीन होती है? पहले इस सन्देह का निराकरण कीजिये बाद में वाणी के तत्त्व को बतलाइये ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच—

अव्यक्तात्प्राण उत्पन्नः प्राणादुत्पद्यते मनः ।
मनस उत्पद्यते वाग्वाङ्मनसि विलीयते ॥ २ ॥

ईश्वर ने कहा—अव्यक्त से प्राण उत्पन्न होता है । प्राण से मन की उत्पत्ति होती है । मन से वाक् का प्रादुर्भाव होता है (यह उत्पत्ति क्रम हुआ । लय का क्रम इस प्रकार है) । वाणी का लय मन में होता है ॥ २ ॥

देव्युवाच—

आहारं काङ्क्षते कोऽसौ भुङ्क्ते च पिबते च कः ।
जागर्ति सुप्यते कोऽसौ सुप्तः कोऽसौ प्रबुध्यते ॥ ३ ॥

देवी ने कहा—आहार की इच्छा कौन करता है? भोजन और पान कौन करता है? यह कौन है जो जागता और सोता है? और सुप्त होकर कौन प्रबुद्ध होता है ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच—

आहारं काङ्क्षते प्राणो भुङ्क्ते चैव हुताशनः ।

जागर्ति सुप्यते वायुः सुप्ते तेजः प्रबोधयेत् ॥ ४ ॥

ईश्वर ने कहा—आहार की इच्छा प्राण करता है । अग्नि उसको खाता है । वायु जागता और सोता है । सुप्त होने पर तेज जागता है ॥ ४ ॥

देव्युवाच—

को वा करोति पापानि को वा पापेन लिप्यते ।
को वा बद्धो विमुक्तः कः को वा पापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥

देवी ने पूछा—कौन पाप करता है? कौन पाप से लिप्त होता है? कौन बद्ध है? और कौन मुक्त होता है? कौन पाप से मुक्त होता है? ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच—

मनः करोति पापानि मनः पापेन लिप्यते ।
मनस्युन्मननीभूते न धर्मो नापि पातकः ॥ ६ ॥

ईश्वर ने कहा—मन पाप करता है । मन पाप से लिप्त होता है । मन के उन्मना में पहुँचने पर न पुण्य होता है, न पाप ॥ ६ ॥

आकाशजीवयो: स्थितिविषयक: प्रश्न:

देव्युवाच—

यदिदं शाक्तमाकाशं देहस्थं देहवर्जितम् ।
तत् स्थितं तु कथं देहे देहिदेहविवर्जितम् ॥ ७ ॥
कथं जीवः स्थितो देहे कोवा जीवः प्रकीर्तितः ।
केन पश्यत्यसौ जीवः केन मार्गेण सञ्चरेत् ॥ ८ ॥
सकलस्तु कथं जीवो निष्कलस्तु कथं भवेत् ।
केन जीवत्यसौ जीवः किं वा जीवस्य भोजनम् ॥ ९ ॥
कुतो वा लीयते जीवो जायते कुत एव हि ।
को वा जीवः कथं प्राणः केन जीवःप्रकीर्तितः ॥ १० ॥
एतत्सर्वं यथातत्त्वं तत्त्वं मे ब्रूहि शङ्कर ।
संसारार्णवमग्ना हि येन मुच्याम्यहं प्रभो ॥ ११ ॥

आकाश और जीव का स्थिति-विषयक प्रश्न—देवी ने कहा—जो यह शाक्त आकाश है वह देह में स्थित रहता है किन्तु इसका स्वयं का कोई देह नहीं है । देह और देही से रहित यह आकाश देह में कैसे स्थित रहता है? जीव देह में कैसे रहता है? जीव का स्वरूप क्या बतलाया गया? किसके द्वारा यह जीव देखता है? किस मार्ग से यह सञ्चरण करता है? यह जीव सकल कैसे है?

यह निष्कल कैसे बनता है? यह जीव किसके कारण जीवित रहता है? इस जीव का भोजन क्या है? यह जीव किसमें लीन होता है? यह कहाँ से उत्पन्न होता है? यह जीव है क्या? इसका प्राण क्या है? इसे जीव क्यों कहा जाता है? हे शङ्कर यह सब तत्त्व यथार्थतः मुझे बतलाइये ताकि संसार-समुद्र में डूबी हुई मैं मुक्त हो सकूँ ॥ ७-११ ॥

पूर्वप्रश्नस्योत्तरम्

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्त्वया समुदाहृतम् ।
कथयामि न संदेहः सारात्साररतरं शुभम् ॥ १२ ॥
वायुस्तेजस्तथाकाशं तृतीयं जीवसंज्ञकम् ।
स जीवः प्राण इत्युक्तो बालाग्रशतकल्पितः ॥ १३ ॥
जीवः शुक्रं च विज्ञेयं यावत् सत्त्वेन संस्थितम् ।
रजसा स समायुक्तो वायुर्जीवः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥
तमसा च समायुक्तस्तदा हृष्टो भवेद् ध्रुवम् ।
सत्त्वेन च समायुक्तो धर्मज्ञानप्रवर्तकः ॥ १५ ॥
रजसा च समायुक्तो भुङ्क्ते च विषयान् प्रभुः ।
तमसा च समायुक्तस्तदा पापेन लिप्यते ॥ १६ ॥

पूर्व प्रश्न का उत्तर—ईश्वर ने कहा—हे देवि! जो तुमने पूछा उसको मैं बतला रहा हूँ, सुनो—सार से भी सार तथा शुभ को मैं बतला रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं । वायु तेज और तीसरा तत्त्व आकाश—ये तीन मिलकर जीव कहलाते हैं । वह जीव प्राण कहा गया है जो बाल की नोक के सौवें भाग के बराबर है । शुक्र अर्थात् तेज जब सत्त्व गुण से युक्त रहता है तब वह जीव कहलाता है । वायु जब रजोगुण से समायुक्त होता है तब जीव कहलाता है । जब तमोगुण से युक्त होता है तक निश्चित रूप से वह हृष्ट होता है । जब वह सत्त्वगुण से समायुक्त होता है तब धर्म और ज्ञान का प्रवर्त्तक होता है । वही जीव रजोगुण से संश्लिष्ट होकर विषयों का स्वामी बनकर उनका भोग करता है और जब वह तमोगुण से लिप्त होता है तब पाप करता है ॥ १२-१६ ॥

नासाग्रं चैव नाभिं च हृदयं च तृतीयकम् ।
स्थानान्येतानि जीवस्य कल्पितानिशिवेन तु ॥ १७ ॥
हृत्कमलं शिरश्चैव सत्त्वे यावद्व्यवस्थितम् ।
देहसंस्थित इत्युक्तः शिवेन परमात्मना ॥ १८ ॥

यावन्न चलते जीवस्तावन्निश्चलतां गतः ।
नाभिस्थो निष्कलं ज्ञात्वा मुच्यतेजन्मबन्धनात्॥ १९ ॥
नाभिस्थः सर्वकालेषु हृदि तिष्ठति सर्वगः ।
वक्त्रनासापुटान्तःस्थो भुङ्क्ते च विषयान् प्रभुः ॥ २० ॥
जीवः पश्यति देहस्थो जीवते च महेश्वरः ।
भुङ्क्ते भोगं शुभं जीवो देही देहे व्यवस्थितः ॥ २१ ॥

शिव ने जीव के नासाग्र, नाभि और हृदय—ये तीन स्थान बतलायें हैं । हृदय और शिर सत्त्व में स्थित हैं । परमात्मा शिव ने जीव को देह में स्थित कहा है । यह जीव जब तक चलता नहीं तब तक निश्चिल रहता है । जब यह जीव नाभि में रहकर निष्कल परमात्मा को जान लेता है तब बन्धन से मुक्त हो जाता है । वह सब समय नाभि में रहता है । जब हृदय में रहता है तब सर्वगामी होता है । मुख और नासापुट के अन्दर स्थित हुआ यह स्वामी बनकर विषयों का भोग करता है । देह में रहकर यह महेश्वर जीव सबको देखता और जीवित रहता है । देह का स्वामी जीव देह में रहकर शुभ-अशुभ भोगों को भोगता रहता है ॥ १७-२१ ॥

देहं त्यक्त्वा यदा जीवो बहिराकाशमाश्रितः ।
तदात्मविषयो जीवो जायते नात्र संशय ॥ २२ ॥
तदिदं निष्कलं ब्रह्म ध्यायेदिति सदाशिवम् ।
ध्यात्वा शिवं च सहजं मुच्यते भवबन्धनात् ॥ २३ ॥
सर्वगः सर्वदेहस्थो नासाग्रे च प्रतिष्ठितः ।
प्रत्यक्षः सर्वभूतानां दृश्यते न च लक्ष्यते ॥ २४ ॥
नाभिमध्ये स्थितं जीवं शुद्धतत्त्वं तु निर्मलम् ।
आदित्यमिव दीप्तं तु रश्मिभिर्ज्वलितं शुभम् ॥ २५ ॥
हकारार्धनिभं जीवं जीवो देहे च संस्थितः ।
नाभिरन्ध्रस्थितं ख्यातं विषयान्प्राप्य संस्थितम् ॥ २६ ॥
तेनेदमखिलं व्याप्तं क्षीरं च सर्पिषा यथा ।

जीव जब देह छोड़कर आकाश में आश्रित होता है तब यह आत्मविषयक अर्थात् आत्मकेन्द्रित हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं । जब वह सदाशिव नामक निष्कल ब्रह्म और स्वभाव रूप शिव का ध्यान करता है तब भवबन्धन से मुक्त हो जाता है । सर्वव्यापी सर्वदेहस्थ वह नासिका के अग्रभाग में स्थित हुआ सब भूतों को प्रत्यक्ष दिखाई देता है किन्तु पहचाना नहीं जाता । नाभि में स्थित शुद्धतत्त्व निर्मल जीव, जो कि सूर्य के समान दीप्त किरणों से चमक रहा, शुभ

और हकारार्ध के समान है, ऐसे जीव को देह में स्थित जीव देखता है। उस जीव को नाभिरन्ध्र में स्थित और विषयों को प्राप्त कर स्थित कहा गया है। वह सम्पूर्ण संसार में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे घृत से क्षीर ॥ २२-२६- ॥

जीवस्य भ्रमिनिरूपणम्

कारणं नात्मनश्चैव प्राणापानैस्तु पञ्चभिः ॥ २७ ॥
श्वासनिःश्वासयोगेन अध ऊर्ध्वं प्रवर्तते ।
शुष्कपत्रं तु वातेन नीयते गगनं यथा ॥ २८ ॥
तथा भ्रमति जीवाख्यं(?ख्यः) प्राणापानैस्तुपञ्चभिः ।
चतुष्कलासमायुक्तो भ्राम्यते हृदये स्थितः ॥ २९ ॥
गोलकस्तु यथा देवि स्वेन दण्डेन ताडितः ।
उत्पत्य पतते शीघ्रमविश्रान्तः पुनः पुनः ॥ ३० ॥

जीव का भ्रमण—प्राण अपान आदि पाँच वायुओं के द्वारा श्वास-निश्वास की सहायता से यह जीव शरीर में नीचे-ऊपर दौड़ता रहता है। जिस प्रकार सूखा पत्ता वायु के द्वारा आकश में उड़ा लिया जाता है उस प्रकार जीव नामक यह आत्मा प्राण अपान आदि पाँच वायुओं के द्वारा भ्रमण करता रहता है। चार कलाओं से युक्त होकर यह हृदय में रहता है। हे देवि! जैसे गेंद अपने दण्ड से मारे जाने पर उछल कर गिरता है उस प्रकार यह जीव भी बिना रुके ऊपर नीचे उठता गिरता रहता है ॥ २७-३० ॥

मोक्षप्रदज्ञानविषयकः प्रश्नः

पार्वत्युवाच—

यदिदं सकलं ब्रह्म व्योमाता तं निरञ्जनम् ।
निष्कलं निर्मलं शान्तं निष्प्रपञ्चमलक्षणम् ॥ ३१ ॥
अप्रत्यक्षमविज्ञेयं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ।
कैवल्यं केवलं शान्तं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ ३२ ॥
करणयोग(वि)निर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम् ।
तक्षणान्मुच्यते येन तज्ज्ञानं ब्रूहि शङ्कर ॥ ३३ ॥

मोक्षप्रद ज्ञान के विषय में प्रश्न—पार्वती ने कहा—जो यह सकल ब्रह्म व्योमातीत निरञ्जन निष्कल निर्मल शान्त निष्प्रपञ्च, अलक्षण, अप्रत्यक्ष, अविज्ञेय उत्पत्तिनाशरहित, कैवल्य, केवल, शान्त, शुद्ध स्फटिक के समान, करण-योग से रहित, हेतुसाधन से हीन है वह जिस ज्ञान से मुक्त होता है, हे शङ्कर! उस ज्ञान को बतलाइये ॥ ३१-३३ ॥

पूर्वप्रश्नस्योत्तरम्

ईश्वर उवाच—

एतदेव महाभागे कुमारो ब्रह्मणः सुतः ।
परिसमेत्य योगीशं विष्णुं विश्वैककारणम् ।
उवाच परया भक्त्या ब्रह्मविद्यां वद प्रभो ॥ ३४ ॥
ययाचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य
परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ।
तस्मै स होवाच जगत्प्रभुश्च
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि ॥ ३५ ॥
न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः ।
परेण नाकं निहितं गुहायां
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥ ३६ ॥
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद् यतयो विशुद्धाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ३७ ॥

पूर्व प्रश्न का उत्तर—ईश्वर ने कहा—हे महाभागे! ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार ने विश्व के एकमात्र कारण योगीश विष्णु के पास जाकर परमभक्ति के साथ यही बात कही कि हे प्रभो! उस ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिये जिसके द्वारा विद्वान् शीघ्र समस्त पापों को दूरकर परात्पर पुरुष को प्राप्त होता है । उनसे भगवान् विष्णु ने कहा—ब्रह्मविद्या को श्रद्धा भक्ति ध्यान एवं योग से प्राप्तव्य जानो । न कर्म न प्रजा और न धन से बल्कि त्याग के द्वारा विद्वानों ने अमृतत्व को प्राप्त किया । वेदान्त अर्थात् उपनिषदों के ज्ञान से अर्थ अर्थात् ब्रह्मतत्व का सत्य स्वरूप जानने वाले विशुद्ध यति लोग संन्यास के द्वारा उसे प्राप्त करते हैं । वह तत्त्व स्वर्ग से परे हृदय- गुहा में विराजमान है । इसमें संन्यासी लोग प्रवेश कर जाते हैं । वे सारे संन्यासी लोग अन्तकाल में ब्रह्मलोक में परम अमृत के कारण मुक्त होते हैं ॥ ३४-३७ ॥

शिवशक्तिध्यानतत्फलयोर्वर्णनम्

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः
शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः ।

स्वस्वाश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि
निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ॥ ३८ ॥
हृत्पुण्डरीके विरुजं विशुद्धं
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं शान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ ३९ ॥
अथादिमध्यान्तविहीनमेकं
विधिं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥ ४० ॥
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ।

शिव शक्ति का ध्यान और उसका फल—साधक एकान्त प्रदेश में सुखासन में बैठ जाय । पवित्र वह अपनी ग्रीवा शिर और शरीर को सीधा रखे । अपने-अपने आश्रम में रहे । समस्त इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर, भक्ति के साथ अपने गुरु को प्रणाम करने के बाद साधक हृदय-कमल में भगवान् शिव का ध्यान करे । वे भगवान् रोग- रहित, शुद्ध, विशद, विशोक, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप वाले, कल्याणकर, शान्त, अमृत, ब्रह्मा की योनि अर्थात् कारण, आदि मध्य अन्त से हीन, एक, व्यापक चित् आनन्द रूप, अद्‌भुत, उमा के साथ विद्यमान, परमेश्वर, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, शान्त, सबके साक्षी और अन्धकार अर्थात् अज्ञान से परे हैं । वे प्राणियों के आदि कारण है । उनका ध्यान कर मुनि अज्ञान से परे हो जाता है ॥ ३८-४०- ॥

स एव मायापरिमोहितात्मा
शरीरमास्थाय करोति सर्वम् ॥ ४१ ॥
स्त्रीस्वन्नपानादिविचित्रभोगैः
स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ।
स्वप्ने च जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितविश्वलोके ॥ ४२ ॥
सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ।
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ॥ ४३ ॥

पुरत्रये क्रीडति यश्च जीव-
स्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् ।
आधारमानन्दमखण्डबोधं
यस्मिंल्लयं याति पुरत्रयं च ॥ ४४ ॥

जाग्रत अवस्था में वही माया से परिमोहित स्वरूप वाला है । वही शरीर को आधार बनाकर सब कुछ करता है । स्त्री अन्न पान आदि के विचित्र भोगों से वही तृप्त होता है । स्वप्नावस्था में यह जीव अपनी माया से कल्पित विश्व में सुख-दुःख को भोगता है । सुषुप्ति काल में जब सब कुछ विलीन हो जाता है तब वह तमोगुण से अभिभूत होकर अपने सुख स्वरूप को प्राप्त होता है । पुनः जन्मान्तर कर्म के संस्कार के कारण वही जीव सोता और जागता है । तीन पुर अर्थात् नाभि हृदय और भ्रूमध्य में जो जीव क्रीडा करता है उसी से समस्त विचित्र संसार उत्पन्न हुआ है । सब आधार और आनन्द स्वरूप, अखण्ड ज्ञानरूप ब्रह्म में सब कुछ तथा तीनों पुर लीन हो जाते हैं ॥ ४१-४४ ॥

स ब्रह्मा शिवः स इन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ ४५ ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ४६ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन् परमं ब्रह्म याति नान्येन हेतुना ॥ ४७ ॥
आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः ॥ ४८ ॥

वह ब्रह्मा, शिव इन्द्र अक्षर परम और स्वराट् अर्थात् अपने ध्यान में मग्न रहता है । वही विष्णु वही प्राण काल अग्नि और चन्द्रमा हैं । जो भूत हैं; हो भव्य हैं; जो सनातन है सब कुछ वही हैं । उनको जानकर साधक मृत्यु को पार कर जाता है । मुक्ति के लिये इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है । अपने को समस्त प्राणियों में तथा समस्त प्राणियों को अपने अन्दर देखने वाला साधक परमब्रह्म को प्राप्त करता है । अन्य साधनों से ब्रह्मप्राप्ति सम्भव नहीं है । अपने को नीचे की और प्रणव को ऊपर की अरणि बनाकर ज्ञान के द्वारा मन्थन के अभ्यास से विद्वान् अपने पाप को जला डालता है ॥ ४५-४८ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वधारिणी ॥ ४९ ॥
यत्पुनर्ब्रह्म सर्वात्मा सर्वस्यायतनं महत् ।

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥ ५० ॥

इसी से प्राण मन सम्पूर्ण इन्द्रियाँ आकाश वायु ज्योति अर्थात् तेज, जल और विश्व की आधारभूता पृथिवी उत्पन्न होती हैं जो सबका आत्मा, सबका परम आयतन, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म एवं नित्य तत्व है तुम भी वही हो ॥ ४९-५० ॥

अपरोक्षानुभूतेः स्वरूपवर्णनम्

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपञ्चं यत्प्रकाशते ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ ५१ ॥
त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः सोऽहं चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ ५२ ॥
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥ ५३ ॥

अपरोक्ष अनुभूति का स्वरूप—जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि प्रपञ्च के रूप में जो प्रकाशित है वह ब्रह्म है और वही मैं हूँ ऐसा जानकर साधक समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है । जो तीनों धामों में भोग्य है जो भोक्ता और भोग्य है मैं उससे विलक्षण हूँ । मैं चिन्मात्र हूँ और सदाशिव हूँ । मेरे में ही सब उत्पन्न हुआ है, मेरे में ही सब स्थित है, मेरे में ही सब विलीन होता है । मैं वही अद्वय ब्रह्म हूँ ॥ ५१-५३ ॥

अणोरणीयानहमेव तद्व-
न्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरणमयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥ ५४ ॥
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥ ५५ ॥
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥ ५६ ॥
न भूमिरापो मम नास्ति वह्नि-
र्न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च ।

मैं ही अणु से भी अणुतर हूँ। महान् से भी महत्तर हूँ। मैं ही विचित्र विश्व हूँ। मैं ही पुरातन पुरुष हूँ। मैं ईश्वर, हिरण्मय एवं शिव रूप हूँ। मैं हाथ पैर से रहित होता हुआ अचिन्त्य शक्ति वाला हूँ। विना आँख के देखता और विना कान के सुनता हूँ। पृथक् रूप में मैं सबका ज्ञाता हूँ। मेरा कोई ज्ञाता नहीं है। मैं सदा चित्स्वरूप हूँ। अनेक वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ। उपनिषदों का रचयिता और वेदों का वेत्ता मैं ही हूँ। मेरा न पुण्य है, न पाप। न तो मेरा नाश होता है, न जन्म और मेरा शरीर इन्द्रिय और बुद्धि नहीं है। भूमि जल तेज वायु और आकाश भी मेरा नहीं है ॥ ५४-५६ ॥

उक्तानुभूतेः फलम्

एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ॥ ५७ ॥

उक्त अनुभूति का फल—जो इस प्रकार गुहा में स्थित निष्कल, अद्वितीय, सबका साक्षी, सदसद्विहीन परमात्मरूप को जानता है वह शुद्ध परमात्मरूप को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥

य एतत्तन्त्रं समधीते सोऽग्निपूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति कृत्याकृत्यात्पूतो भवत्यगम्यगमनात्पूतो भवति ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे तत्त्वज्ञानोपदेशननामको द्विचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः ॥ ४२ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीशिवार्पणं भूयात् ॥

◆

जो इस तन्त्र को सम्यक्तया पढ़ता है वह अग्नि से पवित्र होता है। सुरा पान के पाप से मुक्त हो जाता है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य से पवित्र हो जाता है। अगम्या के गमन से पवित्र हो जाता है ॥ ५८ ॥

शरर्त्तुशून्याक्षिमिते शुभेऽब्दे
पूर्णातिथौ कार्त्तिकमीष्पतेर्दिने।
सम्पूर्त्तिमेतद्धि जगाम तन्त्रं
गन्धर्वनाम श्रुतिमत्त्रिलोके ॥

तातः 'श्रीमुरलीधरो'ऽथ'सकला'माता तपोवर्त्तिनी
यं सूनुं सुषुवे तपोभिरनिशं सम्पादितैः स्वेच्छया ।
'राधेश्याम'कृती समर्पयति गन्धर्वाख्यतन्त्रं तयोः
पित्रोस्त्रैपुरमद्भुतं सुकृतिनोर्दिव्यं सश्रद्धं परम् ॥

शास्त्राण्यभ्यसितानि नित्यविधयः सौख्येन संराधिताः
काशीहिन्दुसरस्वतीसदनसच्छायापनीतः श्रमः ।
सम्प्रत्याग्निमुखी जगत्प्रसविनी मायापुरे सेव्यते
सर्वं चित्रवदाशु याति सततं वृद्धिं गतेनायुषा ॥

यच्चात्रास्त्यसमीहितं परमतेऽनावश्यकं खेदकृत्
तत्सच्छास्त्रनिषेवणैकनिशितप्रज्ञैरवज्ञायताम् ।
उद्दामोत्कालिकापरागपरमामोदार्थिनः कानने
किं वाञ्छन्ति कठोरकण्टकव्यथां तत्र स्थितां षट्पदाः ॥

दत्तात्रेयेण यत् प्रोक्तं विश्वामित्राय धीमते ।
तदिदं प्रीतये भूयाद् भवानीविश्वनाथयोः ॥

॥ इस प्रकार गन्धर्वतन्त्र के पार्वतीश्वरसंवाद में तत्त्वज्ञानोपदेश नामक बयालिसवें पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥

* * *

श्लोकार्द्धानुक्रमणिका

अ

अकथादित्रिरेखाढ्यं १९२
अकथादित्रिपंक्त्यादि ३९०
अकथ्यमपि देवेशि ३९५
अकारं चाप्यूकारं च २६३
अकारादि क्षकारान्ता १२६,१४३
अकालं प्रलयं कस्मात् १०
अकुर्वतामग्निहोत्रं ३६४
अकौलभूषणो वापि ४२३
अक्षतैर्वा जलैर्वापि २२०
अक्षपाद इति ख्यात: ७
अक्षमालाङ्कुशधरां ४१५
अक्षमालां च मुद्रां च २५९
अक्षमालां समाश्रित्य ३७०
अक्षयान् लभते कामान् ५०
अक्षयं मङ्गलं शीर्षे २६८
अक्षराक्षरसञ्चारि ३१३
अक्षराणां तु सर्वेषां १०१
अक्षरात् सर्वमुत्पन्नं २४
अक्षरार्थो हि भावार्थ: ३८४
अक्षरं च हुतं चात्र ४५५
अक्षसूत्रं बीजपूरं ४
अखण्डपरचिच्छक्ति ५३
अगम्यकारणत्वाच्च ४९६
अगुरुद्रवमिश्रेण ५०
अगुरुप्रभृतिश्चापि २१५
अगृध्नुरुपयुञ्जीत ४३०
अग्नितो राक्षसीं गत्वा २३६
अग्निरेव मुखं देव्या २६४
अग्निवायुसूर्यविद्यु १०१
अग्निहोत्रपरस्येह २६४
अग्निहोत्रविधानेन २६४
अग्निहोत्रं सदा कुर्यात् २६४
अग्नीशासुरवाव्यव्य ५८
अग्रकोणेऽग्निचक्रे च ६८
अग्रजा मातुलानी तु ३२१
अङ्कुशमुद्रया पश्चात् १९१
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां २४५
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां २५४
अङ्कुशं तोमरं विद्युत् ६३
अङ्गबाधे यथा दोषो ३२७
अङ्गन्यासकरन्यासौ २८४
अङ्गमन्त्रान् न्यसेद् देवि २०३
अङ्गरागेषु सिन्दूरं २०७
अङ्गविन्यासविधुरा १५७
अङ्गहीना तथा पूजा ३२६
अङ्गहीने महान् दोष ३२६
अङ्गहीनं तु पुरुषो ३२६
अङ्गहीनं भवेद् यद् यत् ३७८
अङ्गावृत्ति समभ्यर्य्य ३५७
अङ्गुलिर्नापयुञ्जीत २५७
अङ्गुलीनां वियोगे तु २५७
अङ्गुलीपर्वभिर्मन्त्रं २५७
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे १६७
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि १२३
अङ्गुष्ठगुल्फजानुषु ८०
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगा २०६
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगे ७४

अङ्गुष्ठपर्वमध्यस्थां २५९
अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं ४०५
अङ्गुष्ठमध्यमानामा २७५
अङ्गुष्ठमध्यमायोगं ७४
अङ्गुष्ठानामिकायोगं ७५
अङ्गुष्ठानामिकायोगं ११०
अङ्गुष्ठानामिकायोगात् २०६
अङ्गुष्ठाभ्यां महेशानि! ७४
अङ्गुष्ठावपि संयोज्यौ २०१
अङ्गुष्ठेन भवेद् यस्य २६०
अङ्गुष्ठेन विना कर्म २५९
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीया ७९
अङ्गुष्ठौ च महेशानि! २५२
अङ्गुष्ठं कर्णयोर्देवि! १२७
अङ्गुष्ठं मोक्षदं देवि! २५९
अङ्गुष्ठं शिवमित्याहुः २०६
अङ्गेषु पार्श्वयोः पाणी ३७०
अङ्गं सङ्कोचयन् वामं १११
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं ५१४
अचिन्त्यशक्तिरस्त्रेषु ४०
अचिन्त्यस्त्विह मन्त्राणां ३५९
अजपा तेन विख्याता ३९५
अज्ञप्त दूषणं स्थानं १११
अज्ञातरूपकं याति ११५
अज्ञातरूपं तत् सर्वं १२४
अज्ञात्वा विन्यसेद् यस्तु १२७
अज्ञानकलुषं जीवं ४८१
अज्ञानतिमिरान्धस्य ७६
अज्ञानामपि चात्मात्वं ४९६
अज्ञानाद्विश्वविज्ञानं ३५०
अज्ञानान्मानसोपाधेः ४७९
अट्टहासं च विरजं १४५
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां २२८
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो ३२३
अणिमा पश्चिमे पातु ३७
अणिमां पूजयेद् वामे २४१
अणोरणीयानहमेव तत्त ५१६
अत ऊर्ध्वं पुनर्दीक्षां ३२४
अत ऊर्ध्वं वहेद् देवि! ४६६
अत एव महेशानि ४६५
अतदात्मा तदात्मा च ३४१
अतर्पिता यदा तस्मिन् २७७
अतस्तां च प्रयत्नेन ४६३
अतस्तेनापि मुनिना २२६
अतिगुप्ततरं यस्मात् ४३८
अतिगुह्यतमं सूक्ष्म ४९५
अतिगुह्यतरं देवि! २५
अतिरहस्यं योगिन्यः ६८
अतुलां भक्तिमासाद्य ३२५
अतुलैकरसानन्दं ४९४
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता ३४२
अतो न तुलसीपुष्पैः ४२४
अतो भोगेन तां तोष्य ४६९
अतो यत्नेन विदुषो ३७८
अतः परं न किञ्चित् तु २९५
अतः सर्वत्र देवेशि! ७६
अत्यन्तगुप्तरूपेण ४३८
अत्यन्तसुखदैर्वस्त्रैः ४८७
अत्यन्ताभावतो भेदा ४९८
अत्यन्तं दुर्लभं गुह्यं ३४
अत्र निद्रापरा देवी ३१२
अत्र निद्रापरा यान्ति ३१०
अत्र पदं समाभाष्य २५४
अत्र भ्रमो महान् दोषः ४५८
अत्र यत् क्रियते कर्म ३८०
अत्र यत् पुण्यमनघे ३०९
अत्र यो नार्चयेद् देवीं ३१०
अत्र वै पूजिता देवी ३०९

अत्राङ्गवृत्तिभूतानां ५९
अत्रान्यचिन्तनाद् यान्ति ३१०
अथ कामकलाबीज ४००
अथ कामकलारूप २७९
अथ गुरुः प्रसन्नात्मा ३६३
अथ त्रिगुणरूपिण्याः ३४१
अथ त्रिपुरगायत्र्या १०६
अथ दीपं प्रवक्ष्यामि २२१
अथ देवाश्च देव्यश्च ९
अथ देवाश्च दैत्याश्च ४६४
अथ देवी परा शक्तिः ५०४
अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि ३४२
अथ पीठानि विधिना १४५
अथ पूर्वमुपोष्याऽथ ३६९
अथ पूर्वानुसारेण ३५५
अथ प्रागुक्तविधिना ३५७
अथ मुक्ताफलमयी ३७१
अथ वक्ष्ये महेशानि! ४०१
अथ वक्ष्ये महेशानि! २७२
अथ वक्ष्ये विधानानि ३६७
अथवा कुशमूलेन ५४
अथवा चिन्तयेदेता २७४
अथवाऽद्वैतभावेन ३३८
अथवा प्रजपेद् देवीं ३२८
अथ वाङ्मनसातीते ५०६
अथवा चिन्तयेन्मूर्ध्नि २६०
अथवा देवतारूपं ३७९
अथवाऽन्यप्रकारेण ३७८
अथवा परमेशानि! ५४
अथवा परमेशानि! ४०५
अथवा परमेशानि! ८९
अथवा परमेशानि! ९६
अथवा परमेशानीं १६७
अथवा प्रत्यहं जप्त्वा ३७७
अथवा रश्मयः सर्वा ६९
अथवा रौप्यपात्रे च २३०
अथर्वणा समाख्याता ४०३
अथ शिष्यशिरोदेशे ३६२
अथ सन्धिद्वयं भित्वा ५५
अथ सर्वरहस्यार्थं ३९२
अथाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां ७४
अथऽऽनन्दात्मनोर्जाता ४७७
अथाऽन्यत् सम्प्रवक्ष्यामि ६१
अथाऽन्यं सम्प्रवक्ष्यामि २८३
अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि ८९
अथैवं परमेशान्या २०६
अदत्वा गुरवे वस्तु ३४७
अदीक्षिताङ्गनासङ्गा ४४७
अदीर्घयोजितैर्हस्त ४०५
अद्य प्रभृति पुत्रि त्वं ४४८
अद्यापि परमेशानि! ४७३
अद्वैतभावमापन्ने ४५९
अद्वैतभावमापन्नो ४६७
अद्वैतभावरहितो ४५९
अद्वैतभावसम्पन्न ३३८
अद्वैतानन्दभावेन ४७
अद्वैतानन्दसन्दोहो ४६०
अधमस्तु विजानीया २६२
अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता ४३५
अधरामृतपानं च ४९१
अधः कनिष्ठावष्टब्धे २५३
अधः कृत्वा तु पुरुषं ३०८
अधः कृत्वा तु पुरुषं ४७७
अधःपातु प्राप्तिसिद्धि ३७
अधः पुष्पा शिखी चैव २८८
अधिकारिप्रभेदेन १९०
अधीत्य नारदात् सर्वं ८
अधुना कथयेशान! १७

अधुना कथयेशान! २१
अधोदन्तप्रदेशेऽव्या ३७
अधोमुखावुभौ हस्तौ १९१
अधोमुखी कृता सैवा २०३
अधोमुखे तु ते कुर्याद् १६७
अध्यास्याऽऽत्मविवेकेन ४७८
अनङ्गकुसुमाग्रे तु ६५
अनङ्गकुसुमाद्य वास्तु ६५
अनङ्गकुसुमां पूर्वे २४५
अनङ्गमदना पातु ३८
अनङ्गमदनां देवि! २४५
अनङ्गमालिनी पातु ३८
अनङ्गमेखला पातु ३८
अनङ्गवेगिनी पातु ३८
अनङ्गव्यवधानं स्याद् २९६
अनङ्गव्यवधानादि २७९
अनन्तरं दशांशेन ३७८
अनन्तं चापि सम्पूज्य ११५
अनन्तं नित्यमेकं यत् ५
अनन्तात् सर्वजगतः ४७१
अनन्यचित्तता याञ्चा २०३
अनयाऽखिलकर्माणि २८९
अनया दीक्षितो मन्त्री २६४
अनया मुद्रया देवि! २७६
अनया मूलमुच्चार्य २०१
अनया सदृशी विद्या १६
अनयैव महादेवि! १०२
अनयैवाऽभिसन्मन्त्रा २८७
अनर्घ्यरत्नघटित १८३
अनश्नन् पूजयेद् रात्रौ ३१२
अनादिबोधिका पातु ४०
अनाद्यविद्या निर्वाच्या ४८२
अनामया वा पुष्पैर्वा १२७
अनामामध्यपूर्व तु २५७
अनामां दन्तयोर्देवि! १२७
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां २५९
अनामिकायुगं देवि २५४
अनामिके तु सरले २४९
अनामिकाग्रपर्वेण २९०
अनावृता चतुर्दिक्षु १०८
अनासीनशयानो वा २६२
अनाहतध्वनिमयीं ४५३
अनिच्छा मिथ्यावचने ४२८
अनिवेद्यं शिवायैव २९३
अनुग्रहः संश्रितेषु ४२८
अनुग्रामुग्रदंष्ट्रां च १३८
अनुत्तरपदं गुह्यं ३९१
अनुत्तरानन्दशक्ती ५०४
अनुत्तरानन्दपंक्ति ५०४
अनुत्तरेच्छे उन्मेषे ५०४
अनुभूय तदानन्दं ३००
अनुभूय तदानन्दं ३२८
अनुभूय तदाबन्धं ३०७
अनुभूय तदास्वादं ७
अनुमानं महेशान्या २९६
अनुमीय परं चैव २९६
अनुमेयमनेनैव २६८
अनुलिप्य महादेवीं २६६
अनुलेपनमुख्यं तु २१६
अनुलेपं च सिन्दूरं २६५
अनुलोमविलोमार्णे २५७
अनुव्रजन्तमिन्द्राद्यै २६८
अनुसूयाऽदितिश्चैव २६८
अनुस्वारविसर्गाभ्यां १४४
अनेन तिलकेनाऽरिः २८८
अनेन तौ तु संयोज्य १९४
अनेन तौ समभ्यर्च्य २४४
अनेन भावनानाशु ५००

अनेन मनुना देवि! २४३
अनेन मनुना देवि! २७३
अनेन मनुना देव्या २८१
अनेन मनुना देव्याः ४२१
अनेन मनुना वापि २७५
अनेन विधिना देवि २९४
अनेनैव तु मन्त्रेण २८०
अनेनैव तु मन्त्रेण १२३
अनेनैव महेशानि २१६
अनेनैव विधानेन ३०
अनेनैवाऽक्षतान् सम्यक् ११०
अनेनैवाक्षतांस्तत्र ११०
अनेनैवासनं देव्यै २०९
अनैक्षवमगम्यं च ४२३
अनौपम्यगुणोपेत १८२
अन्तःकरणमध्ये तु १२०
अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु २०३
अन्तरान्तरसम्बद्ध १७८
अन्तर्गतं यच्च मलं १६१
अन्तर्दशारचक्रे च ६७
अन्तर्बहिश्च मां पातु ३९
अन्तर्यागविधिं ब्रूहि १६१
अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा ५१
अन्तशक्तिस्तथेशस्य ४७०
अन्तश्चरमजसं तं ४७७
अन्तश्चारेण भूतानां २७८
अन्तरात्मपरिज्ञान ३६०
अन्तर्याग इति प्रोक्तो १६५
अन्तस्तमोपहं दिव्यं ३५९
अन्ते सिद्धिर्भवेत् पुंसां ४२७
अन्तःप्रतीयमानं तद् ५००
अन्नं चतुर्विधं देवि! २३२
अन्यतोयैस्तु संसृष्ट १९७
अन्यत्र विरला देवी ३३६
अन्यथाऽनुष्ठितं सर्वं ३७३
अन्यथा रुषितैस्तैर्हि २७२
अन्यथा विफला माला ३७२
अन्यथा सर्वहानिः स्याद् ३६३
अन्यदाभरणं चैव १६९
अन्यदेव सपर्या वा ७६
अन्यस्य वल्लभः सो वै ४८
अन्यस्य स्मरणाद्दुःखं १३
अन्या यदि न गच्छन्ति ३२१
अन्यांश्चैव यजेत् पश्चात् ६१
अन्यायमैथुने शक्ताः ९७
अन्येषामपि वर्णानां १०५
अन्येषां कुसुमानां च २१७
अन्यैर्द्वादशभिर्व्यक्तै ३९०
अन्यैः सुगन्धिपुष्पाद्यैः १७५
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा २०३
अन्योन्यचिन्तनाद् देवि ४५
अन्यान्यावयवानि स्युः ३९८
अन्योन्यासक्तवल्लीभिः १७५
अपक्षत्वमवित्तेच्छा ३४५
अपञ्चीकृतभूतोत्थं ४८२
अपमृत्युर्भवेत् तस्य १३
अपरं च प्रवक्ष्यामि २८४
अपराजितवल्लीभिः २७५
अपराहणकृता पूजा ४४५
अपरां कथयाम्यत्र ९४
अपसर्पन्तु ते भूता ११०
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः ५१६
अपि कृत्वा दुराचारान् ९८
अपि चेत्तत्समा नारी ३११
अपि पुष्पफलैर्वापि ३२६
अपि वक्त्रसहस्रैस्तु २१९
अपि वन्ध्या लभेत् पुत्रं २८६
अपि वा संविदासक्तां ४६३

अपूपपायसं क्षीर २२९
अपृथक्त्वशरीरत्वाद् ५
अप्येतदक्षरावृत्ते ४९६
अप्रज्ञातमलक्षं च १७२
अप्रत्यक्षमविज्ञेयं ५१२
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध ४८०
अप्राप्य तपसः सिद्धिं २
अप्रावृत्तकरो वापि २६२
अप्राश्य च हि निर्माल्यं २९०
अप्सु चापं लयः कार्यः ४५४
अबहिर्मानसो योगी १०८
अबहुमन्त्रदो वामी ३४४
अबोधे सत्यवद् भाति ४८१
अब्दमेकं जपेद् यस्तु ३१३
अभक्ष्यभक्षणात् पापा १०२
अभक्ष्यभक्षणं पापं ९८
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो ४४
अभवन् दूषिताः सर्वे ९
अभिजिन्नाम जानीयात् ३०५
अभिमन्त्र्य च तत् तोयं १२९
अभिषिञ्चित् ततो मूर्ध्नि ९३
अभिषिञ्चित् ततो मूर्ध्नि ९५
अभिषिच्य विनीताय ४१६
अभिसन्धिं विनाऽऽचार्य ३४९
अभीष्टानपि कामांश्च ३२४
अभेदभावनादार्ढ्या ३६०
अभ्यसेद् बहुशस्तत्र २९४
अमनस्त्वान्नु मे दुःखं ४८०
अमर्त्या अर्पितंमन्रू ३११
अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणी ४२१
अमृतत्रयसंयोगाद् ३७०
अमृतत्वं करोतीन्दुः ३८५
अमृतत्वं कवित्वं च १९६
अमृतत्वं लभेद् वीरः २९८
अमृतस्य गुणा एते ४३४
अमृतं च तदेव स्याद् २२६
अमृतं तद्विजानीयाद् ४४१
अमृतं तद्विजानीयादु २९३
अमृतं पदमुच्चार्य २००
अमृतं भक्षयेद् देवो २९३
अमृतं श्रावय युगं १९५
अमृताकर्षिणी पातु ३८
अमृताञ्जलिरप्यत्र ३१०
अमृतार्णवशब्दो १५१
अमृतीकरणं कुर्याद् २०३
अमृतीकरणं कुर्यात् १९३
अमृतेश्वरिः तथेत्युक्त्वा १९५
अमृतेनैव तत्पूजा २९८
अमृतैः प्रोक्षितं यत् तु १९७
अमृतोपस्तरणं कृत्वा २९३
अमोहं चाप्यमात्सर्यं ४५२
अयमेव हि संसारी ५०२
अयष्ट्वा पितरं यज्ञे ३०२
अयुतैकप्रमाणेन २८५
अयोग्यदृष्ट्यविषता २०३
अयोग्येषु प्रकाश्यैव ४३७
अयं प्राणमनुः प्रोक्तः ४२१
अयं स वाग्भवो देवि! १५
अरागं च तथा सत्यं ४५२
अरुणकिरणच्छन्नं ३०६
अरुणा पातु मां वादे ३९
अरुणामरुणाकल्प १२१
अरुणायंतलोलाक्षि! २५०
अरुन्ध्यथ सावित्री २६८
अरोगी नातिवृद्धश्च ३४४
अरोगी रूपवान् भोगी ३४०
अर्केन्दुवक्रज्ञगुरु ४१६
अर्घ्यपात्रस्थतोयेन १९७

अर्घ्यपात्रं तथा वह्नि ४४०
अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं ३१८
अर्घ्यमर्घ्यमिदं देवि! २१०
अर्घ्यादिकं पुरोभागे ११८
अर्घ्येण लभते कामान् २१०
अर्जुनं च नारजं च २८७
अर्थं प्राणाः शरीरं च ३६५
अर्द्धनारीश्वरं ज्ञेयं ३०६
अर्द्धमात्रात्मिका त्वं हि ४७०
अर्द्धमात्रापरं रूपं ३०९
अर्द्धमात्रां योनिरूपां ७०
अर्द्धेन्दुबिन्दुसंयुक्तं २५
अलङ्काराः समाख्याता २१४
अलङ्कृत्य यथालाभं ३६३
अलक्तं नखरागेषु २१६
अपूपं पिष्टकं मांसं ४६३
अलुब्धः स्थिरमैत्रश्च ३४५
अवगुण्ठनमुद्रेयं २०३
अवगुण्ठ्य ततो मन्त्री २००
अवगुण्ठ्य ततो मन्त्री १९३
अवधानैक भावानां ५०१
अवध्यस्य वधे यावान् ३०३
अवमन्य गुरोर्वाक्यं ३४६
अवर्गः कथितो देवि! ३६९
अवशिष्टोदकं दक्ष ९४
अविघ्नं कुरु माले! त्वं २५९
अविच्छिन्न इवाऽज्ञानात् ४८१
अविद्याकल्पितं चैतद् ४५९
अविद्याग्रस्तसंसार ७६
अविद्या नादरूपा सा ४७६
अविश्वासहृदा युक्तः ४२४
अविश्वासो महान् दोषो १४
अवैष्णवमलभ्यं च ३७३
अव्यक्तात् प्राण उत्पन्नः ५०८
अव्यक्तः स्फुरद्वक्त्र २६०
अव्ययब्रह्मसंस्पर्शाद् १२०
अव्याहतमतिः शास्त्रे ४००
अव्युच्छिन्नां मतिं शुद्धां २०२
अशुद्धपक्षिसंयोग १११
अशुद्धपात्रपाणिस्थं २२०
अशुद्धस्तत्त्वमिश्राणाम् ३८७
अशुभं स्यात् तदा तस्य १९७
अशून्यं कुसुमैः कुर्याद् ११७
अशून्यं तु करं कुर्याद् ९२
अशून्यं सर्वदा कुर्याद् ४८७
अशेषपापदहनं १००
अशोकः कुमुदश्चैव २१८
अशौचं साधकेन्द्राणां ३३७
अश्वत्थामलकीमूलं ३३४
अश्वमेधसहस्रस्य २२७
अश्रद्धा चैव नास्तिक्यं ३६८
अष्टकोणकगर्भं तु ५६
अष्टकोणे महेशानि २५२
अष्टकोणं त्रिकोणं वा ३३७
अष्टपत्रं च तद्बाह्ये ४०६
अष्टपत्रं वरारोहे ६५
अष्टमी मम मूर्तिर्या ४७४
अष्टमेनाऽष्टमीं चैव ६०
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां ४४८
अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं ४३५
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि ७८
अष्टाङ्गुल्यस्य न न्यूनं १८८
अष्टत्रिंशत्कलायुक्ता ३९३
अष्टाधिकेऽष्टवर्गैस्तु २५७
अष्टाब्दावधिपञ्चाब्दा ३१५
अष्टाविंशतिवर्णेयं ३६
अष्टोत्तरशतं देवि! ४२१
अष्टोत्तरशतं शान्त्यै ३५७

अष्टोत्तरशतं यस्तु २३६
अष्टोत्तरशतं साज्यं ३५७
अष्टोत्तरशतावृत्त्या १०६
अष्टोत्तरशतावृत्त्या ९६
अष्टोत्तरसहस्रं वै १०२
अष्टोत्तरं सहस्रं वा ३६७
अष्टोत्तरं सहस्रं स्व ३६४
असङ्कल्पितकृत्यं च ३७४
असंख्यातं च यज्जप्तं २६२
असत्यभाषणं जिह्व ३७३
असत्यं न वदेदग्रे ३४६
असाध्यं साधयेद् योगी ४९३
असारांश्च तथा सारान् ४९२
असुराणां निवासे तु ३९
असृग् धातुगते पश्चात् १४०
असंशयस्तु सर्वत्र ३६१
असंशयः संशयच्छि ३४४
असिताङ्गं रुरुं चैव २४०
अस्ताब्धाकुञ्चितं कार्यं ३१३
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य २३२
अस्त्रमन्त्रः समाख्यातः ११०
अस्त्रेणेति क्रमात् प्रोक्तो ३५४
अस्थिधातुगते चैव १४२
अस्नातस्य कुलं नास्ति ९२
अस्नातांश्च द्विजान् शूद्रान् ३७४
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां २३५
अस्माकं चापि सर्वेषां २६५
अस्मिन् मन्त्रे महाभागे ३९६
अस्मिन् मन्त्रे वरारोहे ३९६
अस्या जगन्मयी सैव २८०
अस्य माहात्म्यमेवोक्तं ४९८
अस्याश्चाराधनं कृत्वा १३
अहङ्कारात्मनश्चैव १७३
अहङ्कारे सदा पातु ३८
अहन्तायां महादेवि! ४९६
अहन्तेदन्तयोरैक्य ५०२
अहमाकाशवत् सर्वं ४६१
अहमि प्रलयं कुर्व ५०७
अहमेव त्वमप्यस्मि ४९५
अहमेव महादेव! ४८९
अहिंसा परमं पुण्यं ४५२
अहिंसावृत्तिमाश्रित्य ३३८
अहिंसासत्यमस्तेयं ७८
अहो! कवचमाहात्म्यं ५०
अहो! मूढो वरारोहे! २९८
अहं गुरुप्रसादेन ४३८
अहं देवोऽथ नैवेद्यं १८७
अहं देवो न चान्योऽस्मि ९०
अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ८४
अहं यद्यपि देवेशि! २०४
अहं विजानामि विविक्तरूपो ५१६
अहं विष्णुः स्वयम्भूश्च २९८

आ

आकर्षणकरी विद्या २७
आकर्षणी शिखायां तु ३७
आकर्षणं भवेत् तस्य २९
आकाशाद् वायुमुत्कृष्य १७३
आकाशाद्यवकाशादि ५०३
आकाशे निर्मले यद्वत् ५००
आकाशैः संहतं वायुं १७२
आकृष्य विमलां शक्तिं ४४०
आकृष्योर्ध्व यदा तिष्ठेत् ३०४
आगतो व्यरितस्तेन ९
आगमैः कल्पितैर्देव! ४६४
आग्नेयास्ये समुद्दिष्टा ४१३
आग्नेयी या तृतीया मे ४७३
आग्नेयीं च ततो गत्वा २३६
आग्नेयः सर्वदेवानां २२१

आचमनार्थं देवाय २११
आचम्य मुखवासेन ३२०
आचारानन्वशिष्यार्थं ३६४
आचार्यं वृणुयाद् भक्त्या ३५५
आचार्यः कुण्डे विधिवद् ३५२
आच्छाद्य परमेशानि! १९१
आज्यं दधिमधून्मिश्रं २१२
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु ८८
आज्ञापय जगन्मात २३९
आज्ञां मे देहि तत्पश्चाद् १३९
आज्ञा संक्रमणं तत्र ८८
आत्मके पदमाभाष्य १५७
आत्मचैतन्यमाश्रित्य ४७८
आत्मज्ञानमात्मविधिः ३५९
आत्मज्ञानविहीनानां ९७
आत्मनो जायतो सम्य १८७
आत्मनो विक्रिया नास्ति ४७९
आत्मनः कुण्डलिन्याश्च १९६
आत्मनः क्रोधदृष्ट्याऽथ १११
आत्मनः सच्चिदंशश्चि ४७९
आत्मन्यभीष्टदेवानां ८१
आत्मन्यारोपितास्तोये ४८२
आत्मन्येव यजेद् देवि ३३८
आत्मप्राणसमा देवि ४२६
आत्मप्राणाधिकान्याशु २६४
आत्मरूपं ततः कृत्वा ३६४
आत्मलाभात् परं नास्ति ३६१
आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये १८९
आत्मसात् कुरुते यस्तु ३४७
आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा ८४
आत्मानमरणिं कृत्वा ५१५
आत्मानमेव सततं १८४
आत्मानं च क्रियाः सर्वा २७८
आत्मानं तत्पदाम्भोजे २६९
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा ३६७
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा १०४
आत्मानं देवतारूप ४४३
आत्मानं परमं ध्यायेद् ४६
आत्मानं रक्ष रक्षेति १२१
आत्मानं सर्वदा सम्यग् ९४
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य १८४
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य ४३१
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य १२१
आत्मावभासयत्येको ४७९
आत्मासनगतां तत्र १८०
आत्मा सा परमेशानि! ३०९
आदर्शे विमलाभोगे ५०१
आदाय गुरुणा दत्तं २९२
आदाय दक्षहस्तेन २४२
आदावन्ते च देवस्य २९१
आदावन्ते च मध्ये च ६०
आदावन्ते पितुस्तस्मात् ३०२
आदावेकैकवृद्ध्या ५८
आदित्यमिव दीप्तं तु ५११
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं ५००
आदिमैः पूरयेद् वापि १९०
आदिष्टवान्मयि भद्रे! ४७३
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया १३
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया २२
आदौ त्रिपुरपूर्वं च १०४
आदौ पञ्चदशी विद्या १५
आदौ पुरस्क्रिया कर्तुं ३६९
आदौ पूरकयोगेन ८९
आदौ पूर्णे च मध्ये च ३१६
आदौ विद्यावतां रोऽयं ३४२
आदौ शुद्धात्मकं तत्त्वं ५०२
आद्यमन्तं विदित्वैवं २९२
आद्यं स्थूलं ततो न्यूनं ३७१

आधारमानन्दमखण्डरोधं ५१५
आधारशक्तिमारभ्य १९९
आधारशक्तिं तत्रैव १७४
आधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ४०१
आधारे चतुरो वर्णान् १२६
आधारे परमेशानि! १५७
आधारे वाग्भवः पातु ३६
आधारं पूजयेत् तत्र ११०
आनन्दकन्दमेवात्र १७९
आनन्दनाथशब्दान्तं ३६४
आनन्दपारमिच्छन्तौ ३०६
आनन्दपूर्णावस्थिति २०४
आनन्दभैरवीसार्द्धं २२८
आनन्दभैरवं तत्र ११९
आनन्दमुदितोल्लोल १८१
आनन्दमेखलारम्यं ४५५
आनन्दसदनं ततु ८८
आनन्दसान्द्ररक्ताक्षं ७३
आनन्दहृदयं कृत्वा ४४०
आनन्दहृदयं कृत्वा ३३८
आनन्दाब्धौ निमज्येव ४८८
आनन्दाभरणं दद्याद् ४५३
आनन्दालसया दृष्ट्या २००
आनन्देन समावेशो ३९७
आनन्दोदयपर्यन्तं ४४२
आनन्दं परमं लब्ध्वा ३३०
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं ३६०
आनयेत् तेन मार्गेण ८९
आनीतं नार्पयेद् देव्यै २२०
आनीय कन्यकां दिव्यां ३०
आनीय यत्नतः शुद्धं ४४८
आन्तरं च भवेद् देवि! ९४
आन्तरं तर्पणं ह्येत १०४
आपूर्य गन्धतोयैस्ता ४१४
ॐ आपो देवी रसोऽमृतं ९५
आप्यायितजगद्रूपां ७०
आप्लावनं च कर्तव्यं १२०
आबिभ्रतीं कराम्भोजैः ४१५
आभिक्षया समं दत्वा २३१
आममन्त्रं महादेव्यै २३१
आमूलाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ३९९
आम्रनिम्बकदम्बानाम् ११३
आम्रमामलकं चैव ३७३
आम्रातकेश्वरं पीठं १४५
आयुधानपि रूपं च २००
आयुर्बलप्रदं नित्यं ४७
आयुर्बलमथारोग्यं ४१०
आयुर्बलयशोवृद्ध्यै २११
आयुर्बलं यशो वृद्धिं २११
आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै ४३३
आरक्तवर्णः सततं २७५
आरभ्य पश्चिमाद् देवि! २३९
आरभ्यानामिकामध्याद् २५७
आरात्स्थोऽयं चं विधिवद् ३५२
आराधिता सैव नृणां ४६२
आरोग्यमिच्छतायुश्च ३५७
आर्यावर्ते मध्यदेशे ३३५
आललाटं नमस्कुर्या २८१
आलस्यं वाऽतिचिन्ता च ४३४
आलिख्य चक्रराजं च ५४
आलिख्य सम्पुटीकुर्याद् १९
आलिङ्गनं तु कस्तूरी ४४३
आलिंग्य वामहस्तेन २७६
आवयोर्जायते प्रीतिः ४२७
आवयोरपि तत् प्राप्य ४९६
आवयोः सरलाकार ४८९
आवयोर्देवदेवेशि ४९६
आवयोर्न हि भेदोऽस्ति ४८९

आवाहनं न जानामि २७८
आवाहनं भवेद् देवि! २०३
आवाहनी समाख्याता २०२
आवाहयामि देवि त्वां ९३
आवाह्य चक्रमध्ये च ४२०
आवाह्य स्थापयित्वा तु ११२
आवाह्याम्भसि संयोज्य ९३
आविद्यकं शरीरादि ४८०
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ४७१
आवेदितं च नैवेद्यं २७९
आवेशो मरणं मूर्च्छा ४३४
आशुसिद्धिकरी माला २५७
आश्रम्याश्रमधर्मज्ञो ३४४
आषाढो माघमासश्च ३४८
आसानं च ततः कुर्याद् ११३
आसनं चार्घ्यपात्रं च ११३
आसनं प्रथमं दद्यात् १६८,२०९
आसनं प्रथमं ताभ्यः ३१८
आसनं शयनं वस्त्रं ३४६
आसां तु मन्त्रबीजानि ३७
आसां प्रधानभूताया ३७
आसीनमुन्नतांशे च २४८
आसीनश्चिन्तयेद् ब्रह्म ४९३
आस्तिको गुरुभक्तश्च ३४५
आस्तिकोऽथ शुचिर्दान्तो १४
आहारं कांक्षते कोऽसौ ५०८
आहारं कांक्षते प्राणो ५०८
आहारं साधकेन्द्राणां ४२४
आह्लादिकां त्वं बहुचन्द्रिकायाः ४७१

इ

इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिः ४११
इक्षुरसं समादाय २२५
इक्षुरसैस्तथा तोयै ४२०
इक्षुरसैः सुगन्धैश्च १९०
इच्छाज्ञानक्रियाभिश्च ३८९
इच्छाज्ञानक्रियारूपा ३९१
इच्छा(दिना?ज्ञान)क्रिया ३८९
इच्छाशक्तिं च वागीशीं ४६३
इच्छाशक्तिमयं पाश १८३
इच्छेशनां ततो रूढाः ५०४
इच्छैवास्यापरिम्लाना ५०२
इच्छंस्तद्रूपतां प्राप्तुं ३०७
इडया कर्षयेद्वायुंबाह्यं ८०
इडयाकृष्यदेहान्तः ९५
इडा वामे स्थिता नाडी ८६
इतरेषां तु वर्णानां ३७८
इति तद्वचनं श्रुत्वा ४७३
इति तस्मै समाभाष्य ४७२
इति ते कथिता काम ४०२
इति ते कथितं देवि ८१,२९८
इति ते कथितं देवि ३१६,३२१
इति ते कथितं देवि ४००
इति प्रसादमासाद्यकार ४४३
इति मत्वा भजन्ते मां ४८९
इति यो यत्र सम्प्रोक्त २७१
इति विज्ञाप्य मांब्रह्मा ७
इति विज्ञाय योगात्मा ३०३
इति विद्यात् स्वमात्मानं ८२
इति संचिन्त्य देवस्य ५०१
इतीदं कवचं देवि ४३
इतो न्यूनं न दातव्यं २२३
इतो न्यूनं महेशानि २६२
इतः परं न जानामि ५००
इत्यमन्तः समाराध्य १७०
इत्यमेव महादेव पूजनं ४९१
इत्थं चिदात्मकं विश्वंषट ५०१
इत्थं परस्यां संवित्तौ ५०६
इत्यघमर्षणं कृत्वा ९५

इत्यन्तर्मात का: स्म त्वा १२६
इत्याज्ञां च गुरोर्लब्ध्वा ४४८
इत्यादिष्य प्रविष्टोऽहं ७
इत्याहुस्तत्त्ववादिन्य: ५०६
इत्युक्तं परमं योगं ८९
इत्युक्त्वा दर्शयामास ४७५
इत्येवं प्रत्यभिज्ञान ५००
इत्येवं त्रिपुरा क्ति ४८४
इत्येवं त्वं मयाप ष्ट ४७६
इदन्तयाहन्तया वा ४९६
इदमादिष्टवान् देवि ४६४
इदमीदृशमित्युक्तंपुरे ४९८
इदमेव हि सच्छिष्यै: ३४८
इदानीमतिगुह्यानां ४९७
इदानीं कथयेशान ७०
इदानीं तव प्रीत्यर्थं ३२
इदानीं श्रोतुमिच्छामि ९७
इदं कवचमज्ञात्वा ४४
इदं तमोमयंसर्वमासी १७२
इदं तस्यै समाभाष्य २६४
इदं पवित्रमम तं पिबामि ४४२
इदं पुनर्महेशानि पुरैव ४५७
इदं रहस्यं परममिदं ३३९
इदं रहस्यं परमं परं ४७
इदं वाग्भवकूटं तु १५
इदं विष्णुभैरवं तु ९२
इदं सर्वं सदेवासीदग्र ५०६
इन्द्रगोपप्रभा देवीपाशा ६७
इन्द्रबीजं तथा देवि २५
इन्द्रमग्निं यमं वन्दे १०९
इन्द्राणी गौरवर्णा च ६३
इन्द्राणि वरदे देवि ३१९
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यै: ७०,१८४
इन्द्रियाणि यदाभिक्षो: ४३०
इन्द्रियाणां विचरतां ८०
इमे दुर्मतय: सर्वे ९७
इ(य?म)मर्थं पुरा देवि ५
इयमाकर्षिणी मुद्रा २४५
इयादिगुणसम्पत्ति: ४३५
इयं कामेश्वरी ज्ञेया १५३
इयं देवी मया पूर्वं २८२
इयं देवी महेशानी २८६
इयं महाङ्कुशा मुद्रा २५१
इयं रक्षाकरी मुद्रा ४१६
इयं विद्या महाविद्या २८२
इयं सा खेचरीमुद्रा २५२
इयं स्वप्नावती नाम्ना २७
इष्ट(धामा?मध्या)निष्टगतै: २३७
इष्टमन्त्रेण मालाया: २५८
इह लोके सुखं भुक्त्वा ४८
इह स्थित्वा यथाकामं ४६७
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं ४७५
इहैवं दु:खमाप्नोति ३२५
इंयुतां भरणीं देवीदक्ष १३६

ई

ईकारोर्ध्वगतो बिन्दु ४०२
ईशानमग्निकोणं स्याद् ११६
ईशानवह्निनैरृत्य २७२
ईशाने बटुक: पातु ४०
ई ॐॐ कृतिकां चैव १३६

उ

उक्तसंख्याजपं कुर्यात् ३७५
उक्तान्मुक्तैस्तथा पुष्पै: २२०
उक्तेन विधिना पूर्वं ४१८
उक्तं त्रिशक्तिसंघट्ट ५०४
उक्षितां मूलमन्त्रेण ३०
उग्रगन्धमगन्धं च २२०
उच्चरेदनुसंस्मृत्य २६०

उच्चाटनाय शत्रूणां २८६
उच्चावचैरुपहारै ४१५
उच्छिष्टपूर्विकां देवीं २८२
उच्छिष्टशब्दमुच्चार्य २८३
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं २८६
उच्छिष्टेनैव कर्तव्यो २८४
उटज्जे वा श्मशाने वा २८६
उड्याण पीठके देवि ६९
उड्डीयानं महापीठं १४६
उड्डीशपरतो देवि! १५८
उत्तमस्य गुणावाप्ति ८०
उत्तमेयं द्वितीया सा ७०
उत्तमो दशसाहस्रः २६१
उत्तमः प्रोच्यते सोऽत्र २२२
उत्तराभिमुखीभूत्वा ११६
उत्तराशा तदा देवि! ११६
उत्तरोत्तरमेकैकं ४९९
उत्पत्तिप्रलयाभ्यां च ४८२
उत्पत्य पतते शीघ्रं ५१२
उत्पत्य लीयते तद्वद् ५००
उत्पन्नं भावयेद् देवि! ३८७
उत्पलं बीजपूरं च १९९
उत्फुल्लकुसुमामोद १७६
उदके तरुमूले वा २९२
उदके लवणं हीनं ४४
उदकं दीयते यत्तु २११
उदरे दुःखदारिद्र्यं ३७०
ॐ उदुत्यं जातवेदसं ९५
उदेति सविता सूर्यः ३३१
उद्धरेत् परमेशानि! १६
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि ४२६
उद्यत्सूर्यसहस्राभां १६३
उद्यत्सूर्यसहस्राभे ६८
उद्यदर्केन्दुकिरणां १७९
उद्यदादित्यसङ्काशं २५०
उद्यदादित्यसङ्काशं १७७
उद्यदादित्यसङ्काशं २१४
उद्यद्भानुसहस्राभा ६६
उद्यानानि विविक्तानि ३३४
उद्वास्य च तदात्मानं २९८
उद्वास्य परमेशानीं २८०
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं १६७
उन्मत्तं च तथा देवि! २४०
उन्मन्यन्ते शिवो भूत्वा २८१
उन्मादिनी तथा नेत्रे ३८
उपचारान् प्रवक्ष्यामि २०९
उपचाराः कथं देव! २०९
उपचारैस्तथा प्रोक्तैः ४२१
उपचारैर्यजेत् प्रात ३०६
उपचारैस्तदा कार्या ३०६
उपभोगेन तुष्यन्ति २९६
उपर्युपरि वर्द्धन्ते ४१७
उपर्युपरि विन्यस्त १७८
उपवासव्रतं नैव ४२३
उपविश्य शुचौ देशे ९४
उपविश्य शुचौ देशे १०४
उपविष्टस्तदा देवः ९७
उपहारैर्बहुविधै ३२५
उपाधित्रितयादन्यत् ४८२
उपानद्गूढपादस्य ३००
उपांशुर्लक्षमात्रं तु २६१
उपांशूच्चारणेनैव २६१
उपायेनामुना पश्येद् ४९८
उपोष्यैव चाधिवासं ३२४
उभयात्मकं तु विन्यस्य २९५
उभयात्मा भवेत् सिद्ध्यै ३००
उपयोरेकतां मत्वा ३०४
उभयोरेकतां मत्वा २९२

उभयोः पक्षयोरन्ते ५९
उभयं निष्फल तस्य २६१
उभाभ्यामपि शक्यं स्यात् ४६१
उभौ जीवेति विख्यातौ ३९५
उमां ङेन्तो तथा ङेन्तो २४४
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं ५१४
उमां महेश्वरं ध्यात्वा २४४
उर्वशीप्रमुखाभिश्च ४७
उर्वशीप्रमुखास्तं २६७
उलूककाकपक्षाभ्यां २८६
उलूकपक्षहोमेन २८६
उवाच परया भक्त्या ५१३
उवाच पार्वती देवी ४
उवाचेदं वचश्चापि ७
उवाचेदं वचस्तस्मै २

ऊ

ऊरुद्वये सदा पातु ३७
ऊर्ध्वदन्ते सदा पातु ३६
ऊर्ध्वबाहुस्ततो मन्त्री ९५
ऊर्ध्वबिन्द्वात्मकं वक्त्र ४०२
ऊर्ध्वाधः शक्तिवपुषः ५०६
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा २७५
ऊर्वशीप्रमुखाभिश्च
ऊर्वशीप्रमुखा वेश्याः
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य ७९
ऊर्ध्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य ७९
ऊषरे कृमिसंयुक्ते १०८

ऋ

ऋं ॠं लृं लॄं युतान् देवि! १३६
ऋजुकायो वसेद् योगी ७९
ऋजुकायो वसेद् योगी ७९
ऋजुमध्या मध्यपर्वा १९१
ऋणदानं तथादानं ३४६
ऋतुमेकं क्रमेणैव ६२
ऋते श्लेष्मान्तकं बिल्वं २३२
ऋषिरस्या महेशानि! १२४
ऋषिश्छन्दो देवतानां १२४
ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तः १२५

ए

एक एव गुरुर्देव ३६१
एकग्रामे स्थितो गत्वा ३७६
एकजातीयबीजेन ३७२
एकतः सर्वकर्माणि २६४
एकत्र पञ्चकूटेन २७
एकदन्ताय कान्त्यै च १३२
एकदाच्छादिते वह्नौ ४२४
एकमङ्गं विहीयेत ३७८
एकमासीत् परं ब्रह्म १७३
एकया चेप्सितं कृत्वा ४३६
एकरूपं शिवं कृत्वा. १६५
एकवर्णे त्रिकूटे च २४
एकवर्णे पञ्चदश २४
एकसन्ध्यं द्विसन्ध्यं वा ३७६
एकश्चरति भूतेशो ४७२
एकस्मिन् दिवसे देवि! ६१
एकस्या बहुधा कृत्यं ४६०
एकस्या बहुरूपिण्याः ४९२
एकाग्रमनसा वाग्भिः २९०
एका च युवती यत्र ३२१
एका चेत् कुलशास्त्रज्ञा ३२१
एका चेद् वशगा साध्वी ४९०
एका त्वं त्रिविधा भूत्वा ४७१
एकादशस्वरोपेतं २५२
एकादशाक्षरी विद्या ३२
एकादशाक्षरेणैव ६०
एकादशाधिकशतं ३८९
एकादशीं तथा रुद्रे ६१
एकान्तविजने रम्ये ४३०

एकान्त विजने रम्ये ४९३
एकान्ते विजने रम्ये १७२
एका पतिव्रता भार्या ४३६
एकाशीतिपदे तत्र ४१९
एकाशीतिपदोपेतं ४१९
एकाहमपि देवेशि! ३२४
एकां भार्यां समादाय ४९३
एकीभावं तयोः कृत्वा ४५३
एकीभूता परेणासौ ८३
एकेन जन्मना मुक्तिं ३१०
एके बहुतरे देवि! ३१९
एकैकां पूजयेन्नित्यां ५८
एकैव सा महादेवि! १०४
एकैवाहं परं ब्रह्म ४८८
एको मेरुस्तत्र देयः ३७१
एकं पादमधः कृत्वा ७९
एकः सन्नेव पुरुषो ३८७
एकः सन् भिद्यते भ्रान्त्या ८२
एतच्छाम्भवमुद्दिष्टं १६
एतच्छुत्वा महादेव्या ५०१
एतज्जप्त्वा महाबीजं १५
एतज्ज्ञात्वा तु मेधावी १०२
एतज्ज्ञानात् परं ज्ञानी ३३९
एतत् कामकलारूपं ४०३
एतत् तु कवचेनैव ५१
एतत् ते कथितं देवि! ८५
एतत् प्रकाशनं यच्च ४१३
एतत् प्रमाणहस्तैस्तु ४०५
एतत् प्राणं महाभागे! ३९८
एतत् सर्वं यथातत्त्वं ५०९
एतत् स्तोत्रं पठेद् यस्तु ३१९
एतत् स्वरूपं जानीयाद् २३३
एतदन्ते महामन्त्रान् २७८
एतदन्ते महेशानि! २७७
एतदाहुतिमानं च ४१२
एतदेव महाभागे ५१३
एतदेव हि नित्यं स्यात् १५१
एतद् यन्त्रं महादेवि! ५०
एतद् रहस्यं परमं ३१४
एतद् वाग्भवकूटं तु १५
एतद् विलक्षणं विद्यात् ४८०
एतयोरावयोर्यत् तत् ४९९
एतस्माज्जायते प्राणो ५१५
एतस्मिन्नेव कैवल्ये ४९७
एतस्या एव मुद्राया २०३
एतस्या एव विद्याया १६,१८
एतस्या एव विद्याया २७,१५१
एतानि भावपुष्पाणि ४५२
एतान्येव प्रियाणि स्युः २१८
एता मुद्रा महेशानि! २०४
एता वाग्देवता देवि! १५४
एतावुभौ तान् सर्वान् ३०१
एताश्चोषधयो दिव्या २८८
एतास्तु गुप्तयोगिन्यो ६४
एतास्तु मातृकामुद्राः १२७
एताः प्रकटयोगिन्यो ६४
एते पञ्चमहाप्रेताः १८०
एते भूताः समुद्दिष्टा २७७
एतेषामपि चान्येषां ४३३
एतेषामप्यलाभे तु २२०
एतेषां जीवभूतत्वाद् ४९५
एतेषां पुष्पजातानां २१९
एतैर्हीना तु या पूजा ३३७
एनामुपास्य देवेशि! १३
एनां निवेद्य सुन्दर्यै २२६
एभिरेव महेशानि! ३२०
एभिर्विशेषैः सहितं २७१
एभिः पञ्चभिरारब्धं ४७८

एवमभ्यस्यमानं तु ८९
एवमभ्यासयोगेन ४४४
एवमादीनि नश्यन्ति १११
एवमादीनि सर्वाणि ३५३
एवमादींश्च नियमान् ३७५
एवमखिलचक्रस्थ २४२
एवमुक्तविधानेन ३७५
एवमेतन्महाचक्रं ५७
एवमेतस्य चक्रस्य ५७
एवमेतानि शस्तानि २३२
एवमेव महेशानि! १७०
एवमेवार्चनाद् देवि! १९६
एवमेषा महादेवि! १०९
एवमेषा महाविद्या १२३
एवं ऋषीन् प्रतप्यार्थ १०४
एवं कामकलारूपा ४०३
एवं कुलगुरुं देवि! ७५
एवं कूटत्रयेणैव २७
एवं कृते महादेवि! २०२
एवं कृत्वा जपेद् विद्यां ३३७
एवं कृत्वा महेशानि ४४३
एवं क्रमाद् भवेत् सिद्धो ३१३
एवं क्रमे महेशानि ४९९
एवं चक्रं विनिर्माय ५६
एवं चतुर्दशारं स्याद् ५६
एवं चतुष्टये मासि ४४४
एवं चित्सत्तयोरैक्ये ३९७
एवं चिन्तापरस्याऽऽशु ४७
एवं तु मातृकान्यासं १२८
एवं तौ सर्वभूतेषु ४८५
एवं देवि! प्रतिष्ठायां ४२२
एवं ध्यात्वा पुनर्विद्यां १६४
एवं ध्यात्वा महेशानीं १४०
एवं ध्यात्वा समावाह्य १९३
एवं नानाविधैर्देवीं २६५
एवं निरन्तरं कृत्वा ४८०
एवं निवेदयेद् देव्यै २६५
एवं निष्पादिते चक्रे ५६
एवं न्यस्तशरीरस्तु १४८
एवं पात्रचतुष्कं च १९६
एवं प्रार्थ्य महादेवीं ३५९
एवं बहुविधान् भोगी ४९२
एवं भवन्ति चक्राणि ५७
एवं भवन्ति पात्राणि १९७
एवं भावनया हृष्टो १८४
एवं भावनया हृष्टः ४५४
एवं मायावृतो ह्यात्मा ८५
एवं मासमृतुं चैव ३१४
एवं यज्ञशरीरं तु ३२६
एवं यः कुरुते पूजां ३२३
एवं यः कुरुते मालां २६२
एवं लक्षत्रये सिद्धे ३८०
एवं विचिन्त्य देवेशि! १७२
एवं विदित्वा परमात्मरूपं ५१७
एवं विधो गुरुर्ज्ञेयः ३४५
एवंविधो भवेच्छिष्यः ३४५
एवं विश्वप्रथाकार ३९०
एवं शम्भुमये भावे ३९७
एवं सकृत् त्रिवारं तु १२९
एवं सञ्चिन्त्य मनसा १७९
एवं सन्ध्यां समाप्याऽथ ९६
एवं समाधियुक्तो यः ८४
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशि! २७९
एवं स सप्तधा कुर्याद् ४५२
एवं सा पञ्चमी प्रोक्ता २९६
एवं संस्तूयमाना सा ४७१
एवं स्तुत्वा मुदा देव्यै २२८
एषा एव भवेद् दर्भो ९२

एषा तु सुन्दरी मुद्रा ४५१
एषा तु गुटिका देवि! ५१
एषा तु प्रथमा मुद्रा २४२
एषा परापरा शब्दात् २५४
एषा विद्या महाविद्या २६
एषा सर्वोत्तमा प्रोक्ता २२६
एषा स्वात्मेति बुद्धिस्तु ३९३
एषां पर्युषिताऽऽशङ्का २१७
एषां मध्ये तु यः कश्चिद् ३८३
एषैव मोदिनी देवी १५३
एहि गङ्गे! नमस्तुभ्यं ९३
एहि देवि! प्रभावात् ते २०१
एह्येहि देवि! पुत्रान्ते २७३

ऐ

ऐकारेण तथार्द्रा च १३६
ऐक्यज्ञानपथे चैनां ४९९
ऐक्यं जीवात्मनोश्चाहुः ७८
ऐक्यं संचिन्तयेद् देव्या २००
ऐक्यं सम्भावयेद् धीमान् १७२
ऐक्यं सम्भावयेन्नित्यं ९०
ऐन्द्रं पदमवाप्याथ ४७
ऐशान्यां निःक्षिपेदेतत् १२३
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा २८१
ऐश्वर्ये सर्वदा पातु ३९
ऐहिकामुष्मिकैर्भोगैः ३५८
ऐहिकं स्वपिता हन्ति ३०२
ऐं क्लीं सौरिति मन्त्रेण १११
ऐं क्लीं सौर्वदने ३५
ऐं मां माले महामाले २५८
ऐं युतां मृगशीर्षां च १३६

ओ

ओं औं पुनर्वसुं चैव १३६
ओंकारबिन्दुमध्यस्थं १९९
ओष्ठेन चाधरं चैव ४५१
ओष्ठे नीलपताकाऽव्याद्! ३६

औ

औपदीकृत्य सर्वस्वं ३४७

क

कङ्कतीकेशसंस्कारो १६९
कञ्चुकितः शिवो जीवो ३५९
कटिद्वये प्रविन्यस्य १५१
कट्वम्ललवणानां च ४२४
कठवर्णांस्ततो रेफे १४०
कणकाबीजचूर्णं च २२५
कणकार्को वह्निरिन्द्र २८८
कणादेन च सम्प्रोक्तं ८
कण्ठस्थाने महेशानि! ३७०
कतिधा सा भवेद् देव १०३
कथमुत्पद्यते वाणी ५०८
कथमेते महादेव! ९७
कथमेषां भवेन्मुक्ति ९७
कथयामि तव स्नेहाद् ७८
कथयामि न सन्देहः ५१०
कथितव्यं महादेवि! २६
कथितं मे तव स्नेहाद् ५१
कथितं सूतकं तस्य ३८३
कथितं सूतकं तस्य १०२
कथं कामकला देव! ४०१
कथं जीवः स्थितो देहे ५०९
कथं तद् विहितं दैवे ४५८
कथं तन्मानुषे लोके ३३९
कथं मुक्तो भवेद् देव! ५
कथं वा ज्ञायते ब्रह्म ४८१
कथं तदुपयोग्यं स्याद् ४५७
कथं वा प्रत्ययं चेतस् २९४
कथं सा परमेशानि २८२
कथ्यतां देवदेवेशि! ४८४
कदम्बैः करवीरैश्च १७५

कदलीकुन्दखर्जूर १७५
कदलीफलहोमेन ४१०
कदलीललितस्तम्भ १८३
कदाचिद् दर्परूपेण ४३९
कनिष्ठाकर्षणे ज्ञेया २६०
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैः १६२
कनिष्ठानामिकामध्या १२७
कनिष्ठाऽनामिकायुग्मं २०३
कनिष्ठानामिके देवि! २५२
कनिष्ठिकाङ्गुष्ठकौ भुग्नौ १९३
कनिष्ठं वै भवेत् स्नानं २१२
कन्दर्पसदृशः स्त्रीषु ३२३
कन्यायोनिं न वीक्षेत ४२४
कन्यां छत्रं रथं दीपं ३५३
कपर्दिने च तीव्रायै १३२
कपालकर्तृकाहस्ता २८४
कपिलाघृतकर्पूर २२१
कपिलाघृतसंयुक्तं १६९
कपिलान्ते जटाभार २७३
कपिलायास्तथा क्षीरैः १९०
कपोले साध्यमालिख्य ४४९
कमलासनमासीनं ९९
कमलैर्वरुणैर्होमः ४१०
कम्बुग्रीवां महादेवीं १८२
करणयोगनिर्मुक्तं ५१२
करणंश्रवणादीनां ५०३
करणं विजयान्तं तत् ३७७
करयोरथ विन्यस्य १५५
करयोर्मूलमध्याग्र १५९
करवीरैर्जपापुष्पैः ४०५
करवीरं चार्कपुष्पं २१८
करशुद्धिकरीं पूर्वं १५१
करशुद्धिकरीं पूर्वे २४१
करशुद्धिमृषिन्यांस १५१
करशुद्धिं विधायादौ १२४
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा ८४
कराङ्गयोः षडङ्गानि १५१
कराम्बुजनखज्योत्स्ना १९२
करोति तिलकं यस्तु २८८
करोति स च दुर्मेधा ३२६
करौ निदध्यादाख्सातं ७९
कर्णयोर्मुखवृत्ते च १६०
कर्णयोश्चिबुके चैव १५७
कर्णिकायां स्मरेत् सूर्यं १८०
कर्तव्यमिति सर्वाणि ३४०
कर्तव्यं नान्यदित्येषा ५०३
कर्त्तृत्वमात्मनो देव ४७८
कर्पूरकौषिकादीनां ४१२
कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गो ११७
कर्पूरज्वलितैर्दीपैः ४३१
कर्पूरवासितैस्तोयैः ४१९
कर्पूरशकलोन्मिश्र ४४२
कर्पूरशकलोन्मिश्र ४३१
कर्पूरशकलोन्मिश्र १८३
कर्पूरसहितं देव्यै २०६
कर्पूरस्य च होमेन ४११
कर्पूरागुरुकस्तूरी २९
कर्पूरागुरुकस्तूरी २१२
कर्पूरागुरुकस्तूर्या १६८
कर्पूरैर्वासितैर्वापि २११
कर्मपाशसमाबद्धो ५
कर्म पूर्वोक्तमाचार्यं ३५८
कर्मभिस्तोषयेत् तौ तु ३००
कर्मलोपादधौ योनौ ३००
कर्मस्वरूपत्याज्यत्व ८
कलशं हेमजं धन्यं ११८
कलहो यस्य देवेशि! ४३३
कलाकलितमधुरां २५०

कलानादसमाक्रान्तः ३२
कलाभिस्तत् प्रपूज्याथ १९२
कलाविद्यारागकालौ ५०२
कला षोडशकाकारा ५०५
कला षोडशपत्रे च ३९१
कल्पकोटिसहस्राणि २३१
कल्पकोटिसहंस्राणि १७०
कल्पकोटिसहस्राणि ४८९
कल्पयामीति मनुना २००
कल्पयेदथ तस्याग्रे ५६
कल्पान्तेऽम्बुगते चन्द्रे ४७९
कवचस्य तथा सिद्धिः ४४
कवचं चास्त्रमालिख्य २७५
कवचं यदि मे प्रीतः ३४
कवचे मां स्वतन्त्राऽव्याद् ४०
कस्तूरीहोमतो देवि! ४११
कस्य वा क्रियते पूजा २९४
कह्लारबकुले चैव २१८
कह्लारहवनैर्लक्ष्मीं ४१०
काकारं कृष्णवर्णं च ९९
काकिन्यै नम इत्यन्ते १४१
काञ्चनाञ्चितकंचूली १६९
कादिठान्ताक्षरैरर्क ८८
कान्तासन्तापजो वह्नि ४३५
कान्तां सन्तोषयेत् तस्माद् ४३५
कान्तिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः २८
कामक्रोधलोभमोह ७८
कामगिर्यालये पश्चात् १५७
कामदया चतुर्मूर्तिः १३२
कामदेवस्ततो योनि १५
कामदेवोग्निमारूढो २५१
कामदेवोऽग्निमारूढः ४२०
कामपीठं ततो ध्यात्वा १९९
कामराजंकुमार्यास्तु १५२
कामबीजं क्लिन्नेत्युक्त्वा १९५
कामबीजं ततो देवि! ४४९
कामबीजं पुरस्कृत्य २४५
कामबीजं प्रवक्ष्यामि २७
कामबीजं महेशानि! २५
कामबीजं ललाटेऽव्याद् ३५
कामबीजं समालिख्य १९
कामबीजं समुद्धृत्य २४८
काममिन्द्रं तुरीयं च ४४९
कामयित्वाऽखिलान् कामान् ३२९
कामराजमिदं भद्रे १६
कामराजाख्यविद्येयं १६
कामराजाह्वये देवि! ३९८
कामराजे महेशानि! ३९२
कामरूपं महापीठं १४५
कामरूपं वपुः कृत्वा ३८०
कामाकर्षणरूपाऽव्यात् ३८
कामाकर्षणिकाग्रे तु ६४
कामाकर्षणिकाद्यास्तु ६४
कामाख्यायां महादेवि! ३३६
कामात्मा कामरूपी च ३२९
काम्यान्नैमित्तिकं नित्यं ३२६
कामेशि! कामरूपे त्वं २१५
कामेशि! त्वमिहागच्छ २०२
कामेश्वरस्वरूपं च ३०
कामेश्वराङ्कपर्यंक १८१
कामेश्वराङ्कपर्यकं १८५
कामेश्वरि! समागच्छ २०२
कामेश्वरी त्रिनेत्रा च ६८
कामेश्वरी पुरोभागे ६८
कामेश्वरीयुतो भूत्वा ३०४
कामेश्वरी रतौ पातु ४०
कामेश्वरी ललाटेऽव्याद् ३६
कामेश्वरीस्वरूपां तां ३०

कामेश्वर्यादिका नित्या ५८
कामं क्रोधं तथा लोभं ३४६
कामं क्रोधं तथा लोभं १४९
कामं क्रोधं तथा लोभं ३६०
कामं क्रोधं तथा लोभं ३१०
कामं मोक्षं तथा धर्मं २७०
कामं शक्रं तथाऽऽकाशं २४४
कामं विष्णुयुतं शक्तिः २५
कामः कामयतो भेदः ३९७
कामः कामे सदा पातु ३६
काम्यर्थं कम्बले चैव ११३
काम्यं तत्तु विजानीयात् २९९
कायिकैस्तु नमस्कारैः २३५
कायिको वाग्भवश्चैव २३५
कायेन मनसा वाचा २७८
कायेन मनसा वाचा ३६५
कारणानन्दसन्दोहैः १७२
कारणे सर्वभूतानां १७२
कारणं नात्मनश्चैव ५१२
कारयित्वा पुनर्विद्यां ३६८
कारागारनिबद्धो वा ३३९
कारुण्यनिलये देवि! ३५८
कार्यकारणभावेन ३८७
कार्यौ च हृदये सेयं २०४
कालकुब्जा समायुक्तो १३४
कालकूटधरं कण्ठे ३
कालत्रयेऽप्यशक्तश्चेद् ३१२
कालमेघसमालोक १७६
कालशाकं कलापं च २३०
कालालिकुलसङ्काश १८१
कालेश्वरं महापीठं १४५
कालः परिच्छेदको वा ५०३
काश्मीरं च तथा पीठं १४५
काष्ठादिकासनं कुर्याद् ११४
किङ्किणी मणिसन्नद्ध १७८
किञ्च भक्ष्यमभक्ष्यं वा ४५९
किञ्च मेध्यममेध्यं वा ४५९
किञ्चाऽतिबहुनोक्तेन १५०,२२०
किञ्चित् किञ्चिच्च निक्षिप्य २२५
किञ्चिदर्द्धेन्दुकुटिल १८१
किटिशब्दान्विता माला २६०
किन्नरैरप्सरोभिश्च १७८
किमन्याभिर्महेशानि! ४३६
कियत्कालसुखावाप्तिः ४२६
किरीटं च शिरोरत्नं २१४
किं करिष्याम्यहं देव! ३
किं पुनः शक्तिरूपेण २२
किं मित्रं किममित्रं च ४५९
किं रूपं किं विरूपं वा ४५९
किंशुकैर्हवनं देव्याः ४०५
किंशुकैः पापसंघात ४१२
कीदृशी वा भवेद् दीक्षा ३४२
कीदृशी सा महादेवी २८२
कीदृशो वा भवेच्छिष्यः ३४२
कुङ्कुमागुरुकस्तूरी २१६
कुङ्कुमागुरुकस्तूरी ४१९
कुङ्कुमागूरुकस्तूरी ४२०
कुङ्कुमागुरुकस्तूर्या ४८५
कुङ्कुमारुणदेहस्तु ११७
कुङ्कुमैर्होमतो देवि! ४११
कुङ्कुमं कृषरं माल्यं ३५३
कुचद्वयं तु तच्छेषैः ४०२
कुचन्दनं सितं चैव २१६
कुटिलारूपके तस्याः ३८४
कुण्डलीपात्रसंस्थेन ४५२
कुण्डलीं त्रिविधां तत्र १६३
कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः २९
कुण्डगोलोद्भवं वापि ३२०

कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा ४०५
कुतश्चिन्मथिते धाम्नि ५०६
कुतो वा लीयते जीवो ५०९
कुमारीपूजनं देवि! ३१६
कुमारी पूजिता येन ३१५
कुमार्यै भोजनं दत्वा ३३७
कुमार्यै भोजनं दत्वा ३२४
कुमार्यै यज्जलं दत्तं ३१५
कुमार्यः पूजितव्याश्च ३१६
कुम्भकार्द्धं भवेद् रेचः १६२
कुम्भकेन द्वितीयं तु १२९
कुम्भसन्तरणैस्ततुं ४६१
कुम्भादिकर्णे यद्द्रव्यं ३६५
कुम्भं चापि प्रयत्नेन १८९
कुरुते सततं भोगी ३४०
कुर्याच्च सर्वदा भक्त्या २९१
कुर्याच्छागस्य मांसेन २८५
कुर्यात् तद् हृदयासन्नं १६७
कुर्यात् सर्वप्रयत्नेन ३४७
कुर्याद् यथोक्तविधिना ३७६
कुर्याद् वै महतीं पूजां ३२५
कुर्यान्मुषलमुद्रेयं १९३
कुर्वन्तं पृथिवी तापं २२२
कुलकौलः प्रपूज्यैव २४९
कुलकौलेश्वरीं देवीं १८१
कुलचक्रं जलं न्यस्य ९३
कुलज्ञानी कथं त्वं हि ४७६
कुलज्ञानं विना देवि! ४६१
कुलज्ञः कुलशास्त्रज्ञः ३६८
कुलदीप शिखाकारं ४५२
कुलनाथं परित्यज्य ७६
कुलपात्रे सरत्नं च ९२
कुलपुष्पैश्च संलिख्य ४८६
कुलपूजा न चेद् देवि! ४४८
कुलपूजां विना देवि! ३१७
कुलभक्तं गुरुं प्राप्य ४४८
कुलभेदी नदीतीरे ४९०
कुलयुक्तो जपेल्लक्षं ३८०
कुलशास्त्रं कुलाचारान् ४३७
कुलस्य विविधं रूपं ४४४
कुलाकुलजपं कृत्वा ४५०
कुलाचारं शृणु प्राज्ञे ४२३
कुलीनो जायते यस्मात् ४४४
कुलीनः सर्वविद्यानां ७६
कुशाग्रेण समादाय १९६
कुशासने सर्वसिद्धि ११३
कूजत् कोकिलसंघेन १७६
कूजनं गायनं स्तोत्रं ४९१
कूटत्रयात्मकं स्मृत्वा ४४३
कूटत्रयात्मिका देवीं ३८४
कूटत्रये तु ह्रीङ्कारं ३८४
कूर्मो वै देवता चात्र ११५
कृतताडी करे बद्धा २८८
कृततिलकभटं दृष्ट्वा २८८
कृतवान् तन्त्रविस्तारं ९
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा १९६
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ११७
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ४७३
कृताञ्जलिर्महेशानि! २३९
कृताञ्जलिस्ततो देवि! २७५
कृतार्थः कृतकृत्यस्तु ३६४
कृते वियोगे हस्तस्य २०१
कृत्वाऽऽचम्य जपेच्छेशं ३७५
कृत्वा च विधिवत् तत्र २७३
कृत्वा चाहं मतिं तत्र २९५
कृत्वा जप्त्वा च तल्लोके ३२९
कृत्वा जप्त्वा तदा कुर्याद् ३२८
कृत्वा जप्त्वा नरो देवि! ३३२

कृत्वा जप्त्वा नरो धर्मा ३३०
कृत्वा जप्त्वा नरो मानी ३२९
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो ३२८
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो ३३१
कृत्वा जप्त्वा महातेजा ३३०
कृत्वा जप्त्वा शिवामोदी ३३२
कृत्वा जप्त्वा सदा देवीं ३३०
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्ये ४८१
कृत्वाऽथ गुरवे दद्याद् ४२२
कृत्वा धूपेन सौगन्ध्यं ४४१
कृत्वा न्यासमिमं देवि! १४९
कृत्वा मिश्रीकृतं स्नेहं २२३
कृत्वा रत्नमयं रूपं ४८६
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् ५५
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् ५५
कृत्वा सम्पूज्य विधिवद् ३५७
कृत्वा सुमङ्गलं देहे ३३८
कृत्वा सुमङ्गलं देहं ४२९
कृत्वा होममवाप्नोति २८५
कृत्वाऽहम्भावमुत्सृज्य ३९७
कृपया हर विघ्नं मे ३१९
कृपया हर विघ्नं मे ३१८
कृपाणं च कृपालं च २७५
कृष्णपक्षे महेशानि! ५८
कृष्णायाऽथ चतुर्दश्या ३२७
कृष्णावर्णं तदुदकं ९५
कृष्णसर्पकरालं तु २८८
कृष्णाजिने मोक्षसिद्धिः ११३
केचित् तां भूषणाच्छादैः ४६५
केचित् तां तु प्रहाराद्यैः ४६५
केतकी वनमाला च २१८
केन जीवत्यसौ जीवः ५०९
केनपश्यत्यसौ जीवः ५०९
केवलानुभवानन्द १२१
केवलानुभवानन्दे १२१
केवलं जपमात्रेण ३८१
केवलं नारिकेलाम्बु २३२
केवलं ब्रह्मविज्ञानं ८३
केवलं भक्तिभावेन २१३
केवलं मानसेनैव १७०
केशकीटादिसंयुक्ता १०८
केशान्वितमधौतं च २१४
केषाञ्चिदस्मदुक्तानां ४९६
कैलाशं भूतनगरं १४५
कैलासशिखरारूढं ३
कैलासाख्यं तदूर्ध्वे तु ८८
कैवल्यं केवलं शान्तं ५१२
कैव सृष्टिः किमत्रापि ७
कोकिला काकपक्षैश्च २८६
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं ३९१
कोटिजापे तु सम्पूर्णे ३८१
कोटिहोमात् परं नास्ति ४३३
को देवः कोऽसुरो यक्षः ४५९
को द्विजः कोऽथवा शूद्रः ४५९
को वा करोति पापानि ५०९
को वा जीवः कथं प्राणाः ५०९
को वा बद्धो विमुक्तः कः ५०९
कोषजं रोमजं वाऽस्त्रं २२२
कौटिल्य क्षौरमभ्यङ्ग ३७४
कौतुकं कारयेद् देव्यै २६७
कौमारि! सर्वविद्येशि! ३१९
कौमारी पीतवर्णा च ६३
कौलिकं कथयिष्यामि ३८८
कौलो धर्मस्त्वया प्रोक्तः ४८८
कौशेयाजिनसंयोगो ११४
कः:कामः को भवेदिन्दुः ४५९
क्रियते त्रिपुराप्रीत्यै ३००
क्रियते परमेशानि! २४३

क्रियते भक्तियुक्तेन २३७
क्रियते यो नमस्कारो २३५
क्रियते यो नमस्कारः २३५
क्रियाशक्तिमये बाण १८३
क्रियासिद्धिं विधास्यामि ३५३
क्रियेच्छाज्ञानशक्तीनां ५०४
क्रुद्धाभगवती तस्य ३०५
क्लीङ्कारं रक्तवर्णं तु १००
क्लीङ्कारः सर्वदा पातु ३६
क्लीमात्मकं कामदेवं ९०
क्लृप्तैः कशिपुभिः कान्तं १७८
क्वाटलौ हससम्बद्ध ४५०
क्वाथेन पूरयेद् देवि! ४१४
क्षन्तुमर्हसि मे देवि! २७९
क्षमाधृतिर्मिताहार ७८
क्षारं च लवणं मांसं ३७३
क्षालयित्वाऽस्त्रमन्त्रेण ३५६
क्षीरपानीयसंयुक्तं १६९
क्षीराज्यमधुकर्पूर २३१
क्षीरादीन्यथ गव्यानि २३०
क्षीराब्धिमथने पूर्व २२८
क्षीरोदधिः सनादेन ४२०
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे ४६९
क्षीरं दधि मधु स्वाज्यं ४१०
क्षुतेऽधोवायुगमने ३७५
क्षेत्रपालं महादेव्या २७५
क्षेत्राधिपस्य नाम्ना तु ३६९
क्षेत्रे पीठोपपीठा २७५
क्षेत्रेशो नैर्ऋते पातु ४०
क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं ४२०

ख

खगाभ्यां च तथा श्लेषां १३६
खड्गखट्वाङ्गपट्टीश १९२
खड्गी दुर्भगया युक्तो १३४
खड्गं च चषकं चैव १३८
खड्गं वेतालकं चैव ६३
खर्जूरी मुखमध्यस्था २८७
खादन् मांसं पिबन् मद्यं ४२९
खेचरी पादयोः पातु ३८
खेचरी बीज योन्याख्या २७०
खेचरी बीज योन्याख्या २०४
खेटकं चषकं चैव २८७
ख्यातिर्वाहनभूषादि ४३५
खं वायुर्ज्योतिरापश्च ५१५

ग

गङ्गाद्वारसमासीनं २
गङ्गापि यमुनायाति १९१
गङ्गावतारमन्त्रेण १९१
गङ्गास्मरणमात्रेण ४४७
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण ४००
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण ३९९
गजतुण्डा महामुद्रा २७७
गजवक्त्राय मोहिन्यै १३२
गणनाथश्च कामिन्या १३२
गणनाथं बटुकं च १०९
गणेशत्वं महादेव्याः ३८९
गणेशैः प्रथमो न्यासो १३१
गणेशो विघ्नहारिण्या १३४
गणेशं चैव क्षेत्रेशं १०९
गणेशं मातृकां चैव ३६९
गतिस्तस्यैव सर्वत्र ४८
गत्वा योऽसौ नमस्कारः २३६
गदां पद्मं च शङ्खं च २७३
गन्धपुष्पाक्षतादीनि ११७
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा ४२९
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा २३
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा ३३०
गन्धर्वाणामशेषाणां २६५

गन्धर्वान् किन्नरान् कृत्वा ३३०
गन्धर्वेभ्यो ददौ तेन ६
गन्धर्वैः पूज्यते देवि! २०१
गन्धस्य विस्तरो भेदो २१५
गन्धाकर्षणरूपा मां ३८
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य २७४
गन्धेन लभते कामान् २१६
गन्धैर्नानाविधैः पुष्पैः ३६६
गन्धैः सुतोषिता देवी २१६
गन्धैः पुष्पैस्तथा माल्यैः ४४१
गन्धं पुष्पं च धूपं च १६९
गन्धं पुष्पं च धूपं च ३३७
गन्धं पुष्पं तथा धूपं ३१८
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो २१५
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तः २१५
गमनागमनं वायोः १६२
गलद्रुधिरगन्धाढ्या २७४
गसौ च समनाः पश्चात् १८९
गात्राणि शोभयन्त्वेते २१५
गात्रे दातुं च यद् योग्यं २२४
गानेन तुम्बुरुः साक्षाद् ३२४
गान्तारी निर्मितं शस्तं ११४
गायत्र्याश्च महादेव्याः ९३
गायत्र्येषा समाख्याता १०२
गायन्तं त्रायते यस्माद् १०२
गारुडं चैव माणिक्यं १८९
गां गीं गूं त्रयमालिख्य २७७
गिरिकर्णी शमीं दूर्वां २८७
गिरिराजसुता देवी ३५
गिरौ स्वर्णगिरिं चैव १७४
गीतनृत्यादिना साकं ३०६
गीयते सर्वतन्त्राणां ३
गुणत्रयमयी सा तु ४७७
गुणाः पञ्चदश प्रोक्ता ३८६
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं ८९
गुप्ततरेश्वरीं देवी १८०
गुप्तं सर्वत्र देवेशि ४४३
गुरवे गुरुपुत्राय १९६
गुरुक्रमेण सम्प्राप्तः ३८८
गुरुत्रयं च सन्तर्प्य १९६
गुरुणा वार्चनं कृत्वा ३५३
गुरुतल्पगमनाद्यैः १०२
गुरुदेवं विना देवि! ७६
गुरुदैवतमन्त्राणां २६०
गुरुपादरजो मूर्ध्नि ७६
गुरुभक्तां सुवेशां च ३०
गुरुभक्तिविहीनाय ४४
गुरुभक्तेन शुद्धेन २१
गुरुमण्डलपूजां तु ७६
गुरुरेव परं ज्ञानं ७६
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः ७६
गुरुहत्याकृतं पापं ९९
गुरोरपि न पद्येत १४८
गुरोः पादप्रसादेन ४४
गुरुं प्रकाशयन्नैव २५९
गुरुं सम्पूज्य विधिवत् ३२४
गुरुः कालं विनिश्चिन्त्य ३५०
गुरूणां च त्रयं चैकं १९६
गुरूणां चैव मन्त्राणाम् ३६०
गुरूणां सन्निधानं च ३३४
गुरुता शिष्यता चैव ३४८
गुरुपुत्रकलत्रादि ४२८
गुरुपूजाकराकृष्टिः ४९१
गुरुभक्तिविहीनस्य ४३८
गुरुर्भूत्वैव भगवान् ३४२
गुरुवाक्येन तं विद्याद् ४८५
गुरुशय्यासनं पीठं ३४७
गुरुशुक्रोदये शुद्धे ३४९

गुरुसेवैकमात्रेण ४४७
गुरुं दृष्ट्वा भवेद् हृष्टः ३४७
गुरुं नत्वा विधानेन ४४०
गुरुं सन्तोषयेदेवं ३७७
गुरुं समाश्रयेच्छिष्यः ३४६
गुरुः शाक्तो भवेद् ऋद्ध्यै ३४४
गुरुः सर्वगुणोपेतो ३४४
गुरुन् नत्वा विधानेन १७२
गुरुन् नुत्वा विधानेन ३३८
गुरोरभावे विप्रोऽस्य ३६८
गुरोराज्ञां समादाय ३६७
गुरोराज्ञेव मूलं स्यात् ३६८
गुरोः शरीरमास्थाय २९६
गुर्वादि सहितो वासो ३५१
गूढगुल्फपदद्वन्द्व १२९
गृहाण वह्निजायान्तो २३२
गृहीतं पुष्यनक्षत्रे २८७
गृहीत्वा तस्य चात्मानं २६२
गृहीत्वा तु प्रयत्नेन ३१
गृहीत्वा पूजयेत् तुष्टः २३९
गृहीत्वा पूजयेद् देवीं ३२०
गृहीत्वा रक्तपुष्पं च १२३
गृहक्षेत्रादिवित्तेषु २६४
गृहे चेद् द्वारदेशस्थ १०९
गृह्णन्ति राक्षसा येन २६२
गोकर्णं च ततो देवि! १४५
गोपयन् दिव्यभावं च ४६५
गोपयेद् यत्नतो दिव्यं ३३९
गोपितव्यं पशोरग्रे १२
गोभूहिरण्यवस्त्रादि ३०२
गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैः ३६५
गोरसं च गवां सारं ४५८
गोरोचनासमायुक्ता २८८
गोलकस्तु यथा देवि! ५१२
गोशृङ्गोपरि यत्कालं २६८
गोहत्यादिकृतं पापं १९
गौतमप्रोक्तशास्त्रार्थ ८
गौतमेन तथा न्यायं ८
गौरीं च लोकधात्रीं च १०९
ग्रन्थयोऽष्टादशापि स्युः ५६
ग्रहणादिविमोक्षान्तं ३७८
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा ३७८
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा ३४८
ग्रहरूपा परादेवी ३८९
ग्राम्यारण्यैः फलैर्देवीं २३२
ग्रामे वा नगरे देशे ३६९

घ

घङाभ्यां च मघां देवि १३६
घण्टाशङ्खनिनादेन २६७
घृत-तैलादि-योगेन २१७
घृतदीपस्तु प्रथम २२१
घृतपायसहोमेन ४११
घृतेनोद्वर्तनं कृत्वा १६८
घृष्टो मलयजो गन्धः २१५
घ्राणाद् देवाश्च तुष्यन्ति १२५
घ्रातान् निवेद्य देवेशि! २१७

ङ

ङेन्तमात्मासनायान्ते १५१
ङेन्तेषु परमेशानि! १५५
ङेन्तं नमः पदं कुर्याद् ११५
ङेन्तं च नतिसंयुक्तं २४८
ङेऽन्तं शिखामन्त्रयुक्तं १९४

च

चक्रमण्डलमाख्यातं ७०
चक्रमध्ये समावाह्य ७०
चक्रराजपदस्याऽन्ते २५४
चक्रराजस्त्वया प्रोक्तः ४१८
चक्रराजं तु लिखितं ३५६

चक्रराजं हृदि ध्यात्वा १०६
चक्रे मूर्तौ तथा शिष्ये ४१८
चक्रेशीमपि तामेव ६९
चक्रेश्वरीं यजेच्छक्तिं २५२
चक्रोपरि शिवां नत्वा १२०
चक्रं कराभ्यामुद्धृत्य ४२०
चक्षुरुन्मीलितं येन ७६
चक्षुषा चाऽथ कर्णाभ्यां २३६
चक्षुषोरनिमेषत्वं ४३४
चक्षुष्मत् पद्मरागाग्रै १७७
चतुरस्रासने शुद्धे ३६३
चतुराश्रमिणां मध्ये ४२९
चतुर्णामपि चक्राणां ५६
चतुर्थमण्डले देव्याः २७६
चतुर्थस्वरसंयुक्तं २५
चतुर्थी नतियुक्तानि १४५
चतुर्थी नतिसंयुक्तं १४४
चतुर्थी वायवी मूर्तिः ४७३
चतुर्थेन चतुर्थी च ६०
चतुर्थं योनिमध्ये तु ३९२
चतुर्दशस्वरैर्वक्त्रं ९०
चतुर्दशस्वरोपेतं १९
चतुर्दशाक्षरेणैव ६०
चतुर्दशारचक्रस्य ५५
चतुर्दशीं तथा शक्रे ६१
चतुर्दश्यामथाऽष्टम्यां ३२७
चतुर्दश्यामथाऽष्टम्यां ३६९
चतुर्द्धा कालरूपैश्च ४८७
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च ४७०
चतुर्भुजं महादेव्या ३०९
चतुर्वर्गप्रदश्चायं १२८
चतुर्वर्गप्रदं नित्यं २१४
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्त २५८
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्त ४४२
चतुर्वर्गं करे तस्य १८५
चतुर्वर्गं लभेद् भक्तो २३४
चतुर्विंशतितत्त्वेन ९८
चतुर्विंशति संख्याताः ५६
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन ११४
चतुर्वेदमयी साक्षात् १६
चतुर्व्यूहं ततो देवि! १५७
चतुष्कलासमायुक्तो ५१२
चतुष्पथसमायुक्ते ६७
चतुःषष्ट्युपचारैस्तु ४१८
चत्वारि तस्य नश्यन्ति १०४
चत्वारि तस्य नश्यन्ति २५७
चत्वारि तस्य नश्यन्ति ३२४
चत्वारः षण्डवर्णा स्युः ५०४
चन्दनाऽगुरु-कर्पूर १७८
चन्दनाऽगुरु-कर्पूर ३५६
चन्दनाऽगुरु-कर्पूरैः २२५
चन्दनाऽगुरूकस्तूर्या ४८६
चन्दनागुरुहोमेन ४११
चन्दनेनाऽन्विताःसर्वाः २८७
चन्दनैः कर्णिकारैश्च १७५
चन्द्रकोटिप्रभां शुद्धां ३६२
चन्द्रकोटिसमप्रख्यां १६४
चन्द्रचन्दनकस्तूरी २५८
चन्द्रतारानुकूले च ३४९
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ता १२६
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् १२९
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ताः १२५
चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्य ११९
चन्द्रमण्डलरूपं तम् १९२
चन्द्रशिवौ त्रिशूलाढ्यौ ७३
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिः ८५
चन्द्री चक्री तथा वज्री २८७
चन्द्रं हित्वा दिनं कुर्यात् १९४

चन्द्रः कामस्तथेन्द्रश्च ३१
चम्पकाऽशोकपुन्नाग १७५
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा ४०९
चराचराश्च सकलाः २१९
चवर्णेन च देवेशि! २४५
चवर्गेण तथा स्कन्धे १४४
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं २२८
चषकं वरदानं च ६८
चाटुकानि रतान्ते च ४९१
चाण्डालकेशयुक्तेन २८५
चाण्डालगमनाद्यैश्च १०२
चाण्डालगर्दभं काकं ३५३
चातुर्वर्ण्यं करे तस्य ४८
चापलानि च जिह्मानि ३४६
चापं बाणं तथा पाशं १४२
चामुण्डा कृष्णवर्णा च ६३
चामुण्डे मुण्डमाला स्रक् ३१९
चारयन्ति यतस्तस्माद् २०६
चारुचन्द्रकलायुक्तं ३
चारुणा शातकुम्भेन ५१
चित्ताकर्षणरूपा मां ३८
चित्रपूजासु सर्वासु २२०
चित्रवस्त्रं दुकूलं च २१४
चिद्रूपं परमानन्दं १
चिन्तनं योषितां सार्द्धं ४४५
चिन्तयित्वा महेशानि! १७२
चिन्तयित्वा महेशानि! २४८
चिन्तयित्वा महेशानि! ४००
चिन्तयित्वा शिवं तत्र ६५
चिन्तयेत् परमं ब्रह्म ३०३
चिन्तयेत् सततं भक्त्या ३०६
चिन्तयेत् सलिलैः पूर्णा १७४
चिन्तयेत् साधको नत्वा १६५
चिन्तयेत् साधको भक्त्या १८०
चिन्तयेत् साधकः शक्तिं ४४१
चिन्तयेत् योषितां योनौ ४००
चिन्तामणिरियं विद्या १८
चिन्तावशमुपाविष्टो ४६९
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा २६२
चिबुकेन मुखेनाऽथ २३६
चुम्बनं स्तवनं देवि! ४४३
चुल्लुकार्द्धं मधु क्षीरं ४११
चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा २१५
चैतन्यरहिता मन्त्रा ३८३
चैतन्यावरणं यद्वत् १६१
चैतन्यं सर्वभूतानां ८६
चैतन्यं सर्वभूतानां १८७
चैतन्यं सर्वभूतानां ४८५
चं पूर्वफाल्गुनीं चैव १३६

छ

छत्रं च चामरं चैव २६५
छन्दो विराड् देवता च ३५
छान्तं भान्तं च ज्वलनं १५३
छायया शोणया व्याप्तं ४७
छाया यस्य जले याति २८८
छायां कलत्रमन्यच्च ३४७

ज

जगतामीश्वरत्वं च १३
जगत् कृत्स्नं तया व्याप्तं ३८५
जगदाकर्षणकरीं १८४
जगदाह्लादजननीं १८३
जगद्वन्द्यकलाधीश १०
जगन्मातुर्महादेव्या २६८
जटिले चपलाक्षिण्यै १३४
जठराननयोर्देवि! १२६
जठरास्ययुगे देवि! १२७
जठरे रोगशमनी ५१
जडत्वादुभयोर्देव! ४७७

जननीं सर्वमन्यानां १८
जन्मान्तरसहस्रस्य ४४४
जन्मान्तरे जायते स ३७२
जन्मार्जितफलं नश्येत् ९०
जपकर्मणि मालायाः २६२
जपध्यानपरो मन्त्री ३२५
जपध्यानसमायुक्तः २५६
जपध्यानादिभिर्युक्तं ८०
जपनिष्ठा द्वादशैते ३७३
जपमालामुपस्कृत्य २९
जपरूपा सदा शक्तिः २५६
जपस्यान्ते शिवं ध्यायेत् २५६
जपहोमादिकं सर्वं ४१७
जपाकुसुमसङ्काशं २५०
जपाकुसुमसङ्काशां १८१
जपाकुसुमसङ्काशां ४७
जपात् तुष्यन्ति देवाश्च २५६
जपादौ जपकर्मान्ते २६३
जपादौ पूजयेन्मालां २५८
जपान्ते जुहुयादग्निं २०७
जपान्ते जुहुयादग्निं २६३
जपारम्भं सुधीः कुर्याद् २६०
जपेदेकमनाः प्रातः ३७५
जपोक्तक्रमतो योगी ३६२
जपो होमं तर्पणं च ३७७
जपं तं च महादेव्या २६२
जपं समारभेत् पश्चात् ३७२
जपः स्यादक्षरावृत्तिः २५६
जप्त्वा कृत्वा भवेत् सिद्धिः २९५
जप्त्वा तत् साधयेत् सर्वं २४
जप्त्वाऽऽनन्दमयो भूत्वा २७
जप्त्वा विद्यां च मालायां २९
जप्त्वा वै दिव्यमालायां ३१
जप्यते साधितेऽप्येष १२४
जप्यमेकाक्षरं ब्रह्म २४
जम्बूफलैः स्त्रियः सर्वा ४१०
जपकाले चिन्तयित्वा १०२
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैः ३५५
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैः ४२१
जयिनी च ततो देवि! १५३
जयिनी शूर्पकर्णश्च १३२
जरामरणदुःखाद्यैः ८९
जलं च तेजसि लीनं च १७२
जलं च नारिकेलोत्थं २११
जलं चापि तथा प्रोक्तं ४५८
जलं सोममयं तद्वत् ३५६
जलं हस्ततले गृह्य १२९
जलाञ्जलित्रयं भूमौ ९५
जले स्थले तथाऽऽकाशे ४८
जहि शङ्कां महादेव! ४९०
जागर्ति परमेशानि! ७६
जागर्ति यदि सा देवि! ७७
जागर्ति सुप्यते कोऽसौ ५०८
जागर्ति सुप्यते वायुः ५०९
जाग्रत् स्वप्नसुषुप्त्यादि ५१६
जाग्रदादिसुषुप्त्यन्तं १८५
जातसूतकमादौ स्याद् ३८३
जातरूपमये रत्नैः १७८
जातीलवङ्गकक्कोल २३३
जानुद्वये तथा नाभौ १६०
जानुभ्यामवनीं गत्वा २९०
जानुभ्यामवनीं गत्वा २९२
जानुभ्यामवनीं स्पृष्ट्वा २३५
जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा २३५
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् ७९
जान्तं भान्तं ततो रेफं १५४
जायते स्वयमेवास्यां ४३६
जाया चेत् कुलटा गेहे ४३६

जाया मुख्यतया प्रोक्ता ४३६
जायासु चैव सर्वासु ४५८
जालन्धरपदात् पीठे १५७
जालन्धरेमहापीठे ६८
जालन्धरं महापीठं ४४३
जितव्याधी रूपवान् स्याद् ४८
जितामितकुचद्वन्द्व ४५०
जिह्वया जलसंयोगाद् ४५३
जिह्वामापूर्य भो देवि! ३९९
जिह्वायां न्यसनाद् देवि! १५
जीवनं धनमेवाऽत्र ३४०
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते ७८
जीवन्मुक्तो जामदग्न्यः १०२
जीवन्मुक्तः सर्वभूत ४८५
जीवन्मुक्तः स्वयं देवो ४९२
जीवन्या जीवयेद् विद्या ३९९
जीवमीश्वरभावेन ८३
जीवशक्त्यैकसिद्ध्यर्थं ३९६
जीवहीनो यथा देहः ३६८
जीवात्मा परमात्मा च ३९०
जीवं सर्वमलं ज्ञात्वा ४७९
जीवः पश्यति देहस्थो ५११
जीवः शुक्रं च विज्ञेयं ५१०
जुष्टं विचित्रवैतानैः १७७
जृम्भणे सर्वदा पान्तु ४०
जेगीषव्यश्च चन्द्रश्च १०२
ज्ञातृकर्तृत्वपूर्णत्व ५०२
ज्ञातुर्ज्ञानमयाकार ३८४
ज्ञात्वा तत् साधयेद् देवि! २७
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति ५१५
ज्ञानकर्मपरः शुद्धः ३२५
ज्ञानचक्षुस्तयोरैक्यं ३००
ज्ञानतत्त्वात्मनश्चैव १८०
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि २८०
ज्ञानदं कामदं पुण्यं २२९
ज्ञानदं कामदं श्रेष्ठं ३३९
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् ५१५
ज्ञानपुण्यविहीनास्तु ३३९
ज्ञानमुद्रां च हस्ताब्जैः १४२
ज्ञानयोगश्च वक्तव्यः ७२
ज्ञानलोपो भवेद् यस्य ४३४
ज्ञानशुद्धिस्त्वया प्रोक्ता ७२
ज्ञानाद्धि निर्मलं विश्वं ४५८
ज्ञानिनां सिद्धिदा चेयं २२७
ज्ञानेच्छादिक्रियारूपां २५४
ज्ञानेन कर्मणा चेह ७२
ज्ञानेन कर्मणा वापि ७२
ज्ञाने मां भास्करः पातु ३७
ज्ञानं दिव्यं यतो दद्यात् ३४२
ज्ञानं सत्यं पूर्ण इति ३४३
ज्योतिष्टोमफलं लब्ध्वा २३०
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ २१२
ज्योतिषां च लयं तत्र ४५४
ज्योतीरूपां तदाधारे ३८२
ज्योतीरूपं तु योनिस्थं ३८०
ज्वालामुख्यं च सर्वान्ते २७३

ट

टवर्गेण तथा कुक्षौ १४४

ठ

ठान्तद्वयं ततः पश्चात् १३८
ठान्तं भान्तं महीबीजं १३९
ठान्तं हित्वाग्निबीजं च १४०

ढ

ढणाभ्यां च विशाखां वै १३६

ड

डङ्कारेण तथा स्वातीं १३६
डफवर्णांस्ततो देवि! १४०
डमरुं चाक्षसूत्रं च १४२

डाकिनीप्रमुखाः पश्चाद् २७३
डाकिनीं भावयेद्देवीं १३८
डाकिन्यै नम इत्यन्ते १३९

त

त एवं ब्राह्मणाः सर्वे १०२
तज्जुगुप्सितमन्याय ४६३
ततः कथय देवेश! १८
ततः क्षेत्रपदं पालः २७५
ततः परं तु कैवल्य २३१
ततः पार्श्वद्वयं देवि! ३७०
ततः परं शिवाङ्कस्थां ५८
ततः पादद्वयं देवि! ३७०
ततः पुनरिहागत्य २६८
ततः पुनर्हुम्फडिति १११
ततः प्राङ्मुख आसीन ५४
ततः शतगुणं प्रोक्तं ३३६
ततः शतगुणा प्रोक्ता ३३६
ततः सन्तोषयेद् देवीं २०८
ततः स्थानान्तरे नीत्वा ३१८
ततश्चतुर्गुणाः प्रोक्ता ३३५
ततश्च पूर्वरेखायां ५८
ततश्च मन्त्रसिद्धिः स्याद् ३७९
ततश्च शोधयेद् दीपं ४४२
ततश्च साधकश्रेष्ठः ४५३
ततस्तां परमेशानीं २८०
ततश्च कवचं दिव्यं ४७
ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता ३३५
ततस्तु नीलसुभगे ४४९
ततस्तु पुष्पनैवेद्य २९२
ततस्तु मन्त्रसिद्ध्यर्थं ३७९
ततस्तु वायुबीजेन २०१
ततस्तेनापि सम्प्रोक्तं ६
ततो ज्ञानात् क्रियासारा ५०६
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं ३२०
ततो दशारचक्रस्य ५५
ततो देवीं हृदि ध्यात्वा ४२०
ततो देवीं हृदम्भोजे ४६
ततो देव्याः स्वनामान्ते १०४
ततो ध्यायेन्महादेवीं २००
ततो न्यसेद् महादेवि! १५९
ततोऽपि दक्षिणां दत्वा २३६
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता ३३६
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता ३३५
ततो बहुसुखं भुक्त्वा ४९२
ततो बुद्ध्या यथाकाले ३०३
ततो ब्रह्मस्वरूपिण्यै २७८
ततो भूयात् तु षष्ठ्यन्ता ४२१
ततो मन्त्रं जपेद् ध्यात्वा २८४
ततो मौनी विशुद्धात्मा १०८
ततोऽवगुण्ठयेद् देवी २०३
ततो वै मूलमन्त्रेण २९०
ततोऽहं परमेशानि! ७
तत्कथय महादेव! ३३९
तत्कारं पाण्डुरं ध्यायेत् १००
तत्कार्त्स्न्येन परं योगं ७८
तत् कुर्यात् सर्वथा मन्त्री ३६८
तत् कृपालब्धविज्ञान २९४
तत् कृपालुरहं देवि! ८
तत् क्षणान्मुच्यते येन ५१२
तत्तज्ज्ञानमये चक्रे ७०
तत्तत्कर्मपरित्यागात् ४९२
तत्तत्तेजोभिराकीर्णं ३०५
तत्तत् समग्रमासाद्य १८५
तत्तदानन्दसन्दोहैः ४७७
तत्तदानन्दसन्दोहैः ४३०
तत्तदायुधपूर्णान्ता १०९
तत्तदीहापरा शक्तिः ३२७
तत्तद्दृष्टिमयैर्दीपैः ३०८

तत्तद्ध्वजमधिष्ठाय ३५१
तत्तद्विद्यास्तथा ध्यानं ५९
तत्तद्रश्मिभिरेवास्य ३६२
तत्तन्त्रे ताः प्रयोक्तव्याः १०४
तत्तु देव्याः पुरोभागे २६३
तत्तु यागतया स्यातां ४९९
तत्तुरीयस्वरूपार्णं ४०२
तत्तेजोभिरिदं सर्वं १८४
तत् तैजसेन पात्रेण २१०
तत् त्रैविध्यं शृणु प्राज्ञे ४०२
तत्वमसि स एवाहं ४८९
तत्परं न हि वस्त्वेह २८०
तत् पुरश्चरणं नाम ३७७
तत्पूजा विफला देवि! ९०
तत्प्रकारं च देवेशि! ३८८
तत्प्रतीतौ भवेत् सिद्धे २९८
तत्प्रतीतौ भवेन्मुक्तिः १२०
तत्प्रभाप्रसवाश्लेष ३८४
तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि ३९०
तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं ८७
तत्र तत्र महादेवीं ४२१
तत्र तत्र महेशानि! ५९
तत्र तत्र यजेद् देवीं १९२
तत्र तत्र विनिःक्षिप्त १७७
तत्र देवीं समावाह्य २८४
तत्र देशे न दुर्भिक्षं ४९
तत्र पूजा सदा कार्या ३०६
तत्र पूजा सदा कार्या ४८७,४८५
तत्र यत् क्रियते कर्म ३०९
तत्र यद्विषये चैव १५०
तत्र ये पञ्च देवेशि ५६
तत्र शाम्भवभेदेन ३०६
तत्र सञ्चिन्त्य मनसा ३८०
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ३३५
तत्र सम्पूज्य तां देवीं ३३६
तत्रस्थममृतं साक्षाद् ११९
तत्र स्थित्वा जपेद् विद्यां ३७२
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं ३८०
तत्र स्थित्वा महेशानि! ९
तत्र स्थित्वाऽऽवयोर्मध्ये ४६९
तत्रादौ ब्रह्मरेखायां ६२
तत्राद्यदिवसे देवीं ६१
तत्राद्यां पूजयेद् देवीं ४५२
तत्राऽन्यद् रूपमापन्ने ३०५
तत्रापि चानयाऽऽराध्या २२६
तत्रापि तां तनुं त्यक्त्वा ४७२
तत्रपि लेपनं कृत्वा ४०५
तत्राम्भसि स्वमात्मानं १७३
तत्राऽऽवाह्य यजेद् देवीं ४१४
तत्रैव मादनं बीजं ३९१
तत्रैवाहं महामन्त्रान् ९
तत्समूहाः षडाख्याता ७८
तत् सर्वं कथयेशान! ५
तत् सर्वं कथयेशान! २३९
तत् सर्वं नाशमायाति ११२
तत् सर्वं नाशमायाति ११९
तत् सर्वं परमेशानि! ३६
तत्सङ्कोचात् सङ्कुचिताः ५०३
तत्स्कन्धे बहुमाधाय ४५०
तत्समा कामरूपे च ३३६
तत्स्वरूपानन्दमयी २२
तथा कथय देवेश १२
तथाकारणकर्तृत्वं ४६१
तथा चान्यमना भूत्वा २६२
तथा त्रिपुरसिद्धां च ६७
तथा त्रिपुरसिद्धान्ते १५२
तथा दक्षिणतर्जन्यां १६७
तथा दशभुजं देवं १९२

तथा द्वितीयरेखायां २४०
तथाऽनङ्गाङ्कुशा नित्यं ३८
तथा नान्यमना भूत्वा ४२४
तथा निगर्भयोगिन्यः ६७
तथा निर्माल्यसंसृष्टिः ११२
तथाऽन्यदशकोणस्य ५५
तथाऽन्येषां च द्रव्याणां २२५
तथाऽन्येषां च वस्तूनां २३१
तथापरं च निर्वर्त्य ३५६
तथापि कथयाम्यद्य ३४
तथा बुधः सधूमे च ३५७
तथा ब्रह्मार्पितात्मासौ ८४
तथाभ्यामनुराधां च १३७
तथा भ्रमति जीवाख्यं ५१२
तथा मधुमती सिद्धिः २८
तथा मन्त्रात्मकं चक्रं ३८९
तथा मन्त्राः समस्ताश्च ३८८
तथाऽमृते पदं ब्रूयात् १९५
तथा मोहय सर्वेशं ४७२
तथा वामशिरोभागे १४४
तथाविधे गृहे वेद्यां ४१८
तथा विमर्शवपुषः ५०५
तथा वै दूषिता योन्याः १०
तथा शक्तिपदान्ते वै ७४
तथा शिष्यार्जितं पापं ३४८
तथासनं च निर्वर्त्य ४१९
तथा सपरिवारान्ते २५४
तथा सपरिवाराश्च २४२
तथा सर्वरहस्यार्थो ३८४
तथा सूर्यमयं कुम्भं ३५६
तथा होमदशांशं तु ३७७
तथैव कवचं देवि! ४४
तथैव कुटिले योज्ये २५३
तथैव तर्पयाम्यन्ते २०४
तथैव तु यजेद् देवीं ३६७
तथैव त्वयि शब्दान्ते २७८
तथैव दण्डवद् भूमौ २३६
तथैव परमेशानि! १०४
तथैव परमेशानि! १३४
तथैव पातु मां नित्यं ३९
तथैव प्रतिजानेहं ४२६
तथैव ब्राह्मणान् पश्येद् २९३
तथैव वामतो देव्या २७४
तथैव सिद्धिशब्दान्ते २४०
तथैव हि महाबीजं १८
तथैवानङ्गरेखां च २४५
तथैवानुपनीतानां ९७
तथैवास्त्रेण तु तथा १८९
तथैवाहं महेशानि! ४६५
तथैवोक्ताङ्गुलीभ्यां च १५५
तथैवोड्यानपीठे तु १५८
तथैवोत्तरभाद्रं च १३७
तथ्यं मद् वाक्यतो देवि! ३९६
तदग्रे कामरूपं च १९२
तदग्रे परमेशानि! २७३
तदङ्गे मातृकां न्यस्य ३६३
तदधो हंसबीजं तु २५
तदधः कामबीजं तु २५
तदधःस्थां स्मरेद् रक्ता १७९
तदधः परमेशानि ४४४
तदनुभूय देहेऽस्मिन् २९८
तदन्ते महतीं पूजां ३७७
तदन्ते योजयेद् देवि! १५८
तदन्तःस्थं परं ब्रह्म २९४
तदन्तःस्थं समाहूय २९८
तदन्यदपरा शक्ति ५०४
तदभेदसमापन्न १६३
तदर्द्धांगुलं वा कुर्यान् ११४

तदवाप्य महादेव! ७
तदशेषं प्रवक्ष्यामि ३
तदष्टाङ्गमिति प्रोक्तं २३७
तदसत्यं विजानीयात् ४७८
तदस्तीति प्रमाणेन ३३९
तदाकर्ण्य महेशानि! ७
तदाकारणमात्राणि ५०४
तदा किं स्यान्महादेव! ३३७
तदाक्रम्य स्वयं देवी ३०८
तदाचान्ते भवेद् देवी २८२
तदाज्ञां शिरसि धृत्वा ४६५
तदा तत्काममाप्नोति ४३८
तदा दशभुजो देवः ३०५
तदा देयं महद् गुह्यं ४४
तदा देव्यश्च सर्वाश्च ३२१
तदानन्दमयं धाम २९६,४७६
तदानन्दमयं ब्रह्म ४९२
तदानन्दमयं विश्वं ३९७
तदानन्दमये रम्ये ३३०
तदा नरकमाप्नोति ७६
तदा नैजं भवेद् विश्वं ३०८
तदा पर्यटनं कार्यं ४३०
तदाप्नोति परं स्थानं ४७
तदा प्रकाशमानत्वात् ३९३
तदा प्रसादमायान्ति ७७
तदा भवति सिद्धीशो १७०
तदामृते तयोर्योगाद् १९४
तदामृतैः श्रवद्भिश्च ३६२
तदा शाम्भवमित्याहुः ४९५
तदा स चिन्मयः साक्षात् ४५५
तदा सर्वार्थसिद्धिः स्याद् ५१
तदिदं निष्कलं ब्रह्म ५११
तदुक्तमपि नो दद्यात् २२३
तदुत्तरत एवास्मिन् ११९
तदुद्भवामृते शश्वद् ९४
तदुद्भवामृतं वक्त्र ८९
तदुद्भवं शृणु प्राज्ञे ४०२
तदूर्ध्वेंऽग्निसमप्रख्यं ८७
तदूर्ध्वें मूलमन्त्रं च ५०
तदूर्ध्वें तच्छिखाकारा ८६
तदूर्ध्वें तत्तुरीयं तु ८६
तदूर्ध्वें तु विशुद्धाख्यं ८८
तदूर्ध्वें नाभिदेशे तु ८७
तदूर्ध्वेंऽनाहतं पद्मं ८८
तदेयं परमेशानि! १८
तदेव चित्सदाद्यन्तौ ४९५
तदेव निर्वाणपदं ४९७
तदेव पञ्चकूटं तु २४
तदेव परमं गुह्यं २४
तदेव प्रकृतिः सा तु १७३
तदेव विश्वजनन १२०
तदेवावहितेन त्वं ५००
तदेवाहमिदं भाव ४९५
तदेवैते न सन्देह ४३२
तदैव शम्भुभावं स्याद् ४९५
तदैवं परमेशानि! ३३७
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ४८
तद् दद्यात् कांस्यपात्रेण २१२
तद्दृष्टिपथगा नारी ४००
तद्द्रव्यैरक्षतान् शुद्धान् २९
तद् बाह्ये हेमवर्णाभं ८७
तद् ब्रह्म परमं ध्यात्वा ४५५
तद्ब्रह्माऽहमिति ज्ञात्वा ५१६
तद् ब्रह्मेति च यो विद्यात् ४७८
तद् भ्रमावर्त तोयं च ४६६
तद्रत्नेषु ग्रहान् सर्वान् ४१६
तद्रूपतामभीप्सन्ती ३०५
तद्रूपं मे परं धाम ४८८

तद्रूपं विद्धि कुण्डस्य ४५५
तद्वक्त्रे वायुना भिन्ने ४६६
तद्वत् सर्वाणि कर्माणि ८३
तनयां जगृहे मोहाद् ४६३
तनुदीर्घांगुलीभास्वद् १८३
तन्तुभिर्वेष्टितान् शुद्धान् ४१४
तन्त्रं द्वादश साहस्रं ३
तन्त्र गृह्णातीष्टदेवी १९७
तन्निगृहीतचित्तानां ४६३
तन्निवेशय महादेवे ४७३
तन्निरीक्षणसामर्थ्या ३८८
तन्निष्ठकर्मणा चैनं २९८
तन्मध्ये चिन्तयेद् देवि १७४
तन्मध्ये चैव षट्कोणं १८९
तन्मध्ये तु परं ज्योतिः ४५४
तन्मध्ये नव कोष्ठानि ३६९
तन्मध्ये परमेशानि! १९२
तन्मध्ये परमं ध्यायेत् १७९
तन्मध्ये प्रतिमां देवि! ४४८
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु ८८
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेद् १७९
तन्मना भव हे पुत्र ३६५
तन्मनाः साधकवरो १६७
तन्मयीश्चाथनित्याश्च ५८
तन्मयी मूलविद्या च ३८५
तन्मयीं परमानन्द ३८४
तन्महामोक्षमाप्नोति ४८९
तन्महासरः पुलिने १७६
तन्मात्रपञ्चकं चादि ५०२
तन्मायामोहितः सोऽथ ४६१
तन्मे वद महादेव ७२
तपःक्लेशैश्च तां देवि ४६३
तपः सन्तोषमास्तिक्यं ७८
तप्तकाञ्चनवर्णाभ २४८
तमसा च समायुक्तः ५१०
तमःपरिवृते गेहे ८५
तमः प्रकाशहीनं यद् ५००
तमालश्यामलां दन्ते १७४
तमुद्यन्तं विलोक्यैव २९१
तमुपाश्रित्य भावेन ३८१
तया विरहितो देवः ४९०
तया विरहितो मन्त्री ४४५
तया विरहितो मन्त्री ४४५
तयोः पञ्चोपचारेषु १९४
तयोः समत्वसन्धानात् ३०१
तयोरद्वैतभावे तु ४६७
तयोरभावतो दद्यात् २९२
तयोराशयरूपेण ३९६
तयोर्योगादभूद् वृष्टिः १७३
तयोर्योगाद् भवेत् सिद्धिः २५६
तयोर्योगाद् यदमृतं ४६६
तयोर्योगे भवेन्नादः ५३
तयोर्विमर्ष ईकारौ ३८५
तरुपल्लवमालाभिः ३५१
तर्जनीभ्याः समाक्रान्ते २५२
तर्जनीमध्यमानामाः १९३
तर्जनीमध्यमानामाः १२७
तर्जनीमूलपर्यन्तं २५७
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं २५३
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये २५७
तर्जन्या धारयेदेनां ४१६
तर्जन्या न स्पृशेन्मालां २५९
तर्जन्यावापि तेनैव २५१
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा २४२
तर्पणं च त्रिधा प्रोक्तं ८८
तर्पणस्तु तयोर्योगाद् २०७
तर्पणादौ प्रयुञ्जीत १०४
तर्पणाद्युपचारं तु ४९१

तर्पणानि पुनर्दत्वा २६९
तर्पणानि पुनर्दद्यात् २०६
तर्पणार्थं विशेषेण १८९
तर्पयामीति मन्त्रान्ते ३७७
तर्पयित्वा गुरूनादौ १०४
तर्पयित्वा यजेद् देवीं ४४५
तर्हि भूयोऽपि वक्ष्यामि ४९८
तव कृत्यमिदं सर्वं २८०
तव नाम्नि स्मृते देवि ४३
तव प्रीत्या महादेवि! ४३
तव स्नेहान्महेशानि! १६
तव स्नेहान्महेशानि! १९
तस्माच्चतुर्गुणफला ३३५
तस्माच्छक्तिप्रधाना च २२
तस्माच्छतगुणं ध्यानं ४३
तस्मात् कथय देवेश! ५३
तस्मात् तन्मुख आसीनः ११६
तस्मात् तास्तु प्रयत्नेन २९६
तस्मात् तेभ्यः प्रयत्नेन २७२
तस्मात् परदिने प्राप्ते ४८६
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवीं २१९
तस्मात् समिद्धे होतव्यं ३५७
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन १४८
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ३१३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ४२५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ४४५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ३२०
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन २५६
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन २२९
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ३१६
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ४४७
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ७६
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन २१५
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु २६३
तस्मात् सावहितो वह्निं ४२४
तस्मात् स्वगुरुनामान्ते ७३
तस्मादाकृष्य तद्वायुं ४६६
तस्मादावां सदैवात्र ४८७
तस्मादिमां सुरां पुण्यां ४४२
तस्मादुत्थाय देवेशि! ९३
तस्मादेषु महद् दुःखं ४२७
तस्माद् दिव्यपरो यस्तु १८५
तस्माद् देवि शुभे भद्रे १३
तस्माद् द्वैतं न मे चास्ति ८२
तस्माद् विभेति सततं १२८
तस्माद् भावविशुद्धात्मा ४४०
तस्माद् यत् क्रियते कर्म २६९
तस्माद् विज्ञानतो मुक्तिः ८३
तस्माद् व्योमगुणः शब्दो ३८६
तस्मान्नास्ति तयोर्भिन्नं ४८५
तस्मिंस्तेजोमये विश्वे १२१
तस्मै वापि मया प्रोक्तं ६
तस्मै स होवाच जगत्प्रभुश्च ५१३
तस्या गात्रे न्यसेन्मन्त्रो ३०
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं ११२
तस्म पूजाफलं सर्वं ३१६
तस्य पृष्ठे महादेवि! १७४
तस्य मध्ये महापद्मं १८०
तस्य मन्त्रस्य यन्त्रस्य ४४
तस्य मांसं च शुक्रं च ३२४
तस्य मूर्ध्नि स्थितं देवि! १७४
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् ४७
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् ७६
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् ४३९
तस्य स्युर्विफलाः सर्वाः ४३५
तस्या एव न मे भेदो ४६२
तस्या एव महेशान्या २७९
तस्याग्नेयादिकोणेषु १७९

तस्याभिव्यञ्जकाः पञ्च ३६०
तस्या मध्ये विचित्राख्या ८६
तस्यामन्तर्हितायां च ४७३
तस्यायुर्वर्द्धते नित्यं ४३३
तस्या रससमुत्पन्नाः ५८
तस्यास्तु मदनागारे ३०
तस्याः पुनः पुनः सृष्टिः २२
तस्याः पुष्पं स्वयं यावद् ३०
तस्यां सम्पातयेद् देवि! ४१५
तस्यै दत्ते शुभं देवि! ३३४
तस्यै निवेद्य चात्मानं २६९
तस्यैव शत्रवो देवि! ४९
तस्यैव हि विशुद्ध्यर्थं १२०
तस्योत्सङ्गे महादेवी ३०५
तस्योत्सङ्गे सुरांदेवीं १९२
तस्योपरि महच्छत्रं २६७
ता एव पूजयेद् देवि! २५३
ताञ्च सञ्चिन्तयेत् तत्र १७४
ताञ्च हार्द्धकलारूपां ४०३
ताडयन्ति च वैमूढाः ४६५
तादृक् प्रसूनमाल्यादि ७३
तादृशीमातृकां ध्यात्वा १८७
तानि गन्धाह्वयानि स्युः २१५
तानि सप्ताक्षरीयोगात् ३४३
तानेव वशगान् कृत्वा ३३०
तान्तु यश्चिन्तयेद् १८५
तान्यधीत्यैव ते सर्वे ११
तान्येव सच्चिदानन्द ४९८
तान्येवं पूर्णतां यान्ति ३७८
तान् वशीकृत्य तल्लोकं ३२८
तान् विप्रानथ संस्मृत्या ७
ताभिरेव युतो भूयात् ३०३
तामसानि पुराणानि ५
तामसं काम्यमेवात्र ३००
तामसं कुत्र सम्प्रोक्तं ५
तामसं नरकायैव ५
तामिस्रं नरकं घोरं २२२
तामेव कथयाम्यद्य ९८
तामेव चिन्तयेद् देवि! १८४
तामेव चिन्तयेद् रात्रौ ९६
तामेव त्वां पुनर्वक्ष्ये ४०३
तामेव पूजयेद् वापि ६०
ताम्बूलगन्धपुष्पैश्च ३०
ताम्बूलपूरितमुखो ४५
ताम्बूलपूरितमुखो ४४९
ताम्बूलस्य प्रदानेन २६६
ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं २३४
ताम्बूलं च द्विभक्तं च ३७३
ताम्बूलपूरितमुखं ४५०
ताम्बूलरागवदनो ११७
ताम्रविद्रुमबिम्बाभ १८२
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते १८८
तारं च भुवनेशानीं ११०
तारमायारमायोगो ३९९
तारो हिलिद्वयं शूल ३५३
तालत्रयमिदं कृत्वा १११
तालपत्रं च हारं च २१४
तावच्चलति देहोऽयं ४६७
तावच्चिते महादेव्यै २६८
तावन्न किञ्चित् सिद्ध्येत् ७७
तावत् सत्यं जगद् भाति ४८१
तावदिष्टमनुमन्त्री २९५
तावदेवमनुं जप्त्वा ३६७
तासां मन्त्राणि सर्वाणि १२५
तासां रूपं च भावं च ३१७
तासां रेखाद्वयं मध्ये ५५
तासां रेखाद्वयं हित्वा ५५
तासु मुख्या दश प्रोक्ता ८५

तास्तु प्रपूजयेद् भक्त्या २३९
तास्तु साङ्गुष्ठका नाभौ १२७
तिथय: प्रतिपत्पूर्वा: ५०५
तिन्तिडीकल्पवृक्षस्य २७५
तिन्तिडीं खण्डसंयुक्तं २३०
तिर्यगूर्ध्वमध: पूर्णं ५
तिलकं कुलरूपं च ९३
तिलाज्यहोमतो देवि! ४११
तिलाश्चैव सिता मुद्गा: ३७२
तिष्ठ देवि! परेस्थाने २८०
तिस्र: कोट्यस्तदर्द्धेन ८५
तिस्र: कोट्यर्द्धकोटी च १०६
तीर्थानां दर्शने यद् यत् १०६
तीर्थानि तस्य देहे वै ३२३
तुन्दिलं गजवक्त्रं च २७६
तुम्बुरुर्नारदश्चैव २६७
तुलसीकाननं गोष्ठं ३३४
तुरीयेयं महाविद्या १९
तुरीयं तु प्रवक्ष्यामि २५
तुरीयं परमेशानि! ४०३
तुरीयं मे परं रूपं ४८७
तुरीयां कुण्डलीं मूर्ध्नि १६३
तुरीयांश: पराशक्ति: ८३
तुर्यकुण्डलिनी तद्वत् १६४
तुष्टिपुष्टिकरं देव्यै २१४
तुष्टेष्वेषु महादेवी २९६
तुष्यन्ति देवता: श्रेष्ठा: २९६
तृतीयमुपभोगेन २९
तृतीया भगमाला च २२
तृतीयेऽथ तृतीयाञ्च ६१
तृतीये सात्त्विको धर्मी ४३२
तृतीयं कथ्यते यन्त्रं ४८६
तृप्यतां सुन्दरी माता १०४
तृष्णां तां दूरतस्त्यक्त्वा ३००
तेजस्त्रयमिदं प्रोक्तं ३५६
तेजसो जलमासाद्य १७३
ते जीवन्ति च मन्त्रेभ्य: ४९५
तेजो रुद्रस्य रुद्राणी २१
तेजो रूपं जपफलं २६२
तेन चक्रं समालिख्य ४४८
तेन तद्युक्तितो मन्त्रा: ३९८
तेन तैर्हीनरूपास्तु ३९८
तेन प्रमुदितो नित्यं २६७
तेन विश्रान्तभावेन ५००
तेन षट्कोणकं कृत्वा ५५
तेन षट्कोणकं कृत्वा ५६
तेन सर्वविशुद्धि: स्यात् ३५२
तेनामृतेन दिव्येन १०४
तेनायं नृपशार्दूल ३
तेनाष्टदलपद्मस्य ५६
तेनेदमखिलं व्याप्तं ५११
तेनेदं पृथिवीक्षेत्रे २२७
तेनेयं महती विद्या १३
तेनैव चक्रभेदेन १६३
तेनैव मनुना चायं २०६
तेनैव मूलमन्त्रेण १८७
ते पुनरिह देवेशि ३४०
ते पुनर्भोगिनो मुक्ता ४८९
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले ५१३
ते भूमावेव सततं ३४३
तेभ्य आशिष आदाय ३६६
तेभ्यो विलक्षण: सोऽहं ५१६
ते वै प्रियतमा: सर्वे ४६४
तेषां कारणरूपेण ३८६
तेषां तु तत्र तत्रापि १०५
तेषां दीक्षा च यागश्च ७६
तेषां बलिं पुरस्कृत्य ३०१
तेषां मांसानि मत्स्यानि २२९

तेषां प्रियकर्तारः ४६५
तेषां समस्तरूपेण ३८४
तेषां हि कारणं तत्त्वं ४९४
तेषु सरःसु विपुलं १७६
ते सर्वे मातृकामन्त्रे १२८
ते सर्वे विलयं यान्ति ४९
तैजसेन तु पात्रेण २११
तैजसं पार्थिवं लोहं २२२
तैरेव कलशैः सम्यग् ४२०
तैरेव यजनं तस्य ३६०
तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रा ४१३
तैलाभ्यक्तं नरं नग्नं ३५३
तैश्च प्रमुदितो भोगी ३२८
तैः सहमुदितः प्राज्ञः ३३०
तोयपानं महादेवि! १२९
तोयैरभ्युक्ष्य तत् स्थानं २९२
तोयं कवित्वमाप्नोति १२९
तौ तदा समभागेन ३०५
तं तु देवा नमस्यन्ति ३११
तं द्रष्टुमपि देवाश्च १२८
तं व्यजयेन्महालक्ष्मी २६६
तं हिंसन्ति च योगिन्यः ४४
त्रयस्तेभ्यः समुत्पन्नाः ३४३
त्रयाणामपि देवानां १३
त्रयीधर्मरताः सर्वे ७
त्रयोदशदिने देवीं ६१
त्रयोदशस्वरोपेतो २५२
त्रयोदशी च दशमी ३४९
त्रयोदशीं च तत्रैव ६०
त्रयो दीपाः प्रदातव्याः २२३
त्रिकारं चम्पकापीतं ९८
त्रिकूटमेककूटेन २७
त्रिकूटमेककूटेषु २४
त्रिकूटान्ते हंस बीजं ३९५
त्रिकूटेयं महाविद्या १६
त्रिकोणमथ षट्कोण ५०४
त्रिकोणमथ षट्कोण २३६
त्रिकोणमध्यगं चक्र ५५
त्रिकोणवद् भगं ज्ञात्वा ४४३
त्रिकोणाग्रविभागस्य ६७
त्रिकोणस्योर्ध्वभागस्य ६७
त्रिकोणाख्यो नमस्कार २३६
त्रिकोणास्ते शक्तयः स्युः ५६
त्रिकोणं तत्र संलिख्य १८९
त्रिकोणं मध्यतो देवि ४०६
त्रिखण्डा भुजयोः पातु ३८
त्रिखण्डा मुद्रया तस्मात् २०१
त्रिखण्डेयं महामुद्रा २०१
त्रिचत्वारिंशद्गुणिता ५६
त्रिजातं त्रिकटूनां च २३१
त्रिजातं त्रिसुगन्धिं च २२५
त्रितत्वेन त्रिधाऽऽचम्य २९३
त्रितत्वेन त्रिधाऽऽचम्य ९०,९२
त्रिनेत्रा तरुणेन्दुस्था ६८
त्रिनेत्रा पूर्णचन्द्रस्था ६८
त्रिपुरभैरवं चैव १०५
त्रिपुरमालिनीं प्रोक्ते १८१
त्रिपुरवासिनीत्युक्त्वा १५१
त्रिपुरवासिनी देवी ३७
त्रिपुरवासिनीं देवीं १८०
त्रिपुरात्मकनात्मानं ९०
त्रिपुरा त्रिविधा पातु ३५
त्रिपुराध्यानमात्रेण ४४७
त्रिपुरापूजने शस्तं ११३
त्रिपुराप्रीतिदो होमः ४०५
त्रिपुराम्बार्णचक्रेशी २५३
त्रिपुरायै निवेद्यैव २२८
त्रिपुरा श्रीश्च मां नित्यं ३७

त्रिपुरासदृशी ध्येया ६५
त्रिपुरेति समाख्याता १३
त्रिभिः कूटैस्तदङ्गं च ३६४
त्रिभिः कूटैस्त्रिघातं स्यात् ४४३
त्रिभिस्तु त्रिपुरा बीजैः ९३
त्रिरेखं भूपुरं विद्धि ५७
त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा २८७
त्रिवलीवलनायुक्त १८२
त्रिवारमञ्जलौ वारि ९३
त्रिविधा सा भवेद् दीक्षा ३४९
त्रिविधं त्रैपुरं कर्म २९९
त्रिविधं दुःखमाप्नोति २६४
त्रिवृत्तं चन्द्रसूर्याग्नि ६४
त्रिशूलं च पिनाकं च १९९
त्रिषु धामसु यद् भोग्यं ५१६
त्रिसन्ध्यं जप्यते ब्रह्म ३१३
त्रिस्रोतः पीठमुद्दिष्टं १४५
त्रीन् यस्मात् पुरतो दद्यात् १३
त्रैपुरे चास्त्रशस्त्रे च ४२२
त्रैलोक्यजननीं देवीं २४४
त्रैलोक्यजननीं देवीं ४६६
त्रैलोक्यमरुणं ध्यायन् १६०
त्रैलोक्यमोहने चक्रे ६२
त्रैलोक्यमोहने चक्रे २४२
त्रैलोक्यमोहनं नाम ३४
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं २५०
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं २५०
त्रैलोक्यवासिनामेव ४८
त्रैलोक्यविमला पातु ३६
त्रैलोक्यं वशमायाति ४११
त्र्यक्षरीञ्च समुच्चार्य ९३
त्र्यम्बकस्तृतीयः स्याद् १९४
त्यक्त्वा आवश्यकं कर्म ३०२
त्यक्त्वा मूत्रपुरीषे च १३१
त्यक्त्वा स्वमलस्थानं २३६
त्यजेदुष्णोदकस्नानं ३७४
त्याज्यमेव तु तत् सर्वं ३७३
त्वत्पूजायां महामाये! २७९
त्वमापः पृथिवी चैव २१३
त्वमेव ज्योतिषां ज्योति २२३
त्वमेव परमा शक्तिः ४७०
त्वयि मे हृदयं चास्तु २७९
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थि ४०
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थि १२६
त्वगादि धातुनाथाभि ३९०
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां ४४८
त्वमप्येवं स्मरस्यात्मा ४९५
त्वमहं चेति यत् प्रोक्तं ४८८
त्वमेवाहं न चान्योऽसि ४७५
त्वया देव समाख्याताः ४९४
त्वया पूर्वोपदिष्टं यत् ४९७
त्वया मया जगदिदं ४८८
त्वयि प्रसादं या भूतायां २२८
त्वयैवेदं जगद् व्याप्तं ४७४
त्वल्लिङ्गेनातिशुद्धेन ४८७
त्वं च जीवैक्यसिद्ध्यर्थं ३९६
त्वं च धारय मां नित्यं ११५
त्वं जातवेदोगताः शक्तिरुग्रा ४७१
त्वं नित्या त्वमनित्या च ४७१
त्वं मातर्देहि मे भिक्षां ४३०
त्वं सावित्री च वाग्देवी ४७०
त्वं विद्याश्चैव मन्त्राश्च ४७०
त्वां दद्यां वरदे देव्यै २२८

द

दक्षकर्णे दिशेद् बालां ३६३
दक्षकर्णोर्ध्वभागे तु ११७
दक्षकोणे त्रिकोणस्य ६८
दक्षगण्डे सदा पातु ३६

दक्षजानुप्रदेशे च १३७
दक्षजानौ वृषं त्र्यर्णै १४४
दक्षनासापुटे पातु ३६
दक्षनेत्रे सदा पातु ३६
दक्षबाहुस्थितश्चार्को २८७
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री ९५
दक्षिणाचारयोगेन २८६
दक्षिणां वायवीं गत्वा २३६
दक्षिणाधः करेणैव २७६
दक्षिणाधः करे बाणान् १२१
दक्षिणावर्तवर्त्या वै २२२
दक्षिणाऽशा तदा ज्ञेया ११६
दक्षिणास्तिस्रो रेखा ४०६
दक्षिणे च शिरोभागे १४४
दक्षिणेनापि कौलेन ४६१
दक्षिणे पूजयेद् देव्या २४१
दक्षिणे बाहुमूले वै ५१
दक्षिणे मणिबन्धे तु १३६
दक्षिणे सर्वदा पातु ३८
दक्षिणैर्दधतंहस्तैः ४
दक्षिणोत्तरगा रेखा ५५
दक्षिणोत्तरगास्तत्र ५६
दक्षिणोत्तरस्त्वेवं ५५
दक्षिणोत्तरगास्त्वेवं ५५
दक्षिणोत्तरपूजायां ११६
दक्षिणोत्तरपूर्वासु ५६
दक्षिणोर्ध्वे शृणिं वामे १२१
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वे २३६
दक्षे पूर्णगिरिं चैव १९२
दण्डमष्टाङ्गमुग्रं च २३६
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ २५४
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ २४९
दण्ड्यस्याऽदण्डने पापः ३०३
दत्तात्रेयं महाभाग २
दत्तात्रेयः सुरापानात् १०२
दत्वा सम्पूज्य विधिवत् ३१८
ददाति वित्तं पुत्रांश्च २६६
ददाति साधकायाऽऽशु २७०
दद्यादयोग्यं पुरतो २२४
दद्यादाचमनीयं तु २११
दधती चारुरूपा सा ६८
दधती परमेशानि! ६८
दधती परमेशानि! ६८
दधतीं चिन्तयेद् देवीं १४०
दधानं बाहुभिर्देवं २४७
दधि क्षीरं घृतं गव्यं ३७२
दधिचन्दनसंलिप्तं ३५६
दधिसर्पिर्जलं क्षौद्रं २११
दध्यान्नासक्तचित्तां च १४१
दन्तकाष्ठमखादित्वा ९०
दम्भं मोहं तथा निद्रां ३१०
दयान्वितः सर्वजने ३४५
दयापुष्पं क्षमापुष्पं ४५२
दर्पणं दर्शयित्वैव २६६
दर्भगर्भभवा चापि २२२
दर्भशय्यागतो रात्रौ ३५३
दर्शनं चावलोकं च ३१३
दर्शनं मूलमन्त्रेण २७०
दर्शनं स्पर्शनं योने ४९१
दर्शयामास स्वं रूपं ४७०
दर्शयित्वात्मसद्भावं २६१
दर्शयेच्छ्रावयेद् देव्यै ३०३
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां २४३
दर्शितास्वासु मुद्रासु २७०
दशधा प्रजपेद् विद्यां १९४
दशपात्राम्बुजे नाभौ १२६
दशभिश्च दलैर्युक्तं ८७
दशभिः कवचं प्रोक्तं १५५

दशमीं दशमेनैव ६०
दशाङ्गाद्यैस्ततो धूपैः २०७
दशाङ्गोपासनं भक्त्या ३७७
दशारीकृत्य तेनैव ५६
दशैते नियमाः प्रोक्ता ७९
दहेत् तृणं यथा वह्नि ४८
दह्यमानस्य काष्ठादे २२१
दह्यन्ते सर्वपापानि १५०
दाडिमी कुसुमप्रख्या ८६
दाडिमीचूतपनसैः १७५
दाडिमीबीजवन्नाभ १८२
दातुं देवी चतुर्वर्गं २७९
दानभोगैस्तृतीये च ४३२
दापयेत् स्वकृतं दोषं ३४८
दिक्ष्वधर्मादिकांस्तत्र १७९
दिगष्टकस्थितं वं ठं ३६३
दिग्बन्धः स्वास्त्रया चैवं १२१
दिग्विभागेषु कौबेरी ११६
दिनेशाङ्गुलिमानेन ४६६
दिवसातिक्रमात् पुंसः ३७५
दिवसं प्राप्य भौमं च ४४८
दिवा दद्यात् पितृभ्यस्तु ३०४
दिवा निशोर्महादेवि ३१२
दिवि देवी भवेद् दृश्याः ३०५
दिव्य एव भवेत् तत्र १८५
दिव्यज्ञानं भवेत् तस्य २६६
दिव्यदर्शी दिव्यरूपी ३३२
दिव्यभाव विशुद्धात्मा २९३
दिव्यभावस्थितो विष्णुः ४६३
दिव्यमालां समादाय ३०
दिव्यलोकगता ये च ११०
दिव्यामदन्तिके नित्यं ३४३
दिव्यालङ्कारवस्त्राढ्यं ४६
दिव्यासनसमासीनं ४६
दिव्येन वाससाऽऽच्छाद्य ४१९
दिव्यैर्द्रव्यैः सुसम्पूर्णं ३५६
दिव्यो गुरुः ऋषिः सोऽय ३४२
दिव्योपकरणोपेतं १७८
दिव्यौघान् करोच्छिष्यान् ३४३
दिव्यंक्षेत्रं भवेत् तत्र १४९
दिव्यं मूर्ध्नि महच्छत्रं ४६
दिशश्च विदिशश्चैव ३०७
दीक्षयित्वा गुरुस्तां तु ४४८
दीक्षाकालं ततः प्राज्ञो ३४८
दीक्षाकालं विनिश्चित्य ३४६
दीक्षाप्रभुः स एवात्र ७६
दीक्षिता च न योषा चेत् ४४८
दीक्षोक्तविधिना पूर्वं ४१८
दीनस्यास्य दयाधारे ३५८
दीपदर्पणसंयुक्ता १०९
दीपदर्शनघण्टादि ३३१
दीपमाला प्रकर्तव्या २२३
दीपमालावलीरम्यं ३५५
दीपमालां प्रदर्श्याथ २०७
दीपवृक्षस्थिते पात्रे २२२
दीपवृक्षाश्च कर्तव्याः २२२
दीपस्थानं समाश्रित्य ३७०
दीपहर्ता भवेदन्धः २२३
दीपितेऽग्नौ हुनेद् देवि! ४५५
दीपो घटादिवत् स्वात्म ४७९
दीपं दक्षिणतो देव्याः २२३
दीर्घायुः कामभोगी च २१२
दीर्घायुः कामभोगीशो ४८
दीर्घं रेखाद्वयं मन्त्री ५६
दीव्यते देववद् देवो ३३२
दुकूल-क्षौम-कौषेयैः ४३१
दुकूल-क्षौम-कौषेयैः १७८
दुकूलैर्मार्जितं गात्रं १६९

दुग्धं दधि घृतं तक्रं ३१८
दुर्गन्धवदनो वापि ४२३
दुर्गन्धोत्सृष्टसंस्पर्श १२४
दुर्गां नमेत् पुरोभागे ११७
दुर्ग्रहाः सुग्रहा यान्ति ४९
दुर्भगा चैव या नारी २८६
दुर्मुखाय च घूर्णायै १३३
दुर्लभा पञ्चमी विद्या २१
दुर्लभा सर्वलोकेषु २७
दुर्लभं विषयासक्तैः ८१
दुर्वासनां परित्यज्य ३१०
दुश्चरित्राः स्त्रियो यस्य ४३३
दुष्टभार्या कुलाकृष्टि ४९०
दुष्टेभ्यो दुष्टचितेभ्यो ३०२
दुःखदं तत् समाख्यातं २२०
दुःखेष्वदुद्विग्नमनाः ३३८
दुःशिल्पिरचितात्वात् ११५
दुःशीला तु यदा नारी ४३७
दूर्वांकुरं तथा प्रोक्तं २१८
दूर्वार्पणं शिरो देशे २६५
दूषणीयं सुरापानं ४५८
दूषणं नास्ति देवेशि! ४५८
दूषिता ब्रह्मणो मन्त्राः १०
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् १२९
दृशे विश्वाय मार्तण्ड ९६
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु ४७८
दृष्ट्वा दुःस्वप्नकं चैव ३५४
देव एव यजेद् देवं १२३
देवकन्यासहस्रैस्तु १६८
देवकीसूनुना चेयं ७१
देवतागुरुमन्त्राणां ३७५
देवतानामृषीणां च २६५
देवतानां स्वबीजं तत् १९९
देवता परमेशानि! १२४
देवताभवनैस्तुल्ये ३३१
देवताभावरहितो ४५९
देवताभेदतः सन्ध्या ९४
देवतायतने पुण्ये ३३१
देवतायतनं कूलं ३३४
देवताश्च ग्रहा नागा ३१
देवताः प्रतिगृह्णन्ति ३३१
देवताः शक्तिरित्याहुः ३०१
देवतीर्थेन देवेशि! ११७
देवतेयं समुद्दिष्टा १२५
देवत्वं नो भवेद् यस्मात् २९३
देवदारुवने पूर्वं ९७
देवदेव जगन्नाथ! २१
देवदेव जगन्नाथ! ४
देवदेव महादेव! ३४
देवपत्न्यास्तथा नागा ३१५
देवमानुषगन्धर्वा २३४
देवमेव यजे चाहं १८७
देवलोके सदा पातु ३९
देववद् विहरेन्नित्यं १८४
देववद् विहरेल्लोके ३४०
देवा अपि यजन्त्यत्र ४२५
देवाधारो ह्यहं देवो १८७
देवान् पितॄन् ऋषींश्चैव १०४
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य ३५५
देवांस्तत्र विजानीयात् ३३१
देवाः सर्वे नमस्यन्ति १४९
देवि पञ्चात्मकं सर्वं २१
देवीक्षेत्रं कामरूपं ३३६
देवीदेहो यथा देवि! ३९०
देवीपादाम्बुजद्वन्द्वे २०४
देवीपीठे महापुण्ये ३३२
देवीपूजा तथा शस्ता ३३६
देवीप्रीतिकरं ताम्रं १८८

देवीप्रीतिकरं प्राज्ञे २१९
देवीप्रीतिकरं वस्त्रं २१३
देवीमुद्दिश्य पुरतः २६७
देवीलोके चिरं स्थित्वा २३१,२२६
देवीलोके समायान्तं २६८
देवीं कामेश्वराङ्कस्थां २००
देवीं परां समालोक्य २८१
देवेन्द्रवन्दितां देवीं १४२
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत २३१
देवेशि! भक्तिसुलभे २०१
देवैः सम्मानितो मानी ३३२
देवं कामेश्वरं तत्र १९९
देव्यस्तथा समुत्पन्ना ६९
देव्या नित्योदिता पूजा ७०
देव्याः पुरस्क्रियारम्भः ३६९
देव्याः पूजा समाख्याता ७२
देव्याः सन्निधिरत्र स्याद् ३३५
देशकालानवच्छिन्नां १६४
देशानां व्यवहाराणि ४२८
देशिकानुग्रहेणैव ३४९
देहचक्रं समापाद्य ४५२
देहत्यागेऽशुनो यस्मात् ४२७
देहधर्माधिकारान्ते २७८
देहसौन्दर्यकाले तु ३९
देहसंस्थित इत्युक्तः ५१०
देहस्था समरे पुंसां २८७
देहान्मम विभिन्नत्वात् ४८०
देहात्मनो जन्म जरा
देहाद् भिन्नः कथं ह्यात्मा ४८१
देहाद् भिन्नः शिवो देही ४७८
देहाभिमाने गलिते ८३
देहिनाममृतानन्द ४०१
देहेन्द्रियगुणान् कर्मा ४७८
देहं त्यक्त्वा यदा जीवो ५११
देहं निरामयं विद्धि ४६७
दैत्यानां नाशनार्थाय ८
दैनन्दिनमतो नित्यं २९९
दैवी कला भवेत् तत्र ३२३
दैवी कला भवेत् तत्र ३११
दंधं ज्येठां (च) करौ दक्षे १३७
दंष्ट्रिणीमुग्ररूपाभां च १४०
द्यकारं चिन्तयेद् योगी
द्यावान्तरिक्षभूशैल १५०
द्रव्यदोषहरा देवी १९२
द्रव्यसंशोधनं कृत्वा ३२०
द्राक्षाफलं समग्रं स्याद् ४१२
द्राक्षाभिर्लक्षहोमेन ४१०
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभि १७५
द्रुतहेतसमप्रख्यं ८७
द्रोहिणस्तस्य नश्यन्ति ४१७
द्वन्द्वभावं प्रकुर्वद्भिः १७६
द्वयोरभ्यासयोगेन ८५
द्वयोरेकतराद्वैत ४२७
द्वयोः समरसाकारः ४९९
द्वात्रिंशदङ्गुलं कुम्भं ३५६
द्वापरे त्वग्गताः प्राणाः ४२५
द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ १४४
द्वार्षु विद्रुमदेहल्या १७७
द्विगुणं रतिकाले स्यात् ४६६
द्विजन्मना जैमिनिना ९
द्विजातीनां च संस्कारो १०५
द्विजान् देवान् गुरून् भक्त्या ३६९
द्विजिह्वो रमया युक्तः १३४
द्वितीयेन द्वितीयाश्च ६०
द्वितीयं कथ्यते देव! ४८६
द्विधा च मातृका मन्त्रैः १२९
द्विनेत्रा द्विभुजा एते ३४३
द्विभुजां स्वर्णगौराङ्गीं २४४

द्विविधं चैव तत् पीठं ४४३
द्वीपान्तरसहस्रेषु ४५०
द्वेषयेद् द्विष्टमन्योन्य २८६
द्वैतभावे महेशानि! ४५९
द्वैतभावं च ते माऽस्तु ३६५
द्वैतान् पशून् विजानीया ४६०
द्व्यक्षरं त्र्यक्षरं वापि ३६४
द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे १२६
द्व्यहं वाथ त्र्यहं वापि ३२४

ध

धत्तूरकाष्ठयोगेन २८६
धनप्राणो धनात्मा च ३२८
धनसञ्चयकारी च ३४०
धनाधिपः कुबेरोऽपि ३४
धनानि शीघ्रं ग्रसति २६४
धनुर्मोहविधौ पातु ४०
धनेन धननाथः स्यात् ३२४
धन्या च जननी तस्य ३२३
धन्या चानुगृहीतास्मि १०३
धरण्यां दुःखसम्भूति ११३
धरण्यां वस्त्रसंयोगाद् ११४
धारायुक्तं वारिपात्रं ३५१
धर्मकामार्थमोक्षश्च २२९
धर्ममपि त्यजेत् साधु २९९
धर्माधर्मकलास्नेह ४५५
धर्माधर्महविर्दीप्ते ४५५
धर्मार्थकाममोक्षाणां २१०
धर्मार्थकाममोक्षार्थं २१७
धर्मार्थकाममोक्षेषु ३५
धान्यं चाप्यखिलान् कामान् २६६
धारणं प्राणमरुतो ८०
धारयन्त्योत्पलं दक्ष ७३
धारयेत् पूरितं योगी ८०
धारयेद् दक्षया मुष्टे १६२
धारिणी मालिनी चैव ४१५
धिया यदक्षरे श्रेणी २६०
धिषणेन तथा प्रोक्तं ८
धीकारं चिन्तयेच्छुक्लं ९९
धीमास्तत्रैव दीक्षेत ३६१
धूपयित्वा ततः केशान् ३१८
धूपामोदं प्रदीपांश्च २६५
धूपैः प्रधूपिता देवी २६६
धूपैः सुधूपितं कृत्वा ४१९
धूमागारे चान्धकारे ४२५
धूलिकर्दमसंयुक्ता १०८
धृतरक्तोत्पलामन्यां २७६
धृतिः शान्तिस्तथा ऋद्धिः २८
धेनुमुद्रेयमाख्याता २०३
धैर्याकर्षणरूपा तु ३८
ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा १६४
ध्यात्वा पुरुषशार्दूल ९९
ध्यात्वा प्राणिवधं पापं १००
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति ५१४
ध्यात्वा यष्ट्वाऽथवा देवि ४४४
ध्यात्वा शिवं च सहजं ५११
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि २८४
ध्यानमात्रं मनः कृत्वा ३८१
ध्यानमानन्दरहितं ४३९
ध्यानयोगात् परं सिद्धा १७१
ध्यानयोगादहं सिद्धो १७१
ध्यानयोगाद् भवेत् सिद्धो १७१
ध्यानयोगं प्रवक्ष्यामि १७१
ध्यानयोगं महादेव! १७१
ध्यानयोगेन मनसा ४५०
ध्यानं कृत्वा तु सुन्दर्य्याः ४४९
ध्यानं पूजा जपश्चैव ३०९
ध्यानं पूजा जपो होम ३२६
ध्यानं पूजा जपं चैव ४९०

ध्यायेच्च सममत्यर्थं २७५
ध्यायेच्छान्तं सुरश्रेष्ठ! ९८
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवि! ३८०
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवि! ४०३
ध्यायेत् कुण्डलिनीं नित्यं १६३
ध्येयो देवस्तदा विष्णुः २७३
ध्वनिना शब्दभेदेन

न

न कदाचिद् भवेत् सिद्धि ३४६
न कर्ता पुरुषो देवि! ४६१
न कर्मणा न प्रजया धनेन ५१३
न कालस्य वशं गच्छे ४९
न कुर्याद् गुरुणा सार्द्धं ३४६
न कुलांशोऽग्निमारूढो ४२०
नक्षत्रविग्रहाज्जाता ३९०
नक्षत्रैश्च तृतीयः स्यात् १३१
नखदन्तक्षतादीनि ४९१
नखदन्तक्षतान्यत्र ४४३
न च तीर्थफलं प्रोक्तं १०२
न च वायुभिराच्छन्ना १०८
न चाकाशो न शब्दश्च ८२
न तत् तुल्यं तथा राज्ञां ४३३
न तस्य दुर्गतिर्देवि! ४९
न तस्य पूज्यो लोकेऽस्मिन् १४८
न तस्य विघ्नो भवति ४९
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति ३३६
न तेन व्यवहारोऽपि २२३
नत्व विजयते लोकान् २३४
न त्र्यङ्गुलात् समुच्छ्रायं ११३
नत्वा शिष्येव सानन्दा ४९४
न दद्याद् भास्करायार्घ्यं १०६
न दीक्षितो विशेज्जातु ११३
नदीनदसमीपे च ३२९
न दीपस्य तु दीपेच्छा ४८०
नदीभिर्नदराजैश्च १६८
न दुष्यति मनो येन ४२४
न देयं कवचं गुह्यं ३५
न देयं परशिष्याय ४३
नद्यादौ विधिवत् स्नायात् ९२
नद्यां समुद्रगामिन्यां ३७८
न ध्यानं न च विन्यासो ३८१
न नमेद् वा गुरून् भक्त्या ३१०
न निन्देद् दक्षिणं वामं ३६०
नन्दिकेश्वर एतद् वै ६
नन्दिकेश्वरमाहूय ७
न न्यूनैर्नाधिकैः कार्या ३७१
न पत्रमासनं दद्यात् २०९
न पापैर्लिप्यते देवि! ४९
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो ५१६
नपुंसकात्मकं तत्तु ४२७
न पूजयति चेत् कान्तां ३१६
न पूजयेत् तथा न स्यात् ३२४
न पूजाफलमाप्नोति २१७
न बहु प्रलपेद् वीरो ४२९
न भयं विद्यते तस्य १५०
न भवेत् सूतकं तस्य १०२
न भूमिरापो मम नास्ति वह्नि ५१६
न भूमौ वितरेद् धूपं २२१
नम इति प्रविन्यस्य १५९
नम इत्यत्र बन्धे तु १५२
नमनं मानसं देव्या १७०
नमनं मानसं प्रोक्तं २३७
नमस्कारश्च विज्ञेय २३५
नमस्कारेण तुष्यन्ति २३४
नमस्कारेण दीर्घायु २३४
नमस्कारेण लभते २३४
नमस्कारेषु जानीयाद् २३६
नमस्कारेषु सर्वेषु २३५

नमस्कारो महायज्ञः २३४
नमस्कारं न कुर्वीत १४८
नमस्कुरु महादेवीं २३४
नमस्ते जगतां मातः ४७१
नमस्ते भगवन् नाथ ७५
नमस्ते भगवन् नाथ ३६५
नमस्याः साधकेन्द्राणां ३१७
न मनो नैव बुद्धिश्च ८२
न मिश्रीकृत्य दद्यात् २२३
नमुच्याया महादैत्याः ६
न मृत्पात्रगतं कुर्यात् २१७
नमोऽजाय त्रिनेत्राय ३५३
नमोऽन्तमर्पयेत् कुन्दं २०६
नमोऽन्तमासनं दद्यात् २०६
नमोऽन्ते वारासी प्रोक्ते २०६
नमोऽन्तं च तथा धूपं २०६
नमोऽन्तं पादयोः पाद्यं २०६
नमोऽन्तं हृदये ङेन्तं १५५
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं ७६
नमः स्वाहा वषट् वौषट् १५५
न यथेष्टासनो भूयात् ११४
नयने नासिकाप्रान्ते ४५१
न युक्तमन्यथापाद ११५
न योगेन न यन्त्रेण ८५
न योगो न नभसः पृष्ठे ७८
नरकाम्बुनिधौ शक्ति ४५९
नरकाय महादेव्याः ४२५
नरयोनिं चतुर्व्यूह १५१
न रुक्षा नातिनीचा वै १०८
नरेन्द्रं नरशार्दूलं ३११
न रोगास्तत्र जायन्ते ४९
न वक्तव्यं त्वया किञ्चित् १५
नवमे नवमीं देवीं ६१
नवमे विश्वतेजा हि ३८२
नवयौवनसम्पन्नां २८४
नवरत्नमये द्वीपे १२१
नवरत्नसमाक्लृप्त १७७
नवरत्नसमाबद्धं १७८
नवरत्नसमायुक्ता २१५
नवरत्नैर्महेशानि! ४१६
नवरेखास्तथैवान्या ५६
नवरेखास्तथैवान्या ५६
नवलक्षप्रमाणं तु ३८२
नवलक्षं जपेद् विद्या ३८१
नवलक्षं प्रजप्त्वाऽपि ४४
नववर्गसमुत्पन्ना ४१६
नव स्थानानि कथ्यन्ते ३८२
नव स्थानानि मन्त्रेण ३८२
नवानां नवनामानि ३४३
नवावरणशक्तीनां १७०
नवावरणशक्तीनां ६९
न विना ब्राह्मणं मुच्येद् ९७
नवीननीरदश्यामं २७६
नवैव परिजप्याथ ३८३
न शक्नोमि प्रभावं हि ५१
न शक्यते महेशानि! ५७
न शस्तं मारणं कर्म ४२७
न शिवेन विना शक्ति ४८४
नश्यन्ति न्यासमात्रेण १५०
न स्नानं न तथा पूजा ४४७
न स्वयं छेदयेद् देवि ४२६
न हि गन्धो न रूपं च ८२
न हि वैकर्तनं ज्योति ५०१
नागः कूर्मोऽथ कृकरो ३९०
नागकेशरपुष्पैर्वा ४०५
नागगन्धर्वदेवीनां २५०
नागलोकसन्धिभूमौ ३३०
नातः परतरं मन्त्रं १२८

नाथः कामेश्वरस्तत्र ३०७
नाड्या पिङ्गलया चैवं ८०
नाथात्मके पदं पश्चात् १५७
नादबिन्दुकलायुक्तं २४४
नादबिन्दुकलायुक्तं २४७
नादबिन्दुकलायुक्तं २४२
नादबिन्दुकलायुक्तं २५
नादबिन्दुकलायुक्तं २४३
नादबिन्दुकलायुक्तं १३८
नादबिन्दुकलायुक्तं १५३
नादबिन्दुकलायुक्तं १०६
नादबिन्दुकलायुक्तं १५३
नादबिन्दुकलायुक्तः ४२०
नादबिन्दुकलायुक्ता १८९
नादबिन्दुकलायुक्तो ३२
नादबिन्दुस्तदग्रे च ३९२
नाद्यस्य विहितं तेन २२७
नाद्राक्षं सम्यगिष्ट्वाऽपि २
नाधिके नैव च न्यून ३२७
नावयोर्विद्यते भेदो ४८४
नानाकुसुमसौरभ्य ४३१
नानाकुसुमसौरभ्य १७९
नानाकुसुमसौरभ्य ४१८
नानाजातिषु सम्भूतां ४४०
नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैः ४१२
नानामङ्गलवाद्यैश्च ३५५
नानारत्नविशोढ्यं १७७
नानारत्नांशुकोद्बद्ध १७८
नानारत्नान्नपानेन ३०
नानालङ्कारभूषाद्यै ३१८
नानाविधानि पेयानि २३०
नानाविधैर्विवेकाद्यै ४९२
नानाविधैस्तु कुसुमै ४१५
नानाविधैस्तु नैवेद्यै १७०
नानाविधोपहाराणि ३१२
नानावैदग्धिचातुर्यं ३११
नानावैदग्ध्यकुशलाः ३१७
नानेन सदृशः कश्चित् ४९
नानोपाधिवशादेव ४८२
नान्यत् परतरं देवि! २२
नान्यत्र पूजयेद् देवीं ४२२
नान्यत्र वै भवेद् व्यक्तो २९६
नान्यं मध्ये प्रयोक्तव्यं ३७२
नाभिदेशे प्रविन्यस्य १५२
नाभिदेशे समाख्याता १५४
नाभिपद्मे त्रिकोणे च ३९२
नाभिमध्ये स्थितं जीवं ५११
नाभिरन्ध्रं चितं ख्यातं ५११
नाभिस्थो निष्कलं ज्ञात्वा ५११
नाभिस्थसूर्यबिम्बाभं ३८२
नाभिस्थः सर्वकालेषु ५११
नाभेश्चरणपर्यन्तं ४४१
नाभौ त्रिपुरसिद्धाऽव्यात् ३७
नामपर्यायतः प्राप्तं ३४३
नामभेदादहं लोके ३४३
नामाकर्षणरूपाऽव्याद् ३८
नाम्नः शतगुणं स्तोत्रं ४३
नायिकां तत्र सम्पूज्य २५१
नाराचमुद्रया पश्चाद् २००
नारचैर्वीरिभिर्वा स्याद् ११४
नाराधिता मया यस्माद् ३२
नारायणोऽस्य ऋषिः प्रोक्त १३१
नारायणं प्रपूज्याऽथ ६६
नारिकेलजलं क्षौद्रं २१२
नारिकेलफलं चैव ३७२
नारिकेलस्य खण्डं तु ४११
नारिकेलोद्भवं तत्र २२५
नारिकेलं कपित्थं च ३१८

नारिदोषोऽत्र देवेशि २८३
नारीणां मङ्गलाशीभिः ३५५
नारीणां मृतवत्सानां ४८
नारीणां विप्रियं कृत्वा ४२४
नारी शूद्रोऽथवा व्रात्यो ९८
नार्चयेत् कलिकाभिश्च २२०
नार्योऽमङ्गलशंसिन्यः ४३३
नार्यो वश्या विशेषेण २७
नाशाय स एव भावस्तु ४३२
नाशयेत् पानमात्रेण ३५२
नाशयेत् पूजनाद् देवि! २२७
नाशयेत् सर्वपापानि १६५
नाशिष्याय प्रदातव्यं ४०३
नासागण्डौष्ठदन्तेषु १२६
नासाग्रं चैव नाभिं च ५१०
नासादिरन्ध्रसुखदः २२१
नासाध्यं वर्तते तस्य १८४
नासामाश्लिष्य तोयेन ९४
नासिकारन्ध्रमार्गेण ३९९
नासिकावायुनिःसारात् २०१
नास्तिकाय कुशीलाय १४
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति १६१
नास्ति पुरस्क्रिया तेषां ३११
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि ४८
नाहो न रात्रिर्न सन्ध्या १७२
नाहं देहो न च प्राणो ८२
नाहं पृथ्वी न सलिलं ८२
निक्षिपेत् परमेशानि! १९०
निक्षिप्य लोहितैर्देवि! २२५
निगदेन तु यज्जप्तं २६१
निगदेनोपांशुना वापि २६०
निगर्भोऽपि च देवेशि ३८८
निजकान्तां समानीय ४४८
निजगेहे सदा यस्तु ३२८
निजदेहाख्ययन्त्रं तु ३३८
निजभावे सदा तिष्ठेद् ३३८
नितम्बबिम्बद्विरद १८३
नितम्बबिम्बविध्वस्तां ४५०
नित्यनैमित्तिकपरः ३२६
नित्यपुरस्क्रियायुक्ता ३११
नित्यमभ्यासयोगेन २९३
नित्यमावाहयेत् तत्र ३३१
नित्यमेकाक्षरं ब्रह्म २४
नित्यमेवार्चनं देव्या ३२६
नित्यहोमो मया प्रोक्तः ४०९
नित्याचारपरो मन्त्री ३२६
नित्याचारमनादृत्य ३२६
नित्याचारविलोपी यः ३२६
नित्यानन्दमयं धाम १७३
नित्यानन्दवपुर्देवी १७३
नित्यार्चायां च दीक्षायां ३१६
नित्याषोडशरूपाणि ३४३
नित्या सा सुखरूपा च २२
नित्यं चानङ्गरेखाऽव्याद् ३८
नित्यं जपं करे कुर्याद् २५७
नित्यं त्रिसवनस्नानं ३७३
नित्यं नैमित्तिकं कर्म २९९
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात् ४०५
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात् ३७६
नित्यं पातु महेशानि! ४०
नित्यं यस्तु पठेद् ४८
नित्यं सात्त्विकमेवाऽत्र २९९
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा ८२
निद्राकाले जपेद् यस्तु ३१२
निद्राकालं प्रवक्ष्यामि ३१२
निधाय पुरतो दद्यात् २१०
निधाय पुरतो मालां २५८
निधाय भद्रपीठे च ४२०

निधायोर्ध्वे विशेत् तत्र ४३१
निन्दकाय कुशीलाय ४४
निन्दाद्रोहादिकर्तृणां ३६०
निन्दितेष्वपि मासेषु ३४८
निन्दितश्रावणश्चैव ३४८
निमज्ज्य बिन्दुगे धाम्नि १२१
नियतमग्निहोतृणां ३८३
नियतान्यपि कर्माणि ३७८
नियोजयेन्महेशानि! २६३
निरर्थकानि तानि स्युः ३७८
निरस्तसर्वसङ्कल्प ३९३
निराच्छादं समालोक्य २३२
निरानन्दै रथानन्दै ३४१
निरामये शरीरे तु ४२४
निराशाः पितरो यस्य ३०१
निरासनः शयानो वा ३७४
निराहारव्रतं देवि ४२५
निरीश्वरेण वादेन ९
निरुपायकृता दीक्षा ३४९
निगदेन शरीरेण ४२५
निर्गमय्यातिदीप्ताभां २०१
निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो ४८०
निर्जनश्चात्मशुद्धिश्च २७०
निर्जने चातिशुद्धे च ३३१
निर्जने शुद्धदेशे च ४५१
निर्दहेत् सर्वदुःखानि ९८
निर्दहेत् सर्वपापानि १००
निर्दशं मलिनं जीर्णं २१३
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारः ३४४
निर्धनो धनमाप्नोति २८२
निर्धूमशान्तसम्बुद्ध ३५१
निर्बलास्त्वङ्गहीनाश्च ९
निर्बोधप्रीतिचित्तो न २६२
निर्भयत्वं च सर्वस्माद् ३६१
निर्मञ्छमं च सिद्धार्थै २६५
निर्मञ्छ्य कामबीजेन १२३
निर्मञ्छ्य कामबीजेन २९०
निर्मञ्छ्य मोलिकैर्दिव्यैः २६८
निर्मलं धारयेद् वासः ४२९
निर्माल्यं शिरसो धार्य २९०
निर्लेपं निर्गुणं शुद्ध १८४
निर्लेपं निर्गुणं शुद्ध ४३१
निर्लेपं निर्मलं शान्तं ४६
निर्वर्त्य विधिना देवि! ४२०
निर्विकल्पस्य देवेशि! २२६
निर्विकल्पो यदमद्यं! २२७
निर्विकारो निराकारो ४८०
निवर्तस्व महादेव! ११
निवसन्ति ततस्तेभ्यः ३४३
निवृताखिलचिद्वृत्तिः १७२
निवृताखिलचिद्वृत्तिः ४३१
निवृत्तिकाले च पुनः ४४४
निवेदयेत् सदा भक्त्या ३०६
निवेदयेत् पुरोभागे २२३
निवेदितं तु तत्प्रीत्यै २९८
निवेश्य सादरं देवि ३६३
निशाचरगणानां च ४७
निशाः षोडशसंयुक्ताः ६१
निशीथे पातु वाराही ३७
निश्चयं मुक्तिमाप्नोति ४३९
निश्चलं पवनं कृत्वा ४६७
निष्कलत्वं शिवे बुध्यात् ३८८
निष्ठीवनं वरं शूक ४२८
निष्पीड्य गृह्यते योऽसौ २१५
निष्प्रपञ्चो यदा देवि! ४५५
निष्प्राणदेहवत् कार्य ३९८
निष्फलं तस्य तत् कर्म ३२६
निःसन्देहं महातन्त्रं १२

निःसरन्ति यथा नित्यं ६९
निसर्गदुर्गमः कौलः ४८८
निःसारमसदाद्यन्तं ४९२
निःसेतुं च यथातोयं २६३
निःसंज्ञसुन्दरीं देवीं ३८४
निःसंशयास्मि देवेश! १०३
निःस्पदेन्द्रियवान् यस्तु ४३०
नीचतां कल्पते देवि! ४७८
नीलाञ्जनचयप्रख्यं २७५
नीलाभं चिन्तयेत् कूर्म १७४
नीलोत्पलदलश्यामं १००
नीलं च क्रमतो विद्यात् १८९
नूतनं गात्रसुखदं २१४
नूतनं नेत्ररम्यं च ३५६
नूपुरैर्विलसत् पाद १८३
नूपुरौ च ततो दद्याद् १६९
नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च ४५३
नृत्यसङ्गीतनिरतैः १७८
नृत्येषु गीतनियता ३०३
नृपाणामङ्गनानांनां च ४३५
नेकारं तु मुखं पूर्व १००
नेत्रत्रयं च वौषट् च १५५
नेत्रयोर्नसि विन्यस्य १५७
नेत्ररम्यं यथा चक्रं ५४
नेत्रवक्त्रं न्यसेत् १२५
नेत्राञ्जनमकृत्वैव ९०
नेत्राञ्जनं निवेद्याथ २०८
नेत्राञ्जनं विधायैव ९०
नेत्राह्लादकरः स्वर्चि २२२
नेत्रे वज्रधरः पातु ३६
नेत्रेषु रञ्जनं कृत्वा १६९
नेत्रैस्तु पञ्चदशभिः ३
नेपालं च महापीठं १४५
नेहापि् लभते सिद्धिं ४२६
नैकट्यावस्थितित्वं च २०३
नैकवारं समश्नीया ४२४
नैकवासा जपेन्मन्त्रं २६२
नैतत् परतरं गुह्यं ३५
नैतद् द्विहस्ततो दीर्घं ११३
नैमित्तिकार्चनं चैव ३७३
नैमित्तिकं तज्जानीया २९९
नैरन्तरविधिः प्रोक्तो ३७५
नैव त्वमपि हे देव! ४८७
नैव दानफलं तस्य १०२
नैव निर्वापयेद् दीपं २२३
नैव पर्युषितैः पुष्पैः २१७
नैव विसर्जयेत् तां तु ६१
नैव शक्नोमि निर्णेतुं ४९८
नैवार्चां कुरुते मन्त्री ३६८
नैवेद्यकादिकं यत्तु ११२
नैवेद्यादि स्वयं धृत्वा ११२
नैवेद्यादीनि सर्वाणि २९२
नैवेद्येन लभेत् स्वर्गं २२९
नैवेद्यं च ततो दद्याद् २०६
नैवेद्यं दक्षिणे वामे २२४
नैवेद्यं देहि नितरा १७०
नःकारं रक्तवर्णं तु १००
न्दकारं वह्निदीप्ताभं ९८
न्यसेत् तार्तीयबीजान्ते १५९
न्यस्तव्या कण्ठदेशे तु १५३
न्यस्तव्यः परमेशानि! १३४
न्यासमन्त्रस्य विद्याया ३९५
न्यासविधिं शृणु प्राज्ञे! १२३
न्यासस्तदात्मको भूत्वा १२३
न्यासं विना जपं प्राहु १२३
न्यासः सम्मोहनाख्योऽहं १६०
न्यूनातिरिक्तकर्माणि ३७८
न्यूनातिरिक्तदोषाणां ३६७

न्यूनं वा तदधः प्राणाः ४६६

प

पक्वान्नमतिमिष्टं च २३०
पक्वान्नैरतिमिष्टैश्च ३६६
पक्षतो मासतो वापि २६४
पंक्तिच्छन्दस्तथा प्रोक्तं १२४
पञ्चकूटान्विता विद्या २४
पञ्चकूटं न्यसेन्मन्त्री ३०
पञ्चगव्येन तद् गेहं ३५२
पञ्चतत्त्वात्मके देहे २९६
पञ्चदशाक्षरीं पश्चाद् १८,१९
पञ्चदशाक्षरेणैव ६०
पञ्चदेवात्मकं पञ्च २१
पञ्चपञ्चाक्षरीं विद्यां २४
पञ्चपञ्चाक्षरीं विद्यां २३,२१
पञ्चपञ्चात्मकं देवि! ५०६
पञ्चपात्रं भवेन्मध्ये १९६
पञ्चप्राणमनोबुद्धि ४८२
पञ्चभिश्च तथा षड्भि ३८६
पञ्चभूतमयं विद्धि ४७७
पञ्चभूतमयं विश्वं ३८५
पञ्चमं तु विशेषेण २९
पञ्चं प्रथमं पुण्यं २९
पञ्चमादि परामर्शः ४२८
पञ्चमाभ्यासनाद् वीरः २९
पञ्चमी या च सर्वेषां ४७४
पञ्चमे पञ्चकामः स्यात् ४४४
पञ्चमे पञ्चमीश्चैव ६१
पञ्चरत्नैर्महादेव्याः १८८
पञ्चवक्त्रं महाकायं ३
पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां १४२
पञ्चविंशतितत्त्वेन २४
पञ्चविंशतितत्त्वेन २२
पञ्चशुद्धिविहीनेन १२०
पञ्चसप्ततिपूर्वाणि २४
पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे ३४९
पञ्चाङ्गुलीभिरेव २३३
पञ्चानामप्यलाभे तु ३६१
पञ्चानां सन्निपातं यद् ४७८
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः ४१३
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः ४१८
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः ४२०
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः ५१
पञ्चाशद्भिः शतैः कुर्या ३७१
पञ्चाशद्वर्णबीजाढयं १८०
पञ्चाशन्मातृकां विद्यां १२९
पञ्चीकृतं महाभूत ४८२
पटलैः पक्षसंख्यैस्तु ५९
पटे चित्रमये शुद्धे २९
पतङ्गकीटकेशादि ११७
पताकाध्वजसङ्कीर्णं ३५१
पताकाध्वजसङ्कीर्णा १०९
पतितानामन्त्यजानां ३७५
पतित्वा पादयोर्मूले ३६५
पतिहीना यथा नारी ४९०
पत्रं मुस्तं नखं कुष्ठं २२१
पत्रैः सर्वैर्यथालाभ २२०
पत्रेषु बिल्वपत्रं च २१८
पदगुल्फमहाकाव्य ४००
पदद्वन्द्वे च सौः पातु ३६
पदद्वयं समं सम्य ११५
पद्मद्वयधरां देवीं १७४
पद्मपत्रेऽथवा दद्या २३२
पद्ममध्यस्थितं सौम्य १८
पद्मरागप्रतीकाशां २४७
पद्मरागप्रतीकाशः ३०७
पद्मरागप्रतीकाशां १८१
पद्मस्थूलमना चाद्या २२२

पद्माक्षमालया लक्ष्मी ३७१
पद्मानि सितरक्तानि २१७
पद्मासनमिति प्रोक्तं ७९
पद्मासनं भवेदेतत् ११५
पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं ७९
पद्मासनसमासीनं २४७
पद्मासनसमासीनं २५०
पद्मासनसमासीनं ७३
पद्मासनसमासीनः ७२
पद्मासनसमासीनः ४५१
परंज्योतिः पुष्पगतं २१९
परंज्ञानमयं नित्यं ५७
परंब्रह्मात्म शक्त्यन्ते १५८
परकान्तां महेशानि ४३६
परकीयं ह्याखुदष्टं २१३
परकीयतरे तोये ३७६
परकीयांस्तथाघ्रातां २१७
परकीयं यदा यत्र ३३०
परजीवाकर्षणे पातु ३८
परतन्त्राय भक्तानां ७५
परदारपरिष्वङ्गात् ४५७
परदैवतनिर्माल्यं २९३
परमानन्दपुष्पेण ७०
परमानन्दरूपं य २२
परमानन्दसन्दोह ४६
परमानन्दसन्दोह ७३
परमानन्देन संयोज्य १६३
परमामृतपानीयं ४५२
परमामृतपानीयं १६८
परमीकरणं कुर्या १९३
परमीकरणं नाम २०४
परया अपि तत् प्राप्यं ४९७
परयान्वपि तत् प्राप्यं ४९७
परयोषा यदा भद्रे ३१७
परराष्ट्रं वशं नीत्वा ४१०
परशक्तिं पशु तस्मा ४६३
परशक्तिं समागच्छेत् ४५९
परसैन्यागमे वापि ३३९
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं १६५
परस्परविरोधेन ५०४
परस्पराद्वैतेप्सन्तौ ३०५
परहिंसाभवोऽधर्मः ४२६
पराक्रमपरो भुंक्ते ५०७
परा च कामबीजं च १५२
परा चाप्यपरा देवि! ७०
परा तु सप्तविंशत्या ४९७
परात्मजीवयोरैक्यं १२
परात्वं परमार्द्धिः स्या ५००
परानन्दमयी पूर्णा ४५४
परान्नवनिता भूमि ३४५
परापररहस्याख्या ६९
परापररहस्याख्यां ३०४
परापरायणोऽनन्तः ३०४
परापरशक्तिमये ५०४
परापरसमाख्याता ७१
परा पूर्वं च सर्वेषां १४५
पराबीजं समुच्चार्य ११४
परार्द्धास्तरणे रम्ये ४४०
परार्द्धास्तरणे रम्ये ४३१
पराः पराङ्मुखा यान्ति ४८
परितः पारिजाताढ्यं १७७
परितुष्टा न मे देवि! ४६९
परितुष्टास्मि लोकेश ४७२
परितो वेष्टितं सूत्रै ३५९
परितोष्य विधानेन ४६२
परिदधाति यत् किञ्चित् १८४
परिधाप्य दुकूले च ३६३
परिपूर्णमिदं देवि १७३

परिरभ्य तदा मूर्ध्नि ३६४
परिसमेत्य योगेशं ५१३
परिवर्त्तक्रमेणैव २४७
परिवर्त्य करौ पश्चात् २०३
परिवर्त्य करौ स्पष्टा २५३
परेण चक्रि निहितं गुहायां ५१३
परे नरकमाप्नोति ४४
परेषां गद्यपद्याभ्यां २३७
परे स्वर्गात् परिभ्रष्टः ३२५
परोपतापजं पापं १६५
पर्यंकमासनं शस्त्र ११५
पर्यंकं शक्तिपीठे तु १८१
पर्युषितं परेषां ११४
पर्वते पातु प्रबलः ३९
पर्वतं च हयं मेध्यं ३५३
पर्वसु च विशेषार्चा ४२८
पवनं धनदं चेशं १०९
पवर्गेण तथा कुम्भं १४४
पवर्गेण शनिं नाभौ १३५
पवित्रं सकलं भद्रे ४६०
पशवो दूरतस्त्याज्याः ३१०
पशुघातं तदर्थं तु ४६०
पशुपाशविनाशाय ४४२
पशुप्रायजना म्लेच्छाः ३३९
पशुभावं पुरस्कुर्वन् ४६४
पशुभावे स्थितो यश्च २२७
पश्चिमात् पूर्वाग्रास्तिस्रो ४०६
पश्चिमादि चतुर्दिक्षु २४०
पश्चिमोत्तररुद्रेन्द्रे ३५७
पश्यन्ति पावकारूढं १५०
पश्यन्नभीष्टमेवं च ११५
पश्यन्निव ततो देवी १६७
पश्येत् तु देवतादृष्ट्या २९३
पाखण्डगणमध्ये तु ३७
पाणिद्वयं समं सम्यक् २०१
पाणिपादयुगस्यान्तः १२६
पाणिभ्यामासनं धृत्वा ११५,११४
पातालतलविन्यस्ता ४०२
पाताले चैव मां पातु ३९
पात्रन्यासस्तस्य तस्य २९२
पात्रमन्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य ११९
पादद्वये महेशानि ३९२
पादयोर्गुह्यदेशे च १५७
पादयोर्विन्यसेत् पश्चाद् १५१
पादयोः सर्वदा पातु ३७
पादाङ्गुलीयकं सूत्रं २१४
पादुकां पूजयामीति २५२
पादुकां पूजयामीति ७४
पादुकां पूजयामीति २५३
पादोदकं पिवेद् भक्त्या २९०
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् १६८
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् ४५२
पाद्यमन्त्रं मया प्रोक्तं २१०
पाद्यार्थमुदकं पाद्यं २१०
पानार्थं मधुरं वारि २०६
पानीयं घटमध्यस्थं १३१
पापं नश्यति तत् क्षिप्र ९८
पाययित्वा च तां शक्तिं ८९
पाययित्वा पुनः पानं ४४२
पायसं शर्करापूपं २३०
पायसान्नप्रसक्तां च १३८
पायसान्नैर्वलिं तेभ्यो ३५१
पार्थिवे पार्थिवानां च ४५४
पार्वत्यै कथयामास ३
पार्श्वद्वयगताङ्गुष्ठौ १३१
पार्श्वद्वये पृष्ठनाभि १२६
पार्श्वयोः सेतुमादध्या २६३
पार्ष्णिघातकरास्फोट १३१

पाशाङ्कुशौ च दधतं २५०
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं ६८
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं ९६
पिङ्गलाख्या च यादक्षे ८६
पितरश्चेव दिक्पाला ३१५
पितामातास्वतश्चेति ४८५
पितृमातृकुलैः सार्धं २६८
पितृदेवसमः शास्ता ३२३
पितृमातृमुखान् विप्रान् २६९
पितृमातृवधात् पापा १००
पिनाकिधनुराकार १८१
पिष्टकं पायसं चैव ३१८
पीठं कोल्लगिरिं चैव १४५
पीठमुज्जयिनीं चैव १४५
पीठे तस्मिन् निविष्टस्य २४८
पीडिताः क्लेशविक्लिन्ना ४३३
पीतवर्णां महामत्तां १४१
पीतवस्त्रपरीधानं २४८
पीतवस्त्रपरीधानं २४८
पीताम्बुजासनाभान्ते १५१
पीताम्बुजासने तद्व १८०
पीत्वा कुलामृतं देवि ३९९
पीत्वा मध्यं पुरा शुक्ल २२६
पीत्वा मन्त्रो निशानाथः २२६
पुकारं चिन्तयेदेव ९८
पुच्छं तु धनहानिः ३७०
पुटाकारौ करौ कृत्वा २४७
पुटितां सर्वबीजेन १२८
पुटीकृत्य करौ शीर्षों २३५
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं ३३४
पुण्यक्षेत्रमिति प्रोक्तं ३३६
पुण्यक्षेत्राणि वक्ष्यन्ते ३३४
पुण्यक्षेत्रे महापीठे ३२९
पुण्यपापे हविर्देवि ४५५
पुण्ड्रेक्षुदण्डजातानि ४२८
पुत्रजीवोद्भवा माला ३७१
पुत्रदारादिसहितं ३५
पुत्रमित्रकलत्रादि ४३३
पुत्रायुः सुखमोक्षाणि २१०
पुनः कर्पूरयोः कुक्षौ १५७
पुनः स्वयं शिवो भूत्वा ३६२
पुनराचमनं दत्त्वा २३३
पुनरेवाकुलं गच्छेत् ३९९
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात् ५१४
पुरत्रये क्रीडति पश्य ५१५
पुरत्रयेऽत्र सञ्चिन्त्य १२१
पुरन्दरेणाङ्गिरसा ६
पुरश्चरणहीनोऽपि ३७९
पुरश्चरणहीनोऽपि ३६८
पुरश्चर्यां प्रकुर्वीत ४३३
पुरश्चर्याविधिं ब्रूहि ३६७
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे ७५
पुरस्थितं महादेवि १४५
पुरुषार्थप्रसाध्यञ्च १३२
पुरुषः प्रकृतिश्चैव ४७६
पुरा सर्वे मनुष्याद्या २९३
पुराऽप्येकादशी विद्या ३२
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो ५१६
पुलकाञ्चितसर्वांग ३४७
पुलस्तादपि पौलस्त्याः ६
पुष्पं धूपं च गन्धं च २१७
पुष्पं वा यदि वा पत्रं २२०
पुष्पं समग्रं जुह्याद् ४११
पुष्पं समर्पयेद् देव्यै २०६
पुष्पदन्तो ततः प्रोक्तं ६
पुष्परागं तथा वज्रं १९१
पुष्परागं मरकतं ४१४
पुष्पाग्रेऽहं स्थितो नित्यं २१९

पुष्पाञ्जलिं विधायाऽथ ३३७
पुष्पाञ्जलिं विना देवीं २००
पुष्पाञ्जलित्रयं देव्यै ४५
पुष्पाञ्जलिरभ्यर्च्य २५४
पुष्पाञ्जलिमथैतेभ्यो ११०
पुष्पाभावे यजेत् पत्रैः २२०
पुष्पासवं मुखे दत्वा ४४९
पुष्पाञ्जलिमापूर्य ३५७
पुष्पैर्देवी प्रसन्ना स्याद् २१९
पुस्तकं चाक्षमालां च ६४
पुस्तकं जलमालाञ्च ६७
पुस्तकं जपमालां च ६६
पुस्तकं जपमालां च ६८
पुस्तकं ज्ञानमुद्रां च १४२
पुंभावः शिवमित्याहुः ४८४
पुंसां रूपं स्त्रियो रूपं २८
पूजनान्नहि मे प्रीति ४८९
पूजनीया विलोमेन ५८
पूजयन्ति हि ते धीरा ४६५
पूजयामीति मनुना २४०
पूजयेत् तद् गुरोर्मन्त्री ४८६
पूजयेत् ताः प्रयत्नेन ६२
पूजयेत् परमेशानि २१७
पूजयेत् सततं भक्त्या १८५
पूजयेत् सततं भक्त्या २५४
पूजयेत् साधको भक्त्या ५९
पूजयेत् साधको भक्त्या १९९
पूजयेत् साधको भक्त्या ३०७
पूजयेत् सूर्यरूपं तं ११९
पूजयेदर्द्धरात्रे च ४४०
पूजयेद् गन्धपुष्पा वै ४८६
पूजयेद् दिक्षु कुम्भेषु ४१५
पूजयेन्मण्डलं देव्या २८४
पूजयित्वा ततो मालां २५८
पूजयित्वा महादेवीं ४६
पूजयित्वा विधानेन २७५
पूजयित्वा विधानेन २५३,१०६
पूजाकर्मणि सान्निध्य २०२
पूजा च कीदृशी कार्या ४३८
पूजा ज्ञानमयी प्रोक्ता ४५५
पूजा तपोऽर्चना होमः १५७
पूजादौ दर्शितास्वासु २७०
पूजाधाराणि देवेशि ४२२
पूजा ध्यानं जपो होमः २५६
पूजाफलेन दौर्भाग्यं ४३८
पूजाभागं गृहाणेमं २०४
पूजाभागं न जानामि २७८
पूजामध्ये तु यः कुर्यात् ४२८
पूजार्घ्यपात्रं नैवेद्या १८८
पूजार्हा सा तारादेवि ३२१
पूजाविधिमद्राक्षं च २७१
पूजावेद्या बहिः स्थित्वा १०९
पूजाहोमं विना चेह ४३१
पूजाहोमजपान्तेऽस्यां ४३२
पूजां यः कुरुते नित्यं ४८७
पूजां रात्रौ प्रकुर्वीत ३५१
पूजितः पशुभावश्च ४६५
पूजितं देवतत्त्वेन १०६
पूजितव्या महाभागाः ३१७
पूजितायाश्च चतुष्टाया ३१६
पूजितास्तर्पिताः सन्तु २४२
पूजितास्तु तथा देवी २५४
पूजिते गुरुपादे वै ७६
पूजोपकरणं चापि ११७
पूजोपकरणस्यापि १८७
पूजोपकरणस्येह २७०
पूजा चास्मत्कलांशेति ४१७
पूज्याः कुलवरैः सर्वै ३२१

पूज्यपूजकभावेन ३४०
पूरकं यथाशक्त्या १६२
पूरकेण समावाह्य ४५२
पूरयेत् तं महापात्रं १९०
पूर्णगिरिपदान्ते च १५८
पूर्णगिर्यालये देवि ६८
पूर्णचन्द्रनिभं वक्त्रं ४४३
पूर्णशैलं महापीठ १४५
पूर्णाहन्ता स्वभावेन ४९६
पूर्णिमा पञ्चमी चैव ३४९
पूर्णे भवसि तृष्णे च ३००
पूर्वजन्मार्जितं पापं १००
पूर्वतः पातु महिमा ३७
पूर्वत्रिकोणमध्याग्रं ५५
पूर्वपूर्वदशांशेन ३७७
पूर्वबीजे विलोमे तु १९२
पूर्ववच्च प्रविन्यस्य १४३
पूर्ववत् कामराजं च १६
पूर्ववत् परमेशानि १९०
पूर्ववदपरं कृत्वा ४१९
पूर्ववदपरं कृत्वा ३५५
पूर्ववदपरं सर्वं १४०
पूर्वसंस्थापितेनैव २१०
पूर्वाग्रा ये तु चत्वारो ५६
पूर्वादि क्रमतो देवि ३७०
पूर्वापरौ तदो ज्ञेयौ ३०५
पूर्वापरौ महापुण्यौ ३०६
पूर्वाभावे परा पूज्या ३२१
पूर्वार्जितफलं नश्येत् ३१६
पूर्वाषाढं बकारेण १३७
पूर्वाह्नविहितां पूजां ४४५
पूर्वाह्ने दीयते यत् तु ४४५
पूर्वे यद् दीयते वस्तु ३११
पूर्वोक्तन्यासमेवास्मिन् ४६
पूर्वोक्तमण्डलं तत्र १९१
पूर्वोक्तविधिना देवि ३८०
पूर्वोक्तविधिना पूजा ४५०
पूर्वोक्तविधिसम्पन्नं ३७०
पूर्वोक्तेन विधानेन ३७२,२८६
पूर्वोक्तेन विधानेन ४१९
पूषा शिवश्च त्वष्टा च १०१
पृथग्विधं तु तस्यापि ३९९
पृथिव्यादिषु भूतेषु ३८६
पृथिवी ब्राह्मणी शक्तिं २१
पृथिवीयं महादेव ४७७
पृथिव्यन्तर्गता आप ४५३
पृथिव्यादीनि तत्वापि ५०४
पृथिव्यापस्तथा तेजो २१
पृथिव्यां मानतः श्रेष्ठो २३
पृथ्वि! त्वया धृता लोका ११५
पृथ्वीबीजात् ततो वह्नि १५२
पृथ्वी सर्वांशके पातु ३६
पृष्टवान् मां महादेवि! ९७
पृष्ठदेशे सदा पातु ३६
पृष्ठदेशे सदा पान्तु ३७
पृष्ठोपरि स्थितं देवि! ३९२
पेयं चोष्यं तथा लेह्यं ३०६
पेयैर्भक्ष्यैः समायुक्ता १०९
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा २३७
पौराणिकैस्तान्त्रिकैर्वा २३५
प्रकटाज्ञाः कथं देव! २३९
प्रकटे कार्यहानिः स्यात् ४३८
प्रकाशते महातत्त्वं ३९३
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यां ४५५
प्रकाशानन्दसन्दोह ४९५
प्रकाशान्ता विमर्षान्ता ४९९
प्रकाशितं तदेवाशु ५०१
प्रकाशिनां प्रकाशाय ७५

प्रकाशोऽथ विमर्शोऽन्य: ३४३
प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य ४७९
प्रकाशो विमर्षाधीन ४९४
प्रकाश्य तव पीठे तु ४८५
प्रकृति: सर्वभूतानां ४७३
प्रकृतिर्गीयते सा तु ४६२
प्रकृतिर्गुणसाम्यं स्या ५०३
प्रकृतिविकाररूपं १८०
प्रकृतेर्हि महान्तं वै १७३
प्रकृत्या क्रियते कर्म ४६०
प्रकृत्या च गुणेनापि ३९०
प्रक्षालनाय करयो: ११७
प्रक्षाल्य परमेशानि १८९
प्रक्षेपणात् सर्वविघ्नानां १२४
प्रज्ञात्मानं वदन्त्येके ८३
प्रणमामि महादेवीं १२
प्रणमेत् परमेशानी २३४
प्रणमेद्दिष्टदेवीं च १०९
प्रणम्य परया भक्त्या ४
प्रणम्य भगवन्तं वै १०६
प्रणम्योपविशेत् पार्श्वे ३४६
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च ३५०
प्रणवान्तरितां शुद्धां ३०८
प्रणवेन द्विधा कृत्वा १७४
प्रणवो मातृका देवी ३७०
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ११५
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य २४३
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ९०
प्रणवं भुवनेशानीं १९
प्रणामोऽष्टाङ्ग एवात्र ३७६
प्रतिग्रहकृतं पापं १००
प्रतिपत्तिथिमारभ्य ५८
प्रतिबन्धत्रयं देवि ३६८
प्रतिमायां ततो देवि! ४५०
प्रतिमायां तथा वह्नौ ४२२
प्रतिलाभाभिसङ्गाच्च ४५७
प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं २५९
प्रतिष्ठां विधिवत् कुर्यात् ४१८
प्रतिष्ठितस्तथा शिष्यो ४१८
प्रतीयमानमथो य: ४९६
प्रतीच्यग्रं लिखेदेकं ५५
प्रतीशहरिं कोटि ३६२
प्रत्यक्ष: सर्वभूतानां ५११
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये २००
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये १६७
प्रत्यग्रारुणसङ्काश १८१
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यां ३७५
प्रत्यहं पूजयेद् देवं ४८६
प्रत्यहं पूजयेद् भक्त्या ४८६
प्रत्यहं साधक: कुर्यात् २५६
प्रत्याहारं धारणाख्यं ७८
प्रत्येकं कणबीजाद्या: १२६
प्रत्येकं बीजमादाय २५९
प्रत्येकं सर्ववस्तूनां २१२
प्रथमानन्दहृदयो २९
प्रथमा सा समाख्याता ७०
प्रथमे राजसो भूत्वा ४३२
प्रथमं कामराजस्य २५
प्रथमं प्रकृतेर्हंस: १९४
प्रथमं हि मयैवोक्तं ८
प्रदक्षिणं प्रणामं च २३५
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ २५८
प्रधानं तेजसो रूपं ३८७
प्रधानदेवतामूर्तौ २७९
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र ८५
प्रफुल्लकुन्दसम्मोद ३२९
प्रफुल्लकुसुमाकीर्णे ३२९
प्रमदा: परितोष्याऽथ ४२२

प्रमदाय तथा भूम्यै १३३
प्रमदा यौवनोन्मत्ता ३१५
प्रमादादपि देवेशि ४४
प्रयागं चैव षष्ठीशं १४५
प्रयाति बिन्दुभावं च ५३
प्रयत्नेन विना देवि ४३६
प्रयोगेच्छा यदा देवि! २८८
प्रलपन् वा जपेद् भावात् ३७४
प्रलयानलसङ्काशे १९६
प्रलापं भ्रंशनं हास्यं ४३४
प्रवालमाला वश्ये तु ३७१
प्रवेशं परकायस्य २८
प्रवृद्धस्य खगेन्द्रस्य ९
प्रशस्तगन्धमुक्ता तु २१५
प्रसङ्गात् कथितं देवि २८९
प्रसङ्गात् कथिता देवि ४६८
प्रसन्नं शान्तचित्तं च ३६३
प्रसन्नको यदा विष्णु ८
प्रसन्नवदना सर्वे ३४३
प्रसन्ना खलु देवानां २२८
प्रसन्नात्मा तथा शिष्यो ३६६
प्रसन्ना तु परा देवी ३६५
प्रसन्नां तां समालोक्य ४७०
प्रसन्नात्मा जपेद् विद्यां ३६४
प्रसन्नो यदि मां देव ४
प्रसादयन्ति तं नित्यं २६७
प्रसादसुमुखीं देवि! २०४
प्रसादसुमुखे देवि! २५६
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं २३६
प्रसिद्धं बाह्यतो यच्च ३४३
प्रसीद करुणाधाम ३६५
प्रसीद नाथ देवेति ३४६
प्रसीद परमानन्द ४९४
प्रसूनं तूलिकां तत्र १७९
प्रसृताङ्गुलिकौ हस्तौ २०४
प्रशंससे परानन्द ४९७
प्रहसन्ती विशालाक्षी ३०५
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं १९२
प्राक्प्रत्यङ्मुखपूजायां ११६
प्रागुक्तक्रमयोगेन ९४
प्रगुक्तेन तु मन्त्रेण २४७
प्राङ्मुखो हि यजेत् ३०६
प्राचुर्यादथ भक्तेस्तु २६८
प्राज्ञेनैव सदा कार्या ४२८
प्राणधारणया देवि! ४६६
प्राणान्ते च महाभागे ३९६
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण ४२०
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण ५१
प्राणं बीजं समुद्धृत्य २५
प्राणरूपस्थितो देवि ३८७
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं ४५१
प्राणात्मा च जीवात्मा १२६
प्राणानायम्य विधिवत् ४१४
प्राणान् प्रवेशयेन्नाड्या ४६६
प्राणापानौ तथा व्यान् २३३
प्राणायामं त्तथा कुर्यात् ३७७
प्राणायामं ततः कृत्वा २००
प्राणायामं विना मुक्ति १६१
प्राणायामः स विज्ञेय १६२
प्राणायामस्तथा कृष्टि ४९१
प्राणायाम इति प्रोक्तो १६२
प्राणायामत्रयं कृत्वा १२१
प्राणायामत्रयं कृत्वा ९४
प्राणायामपरो योगी १६१
प्राणायाममिमं प्राहुः ८०
प्राणायामात् परं तत्त्वं १६१
प्राणायामात् परो योगः १६१
प्राणायामेन मुनयः १६१

प्राणायामैर्विना देवि १६१
प्राणायामैस्तथा ध्यानै १२३
प्राणायामैस्तु सन्तर्प्य २८०
प्राणाः स्वराः समाख्याता ३९८
प्राणिहिंसा न कुर्वीत ३७४
प्राणिहिंसा न कुर्वीत ४२३
प्राणोऽपानसमानश्च ३९०
प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्त ३९६
प्राणो वायुरिति ख्यात १६२
प्रातः सायं चरेन्नित्यं १६५
प्रातःस्नानं ततः कुर्यात् ९२
प्रातःस्नानं ततो देवि! ४४५
प्रातरुत्थाय पूजायां ३१७
प्रातरेव तु तत्सर्वं ४१९
प्रातरेव सदा कुर्याद् ४४५
प्रातर्होमं प्रकुर्वीत ३१२
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं २१२
प्राप्तिसिद्धिमधोभागे २४०
प्राप्नोति साधकश्रेष्ठो ३१
प्रामाण्यं चात्र स्वनिष्ठं ३५०
प्रार्थनामुद्रयपश्चाद् २०४
प्रासादे चोत्तमे रम्ये ४३१
प्रियाय हृदयान्तोऽयं ९०
प्रीतिर्मे जायते तत्र ४८६
प्रीतिं वसन्तकं चैव १०९
प्रोक्तवलीस्तु तेषां वै ३५१
प्रोक्तस्थाने समावाह्य २४५
प्रोक्ते पामरशब्दे तु ३७५
प्रोक्षणं चास्त्रमन्त्रेण १११
प्रोक्षणे तु परो मन्त्रः ४२६
प्रोक्षयेत् तेन कलशं ११९
प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं २९०
प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं १९७
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु २११

फ

फलं चास्या प्रयोगं च १३१
फलं चास्या विशेषेण २६
फलं नैव प्रयच्छन्ति ३८३
फलमात्रश्रुतिर्यस्यु २९९
फलविरहितं कर्म ३६१
फलविरहितं काम्यं ३००
फलहीना समाख्याता २२४
फलान्यत्र पक्वानि २३२
फलार्थिनीं विदित्वैव ६१
फाल्गुने मार्गशीर्षे च ३४८

ब

बद्धवीरासनो मन्त्री २६०
बद्धा वामभुजे चैव ५१
बलिदानं विना देव्याः ४२६
बलिदानं विना हिंसां ४२६
बलिदानावसाने तु २०७
बलिदानेषु विदित्वा २२९
बलिप्रदानतो देवी २८६
बलिप्रदानमात्रं तु २७३
बलिप्रियं च नैवेद्यं २३२
बलिभिस्तर्पयेत् तांस्तु ३०१
बलिभिस्तर्पितास्त्वेते २७७
बलिभिस्तर्पिता ह्येते २७२
बलिभ्यो धनमत्तेभ्यः ३०२
बलिशेषं समादाय २९३
बहवो नैव हन्तव्या ४२६
बहवो यत्र हन्यन्ते ४२६
बहिर्गतां तु वाग्रूपां ३९९
बहिर्यदि रेचनं वायो १६२
बहिर्यागविधिं ब्रूहि १८७
बहिर्वच्चक्रपूजा च १७०
बहिष्कृत्य यथास्थानं १७४
बहुकालपूजितैस्तु ४६९

बहुदुःखेनार्जितानि २६४
बहुना तु किमुक्तेन २८८
बहुनात्र किमुक्तेन १५
बहुप्रतापे चाऽऽचम्य ३७५
बहुरूपाणि देहांश्च ४६०
बह्वीनामप्यलाभे तु ३१५
बादरं जाम्बरं चैव २२५
बालकस्य तु जिह्वायां १५
बालाप्रियैश्च नैवेद्यैः ३१६
बालया योजितां कृत्वा २४३
बालाद्यं भुवनेशानी ७३
बालान्वितां विधायादौ ३६३
बालाबीजत्रयं देवि १८९
बालाबीजत्रयस्यान्ते १२१
बालार्ककिरणारक्तं १२१
बालार्ककोटिरुचिरां १२५
बालार्ककोटिसङ्काशां १२१
बालार्कमण्डलाभासां ९६
बाल्योचितं स्पृहन्तीं वै ९६
बालार्कसदृशी रम्या १०९
बाहुभिर्दशभिर्युक्तम् ३
बाहुं कृत्वा महेशानि २५२
बाह्यमन्त्रैश्च सम्प्रोक्त ९४
बाह्रेखाद्वयं देवि ५५
बाह्यादापूरणं वायो १६२
बाह्यारदशकोणे च ६६
बिन्दुशिवात्मकस्तत्र ५३
बिन्दुत्रमेण कथिता ३८७
बिन्दुत्रये महादेव ४७७
बिन्दुद्वयकुचे युग्मे ३९१
बिन्दुचक्रं वरारोहे ५८
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा ९४
बिन्दुत्रययुतैर्जातं ३८९
बिन्दुर्वेद्यस्य संस्कारो ५०५
बिन्दुश्रुतसुधाभिस्तु १६४
बिन्दुस्थां शुक्लवर्णां १४२
बिभ्रती सिद्धयो ध्येया ६४
बिल्वपत्रे महेशानि २१७
बिल्वपत्रैः समभ्वक्तैः २६८
बिल्वसर्गै ह्सौं तूर्य ३९८
बीजं गणपतेः पूर्व २५९
बीजं तद् भुवनेशान्या ४४९
बीजत्रयं त्रिधा कृत्वा ४१४
बीजत्रयमयीं बिन्दौ १६४
बीजत्रयमिदं देवि! ४१५,४२०
बीजत्रययुतां देवि ४१५
बीजत्रयेण त्रिः प्राश्य १९६
बीजद्वयं ततो विद्या १०४
बीजद्वयं समाभाष्य २४२
बीजनाशादनेकस्य ४५८
बीजपञ्चकमेतेषां १८९
बीजबिन्दुध्वनीनां च ३९०
बीजाभावेन लीनानि १७२
बीजमस्य प्रवक्ष्यामि २५१
बीजमुद्रेयमाख्याता २५३
बीजमेतत् समुच्चार्य १९४
बीजाकर्षणरूपामां ३८
बुद्बुदं चिन्तयेद् तत्र १७३
बुधं च हृदये देवि १३५
बुद्धाय नम इत्युक्त्वा २४०
बुद्धिरध्यवसायस्य ५०३
बुद्ध्याकर्षणरूपाऽव्यात् ३८
बृहत्त्वं च लघुत्वं च २८
बृहस्पतिसमो वक्ता ३२३
बृहस्पतिस्तु पर्जन्य १०१
बृहस्पतिं तथा कण्ठे १३५
बैन्दवं मातृचक्रस्य ५३
बोधिन्या बोधयेद् विद्यां ३९८

बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं ८
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा ३९९
ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् ३७१
ब्रह्मघाती स एव स्यात् २२६
ब्रह्मचारी गुरुस्तत्र ४१९
ब्रह्मचिन्ता परामोद ३०४
ब्रह्मचिन्ता परामोदी ४९३
ब्रह्मचिन्ताप्रवृत्तो यः ३२५
ब्रह्मचिन्तोद्भवानन्द ४३४
ब्रह्मणा च तथा प्राप्तं ६
ब्रह्मणोऽपि परं रूपं १२
ब्रह्मण्यर्पितचित्तानां ३१७
ब्रह्मण्याधाय चित्तं तु ४६१
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं १३
ब्रह्मदण्डी च कौमारी २८८
ब्रह्मप्रकाशकं तत् तु ४८८
ब्रह्मरन्ध्रस्थिते पद्मे ७३
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः २३७
ब्रह्मरन्ध्रे तथाधारे १६०
ब्रह्मरन्ध्रे तुरीयं च १५९
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु ३५
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु ३७
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे ७६
ब्रह्मर्षिभिर्मुदा तत्र ३३१
ब्रह्मविद् ब्रह्मभूयाय ८५
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्न १८३
ब्रह्मविष्णुशिवाख्यास्ता ६२
ब्रह्मशिलासमारूढां १७४
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां ४८८,२२०
ब्रह्मस्वरूपिणी पश्चात् २५४
ब्रह्महत्या सुरापान २२७
ब्रह्महा स तु विज्ञेयो २९०
ब्रह्मा कमण्डलुधर २४२
ब्रह्मा च गगनं शक्रो ३२
ब्रह्मा च मुनिभिः सार्द्धं २२७
ब्रह्माणं चिन्तयेत् तत्र ६४
ब्रह्माणं वास्तुपुरुषं ११०
ब्रह्माणीप्रमुखाः सर्वा ६३
ब्रह्माणी रक्तवर्णा च ६३
ब्रह्माणी सन्धयोः पातु ३७
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं १७४
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ४६०
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ४७७,४७५
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां २२०
ब्रह्माविष्णुहरश्चान्ये २६७
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च १८०
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ३१५
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चाहं ४६३
ब्रह्माऽव्यात् ब्रह्मसंहा(घाते) ३७
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवादी य १४
ब्रह्मैव तद् विजानीयाद् ४९०
ब्रह्मैवाहं न चान्योऽस्मि ४८५
ब्राह्मणानां गवां चैव २९६
ब्राह्मणानां शरीरस्थां २९६
ब्राह्मणान् परितोष्याथ ३६६
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या ३१७
ब्राह्मणी नैव चाण्डाली ४७७
ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां ३१७
ब्राह्मे मुहूर्तके पातु ३७
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ७२

भ

भकारेणोत्तराषाढां १३७
भक्तप्रियायै दुर्गायै १३४
भक्तिप्रवणचित्तेन २३१
भक्तिप्रवणचित्तेन २६५
भक्तिप्रवणचित्तं च २६५
भक्तिः पुनर्महेशानि! २६८
भक्तिः शिरोऽत्र हृच्छ्रद्धा ३२६

भक्तिश्रद्धासमायुक्तो ३६६
भक्तेः प्राचुर्यमत्रैव २७०
भक्त्या करोमि पूजां ते २०४
भक्त्या नत्वा प्रमुदितः २९४
भक्त्या विनम्रवदनः ४७०
भक्त्यैव ते कृता देवि २०६
भक्ष्यं भोज्यं तथा लेह्यं १६९
भक्ष्याभक्ष्यं न जानन्ति ३४०
भगमाधारसंस्थानं ३९१
भगलिङ्गसमायोगाद् ४९०
भगवन् सर्वमन्त्राश्च १४
भजनं सर्वभावेन २६८
भद्रकालीं च स्वस्ति च १०९
भद्रासनोपविष्टाया १६८
भद्रासनं समुद्दिष्टं ७९
भर्तारं गुणवृद्धिशून्यमचलं २
भवत्या मातृका देहे ३९८
भवत्येवाऽचिरेणैव ४२६
भवन्त्येव महोत्पाता ४२६
भवाब्धेस्तरणोपायं २
भवाब्धेस्तरणोपायं ४२५
भविष्यन्ति च सन्दिग्धा ११
भवेद्गुणवतां बीजं ३८७
भस्माञ्चितं मध्यहृदि १९९
भागमेकं महादेव्यै ३५७
भानुवारे शुभे लग्ने ४१३
भार्गवं तु गले देशे १३५
भावनं त्वस्य मन्त्रस्य ३९५
भावनावशसम्पन्नो २९४
भावनावशसम्पन्नो ४७
भावनावशसम्पन्नो ३३२
भावयित्वा वपुस्तस्य ३६२
भावयेद् भक्तिनम्रस्तु ३८८
भावयेद् योषिता सार्द्धं ४४५
भावाद्या वस्तुभूताया ३९८
भावार्थः सम्प्रदायार्थो ३८४
भित्वा छित्वा तथा लोकान् २६९
भीतभीतः पदाम्भोजं ३४७
भीषणं चैव संहारं २४०
भुक्तिमुक्तिप्रदा शुद्धा २१
भुक्तिमुक्ती करे तस्य २०९
भुक्तिमुक्ती करे तस्य ४५४
भुक्तिसिद्धिस्तथाऽऽग्नेये ३७
भुक्त्वाऽमृतं तदा देवि! २९३
भुंक्ते बहुविधान् भोगान् ३३०
भुंक्ते बहुविधान् भोगान् ३४०
भुंक्ते भोगं शुभं जीवो ५११
भुजदण्डस्थितस्तालः २८६
भुनक्ति बहुलान् भोगान् २८
भुवनत्रयसम्बन्धात् ३८७
भुवनेशी ततः पश्चात् १५
भूतप्रेतपिशाचाश्च १५०
भूतप्रेतपिशाचाश्च २९६
भूतराक्षसवेतालाः २५९
भूतलं सस्तलं ? व्याप्तं ३८६
भूतशुद्धिः परीरम्भः ४९१
भूत्वा महाकविर्लोके १२९
भूपतिर्व्यस्तसम्भारैः ४२९
भूपुत्रं लोचनद्वन्द्वे १३५
भूमेः परिग्रहे कुर्याद् ३५०
भूयो भूयः क्रमात् तस्य ८०
भूर्जत्वचि समालिख्य ५०
भूषणं गृहण चार्वङ्गि! २१५
भूषिताश्चारुभूषाभिः ३०४
भूशय्या ब्रह्मचारित्वं ३७३
भृङ्गारेणाऽथवा शङ्खैः २१२
भृङ्गोपभुक्तपुष्पाणि ४५८
भेदमस्याः परं गुह्यं ६३

भेदावभाषिणो मूढा: ४३२
भेरीदुन्दुभिवाद्यैश्च २६७
भेरुण्डा वामनेत्रेऽव्यात् ३६
भैरवानन्दन मग्नान्त: ३०५
भैरवानन्दलिङ्गं तु ४५३
भोक्तव्यं योषिता सार्धं १४९
भोगदा मोक्षदा चैव २६
भोगदा मोक्षदा चैषा २७
भोगमोक्षप्रदा देवी ३६
भोगमोक्षप्रदे तन्त्रे ७
भोगमोक्षप्रदे! मात: २०९
भोगमोक्षप्रदे शुद्धे ३४०
भोगमोक्षप्रदं पुष्पं २१९
भोगात्मा लभते मुक्तिं २८
भोगेन मोक्षमाप्नोति ४३१
भोगेन लभते मुक्तिं २३
भोगैश्च मधुपर्काद्यै: ४५,४९२
भोजनानन्तरं चास्या २८६
भोजनानन्तरं देवि! २८४
भोजनान्ते विषं पानं ४४१
भोजनं तत्त्वमन्त्रैस्तु ३६३
भ्रुवोर्मध्ये तथा सोमं १३५
भ्रुवोर्मध्ये स्थितश्चात्मा ४५१
भ्रूणहत्याकृतं पापं ९८
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं १६४
भ्रूमध्ये रत्नसङ्काशं ३८२
भ्रूमध्ये स्तनके मूर्ध्नि ८०
भ्रूमध्ये शक्तिबीजं तु १६४
भ्रंशनादस्य पात्रस्य १९६

म

मकारध्वजया युक्तो १३६
मकारं तु तवर्गेण १४४
मकारं पद्मरागाभं १००
मखग्रहणपूर्वेद्यु: ३५१
मखं रक्षन्तु सन्तुष्टा ३५१
मङ्गलानि महादेव्यै २६७
मच्छक्त्याऽऽवेशितैर्विप्रै: ८
मज्जाधातुगते पश्चात् १४३
मणिबन्धे तथा वामे १३६
मणिमयमहद्रत्न २४८
मणिवद् भिन्नं तत् पद्मं ८७
मण्डपं विधिवद् देवि! ३५५
मण्डलत्रयसंयुक्तं ३८९
मण्डले मातृकादेव्या: ४१६
मण्डलं तं समभ्यर्च्य १८९
मण्डलं वामत: कृत्वा ११०
मण्डलं वामत: कृत्वा ११८
मत्तश्चन्द्रिकया युक्तो १३४
मत्तषट्पदनिर्जुष्टं १७६
मत्ता: कङ्कालमालाढ्या: २७४
मत्परत्वान्महासिध्यै ४९५
मत्स्या द्वादशसम्पन्ना ५६
मत्स्वरूपो हि योबिन्दु ४९९
मदङ्गस्पर्शमात्रेण ४८९
मदनोत्तप्तहृदयां २५०
मदनोल्लसिताङ्गाभि: २५०
मदन्तस्त्वयि संलीने ४८९
मदन्तिकं समासाद्य ७
मदयन्तीं सहदेवीं ३५६
मदविह्वलया युक्त १३३
मदात्मरूपमात्रं तु ४८६
मदिराघूर्णनयनो ४२९
मदिराघूर्णनयनो ४४२
मदिरायां न वा शक्तौ ४४०
मदिरां पृष्ठतो दद्यात् २२४
मदिरेति समाख्याता २२६
मद्यपानं तु यज्ञेषु ४६०
मद्यं मांसं तथाऽन्यत्तु ४४२

मद्यं मांसं मुद्रा शक्तिः ३२०
मद्यं मांसं विना देवि! ४४४
मद्यं श्राव्ये तु सिन्दूरे २७१
मद्रूपा परमाशक्तिः ४८८
मधुना श्वेतदूर्वाभिः १५
मधुपर्कमदृष्ट्वै २१२
मधुपर्कं ततो दद्यात् १६८
मधुपर्कं रौप्यमपात्रे २१२
मधुपर्कं विना पूजा २१२
मधुमैरेयभोगाद्यैः ४६३
मधुत्रययोगेन ४१०
मध्यकुम्भे च मुद्रां तां ४१४
मध्यकूटत्रयं देवि २७
मध्यकूटमिदं प्रोक्तं २५
मध्यकूटं प्रवक्ष्यामि २५
मध्यत्रिकोणचक्रे च २५३
मध्यदेशे महापुण्ये ३४०
मध्यप्राणप्रथारूप ३८४
मध्यबिन्दुविसंज्ञां तु ३८४
मध्यमातर्जनीभ्यां स्याद् १५५
मध्यमा धनसिद्धौ स्यात् २५९
मध्यमानामिकाभ्यां तु २४५
मध्यमाया मध्यभागे २५९
मध्यमे कुरु तन्मध्ये २५४
मध्यमे मध्यतः कृत्वा २४१
मध्यमे मन्त्रपिण्डे तु ३८४
मध्यमे योजयेन्मध्ये २०१
मध्यमः कल्पसंयुक्तो ८०
मध्ययोः प्रजपेद् विद्यां ३१३
मध्यरेखां परित्यज्य ५५
मध्यादि स्थापयेत् तेषु ४१३
मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च १२७
मध्याह्नविहितां देवि! ४४५
मध्याह्ने चिन्तयेद् देवीं ९६
मध्याह्ने तत्तु देवेशि! ४४५
मध्याह्नं तत्विजानीयान् ३०५
मध्याह्नं पातु कौमारी ३७
मध्ये त्रिकोणमेव स्याद् ५६
मध्ये त्रिकोणं संलिख्य ५०
मध्यं सुखं विजानीयात् ३०९
मनः करोति पापानि ४५४
मनः करोति पापानि ४८२
मनः करोति पापानि ५०९
मनः पवनयोश्चैव ३६०
मनः सङ्कल्परक्तो वा ११७
मनः संहृत्य विषयान् २६१
मनस उत्पद्यते वाक् ५०८
मनसा च ततो वाचा २७८
मनसा च स्मरेत् स्तोत्रं २६१
मनसा तु महादेव्यै १७०
मनसाऽपि महादेव्या २३४
मनसाऽपि महादेव्यै २२९,१७०
मनस्तुष्टौ समुत्पन्ने ३३९
मनसि चोन्मनीभूते ४५४
मनस्युन्मनीभूते च ४८२
मनस्युन्मनीभूते च ५०९
मनुर्विमृष्य दातव्यो ३२
मनुष्यरूपसम्प्राप्तः ३४३
मनोजीवात्मनोः शुद्धिः १६१
मनो निधाय योगात्मा ४७०
मनो भवति वै लीनं ४४
मनोवाग्विषयातीतं ४९८
मनोऽहङ्कारवशगम् १७२
मन्त्रमात्रस्वरूपे च ३८१
मन्त्रकालाविशुद्धानि २३१
मन्त्रतन्त्रावताराय ३४३
मन्त्रमस्य प्रवक्ष्यामि २४८
मन्त्रयित्वा महेशानि! १२९

मन्त्रराजः समाख्यातः २४४
मन्त्रवेदमयं शुद्धं ३३९
मन्त्रशुद्धं पिबेन्मद्यं ४४१
मन्त्रसिद्धिप्रदां शुद्धां ३७०
मन्त्रस्तथैव निःसेतु २६३
मन्त्रस्मरणमात्रेण ४४७
मन्त्रस्य मुखबीजं वा १६२
मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ २६१
मन्त्राच्छतगुणं देवि! ४३
मन्त्राणां नवलक्षाणि ३८२
मन्त्रारम्भं सुधीः कुर्यात् ३४९
मन्त्रार्चमनासनस्थान ३४९
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं ३८३
मन्त्रार्थः कथ्यते देवि! ३८४
मन्त्राश्चैतन्यसंयुक्ताः ३८३
मन्त्रास्तु बहवः सन्ति ४९६
मन्त्री च चात्र सन्देहो १४८
मन्त्रेण तस्य नियतं ३४६
मन्त्रेण भास्करायार्घ्यं २९०
मन्त्रेण स्वापकाले तु ३५३
मन्त्रेषु पठितेष्वेषु २७९
मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् ३८३
मन्त्रौषधिबलैर्यद्वत् ८३
मन्त्रं ज्ञानमयं विद्धि ५७
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा २६०
मन्त्रं जप्त्वाम्बुपानीयैः ३७६
मन्त्रं यदि श्मशाने तु ३२८
मन्त्रं शृणु महादेव्या २८३
मन्दमारुतसंभिन्न १७६
मन्दारपारिजाताद्यैः १७५
मम ज्ञानप्रभावेण ४५१
ममत्वं समतादेहे ४२७
ममैवैतेऽवताराश्च ४७५
मया चापि पुरा देवि! ४६९
मया धर्षितमात्रोऽसौ ४७७
मया निवेदितं भक्त्या २३३
मया निवेदितान् गन्धान् २१६
मयापि चिन्त्यते सा तु १३
मयाप्येतद् व्रतस्थेन ३१३
मया यत्नेन गुप्तं यत् ४९५
मया सर्वं जगद् व्याप्तं ४७४
मयाहृतानि यत्नेन २३३
मयि प्रविश विश्वेश ४९०
मयि सर्वं लयं याति ५१६
मयैव कथितं देवि! ९
मय्यैव सकलं जातं ५१६
मर्त्यपातालरत्ने च १८९
मर्दनात् करयोः शुद्धि १२३
मलयं च महापीठं १४६
मलिनं परकीयं च ९३
मल्लिकामालतीकुन्दो २१८
मल्लिका-मालती-जाति ४०९
महतां च महत्वाच्च ५००
महत्या च श्रिया युक्तो ३३१
महदाश्चर्यमेतन्मे ५०१
महाक्षोभं कुरु युगं १९५
महातेजोमयः पातु ४०
महात्ममहिमाक्रान्त ४००
महात्रिपुरसुन्दर्यां १४
महात्रिपुरसुन्दर्या ३२४
महात्र्यस्रं स्मरेत् तत्र ५८
महादेव्या महापुण्ये ३४१
महादेव्याः समाख्याता ६०
महादेव्यै द्विजो मद्यं २२७
महान्तं प्रकृतौलीनं १७२
महापद्मवनध्यानाद् ४४७
महापद्मवनान्तःस्थ २८०
महापद्मवनान्तस्थे २०१

महापद्मवनान्तस्थां ७०
महापातकजातानि १६५
महापातकजातानि ३५२
महापातकयुक्तोऽपि १०२
महाबलपरीवारा ६
महाभीतिहरा सम्यक् ६७
महाभूतदिनं तत्तु ३२७
महाभूतदिने नक्तं २८
महाभूतदिने वापि ३२७
महाभोगवती विद्या २८
महामरकतस्थल्या १७७
महामहत्करी विद्या २८
महामाणिक्य-वैदूर्य १७८
महामाया ततः पश्चात् १७
महामाया त्रयेणापि ३८७
महामाया महाबुद्धिः २८
महामायां महादेवीं १७०
महामुद्रेयमाख्याता २०३
महामृगमदोद्दाम १८३
महायोगेश्वरं देवं २४०
महारसरसान्दोल १७६
महारोगपीडितानां ४०१
महालक्ष्मि! महामोह ३१९
महालक्ष्मीस्तु पीताभा ६३
महाविद्याक्रमो यद्वद् ४५९
महाविद्येति सा कैश्चित् ४६२
महावज्रेश्वरी पातु ३६
महाविद्यां प्रजप्याथ २
महाशङ्खमयी माला ३७१
महाशङ्खैस्तु वीराणां १८८
महास्नानं भवेद् देवि! २१२
महैश्वर्यं धनित्वं च ४३५
महोत्सवविधौ यो मे ४८६
महोत्साहे महालक्ष्मीः ३७
माणिक्यं मौक्तिकं देवि! १९१
माणिक्य-रत्न-वैदूर्य १७८
मातङ्गवनिता पातु ४०
मातर्देवि! नमस्तुभ्यं ३१८
मातङ्गेश्वरि सर्वान्ते २८३
माता रात्रिः समाख्यातां ३०४
मातुलुङ्गफलं चैव ६४
मातुः पितुर्यथा बालो ३०१
मातृकाद्यं समुद्धृत्य १२३
मातृकां प्रतिलोमेन १९०
मातृकां श्रृणु देवेशि! १२५
मात्रावृद्धिक्रमेणैव ८०
मादनं गोत्रभिच्छान्तो ३२
मादनं जठरं देवि! ३९१
मादनं प्राणरूपं तु ३९६
मादनं शक्रमारूढं १५३
मानरूपक्रियोपाधि ४९७
मालवं च कुलान्तं च १४५
मानसं वै भवेत् स्नानं ९४
मानसोच्चारणात् तुल्य २६१
मानुषत्वं विना सिद्धिः ३२९
मानुषे भारतं श्रेष्ठं ३३९
मान्त्री दीक्षा च सा प्रोक्ता ३४९
मामक्या कलया युक्तं ४८७
मामानन्दय सानन्दं २७६
मामासाद्य तथा विष्णुं ४६९
मामुद्धर जगन्मातः ४७५
मायागृहान्तः सङ्कोचः ५०२
मायात्मनः कला नाम ५०३
मायापूर्वो वकारादिः ५०२
माया बलवती ह्येषा ४६२
मायाबिन्दुसमायुक्तं ३९८
मायाबिन्दुः सनादेन ३२
मायाबीजं ततः पश्चात् २८३

मायाबीजं रमाबीजं १५२
मायाबीजेन तत्सर्वं २९२
मायालक्ष्मीकलाभिस्ता २४२
मायालक्ष्मीसमायोगं २४०
मायालक्ष्म्यादिकास्तद्वत् ३४३
मायाश्रीकामबीजाद्यां ४१५
मायास्थाने रमाबीजं १८
मार्जारस्य तु मांसेन २८५
मार्तण्डभैरवं पश्चात् २९१
मार्तण्डभैरवायाऽर्घ्यं १०५
मार्तण्डभैरवायेति १०६
मालती-मल्लिका-जाती २१८
मालती-मल्लिका-जाती १७५
मालया जपतो नित्यं २५६
मालाबीजं तु जप्तव्यं २६०
मालाभावे ततः स्वासु २५७
मालां स्वहृदयासन्ना २५९
मालां कृत्वा महादेव्यै २१९
मालिनीसदृशी ध्येया ६९
माल्यं च गन्धलेपं च ३७४
माल्यं पद्मसहस्रस्य १७०
माल्यादीनां प्रदानेन २६६
माल्यानि कुसुमानीव ४८
मा विषीद नृपश्रेष्ठ! ३
मा विषीद महादेव! ४७६
माषमुद्गमसूराद्यै २३०
माषाढकीमसूरांश्च ३७३
मासतो वर्षतो वापि ३२५
मासिकं तिथिकृत्यं च २९९
मासि-मासि चरेद् यात्रां ४१८
मासेनाऽऽकर्षणीं सिद्धिः ४४४
माहेशि! वरदे देवि! ३१८
माहेश्वरी तयाऽऽकाशं २१
माहेश्वरी श्वेतवर्णा ६३
मां प्रसाद्य तपस्तप्त्वा ५
मां मदीयं ततो देवि! २७८
मांसं मत्स्यं तथा मुद्रां ४४०
मांसधातुगते पश्चात् १४०
मांसभरैर्न मे प्रीतिः ४८९
मां समीक्ष्य वरं वव्रे ४७२
मांसानि विविधान्यत्र २७२
मांसेन साधितं भक्तं २७२
मितिमात्रमयि देविं ३१९
मित्राणां सर्वभूतानां ४६३
मिलितं मुष्टियुगलं २०३
मिश्रीकृतैस्तु सर्वेषां २१३
मिश्रीभावं तदा याति ३७२
मीनमुद्रां विधायाथ १९१
मुक्तामाणिक्यवैदूर्य ४१४
मुक्ताहारलतोपेत १८२
मुखं प्रक्षालय देवेशि! ९०
मुखं बिन्दुवदाकारं ४४४
मुखवासकरं पुण्यं २३३
मुखावलोकी सेवेत ३४६
मुखे कण्ठप्रदेशे तु १६०
मुखे कार्याणि सिद्ध्यन्ति ३७०
मुखेऽनामां मध्यमां च १२७
मुदं रान्ति च ता यस्मात् २७०
मुद्गात्रप्रीतिसंयुक्तां १४२
मुदानुष्ठानमज्ञात्वा २७०
मुद्राशरीरं मे ब्रूहि ५७
मुद्रां भौतिकमित्याहुः ५७
मुद्रेयं गालिनी प्रोक्ता १९३
मुद्रैषा परमेशानि! २४७
मुद्रैषोन्मादिनीनाम्ना २४९
मुनीनां च मुमुक्षूणां १६५
मुमुक्षुश्चिन्तयेल्लीनां १७२
मुषलमुद्रिकां योनिं १९३

मुष्टिद्वयस्थिताङ्गुष्ठौ २०४
मुष्टिमध्यस्थितां देवि! २७७
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां १९३
मुहूर्तत्रयमात्रं तु ३०३
मुहूर्तत्रयमात्रं तु ३०४
मुहूर्तत्रयमात्रं तु ३०३
मुहूर्तत्रयमानं तु ३१२
मुहुर्मुहुः पिबेन्मद्यं ४४१
मूको भवति वागीशो १५
मूर्ध्नि छत्रं निधायाथ २०८
मूर्ध्नि त्रिकोणमध्ये तु ३८०
मूर्ध्नि सञ्चिन्तयेद् देवि! १३२
मूलकूटत्रयेणैवं १५७
मूलदेव्याः स्वनामान्ते ३२३
मूलद्वितयमुच्चार्य १५७
मूलपद्मे कुण्डलिनीं ७७
मूलप्रकृतिं तत्रैव ११५
मूलमन्त्रेण देवेशि २३३
मूलमन्त्रेण सम्मन्त्र्यो ३५२
मूलमन्त्रेण संस्थाप्य ३५६
मूलमाधारषट्कानां ८७
मूलमूर्तिर्महादेव्या ३३६
मूलयोगकृतामायुः ३२१
मूलवर्णादिविन्यासं १५१
मूलवाग्भवमुच्चार्य १५७
मूलवाम्भवमुच्चार्य १५९
मूलविद्या त्रयावृत्या १५९
मूलविद्या द्विरावृत्या १५५
मूलविद्याप्रयोगेण २८८
मूलविद्यां समुच्चार्य २०४
मूलस्थानगतं मन्त्रं ३८२
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ३६२
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं १५९
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं १६३
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ४०३
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं १५९
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तां ३०८
मूलादिहृदयं यावद् १६४
मूलाद्येनैव तत्राद्यां ६०
मूलाधारे ज्वलद्रूपे ३९३
मूलाधारे त्रिकोणाख्ये १६३
मूलाधारे त्रिपुराख्ये ८६
मूलाधारे परे चक्रे ४६६
मूलाधारे महादेवि! ३८०
मूलाधारे शवर्गेण १५४
मूलाधारे सदा पातु ३७
मूलेन ध्यानयोगेन ४५२
मूलेनापि ततः पश्चात् २१३
मूलेनैव शिखां बद्ध्वा ३५२
मूषिकामण्डूकस्पर्श १११
मूषिकोपहतं कोषं ४३६
मृगनाभिसमुद्भूत २१५
मृगयाभिरतिर्यस्य ४३३
मृणालतन्तुरूपं हि ३९१
मृत्तिकासप्तविन्यस्तं ३५६
मृदादेः कलशादीनां ५०५
मृदालम्भनकृत्ये च ९२
मृद्वासने समासीनः ७०
मेकारं रक्तवर्णं च ९९
मेदिनी सर्वदाऽशुद्धा ११२
मेदोधातुगते पश्चात् १४३
मेरुगिरिं महेन्द्रं च १४६
मेरुपृष्ठऋषिः प्रोक्तः ११५
मेरुमध्यस्थिता या तु ८६
मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन् २५७
मे वशं चानय प्रोच्य २७७
मैथुनं तत्कथालापं ३७४
मोक्षार्थी लभते मोक्षं १८५

मोदते सततं योगी ३३२
मोदते सततं वीरः ३३०
मोदते सततं शुद्धः ३३३
मोहनं क्षोभणं चक्रं २३९
मोहनार्थं परं तेषां ७
मोहने मोदिनी पातु ३९
मोहयित्वा जनान् सर्वान् ४६५
मोहयित्वा पुनर्देवी ४९३
मोहयित्वाऽहमीशानं ४७२
मोहाद् यदि ददन्मद्यं २२६
मोहिनीफलजं चैव २२५
मौक्तिकैः कुसुमैः स्रग्भिः १७६

य

य इहाऽऽत्मकृते देवि! ४२६
य उच्छिष्टमुखो भूत्वा २८२
यक्षलोकप्रमाणश्च ३४०
यच्च प्रियतमं देव्या २०९
यच्चिन्तनान्महादेवि! ७
यच्छ्रुत्वाऽधिगतं पूर्वं ३
यजनं चास्य देवस्य २७३
यजनं तु महादेव्या ४२३
यजमानो भवेदन्धः ३५७
यजेत् कामेश्वरीमाद्यां ६१
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं ५
यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं २९१
यज्ञादिषु महेशानि! ४२६
यज्ञाधिकारिताचादौ २९१
यज्ञं समापयेन्नित्यं ३२६
यज्ञं संरक्षयेद् दिव्यं ३५१
यतस्तस्याः समुत्पन्नं ६०
यतिर्वा भूपतिर्वापि ४२९
यतो गुरु शिवः साक्षात् ३४६
यतो देवाश्च देव्यश्च ४४३
यतः करोति संसिद्ध्यै ३५०
यत् करोति यदश्नाति १८५
यत्तु पश्यसि हे वत्स! ४७५
यत्नात् पुरक्रियं कुर्यात् ३६७
यत्नात् पुरश्चरेन्मन्त्री ३६८
यत्नात् सङ्गोपयेदेनां २५९
यत् पश्यति यच्छृणोति १८४
यत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं ४४३
यत् पुनर्ब्रह्म सर्वात्मा ५१५
यत् पूतिगन्धसंयुक्तं २३०
यत् प्रकाशात्मकं सर्वं ५०१
यत् श्रुत्वा साधकाः सर्वे २५
यत्र कुत्र महापीठे ३३०
यत्र तत्र नरः पूजां ३३४
यत्र तत्र यजेद्देवीं ४४३
यत्र देशे च आचार ४२८
यत्र यत्र मनो याति ८३
यत्र यत्र मृतश्चायं ८५
यत्राऽऽनन्दो भवेद् भावे ३९७
यत्रायं निवसेद् देवि! १४९
यत् सम्मतं तथाऽप्येतत् ४९७
यत् सूचितं पुरा नाथ ३४
यत् संख्यामासमारब्धं ३७५
यत् स्वयं गद्यपद्याभ्यां २३७
यत् स्थिरीक्रियते देवि! ४७०
यन्नोक्तं डामरे तन्त्रे ४३
यन्त्रे मन्त्रे कुले चैव ४२२
यन्त्रं शरीरमित्याहुः २९५,५७
यथाकाले तथापुष्पं ३०
यथाकाशो घटाकाशो ८२
यथाकाशो हृषीकेशो ४८१
यथा गुरौ तथा चात्म ३४६
यथाऽग्निविद्रुतं स्वर्णं ८४
यथा यथा गृहे बाह्ये ३२८
यथा तथाऽऽधारगतं २२१

यथातथा सगन्धर्वैर्वा २११
यथा तु नमिता प्राज्ञे ३२०
यथा तुष्यति भोगेन ४६९
यथा त्वं मयका नाथ ४९३
यथा देवे तथा मन्त्रे ३४६
यथाधिकारमावर्त्य ३६४
यथा फेनतरङ्गादि ८३
यथा मुक्ताफलमयी ३७१
यथा मे जायते प्रीति ४८९
यथा यथा भवेद् भक्ष्यं २२९
यथायोग्यगुणैः पूर्वैः ३४५
यथावदुक्तवाक्येन २४२
यथा वा पूज्यते देवी ३१६
यथाविधि क्रमेणैव ६१
यथाविधि गुरोर्दीक्षां ३६७
यथाविधि जपं कृत्वा २६२
यथाशक्त्या तु मिलितैः ४१२
यथाशक्ति जपं कुर्यात् २६२
यथाशक्त्येकतो मन्त्री ११४
यथा सिद्धिस्तथा माला २५६
बथा हस्तान्न च्यवते २५९
यथेष्टं चार्मणं कुर्यात् ११३
यथोक्तक्रमवर्त्मना ५९
यथोक्तविधिना देव्यै २०९
यथोक्तविहिते कुण्डे ३७६
यथोक्तं नियमं कृत्वा ३७७
यथोक्तां कुलजां शस्तां ६१
यथोपदिष्टविधिना ४८४
यदक्षरं परिभ्रष्टं २७९
यदङ्गं तु विहीयेत ३०९
यदञ्जनं प्रजायेत २१७
यदधो वायुबीजं तु २५
यदन्नं दीयते तस्यै ३१६
यदन्यद् दीयते द्रव्य १९७
यदव्यक्तमनिर्देश्यं ४७०
यदा जन्म जरा दुःख ८३
यदा तन्मयसिद्ध्यादि ५००
यदा तु सा तस्य ४३६
यदात्मना न विज्ञातं ११२
यदान्यत्तु प्रयुञ्जीत ३७२
यदा भूतानि सर्वाणि ८३
यदा मनसि चैतन्यं ८३
यदा स भगवान् देवो ३०४
यदा सर्वाणि भूतानि ८३,४२७
यदा सा परमाशक्तिः ३०८
यदि क्रीडापरास्तास्तु ३२०
यदिच्छा जायते भोक्तुं ४२४
यदि जीवः पराद् भिन्नः ८२
यदिदं पुरुषे देवि! ४६१
यदिदं शाक्तमाकाशं ५०९
यदिदं सकलं ब्रह्म ५१२
यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् ३७५
यदि पुष्यो भवेत् तत्र ३२७
यदि बाह्यार्चनद्रव्य १८७
यदिदं लक्ष्यते देव! ४७८
यदि विघ्नो भवेद् देवि! ३३७
यदिष्टं सर्वमाख्यातं ४९८
यदुक्तं तामसं त्यक्त्वा २९९
यदुक्तं ते मया तन्त्रं ८,५
यदुक्तं भवता ब्रह्मन् ४७२
यदेव लभ्यते वस्तु ३४७
यद् दृश्यान्नापरं दृश्यं ५
यद्भुंक्ते जीर्यते शीघ्रं ४२४
यद् यत् प्रियतमं वस्तु ३४७
यद्दत्तं भक्तिमात्रेण २७९
यद् यदेव परं तत्वं ४९४
यद् यद् वदति सन्तुष्टा ३१६
यद्रूपं परमेशान्या २९५

यद्ब्रुवन्त्यक्षरं लोके २८
यदृच्छयोपपन्नं यत् ४३०
यदृच्छालाभसन्तुष्टः ३४४
यद्यन्यद् दूषणं पात्रे ११९
यद्यन्यभावस्थैर्येण ४९८
यमं नियममासन ७८
ययाऽचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य ५१३
यया प्रकाश्यते ब्रह्म ४७१
यया विज्ञातया देवि! २८२
यया विज्ञायते ब्रह्म ९८
यल्लाभान्नाऽपरो लाभो ५
यवर्गेण क्षकारेण १४४
यवर्गेण च देवेशि! २४५
यवानास्तीर्य पुष्पाणि ३५६
यवानां तण्डुलैरेव ४०५
यश्चैवं तु न जानाति १०२
यस्तैजसेन पात्रेण २३१
यस्मात् तत् सर्वलोकानां ३२९
यस्मिन् कोष्ठे क्षेत्रनाम ३७०
यस्मिन् यत्र य आचारः ४५८
यस्मै कस्मै न दातव्यं ४३
यस्मै कस्मै न दातव्यं ३२
यस्मै कस्मै न दातव्यं ३३९
यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयम् २८४
यस्य दर्शनमात्रेण ५३
यस्य प्रबोधमात्रेण ७०
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं ७६
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं ४४
यस्य यद् विहितं कर्म ३००
यस्य यस्य पदार्थस्य ३८६
यस्याः स्मरणमात्रेण १२
यस्यः स्मरणमात्रेण ४०१
यस्यैते चातिसन्तुष्टाः ४३३
यस्यैवं परमात्मा स ८३
याकिन्यै नम इत्यन्ते १४३
यागमन्दिरगांस्तत्र १११
याग भूमिर्निषिद्धैषा १०९
या चित् सत्तैव सा प्रोक्ता ३९७
यातायातक्रमेणैव ८९
यात्कारं च शिवः प्रोक्तं १०१
यान्ति चोर्ध्वं परंधाम ३१०
या नेच्छन्तीप्सया श्रद्धां ४३७
या ब्राह्मीप्रमुखा देव्यो १२५
यामात्मकं समुच्चार्य २७४
या मूर्तिर्मम देवेशि ४७३
या मे मूर्तिर्द्वितीया च ४७३
यावच्छक्यं नियम्याऽसून् १६२
यावत्कालं वहेदेतद् ४६७
यावत् त्वां पूजयिष्यामि २०१
यावत् तावद्धि जप्तव्यं ३८१
यावत् संस्थापयेद् देवीं २०१
यावन्न चलते जीवः ५११
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म ४८१
यावन्न दीयते देवि! १०५
यावन्मनो लयं याति २९५
या विद्या चेह देवेशि २२४
या शक्तिः सर्वभूतानां २१
या शक्तिः सर्वभूतानां ३७
या शक्तिः सर्वभूतानां ४६५
या शक्ति सा महादेवी ४५
या सृष्टिः शक्तिरस्माकं ४७०
यां यीं तु परमेशानि! १४३
युक्तात्मा येन विहरेत् ७८
युग्माङ्गमिलितं देवि! ५४
युद्धे विजयमाप्नोति ४१६
ये केचित् पापसंघाताः १५०
येन तेन विधानेन ४६८
येन विज्ञातमात्रेण ५०

येन विशुद्धभावेन ३४८
येनानुष्ठितमात्रेण २७२
ये नन्दन्ति च तद्भावं ४६४
ये देवा मद्गतप्राणा ४८९
ये पुनर्विघ्नकर्तारः २७९
ये मन्त्राः परमेशानि! ४९५
ये ये मन्त्रा देवतानाम् १२८
येषां श्रवणमात्रेण ७
योगज्ञैरेभिर्जित्वा तान् ७८
योगमेहितं यत्तु ३०२
योग भोग तपःक्लेशैः ४६२
योगयोगाद्भवेन्मुक्तिः ७७
योगं किं वा शरीरं च ४
योगात्मा योगविज्ञानी १८४
योगात्मा योगविज्ञानी ३१३
योगाः समाधयो ज्ञानं ४९४
योगिनां वरदं ध्यायेद् ९८
योगिनीचक्रपूजायां ११६
योगिनीरूपमास्थाय ३९०
योगिनीवर्णविद्याया ३९०
योगिन्यः कामरूपाश्च २७४
योगिन्यश्च समुद्राश्च २४२
योगिनोऽव्यवधानेन ८३
योगिनां स्वामिनीप्रान्ते १४२
योगिनि स्वामिनि प्रान्ते १४०
योगिनीस्वामिनि प्रोच्य १४१
योगिभिः पीयते तत्तु ४५३
योगिनो मुनयश्चैव १७०
योगो हि ललिता देवी ७८
योजयित्वा तर्जनीभ्यां २०१
योजयित्वा परानन्दे ४६६
यो जयेत् पञ्चमीं विद्यां २८
यो जानाति महाविद्यां २३
यो जानाति महीपृष्ठे १९
यो ददाति निषिद्धेभ्यः ४४
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ ३५७
यो नरो भक्तिसंयुक्तः २२९,१७०
योनिभूता महामुद्रा ५७
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ ७५
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ २०७
योनिमुद्रां महेशानि! १६०
योनिमुद्रां विधायादौ १८९
योनिमुद्रेयमाख्याता २५४
योनियुक्तं सबिन्दुं च १५२
यो मुद्रां धारयेदेनां ४१७
यो वा विधिमनादृत्य ४२६
योषित्स्मरणमात्रेण ४४७
योषिदन्ते पुरश्चर्या ३३८
योषा योषित्प्रियाणां त्वं ४७१
योऽसौ विश्वेश्वरो देवो २२
यैः साक्षात् तुष्यते देवी २०९
यं वदन्त्यमलात्मानः १
यं वाय्वात्मना ईश्वरेण धूपं ७४
यं रं युतां धनिष्ठां च १३७
यः कुर्यान्मातृकान्यासं १२८
यः सदा पूजयेद् देवं १०६

र

रकारं कपिलं नित्यं ९८
रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च १०५
रक्तचन्दनमाला तु ३७१
रक्तपद्मनिभां देवीं १८१
रक्तपद्मनिभां देवीं ३०७
रक्तपद्मसमासीनां ४७
रक्तपद्मेन वज्रेण २१९
रक्तपुष्पं गृहीत्वैवं १६७
रक्तमालाम्बरधरं २५०
रक्तवर्णां त्रिनेत्रां च १४०
रक्तवस्त्रपरीधानां ४५

रक्तवस्त्रपरीधानां ४७
रक्तवस्त्रपरीधानां १८३
रक्तश्यामहरिद्रेन्द्र १७९
रक्षयेत् पालयेत् साधुः ३०३
रक्षाहीनं च यत् स्थानं ३६
रक्षितव्यस्त्वया भद्रे ७
रक्षोभूतपिशाचाद्या ४१७
रक्ताक्षीं च श्वेतवर्णां १३८
रक्ताभममृतं तत्र १७४
रक्ताम्बरधराः पश्येद् ३०७
रक्तालङ्कारभूषाढ्यां २८४
रक्तासनोपविष्टस्तु ४५
रक्तासनोपविष्टस्तु ११७
रक्तासनोपविष्टस्तु ४५०
रक्ताः संक्षोभणीमुख्याः ६४
रक्तां सूक्ष्मां च विश्वस्य १६३
रक्तोत्पलदलाकार १८२
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं ४१०
रचितेयं महामुद्रा २५२
रजश्च तत्र संचिन्त्य १८०
रजसा च समायुक्तो ५१०
रजसा च समायुक्तो ५१०
रज्जुसर्पवदात्मानं ४७९
रञ्जितं चक्रराजं च ११७
रणस्थं च करस्थं च २८७
रत्नद्वीपसमुद्भासि १८२
रत्नपुष्पं च देवेशि! २१९
रत्नसंक्लृप्तसंशोभि १७७
रत्नसिंहासनाम्भोजे १२१
रत्नेशीं पूजयेत् तत्र १९१
रत्नेषु कीलकं यद्वद् १४
रत्नं गगनसंज्ञं च १८९
रथ्यायामासवस्थाने ३७४
रमाबीजं परं पश्चात् १३२
रमाबीजं समुद्धृत्य १९
रमामाया हंसबीजं ३९८
रम्भाफलं चतुःखण्डं ४११
रविमण्डलगां देवीं ९६
रश्मिवृन्दानि ते देवि २३९
रसमात्रं जलं विद्धि ४७७
रसाकर्षणरूपाऽव्यात् ३८
रसे रूपे च गन्धे च ४०
रसः सम्मर्दजो वापि २१५
रहस्यकथनं देवि! ३६०
रहस्याख्यानकं कर्णे ४९१
रहस्यार्थो मया प्रोक्तः ३९३
राकिण्यै नम आभाष्य १४०
रागेच्छा सुखदुःखादि ४७९
राक्षसानां किन्नरान् कृत्वा ३२८
राक्षसानां च यक्षाणां ३९
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति ११२
राक्षसं वायुकोणं स्याद् ११६
राजते सततं राजा ३२९
राजते सततं राजा ३३१
राजद्वारि च दिग्वस्त्रां ४३७
राजराजेश्वरीदेव्या ३४
राजराजेश्वरीदेव्याः ३५
राजराजेश्वरीं विद्यां १९
राजराजेश्वरी विद्या ३५
राजराजेश्वरी विद्यां १९
राजसूयशतस्यापि २२७
राजहंससमासीनः २४२
राजानमथवा राज १२९
राजानश्च स्त्रियः सर्वा ३१
राजानो वश्यमायान्ति ४१०
राजोपचारं दत्त्वाऽन्ते ३१२
रात्रौ कुलकथालापं ४४५
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्य ३८०

रात्रौ पर्यटनं कार्यं ४४५
रात्रौ वृद्ध्या दिने हान्या ६२
रामाय विश्वरूपाय ३५३
रागारामो रमणीभिः ४२९
राशिभिः पञ्चमो न्यासः १३१
रुचिराङ्गदभूषाढ्यां २५०
रुद्राक्षमालिका भोग ३७१
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत ३७२
रुद्रात्मशक्तिशब्दात् १५७
रुद्रेश्वरसदेशाख्या ३८७
रुद्रः पुष्पगतो युद्धे २८७
रुधिराक्तेन छागस्य ४१०
रूपाकर्षणरूपाऽव्यात् ३८
रूपाणां त्रितयं तत्त्वं ३८७
रूपमात्रं तु यत् तेजः ४७७
रूपं तवैव तत् सूक्ष्मं ४७०
रेखाद्वयं बहिः कुर्याद् ५६
रेखाश्च स्युः वैवस्वत ४०६
रेखोन्मीलनमापाद्य ४२०
रेफादग्निः सकाराच्च ३८५
रेफः कालाग्निरूढत्वात् ३८५
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च ११७
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च २९
रोचनाकुङ्कुमेनैव ५०
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रैः १६८
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रं १९०
रोचनाचन्द्रकाश्मीर ३२०
रोचनाचन्द्रकाश्मीर ४१४
रौप्यमिन्दुस्तथा हेम ४१३
रौप्यं दक्षिणतर्जन्यां ९२

ल

लकारात् पृथिवी जाता ३८५
लक्षकोटिपदस्यान्ते १३९
लक्षमेकमिदं जप्त्वा ४००
लक्षवर्णं शम्भुकोणे ३७०
लक्षवारसहस्राणि ३४
लक्षाभ्यां परमेशानि! २४५
लक्ष्मीमदादनादृत्य ३६८
लंघनान्निरयो यस्य २९९
लब्ध्वा तु जगतः सोऽयं ४६४
लभते साधको नित्यं २११
लम्बिके चन्द्रबिम्बाभं ३८२
लम्बोदराय विघ्नेश्यै १३२
लयो वायौ च वायूनां ४५४
ललाटेऽनामिकां मध्यां १२७
ललाटे च प्रविन्यस्य १३६
ललाटे च प्रविन्यस्य १६०
ललाटे तिलकं दद्यात् १६९
ललाटे मुखवृत्ते च १२६
ललितानि च नृत्यानि ३०३
ललितायास्त्रिभिर्बीजैः १०२
ललितायास्त्रिभिर्बीजैः ४०२
लवङ्गमाधवी बिल्व १७५
लसत्तण्डुलजं देवि! २२९
लाक्षारुणमयं सर्वं ३०८
लाजामुष्टिप्रमाणाः स्युः ४११
लावण्यकदलीतुल्य १८३
लावण्सरिदावर्त १८३
लिङ्गभेदक्रमेणैव ८९
लिङ्गेनात्कर्षयेद् योनिं ४४३
लिङ्गरूपी ह्यहं देवि! ३८२
लिङ्गदेहं तु तं प्राहुः १२०
लिङ्गं पाशं कपालं च २७४
लिङ्गं योनिं च सत्त्वं च ३९२
लिङ्गं शिवस्तथा शक्तिः ४८४
लिप्यते न स पापेन ८४
लीलारविन्दं वामेन ३१
लेपमात्राज्जयी युद्धे २८७

लेपमात्रेण धीराणां २८७
लेह्यचोष्यान्नपानादि २८१
लेह्यचोष्यानुपानादि २३३
लोकद्वयविहीनस्तु ३०२
लोकपालैः सहागत्य २६७
लोकाः पुण्यपराः श्रेष्ठाः ३३९
लोकान् वितनुते ब्रह्मा ३४
लोकांश्च त्रिविधान् मत्वा ३०३
लोचनत्रयसंयुक्तां १४२
लोभान्मोहाच्च गर्वाच्च ४०३
लोहभागाः समुद्दिष्टा ४१३
लौहित्यजितसिन्दूर १८३
लं पृथिव्यात्मना ब्रह्मणा ७४

व

वक्तुमर्हसि तत्त्वेन ४९४
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु १९
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु ३१०
वक्त्रनासापुटान्तःस्थो ५११
वक्त्रे सरस्वती तस्य ३२३
वचनात् परमेशस्य ११
वचनादेश्च शब्दादे ५०३
वचोमात्रेण देवेशि! ४९
वज्रतुण्डो द्विरण्डश्च १३४
वज्रेश्वरी तृतीया च १३
वटबीजे यथावृक्षः ५०५
वटुकः कमलाक्षस्तु २७३
वत्सराभ्यासयोगेन १६१
वदन्याशेष बीजान्ते १५२
वदेत् सविनयं वाक्यं ४४२
वध्यान् वध्यात् तथा दण्ड्यान् ३०३
वनस्पतिरसोत्पन्नो २२१
वने सर्वान् वशे कृत्वा ३३१
वयसा जातितो वापि ३२१
वरदा सिद्धिदा विद्या १८
वरदाभयहस्ता च ६३
वरभाभयहस्ता च ६३
वरं वृणीष्व भद्रं मे ४७२
वरान्ते वरदान्ते च २७७
वराभयकरा रक्ता ६२
वराभयकरो नित्यो ७६
वराभयकरं शान्तं ७३
वराभयौ च दधती ६५
वराभयप्रदो देवः २४३
वरिवस्यां गृही ३०६
वरुणस्यैव बीजेन १९७
वर्गाष्टकनिविष्टाभिः ३९०
वर्जयित्वा प्रयत्नेन ३१०
वर्जयेच्छक्तिभेदं तु ३०६
वर्जयेद् गीतनृत्यादि ३७४
वर्जयेदासनं मन्त्री ११४
वर्णक्रमेण संभाव्य ४९९
वर्णरूपेण तद्व्यक्तं ४८५
वर्णरूपेण सा देवी २४
वर्णरूपं तु शब्दस्य २९४
वर्णात्मकं महेशानि! ३५९
वर्णितुं नैव शक्येयं १९
वर्णेन रक्तगौराङ्गौ २४३
वर्णेनान्तरितं मन्त्रं २५७
वर्तते यस्तु युक्तात्मा ३९६
वर्तन्ते विधिना यज्ञे ३४०
वर्तिकार्थं न चादद्यात् २२२
वर्तुलं रचयेद् देवि! ३६९
वर्द्धते तस्य सौभाग्यं ४१७
वर्द्धयितुं शरीरं च ९
वर्मबीजमिदं प्रोक्तं १११
वशिनीप्रमुखान् देवि! १५७
वशिनी वश्यकार्येषु ३९
वशिनी पुरतो देवी ६७

वशिनीप्रमुखाः सर्वाः २५२
वशिनीप्रमुखास्तत्र ६७
वशिनीप्रमुखा रक्ता ६७
वशिता वायुनिलये ३७
वशीकरोति नचिरान् १२९
वशीकृत्य श्रिया युक्तो ३२८
वर्षैकेण हि तत् सिद्ध्येत् ४३३
वसामज्जास्थिसम्भूति ११७
वसुन्धरा गुणो गन्ध ३८७
वस्तूनां गन्धमात्रेण २९६
वस्त्रपूतैर्जलैः पूर्णं ११९
वस्त्राभावे ततो दद्यात् २१३
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यै ३०
वस्त्रेणाह्रियते लज्जा २१३
वस्त्रेषु रक्तकौषेयं २०८
वहन्तीं परमेशानीं १४१
वह्निजायान्वितो मन्त्रः २७६
वह्निजायान्वितो मन्त्रः २८३
वह्निजायान्वितो मन्त्रो २७३
वह्निजायान्वितो मन्त्रो २७७
वह्निजायान्वितं कृत्वा १०६
वह्निजायान्वितं प्रान्ते ४५५
वह्निदग्धं कुचेलं च २१४
वह्निबीजं ततो माया १५४
वह्निभार्यान्वितां पश्चात् ४१६
वह्निमण्डलमध्ये तु १८०
वह्निमण्डलरूपं तं ३५६
वह्निमण्डलरूपं तं १८९
वह्निमण्डलरूपं तं ११८
वह्निरयं महादेवि! ४५८
वह्निरिव रिपोर्हन्ता ३२३
वह्निर्वरुणशक्रं च १५३
वह्निवत् कण्ठसम्बद्धे ४९९
वह्निं हित्वा महाबीजं १४०
वह्नीन्द्वर्कमयी मुद्रा ४१३
वागीशं स्पर्द्धते वाक्यैः १५
वाग्देवता चतुर्थ्यन्ता १५३
वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा १२९
वाग्भवबीजरूपां तां ३९९
वाग्भवबीजरूपां तु ३९९
वाग्भवो मूलवलये ३८८
वाग्भवं कामबीजं च १९५
वाग्भवं वदयुग्मं च १९५
वाग्भवं प्रथमं कूटं २६
वाग्भवं मूलदेशे च १६४
वाग्बीजं पूर्वमुद्धृत्य २५४
वाङ्मनो नयनश्रोत्र ४२१
वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं ३७४
वाङ्मायाकमलाबीजं २८३
वाचकाक्षरसंयुक्ते ३८४
वाचो विनिर्णयं ब्रूहि ५०८
वाच्यस्वरूपव्यापित्वं ४९४
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां ४७१
वाञ्छितं समवाप्नोति ३३६
वादयेच्छङ्खघण्टे च २०८
वादिसान्तस्तथांशांशीं १४२
वादिलान्तषड्वर्णेन ८७
वादिलान्तांस्तथा काञ्चीं १४१
वादे सदसि वाक्यस्य ४००
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि! ४२१
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि! २०८
वाद्यं गीतं तथा नृत्यं २६५
वाद्यं यः कारयेद् देव्यै २६७
वापीकूपसमीपस्था १०९
वामकनिष्ठिकाहेमैः ९२
वामकरस्य तर्जन्यां १६७
वामकर्णस्ततो देवि! १३९
वामकर्णोर्ध्वभागे तु ११७

वामकूर्परके देवि! १३६
वामकोणे त्रिकोणस्य ६८
वामतस्तु तथा धूप २२३
वामतस्तु तथा शङ्खं ११९
वामदक्षोर्ध्वपाणिभ्यां २६७
वामदेवाख्यमन्त्रेण ४
वामदेवाय लज्जायै १३४
वामभागे समासीनं ४५०
वाममुष्टिं विधायादौ २६७
वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठे १९३
वामया पूरयेद्वायुं १६२
वामवामनासापुटे पातु ३६
वामस्य पितृतीर्थेन १६७
वामहस्ते जलं गृह्य ९४
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां २७३
वामाङ्गुष्ठं स्पृशेदग्रे १९३
वामावर्त्तक्रमेणैव ५८
वामावर्त्तक्रमेणैव २३९
वामेन पाणिना देवि! ११९
वामेन पाणिना पद्मं २५०
वामोरुगतया शक्त्या ७३
वामोरौ दक्षपादं च २६०
वायव्यादिषु कोणेषु २४०
वायुनाऽऽनीयते बाह्ये ४६७
वायुबीजेन संशोष्य २३२
वायुबीजेन संशोष्य ११२
वायुभिरिन्द्रियग्रामे ४७८
वायुश्च वामकर्णेन ७३,१९४
वायुस्तेजस्तथाऽऽकाशं ५१०
वायोरिव गतिस्तस्य ३३६
वायौ च सुस्थिरीभूते ४६७
वायुं च धूपकं दद्यात् ४५२
वायुं पुरन्दरं देवि! १५३
वाय्वग्निजलभूमीनां ३८७
वारत्रयमितः पूर्वं २७८
वाराणस्यां सदा पूजा ३३५
वाराहदेहजैर्दर्भै ४८६
वाराहस्कन्धजैर्दर्भैः ४८६
वाराहि! वरदे! देवि ३१९
वाराही वज्रिणी चान्द्री २८८
वाराही श्यामवर्णा च ६३
वारिणा शोधितं कृत्वा २९
वारुणं चेन्द्रबीजस्थं २४७
वारुणं पूर्वमुद्धृत्य २४०
वारुणं वायुबीजं च १५३
वारुणं शक्रयुक्तं च २७३
वारुणेन सुधावृष्टया २३२
वार्षिकं त्वथवा कुर्याद् ४८६
वासिनीभ्यो द्विजेभ्यश्च ३०२
वासो भूषणगन्धाद्यैः ४१८
वासो भूषणगन्धाद्यैः ४३२
वास्तोर्बलिं प्रकुर्वीत ३५०
विकल्परूपसञ्जल्प ७०
विकारं चिन्तयेद् विद्वान् ४३४
विक्षेपोत्क्षेपणं चैव ४९१
विघ्नराजाय देवेशि! १३२
विघ्नकर्त्रे तथा पुष्ट्यै १३२
विघ्नहर्त्रे सरस्वत्यै १३२
विघ्नेश्वराय वै प्रोच्य १३२
विचार्यमाणो यो नैव ५०५
विचार्याऽष्टाङ्गयोगेन ४७०
विचिकीर्षुर्योनीभूता ५३
विचित्रमण्डपैर्युक्ता १०९
विचित्राद्या वरारोहे ५८
विचित्रा सर्वदा पातु ३७
विचित्रितैश्चित्रवर्णैः १७८
विचिन्त्य मध्ये विशदं ५१४
विचिन्त्योत्तररेखायां ५८

विच्चे स्वाहापदं दद्यात् ४४९
विज्ञाय गुरुतो जप्त्वा ८५
विज्ञाय हृदयान्तःस्थं २९८
विज्ञेयाङ्कुशमुद्रेयं १९१
विण्मूत्रपिच्छिलो देहः १०२
वित्तशाठ्यं परित्यज्य ३६४
विदग्धाश्च समालोच्य ३१९
विदध्यात् तत् प्रयत्नेन २९९
विदिते ब्रह्मणः क्षेत्रे ३८१
विदित्वा प्रजपेन्मन्त्रं ३१३
विदित्वा रक्षणं यत् तु १४
विदित्वा व्यसनं विष्णुः ९
विद्यया संस्कृतो यस्तु १०५
विद्याकरी ललाटस्था ५१
विद्याकामश्चरेद् होमं २८५
विद्या किञ्चिज्ज्ञताहेतु ५०३
विद्या कुण्डलिनीरूपा ३९३
विद्याकूटत्रयं देवि! १२१
विद्या गुर्वात्मनामैक्यं ३८८
विद्यातत्त्वपदात् पूर्वं १५९
विद्यातत्त्वात्मनो देवि! १८०
विद्यातन्तुसमायुक्ते २१४
विद्यात्रयमिदं भद्रे! १७
विद्यादैक्यान्महावाक्यै ४८०
विद्याबीजत्रयं देवि! ३९२
विद्याभ्यासप्रसादेन ४९२
विद्यावतारसंसिद्ध्यै ७५
विद्याविद्ये जपाशोण २१४
विद्याविद्येति सा प्रोक्ता ४६२
विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु ३८७
विद्यां च हस्तकमलैः १२५
विद्यान्तर्भूतशक्ताद्यैः ३९०
विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा ३१
विद्युच्चानलसङ्काशा ४५४
विद्युत्कोटिप्रतीकाशं ३९१
विद्येयं नाशयेद् देवि! २८२
विद्रुतः पुरतो देव्या २७३
विद्रुममौक्तिकाभ्यां वा ४८७
विधवा नाञ्जनं कुर्याद् २१७
विधानं चात्र वक्ष्यामि २८४
विधानं पुरतः शक्तिं ४३१
विधिना विहिता पूजा १०५
विधिना विहिते यज्ञे ३०९
विधिवज्जायते देवि! ३८२
विधिवन्मण्डपं चारु ३५१
विधिशतैरपि यज्ञत्वं ३०२
विधिहीनं क्रियाहीनं २७९
विधिं चिदानन्दमरुपमद्भुतं ५१४
विधेर्विपर्ययात् तस्य २९१
विनश्यन्ति न सन्देहो ४९
विनानया न चैव स्यात् ३४२
विनानया प्रवर्तेत ३२५
विना न्यासैर्विना पूजां १७१
विनायकाय तुष्ट्यै च १३२
विना प्रतिष्ठया मुद्रां ४१७
विना मद्येन मांसेन ४२३
विनामृतं न चान्यत् २९८
विनायकाय मेधायै १३२
विना यन्त्रेण चेत् पूजा ५३
विना येन न सिद्धिः स्यात् ३६७
विना येन न सिद्ध्यन्ति १७१
विनापि योगचर्येण ५०
विना योगं न सिद्ध्येत् ७७
विना शक्तिं विना मद्यं ४५९
विनाशित्वं भयं चैव ८२
विनाशं तस्य दुर्बुद्धेः ४३३
विना होमं महेशानि! ४३९
विनियोगः समाख्यातो १२४

विनियोगः समुद्दिष्टः १२५
विनियोगस्तथा प्रोक्त ११५
विनिर्जितेन्द्रियमनो ३०८
विन्ध्यवत् फलदा पूजा ३३५
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता ३३५
विन्यसेत् तेषु कुम्भेषु ४१४
विन्यसेद् देवि! युक्तात्मा १४९
विन्यसेन्मातृकास्थाने १३२
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं २४४
विन्यस्यैवं महेशानि! १५८
विपरीतमभीप्सन्ति ३०७
विपरीतफलं दद्यात् १२०
विपरीतेन रमते ४७७
विपरीतेन वा देवि! ३९५
विपर्ययाद् भवेन्मृत्यु ४३३
विप्रा भ्रात्रादयो यस्य ४३३
विप्राराधनमात्रेण ३७८
विप्राः शिषावेदघोषैः ३५०
विफला शक्तिरहिता ४३९
विफलं तस्य तत् सर्व २७०
विभजेन्मातृकां देवि! ४१६
विभज्य पूजयेद् देवि! ४१४
विभूतिदर्शनं देव्यै ३०३
विभूतिभूषणो भिक्षां ४३०
विभूतिभूषणं देवं ३
विभूतिमतुलां प्राप्य ४३०
विभूतीरात्मनो यस्तु ३०३
विभूतीरात्मनः पश्येत् ३०३
विभूषणं ततो दद्यात् १६९
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ५१३
विमर्शावनिसंप्राप्तम् ५०१
विमला जयिनीमध्ये ६२,३४३
विमले पूर्णचन्द्रस्य ७३
विमानगामिभिर्यानैः ३३२
विमानवरमारुह्य २६७
विमुक्तमुखवस्त्रस्य ३६३
विमुक्तो मातृहत्याहौः १०२
विमुखास्तस्य दुर्बुद्धेः ४८६
विमुखी चेत् तदा तस्य २२८
विमुखी त्वं च दैत्यानां २२८
विमुखो दम्भमाश्रित्य ४८६
विमुखः परनिन्दासु ३४५
वियद् विष्णुयुतं देवि! २५
विरतोऽहं तदा तस्य ११
विलिख्य च मुकुन्देन्दु ४०६
विलिप्य विविधैर्गन्धैः ४१९
विलिप्याऽथ पुनश्चक्रं ४२०
विलीनाः सन्तु मूलेन २७९
विलुप्तप्रत्यययाकार ५०६
विलोक्य भगवान् विष्णुः ९७
विवदिष्यन्ति संमूढा ११
विविक्तदेशे च सुखासनस्थः ५१३
विविधाश्चैव योगिन्य ४९
विवेकिनां विवेकाय ७५
विंशेदच्छामृतं दिव्यं ३९९
विशुद्धदेहवदनः ३४५
विशुद्धान्तर्मनाः पूतो १९६
विशुद्धिं तनुते यस्मात् ८८
विशुद्धौ विन्यसेद् देवि! १३९
विशुद्धं पद्ममाख्यातं ८८
विशेषात् त्रिपुरातन्त्रे २६१
विशेषार्घ्यपदात् पात्रं १९०
विशेषार्घ्यादिकं देवि! १८७
विशेषार्घ्योदकेनैव ३५८
विश्वकर्मादिनिर्माण १८२
विश्वाकारप्रथायास्तु ३८५
विश्वातीतां ज्ञानरूपां १६३
विश्वात्मनि महामन्त्रे ५०६

विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वम् ४७१
विश्वामित्र इति ख्यातो २
विश्वासाद् गुरुवाक्यानां ३५९
विश्वेदेवाः सयक्षाश्च ३१५
विश्वोत्तीर्णे विश्वमये ३९३
विश्वं शरीरमित्युक्तम् ८५
विषण्णवदनो ब्रह्मा ४६९
विषदस्युग्रहाणाञ्च ४८
विषमस्थो यदा वह्निः ४२५
विषयान् विषयी भुंक्ते १८५
विषशस्त्रजनैश्चोरै ४३३
विषशास्त्राग्निरुद्राणां ४८
विषुवायनयोर्द्वन्द्वे ३४८
विष्टभ्य कट्योः पार्ष्णी ११५
विष्णुक्षेत्रे महापुण्ये ३३२
विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं ८७
विष्णुना च पुरापीतं ४४२
विष्णुप्रिया सदा पातु ३६
विष्णुपीठे परासिद्धिः ३३३
विष्णुमेव हि सततं ४६४
विष्णुर्योनिं पदादिस्तु १९४
विष्णुलोकं समासाद्य ९
विष्णुः पिबत्यसौ वामं ४९०
विष्णोः पदं वह्नियुतं २५
विष्ण्वात्मशक्तिशब्द्रान्ते १५८
विसर्गाद् बिन्दुपर्यन्तं ८६
विसृज्यैवं महेशानीं २८०
विसंज्ञाममृतं पीत्वा ३८२
विस्तीर्णं सुमनोव्याप्तां १७६
विस्मिता विलयं यान्ति ४३९
विहीनः पात्रतैलाभ्यां २२२
वीक्षणं सर्वबीजेन १११
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्टा ४७३
वीतरागभयक्रोधो ३३८
वीरभावे स्थितः सोऽहं ४७३
वीराणां शस्यते सा हि ३७१
वीरासनमिति प्रोक्तं ७९
वीरेश्वराय वौषट् २०७
वृक्षमूलेऽथवा जप्त्वा ३३०
वृक्षादिभिरनाकीर्णा १०८
वृक्षेण वर्जितो दीपो २२२
वृक्षे दीपः प्रदातव्यो २२२
वृत्तत्रयं तु तद्बाह्ये ५७
वृत्तत्रयं महेशानि! ५७
वृत्तेन षोडशदलं ५६
वृत्तकेसरिभूतेश्च १७९
वृषणाधः पादपार्ष्णि ७९
वृषभोपरिसंस्थं तु ४
वेतालाश्च पिशाचाश्च ४९
वेदत्रयात् समुद्धृत्य २६३
वेदव्रतविहीनानां ९७
वेदशास्त्रपुराणेषु ३५,४५७
वेदसन्ध्यं त्रिसन्ध्यं वा ३१३
वेदादिमण्डिता चान्या १८
वेदादिसकला विद्या ३६१
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहं ५१६
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ५१३
वेदार्णैर्दक्षगुल्फेऽथ १४४
वेदार्थवन्महाशास्त्रं ९
वेदिकायां वरारोहे ३५६
वेदिकां वेदिकास्थाने १७९
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो ५१६
वेश्या नापितकन्या च ३१७
वेश्यास्त्वलङ्कृताः सर्वाः २६७
वैदिकैस्तान्त्रिकैः शुद्धा ४५८
वैदूर्यनवरत्नानि १९१
वैनतेयं समारुह्य ९
वैनायका महामन्त्राः १०

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं ४३५
वैष्णवान् वशगान् कृत्वा ३३३
वैष्णवी विष्णुरूपासि ३१९
वैष्णवी श्यामवर्णा च ६३
वैष्णवं तन्त्रमाचक्ष्व ८
वैष्णवं भावमाश्रित्य ३३३
वं अमृतात्मना विष्णुना ७५
वंशेष्टकाश्मधरणी ११३
वंशं वर्णस्थितां वामे १३७
व्यक्तयो विधाः सर्वाः ४८१
व्यक्ताद् गुप्तं महापुण्यं ४४३
व्यक्तीकरोति नित्या वः ५३
व्यजनैश्चामरैर्वापि २६६
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि १२९
व्यञ्जने मथनोद्भूते ४९९
व्यतिक्रमात्तु हीनः स्याद् ३२७
व्यतीते बहुकालेऽथ ४७०
व्यस्ताव्यस्तं ततो हुत्वा २६४
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे २४४
व्याधितस्य कदाचित् तु ४८
व्यापिनी पालिनी पश्चात् ४१५
व्यापिन्यश्चाष्टसंख्या वै ४१५
व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा ४७८
व्याप्ता पञ्चदशार्णैः सा ३८६
व्याप्येष्ववस्थिता देवि ३८६
व्यालचौरमृगादिभ्यो ४१६
व्युत्क्रमात् परमेशानि! १९
व्योमबीजत्रयेणापि ३८९
व्योमबीजं तु विद्यायै ३८६
व्योमातीते परे तत्त्वे ३९३
व्योमेन्दुमण्डलासक्ता ३९३

श

शक्तयस्तु स्वरा देवि! १२५
शक्तिकूटं तथा पातु ३६
शक्तिकूटं प्रवक्ष्यामि २५
शक्तिकूटं समुच्चार्य १५८
शक्तिक्षेत्रे शिवक्षेत्रे ३६९
शक्तितन्त्रेषु ये केचित् १०
शक्तितन्त्रं महादेव १२
शक्तित्रिशूलखट्वाङ्ग ४
शक्तिपदं समालिख्य ११५
शक्तिपूजासु विमुखः ४३९
शक्तिबीजं पुनश्चान्ते १९६
शक्तिबीजं वरारोहे १६
शक्तिभेदात्मिकां विद्यां ३०८
शक्तिभैरवसंयोगाद् ३०५
शक्तियागविधिं कृत्वा ४४०
शक्तियागं विना होमो ४३९
शक्तियुक्तो यजेद् देवीं ४५
शक्तियोगेषु यन्मांसं ४६०
शक्तिरूपा तु सा नाडी ८५
शक्तिर्महेश्वरो ब्रह्म ४२७
शक्तिर्महेशः कामश्च १७
शक्तिर्मादनशक्रश्च ३२
शक्तिर्मां सर्वदा पातु ४०
शक्तिर्हि जगतो मूलं ४५७
शक्तिशाम्भवभेदेन ३०७
शक्तिहीनस्तथा मन्त्री ४९०
शक्तिहीनं च मां वीक्ष्यं ४६९
शक्तेर्मुखं विना नान्यत् ३१०
शक्तेः पूजा सदा कार्या ४३९
शक्त्यै दत्वा पुनः शेष ४४२
शक्तौत्रिशूलिनीमन्ते ५०६
शक्तौ त्रिषवणस्नानं ३७६
शक्तौ दर्पं घृणां लज्जां ४३९
शक्तौ न विस्मयः कार्यो ४३९
शक्तिः सा सर्वभूतानां ४६२
शक्तिं परशिवेनैव ९४

शक्त्यन्तरं प्रवक्ष्यामि ४४७
शक्त्यन्ते परमेशानि! ३९८
शक्त्या युक्तो यदा देवि! २००
शक्त्या युक्तः सदा मन्त्री ४९०
शक्त्यासक्तः कथं देव ४५७
शक्रस्त्रिशूलीसर्गान्तं ४९५
शक्रादिसहिता देवाः ३५१
शक्रेण च पुरा पीता ४४२
शक्रं ललाटमध्ये तु ३९१
शङ्कुकर्णाय नन्दायै १३२
शङ्खघण्टादिकांस्तस्माद् २६७
शङ्खचक्रगदापद्मं २४८
शङ्खशुक्तिरजतस्वर्णैः १८८
शतपत्रासनारूढं ९८
शतभिषां लकारेण १३७
शतयोजनसंस्थानां ४५०
शतयोजनविस्तीर्णं १७७
शते सहस्रे लक्षे वा ३८३
शत्रुसंहतिसङ्कीर्णे १५०
शब्दब्रह्ममयः शब्दो ८८
शब्दमात्रं यदाकाशं ४७७
शब्दाकर्षणरूपाऽव्याद् ३८
शब्दाख्या मातृका रूपं ४५५
शब्दादिविषयैः सङ्गो ४८०
शमनभयविनाशं २५१
शम्भुना तां परां शक्तिं ८९
शम्भुप्रिया सदा पातु ३६
शम्भुभावे स्थिरीभूते ३९७
शयीत कुशशय्यायां ३७५
शरच्चन्द्रनिभं छत्रं १७९
शरच्चन्द्रनिभं छत्रं ४३१
शरच्चन्द्रनिभं शान्तं १०१
शरण्ये वत्सले मातः ३५८
शरत्काले च वैशाखे ३४८
शरदिन्दुप्रभं देवं ३११
शरीराकर्षणी पातु ३८
शरीराकारभूतानां १२०
शरीरं चापि त्त्वोत्थं ३५९
शरीरं तु मनुष्याणां ४२५
शरीरं. तेन जानामि २१६
शरीरं त्रिविधं प्राहुः ५७
शरीरं दृश्यते यद् यत् ४६०
शरीरं न्यासजालं तु ३२६
शरीरं विविधाङ्गं मे ४८५
शरीरं सुखदुखानां ४८२
शर्कराघृतसंयुक्तं ४१५
शर्करालोलितान् कृत्वा २३०
शल्यादिशोधनं कुर्याद् ३५०
शवर्गेण च वायव्ये २४५
शवोपरि समासीनां २८४
शशकस्य तु मांसेन २८५
शाकानेतान् महादेव्यै २३०
शान्तान्तकादिसंयुक्तं १२३
शान्तिकादीनि कर्माणि ४९
शान्ति चैव प्रयच्छन्ति ४९
शान्तिः शक्तिश्च शम्भुश्च ३८८
शापभ्रष्टेन गन्धर्वो २३
शाम्भवेन यजेद् देवं २००
शारिकाशुकबहुलैः १७६
शास्त्राणि चैव गिरिजे ५
शास्त्राणि विविधान्यत्र ७
शिखरेष्विन्द्रनीलेषु १७७
शिरसा प्रतिगृह्णीयात् ३१६
शिरसि मुखवृत्ते च १२४
शिरसो हृत्प्रदेशान्तं ४४१
शिरस्याधाय देवेशि! ३५१
शिरः कर्णग्रीवादीनि १६९
शिवचन्द्रौ त्रिशूलाढ्यौ ७३

शिवचन्द्रौ मातृकान्तं १९४
शिवचन्द्रौ मातृकान्तं ७३
शिवचन्द्रौ समुद्धृत्य १६
शिवबीजं वह्निसंस्थं १०६
शिवबीजं समुद्धृत्य २५
शिवरेखां समाश्रित्य ६४
शिववद् विहरेल्लोके ७७
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ १५२
शिववह्नी नियोज्यैव १५२
शिवशक्तिमयं ज्ञानं ४८४
शिवशक्तिमयं विद्धि ४५१
शिवशक्तिमयं विश्वं ३००
शिवशक्तिसमायोगाद् ३८४
शिवशक्त्याऽऽत्मसंघट्ट ३८४
शिवशक्त्यात्मना वर्ण १३२
शिवशक्त्योः समायोगो ९४
शिवहस्तेन शिष्यस्य ३६२
शिवाङ्गं पञ्चगव्येन ३७४
शिवानन्दानन्दमयीं ३०४
शिवालये शिवक्षेत्रे ३३२
शिवेन लिङ्गरूपेण ३९२
शिवेनैक्यं समासाद्य २८१
शिवो जयति सर्वत्र २९३
शिवो ज्ञानमयो देहे ४८४
शिवोत्कृत्यमिदं पिण्डं ४२६
शिवो दाता च भोक्ता २९३
शिवो नादाख्यसंयुक्त ३९१
शिवोऽहमिति निश्चित्य ३६२
शिवं गन्धं समासाद्य २९०
शिवं चन्द्रं तथा कान्तं २५२
शिवः शक्तिश्च सादाख्या ५०२
शिश्ना च यत् स्मृतं २७८
शिश्नोदरसुखो यस्तु ३४०
शिष्यमाहूय यत्नेन ३५८
शिष्यानुकूलमन्त्रेण ३५०
शिष्याय भक्तिहीनाय ४४
शिष्याय शान्तचित्ताय ४४
शिष्याय श्रावयेद् दिव्यः ३५९
शिष्यः सालङ्कृतो मौनी ३५५
शितांशुशतसङ्काश १८३
शीर्षादिपादपर्यन्तं ३६
शीर्षे कूटत्रयं पातु ३६
शीर्षे वश्यकरी देवि! ५१
शीर्षे संक्षोभणी पातु ३७
शुक्रधातुगते पश्चाद् १४३
शुक्रेण च तथा पीता ४४२
शुक्रं शिवो रजः शक्तिः ४८८
शुक्लपक्षे महादेवि! २१८
शुक्लवेशं विना देवि! ३०५
शुक्लाम्बरधरः शुक्लः ३०५
शुक्लाम्बरो भवेत् तत्र ३०७
शुक्लाम्बरसक्तचितां च १३९
शुक्लं तु चामरं दत्वा २४४
शुचिः समाहितो भूत्वा ४५
शुचीनां धर्मचर्याणां ३३७
शुद्धलाक्षामृताम्भोधि १२१
शुद्धस्फटिकसङ्काशा ६४
शुद्धस्फटिकसङ्काशं ७३
शुद्धस्फटिकसङ्काशं २२९
शुद्धस्फटिकसङ्काशं २४४
शुद्धो गुणमयं देहं २६९
शुद्धान्तःकरणो विज्ञो ३४०
शुद्धान्तःकरणो स्निग्धो ३६८
शुद्धोदकेन सम्पूर्णं ११९
शुभेशुभं वदेत् तस्य २५४
शुष्कपत्रं तु वातेन ५१२
शूद्रादीनां कथं देव! ९७
शून्यमध्ये वसेद् वायुः ४५३

शून्यरूपे परे स्थाप्य १६५
शून्यागारे विहारे च ६१
शूलं डमरुकं चैव १४१
शूलं डमरुकं चैव १३९
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि ५
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि ४११
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि १६१
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि ५१०
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि २१
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि ७०
शृणु सर्वांगसुभगे ३५
शृणु देवि ! महद्गुह्यं १५
शृणु देवि ! महाविद्यां १८
शेते सुप्तभुजङ्गपोतकुटिला २
शेषयोर्विहितं मद्यं २२७
शेषिकां सुन्दरीं वक्ष्ये २८२
शेषं पूर्ववदुद्धृत्य १४३
शोणितैश्च समाक्रान्तां ३०७
शोधयेन्मूलमन्त्रेण ३५२
शोषदाहौ तथा भस्म १२०
शेषिकां सुन्दरीं तत्र २८१
श्राद्धे विवाहे दाने च १०५
श्रिया विष्णुः सरस्वत्या ४३६
श्रीचक्रमभितो देवि! २७२
श्रीपात्रं साधयेद् धीमान् १८९
श्रीपादुकां ततः पश्चात् २०४
श्रीपीठं च तथोङ्कारं १४५
श्रीबीजेनैव पाणिभ्यां २६२
श्रीफलैरतुलां लक्ष्मीं ४११
श्रीबीजं च पराबीजं १९२
श्रीमता बलरामेण ४४२
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या २२
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या ३२७
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा ११
श्रीरत्नपादुकेदत्त्वा १६९
श्रीवत्समुद्रया दृष्ट्या ११२
श्रुतिषु मथितसारं २५१
श्रुति-स्मृतिविरुद्धं च ३७३
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म ४९२
श्रुतिस्मृत्युदितं चापि ३००
श्रूयतां विमले भद्रे १२
श्रोत्रादिपञ्चकं तादि ५०२
श्रोत्रे रतिप्रियः पातु ३६
श्वासनिःश्वासयोगेन ५१२
श्वेतपद्मोपरिस्थं च १९९
श्वेतसर्षपमुद्गाभ्यां २१०
श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य ५१

ष

षट्कर्मशालिनी विद्या २८८
षट्कोणाख्यो नमस्कारो २३६
षट्कोणं पद्मगर्भस्थं ४४८
षट्कोणं विधिना चैव ४०६
षट्चक्रदेवतास्तत्र ८९
षट्चक्रभेदिनीं देवीं ४०३
षट्चक्रं च विनिर्भिद्य १६३
षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं तु ४५२
षट्त्रिंशत्तत्त्वलहरी ५०६
षट्पत्रे लिङ्गमध्यस्थे १२६
षडङ्गमविधायादौ १०२
षडङ्गयुवतीः पश्चात् ५८
षडङ्गानि च षट्कोणे १९२
षडङ्गोऽयं मातृकायाः १२५
षडध्वरूपयोर्देवि! ६७
षडाहुतीः षडङ्गेन २६४
षड्दीर्घस्वरसंभिन्नं २७५
षण्मुखाय विकर्णायै १३४
षष्ठस्वरसमायुक्तं १५४
षष्ठी या सर्वदेवानाम् ४७४

षष्ठेन तु तथा षष्ठीं ६०
षोडशर्तुर्निशा: स्त्रीणां ६१
षोडशाङ्गुलविस्तीर्ण ११४
षोडशाङ्गो महाधूप: २२१
षोडशानां प्रकारैस्तु १६७
षोडशार्णां महाविद्या १७
षोडशार्णां महाविद्या १८
षोडशार्णां महाविद्या १९
षोडशार्णां महाविद्या १९
षोडशीयं महाविद्या ३६
षोडशी सा सदा पातु ३७
षोडशीं षोडशे पूर्णे ६१
षोढाख्यां मातृकां देव १३१
षोढा न्यासविहीनो य: १४८
षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्त: १३१
षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्त: १४८

स

स उग्र इति विज्ञेयो २३७
स एव तत्त्वं सादाख्यं ५०२
स एव पण्डितो भूयान् १५
स एव मायापरिमोहितात्मा ५१४
स एव सुकृती लोके ३२३
स एव सुकृती लोके १८४
स एवादौ स चान्त:स्थ: २९२
स एवैश्वरतत्त्वं स्यात् ५०२
स कथं देवतायज्ञे ४५८
सकारणामभिध्यायेत् १८५
सकर्पूरं च ताम्बूलं १७०
सकला निष्कला चैव ४९६
सकलीकरणं कुर्याद् १९३
सकलीकरणं नाम २०३
सकलस्तु कथं जीवो ५०९
सकारस्थ: परो ज्ञेय: ३९६
सकारो जीव आख्यातं ३९५
सकारं मुखमध्ये तु ३९१
सकारं रक्तवर्णाढ्यं ३९५
सकार्मुकभुजेनैव २५०
सकृत् प्रणम्य दण्डवत् ३४७
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा २३६
सकृत् प्रदक्षिणं देवि! १०६
सकृदुच्चरिता विद्या २८२
सकृदेनामुपास्यैव १३
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ! १००
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ! १०१
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ! १०१
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ! १०१
सकृद् यस्तु पठेद् देवि! ४८
सकृद् यस्य हि भृत्यास्ते २६९
सकेशं मूषिकाक्रान्तं ९३
सगन्धाचमनं देवि! २११
सगुणाधिबला देवी ४७६
सङ्कल्पस्य विकल्पस्य ५०३
सङ्कल्पं भोजनालापं १४९
सङ्कोचयन् परामर्शी ५०७
सङ्कोचश्च विकासश्च ३९६
सङ्कोच: परमा शक्ति: ३९६
सङ्कोच: सविकासस्य ४९९
संक्षोभद्रावणाकर्ष २०४
संग्रामे च जयेच्छत्रून् १४८
संग्रामे शास्त्रवादे च ३३६
संग्रामे सूतके चैव ३३७
स च देवो हर: साक्षात् ४४
स च प्रदक्षिणो ज्ञेय: २३६
स च भावविशुद्धात्मा ४६४
सच्चितसुखमय: शम्भु ३९७
सच्चित्संयोगसंसिद्धि ४९५
सच्चिदात्मन्यनुस्यूता: ४८१
सच्चिदानन्दरूपोऽहम् ८४

सच्चिदानन्दरूपोऽहं ९०
सच्चिन्मयी क्रियासारा ४९९
स चेह लभते कामान् ३३६
सजलं शङ्खपात्रस्थं २१०
सजीवः प्राण इत्युक्तो ५१०
सञ्चितैर्वाणुभिस्तां च ४६६
सञ्चिन्त्य मन्त्री तन्मध्ये ९३
सतताभ्यासयोगेन १५०
सततं कुरुते यस्तु १२९
स तस्य शुभदो दीपो ११७
स तु सर्ववशं कुर्यात् १२८
सत्कुलस्थानजातीनां ३८३
सत्तर्कपदवाक्यार्थ १५
सत्तावाचिनि बीजेशि! ५०६
सत्त्वेन च समायुक्तो ५१०
सत्पण्डितघटाटोप ३८
सत्पताकावितानादौ २१३
सत्पात्रे सर्वदानानि २
सत्यमेव त्वयाख्यात ४९७
सत्ये चास्थिगताः प्राणाः ४२५
सत्यं किमपि तत्रैव ४९२
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् ४६१
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् ४८०
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं ५१
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं २७८
सत्यं सत्यं भवेद् रोगी ३२५
सत्सन्निधिः समज्ञेषु ३९७
सत्यैरपि न भाषेत ३७३
स दक्षिणे यमगृहे १७०
सदाचारमये देशे ३४०
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा २३
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा २३
सदानन्दमयो भूयात् २६६
सदा पुण्यजलस्नायी ३३१
सदा मच्चित्तरूपेण ७५
सदा विद्यानुसन्धानं ३६०
सदाशिवमहाप्रेत १५२
सदाशिवस्य बीजाढ्यां २५३
सदाशिवोपरिगतं १८०
सदाशिवोऽहमित्युक्त्वा ८४
सदा सर्वसमः शुद्धो ४६१
सदा साक्षिस्वरूपाद् वा ८२
स दाहाकर्षितो गन्ध २१५
सदिति तु समालोच्य ९०
सद्गुरुः स्वाश्रमे शिष्यं ३४८
सद्गुरोः कृपया लब्ध्वा ४८८
स दृष्ट्वा समुपाविष्ट ९
सद्गुरोराहितदीक्षो ३६६
सद्यो मार्जारमांसेन २८५
स धन्यः सर्वलोकानां २६५
स धूप इति विज्ञेयो २२१
स नरो देवदेवेशो २८
स निर्लज्जः कथं ब्रूते २६७
स निर्लज्जः कथं ब्रूते ४३९
स निर्लज्जः परः पापः २१३
सन्तोषित्वमगर्वित्वं ३४४
सन्तोष्य परया भक्त्या ४६३
सन्दर्शयेद् स्व-स्वबीज २०४
सन्दीपनादिकं कृत्वा १९६
सन्ध्याचतुष्टयं भद्रे! ३०९
सन्मात्रं चैव चिन्मात्रं ५००
स पूज्यः सर्वलोकेषु २३
स पूर्वमुदितं मन्त्रं ३९६
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन ३८६
सप्तधा प्रोक्षणं कुर्याद् ९४
सप्तधा मन्त्रितं कृत्वा २९०
सप्तमी मम मूर्तिर्या ४७४
सप्तमे सप्तमीश्चैव ६१

सप्तम्या मूलमुच्चार्य २००
सप्तरात्रोषितं तत् तु २२५
सप्तषष्टिप्रकृत्यर्णा ४९५
सप्तहाटकसंक्लृप्त १७८
स प्राप्नोति परां विद्यां २८५
स ब्रह्मा शिवः स इन्द्रः ५१५
स बाह्याभ्यन्तरं ज्योतिः ११७
स बाह्येन तु तेनैव १७०
स भवेत् खचरो देवि! २३
सम आसन आसीनः ४५१
समकायशिरोग्रीवो १३०
समकायशिरोग्रीवं १६७
समग्रैश्च सखण्डैश्च ४११
समता सर्वभूतेषु ४३४
समत्वभावना नित्यं ८१
स मध्यमो नमस्कारो २३७
स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो ३६८
स मन्दाग्निः सामयो वा ३५७
समयाचारयोगेन ४८७
समयाचारसम्पन्नो २३
समयाचारसङ्केतं ३१४
स मर्त्यो मृत्युमाप्नोति १४८
समर्थो जीवयेत् स्नेहात् ३०२
समर्प्योपायनं भक्त्या २९२
समशत्रौ च मित्रे च ४३४
समस्ततत्त्वभावेन ५३
समस्ततत्त्वसंयोगाद् ५३
समस्तभुवनाभोग ४००
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं ५१७
समस्तेन तथा देवि! ६०
समाधिना समागत्य १६५
समाधिमाहुर्मुनयः ८१
समाधिः संविदुत्पत्तिः ८२
समाधौ सुखरूपोऽसौ ८३
समाने तु स्थिते वह्नौ ४२४
समानं पञ्चगव्यानां ३५२
समावाह्य यजेद् देवीं ५८
समाश्रयन्ति योगाद्यैः ४६३
समासाद्य च तांस्तांस्तु ४९२
समाहितेन मनसा ८०
समिद्धेऽग्नौ महादेवीं ३५७
समीकृतैस्तु यो गन्धः २१६
समीपे चारणाद्वापि २०६
समुच्चरन् बलिं दद्यात् ११०
समुद्रा सायुधा चैव २५४
समुद्रे लीयते तद्वत् ८३
समुन्नीयपरे हंसे ४६६
सम्पत्तौ च निरानन्दः ४३०
सम्पूज्य देवीरूपां तां ५१
सम्पूज्यैव चरेद् होमं २८५
सम्पूर्णं कुम्भवद् वायो १६२
सम्पूर्णावस्थितेर्याञ्चा २०३
सम्पूर्णं कथयेशान! १७१
सम्प्रदायपरिज्ञानं ३५९
सम्प्रदायाः प्रपूज्यैव २४७
सम्प्रदायो महाबोध ३८५
सम्प्राप्नोतीप्सितं देवि २६२
सम्प्राप्य विपुलान् भोगान् ४७
सम्बन्धो विदितो लोके ३८७
सम्भाष्याऽभिमुखीं शक्तिं ४२८
सम्मार्ज्य सव्यहस्तेन १२३
सम्मुखमुद्रया देवीं २०४
सम्मुखौ तु करौ कृत्वा २४९
सम्यक् सम्पूरितः पुष्पैः २०२
स याति परमं भावं ८३
सरलं देवकाष्ठं च २२१
सरस्वतीं महालक्ष्मीं १०९
सरस्वत्या महामन्त्राः १०

सरित्सरोभिरच्छोदैः १७६
सरुजा वर्ष्यणा देवि ४२५
सरोरुहद्वयं शाक्तैः ३८९
सर्पाणां दर्शनादेव ४०१
सर्वकर्मपरिभ्रष्टाद् ८
सर्वकामदुघं दिव्यं १७६
सर्वकार्येषु सर्वत्र १४
सर्वकालेषु सर्वत्र ४३४
सर्वक्षेत्रेषु पीठेषु ३३५
सर्वगं सर्वभूतेशं ४६
सर्वगः सर्वदेहस्थो ५११
सर्वर्ध्युपचयैरर्क १७७
सर्वज्ञ सर्वलोकेश ७
सर्वज्ञा च गृहे पातु ३९
सर्वज्ञानसुसम्पन्नं ४४४
सर्वज्ञा पुरतो देवी ६७
सर्वज्ञा हृदये पातु ४०
सर्वतन्त्रार्थवेत्ता च ३४४
सर्वतन्त्रेषु यद्गुह्यं १७१
सर्वतन्त्रेषु यन्नोक्तं ४३
सर्वतीर्थमयी देवी १६
सर्वतीर्थामृतैः स्नातो ११६
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन ४२०
सर्वतेजोमयी सा तु ८६
सर्वतेजोमयं तत्तु ८७
सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यै १७५
सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यं १७६
सर्वत्र दुर्लभो भूत्वा १२९
सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं २३४
सर्वत्रैव जयप्राप्ति ४३
सर्वथा भोजयेद् विप्रान् ३७८
सर्वदा देवताभावः ४२९
सर्वदा दृढभक्तिश्च ३४५
सर्वदानन्दहृदयश्च २३
सर्वदानन्दहृदयां ३०
सर्वदानन्दहृदयो ४३१
सर्वदा भाषते यस्मात् ३९७
सर्वदा युज्ज(ज्य)ते लोके ३२९
सर्वदा सर्वकार्येषु १०४
सर्वदा सर्वकार्येषु १०५
सर्वदा सर्वदाः सर्वाः ४३२
सर्वदेवमयी सा तु ८६
सर्वदेवमयं देहं ४४१
सर्वदेवमयं सूर्यं १०६
सर्वदेवश्च रुद्रश्च १०१
सर्वधर्मरताः शुद्धाः ६
सर्वपापविनिर्मुक्तो १०२
सर्वपापविनिर्मुक्तं ३६२
सर्वपापहरा पातु ३९
सर्वपीठमयश्चापि १२८
सर्वप्रियङ्करी पातु ३९
सर्वबाधाविनिर्मुक्तः २७३
सर्वभूतमिवात्मानं ४२७
सर्वभूतवशी स स्याद् ९२
सर्वभूतस्थमात्मानं ४८२
सर्वभूतस्थमात्मानं ५१५
सर्वभूतहिते मातः २०१
सर्वभूतानि सञ्चिन्त्य ४८२
सर्वभूतालये सुप्ते ४५
सर्वभूतेषु चात्मानं ८३
सर्वभूतेष्वनुकम्पा ४३५
सर्वभूषणवर्गेषु २१३
सर्वमङ्गलसम्पत्त्यै ३५०
सर्वमङ्गलसम्पन्नो ९०
सर्वमन्त्रमयश्चायं १२८
सर्वमन्त्राधिकारी स्यात् ३६६
सर्वमन्त्रासनायान्ते १५१
सर्वमन्त्रासने देवि! १८१

सर्वमाच्छादितं कार्यं ११२
सर्वमृत्युप्रशमनी ३९
सर्वयज्ञमयं नित्यं २२९
सर्वयज्ञेषु पूजासु १२८
सर्वयज्ञेषु सर्वत्र २५६
सर्वयौवनसम्पन्ना ९६
सर्वरक्षाकरे चक्रे २५०
सर्वरोगहरे चक्रे ६७
सर्वर्तुकुसुमोपेतै १७५
सर्वलक्षणयुक्ताय ४४
सर्वलक्षणहीनोऽपि ५०
सर्वलक्ष्मीमयीं साक्षात् १८४
सर्ववर्णात्मकं बिन्दु ३२९
सर्ववश्यकरी शुद्धा ४१६
सर्वविघ्नसमूहं तं ४१२
सर्वविद्यामृतैः पूर्णं ४४४
सर्वविद्राविणी चाधो ३८
सर्ववैरिभये पातु ३९
सर्वव्याधिषु सर्वत्र ३९
सर्वशक्त्युपभोगे तु ३९७
सर्वशङ्काविनिर्मुक्तः ४४०
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्य ११७
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यां १८३
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यो ४३१
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यं २५०
सर्वश्रृङ्गारवेशाढ्यं ४५
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णु ३३६
सर्वसङ्कल्पकार्येषु ३९
सर्वसत्त्ववशं ब्रूयात् १३९
सर्वसम्पत्प्रदा पातु ३९
सर्वसम्मोहिनी पातु ३८
सर्वङ्गिद्धिप्रदाग्रे तु ६६
सर्वसिद्धिप्रदा देवी ३९
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं ३७१
सर्वसिद्धिप्रदा मुख्याः ६६
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे ६८
सर्वसिद्धिप्रदं कुण्डं ४०५
सर्वसिद्धिप्रदं वस्त्रं २१४
सर्वसौभाग्यकाले तु ३९
सर्वसौभाग्यजननं ३४
सर्वसौभाग्यदे चक्रे ६६
सर्वसौभाग्यदे चक्रे २४७
सर्वसंक्षोभणी चोर्ध्वे ३८
सर्वसंक्षोभणीमुख्या २४१
सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः ६६
सर्वसंक्षोभिणी शक्तेः ६६
सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां ३०
सर्वसंक्षोभणं नाम ६५
सर्वसंक्षोभमुद्राया २४३
सर्वागमैकतत्त्वज्ञ ३
सर्वांगलेपनं कृत्वा २९०
सर्वांगसुन्दरीं हृद्यां १८५
सर्वाण्येतानि दह्यन्ते १६५
सर्वात्मनाऽऽविष्टचित्तं ४
सर्वाधिकं होमकर्म २६४
सर्वानन्दकरी देवी ३९
सर्वानन्दमयी देवी ४०
सर्वानन्दमये चक्रे २५३
सर्वान् मन्त्रान् सकृद्वापि ३६४
सर्वापत्तारिणीं विद्यां २८२
सर्वापायेषु सर्वत्र ४८७
सर्वाभावे एकंतरा ३२१
सर्वारम्भे सदा पातु ३९
सर्वार्थसाधक चक्रे ६६
सर्वार्थसाधके चक्रे २४८
सर्वार्थसाधकं देवि! ४४४
सर्वार्थसाधनी शक्तिः ३९
सर्वालङ्कारसम्पन्ना ६५

सर्वाशापूरके चक्रे ६४
सर्वाह्लादकरी शक्ति ३८
सर्वाः सर्वत्र देवेशः ४५७
सर्वे ते तृप्तिमायान्ति ३१५
सर्वे दिव्या भविष्यन्ति ४६४
सर्वे देवाः स्थितास्त्वग्रे २४३
सर्वेऽप्याविर्भवन्त्येते ४४३
सर्वे ब्रह्मात्मना देव! ७
सर्वे मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति ३९६
सर्वेश्वरी काम्यकार्ये ३९
सर्वेश्वरी यवर्गेण १५४
सर्वेषामधिकं क्षौद्रं २१२
सर्वेषामुत्तमं प्रोक्तं ३३४
सर्वेषामेव देवानां ४८६
सर्वेषामेव पापानां १६५
सर्वेषामेव पात्राणां १८८
सर्वेषामेव मन्त्राणां ३६८
सर्वेषामेव मन्त्राणां ४९६
सर्वेषामेव हिंस्राणां ४७
सर्वेषां देवतादृष्ट्या १८७
सर्वेषां देवमुच्चार्य १९७
सर्वेषां पुष्पजातीनां २१९
सर्वेषु गन्धजातेषु २१५
सर्वेषु दर्शनेष्वेव ३६१
सर्वेषु पुष्पजातेषु २१८
सर्वैः शुक्लमयैर्द्रव्यैः ३०५
सर्वैश्वर्यप्रदा मार्गे ३९
सर्वोन्मादकरीं मुद्रां २४९
सर्वोन्मादनशक्तिर्मां ३९
सर्वोपचारसहितं २७३
सर्वं तत् परमेशानि! २१२
सर्वं तत्परमं रूपं २८
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु २९१
सर्वं ताम्रमयं कुर्याद् १८८
सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं २१७
सर्वं प्रशमनं याति ४३८
सर्वं सुरभिगन्धाढ्यं २२९
सर्वं हविरिदं जुह्वन् ५०६
स वाग्मी पण्डितो धीमान् १२९
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो २३७
सविकल्पस्य देवेशि! २२६
सविकल्पो यदा देवि! २२८
सविसर्गं महादेवि! २८३
सवीर्या सिद्धिदा विद्या १६
सवृन्तैः कदलीस्तम्भैः ३५१
सव्यहस्ते समादाय २९०
सव्यं दक्षिणदेशे तु २५२
सव्यं पादमुपादाय ११५
सशर्करं पक्वदुग्धं २३०
सशिखः शब्दरहितो २२२
स सकृद् वैदिकैर्मन्त्रैः ४५८
स सर्वकामानासाद्य २३६
स सर्वकामान् सम्प्राप्य १२९
स सर्वान् लभते कामान् ४८
सहकाररसं तत्र २२५
सहजानन्दसन्दोहैः ३०८
सहस्रदलभृङ्गार्याः ४५२
सहस्रदलमध्ये तु ३९१
सहस्रदलमध्ये तु ४५३
सहस्रैकप्रमाणेन २८
सहस्रैकप्रमाणेन ३०
सहस्रैकप्रमाणेन २८५
सहस्रैकप्रमाणेन २८६
सहस्रारे महापद्मे ३९९
सहस्रैकविधानेन २८५
सहस्रं प्रजपेदादौ ३१३
सहस्राराम्बुजं देवि! ८८
सहस्रारे परे पद्मे ४५१

सहस्रारे महापद्मे ४६६
सहितायेति चोक्त्वा वै १०६
सहितं चन्द्रबिन्दुभ्यां २७३
सहितं बलिमालिख्य २७६
सा एव पञ्चमी विद्या २१
सा एव पञ्चमी शक्तिः २२
सा एव हि जगत्सर्वं २२
सा एव हि परा सूक्ष्मा ८६
साग्रं सहस्रं सञ्जप्य ४१५
साङ्गं भवति तत्सर्वं २९६
सा च त्रयीमयी प्रोक्ता ४०३
सा तत्त्वसंज्ञाचिन्मात्रा ५३
सा त्वमेव न मे नाहं ४७३
सा त्वमेव न मे नाहं ४७४
सात्त्विको दिव्यभावस्तु ४३२
सात्त्विकं तत्र कुत्रापि ५
सात्त्विकं तद् विजानीयाद् ३००
सात्त्विकं मोक्षदं प्राहुः ५
साधकस्य विनाशस्तु ४०३
साधका गुप्तरूपाश्च ४३८
साधकाय प्रयच्छन्तीं २००
साधकाक्षिप्तहृदयां ४५०
साधकोऽपि च तत्त्वज्ञो ४४०
साधकः स्नानदानात् तु २१२
साधनं च प्रवक्ष्यामि २७
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां ९४
साधयित्वा प्रकारेण २३१
साधारं स्थापयेद् देवि! ११९
साधु पृष्टं त्वया भद्रे २९४
साध्यासनाय मूले च १५२
साध्यं च कीदृशं देव! ४३८
साध्यं च विलिखेत् तत्र ४४०
सान्तं वह्निसमायुक्तं २५
सामान्यं च विशेषं च १८९
साम्ना मुखं समाख्यातं ४०३
सायाह्ने चिन्तयेद् देवीं ९६
सायं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा ३०६
सारभूते परे तत्त्वे ४९२
सारमुद्धृत्य भगवान् ३
सारस्वतेन बीजेन २६२
सारात् सारतरां विद्यां ३२
सार्वभौमपदं लब्ध्वा २६५
सार्वभौमपदं लब्ध्वा २६८
सार्षपश्चाधमः प्रोक्तः २२१
सार्षपं मूलकं चापि २३०
सावित्रीवामपार्श्वस्था २४३
सा शक्तिः सर्वदा पातु ३७
साश्रुपातं विना पञ्च ४३५
साहमित्यस्य सततं १८४
सिञ्चता वारिणा स्नातां १६८
सितगुञ्जां वपेत् तत्र २८८
सितासन्मिश्रितां दत्त्वा २३१
सितां च पञ्चगव्यं च २१२
सितैर्वा परमेशानीं २०८
सितोपदंशमद्यं च २३०
सिद्धचारणगन्धर्वैः १७८
सिद्धयस्तु सुराः साक्षाद् ४३५
सिद्धयः सकलास्तस्य ३२५
सिद्धयः सकलास्तस्य २७२
सिद्धयः सकलास्तूर्णं ३६५
सिद्धान्तश्रवणं चैव ७८
सिद्धानामालये पातु ३९
सिद्धासने ततः पश्चात् १८१
सिद्धिप्रदा भवेयुस्ते ७
सिद्धिहानिर्भवेत् तस्य ३२४
सिद्धिं दृष्ट्वा वशिष्ठस्य २
सिद्धे मनौ परावाप्तिः ७७
सिद्धैः स्वशक्तिमालोक्य ३४९

सिन्दूररजसाक्रान्तं ११७
सिन्दूररजसा तत्र ५४
सिन्दूरसदृशाकारा ३३
सिन्दूरेण ललाटेऽस्याः ४४०
सिन्दूरैस्तिलकं देव्यै २६६
सिसृक्षया मया पूर्वं ४७६
सिसृक्षयापि नीचास्य ४७६
सिसृक्षोः प्रथमः स्पन्दः ५०२
सीत्कारो मन्त्रजपनं ४९१
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् ७९
सुकारं चिन्तयेद् देव! ९८
सुगण्डमण्डलाभोग १८२
सुगन्धिदिव्यतैलैश्च १६८
सुगन्धिपुष्पमालाभिः १३८
सुगन्धिशालिजं चान्नं २२९
सुगन्धिसलिलैः शुद्धैः ९२
सुगन्धिस्पर्शसुखदैः ४८६
सुधार्णवासने तत्र १८०
सुधावर्षिमुखाम्भोजं ४६
सुधावृष्ट्याऽभिपतन्त्या १६४
सुनयनी चातिसूक्ष्मा च ४५४
सुन्दरीसदृशाः सर्वाः ६५
सुन्दरः सुमुखः स्वच्छ १६
सुन्दर्याः सदृशी ध्येया ६६
सुपक्वानिसुगन्धीनि २३२
सुप्रकाशो महादीपः ११७
सुभक्त्या प्रणमेद् यस्तु ४३९
सुमुखीति ततो देवि! २८३
सुरा नराश्च पितरो २७७
सुरासुरमनुष्याणां ४९
सुरासुरमुनीन्द्राणां १३
सुरास्त्वामिति मन्त्रैस्तु ४१६
सुवर्णरौप्याताम्रादि ११८
सुवासिन्यो मदप्रौढा २६७
सुशीतलं मया देवि! २१०
सुस्नातं शुद्धवेशं च ३५२
सुस्निग्धदेहवदनो ४२९
सुषुप्तिकाले सकले विलीने ५१४
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे ४७९
सुषुम्ना मध्यगं सम्यग् ८०
सुषुम्नावर्तिने चक्रं ४१८
सुषुम्नावर्त्मना नित्य ४५५
सुहृदो ज्ञातयश्चापि ३०१
सुहृदो वर्ष्म खादन्ति ३०१
सूक्ष्मा गतिस्तु धर्मस्य ४५७
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं ५१६
सूक्ष्मरूपां च तां विद्धि ४६६
सूतकद्वयनिर्मुक्तः ३८३
सूतकद्वयसंयुक्तो ३८३
सूत्या सूतिगृहस्यापि ४८
सूत्रावली केशपाशे १६९
सूत्रावली केशपाशे ४१
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र १६४
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ३९१
सूर्यकोटिप्रतीकाशं १९२
सूर्यकोटिप्रतीकाशं ३०५
सूर्यमण्डलमध्ये तु ९६
सूर्यमण्डलरूपं तं १९०
सूर्यमण्डलसंस्थायै १०६
सूर्यमुख्यान् महादेवि! १३५
सूर्याचन्द्रमसोर्ज्योति २२३
सूर्याय नम उच्चार्य १३५
सूर्यं च दर्पणं दद्यात् ४५३
सृष्टिक्रमं महद् गुह्यं ६९
सृणिपाशधराः सर्वा ६४
सृष्टिशक्तिं मयि त्वं च ४७२
सेनान्ये चैव यामिन्यै १३४
सेयं सप्तदशी विद्या १८

सैवमालोच्य स्वर्गादौ ५३
सैव विश्वेश्वरी देवी २२
सैव सर्वेश्वरी देवी ३८६
सैव श्रीपरेत्युच्चै ४९५
सैवाहमित्यभेदेन ४७
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति १४८
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति ४०३
सोऽतुलां श्रियमाप्नोति २३०
सोपस्कारैश्च वटकै ४११
सोऽपि चाभूत् स्वयं कर्ता ३४
सोऽपि लोकान् विजित्यैव १७०
सोऽपि लोकान् विभिद्यैव १७०
सोऽपि श्लोकान् महेशानि! १५
सोमसूर्याग्निरूपाः स्यु ४१३
सोमार्कानलसंघट्टात् १०४
सोमोऽङ्गिरा विश्वेदेवा १०१
सोमः शक्तिः शिवः सूर्यो ३०४
सोऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकारी १९
सोऽहं ब्रह्म न संसारी ८२
सोऽहं भावेन भावेन ३९७
सोऽहं भावेन भावं तु १४
सोऽहमित्यस्य सततं १८७
सौभाग्यं प्रथमं कूटं २७
सौमुख्यं च सुवेशश्च २७०
सौम्यं गोरोचनापीतं १०१
सौरभेणातिसौरभ्यात् २७०
सौरमण्डलतः पश्चात् १९१
सौरी च वैष्णवी चैव १०४
सौवर्णे राजते वापि २३२
सौवर्णं राजतं ताम्रं ३५६
सौवर्णं राजतं वास्त्रं २०९
सौषुम्नाध्वन्युच्चरितं २६१
सौः पातु तथा पार्श्वे ३५
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च ४५५
संन्यासी स च विन्यासी १८४
सम्पूज्य त्रिपुरां देवीं ३२०
सम्प्रभिन्नं जगदिदं ४८८
सम्प्राप्ता स्वरदेवता ४९८
सम्मोहिनीं समुद्दिश्य ४१५
संयुक्तं संयुतं कृत्वा २५६
संयोज्य चाऽविवेकेन ४७९
संयोज्य निविडाःकार्याः २४७
संयोज्य परमेशानि! १५२
संवर्तकं महेशानि! १५४
संविदानन्दहृदयः ४४९
संविदा योजयेद् देवि! ४४९
संविदासवयोर्मध्ये ४४९
संविद्वेद्यपदं ब्रूयात् ३५४
संविद्वेद्यं महाचक्रं ५८
संवेशयेद् विधानेन ३१८
संश्लिष्टावुच्छ्रितौ कुर्यात् २०४
संसारनिगडैर्बद्धः ४६२
संसारनिगडैर्बद्धः ४६८
संसाराम्बुनिधेः पारं ४५९
संसारार्णवमग्ना हि ५०९
संसारसागरोत्तार ४७१
संसारसागरं धीरो ४५४
संसारोत्तारणं मुक्तिः ७८
संसारः स्वप्नतुल्यो हि ४८१
संसिद्धेः कारणं कान्ता ४३५
संसिद्धेः कारणं देवि! १४
संस्कृताऽसंस्कृता वापि ३१७,३२१
संस्कृत्य परमेशानीं! ११०
संस्कृत्य विविधैर्द्रव्यैः २३४
संस्कृत्य वेशवाराद्यैः २२९
संस्थानपौरुषेणैव २७०
संस्थापनं भवेद् देवि २०३
संस्थाप्य वामभागे तु ४५

संस्थाप्य सहसा देवि! ११७
संस्थिता परमेशानि! ४६५
संस्रवन्तीं सुधाधारां ३०८
संहष्यिामि लोकेश ४७२
संहारकरणे योग्यं ४७३
संहारमुद्रयाऽऽदाय २८०
संहारशक्तिमीशाने ४७२
स्कन्धयोर्हृदयप्रान्ते १२६
स्कन्धयोर्हृदयप्रान्ते १२७
स्तनयो: कण्ठदेशे च १५७
स्तनौ दहनशीतांशू ४०२
स्तनौ विष्णुप्रिया पातु ३६
स्तुतिर्नतिर्जपश्चैव २७१
स्तुत्या नत्याऽथ सन्तोष्य ३१६
स्तुत्वा प्रणम्य विधिवद् २०७
स्तुवन्नानाविधै: स्तोत्रै: २३४
स्तुवन् नानाविधै: स्तोत्रै: २६५
स्त्रियो देवा: स्त्रिय: प्राणा: ४४५
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् ४९०
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत् त्यक्तं ४५७
स्त्रियं ममपरां विद्याद् ४६०
स्त्रीणामपीह पुंरूपो ४२७
स्त्रीणां समूहमालोक्य ४२८
स्त्रीपुंनपुंसको भेद: ४२७
स्त्रीविद्वेषादिकं चैव ३६१
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्य ३७३
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्य ४४५
स्त्रीस्वन्नपानादिविचित्रभोगै: ५१४
स्त्रीस्वभावान्महादेवि ३४
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा २८४
स्थानान्येतानि जीवस्य ५१०
स्थापयित्वा तत्र मालां २५९
स्थापयित्वा सितां तत्र २२५
स्थापयेत् कुम्भवक्त्रेषु ४१४
स्थापयेत् पूजयेत् सार्द्धं ४८७
स्थापयेत् सुरया पूर्णं ४४०
स्थावरा जङ्गमाश्चैव ३१५
स्थावरं जङ्गमं चैव २८२
स्थितिक्रमेण पूजेयं ६९
स्थितिरूपे नमस्तुभ्यं ४७१
स्थित्वा तव पुरे श्रीमान् १७०
स्थित्वा देवीपुरे श्रीमान् २३१
स्थिरजङ्गमशङ्काख्य ४०१
स्थूलत्वे स्थूलरूपा सा २२
स्थूलरूपेण सा देवी ४६५
स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन २२
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन २९८,३००
स्थूलं समं तथा नाम ४०२
स्नात्वाऽऽनीतै: पर्युषितै: २२०
स्नानोदकं तथा छायां ३४७
स्नानं च त्रिविधं प्रोक्तं ९४
स्नपयित्वा महादेवीं २१३
स्नपयित्वा महादेवीं २१३
स्नपयेत् प्रथमं देवीं २१३
स्नपयेद् गन्धपुष्पाद्भि: ३१८
स्नपयेन्मूलविद्याभि: ३६३
स्नायाच्च पञ्चगव्येन ३७४
स्नायाच्च विमले तीर्थे ९४
स्नायात् सुगन्धिसलिलै: ४२९
स्निग्धं सुमधुरं यन्त्रं ३३८
स्पर्शनात् पूजयेद् यस्य ४८८
स्पर्शने पादुके देवि! ९४
स्पर्शमात्रं तु यद् वायु ४७७
स्पर्शयित्वा किमप्यङ्गं ३६४
स्पर्शाकर्षणरूपांमां ३८
स्पृशन् जपेत् कराग्रेण ४२१
स्पृशन्तं परमेशानं २७६
स्फाटिकादिभिरप्यत्र २५७

स्फाटिके निर्मले देवि! ४६१
स्फुरत्त्रिकोणमध्यस्थं ३९८
स्फुरन्मुकुटमाणिक्य १८१
स्फुरन्मयूखसंघात १८१
स्मरणात् कर्मणामाद्यं ९०
स्मरेत् कल्पतरुं तत्र १७६
स्मितपूर्वो महादेवः ४
स्मितमाधुर्यविजित १८२
स्मृत्याऽऽकर्षणरूपाऽव्या ३८
स्मेरपूर्वाभिभाषित्वं ३४४
स्रक् चन्दनं च वस्त्रादि ४३०
स्रग्‌र्भिविचित्रपुष्पाभिः ९४
स्रग्‌भिर्विचित्रपुष्पाभिः ४३१
स्वकान्तां परकान्तां वा ४३७
स्वकीयचरणं मूर्ध्नि ३६४
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते ४७८
स्वकीये कुसुमं दद्याद् १८७
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्त ७५
स्वदक्षे वामतो देव्या ११७
स्वदेहस्थं यथा सर्प १६५
स्वधर्मानपरित्यज्य ४८९
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां २२८
स्वधान्तेन पितृभ्यस्तु ३०१
स्वधेत्याचमनं प्राज्ञि! २०६
स्वप्नमानवमन्त्रोऽयम् ३५३
स्वप्नमानवमाश्रित्य ३५३
स्वप्ने कथय मे तथ्यं ३५३
स्वप्ने च जीवः सुखदुःखभोक्ता ५१४
स्वप्ने शुभाशुभं दृष्टं ३५३
स्वबोधे नान्यबोधेच्छा ४८०
स्वभक्तिः सकला चास्मै ३५९
स्वभावतो न जानन्ति ४६५
स्वभावतः सदा शुद्धं १२०
स्वभावसच्चिदानन्द ४७९
स्वभावः प्रतिभस्तद्वत् ३४३
स्वयमक्षोभितो भूत्वा ३०
स्वयमक्षोभितो भूत्वा ३२१
स्वयमावेशनं चैव ३१३
स्वयमेव हि होताऽत्र ३६१
स्वयम्भूकुसुमैः पूजां ३१
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं ३२०
स्वयम्भूपुष्पयोगेन ३१
स्वयम्भूकुसुमं तत्र १९०
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं ३१
स्वयं च साधकश्रेष्ठो १४८
स्वयं तद्रहितं कृत्वा ३८३
स्वयं प्रकाशते ब्रह्म ४८८
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा २९४
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा ४८१
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा ३६२
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा १६०
स्वयं यदि भवेन्मूढो ३२५
स्वयं विकसितैर्भुक्तैः २२०
स्वयं हृद्यं स्थिरं स्वादु ४२४
स्वरव्यञ्जनभेदेन ३८६
स्वराद्यं च द्वितीयं च १३६
स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य १३५
स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य १३८
स्वरान् युग्मक्रमेणैव ३६९
स्वराः षोडश सौम्यास्ते ४१३
स्वरेण दीर्घयुक्तेन १२५
स्वरैः षोडशकैर्युक्तं ८८
स्वर्गदा मोक्षदा चेयं २८२
स्वर्गमोक्षविहीनानि ५
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले २७
स्वर्णपात्रे जलं कृत्वा १६८
स्वर्णे वा राजते पात्रे २२५
स्ववामोरुगतां पद्मां २४८

स्ववामोरुगतां शक्तिं २५०
स्ववामे मण्डलं कृत्वा १६८
स्वविद्यां संस्मरन् कुर्यात् १०५
स्वविभवान्नरूपा वै ३२७
स्वशक्त्या परशक्तिं च ४४७
स्वशब्देन परं लिङ्गं ८७
स्वशरीरे जगत् कृत्स्नं ४७५
स्वस्वबीजेन मुद्राया २७०
स्वस्वमुद्राकराः सर्वा २०५
स्वस्वस्थानस्थितावस्थै १७७
स्वस्तिकं गोमुखं चैव ११५
स्वस्तुतौ परनिन्दे च ४२८
स्वेच्छया सूचितं विश्व ५०२
स्वाङ्गभूतेषु भावेषु ५०२
स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे च १४१
स्वापकालं विना देवि! ३१२
स्वाभिषेकाघमर्षौ च ३७७
स्वाविद्यासुदृढाभ्यासाद् ४८५
स्वाहा त्वं देवयज्ञेषु ४७०
स्वाहान्तेन च होतव्यं २६४
स्वाहान्तेन च देवेभ्यो ३०१
स्वाहान्तो मनुरित्युक्तो २७८
स्वाहावषड् हुं च वौषड् १२५
स्वेच्छा-ऋतुमती या स्याद् ३२०
स्वेच्छा-ऋतुमतीं पूर्णां ६१

ह

हकाराद् व्योम सम्भूतं ३८५
हकारार्द्धनिभं जीवं ५११
हकारस्त्वग्निरूढत्वात् ३८४
हकारं प्राणवायौ च ३९१
हकारं शुक्लवर्णाख्यं ३९५
हकारः प्राणरूपस्तु ३९५
हक्षादिद्विदलं पद्मं ८८
हक्षादिशान्तवर्णात्मा ५०२
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे १२६
हठादाकर्षणे यस्तु ४३६
हत्वा निवेदयेद् यस्तु २६९
हन्तीह परमो मोहः ४२६
हयमेधफलं तस्य ४८
हरत्यविद्याविक्षेपान् ४८०
हरन्ति प्रकटं यस्मात् २५९
हररूपस्य त्वत्पत्युः ४४८
हरिद्रान्नप्रसक्तां च १४२
हरीतक्या समायुक्तं २८८
हलञ्च मुसलं खड्गं ६३
हवनान्मोहयेन्मन्त्री ४०९
हविः सुसंस्कृतं दिव्यं २२९
हस्तच्युतायां विघ्नः स्याद् २५९
हस्तपद्मैश्च विभ्राणा ६३
हस्तमात्रमिते शुद्धे ५४
हस्तमात्रं चतुरस्रं ४०५
हस्ताभ्यां च ततः पद्भ्यां २७८
हस्ताभ्यां च तमुत्थाप्य ३६५
हस्तावाच्छाद्य आधार ४५१
हस्तिनापुरकं पीठं १४५
हस्तेन चक्षुषा वापि २९२
हस्तं दत्त्वा पठेत् सिद्धं १५
हस्त्यश्वरथायानाद्यै ३६४
हस्त्यश्वरथ खट्वादि १८५
हाकिन्यै नम उच्चार्य १४३
हारालङ्कारसुभगां ४४०
हिकारं शङ्खवर्णं तु १००
हिङ्गुजीरमरीचाद्यै २३०
हित्वा मुखे शिवेन्दुभ्यां १६
हिमकुन्देन्दुधवलां १९२
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ५१६
हिरण्यपुरकं पीठं १४६
हिंसाऽसूया तथेर्ष्या च ४३४

हिंसां स्तेयं च मात्सर्यं ३६१
हुङ्कारोच्चारणेनैव १६३
हुत्वाऽमृतं ततो भक्त्या २९३
हुत्वा साङ्गां महेशानीं ३५८
हृत्कमलं शिरश्चैव ५१०
हृत्पद्मकलिकामध्ये ९०
हृत्पद्मे द्वादशच्छेद १२६
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां १६७
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां १३९
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थे ४७०
हृत्पुण्डरीके विरुजं विशुद्धं ५१४
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु ८०
हृदयाद् गलपर्यन्तं १६४
हृदयाननलभार्यान्तं ४९९
हृदयान्नाभिपर्यन्तं ४४१
हृदये कामराजं च १६४
हृदये ग्रन्थिभेदश्च ३८४
हृदये च तलं सर्वं १२७
हृदये पद्ममध्ये तु ४५२
हृदये बाहुमूले च १२६
हृदयेऽव्यान्महेशानी ३५
हृदयं च शिरो देवि! १२५
हृदयं बीजमेतस्याः ५०५
हृदयं मध्यमाऽनामा १५५
हृदि ज्योतिः शिखाकारं ३८२
हृदिस्थं परमात्मानं २९८
हृदि हस्तं समादाय ४४१
हृदि त्रिकोणमध्ये च ३८०
हेकारं तारकावर्ण ९८
हेतुद्रव्यमनास्वाद्य ४२३
हेतुना भोजितव्यास्ताः ३१६
हेतुयुक्तो महेशानि! ४५
हेतुरत्र समाख्यातो २७१
हेतुसाध्येति वाक्याच्च ११
हेमगर्भान् समाञ् शुद्धान् ४१९
हेमदण्डशिखालम्बि १७९
हेमदण्डशिखालम्बि ४३१
हेमदण्डशिखालम्बि १७७
होमपात्रगतं दिव्यं १६९
हेमरूप्यादिताम्राणां ५४
हेमाभं वैद्युताभं च ८७
हैमं ब्रह्माण्डमेभिः स्याद् १७४
होमकर्मण्यशक्तानां ३७८
होमयेत् संस्कृते वह्नौ २६४
होमयेत् संस्कृते वह्नौ ३५२
होमयेत् संस्कृते वह्नौ ४१५
होमसन्तर्पणं चैव २८४
होमस्य कथयेशान! ४०५
होमादिकं तु विफलं ३१५
होमाद्यं विहितं तत्र ४६६
होमान्तरं प्रवक्ष्यामि ४५१
होमान्यन्यानि सर्वाणि ५९
हं क्षं हां हीं च देवेशि! १४३
हंसकारण्डवाकीर्णं १७६
हंसबीजसमारूढा २०१
हंसः शक्तिः परा बीजं ३५
हंसः शक्तिः परा बीजं १३२
हसौः श्वासे च निःश्वासे ३६
ह्रीङ्कारं हृदये पद्मे ३९१
ह्रील्लेखात्रयसम्भूतैः ३९०
ह्रील्लेखात्रयसम्भूत्यै ३८९
ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरेत्युक्त्वा १५१

पारिभाषिक शब्दावली

अक्षपाद—न्यास शास्त्र के प्रणेता / प्रवर्त्तक गौतम ऋषि ।

अजपाविद्या—हंसः ।

अभिचार—मारण मोहन उच्चाटन विद्वेषण स्तम्भन और आकर्षण कार्य को करने के लिये किया जाने वाला अनुष्ठान ।

अमृतीकरण—नैवेद्य के विषय में अमृत की भावना ।

अर्क—मदार अथवा सूर्य ।

अर्घ्यपात्र—वह पात्र जिसमें देवता को अर्पित करने के लिये यव अक्षत पुष्प नारियल मुद्रा कुशाग्र आदि रखे जाते हैं ।

अर—कोण

अर्धनारीश्वर—भगवान् शिव का वह रूप जिसमें उनका वामार्ध स्त्री शरीर का होता है ।

अवधूत आश्रम—कौलमार्ग ।

अवर्ग—अकार आदि सोलह स्वर ।

अस्त्र/अस्त्रबीज—फट्

आगम—शिव के मुख से निकले हुए वे वचन, जो पार्वती के प्रश्नों के उत्तर के रूप में है ।

आधार—मूलाधार/पैर ।

आवरणशक्ति—प्रधान देवता के चारो ओर विराजमान शक्तियाँ ।

आस्तिक—भाग्य, ईश्वर स्वर्ग-नरक तथा वेद में विश्वास करने वाला ।

आहुति—किसी देवता को उद्‌दिष्ट कर अग्नि आदि में द्रव्य का प्रक्षेप ।

इडा—रीढ़ की हड्डी के बायें भाग में बाहर-बाहर चलने वाली वह नाड़ी जो कन्द से निकलकर बाँयें नासारन्ध्र में समाप्त होती है ।

इन्द्रद्रु—इन्द्रायण/देवदारु ।

इन्द्रबीज—लं ।

उड्यान पीठ—यह चिन्मय शक्ति का एक स्थान है । शरीर में इसकी स्थिति कण्ठ में रहती है ।

उपचार—देवता की पूजा की वस्तु ।

उन्मनी—मन के परे की अवस्था या स्तर जहाँ पर काल दिशा और सीमा नहीं रहते ।

उर्वशी—स्वर्ग की एक अप्सरा जो पुरुरवा राजा के प्रति आसक्त होने के कारण इन्द्र के शाप से कुछ समय तक धरती पर पुरुरवा की प्रेयसी बनकर रही ।

एकादश स्वर—एकार ।

कणाद—वैशेषिक शास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य ।

कतकरेणु—फिटकिरी का चूर्ण ।

कनक—धत्तूर ।

कमला बीज—श्रीं ।

कवच—अङ्गों तथा अन्य सम्बद्ध तत्त्वों की रक्षा के लिये विशिष्ट देवता से प्रार्थना के रूप में पढ़ा जाने वाला श्लोकसमूह ।

काकूक्ति—वह वचन जिसका सामान्य अर्थ दूसरा हो किन्तु कण्ठध्वनि के बदल देने से अर्थ बदल जाता हो ।

कामदेव बीज—क्लीं/क ।

कामराज मन्त्र—हसकहलह्रीं ।

कामबीज—कं/क्लीं ।

कामरूप—शरीर में तथा भारत देश में स्थित चार शक्ति पीठों में से प्रथम पीठ है । शरीर में इसका स्थान मूलाधार चक्र है ।

कामेश्वर—भगवान शिव का एक विशिष्ट रूप ।

कामेश्वरी—शक्ति का एक विशिष्ट रूप जो शिव के साथ युगनद्ध स्थिति में रहता है ।

काम्यकर्म—जिसके करने पर ईप्सित फल मिलता हो और न करने पर कोई हानि न होती हो ।

कुण्डगोल—रजवीर्य/पति के जीवित रहते दूसरे पुरुष से उत्पन्न सन्तान कुण्ड और पति के मर जाने पर दूसरे पुरुष से उत्पन्न सन्तान गोल कहलाती है ।

कुण्डली/कुण्डलिनी—नाभि के नीचे और लिङ्ग मूल के ऊपर वर्तमान कन्द के अन्दर सुषुम्ना के नीचे साढे तीन वलय में सोई हुई चैतन्य शक्ति ।

कुमारी बीज—ऐं क्लीं सौः ।

कुलज्ञ—कौलशास्त्र एवं उसकी विधि का ज्ञाता ।

कुलदर्भ—दाँयी तर्जनी में चाँदी अनामिका में सोना तथा बाँयीं कनिष्ठा में सोने की अङ्गूठी ।

कुलपल्लव—आम्र अशोक आदि सात पल्लव ।

कुलान्न—यव कोद्रव श्यामाक आदि सात अन्न ।

कुलगुरु—कौलमार्ग का उपदेष्टा । वह गुरु जो कुण्डलिनी का उद्बोधन करे ।

कुलवर्त्म—सुषुम्ना मार्ग ।

कुलवृक्ष— श्लेष्मान्तकं करञ्जाख्यं निम्बाश्वत्थकदम्बका: ।
बिल्ववटोदुम्बराश्च तिन्तिडी नवमी स्मृता ॥

(लसोड़ा, कञ्जा, नीब, पीपल, कदम्ब, बेल, बरगद, गूलर और इमली)

क्रोधीश—क ।

क्षीरोदधि—आं ।

क्षेत्रपाल—एक प्रकार की देवयोनि ।

क्षौद्र—मधु ।

खगेन्द्र—गरुड जो कि भगवान् विष्णु का वाहन है ।

गणपतिबीज—गं ।

गन्धर्व—ऊर्ध्वलोक में निवास करने वाले देवविशेष । इनका प्रिय कार्य गायन और वादन होता है ।

गारुड—पन्ना रत्न ।

गुरुमण्डल—गुरुओं का समूह । यह तीन प्रकार का होता है मानवौघ, सिद्धौघ और दिव्यौघ ।

गौतम—न्यासशास्त्र के प्रवर्त्तक ऋषि । इनकी पत्नी अहल्या थी । इन्द्र ने इनका शीलभङ्ग किया था ।

चतुर्वर्ग—धर्म अर्थ काम मोक्ष ।

चन्द्रबीज—स ।

चातुर्वर्ण्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ।

जप—किसी मन्त्र का बार-बार मन में दोहराना । इसे न तो बहुत तीव्र और न बहुत मन्द गति से किया जाता है ।

जाग्रत अवस्था—शरीर की वह अवस्था जिसमें इन्द्रियाँ और मन दोनों सक्रिय रहते हैं ।

जातीफल—जायफल ।

जालन्धर पीठ—इस देह में तथा भारतवर्ष में एक शक्तिपीठ । देह में इसका स्थान हृदय होता है । यह तीसरा महापीठ है ।

जैमिनि—मीमांसा सूत्र के रचयिता तथा मीमांसा शास्त्र के प्रवर्त्तक ।

तन्त्र—शिव पार्वती संवाद के रूप में अवतरित एक शास्त्र जिसमें शिव को मूलतत्त्व माना जाता है । मोक्ष की अवधारणा भी शिवत्वलाभ या शिव-समावेश के रूप में मानी गयी है ।

त्रयी—ऋग् यजुः साम वेद ।

त्रयोदश स्वर—ओ ।

त्रिकटु—सोंठ पीपर मिर्च ।

त्रिजात—छोटीइलायची तेजपात दालचीनी ।

त्रिलोह—सोना चाँदी ताँबा ।

त्रिसन्ध्या—प्रात:काल मध्याह्न एवं सायङ्काल में की जाने वाली सन्ध्या ।

दक्षनाडी—पिङ्गला नाडी जो कि रीढ़ की हड्डी के नीचे स्थित कन्द से निकल रीढ़ की हड्डी के दाँयीं ओर समानान्तर ऊपर चलती है और दाँयें नासारन्ध्र में समाप्त हो जाती है ।

दत्तात्रेय—अत्रिमुनि के तीन पुत्रों में से एक जिन्हें अघोर पथ का उन्नायक कहा जाता है ।

दीक्षा—गुरु के द्वारा अनुष्ठानपूर्वक दिया जाने वाला वह मन्त्रोपदेश जिससे शिष्य का पशुभाव नष्ट हो जाता है ।

दीपस्थान—जिस स्थान में बैठने या अनुष्ठान करने से मनुष्य का मन सदा प्रसन्न रहता है।

द्वयष्टपत्राम्बुज—सोलह दलों वाला कमल ।

नकुलीश बीज—ह ।

नाद इन्दुबीज— ँ ।

नित्यकर्म—जिसके करने से कोई लाभ नहीं किन्तु न करने से हानि होती है ।

नित्या—एक प्रकार की देवियाँ जिनमें महात्रिपुरसुन्दरी प्रथम तथा प्रधान देवता है। इनकी संख्या सोलह है ।

निर्माल्य—देवता आदि को अर्पित किया गया पुष्प आदि ।

नैमित्तिक कर्म—जो कर्म किसी निमित्त के उपस्थित होने पर किया जाय । इसके न करने से हानि तथा करने पर लाभ होता है ।

नैवेद्य—देवता को उद्दिष्ट कर भोजन के लिये दिये जाने वाले पदार्थ ।

पञ्चगव्य—गाय का दूध दही घी मूत्र और गोबर ।

पञ्चदशाक्षरी विद्या—कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकहल्रीं इसमें पहले ह्रीं जोड़ने पर यह षोडशाक्षरी विद्या कही जाती है ।

पञ्चभूत—पृथिवी जल तेज वायु आकाश ।

पञ्चवक्त्र—पाँच मुखों वाले देव भगवान् शिव ।

पञ्चविंशतितत्त्व—प्रकृति से लेकर पृथिवी तक के तत्त्व । इनका वर्णन सांख्य दर्शन में मिलता है ।

पञ्चशर—कामदेव का नाम । इनके पाँच बाणों का नाम है—अरविन्द, अशोक, चूत, नवमल्लिका, पारिजात ।

पञ्चमकार—मांस मद्य मत्स्य मुद्रा मैथुन ।

पञ्चामृत—गाय का दूध दही घी शक्कर और मधु ।

परमीकरण—प्रार्थना ।

परशक्ति—परशिव में वर्त्तमान शक्ति ।

पर्व—उत्तम नक्षत्र से युक्त तिथि दिन अथवा गुरु आदि का जन्मदिन आदि ।

पाद्य—पैर धोने के लिये जल ।

पानपात्र—मदिरा पीने का पात्र ।

पायसान्न—गाय के दूध को मिलाकर बनाया गया भोज्य पदार्थ ।

पितृपीठ—श्मशान ।

पुक्कस—शूद्र स्त्री से चाण्डाल से उत्पन्न सन्तान ।

पुरस्क्रिया—किसी मन्त्र का निश्चित विधान के अनुसार जप । मन्त्र में जितने अक्षर होते हैं उतने हजार का जप लघु एवं उतने लाख का जप बृहद् पुरस्क्रिया होती है ।

पुष्पदन्त—एक गन्धर्व जिसने शिवमहिम्न स्तोत्र से शिव की स्तुति कर अभीष्ट लाभ किया ।

पुस्त—वेद/पुस्तक/पुतला ।

पूर्णगिरि—चार महापीठों में से दूसरा पीठ । शरीर में इसका स्थान नाभि है ।

पूर्णाहन्तास्वभाव—सम्पूर्ण विश्व को स्वात्मरूप में देखने की भावना ।

प्रकृति—सांख्यदर्शन के अनुसार मूलतत्त्व ।

प्रणव—ओऽम्/ह्रीं/सौः/आं ।

प्रणीता—यज्ञ/होम के समय रखा जाने वाला एक जलपात्र । इसका जल

अशुद्ध होता है ।

प्रदक्षिणा—किसी देवता या गुरु आदि के चारो ओर श्रद्धापूर्वक घूमना । इस क्रिया में कभी-कभी दोनों हाथ ऊपर उठे रहते हैं ।

प्राणमनु—प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र ।

प्रादेश—अङ्गूठा के अग्रभाग से लेकर अनामिका तर्जनी के अग्रभाग तक की दूरी ।

प्रोक्षणी—यज्ञ/होम के समय रखा जाने वाला एक जलपात्र इसका जल परम पवित्र होता है । इस जल से अभिषेक किया जाता है ।

बलि—यज्ञ के अन्त में देवता को उद्दिष्ट कर दिया जाने वाला दधिमाष इत्यादि पदार्थ अथवा खड्ग से हत पशु ।

बालाबीज—ऐं क्लीं सौः ।

ब्राह्ममुहूर्त्त—प्रातः साढे तीन चार बजे से लेकर सूर्योदय के पहल तक दो घण्टे का समय ।

भव—जन्म ।

भानुवार—रविवार ।

मदनपल्लव—अशोक वृक्ष की कोंपलें ।

मदनागार—योनि ।

मधुपर्क—दधि मधु घृत का मिश्रण (दध्ना मधुसर्पिभ्यां मधुपर्क इहोच्यते) ।

मधुरत्रय—दूध घी मधु अथवा घी शक्कर मधु ।

मधुमती सिद्धि—एक सिद्धि जिसमें शोक नहीं रहता । विशोका वा मधुमती (पा.यो.सू.)।

मनु—मन्त्र ।

महाभूतदिन—किसी भी मास के मङ्गलवार को कृष्णचतुर्दशी का दिन ।

महात्रिपुरसुन्दरी—दश महाविद्याओं में से एक । इसका नाम षोडशी भी है ।

महापद्मवन—सहस्रार ।

महाशङ्ख—नरकपाल ।

महीबीज—लं ।

मातृका—'अ' से लेकर 'क्ष' तक के वर्ण ।

मायाबीज—ह्रीं ।

मुक्ति—जन्ममृत्यु से छुटकारा ।

मुद्रा—१. शरीर के अङ्गों या शरीर को किसी विशेष रूप में मोड़ना । इससे देवता प्रसन्न होते हैं । २. तला या भुना हुआ पदार्थ ।

मूल—मूलाधार/मूलमन्त्र ।

मृगनाभि—कस्तूरी ।

मेरुदण्ड—पीठ में वर्त्तमान रीढ़ की हड्डी ।

मेरुमूल—रीढ़ की हड्डी जहाँ समाप्त होती है कटिप्रदेश के नीचे का वह भाग ।

यन्त्र—धातु या भोजपत्र अथवा स्फटिक आदि पर बनायी गयी विशेष आकृति । इसके भीतर कभी-कभी अङ्क अथवा अक्षर लिखे जाते हैं । यह देवता का विग्रह-स्वरूप होता है ।

योगिनी—शिव अथवा दुर्गा आदि की सेविकायें ।

यामल—शिवशक्ति की संयुक्त अवस्था/तन्त्र का लघुरूप ।

योगक्षेम—योग—अलब्ध का लाभ । क्षेम—लब्ध की रक्षा ।

रमाबीज—श्रीं ।

रस—मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त/छह की संख्या/पारद ।

राजराजेश्वरी विद्या—पञ्चदशी विद्या में सबसे पहले 'ह्रीं' जोड़ने पर यह विद्या होती है ।

लौहित्यनद—शोणनद ।

वज्र—हीरारत्न ।

वन—जङ्गली पौधा/गुल्म ।

वराभय मुद्रा—दाँयाँ हाथ का पञ्जा ऊपर की ओर उठाना अभय मुद्रा/दाँयाँ हाथ का पञ्जा नीचे लटकाना वरद मुद्रा ।

वर्मबीज—हुम् ।

वसिष्ठ—इक्ष्वाकु वंश के गुरु ।

वह्नि—चित्रक नामक एक औषधि जो पाचन-दीपन करती है/चित्रा नक्षत्र ।

वह्निजाया—स्वाहा ।

वह्निबीज—रं ।

वाग्भव बीज—ऐं ।

वामदेव वक्त्र—सदाशिव के पाँच मुखों में से एक मुख ।

वायुबीज—यं ।

वामकर्ण—ऊं ।

वारुण बीज—वं ।

विद्या—स्त्री जाति का मन्त्र/षोडशी मन्त्र ।

विभूति—अणिमा आदि सिद्धियाँ ।

विश्वामित्र—राजा गाधि के पुत्र जिन्होंने उग्र तप कर ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया था।

विष(स)—कमलनाल ।

वीरभाव—साधक के द्वारा की जाने वाली वह भावना जिसमें वह संसार को कभी अपने से अभिन्न और कभी भिन्न देखता है ।

वेताल—शव पर अधिकार रखने वाला एक प्रकार का भूत ।

वेदत्रय—ऋग् यजुः साम वेद ।

वेदार्ण—चार अक्षरों का समूह ।

शक्ति—तान्त्रिक साधना के लिये लायी गयी स्त्री । यह स्वकीया परकीया कोई भी हो सकती है । निम्न जाति की स्त्री उत्तम मानी जाती है ।

शक्तिबीज—क्लीं ।

शल्य—काँटा, लोहे की कील इत्यादि जो भूमि के अन्दर रहते हैं ।

शाम्भव मन्त्र—सकलह्रीं ।

शिवबीज—ह ।

शिवहस्त—गुरु का दाँया हाथ जो अभिमन्त्रित होता है । इस हाथ को शिशु के शिर पर रखकर मन्त्रोपदेश किया जाता है ।

शिशु—दीक्षा के लिये तत्पर बालक युवा अथवा वृद्ध ।

शेष बीज—आं ।

श्रीबीज—श्रीं ।

शृङ्गाट—मूलाधार जिसकी आकृति त्रिकोण सिंघाड़ा की तरह होती है ।

षडध्वा—मुक्ति या शिवसमावेश के लिये शैवागम में स्वीकृत छह मार्ग—वर्ण, मन्त्र, पद, कला, तत्त्व और भुवन ।

षड्रस—मधुर आदि छह रस जो भोज्य पदार्थों में मिलते हैं ।

षट्चक्र—मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्धि और आज्ञा ।

सचन्द्रक शिवबीज—हंसः ।

सदाशिव—भगवान् शिव का वह रूप जिसमें 'अहम्' और 'इदम्' का भेद लेशमात्र रहता है ।

सद्योजात बीज—ओं ।

समयाचार—वैदिकमार्ग ।

सिद्धार्थ—श्वेत सरसों ।

सुषुप्ति—मनुष्य् शरीर की वह अवस्था जिसमें इन्द्रियाँ और मन दोनों ही निष्क्रिय रहते हैं।

स्थण्डिल—होम करने के लिये आठ या अठारह ईंटों से बना चबूतरा ।

स्रुवा—हवन के लिये प्रयोग में आने वाला उपकरण ।

स्वप्नावस्था—शरीर की वह अवस्था जिसमें इन्द्रियाँ निष्क्रिय तथा मन सक्रिय रहता है ।

स्वयम्भूकुसुम—स्त्री का प्रथम रज ।

सोऽहं भाव—ईश्वर के साथ जीव का 'मैं वह हूँ' या 'वह मैं हूँ' भावना ।

हयमेध—वह यज्ञ जिसमें घोड़ों को काटकर बलि दी जाती है ।

हंसबीज—ह ।

हार्धकला—ए (योनि) ।

होम—देवता को उछिष्ट कर अग्नि में द्रव्य का प्रक्षेप ।

* * *

श्रीयन्त्र

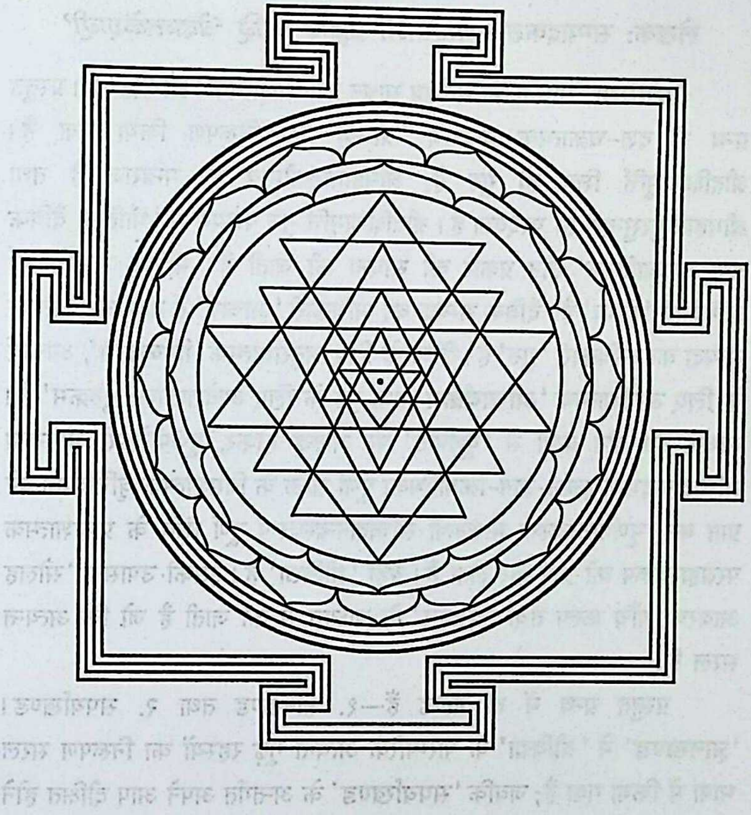

श्रीविद्यान्तर्गतम्

श्रीचक्रनिरूपणम्

'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मकम्, सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहितम्

लेखकः सम्पादकश्च—*गोस्वामी प्रह्लाद गिरि 'वेदान्तकेशरी'*

'श्रीविद्या' साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन दश-चक्रात्मक **'श्रीचक्र'** है। प्रस्तुत ग्रन्थ में दश-चक्रात्मक यन्त्रराज 'श्रीचक्र' का निरूपण किया गया है। श्रीदक्षिणामूर्त्ति शिव ही गुरु हैं; श्रीमहाषोडशीमन्त्र ही मन्त्रराज है तथा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ही परदेवता है। श्रीदक्षिणामूर्त्ति गुरु परम्परा में 'भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक' तीन प्रकार की साधना की जाती हैं। भौतिक सम्पदा का अधिकारी 'शिष्य' है। दैविक सम्पदा का अधिकारी 'आचार्य' है तथा आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकारी 'गुरु' है। शिष्य के लिए अनुरोधात्मक **'शिष्यक्रम'**, आचार्य के लिए उपदेशात्मक **'आचार्यक्रम'** तथा गुरु के लिए आदेशात्मक 'गुरुक्रम' है। साधक इन तीन क्रमों से 'पूर्णपीठ' पर आरूढ़ होकर, पूर्णपीठेश्वरी भोगरूपा सच्चिदानन्दमयी इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मिका पूर्णा शक्ति के विमर्शात्मक वृत्तिरूपता को प्राप्त कर, पूर्णपीठस्वरूप मोक्षरूपी सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्ण शिव के प्रकाशात्मक परब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यही 'श्रीविद्या' है। इसकी उपासना 'सोलह आवरण, पाँच कल्प तथा उपसंहार' के माध्यम से की जाती है जो कि अत्यन्त सरल है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में दो खण्ड हैं—१. ज्ञानखण्ड तथा २. सपर्याखण्ड। **'ज्ञानखण्ड'** में **'श्रीविद्या'** के पारम्परिक अत्यन्त गूढ़ रहस्यों का निरूपण सरल भाषा में किया गया है; जबकि **'सपर्याखण्ड'** के अन्तर्गत अपने आप दीक्षित होने की विधि, पूजाविधि तथा वन्दना का निरूपण हुआ है। यह एक सम्पूर्ण पद्धति है। ग्रन्थ का मूल संस्कृत तथा अनुवाद हिन्दी भाषा में निरूपित है। यह संस्करण 'पराशक्ति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की श्रीमहाषोडशी परम्परा' का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थरत्न है।

मूल्य : रु. ४५०.००

Acc. No. [illegible] Class no.
1) This book must be returned on the date last stamped below.
2) A fine of [illegible] will be charged for each day the book is kept overtime.

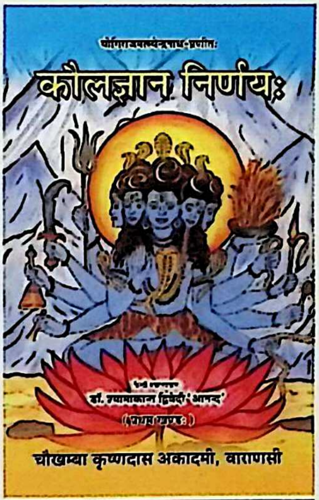
योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ-प्रणीतः
कौलज्ञान निर्णयः
डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'
(प्रथम खण्डः)
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

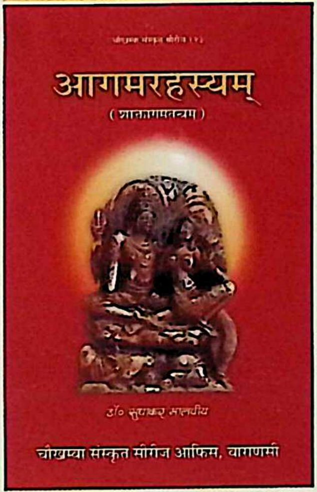
आगमरहस्यम्
डॉ० सुधाकर मालवीय
चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

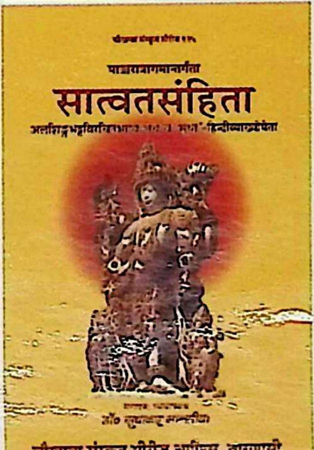
सात्वतसंहिता
डॉ० सुधाकर मालवीय
चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

अन्य महत्वपूर्ण तन्त्र ग्रन्था

श्रीविद्याम्

दशमहाविद्या:। श्रीविद्यान्तर्गता:। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्यासहिता:। 'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका:।

1. **श्यामाकाली महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
2. **तारा महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
3. **षोडशी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
4. **भुवनेश्वरी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
5. **भैरवी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
6. **छिन्नमस्ता महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
7. **धूमावती महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
8. **बगलामुखी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
9. **मातङ्गिनी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।
10. **कमला महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका।

गायत्री ब्रह्मविद्या। श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहिता।'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मिका। **सभी खण्ड शीघ्र**

श्रीचक्रनिरूपणम्। श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श–'प्रह्लाद'–हिन्दी–व्याख्या–सहितम्। 'ज्ञान'–'सपर्या'–खण्डात्मकम्। लेखक: सम्पादकश्च – गोस्वामी प्रह्लाद गिरि 'वेदान्तकेशरी'। **450.00**

designed by Shreyashi GRAPHICS, [illegible]

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy,** Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-308-9 Price : Rs. 650.00